उपाध्याय-शान्तिचन्द्रगणिविरचित
प्रमेयरत्नमञ्जूषावृत्तियुतम्,
स्थविरभगवन्तरचितम्

जंबुद्दीवपण्णत्तिसुत्तं

भाग- २

(४-७ वक्षस्काराः)

सम्पादकः संशोधकः
आचार्य विजय मुनिचन्द्रसूरिः

: प्रकाशक :
श्रीमहावीर जैन विद्यालय

जैन आगमग्रन्थमाला क्रमाङ्क - १० (२)

उपाध्याय-शान्तिचन्द्रगणिविरचित
प्रमेयरत्नमञ्जूषावृत्तियुतम्,
स्थविरभगवन्तरचितम्

जंबुद्दीवपण्णत्तिसुत्तं

भा. २

(४-७ वक्षस्काराः)

आगमप्रभाकरश्रीपुण्यविजय-सज्जीकृत-सामग्र्याधारेण सम्पादकः संशोधकश्च
पूज्यपादयुगमहर्षि-आचार्यभगवत्-श्रीमद्विजयभद्रसूरीश्वराणां शिष्यरत्न-
साधनारतमुनिराजश्री जिनचन्द्रविजयानां विनेयः

आचार्यविजयमुनिचन्द्रसूरिः

: प्रकाशक :

श्रीमहावीर जैन विद्यालय

ग्रंथनाम : जंबुद्दीवपण्णत्तिसुत्तं भाग-२ (वक्षस्कार ४ थी ७ संपूर्ण)

ग्रंथनुं संस्कृतनाम : जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रम्

मूलग्रंथ+प्रमेयरत्नमञ्जूषाटीका

ग्रन्थकार : स्थविरभगवन्त

टीकाकार : शान्तिचन्द्र उपाध्याय

प्रकाशक : श्री महावीर जैन विद्यालय

भाषा : प्राकृत / संस्कृत

विषय : आगम

पृष्ठ संख्या : ४० + ५१६ = ५५६

साइझ : क्राउन १/८

प्रथम संस्करण : वीर संवत् २५४४ / विक्रम संवत् २०७४ / ई.स. २०१८

मूल्य : ५०० रुपये

संशोधन सहायकाः आ.श्री कुलचन्द्रसूरिः, आ.श्री पुण्यरत्नसूरिः,
आ. श्री यशोरत्नसूरिः (प्रेमभुवनभानुसूरिसमुदायः)
आ. श्री जगच्चन्द्रसूरिः (डेलावाला)

प्राप्तिस्थान :

१) **सरस्वती पुस्तक भंडार**
हाथीखाना, रतनपोळ, अमदावाद-१

२) **आ. ॐकारसूरि ज्ञानमंदिर**
सुभाषचोक, गोपीपुरा, सुरत-१
सेवंतीलाल महेता 9824152727 Email - omkarsuri@rediffmail.com
mehta_sevantilal@yahoo.co.in

३) **महावीर विद्यालय**
ओगस्टक्रांति मार्ग,
मुंबइ - ४०० ०३६

४) **महावीर विद्यालय**
एलीसब्रीज, अमदावाद

मुद्रक : किरीट ग्राफिक्स, अमदावाद. दूरभाष : ०९८९८४९००९१

Jain Agama - Series No. 10 (2)

JAMBUDDIVA PANNATTI SUTTAṀ

Part - 2

(Vaksaskar 4 to 7)

Editor
Āchary Vijay Munichandrasoori

SHRI MAHĀVĪRA JAINA VIDYĀLAYA
MUMBAI 400 036

First Published : 2018
V.S. 2074

Price : ₹ 500/-

Published by : **Shri Mahavira Jain Vidyalaya**
August Kranti Marg,
Mumbai - 400 036

Available at :

1) **Saraswati Pustak Bhandar**
Hathikhana, Ratanpol,
Ahmedabad-1

2) **Aa. Omkarsuri Gnan Mandir**
Subhash Chowck, Gopipura,
Surat-1

3) **Mahavira Vidyalaya**
August Kranti Marg,
Mumbai - 400 036

4) **Mahavira Vidyalaya**
Ellisbridge, Ahmedabad-380 006

Printed by : Kirit Graphics : A'bad Ph. : (O) 09898490091

प्रकाशकीय

आगमों के सुसंपादित संस्करण हेतु आगमप्रभाकर मुनिराजश्री पुण्यविजयजी म.सा. आदि ने वि.सं. २०१७ कारतक वद ३ रविवार ता. ६-११-१९६० के दिन शुभ मुहूर्त में प्रारंभ किया । 'नंदिसुत्तं अणुओगद्दाराइं' आदि आगमग्रंथ प्रकाशित हुए । एक दशक तक यह कार्य अच्छी तरह से चला । आगमप्रभाकरश्री की विदाय के बाद आगमप्रज्ञ मुनिराजश्री जम्बूविजयजी म.सा.ने 'जैन आगमग्रंथमाला' का कार्य आगे बढाया । ३७ साल तक यह कार्य निरंतर चला । आचाराङ्ग सूत्र आदि आगमग्रंथ प्रकट हुए । वि.सं. २०६५ में आगमप्रज्ञश्री की अचानक विदाय के बाद संपादनकार्य की जिम्मेदारी आ. मुनिचन्द्रसूरि म.सा. ने सम्हाली वि.सं. २०६८ में 'उववाइसुत्तं' वि.सं. २०७० में 'रायपसेणियसुत्तं' का प्रकाशन हुआ । वि.सं. २०७३ में श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति आगमग्रंथ उपाध्याय शान्तिचन्द्रगणी निर्मित प्रमेयरत्नमञ्जूषाटीका के साथ (१ से ३ वक्षस्कार भाग-१) प्रकाशित हुआ ।

आज इस ग्रन्थ का दूसरा भाग प्रगट हो रहा है । इस विभाग में वक्षस्कार ४ से ७ तक सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित होता है इस तरह यह सटीकग्रंथ का कार्य दो भाग में पूर्ण हुआ है यह बडे संतोष की बात है ।

आगमप्रभाकर मुनिश्री पुण्यविजयजी म.सा. ने सागरजी म. संपादित सटीक जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति संस्करणमें जेसलमेर की ताड़पत्रीय जे१ जे२ एवं पु. क. इन चार संज्ञा वाली प्रतों के पाठभेद नोंधकराकर रखे थे । इसका उपयोग एवं अन्यान्य हस्तप्रतों का उपयोग करके इस आगमग्रंथ का संपादन आ. मुनिचन्द्रसूरि म. ने किया है ।

जीवाभिगम सटीक भाग : १-२ भी पूर्णता की और है । एवं 'निरियावलियाओ' सटीक का संपादनकार्य चालु है । इस तरह जिनागमग्रंथमाला का कार्य आगे बढ रहा है यह बडे संतोष की बात है ।

अधिकारी मुनिगण इस का अध्ययन कर के आत्मकल्याण करे यही प्रार्थना ।

लि.

प्रकाशक

સમર્પણ

સંઘ એકતાશિલ્પિ
પૂ.આ.ભ.શ્રી ૐકારસૂરીશ્વરજી મહારાજા
આપે અધ્યાપન કરાવ્યું,
શિક્ષણ અને સંસ્કારો આપ્યા,
પૂ.આ.ભ.શ્રી ભદ્રસૂરીશ્વરજી મ.સા.ની
અનન્ય ભક્તિ વૈયાવચ્ચ કરી
જીવંત ઉદાહરણ આપ્યું.
વિ.સં. ૨૦૪૪ના સંમેલનમાં આપ અગ્રેસર બન્યા.
સંઘ એકતા માટે શ્રેષ્ઠ પ્રયાસો કર્યા.
ચરણ કમળમાં
ભાવભરી
વંદના.

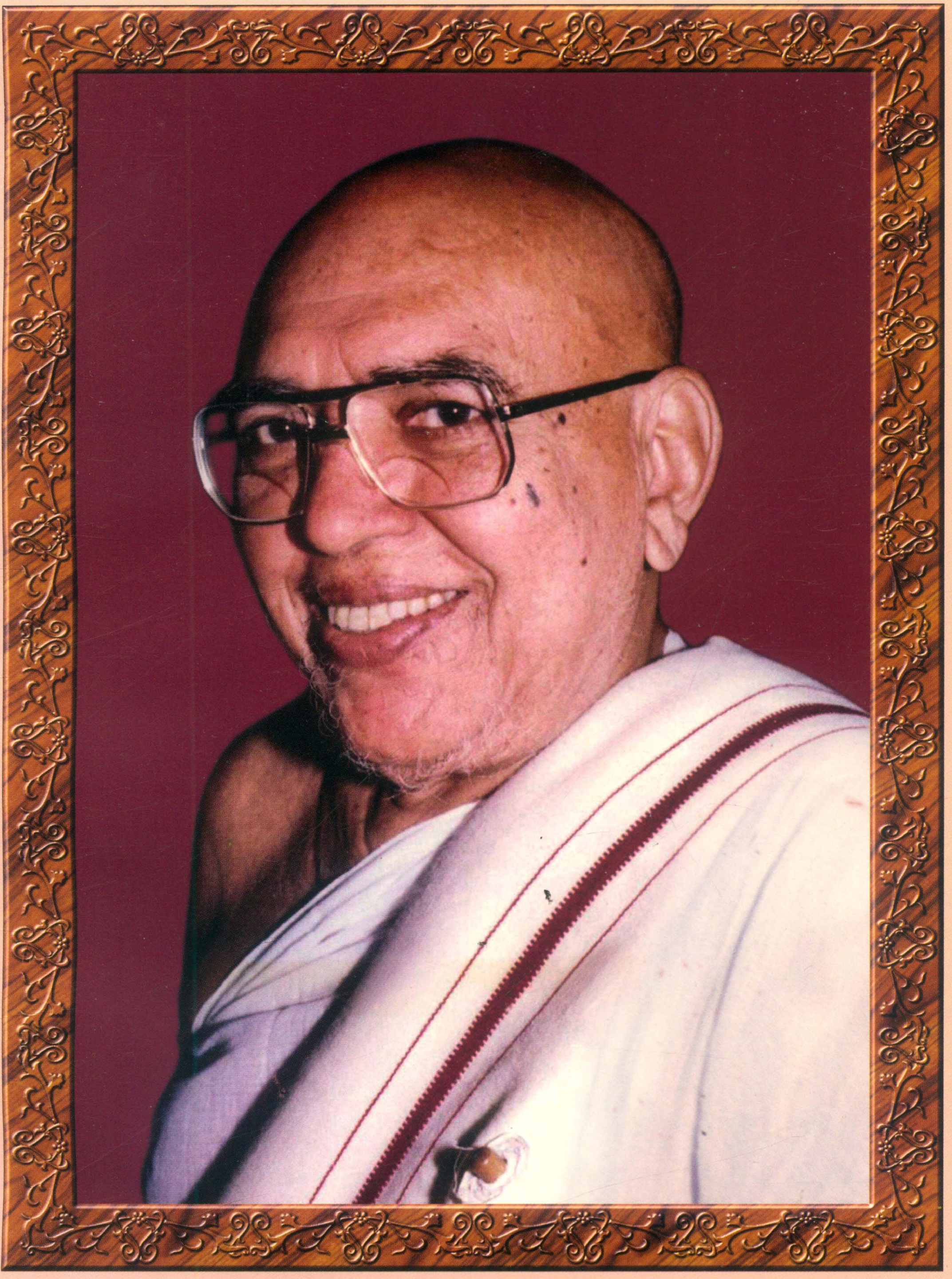

પૂજ્યપાદ, શાસનધુરીણ આચાર્ય ભગવંત

શ્રીમદ્‌વિજય ૐકારસૂરીશ્વરજી મહારાજા

॥ श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

॥ श्रीसिद्धि-विनय-भद्र-ॐकार-अरविंद-यशोविजय-जिनचन्द्रविजयगुरुभ्यो नमः ॥

प्रस्तावना

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र और उसके ऊपर उपाध्याय श्रीशान्तिचन्द्रगणी द्वारा रची गयी प्रमेयरत्नमंजूषा टीका का द्वितीय भाग (वक्षस्कार ४ से ७) प्रकाशित करते हुए हर्ष हो रहा है।

ग्रंथ, टीका और टीकाकार के बारे में भाग-१ में विस्तार से बताया गया है, जिज्ञासु वहाँ से जान ले। कुछ शेष बाबत यहाँ प्रस्तुत है - प्रमेयरत्नमञ्जूषाटीका का संशोधन करने वाले ४ संशोधकों के नाम उपाध्याय विमलहर्षजी, उपा. सोमविजयजी, उपा. आनन्दविजयजी, उपा. लाभविजयजी प्रशस्ति में प्रदर्शित है। अन्य अनेक उपाध्यायों ने संमति दि है एवं तपगच्छनायक आ.भ.श्री सेनसूरीश्वरजी महाराजाने इस टीकाग्रंथ के प्रवर्तन हेतु स्वहस्तों से वितरण किया है।

वृत्तिकारश्री के शिष्य धनचन्द्रजीने वृत्ति का प्रथमादर्श लिखा है, वृत्तिकारश्री के हि अन्य शिष्य रत्नचन्द्रगणिने इसकी अनेक प्रतियाँ लिखी है।

वि.सं. १६५१ में पूर्णता को प्राप्त इस ग्रन्थ का संशोधनकार्य ९ वर्ष तक चला। इस बीच वृत्तिकारश्री का स्वर्गगमन होने से प्रशस्ति के २५ से ३९ श्लोकरचना संशोधकोने कि है।

सूत्र के पाठभेदों की चर्चा यहाँ भी (द्वितीय खण्ड में) दृश्यमान है। कुछ स्थल प्रस्तुत है -

पृ. ७०३ (व.७/सू.२०), पृ. ८४२ (व.७/सू.१७८-D), पृ. ८४७ (व.७/सू.१८५) आदि।

'जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिचूर्णि' नाम से ज्ञानभंडारो में हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त होती है। उसके अन्त में 'जंबूद्दीवकरणाण चुण्णिसम्मत्ता' उल्लेख मिलता है अतः हमने प्रथम भाग की प्रस्तावना में "यह केवल करण विभाग की है" ऐसा लिखा है लेकिन ग्रन्थ का अन्तरंग परीक्षण करने पर स्पष्ट होता है कि यह ग्रंथ जम्बूद्वीप संबंधी किसी पद्यग्रन्थ की चूर्णि = व्याख्या है। प्रस्तुत उपांग ग्रंथ से इसका संबंध नहीं है।

श्री हीरालाल कापडियाने अपने पुस्तक 'हरिभद्रसूरि' (पृ. २०३) में लिखा है कि "जंबूद्दीवपण्णत्ति (जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति) अे जैन आगमो पैकी - बार उवंग पैकी अेक छे. जिनरत्नकोश (विभाग-१, पृ. १३०)मां सूचवायुं छे के आना उपर ज.म.मां आ.हरिभद्रे टीका रची छे, अने अेनी अेक हाथपोथी जेसलमेरना भंडारमां छे. जो आ हरिभद्र ते प्रस्तुत ग्रंथकार ज होय तो आ टीका सत्वर प्रकाशित थवी घटे. 'जेसलमेर भांडागार ग्रंथसूचि'मां तो आ कृतिनी नोंध नथी तेनुं केम ? गमे तेम पण म.कि. महेताअे आ टीकानो उल्लेख कर्यो छे खरो."

जीवाजीवाभिगमसूत्र पर आ. हरिभद्रसूरि की संक्षिप्त टीका है अद्यावधिअप्रकाशित इस टीका का संपादनकार्य मुनि कल्याणभूषण वि.म. कर रहे है । जिनरत्नकोश के संपादकने भूल से उपरोक्त उल्लेख किया हो ऐसा लगता है ।

अन्यच्च टीकाग्रन्थ की रचना, समाप्ति और टीकाग्रन्थ संशोधन की पूर्णता के विषय में लंबे अर्से से चली आ रही भ्रान्त धारणाओं को सुधारने के लिए कुछ बाते करनी है ।

प्रस्तुत 'प्रमेयरत्नमंजूषा' टीका की पूर्णता श्रीशान्तिचन्द्र उपाध्यायजीने वि.सं. १६५१ में की, पश्चात् ग्रन्थसंशोधन कार्य शुरु हुआ और वि.सं. १६६० में पूर्ण हुआ । इस बीच टीकाकार उपाध्यायश्रीजी का कालधर्म हुआ, इसलिए प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रशस्ति में २४ श्लोक के बाद की श्लोक रचना संशोधकोने की है और ३९ वें श्लोक में संशोधन पूर्णता का वर्ष सूचित किया है ।

श्रीमद्विक्रमभूपतोऽम्बरगुणक्ष्माखण्डदाक्षायणी

टीकारचना का वर्ष १६५१ ग्रन्थकारश्रीने स्वरचित प्रशस्ति के १९में श्लोक में बताया है जो इस प्रकार है –

वर्षे श्री विक्रमार्काद्विधुशरेशरभूर्वक्त्रधात्रीप्रमाणे ।

निम्नलिखित ग्रंथो में गलती से टीकारचनावर्ष १६६० लिखा गया है –

(१) जिनरत्नकोश [Vol.-I] – प्रकाशक-भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना । (पृ. १३०-१३१) ई.स. १९४४ ।

(२) उवंगसुत्ताणि (खण्ड-२) प्रस्तावना, आचार्य तुलसी, प्रकाशक जैन विश्वभारती लाडनूं (पृष्ठ-३३)

(३) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग-३), डो. मोहनलाल महेता (पृ. २४०) प्र. पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोधसंस्थान, वाराणसी ।

(४) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र, प्र. आगम प्रकाशन ब्यावर, प्रस्तावना पृ. ५१ द्वितीय संस्करण ई.स. १९९४ ।

(५) जैन आगमसाहित्य मनन और मीमांसा, ले. देवेन्द्रमुनिशास्त्री, पृ. ५४०-५४१ ।

(६) Elements of Jain Geography.
Editor – Frenk Van B. Den Bossche Page. 288
Publisher – Motilal Banarasidas – Delhi, 2007 A.D.

(७) हमने भी प्रथमभाग की प्रस्तावना पृ. १० में वि.सं. १६६० टीकारचना वर्ष लिखा है, वह भूल है । वि.सं. १६५१ रचना वर्ष है ।

(८) जैन आगम परिचय, ले. त्रिलोकचंद जैन, पृ. १६० प्रथमावृत्ति ।

(९) Biolography of Swetambar Canon
Royee willers, Page. 135
नीचे बताये गए ग्रन्थों में टीकारचना संवत १६५० लिखा हुआ है –

(१) जैन ग्रन्थावली प्रकाशक : जैन श्वेताम्बर कोन्फ्रेंस मुंबई, पृ. ८, वि.सं. १९६५ ।

(२) The Canonical Litrature of the Jains, H. R. Kapadia, Page 181.
प्र. Sharadaben Chimanbhai Educational Research Center, Ahemadabad 2000 A.D.

(३) जैन साहित्यनो संक्षिप्त ईतिहास : मोहनलाल द. देसाई, पेरा (५८, पृ. ३८६, प्र. ॐकारसूरि आ. भवन, सूरत) ।

इस तरह बरसों से चली आ रही भूलों को सुधारने के लिए विनंती है ।

●

सम्पादन में उपयुक्त प्रतिपरिचय

विस्तृत प्रतिपरिचय प्रथमभाग की प्रस्तावना में दिया गया है, यहाँ संक्षेप से बता रहे है ।

पु.प्रे. – आगमप्रभाकर मुनिश्रीपुण्यविजयजी म.सा. की सूचना से लिए गए पाठभेद युक्त - मुद्रितप्रत की यह संज्ञा है । इसमें मूलसूत्र के पाठभेद J1, J2, **पु** और **क** संकेत से लिखे गए है ।

J1, J2 जैसलमेर की ताडपत्रीय प्रत ३१/१ और ३२/१ है । पु और क में से मूलसूत्र और टीका के पाठभेद सूचित किए गए है । दोनों कागज की प्रतियाँ है । अन्य परिचय प्राप्त नही हुआ । 'क' के स्थान पर हमने 'के' संज्ञा रखी है ।

V अथवा L यह संज्ञा उवंगसुत्ताणि खंड २, प्र. जैनविश्वभारती लाडनू की है। इस ग्रन्थ में प्रकाशित जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र के पाठभेदों के लिए निम्न प्रतों का उपयोग किया गया है।

अ जिनभद्रसूरि ज्ञानभण्डार (जैसलमेर) की क्रमांक ३१/१ की ताडपत्रीय प्रत ।

ब उपरोक्त भण्डार की ३२/१ क्रमांक की ताडपत्रीय प्रत ।

(उपरोक्त प्रतों की फोटोफाइल भी आ. नेमिविज्ञान ज्ञानमंदिर गोपीपुरा सूरत से आ.भ. श्रीसोमचन्द्रसूरि म.सा. की प्रेरणा से हमें प्राप्त हुई है ।

उपरोक्त ग्रन्थों की CD हमें आ.जिनभद्रसूरि ज्ञानमंदिर जैसलमेर ट्रस्ट तरफ से पं. पुंडरीकरत्न वि.म.सा. की प्रेरणा से अध्यक्ष श्रीमहेन्द्रसिंहजी भंसाली आदि के सौजन्य से प्राप्त हुई है ।)

स इस संज्ञा की प्रति उपरोक्त जैसलमेर के भण्डार की कागज की मूलसूत्रमात्र की है ।

क मूलग्रन्थ की कागज पर लिखी हुई यह प्रत सरदार शहेर में स्थित श्रीचंद गणेशचंद गधैया संग्रहालय की है ।

ख यह जैन विश्वभारती लाडनू भंडार की मूलसूत्र की कागज पर लिखी हुई प्रत है ।

ग यह भी लाडनू भण्डार की कागज ऊपर त्रिपाठपद्धति से लिखी हुई सटीक ग्रन्थ की प्रत है ।

हीवृ. हीरविजयसूरिरचित वृत्ति सहित यह प्रत शासन ग्रन्थ भंडार लाडनू की है । त्रिपाठपद्धति से लिखी हुई इस प्रत की पत्र संख्या ५८२ है । ले.सं. १९१९ । इस प्रत के पाठभेद **हीवृपा** संकेत से दिए गए हैं ।

पुवृ. श्रीचंद गणेशचंद गधैया संग्रहालय की यह प्रत उपा. पुण्यसागर रचित वृत्ति की है । इसके पाठभेद **पुवृपा** संकेत से सूचित किए गए है ।

शावृ. शान्तिचन्द्र उपाध्याय की टीका की यह प्रत भी उपरोक्त गधैया संग्रहालय की है । इसके पाठभेद **शावृपा** संकेत से दर्शाये हैं ।

ऋण-स्वीकार

विद्वद्वर्य आ.भ. श्रीकुलचन्द्रसूरि म.
विद्वद्वर्य आ.भ. श्रीपुण्यरत्नसूरि म. } श्रीप्रेमभुवनभानुसूरि समुदाय
विद्वद्वर्य आ.भ. श्रीयशोरत्नसूरि म.

विद्वद्वर्य आ.भ. श्रीजगच्चन्द्रसूरि म. डेलावाला

(आ. श्री मुक्तिचन्द्रसूरि के शिष्य आ. मुनिचन्द्रसूरी म. ने इस प्रस्तावना को संस्कृत रुपान्तर किया है ।) मुनिज्ञानरक्षित वि.म., मुनि शीलगुण वि.म., सा. श्रीनिर्वाणश्रीजी म., सा. प्रार्थनानिधिश्रीजी म., सा. विनयपूर्णाश्रीजी म. आदिने ग्रन्थ के प्रुफनिरीक्षण, परिशिष्ट निर्माण आदि कार्य में सहयोग देकर सुंदर श्रुतभक्ति की है । श्री कुणालभाइने प्रस्तावना का अंग्रेजी अनुवाद किया है ।

सब की श्रुतभक्ति की अनुमोदना, आभार, धन्यवाद ।

देव-गुरु वन्दना

कलिकाल कल्पतरु **श्रीशंखेश्वर** पार्श्वनाथ प्रभु को अनंत वंदना ।

चरमतीर्थपति **श्रीमहावीर** प्रभु को वंदना ।

अनंतलब्धिनिधान **श्रीगौतमस्वामीजी** को वंदना ।

गणसंपत्समृद्ध **श्रीसुधर्मास्वामीजी** को वंदना ।

पूज्यपाद संघस्थविर आ.भ.**श्रीसिद्धिसूरीश्वजी** म.सा. को वंदना ।

पूज्यपाद युगमहर्षि आ.भ. **श्रीभद्रसूरीश्वरजी** म.सा. को वंदना ।

पूज्यपाद संघएकताशिल्पी आ.भ. **श्रीॐकारसूरीश्वरजी** म.सा. को वंदना ।

पूज्यपाद आगमप्रज्ञ मुनिराज **श्रीजंबूविजयजी** म.सा. को वंदना ।

पूज्यपाद गुरुदेव साधनारत मुनिराज **श्रीजिनचन्द्रवि.** म.सा. को वंदना ।

पूज्य मातुश्री महाराज साध्वी **श्रीकल्पलताश्रीजी** म.सा. को वंदना ।

समतारस साधक पू.आ.भ. **श्रीअरविंदसूरि** म.सा. एवं

मधुरभाषी पू.आ.भ. **श्रीयशोविजयसूरि** म.सा. के शुभाशीष से ही यह संपादन कार्य शक्य बना है ।

देव-गुरु के चरणों में भावभरी वंदना ।

स्थानम् - श्रीकृष्णनगर जैन उपाश्रय
अहमदाबाद.
वि.सं. २०७३,
भादरवा सुद-१५

युगमहर्षि आ.भ.श्रीभद्रसूरीश्वरजी म.सा.
के शिष्यरत्न
पू. मुनिराजश्रीजिनचन्द्रवि. म.सा. के विनेय
आ. विजय मुनिचन्द्रसूरि

• • •

સંઘએકતા સંયોજક શાસનધુરીણ
પ.પૂ.આ.ભ.શ્રીૐકારસૂરીશ્વરજી મહારાજ

જન્મ અને શૈશવ : શંખેશ્વર મહાતીર્થની પશ્ચિમ દિશામાં, કચ્છના રણને અડીને આવેલ ઝીંઝુવાડા નગર.

સેંકડો વર્ષ પ્રાચીન ગૌરવવંતા ઇતિહાસનું સાક્ષી બનેલ ઝીંઝુવાડા અત્યારે પણ પ્રાચીન સ્થાપત્યોથી રમણીય ગામ છે. કાળની થપાટો ખાઇને જીર્ણ થયેલ ગામ ફરતો વીંટળાયેલો પથ્થરોનો કિલ્લો અને કળાપૂર્ણ પ્રતોલિકાઓથી યુક્ત સિંહદ્વાર દર્શકોને ચૌલુક્યોના ગૌરવપૂર્ણ શાસનકાળ સુધી લઇ જાય છે. તળાવના ઘાટ પાકા બાંધેલા છે. ગામથી દૂર ઝીલાદન સરોવર, ગૌમુખીગંગા આદિ પાંચ જળસ્રોતો છે, જે પાંચ સરોવરના નામે ઓળખાય છે.

તે સમયે જૈનોના ૭૦ ઘરો હતા અને ગામની વસ્તી સાત હજારની હતી, શાંતિનાથ દાદાનું ભવ્ય જિનાલય ઉપર નીચે ત્રણ ત્રણ ગર્ભગૃહ ઉપરાંત, ઉપાશ્રય, પાઠશાળા, જ્ઞાનભંડાર, આયંબિલશાળા આદિ ધર્મસ્થાનોથી સુશોભિત નગર હતું.

વિ.સં. ૧૯૭૯ના આસો સુદ તેરસના મંગળમય દિવસે ગુરુદેવોના સાન્નિધ્યમાં ઉપધાન તપની નાણ મંડાઇને આરાધનાનો મંગળમય પ્રારંભ થયો. અને આવા મંગળમય દિવસે સમી સાંજે આજ ગામના રહેવાસી શ્રેષ્ઠીવર્ય શ્રી ઇશ્વરલાલના ધર્મપત્ની કંકુબહેનની કુક્ષીએ પુત્રરત્નનો જન્મ થયો. લોકોએ બાળકને 'ઉપધાનિયા' એવા નામથી બોલાવવા લાગ્યા. ચીનુ એવું નામકરણ પછી કરવામાં આવ્યું. ગોરો અને હસમુખો ચહેરો લોકોને ન બોલાવવો હોય તો પણ પરાણે બોલાવવો ગમે તેવો એ લાગતો હતો. જ્યારે પહેલી વખત ભવતારક શાંતિનાથ દાદાના દર્શન કરાવી પૂજ્યપાદ ગુરુદેવ પાસે લઇ જવાયો ત્યારે તેઓએ પણ ઉપધાનિયાને મસ્તકે વાસક્ષેપ ઠવી પરંપરાગત 'નિત્થારગ પારગા હોહ !' નો મંગળ

આશીર્વાદ ઉચ્ચારવાપૂર્વક કહ્યું. ઉપધાનની નાણના દિવસે અવતરનાર આ બાળક દીક્ષાની નાણ મંડાવશે. ચીનુ મોટો થતો જાય છે. શાળાના અને પાઠશાળાના અભ્યાસમાં એ મોખરે રહેતો હતો.

એક વખતની વાત : ચીનુની ઉંમર તે વખતે સાડા સાત વર્ષની. ભાઇબંધો સાથે તળાવે નહાવા ગયા. ભાઇ સાહેબ કિનારે બેઠા છે. તરતા આવડે નહીં પણ હજારોને ભવિષ્યમાં તારનાર આ માણસ કિનારે આખરે ચુપ્પ થઈ બેસી કેમ શકે ?

પગથિયે પગથિયે થોડુંક ઉતરવા વિચાર્યું, ઉતરવા જતા પગ લપસી ગયો. સામે અગાધ જળરાશિ અને તરવાનો કક્કો આવડે નહીં. એ ક્ષણોમાં આ ભવવૈરાગી આત્મા શું વિચારતો હશે ? પાછળથી તેમણે કહ્યું હતું તેમ એ ક્ષણોમાં એક જ વિચાર ઝબકેલો કે મારે તો દીક્ષા લેવાની છે. હવે શું થશે ? ને ત્યાં જ પાણીમાં તરતા એક છોકરાનો પગ ચીનુના હાથમાં આવી જાય છે પણ પેલો છોકરોય શિખાઉ છે, એ પોતાનો પગ છોડાવવા મથે છે, ચીનુને ભાસ થાય છે કે, આમ તો કદાચ બેઉ ડૂબશું, પણ ના એ બરાબર નથી શા માટે બીજાનો જાન જોખમમાં મૂકવો ? પોતાનું જે થવાનું હોય તે થાય અને તેણે પગ છોડી દીધો, મૃત્યુની નજીકની ક્ષણોની આ વિચારધારા જન્માન્તરીય સાધના વિના કેમ સ્ફૂરે ?

પરમાત્માનું નામ લઇને હવે ચીનુકુમાર પોતાના પગને આમથી તેમ હિલોળે છે. ને આશ્ચર્ય ! પગ પગથિયે છબે છે, પગતળે પગથિયું આવતા જ પગથિયે પગથિયે એ બહાર આવી ગયો.

આ ઘટનાએ ભીતરમાં મોટી હલચલ મચાવી. કુમળા હૃદયમાં એક વાત નક્કર થઇ ગઇ કે દીક્ષા લેવા માટે જ નવું જીવન પામ્યો છું. લક્ષ્ય એકદમ સ્પષ્ટ બની ગયું.

પૂજ્યપાદ આચાર્ય ભગવંત શ્રીમદ્‌વિજય ભદ્રસૂરીશ્વરજી મહારાજા સાથે ઇશ્વરભાઇના સસરા મુનિ લાભવિજયજી અને સાળા મુનિ સંજમવિજયજી મ.સા.એ દીક્ષા લીધેલી. પૂજ્ય આચાર્ય ભગવંત ઝીંઝુવાડા પધાર્યા. એમના સત્સંગે ઇશ્વરભાઇના હૈયામાં વૈરાગ્યભાવ દઢ થવા માંડ્યો. નાનકડો ચીનુ કહે હું પણ પિતાજીની સાથે દીક્ષા લેવાનો.

વિ.સં. ૧૯૯૦ના મહા સુદ દસમના દિવસે ઝીંઝુવાડાની પાવન ધરતી પર પિતા પુત્રની આ બેલડીએ પરમ ગુરુદેવ શ્રીમદ્‌ વિજયભદ્રસૂરીશ્વરજી મ.સા.ના ચરણોમાં જીવન સમર્પિત કર્યું અને ત્યારથી આ પરિવારમાંથી દીક્ષાનો પ્રવાહ ચાલ્યો.

પિતા ઇશ્વરલાલભાઇનું નૂતન નામ **મુનિશ્રી વિલાસવિજયજી** અને ચીનુકુમારનું નામ **મુનિશ્રી ૐકારવિજયજી** પાડવામાં આવ્યું. જ્યોતિષ શાસ્ત્રોના અધ્યેતાઓને નવાઇ થઇ કે

મીન રાશિમાંથી નામ મેષ રાશિમાં શી રીતે પહોંચ્યું ? બન્યું એવું કે એ વખતે વ્યાકરણ, સાહિત્ય, જ્યોતિષ શાસ્ત્રના નિષ્ણાત પં. વર્ષાનન્દજી પૂજ્યશ્રીની સાથે હતા. પંડિતજી એ જ આ નામાભિધાન સૂચવેલું. એમનો અભિમત એ હતો કે દીક્ષા એ નવો જન્મ છે, એથી એ સમયની લગ્નકુંડળીને આધારે નવું નામ પાડવું જોઇએ. પૂજ્યશ્રીએ એ અભિમતને સ્વીકારી લીધો અને ચીનુકુમાર બન્યા ૐકારવિજય.

દીક્ષા પછીના થોડા સમયમાં જ દાદા ગુરુદેવની આંખો ઓપરેશનમાં ફેઇલ થઇ ગઇ, શિષ્યોની ઉદ્વિગ્નતાનો પાર ન રહ્યો. એક આંખ ઝામરમાં ગઇ, બીજી મોતિયાના ઓપરેશનમાં ફેઇલ થઇ ગઇ. છતાં પૂજ્યશ્રી પ્રસન્ન હતા. હસતાં હસતાં શિષ્યોને કહ્યું કે - ચર્મચક્ષુ ગઇ પરંતુ આંતરચક્ષુ તો ખુલી જ છે ને ! બાળમુનિશ્રી ૐકારવિજયજી દાદા ગુરુજીની શારીરિક પીડાના કારણે ઘૃણા જ વ્યથિત હતા. ગુરુદેવે તેમને આશ્વાસન આપતા કહ્યું : જ્ઞાનયોગ પૂર્ણ થયો ધ્યાનયોગ શરૂ થયો, આવી ઘટનાઓનો વિષાદ ન હોય. અને ખરેખર પૂજ્યશ્રીએ જપયજ્ઞ શરૂ કરી દીધો. સવારે પાંચ વાગ્યાથી શરૂ થતી જાપ રૂપી અન્તરયાત્રા સાથે બાળમુનિશ્રીની જ્ઞાનયાત્રા પણ ચાલવા લાગી. આ યાત્રા રાત્રે દસ વાગ્યા સુધી ચાલતી હતી. ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રની પંક્તિને પોતે જીવનમાં ઉતારી गुरुण अंतिए सिया. બાલમુનિ સતત ગુરુદેવની નજીક રહેતા.

પ્રવચનધારા : દીક્ષા પછી બીજા વર્ષે ગુરુદેવે બાળમુનિને નજીક બોલાવી કહ્યું : ૐકાર ! આવતીકાલે તારે પ્રવચન આપવાનું છે. હંમેશા ગુરુઆજ્ઞા તહત્તિ કરનાર બાલમુનિ વિચારમાં પડી ગયા. મારાથી વ્યાખ્યાન કઇ રીતે અપાશે, મારી પાસે જ્ઞાન ક્યું ? અને ગુરુદેવને ના પણ કેમ કહેવાય ? 'સાહેબજી, હું કઇ રીતે વ્યાખ્યાન વાંચીશ ?' સાહેબે કહ્યું જેમ મારી પાસે ગૌતમપૃચ્છા વાંચે છે તેમ બસ તારે એ રીતે વ્યાખ્યાન વાંચવાનું છે, અને તે દિવસથી થરૂ થયેલી પ્રવચનધારા જે વિ.સં. ૨૦૪૪ના વૈશાખ સુદ ૧ સુધી ચાલુ રહી. લગભગ આ પ્રવચનધારા અડધી સદી સુધી ચાલી.

એ કલ્પસૂત્ર વાંચન : બાળમુનિ ૐકારવિજય મહારાજે વિ.સં. ૧૯૯૪ની સાલમાં ઝીંઝુવાડાના ચાતુર્માસમાં કલ્પસૂત્ર સુબોધિકા વાંચેલ. તેમની વાંચન-છટા અને અર્થ કરવાની નિપુણતા જોઇ શ્રોતાઓ આશ્ચર્ય વિભોર બની ગયેલા. એ ચોમાસું ઉતર્યે વિહારમાં પાટણમાં વિદ્વદ્વર્ય પં.શ્રી કાંતિવિજયજી મ.સા. મળેલા. વાતવાતમાં પંન્યાસજી મહારાજે પૂછ્યું, તમે કલ્પસૂત્ર ખિમશાહી જ વાંચેલું ને ? પૂજ્યશ્રી તે વખતે ચૌદ વર્ષની વયના. બાળમુનિ કહે ના-ના મેં તો સુબોધિકા વૃત્તિ વાંચેલી. 'અરે પણ તમને એ કેવી રીતે ફાવે ?' 'કેમ ન ફાવે' 'સામો પ્રશ્ન ને લાગલું જ આમંત્રણ' કલ્પસૂત્ર સુબોધિકાનો અઘરામાં અઘરો ભાગ આપો

અને જુઓ કેવું કડકડાટ વાંચુ છું. ભંડારમાંથી પ્રત મંગાવવામાં આવી. પંન્યાસજીએ સ્વપ્નવર્ણનનો સમાસપ્રચૂર ભાગ આપ્યો. આ બાજુ પ્રતનું એ પૃષ્ઠ હાથમાં આવતાં જ જાહ્નવીના પ્રવાહની પેઠે સૂત્રનો અને ટીકા પાઠ અસ્ખલિત ઉચ્ચાર શરૂ થયો. એ સાથે જે મીઠી ગુજરાતીમાં અનુવાદ. પંન્યાસજી મહારાજ પ્રજ્ઞાનો આ ઉન્મેષ જોઇ પ્રસન્ન થઇ ગયા.

તીવ્ર ક્ષયોપશમ : બાળ મુનિરાજ માટે બિહારથી પંડિત બોલાવ્યા. અભ્યાસ અને અધ્યાપન શરૂ થયું.

બાળમુનિનો ક્ષયોપશમ-ગ્રાસ્પિંગ પાવર એટલો તીવ્ર કે છ માસનો કોર્સ અઢી માસમાં પૂર્ણ કર્યો, અને વિહાર હોવાથી પંડિતજીને બોલાવ્યા સાહેબજીએ પૂછ્યું, पंडितजी आपका विद्यार्थी कैसा है ? ત્યારે સંઘના અગ્રણીઓ હાજર હતા. પંડિતજીએ કહ્યું : महाराज ये बाल मुनि तीव्र मेधावी है । लेकिन हमे गेरलाभ हुआ है । छ मास का कोर्स ढाई मास में पूरा कर दिया । इसलिए हमे ढाई मास का हि तनखा मिलेंगा । આ વાર્તાલાપ સાંભળી સંઘવાળાએ છ માસનો પગાર આપી પ્રસન્ન કર્યા.

અધ્યયન નિષ્ઠા : પંડિતવર્ય વર્ષાનંદજી અને છોટાલાલજી સંસ્કૃત ભાષાના વિદ્વાન પંડિતો પૂજ્યશ્રીને ભણાવે. એક વખત પોતે એકલા ભણનાર. પાંચથી છ કલાક પાઠ-લે-આપે. આ જોઇ બંને પંડિતો ખુશ થઇ ગયા. રાત્રે પણ દસે વિભક્તિના દસગણના રૂપોનો સ્વાધ્યાય આદિ કરતા, દિવસે નવો પાઠ લેવો અને રાત્રે પુનરાવર્તન કરવું. આ રીતે અભ્યાસ કરતા કરતા શાસ્ત્રના પારગામી થયા.

ગુરુવિરહ : પૂ. વિલાસવિજય મહારાજે છ વર્ષ સંયમ જીવનને પાળ્યું. જીવનમાં ઘણી તપશ્ચર્યા કરી. સુદીર્ઘ એવા ૩૧-૪૫-૬૦-૭૦ જેવા ઉપવાસો કરી ૧૯૯૬ના આસો સુદ-૭ના સમી મુકામે મહાપ્રયાણ કર્યું. બાળમુનિશ્રી ૐકારવિજયજી પૂ. દાદા ગુરુની છત્રછાયામાં રહી અધ્યયન આદિમાં આગળ વધ્યા.

અજોડ પ્રભાવકતા : પૂજ્યશ્રીનું તીવ્ર મેધાવી વ્યક્તિત્વ, અત્યંત પ્રભાવશાળી વક્તૃત્વ, અત્યંત ધારદાર મુદ્દાસર પોઇન્ટ ટુ પોઇન્ટ પ્રવચન આપતા હતા. તે સમયે જૂનાડીસાના મુમુક્ષુ સેવંતીભાઇ પૂજ્યશ્રીની પાસે અભ્યાસ કરતા હતા. તેઓ પૂજ્યશ્રીના શિષ્ય મુનિ જયાનંદવિજયજી તરીકે પ્રસિદ્ધ થયા અને દાદા ગુરુદેવને યોગ્યતા દેખાતા મુનિ ૐકારવિજયજીને ૨૦૦૫માં યોગોદ્વહન કરાવવા પૂર્વક રાધનપુરમાં ૨૦૦૬ના માગસર સુદ-૫ના ગણી અને ૬ના દિવસે પંન્યાસ પદે વિભૂષિત કર્યા. મહેસાણામાં ૨૦૦૯નું ચાતુર્માસ કરી ૨૦૧૦માં ઉપધાન તપની આરાધના કરાવી. અને ત્યાં જ ૨૦૧૦ના મહા

સુદ-૧ના ઉપધાન તપના માળારોપણ પ્રસંગે ૧૦ હજારની જનમેદની વચ્ચે પૂજ્યશ્રીને પંચપરમેષ્ઠિના તૃતીય પદે આરુઢ કરાયા.

ગુરુકૃપા અને વિદ્વત્તાના કારણે પૂજ્યશ્રીની પ્રભાવકતા ખીલી ઉઠી, લોકો પણ પોતાના મહોત્સવ સંઘના અનુષ્ઠાનો પૂજ્યશ્રીની નિશ્રામાં કરાવવાં તેવી ઇચ્છા દર્શાવતા હતા. છ'રિપાલક સંઘ, પ્રતિષ્ઠા, અંજનશલાકા આદિ અનેક અનુષ્ઠાનો પૂજ્યશ્રીની નિશ્રામાં સંપન્ન થયા.

પથ્ય આહાર : પૂજ્યશ્રીનો આહાર પરિમિત. આરામ ઓછો. સતત સક્રિય. કશુંક કરતા જ હોય. રોગને દવાથી મટાડવા કરતાં પથ્ય આહારથી મટાડવાનો એમનો આગ્રહ હતો. રોગનો મૂળગામી ઉપચાર તેઓ કરતાં. એસીડિટીની તકલીફ થઈ ત્યારથી મરચું સંપૂર્ણ બંધ કરી દીધું. છેલ્લા ત્રીસથી વધુ વર્ષ તેમણે મરચાવાળી બધી વસ્તુ બંધ હતી. ડાયાબિટીસની અસર જણાઈ ત્યારથી ગોળ વિગઈ મૂળથી બંધ કરી દીધી. કેવો અદ્‌ભૂત સ્વાદ-વિજય !

'આંખે પાણી, દાંતે લૂણ, જમતા રાખે ખાલી ખૂણ, ડાબું પડખું દાબી સૂવે તેની નાડ વૈદ્ય શું જુવે ?' જેવા આરોગ્ય શાસ્ત્રના દુહા ઘણીવાર તેઓશ્રી કહેતા.

સૌથી મોટો શિક્ષક : પૂજ્યશ્રી જ્યારે પોતાના અધ્યાપકો વર્ષાનન્દજી અને છોટાલાલજી આદિની અસીમ વિદ્વત્તાની વાત કહેતા ત્યારે એક જિજ્ઞાસુએ પૂછેલું. સૌથી શ્રેષ્ઠ સિક્ષક તરીકે આપ કોને ગણો છો ? પૂજ્યશ્રીએ હસીને કહ્યું, સૌથી મોટો શિક્ષક છે, ગુરુદેવ. તેમની કૃપાએ જ મને વિદ્યાજગતમાં પ્રવેશ કરાવ્યો છે. ગમે તેવો અઘરો ગ્રંથ હોય. પૂજ્યશ્રી કહે કે વાંચ, એટલે હું વાંચતો અને મારા આશ્ચર્ય વચ્ચે મને ઊંચી કક્ષાનો ગ્રંથ પણ ગુરુકૃપાથી એકદમ સરળ અને સુગમ થઈ જતો. પછી હળવેકથી તેઓ ઉમેરતા. ભવસાગરને પેલે પાર લઈ જતી ગુરુકૃપા વિદ્યાસમુદ્રને પેલે પાર લઈ જાય એમાં 'શું' આશ્ચર્ય ?

અજોડ કુનેહ દૃષ્ટિ : ચૌદશનો દિવસ પક્ખી પ્રતિક્રમણ પૂર્ણ થયું. એક મુનિરાજ પૂજ્યશ્રીની પાસે આવ્યા. તેઓ અન્ય સમુદાયના હતા. તેઓએ કહ્યું. સાહેબજી આપે 'પક્ખીસૂત્ર કઢું ?' નો આદેશ માગ્યો, પણ અમારે ત્યાં વડીલ ગુરુજી 'પક્ખીસૂત્ર સંભલેમિ'નો આદેશ માગે છે, અને પક્ખી સૂત્ર બોલનારને 'કઢું'નો આદેશ માગે છે, પૂજ્યશ્રી કહે, આ સમાચારીની બાબત છે, જુદા જુદા સમુદાયોમાં આવી બાબતોમાં ભિન્ન પ્રણાલિકાઓ જોવા મળે છે, અમારે ત્યાં આ પ્રાણાલિકા છે, તમારે ત્યાં તેવી હોય. વડીલોની પ્રણાલિકા પ્રમાણે વર્તવું. ઉત્તર બહુ સુંદર હતો. પણ મુનિરાજ આગળ વધ્યા. તેઓ કહે,

'બેઉ પ્રણાલિકાઓ ખરી. પણ એમાં અમારી પ્રણાલિકા જ તર્કસંગત કહેવાયને ? જેને બોલવું હોય તે કહું કહે, સાંભળવું હોય તે 'સંભલેમિ' કહે,' બધાના કાન સરવા થયા. પૂજ્યશ્રી શો જવાબ આપશે ? મંદ મંદ સ્મિત કરતા પૂજ્યશ્રી બોલ્યા : 'આપણે રોજ દેવસિ પ્રતિક્રમણમાં 'સજ્ઝાય સંદિસાહુ' ? અને સજ્ઝાય કરું ? નો જે આદેશ મંગાય છે તેમાં સજ્ઝાય બોલનાર જુદો અને આદેશ માંગનાર જુદો એવા આદેશ માંગતા નથી.'

મુનિવરનું મન સંતુષ્ટ થયું. બીજાની વાતનું સમન્વય સ્વીકારવાની ઉદારદૃષ્ટિની સાથો સાથ પોતાની વાતને તર્ક શુદ્ધ પ્રસ્થાપિત કરવાની કુનેહ પૂજ્યશ્રીમાં હતી.

વાદ નિપુણતા : વિ. સં. ૨૦૧૪ની સાલ અમદાવાદમાં મુનિ સંમેલનની કાર્યવાહી ચાલતી હતી. પૂજ્યશ્રી સંમેલનમાં ઉપસ્થિત હતા. વિદ્યાશાળાએ પૂજ્યપાદ બાપજી મહારાજ સાહેબને વંદન કરવા પ્રતિદિન જતા. તે વખતે વિદ્યાશાળામાં પૂજ્યપાદ વ્યાખ્યાન વાચસ્પતિ આચાર્યદેવ શ્રીમદ્‌વિજય લક્ષ્મણસૂરીશ્વરજી મહારાજ બિરાજમાન હતા. એક વખત આચાર્યદેવો તિથિ ચર્ચાની વાતે વળગ્યા, સંમેલન તિથિ ચર્ચા અંગે જ હતું. લક્ષ્મણસૂરિ મહારાજ કહે, આમા તમે કેટલા ઊંડા ઉતર્યા ? પૂજ્યશ્રી કહે, ચાલો આપણે ચર્ચા કરીએ, તમે રામચંદ્રસૂરિ મહારાજ થાવ અને હું બનું સાગરજી મહારાજ. દલીલોને એ રીતે આપણે જોઈએ. વાત સ્વીકારાઈ અને સામસામી દલીલો ચાલી. લક્ષ્મણસૂરિ મહારાજે કહ્યું તમે ગજબની દલીલો કરો છો ? તમને જીતવા મુશ્કેલ છે. પૂજ્યશ્રી એ તરત બાજી પલટી. લ્યો ત્યારે એમ કરો. હવે આપ સાગરજી મહારાજ થાવ અને હું રામચંદ્રસૂરિ મહારાજ બનું. પાછી દલીલ બાજી ચાલી. ને એમાં પણ ધારદાર અકાટ્ય દલીલો. લક્ષ્મણ સૂરીશ્વરજી મહારાજ આશ્ચર્યચકિત થઈ ગયા. કમાલ છે તમારી શક્તિને ! આ હતી પૂજ્યશ્રીની વાદ નિપુણતા.-

ધારણા શક્તિ : વિ. સં. ૨૦૧૪ની સાલ અમદાવાદમાં મુનિ સંમેલનની કાર્યવાહી ચાલતી હતી. મુખ્ય આચાર્ય ભગવંતો પધારી ચૂક્યા હતા. અમદાવાદનો જ નહીં આખા ભારતનો જૈન સમાજ આ સંમેલન સામે મીટ માંડી બેઠો હતો. પૂજ્યપાદ બાપજી મહારાજ સાહેબ (પૂ. સંઘસ્થવિર આ.ભ. સિદ્ધિસૂરીશ્વરજી મહારાજ) જૈફવયના કારણે સંમેલનના સ્થળે પધારી શકતા ન હતા, પૂજ્યશ્રી રોજના સંમેલનનો અહેવાલ વિગતવાર પૂજ્ય બાપજી મહારાજ સાહેબને સંભળાવતા. પૂજ્યપાદ બાપજી મહારાજ સાહેબ પણ પૂજ્યશ્રીના કહેવાની પદ્ધતિથી બહુ પ્રસન્ન થઈ ગયેલા. એક બે વખત પૂજ્યશ્રી થોડા મોડા પડેલા અને બીજા મુનિરાજને થયું કે હું વાત કરું પણ બાપજી મહારાજ સાહેબે ના પાડી દીધી. હમણાં 'ૐકાર' આવશે અને તે વિગતે બધી વાત કરશે. તમે બધા અધૂરી અધૂરી વાત કરો છો.

'ખરેખર ! પૂજ્યશ્રીની ધારણા શક્તિ અજોડ હતી. જે ક્રમમાં સંમેલનમાં ચર્ચા ચાલતી હતી તે જ ક્રમમાં પૂજ્યશ્રી બાપજી મહારાજને સંભળાવતા હતા, કેવી અદ્ભૂત શક્તિ ?

વાવ પથક : વિ. સં. ૨૦૨૩માં વાવસંઘ રાધનપુર પૂજ્યશ્રીને વિનંતી માટે આવેલ. શાસન પ્રભાવનાનું વિશિષ્ટ કારણ જાણી આ. ભ. શ્રી વાવ પધાર્યા. તે સમયે આચાર્ય તુલસીનું પણ વાવમાં આગમન થયેલું અને બંને આચાર્યનું મિલન પાઠશાળાના હોલમાં યોજાયેલ અને જિનશાસનને લગતા વિવિધ પ્રશ્નોની ચર્ચા કરેલ. પછી વાવ સંઘે ચાર્તુમાસ માટે વિનંતી કરી. જુનાડીસા સંઘને રજા આપેલ. પરંતુ વાવ સંઘનો આગ્રહ જોઈ જુનાડીસા સંઘની સંમતિ લઈ ચોમાસું વાવ કર્યું. અને ચાર્તુમાસ દરમિયાન અનેક ખાતા જોયા અને દરેકના બાકી નીકળતા પૈસા ભરવાનું સુચન કર્યું. અને સંઘને દેવામાંથી મુક્ત કર્યો. ચાતુર્માસ પછી વાવપથકના ગામડામાં રેતાળ પ્રદેશમાં વિચર્યા. માડકા, તીર્થગામ, બેણપ, વાસરડા, સુઈગામ, મોરવાડા ગરાંબડી, ભરડવા, અસારા જેલાણા આદિ અનેક ગામમાં વિહારયાત્રા દ્વારા ધર્મનો પ્રચાર કર્યો. અને લોકોના ઉત્સાહને વધાર્યો. જૈન જૈનેતર વગેરેએ નિયમો લીધા. પાંજરાપોળમાં સુંદર દાન આપ્યું. જે જે ગામમાં જૈનોની વસ્તી હતી ત્યાં ત્યાં પૂજ્યશ્રીની પ્રેરણાથી જિનાલયો બન્યા.

વિ. સં. ૨૦૨૭ પછી માડકા, ભરડવા, વાવ, તીર્થગામ આદિ ક્ષેત્રોમાં પ્રતિષ્ઠા થઈ. ૨૦૩૦માં ગોડીજીની પ્રતિષ્ઠા સાથે સાથે પૂ. આ. શ્રી ભદ્રસૂરિ મ.સા.ના જન્મ શતાબ્દી વર્ષ નિમિત્તે ૧૦૮ છોડનું ઉજમણું કરવાપૂર્વક શાનદાર પ્રતિષ્ઠા મહોત્સવ થયો.

૨૦૪૧માં અજીતનાથ દાદાનું ઉત્થાપન થયું. નૂતન જીનાલયની શરૂઆત કરાવી અને પૂજ્યશ્રીના વરદ્હસ્તે અંજનશલાકા-પ્રતિષ્ઠા કરાવવાની જે સંઘની ભાવના હતી તે પૂર્ણ ન થઈ. જૂનાડીસામાં આદીશ્વર ભગવાનના જિનાલયનું શીલાસ્થાપન થયું, પરંતુ પ્રતિષ્ઠા પૂજ્યશ્રીના હસ્તે ન થઈ શકી. તે પણ એક ભક્ત વર્ગનું સ્વપ્ન અધુરું રહ્યું.

ગરથ ગાંઠે વિદ્યાપાઠે : પૂજ્યશ્રી ઘણીવાર પોતાને અધ્યાપન કરાવનાર પંડિતોની વિદ્વત્તાની વાત કરતા. પંડિત છોટાલાલ પાણિની વ્યાકરણના અનુલોમ અને પ્રતિલોમ કડકડાટ બોલી જતા. અનુલોમ એટલે પહેલેથી શરૂ કરીને છેલ્લે સુધી અને પ્રતિલોમ એટલે છેલ્લા સૂત્રોથી ઉંધા ક્રમમાં.

આવા અધ્યાપકો પાસે સિદ્ધહેમ વ્યાકરણ ભણેલા પૂજ્યશ્રીની સ્મરણ શક્તિ અપ્રતીમ હતી. પૂજ્યશ્રીના અંતેવાસી વિદ્વદ્વર્ય મુનિશ્રીમુનિચંદ્રવિજયજી મહારાજે તેઓશ્રીની અસાધારણ સ્મૃતિની વાત કહેલી. એ મને યાદ છે. વર્તમાનાચાર્ય શાસ્ત્રસંશોધક

શ્રી મુનિચંદ્રસૂરિ મહારાજના શબ્દોમાં ''વિ. સં. ૨૦૨૪ની સાલ. મારી દીક્ષાનું બીજું વર્ષ પૂજ્યશ્રી મને વ્યાકરણ ભણાવતા. પૂજ્યશ્રી 'સિદ્ધહેમ વ્યાકરણ ભણ્યાને ૩૦ વર્ષનો ગાળો થઈ ગયેલો. છતાં હું આશ્ચર્યચકિત થઈને રહેતો કે બધા સૂત્રો લગભગ એમને મોઢે. શબ્દસિદ્ધિ કે રૂપસિદ્ધિ વખતે આગળ પાછળના જે સૂત્રો લાગતા હોય તે બધા પૂજ્યશ્રી ફટાફટ બોલતા. અને હું તો આમથી તેમ ને તેમથી આમ પાના ફેરવ્યે રાખું. પણ એ પહેલાં તો પૂજ્યશ્રી ધડાધડ બધા સૂત્રો બોલી દે. 'હું પૂછતો આપને આટલાં બધા લાંબા સમયગાળા પછી પણ આટલું બધું શી રીતે યાદ રહે છે ?

પૂજ્યશ્રી કહેતા : વિદ્યા પાઠે જ શોભે ભાઈ ! આપણે ત્યાં કહેવત છે કે 'ગરથ ગાંઠે વિદ્યા પાઠે.' કપડાંના છેડે ગાંઠ મારી. પૈસા રાખવા એટલે ગરથ ગાંઠે. વિદ્યા પાઠે. વિદ્યા કંઠસ્થ હોવી જોઈએ.

જેટલા સ્તવનો અને સજ્ઝાયો પૂજ્યશ્રીને આવડતા હતા તે મહિનાઓ સુધી બોલવાનો પ્રસંગ ન આવ્યો હોય તોય ગમે ત્યારે તેઓ બોલતા. ત્યારે એક પણ ભૂલ ન હોય.

ભીલડીયાજી તીર્થનો પુનરુદ્ધાર : તીર્થાધિપતિ ભીલડીયાજી પાર્શ્વનાથજી ભગવાનનું જિનાલય જીર્ણશીર્ણ હાલતમાં હતું અને તીર્થાધિપતિ શ્રી ભારવટની નીચે બીરાજમાન હતા. દાદા ગુરુદેવશ્રીએ સંકલ્પ કર્યો તીર્થના પુનુરુદ્ધારનો અને તીર્થાધિપતિને મૂળનાયકના સ્થાને બિરાજિત કરવાનો.

ભીલડીયાજી તીર્થના વ્યવસ્થાપકશ્રી જૂનાડીસા સંઘ અને તીર્થ કમિટીએ પૂજ્યશ્રીની વાતને વધાવી લીધી. નવા દહેરાસરની વાત નક્કી થઈ. પ્રશ્ન આવ્યો ભગવાનના ઉત્થાપનનો. લોકો જાત-જાતની ચર્ચા કરવા લાગ્યા. કોઈ કહે : પહેલા અમુક સંઘવાળા ભાઈઓ ભગવાનને લેવા આવેલા અને ત્યારે ભમરા છૂટેલા. કોઈ કહે : બીજા એક આવા પ્રસંગે નાગ-નાગણીનું જોડકું નીકળેલું. પછી તેઓ ભવિષ્યવાણી કરતા. આ વખતે પણ આવું કંઈક થશે. પૂજ્યશ્રીની તીવ્ર મેધા આવા પ્રસંગે સરસ સમાધાન શોધી આપતી. પૂજ્યશ્રી આ બધી વાતો સાંભળ્યા પછી ટીપ્પણી કરતાં એ સમય અને આ સમય જુદો છે. ત્યારે લોકો પ્રભુને પોતાને ત્યાં લઈ જવા આવેલા જે અધિષ્ટાયક દેવને મંજૂર ન હોય અને એ કારણે આવી ઘટનાઓ ઘટી હોય. અત્યારે આપણે પ્રભુજીને ઉત્થાપિત કરી બીજે ક્યાંય નથી લઈ જવાના અહીં જ નવીન જિનાલયમાં પરમાત્માને આપણે બિરાજમાન કરવાના છે. પછી તો એવો ભાવોલ્લાસ ઉમટ્યો કે પ્રભુની એ ચલ પ્રતિષ્ઠાના ચડાવા બોલાયેલા. ભવ્ય દેવવિમાન જેવા જિનાલયમાં તીર્થાધિપતિ ભીલડીયાજી દાદાની પ્રતિષ્ઠા વિ. માં ૨૦૨૭ જેઠ સુદ ૮ના દાદા ગુરુદેવ આચાર્ય ભગવંત ભદ્રસૂરીશ્વરજી મહારાજ, પૂજ્યપાદ આચાર્ય

ભગવંત શ્રીમદ્ વિજય ૐકારસૂરીશ્વરજી મહારાજ અને પૂજ્ય આચાર્ય ભગવંત શ્રીમદ્ સુબોધસાગરસૂરીશ્વરજી મહારાજની પ્રભાવક નિશ્રામાં ખૂબ ઉત્સાહભેર થયેલી.

નિર્ભિક વૃત્તિ : વાવની બાજુમાં આવેલા માડકામાં બાજુ બાજુમાં બે જિનાલય. તેમાં શ્રી ચિંતામણી પાર્શ્વનાથ અને શાંતિનાથ ભગવાન મૂળનાયક હતા. તેમાં શ્રી શાંતિનાથ ભગવાનનું જિનાલય જીર્ણ થયેલ હતું અને પૂજ્ય શ્રી માડકા પધાર્યા. શાંતિનાથ પ્રભુનું જિનાલય જીર્ણ થયેલ જોઈ પૂજ્યપાદશ્રીએ જીર્ણોદ્ધાર માટે પ્રેરણા કરી. સંઘના આગેવાનો કહે, સાહેબજી જિર્ણોદ્ધારનો વિચાર તો ક્યારનોય છે, પણ મંડપમાં રંગા બાપજી બિરાજમાન છે. હવે એમનું ઉત્થાપન થાય નહીં તો મંદિર નવેસર કેમ બનાવવું ? ઉત્થાપન માટે એકવાર પ્રયત્ન પણ કરેલો. સોમપુરાએ ટાંકણું હાથમાં લીધું ને તે માંદો પડ્યો. રાત્રે તે મરી ગયો. આ પછી બાપજીને ઉત્થાપન કરવાનો કોઈએ પણ વિચાર કર્યો નથી. પ્રયત્ન કરવાવાળાને તકલીફો થાય છે. પૂજ્યશ્રી કહે છે, જીર્ણોદ્ધાર માટે તીર્થંકર પ્રભુની પ્રતિમાનું ઉત્થાપન થઈ શકે તો અન્ય દેવ-દેવીઓનું કેમ ન થાય ?

પૂજ્યપાદશ્રીના પ્રભાવથી જાણકાર આગેવાનોએ કહ્યું, સાહેબજી આપને ઉચિત લાગે તેમ કરો. પૂજ્યશ્રીએ કહ્યું : આપણે મંત્રોચ્ચારો કરી વિધિપૂર્વક ઉત્થાપન કરવું એટલે વ્યવસ્થિત કામ થઈ જશે. નિશ્ચિત કરેલો દિવસ આવી ગયો.

ઝીંઝુવાડાનાં બે મુમુક્ષુઓ રાજેન્દ્ર (હાલ આ. રાજપૂન્યસૂરિ મ.સા.) અને ભરત (હાલ આ. ભાગ્યેશસૂરિ મ.સા.) પૂજ્યશ્રીની સાથે હતાં. આ મુમુક્ષુઓ સાથે પૂજ્યશ્રી દહેરાસરમાં પધાર્યા. મુમુક્ષુઓના હાથે ઉત્થાપન કરાવી રંગા બાપજીને મંદિરના ચોકમાં આરસની દેરીમાં પધરાવી દીધા. પછી જિનાલયનું કાર્ય શરૂ થયું અને પરમતારક શાંતિનાથ પ્રભુની પ્રતિષ્ઠા ભવ્ય મહોત્સવ પૂર્વક થઈ.

ગુરુવિરહ જુનાડીસા નગર : વિ. સં. ૨૦૩૩ના જેઠ મહિનામાં પાંથાવાડા મહોત્સવના છેલ્લા દિવસે પૂજ્યશ્રી દેરાસરમાં સિદ્ધચક્ર પૂજનમાં હતા અને સમાચાર આવ્યા. દાદા ગુરુદેવ બીમાર છે. સાંજે જ પૂજ્યશ્રીએ વિહાર કર્યો અને સવારે રસ્તામાં સમાચાર મળ્યા કે ગુરુદેવ ચાલ્યા ગયા. આથી વિરહની પ્રબળ વેદના થઈ. ભગવાન મહાવીર માટે ગૌતમસ્વામીની જેમ. ગુરુ શિષ્યનું અંતિમ મિલન ન થઈ શક્યું. પોતાના ભવોદધિતારક ગુરુદેવના અસીમ ઉપકારને તેઓ સતત યાદ કરતા. ભીલડીયાજી તીર્થમાં નૂતન ધર્મશાળા માટે પ્રેરણા કરી અને ગુરુભક્તોએ 'વિજયભદ્ર ચેરિટેબલ ટ્રસ્ટ' દ્વારા 'પાર્શ્વ ભક્તિનગર' સંકુલ આકાર કર્યું. માડકા, જૂનાડીસા, અને રાધનપુરમાં પૂ. આ. ભ. શ્રી ભદ્રસૂરિ મ.સા.ના ગુરુમંદિરો પૂજ્યશ્રીની પ્રેરણાથી બન્યા. રાધનપુર ચાર રસ્તા, ભદ્રસાધના

પ્રતિષ્ઠાન ટ્રસ્ટ દ્વારા શ્રી પાર્શ્વનાથ ભગવાનનું ભવ્ય જિનાલય, ઉપાશ્રય, ધર્મશાળા આદિ યુક્ત શ્રી પાર્શ્વભદ્રધામ સંકુલ બન્યું.

સંમેલનની સફળતા : પ.પૂ.આ.ભ.શ્રી ભદ્રંકરસૂરિ મ.સા. તે સમયના દરેક ગચ્છના વડીલ આચાર્ય ભગવંતોને પોસ્ટ કાર્ડ લખીને સંમેલન સંબંધી જાણ કરી. પધારવા આમંત્રણ મોકલેલું. દરેક આચાર્ય ભગવંતોએ સહમતી દર્શાવેલ.

પૂજ્યશ્રીએ વિ.સં. ૨૦૪૨ થી આની કવાયત શરૂ કરેલ. વિ. સં. ૨૦૪૪ના ચૈત્ર સુદ ૧૦ના દિવસે રાજનગરના આંગણે અનેક પદસ્થ મુનિ ભગવંતોની નિશ્રામાં શ્રમણ સંમેલનનો પ્રારંભ થયો. ઘણી રીતે આ સંમેલન અપૂર્વ હતું. અરસપરસના ભેદભાવોને દૂર કરી મહાન આચાર્યો એક મંચ પર ભેગા થયા સંઘના યોગ-ક્ષેમની તેઓએ વિચારણા કરી અને વડીલોએ પૂજ્યશ્રીને સંમેલનનું સંચાલન કરવાનું સોંપ્યું.

નવકારવાળીના પારાની જેમ સહુને એક તાંતણે બાંધવાનું કામ સંમેલનના સૂત્રધાર પૂજ્યશ્રીની તીવ્ર મેધા દ્વારા થયું. શાસન અને સંઘને સંગઠિત બનાવવાના ભગીરથ કાર્યની શરૂઆત કરી.

જેમ જેમ સંમેલનની કાર્યવાહી થતી ગઈ તેમ તેમ સમગ્ર તપાગચ્છને એક કરવાનું વર્ષો જુનું સ્વપ્ન સાકાર થતું લાગ્યું.

પૂજ્યશ્રીએ અનેક આચાર્ય ભગવંતોને સાથે રાખીને આચાર્યના ગુણ પ્રમાણે જ આત્મીયતા, ધીરતા, ગંભીરતા, તટસ્થતા પૂર્વક સંચાલન કર્યું.

દરેકની શુભભાવના-તપશ્ચર્યા, આશીષ, શુભેચ્છાઓ દ્વારા પૂ. આ. ભ. રામસૂરિ મ. (ડહેલાવાળા)ની અધ્યક્ષતા હેઠળ દરેક પદસ્થ ભગવંતોના સાથ સહકારથી સંમેલન પરિપૂર્ણતાના આરે આવ્યું.

અનિવાર્ય સંયોગોના કારણે તપગચ્છવડીલ આ.શ્રી રામચંદ્રસૂરિ મ.સા. આવિ શકે તેમ નહતા તેમના પ્રતિનિધિ તરીકે પૂ.આ.ભ.શ્રી ભુવનભાનુસૂરિ મ.સા.ના શિષ્ય પૂ.આ.ભ.શ્રી મિત્રાનંદસૂરિ મ.સા. પણ પધારેલ.

સંમેલન પૂર્વે વિવિધ સમુદાયના સાધુ ભગવંતો અલગ અલગ લાગતા હતા તે તે સાધુ ભગવંતો આ સંમેલન પછી નજીક આવતા ગયા અને પરસ્પર ભાતૃભાવ વધતો જ રહ્યો. અને જેમ જેમ પરિચય વધતો ગયો તેમ તેમ ઉત્તરોત્તર આનંદ પણ વધતો રહ્યો.

સંમેલનમાં કોઈ પણ મહાત્મા જટિલ પ્રશ્ન પૂછે જેમકે દેવદ્રવ્ય, ગુરૂદ્રવ્યતિથિ બાબત આવા અનેક પ્રકારના પ્રશ્નોના જવાબો તો પૂજ્યશ્રી બહુજ શાંતિથી અને સમજણપૂર્વક

શાસ્ત્ર પાઠો આપવા પૂર્વક સંતોષકારક જવાબ આપતા હતા અને વાતાવરણને મધુર બનાવતા હતા.

ગચ્છના પક્ષના ભેદ ભાવ ભૂલીને એક તાંતણે બાંધવાનું ભગીરથ કાર્ય થયું આનો મોટામાં મોટો યશ પૂજ્યશ્રીના ફાળે ગયો. અને આ યશ સાંભળવાની જાણે ઇચ્છા ન હોય અહંના નિમિત્તોથી દૂર રહેવા અને અર્હં બનવા આપણા વચ્ચેથી ચાલ્યા ગયા. પાછળથી ગુણાનુવાદ સભામાં અનેક પૂજ્યપાદ આચાર્ય ભગવંતોએ કહેલું કે ચતુર્વિધ સંઘને એક કરવાનું આ મહાન કાર્ય પૂજ્યપાદ આચાર્ય ભગવંત વિજય ૐકારસૂરીશ્વરજી મહારાજની અદ્‌ભૂતકાર્ય કુશળતા વિના શક્ય નહોતું, શ્રમણ સંમેલનમાં વહેલી સવારથી મોડી રાત સુધી વ્યસ્ત રહેતા હોવા છતાં વહેલી સવારે પૂજ્યશ્રી હંમેશા પ્રસન્ન વદન સ્વસ્થ લાગતા, જરાય થાક નહીં. વૈશાખ સુદ ૧ના દિવસે તો હજારો ભાવુકોની વચ્ચે સવાકલાક સુધી ઐતિહાસિક શ્રમણસંમેલને પસાર કરેલ બાવીસ ઠરાવોની પૃષ્ઠભૂ વિગતે સમજાવી. વૈશાખ સુદ ૨ની બપોરે અઢી વાગે થોડી અસ્વસ્થતા આવી ગઈ. પૂજ્યપાદ આ. ભ. શ્રી હિમાંશુસૂરિ મ.સા. જે સંઘ એકતા નિમિત્તે સળંગ આયંબીલ કરતા હતા તેનું સહુના આગ્રહને વશ થઈ. વૈ. સુ. ૩ના પારણું કર્યું. ત્યાર બાદ દશ વાગ્યે ફરી અસ્વસ્થતા જણાતા પૂજ્યશ્રીને હોસ્પિટલમાં દાખલ કરાયા. પૂજ્યશ્રીની અસ્વસ્થતાના સમાચાર સાંભળી દૂર દૂરથી આવેલા ભક્તો પૂજ્યશ્રીના સ્વાસ્થ્યમાં થઈ રહેલ સુધારા જોઈ પ્રસન્ન અને આશ્વસ્ત બન્યા. પણ એ વખતે ક્યાં ખ્યાલ હતો કે આશા ક્ષણિક હતી.

વૈશાખ સુદ પાંચમની સવારે આચાર્ય ભગવંતો સુખશાતા પૂછવા આવ્યા ત્યારે નવવાગ્યે પૂજ્યશ્રી નવકારવાળી ગણતા હતા. સાંજે થોડાક આરામમાં હોવાથી પ્રતિક્રમણ થોડું મોડું શરૂ કરાવ્યું. પૂજ્યશ્રી સ્વસ્થતાથી પ્રતિક્રમણ કરતા હતા. અબ્ભુટ્ઠિઓ ખામ્યો. આયરિય ઉવજ્ઝાય સૂત્ર દ્વારા ક્ષમાપના કરી અને બે લોગ્ગસનો કાઉસગ્ગ પૂજ્યશ્રીએ શરૂ કર્યો. કાઉસગ્ગધ્યાનમાં જ પૂજ્યશ્રી કાળધર્મ પામ્યા. વૈ. સુ. ૫ના ગુરુવાર ૨૧-૪-૮૮ની રાત્રે ૯-૨૦ મિનિટે થયેલ તેઓ શ્રીમદ્‌ની ચિરવિદાયથી કદી ન પૂરી શકાય તેવી ખોટ સકળ સંઘને પડી. સમગ્ર તપાગચ્છ જૈન સંઘે આ સંમેલન એકતાના ગુણાનુવાદ કરી પૂજ્યશ્રીને ઓળખતા-ન ઓળખતાઓએ યાદ કર્યા.

ગુરુદેવ ચાલ્યા ગયા... : પાટ બેસી વાત્સલ્ય ધારાથી સહુને ભીંજવી દેતા ગુરુદેવના દર્શન હવે નહીં થઈ શકે, અંતસ્તલમાં જોડાયેલી એમની પાવન મૂર્તિના જ દર્શન હવે થઈ શકશે અને થશે તો ફોટાઓ ચિત્રોમાં જ તેઓશ્રીનું દર્શન.

પંકજ સોસાયટીના ઉપાશ્રયના પ્રાંગણમાં જ્યાં શ્રમણ સંમેલનના ૧૮ દિવસ પૂજ્યશ્રીની ડોળી પડી રહેતી. જે ઠેકાણે ડોળીમાંથી નીચે ઉતરી સંમેલનનું સંચાલન કરવા પંકજ ઉપાશ્રયમાં પધારતા. ત્યાં જ તેઓશ્રીની પાલખી આવી ઊભી રહી.

અગ્નિની લપેટોમાં પૂજ્યપાદશ્રીનો પાવન દેહ ભસ્મીભુત થઈ ગયો. ઉપનિષદ્‌ના ઋષિના શબ્દો વાપરીને કહીએ તો 'એકોહં બહુસ્યામ્'ની પેઠે ગુરુદેવ એક રૂપમાંથી અનેક રૂપે વિલસ્યા. (અનેક રૂપે ભક્તોના હૈયે રહેલા પૂજ્યપાદ ગુરુદેવશ્રી આજે અહીં જ, આપણી વચ્ચે જ છે.)

ગુરુદેવ ! તમે અહિં જ છો.

ગુરુભક્તોએ વિવિધ સ્થળે વીસ જેટલા 'ૐકારસૂરિ આરાધના ભવન' નિર્માણ કર્યા. કોઈ એક જ ગુરુ ભ. નામે આટલા ભવનો બન્યા નથી. અમદાવાદ, વાવ, સૂરત ગોપીપુરા, કતારગામ દરવાજા, ઝીંઝુવાડા વગેરે સ્થળે ગુરુ મંદિરો બનાવી ગુરુ ઋણમાંથી મુક્ત થવા યત્કિંચિત્ પ્રયત્ન કર્યો છે.

●●●

EDITORIAL

We are extremely happy to present Volume 2 of *Jambūdvīpaprajñapti Sūtra* and its commentary '*Prameyaratnamanjuṣā*' (*Vakṣaskāra* 4 to 7) written by *Upādhyāya Śānticandra* Gaṇī.

A detailed description of the scripture, its commentary and the commentator has been given in the first volume. Those interested should refer to that volume. Here, we would merely like to bring to notice certain anomalies pertaining to the completion of the commentary and the completion of the research work on the commentary.

The commentary '*Prameyaratnamanjuṣā*' was completed in the year V.S. 1651. The research work on the commentary was undertaken thereafter and it was completed in the year V.S. 1660. During this time, the author of the commentary, *Upādhyāyajī,* passed away. Thus, in the eulogy of the said scripture, the verses following the 25th verse have been composed by the researchers. And the completion year of the research work has been noted in verse 39.

श्रीमद्विक्रमभूपतोऽम्बंर[०]गुंण[६]क्ष्माखंण्ड[६]दाक्षार्येंणी[१]

The year of creation of the commentary has been noted as V.S. 1651 by the author himself in verse 19 of his self-written eulogy *(praśati).*

वर्षे श्री विक्रमार्काद्विधुं[१]शरें[५]शरभूवें[६]क्त्रधात्रीं[१]प्रमाणे ।

In the following scriptures, the year of creation has been mistakenly mentioned as V.S. 1660.

1. *Jinaratnakośa* (Vol. I), published by Bhandarkar Oriental

Research Institute, Pune (Page 130-1 31), 1944 AD.

2. Preface of *Uvaṅgasuttāṇi* (Part2), *Ācārya* Tulsi. Publisher : Jain Vishva Bharati, Ladnun (Page 33).

3. *Jaina sāhitya Kā Bṛhad Ītihāsa* (Part 3), Dr. Mohanlal Mehta (page 240). Publisher : Parshwanatha Vidyashram Shodha Sansthana, Varanasi.

4. *Jambūdvīpaprajñapti Sūtra*. Publisher: Aagam Prakashan, Byavar, preface page 51, 2nd edition 1994 AD.

5. *Jaina Āgama Sāhitya Manana Aur Mīmāṃsā* by Devendra *Muni* Shastri, Page 540-541.

6. Elements of Jain Geography. Editor Frank Van Den Bossche. Page 289. Publisher : Motilal Banarasidas- Delhi 2007 AD.

7. Even we have noted the year of creation as V.S. 1660 in the preface of Volume 1, which is wrong. V.S. 1651 is the year of creation.

8. *Jaina Āgama Parichaya* by Trilokchand Jain. Page 160, lst edition.

9. Bibliography of Śvetāmbara Canon by Royee Wiles. Page 135.

In the following scriptures, the year of creation has been mentioned as V.S. 1650.

1. *Jain Granthāvalī*. Publisher: *Jain Śhwetāmbar* Conference, Mumbai. Page 8. V.S. 1965

2. The Canonical Literature of the Jainas. H.R. Kapadia. Page 181. Publisher : Sharadaben Chimanbhai Educational Research Center Ahmedabad. 2000 AD.

Thus, it is requested that this mistake which has been prevalent for a long time should be rectified.

● ● ●

An introduction to manuscripts used in the compilation work

Detailed information about manuscripts is given in the preface of Volume 1. Here, we provide a brief introduction.

'पुप्रे' - This sign is used for the printed manuscript wherein Muni *Śrī* Puṇyavijayajī has noted the variant readings. Here, variant readings of the original sūtra have been noted using the symbols J1, J2 पु and क. J1 and J2 are possibly the palm leaf manuscripts 31/1 and 32/1 of Jaisalmer. Variant readings of the original *sūtra* and the commentary have been taken from पु and क. Both are paper manuscripts. No other information has been found. We have, used the code के instead of क.

V or L - This signs is used for the *Uvaṅgasuttāṇi*-Part 2 published by Jain Vishva Bharati, Ladnuṁ. The variant readings of *Jambūdvīpaprajñapti Sūtra* published therein have been identified using the following manusmipts.

अ - Palm leaf manuscript numbered 31/1 of Jinbhadrasuri Gyaan Bhandar (Jaisalmer).

ब - Palm leaf manuscript numbered 32/1 of the aforesaid library.

(A file of the photos of the aforesaid manuscripts has been obtained from Acharya Nemi Vignaan Library, Surat from the kind request of *Ācārya Śhrī,* Somacandrasūri jī.

A DVD of the aforesaid scriptures has been obtained from Jinbhadrasuri Gyaan Bhandar, Jaisalmer from the kind request of Pannyāsa Puṇḍarikaratna vijayajī, with the courtesy of President Mahendrasinh Bhansali and others.)

स - The manuscript with this nomenclature belongs to the aforesaid Jaisalmer library and is a paper manuscript of the original sūtra only.

क - This is the paper manuscript of the original scripture belonging to the Shrichand Ganeshdas Gadhaiya's library located in Sardarshahar.

ख - This is the paper manuscript of the original scripture belonging to Jain Vishva Bharati, Ladnun.

ग - This too belongs to Jain Vishva Bharati, Ladnun and is the paper manuscript of the original sūtra alongwith its commentary written in the '*tripāṭha*' style.

हीवृ - This manuscript which also includes the commentary of *Ācārya* Hīravijayasūri jī. belongs to Shasan Granth Bhandar Ladnuṅ. It is written in the '*tripāṭha*' style and consists of 582 pages. It was written in year V.S. 1919. The variant readings of this manuscript have been noted using the हीवृपा sign.

पुवृ - This is the manuscript of the commentary written by *Upādhyāya* Puṇyasāgara Jī and belongs to Shrichand Ganeshdas Gadhaiya's library. The variant readings of this manuscript have been noted using the पुवृपा sign.

शावृ - This is the manuscript of the commentary written by *Upādhyāya* Śānticandra Gaṇī too belongs to the aforesaid Gadhaiya library. The variant readings of this manuscript have been noted using the शावृपा nomenclature.

● ● ●

A Vote of Thanks

We have been able to effectively do this because of the intimate support and guidance received from the erudite *Ācārya* Kulchandra*sūri*, *Ācārya* Puṇyaratna*sūri*, Ācārya Yaśoratna*sūri* (from *Ācārya* Premabhuvanabhānu*sūri*'s *samudāya*), *Ācārya* Jagaccandra*sūri* (Dehlāvalā), Muni Gyānarakśita, *Muni* Shīlaguṇavijaya, *Sādhvījī* Nirvāṇaśrī jī, *Sādhvījī* Prārthnānidhiśrī jī *Sādhvījī* 'Vinaypurṇāśrī jī and all those who have helped us tremendously in proof reading, creating the appendices (*pariśiṣṭa*) and such other activities.

Heart is feeling appreciation and gratitude for everyone's devotion of knowledge (śruta Bhakti)!

Reverence to the Lord *(Tīrthaṅkara)* and Spiritual Masters (Guras)

We pay deep respect to Lord *Pārśvanātha,* the 23rd *tīrthaṅkara* and Lord Mahādvīra, the 24th *tīrthaṅkara* of the present time cycle.

We pay homage to *Śrī* Gautam *Svāmī,* the holder of infinite *labdhi* and *Śrī* Sudharmā Svāmī, the disciple of Lord Mahāvīra who carried on his lineage.

We express our deep gratitude towards the following respected spiritual masters:

- *Ācārya* Siddhi*sūri*, the one who was the head of variant sanghas;
- *Ācārya* Bhadra*sūri*, the one who was the great saint of recent times;
- *Ācārya* Omkara*sūri*, the one who aimed at uniting the various groups of the Jain *Śvetāmbara* sect;

- *Muni Śrī* Jambuvijaya, the one who had deep knowledge and critically edited religious scriptures.
- *Muni* Jincandravijaya, the one who was a gem amongst revered Jain monks.

We also express our deep gratitude to *Sādhviśrī* Kalpalatārī jī (*Bā Mahārāja*)

We express our deep reverence at the lotus feet of *Ācārya* Aravinda*sūri* and *Ācārya* Yashovijay*sūri*. Without their divine and gracious blessings the entire collaboration of this publication would not have been possible.

Shree Krishnanagar *Upāśraya*,
Bhādsravā Suda 15
Ahmedabad.

Ācārya Bhadrasūri's disciple
Munirāj Śrī Jinacandra jī's disciple
Ācārya Municandrasūri.

● ● ●

प्रस्तावना

- आ. विजयमुनिचन्द्रसूरिः

उपाध्यायश्रीशान्तिचन्द्रगणिविरचितप्रमेयरत्नमञ्जुषाऽभिधटीकासहितं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रमिदं द्वितीयभागरूपेण (वक्षस्कार ४ तः ७) अस्माभिः प्राकाश्यमानीयते इति निवेदयन्तः आनन्दममन्दं विन्दामो वयम् ।

ग्रन्थ-टीका-टीकाकारविषयकं प्रथमे भागे एव सविस्तरं ज्ञापितमस्ति अस्माभिः । जिज्ञासवः तत्र विलोकयन्ताम् । इह केवलं ग्रन्थरचनावर्षविषयिणीम् आ-बहोः कालात् अनुवर्तमानां क्षतिं प्रति अस्माभिः अङ्गुलिनिर्देशः क्रियते ।

उपाध्यायश्रीशान्तिचन्द्रैः प्रमेयरत्नमञ्जूषाऽभिधा इयं टीका १६५१ तमे वैक्रमे वर्षे पूर्णतां नीता । तदनु तद्ग्रन्थसंशोधनमारब्धम् । तच्च संशोधनं १६६० तमे वैक्रमे वर्षे पूर्णतां गतम् । तदन्तरा एव उपाध्यायानां स्वर्गमनं जातम् । अतः प्रस्तुतग्रन्थप्रशस्तेः २४ श्लोकाऽनन्तरं शेषाः श्लोकाः संशोधकैः रचिताः सन्ति । ३९ तमे श्लोके च संशोधन-पूर्णता-वर्षम् ज्ञापितम् । तद्यथा—

'श्रीमद्विक्रमभूपतोऽम्बरगुणक्ष्माखण्डदाक्षायणी' [शार्दुल०]

प्रशस्तेः १९ तमे श्लोके च टीकाकर्त्रा स्वयमिदं रचितं विलोक्यताम् –

वर्षे श्री विक्रमार्काद्विधुशरशरभूवक्त्रधात्रीप्रमाणे [स्रग्धरा]

अनेन निश्चियते यत् टीका-पूर्णता-वर्षं १६५१ तमं, संशोधनपूर्णतावर्षं च १६६० तममिति । परं पूर्वप्रकाशितेषु प्रायः सर्वेषु ग्रन्थेषु टीका-रचना-वर्षं १६६० तममेव लिखितं दृश्यते । स च स्फुटं प्रमादः एव ।

ते चेमे ग्रन्थाः –

(१) जिनरत्नकोश [Vol.-I] – 'भांडारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट-पूना' इत्यनेन प्रकाशितः (पृ. १३०-१३१) ।

(२) उवंगसुत्ताणि (खण्ड-२) आचार्यतुलसीलिखित-प्रस्तावनाऽन्वितोऽयं ग्रन्थः 'जैन विश्व भारती-लाडनूं' इत्यनेन प्रकाशितः (पृष्ठ-३३)

(३) 'जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग-३), डो. मोहनलाल महेता-लिखित-लेख (पृ. २४०) संयुक्तोऽयं ग्रन्थः 'पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान-वाराणसी' इत्यनेन प्रकाशितः ।

(४) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रम् (प्रस्तावनायां पृ. ५१) 'आगमप्रकाशन ब्यावर' इत्यनेन प्रकाशितम् द्वितीयं संस्करणम् । १९९४ क्रिस्ताब्दम् ।

(५) 'जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा' (पृ. ५४०-५४१) लेखक : देवेन्द्रमुनिः शास्त्री ।

(६) Elements of Jain Geography.
Editor : Frank Van B. Den Bossche Page. 288
Publisher – Motilal Banarasidas – Delhi, 2007 A.D.

(७) अस्माभिरपि अस्य प्रथमभागस्य प्रस्तावनायां (पृ. १०) १६६० तममेव टीका-रचना-वर्षं ज्ञापितम् । सोऽपि च प्रमाद एव । वास्तवं रचना-वर्षं तु १६५१ तमं विक्रमवर्षमेव ।

(८) 'जैन आगम परिचय' ले. त्रिलोकचंद जैन । (पृ. १६०) प्रथमावृत्तिः ।

(९) Biolography of Swetambar Canon
Royee willers [Page. 135]

अथ अधोदर्शितेषु ग्रन्थेषु टीका-रचना-वर्षं १६५० तमं दर्शितमस्ति ।

(१) 'जैन ग्रन्थावली' प्रकाशक : जैन श्वेताम्बर कोन्फ्रेंस मुंबई (पृ. ८), वि.सं. १९६५ ।

(२) 'The Canonical Litrature of the Jains' – H. R. Kapadia [Page 181]
प्र. Sharadaben Chimanbhai Educational Research Center, Ahemadabad, 2000 A.D.

(३) 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास' ले. मोहनलाल द. देसाई (पेरा ८६८, प्र. ३८६) प्र. ओंकारसूरि आ. भवन, सुरत ।

इत्थम् आ-बहोः कालात् अनुवर्तमाना इयं क्षतिः अग्रे मा अनुवर्ततामिति कामयामहे ।

●

सम्पादनोपयुक्ताऽऽदर्शपरिचयः

सविस्तरमयं परिचयः प्रथमभागे प्रस्तावनायां प्रदत्तः अस्ति, अतः इह संक्षेपेण किञ्चित् उच्यते ।

'पु.प्रे.' इति इदम् आगमप्रभाकरमुनिश्रीपुण्यविजयाऽन्विष्टपाठान्तरसहितस्य मुद्रितग्रन्थस्य संज्ञा अस्ति । तस्मिन् मूलसूत्राणां पाठभेदाः J1 J2 **'पु' 'क'** इति सङ्केतैः दत्ताः सन्ति । 'J1' 'J2' इति सङ्केतौ जेसलमेरताडपत्रीयग्रन्थानां स्याताम् इति प्रतीयते । तौ ग्रन्थौ '३१/१' '३२/२' इति क्रमाङ्कयोः स्तः ।

'पु' 'क' इत्यस्मात् द्वयात् मूलसूत्राणां टीकायाश्च पाठान्तराणि सन्त्यपि सन्ति । तौ द्वौ अपि कागदलिखितग्रन्थौ स्तः इत्येव केवलं वयं विद्मः । अन्यः कश्चन परिचयः न प्राप्तः अस्माभिः । **'क' स्थाने** अस्माभिः **'के'** इति संज्ञा प्रदत्ता अस्ति ।

'V' इति 'L' इति वा संज्ञा उवंगसुत्ताणि खण्ड-२ (प्र.जैन विश्वभारती-लाडनू) इत्यस्य अस्ति ।

— अस्मिन ग्रन्थे पाठान्तरार्थम् अधस्तनाः ग्रन्थाः उपयुक्ताः । ते चेमे—

(अ) जिनभद्रसूरिज्ञानभण्डारस्य (जेसलमेर) ताडपत्रग्रन्थः, क्रमाङ्कः ३१-१ ।

(ब) जिनभद्रसूरिज्ञानभण्डारस्य (जेसलमेर) ताडपत्रग्रन्थः, क्रमाङ्कः ३२-१ ।

(अस्य ग्रन्थद्वयस्य प्रतिकृतिः (फोटो फाइल) आ.श्री विजयसोमचन्द्रसूरिप्रेरणयाः आ.नेमि-विज्ञान-ज्ञानमन्दिर (गोपीपुरा-सुरत) सकाशात् अपि समुपलब्धा ।

अस्यैव ग्रन्थद्वयस्य सान्द्रमुद्रिका [C.D.] आ. जिनभद्रसूरि-ज्ञानमन्दिर-(जेसलमेर) संस्थातः तदध्यक्षश्रीमहेन्द्रसिंह-भंसाली वर्यादित्येतस्मात् पं.श्रीपुण्डरीकरत्नविजयप्रेरणया प्राप्ता ।)

'स' इति संज्ञां बिभ्रत् अस्यैव जेसलमेरभण्डारस्य कागदलिखितः ग्रन्थः अस्ति । अस्मिन् केवलं मूलसूत्राणि सन्ति ।

(क) मूलग्रन्थात् कागदोपरि लिखितोऽयं ग्रन्थः सरदारनगरस्थित श्रीचंद गणेशचंद गधैया संग्रहालयस्य अस्ति ।

(ख) मूलसूत्रमात्रोऽयं कागदलिखितो ग्रन्थः जैन विश्वभारती लाडनू-भण्डारस्य अस्ति ।

(ग) अयमपि तत्रत्यः (लाडनू) एव ग्रन्थः त्रिपाठपद्धत्या सटीकोऽयं लिखितः ।

(ही.वृ.) हीरविजयसूरिविरचितवृत्तिसहितोऽयं ग्रन्थः 'शासन ग्रन्थ भण्डार लाडनू' इत्यस्य अस्ति । त्रिपाठपद्धत्या लिखितस्य अस्य ग्रन्थस्य ५८२ पत्राणि सन्ति । लेखन-वर्षं च १९१९ तमं वैक्रममस्ति । अस्य पाठभेदाः **'हीवृपा'** इतिसङ्केतेन प्रदत्ताः सन्ति ।

(पुवृ) उपा. पुण्यसागररचितवृत्तिसमलङ्कृतोऽयं ग्रन्थः 'श्रीचंद-गणेशचंद-गधैया संग्रहालय'स्य अस्ति । अस्य पाठान्तराणि **'पुवृपा'** इति सङ्केतेन दत्तानि सन्ति ।

शावृ उपा. शान्तिचन्द्ररचितटीकाऽन्वितोऽयं ग्रन्थोऽपि तस्य एव गधैयासंग्रहालयस्य अस्ति । अस्य पाठान्तराणि '**शावृपा**' इतिसङ्केतेन दत्तानि सन्ति ।

ऋणस्वीकारः

श्रीप्रेमभुवनभानुसूरिसमुदायीयाः

विद्वद्वर्याः आ.श्रीविजयकुलचन्द्रसूरि-पुण्यरत्नसूरि-यशोरत्नसूरयः

डेलासमुदायीयाः आ.श्रीजगच्चन्द्रसूरयः,

मुनिः ज्ञानरक्षितविजयः, मुनिः शीलगुणविजयः इत्याद्याः ।

सा. निर्वाणश्री-प्रार्थनानिधिश्री-विनयपूर्णाश्रीआदिभिः अस्य ग्रन्थस्य 'प्रुफ'पत्रसंशोधन-परिशिष्टनिर्माण-इत्यादिकार्येषु सम्यक् सहकृतम् ।

सर्वेषामेषां पुण्यात्मनां सकार्तज्ञ्यं स्मरणं क्रियते ।

श्रुतभक्तिश्च तेषामनुमोद्यते ।

देवगुरु-वन्दना

नमोऽस्तु कलिकालकल्पतरवे श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वनाथाय चरमतीर्थाधिपतये श्रीमहावीरस्वामिने अनन्तलब्धिनिधानाय श्रीगौतमस्वामिने गणसम्पत्समृद्धाय श्रीसुधर्मस्वामिने च ।

नमोऽस्तु सङ्घस्थविराचार्यश्रीविजयसिद्धिसूरीश्वर-युगमहर्षिभद्रसूरि-सङ्घैक्यशिल्पिश्रीओंकार-सूरि-आगमप्रज्ञमुनिश्रीजम्बूविजय-साधनालीनगुरुदेवश्रीजिनचन्द्रविजयादिभ्यः च ।

मात्रे आर्यायै श्रीकल्पलताश्रियै अपि नमोऽस्तु ।

समतारसकुण्डनिमग्नाचार्यश्रीविजयारविन्दसूरि-मधुरभाषि-आ.श्रीयशोविजयसूरिवरादीनामाशिषा एव इदं सम्पादन-कार्यं सुशकं जातमिति अत्र सर्वेषामुपकारिणां सहजरूपेण स्मरणं भवति ।

देव-गुरु-चरणेषु शतशः नतिततयः ।

श्रीकृष्णनगर जैन उपाश्रय
अहमदाबाद.
वि.सं. २०७३,
भादरवा सुद-१५

युगमहर्षि आ.भ.श्रीभद्रसूरि शिष्यरत्न
पू. मुनिराजश्रीजिनचन्द्रविजय विनेयः
आ. विजयमुनिचन्द्रसूरिः

• • •

[illegible] आगम ग्रंथमाला

ग्रंथांक १	नंदिसुत्तं अणुओगद्दाराइं	संपादक : मुनिश्री पुण्यविजयजी	४०/
ग्रंथांक २	(१) आचारांग सूत्र	संपादक : मुनिश्री जम्बूविजयजी	४०/
ग्रंथांक २	(२) सूयगडांग सूत्र	संपादक : मुनिश्री जम्बूविजयजी	४०/
ग्रंथांक ३	ठाणांग सूत्र : समवायांग सूत्र	संपादक : मुनिश्री जम्बूविजयजी	१२०/
ग्रंथांक ४	(१) वियाहपण्णत्ति सूत्र : भाग-१	संपादक : पं. बेचरदास जीवराज दोशी	४०/
ग्रंथांक ४	(२) वियाहपण्णत्ति सूत्र : भाग-२	संपादक : पं. बेचरदास जीवराज दोशी	४०/
ग्रंथांक ४	(३) वियाहपण्णत्ति सूत्र : भाग-३	संपादक : पं. बेचरदास जीवराज दोशी	५०/
ग्रंथांक ९	(१) पन्नवणा सूत्र : भाग - १	संपादक : मुनिश्री पुण्यविजयजी	३०/
ग्रंथांक ९	(२) पन्नवणा सूत्र : भाग - २	संपादक : मुनिश्री पुण्यविजयजी	३०/
ग्रंथांक १५	दसवेयालिय सूत्र, उत्तरज्झयणाइं, आवस्सय सूत्र	संपादक : मुनिश्री पुण्यविजयजी	५०/
ग्रंथांक १७	(१) पइन्नयसुत्ताइं : भा-१	संपादक : मुनिश्री पुण्यविजयजी	८०/
ग्रंथांक १७	(२) पइन्नयसुत्ताइं : भा-२	संपादक : मुनिश्री पुण्यविजयजी	८०/
ग्रंथांक १७	(३) पइन्नयसुत्ताइं : भा-३ टीकासह	संपादक : मुनिश्री पुण्यविजयजी	६०/
ग्रंथांक ५	णायाधम्मकहाओ :	संपादक : मुनिश्री जम्बूविजयजी	१२५/
ग्रंथांक १८	(१) अनुयोगद्वार सूत्र : भा-१ टीकासह	संपादक : मुनिश्री जम्बूविजयजी	४५०/
ग्रंथांक १८	(२) अनुयोगद्वार सूत्र : भा-२ टीकासह	संपादक : मुनिश्री जम्बूविजयजी	४५०/
ग्रंथांक १९	(१) श्री स्थानांग सूत्र : भा-१ टीकासह	संपादक : मुनिश्री जम्बूविजयजी	५५०/
ग्रंथांक १९	(२) श्री स्थानांग सूत्र : भा-२ टीकासह	संपादक : मुनिश्री जम्बूविजयजी	५५०/
ग्रंथांक १९	(३) श्री स्थानांग सूत्र : भा-३ टीकासह	संपादक : मुनिश्री जम्बूविजयजी	५५०/
ग्रंथांक २०	(१) श्री समवायांग सूत्र टीकासह	संपादक : मुनिश्री जम्बूविजयजी	४५०/
ग्रंथांक ०७	(१) उववाइसुत्तं	संपादक : आ. विजय मुनिचन्द्रसूरि	४००/
ग्रंथांक ०७	(२) रायपसेणइयसुत्तं	संपादक : आ. विजय मुनिचन्द्रसूरि	४००/
ग्रंथांक ११	(१) चंदपन्नत्तिसुत्तं भाग-१	संपादक : मुनि रत्नबोधिविजय म.	५००/
ग्रंथांक ११	(२) चंदपन्नत्तिसुत्तं भाग-२	संपादक : मुनि रत्नबोधिविजय म.	५००/
ग्रंथांक १०	(१) जंबुद्दीवपन्नत्तीसुत्तं भाग-१	संपादक : आ. विजयमुनिचन्द्रसूरि	५००/
ग्रंथांक १०	(२) जंबुद्दीवपन्नत्तीसुत्तं भाग-१	संपादक : आ. विजयमुनिचन्द्रसूरि	५००/

प्राप्तिस्थान

१) श्री महावीर जैन विद्यालय — दूसरे माले, श्री कच्छी विशा ओसवाल जैन महाजन वाडी, ९९/१०१, केशवजी नायक रोड, चींच बंदर, मुंबई-४००००९

२) श्री महावीर जैन विद्यालय — पालडी, बस स्टेन्ड पासे, पालडी, अमदावाद-३८०००७

विषयानुक्रमः

सूत्रे	विषयः	पृष्ठे
१-२७७	**वक्षस्कारः ४**	४३४-६०७
१-५४	**क्षुद्रहिमवद्गिरिवक्तव्यता**	४३४-४६२
३-२२	पद्मद्रहस्वरूपम्	४३६-४४६
२३-३६	गङ्गानदीस्वरूपम्	४४६-४५४
२५-३६	गङ्गाप्रपातकुण्डादि	४४७-४५४
३७	सिन्धु-नदीस्वरूपम्	४५४-४५५
३८-४४	रोहितांशानदीस्वरूपम्	४५५-४५८
४५-४७	सिद्धायतनादिस्वरूपम्	४५८-४५९
४८-५४	क्षुद्रहिमवत्कूटादिस्वरूपम्	४५९-४६१
५५-६१	**हैमवतवर्षस्वरूपम्**	४६३-४६७
५७-६१	वृत्तवैताढ्यादिस्वरूपम्	४६४-४६७
६२-८०	**महाहिमवत्वर्षधरपर्वतवर्णनम्**	४६७-४७४
८१-८५	हरिवर्षवर्षस्वरूपम्	४७४-४७७
८६-९७	निषधवर्षधरपर्वतः	४७७-४८४
९८	**महाविदेहवर्षस्वरूपम्**	४८४
१०८-१६१	**उत्तरकुरु-वर्णनम्**	४९२-५२९
११६-१२२	वन-प्रासादावतंसक-सुधर्मासमादि	४९८-५०४
१२३-१४०	प्रेक्षामण्डप-मणिपीठिका-स्तूपादि	५०४-५१५
१४१-१४२	नीलवद्द्रहस्वरूपम्	५१५-५१७
१४२	कञ्चनपर्वतादि	५१६-५१७
१४३	जम्बूपीठ	५१७
१४१-१६१	उत्तरकुरुषु नीलवद्द्रहवर्णनम्	५१५-५१७
१४२	काञ्चनकपर्वताः	५१६-५१७
१४३-१५९	सुदर्शनाजम्बूपीठस्वरूपम्	५१७

सूत्रे	विषयः	पृष्ठे
१४८-१५३	पद्मवरवेदिका-वनखण्डादि	५२२-५२४
१५४-१५६	वापी-प्रासाद-कुटाजीनि	५२४-५२६
१५७-१५९	जम्बूसुदर्शनायाः १२ नामादीनि	५२७-५२८
१६०	अनादृतदेवस्वरूपम्	५२९
१६१	उत्तरकुरुनामकरणम्	५२९
१६२-१६६	**महाविदेहे माल्यवत्वक्षस्कारपर्वतः**	५२९-५३४
१६३-१६५	सिद्धायतन सागरादिकूटानि	५३०-५३३
१६६	माल्यवत्पर्वतनामकरणम् -	५३३-५३४
१६७-१७७	**महाविदेहे कच्छविजयवर्णनम् १**	५३४-५४२
१६९-१७१	दक्षिणार्धकच्छविजयवर्णनम्	५३६-५३७
१७२	कच्छविजये वैताढ्यपर्वतः	५३७-५३९
१७३	उत्तरार्धकच्छविजयवर्णनम्	५३९
१७४-१७६	सिन्धुकुण्ड-ऋषभकूटगङ्गाकुण्डवर्णनम्	५३९-५४१
१७७	कच्छविजयनामकरणम्	५४२
१७८-१८०	महाविदेहे चित्रकूटवक्षस्कारपर्वतः	५४२-५४४
१८१-१८३	**महाविदेहे सुकच्छविजयवर्णनम् २**	५४४-५४६
१८२-१८३	ग्राहावतीकुण्ड ग्राहावतीनदीवर्णनम्	५४४-५४६
१८४	महाविदेहे महाकच्छविजयः ३	५४६
१८५-१८६	ब्रह्मकूटे कूटचतुष्कम्	५४७
१८७	महाविदेहे कच्छगावतीविजयः ४	५४८
१८८-१८९	द्रहावतीकुण्ड-द्रहावतीनदी	५४८
१९०-१९३	आवर्तविजयः ५ मङ्गलावर्तविजयः ६	५४९
१९४-१९५	पङ्कावतीकुण्डादि	५५०
१९६	पुष्कलावर्तविजयः ७	५५०
१९७-१९८	एकशैलपर्वतादि	५५०-५५१
१९९	पुष्कलावतीविजयः ८	५५१
२००	शीतामुखवनम्	५५१-५५५
२०१-२११	**द्वितीयः महाविदेहविभागः**	५५५-५६४
	दक्षिणात्यं शीतामुखवनम्	५५५

सूत्रे	विषयः	पृष्ठे
२०२	विजयादिव्यवस्था	५५५-५५८
२०३-२०४	सौमनसगजदन्तगिरिः	५५९
२०५	महाविदेहे देवकुरुवर्णनम्	५५९-५६०
२०६-२०८	निषधद्रह-कूटशाल्मलीपीठादिः	५६०-५६२
२०९-२११	विद्युत्प्रभवक्षस्कारपर्वतः	५६२-५६४
२१२	**महाविदेहस्य तृतीयचतुर्थविभागौ**	५६४-५६८
२१३	**महाविदेहे मेरुवर्णनम्**	५६८-५७१
२१४	मेरुस्थितवनस्वरूपम्	५७१
२१५-२३३	**भद्रशालवनम् १**	५७२-५८०
२१६-२१९	सिद्धायतन-मणिपीठिका-देवच्छन्दकादि	५७३-५७४
२२०-२२४	भद्रशालवन-सिद्धायतन-देवच्छन्दकादि	५७४-५७५
२२५-२३३	दिग्गजकूटवक्तव्यता	५७५-५८०
२३४-२३८	**नन्दनवनस्वरूपम् २**	५८०
२३५-२३९	सिद्धायतन-कूटादिस्वरूपम्	५८१-५८४
२४०	सौमनसवनम् ३	५८४-५८६
२४१	**पण्डकवनम् ४**	५८६-५८७
२४२	मेरोः चूलिका	५८७-५८९
२४४-२५२	**अभिषेकशिलाचतुष्टयम्**	५८९
२४५-२४९	**पाण्डुशिला**	५८९-५९१
२४९-२५२	पाण्डुकम्बला-रक्तशिला-रक्तकम्बलशिलाः	५९१-५९३
२५३-२५९	मरुपर्वते काण्डत्रयस्वरूपम्	५९३-५९५
२६०-२६१	मेरोः षोडश नामानि	५९५-५९७
२६२-२६४	निलवन्तगिरिवक्तव्यता	५९७-५९९
२६५-२६७	रम्यक्वर्षस्वरूपम् ५	५९९-६०१
२६८-२७०	रुक्मी वर्षधरपर्वतः ५	६०१-६०३
२७१-२७३	**हैरण्यवतवर्षस्वरूपम् ६**	६०३-६०५
२७२	वृत्तवैताढ्यस्वरूपम्	६०४
२७४-२७६	शिखरीवर्षधरपर्वतः ६	६०५-६०६
२७७	ऐरावतवर्षस्वरूपम् ७	६०६-६०७

सूत्रे	विषयः	पृष्ठे
	वक्षस्कारः ५	६०८
१-२	दिक्कुमारीस्वरूपम्	६०८-६०९
३-१७	५६ दिक्कुमारीकृत्यम्	६१०-६२७
१८-२०	सौधर्मेन्द्रस्वरूपम्	६२७-६२८
२१	शक्रस्तवेन वन्दना	६२८-६२९
२२-२४	सुघोषाघण्टावादनम्	६२९-६३२
२५-२७	शक्रादेशं श्रुत्वा शक्रसमीपागमनम्	६३२-६३४
२८-४०	पालकविमानरचना	६३४-६३९
४१-४५	विमाने उपविस्य जिनजन्मभवनगमनम्	६३९-६४३
४६-४७	मातुरनुज्ञापूर्वकं मेरुवर्तते पञ्चरूपेणगमनम्	६४३-६४५
४८-५३	ईशानेन्द्रादीनां मेरुपर्वते आगमनम्	६४५-६५२
५४-५५	अभिषेकसमाग्र्यानयनम्	६५३-६५६
५६-६५	**जिनजन्माभिषेकः**	६५६
५७	हर्षोल्लासः ३२ नाट्यविधिः	६५७-६६७
५८-६२	अष्टमङ्गलाऽऽलेखनादि	६६७-६७१
६२-६६	शक्रस्य वृषभरूपविकुर्वणादि	६७१-६७२
६७	मातुः पार्श्वे प्रभोः स्थापनम्	६७२-६७३
६८-७४	३२ कोटीः हिरण्यादीनां स्थापनादि	६७३-६७६
	वक्षस्कारः ६	
१-२६	जम्बूद्वीपस्वरूपम्	६७७-६८९
१९-२६	नदी	६८४-६८९
	वक्षस्कारः ७	
१	जम्बूद्वीपे ज्योतिष्काधिकारः	६९०
२	सूर्यप्ररूपणा	६९१
१९-२५	मुहूर्तगतिद्वारम्	७०१-७१५
२६-३०	दिन-रात्रिवृद्धिहानिद्वारम्	७१५-७२०
३१-३२	तापक्षेत्रद्वारम्	७२०-७२६
३३-३५	अन्धकारसंस्थितिः	७२६-७२९
३६-३८	दूराऽऽसन्नादिदर्शनद्वारम्	७२९-७३०

सूत्रे	विषयः	पृष्ठे
३९-५३	गतिविषयकक्षेत्रवर्णनम्	७३१-७३४
५४-५५	मनुष्यक्षेत्रवर्तिज्योतिष्कस्वरूपम्	७३४-७३६
५६-५७	इन्द्रविरहकाले व्यवस्था	७३६-७३७
५८-६०	समयक्षेत्रबहिर्वर्तिज्योतिष्कस्वरूपम्	७३७-७३८
६१-७८	चन्द्रमण्डलवक्तव्यता	७३९-७४८
७९-८४	मुहूर्तगतिप्ररूपणा	७४८-७५३
८५-१००	नक्षत्रवक्तव्यतादि	७५३-७६३
१०१	दिन-रात्रिविचारणा	७६३-७६९
१०२	चन्द्रवक्तव्यताऽतिदेशः	७६९
१०३-११२	संवत्सरपञ्चकस्वरूपम्	७६९-७७६
११३	शनैश्चरसंवत्सरस्वरूपम्	७७६-७७७
११४	मासप्ररूपणा	७७७-७७८
११५	पक्षप्ररूपणा	७७८
११६-११८	तिथिप्ररूपणा	७७८-७८०
११९-१२१	रात्रिवक्तव्यता	७८०-७८१
१२२	मूहूर्तवक्तव्यता	७८१-७८२
१२३-१२५	करणवक्तव्यता	७८२-७८४
१२६	कालविशेषाणामादिः	७८४-७८५
१२७	अयनवक्तव्यता	७८५-७८६
१२८	**योगादिदशानां वक्तव्यता**	७८६
१२८	नक्षत्रनामानी	७८६-७८७
१२९	योगद्वारम् १	७८७-७९०
१३०	देवताद्वारम् २	७९०-७९१
१३१	तारासंख्याद्वारम् ३	७९१-७९३
१३२	गोत्रद्वराम् ४	७९३-७९४
१३३	संस्थानद्वारम् ५	७९४-७९५
१३४-१३५	चन्द्ररवियोगद्वारम् ६	७९५-७९९
१३६	कुलद्वारम् ७	८००-८०१
१३७	पूर्णिमाऽमावास्याद्वारम् ८	८०१-८०२

सूत्रे	विषयः	पृष्ठे
१३८-१४६	पूर्णिमावक्तव्यता	८०२-८११
१४७-१४९	अमावास्थानक्षत्रयोजना	८११-८१३
१५०-१५३	अमावास्याकुलादियोजना	८१४-८१५
१५४-१५५	सन्निपातद्वारम् ९	८१५-८१६
१५६-१५९	वर्षाकाले नक्षत्राणि	८१७-८१९
१६०-१६२	हेमन्तकाले नक्षत्राणि	८१९-८२१
१६४-१६७	ग्रीष्मकाले नक्षत्राणि	८२१-८२२
	छायाद्वारम् १०	८२२
१६७	पौरुषीप्रमाणम्	८२२-८२६
१६८	१६ द्वाराणि	८२६-८२७
१६८-१६९	तारामण्डलस्य अणुत्वतुल्यत्वादि १	८२७-८२८
१७०	मन्दरतो अबाधा चन्द्रपरिवारः २	८२८-८२९
१७१	मन्दरतो अबााधा ३	८२९
१७२	अलोकतो अबााधा ४	८२९
१७३-१७५	ज्येतिश्चक्रचारवक्तव्यता	८३०-८३२
१७६-१८५	चन्द्रविमानवक्तव्यता	८३२-८४६
१८६	अग्रमहिषीवक्तव्यता	८४६-८५०
१८७-१९७	देवानां स्थिति-अल्पबहुत्वे	८५०-८५२
१९८-२००	तीर्थकरादीनां सङ्ख्या	८५२-८५३
२०१-२०६	निधिरत्न-चक्रिरत्नसङ्ख्या	८५३-८५४
२०७-२१३	जम्बूद्वीपस्य विष्कम्भादि	८५४-८५९
२१४	उपसंहारः	८५९-८६२
	ग्रन्थकृत्प्रशस्ति	८६२-८६५
	संशोधकप्रशस्ति	८६५-८६८
	परिशिष्टं १ टीकागत विशेषनाम्नां अकारादिसूचिः	
	२ टीकागत साक्षीपाठानां अकारादिसूचिः	
	३ सूत्रगत विशिष्टनाम्नां अकारादिसूचिः	

● ● ●

जंबुद्दीवपण्णत्तिसुत्तं

भा. २

(४-७ वक्षस्काराः)

अथ चतुर्थवक्षस्कारः ॥४॥

अथ क्षुल्लहिमवद्गिरेरवसरः-

कहि णं भंते ! जम्बुद्दीवे २ चुल्लहिमवंते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ?, गोअमा ! हेमवयस्स वासस्स दाहिणेणं, भरहस्स वासस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे चुल्लहिमवंते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते, पाईण-पडीणायए[1] उदीण-दाहिणवित्थिण्णे, दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे; पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे। एगं जोअणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं, पणवीसं जोअणाइं उव्वेहेणं, एगं जोअणसहस्सं बावण्णं च जोअणाइं दुवालस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खंभेणं ति ॥१-A॥

"**कहि ण**"मित्यादि, क्व **भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे** क्षुल्लः क्षुद्रो वा-महाहिमवदपेक्षया लघुर्हिमवान् **क्षुल्लहिमवान्** क्षुद्रहिमवान् (वा) नाम्ना **वर्षधरः पर्वतः प्रज्ञप्तः** ?, वर्षे-उभयपार्श्वस्थिते द्वे क्षेत्रे धरतीति वर्षधरः, क्षेत्रद्वयसीमाकारी गिरिरित्यर्थः, स चासौ पर्वतश्च वर्षधरपर्वतः आख्यातस्तीर्थकृद्भिरिति, शेषं सुगमम्। नवरं **एकं योजनशतं ऊर्ध्वोच्चत्वेन पञ्चविंशतिर्योजनानि 'उद्वेधेन'** भूगतत्वेन, उच्चत्वचतुर्थभागस्यैव भूगतत्वात्, **एकं योजन-सहस्रं द्विपञ्चाशच्च योजनानि द्वादश चैकोनविंशतिभागान् योजनस्य विष्कम्भेण**, अस्योपपत्तिस्तु द्विगुणितजम्बूद्वीपव्यासस्य नवत्यधिकशतेन भागहरणे भवति, क्षुद्रहिमवतो भरताद् द्विगुणत्वात्, अत्र च करणविधिर्भरतवर्षविष्कम्भ इव ज्ञेयः ॥१-A॥

अथास्य बाहे आह-

तस्स बाहा[2] पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं पंच जोअणसहस्साइं तिण्णि अ पण्णासे जोअणसए पण्णरस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं। तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया जाव पच्चत्थिमिल्लाए

---

१. ०पडियायते-अब। एवमग्रेऽपि ॥ २. पासा-अब ॥

कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा, चउव्वीसं जोअणसहस्साइं णव य बत्तीसे जोअणसए अद्धभागं च किंचिविसेसूणा आयामेणं पण्णत्ता ॥१-B॥

"**तस्स बाहा**" इत्यादि, '**तस्य**' क्षुद्रहिमवतो **बाहे** प्रत्येकं **पूर्व-पश्चिमयोः पञ्च योजन-सहस्राणि त्रीणि च योजनशतानि पंचाशद**धिकानि **पंचदश च योजन-स्यैकोनविंशति-भागान्** एकस्य योजनैकोनविंशतितम**भागस्यार्द्धं** च यावद**ायामेन** प्रज्ञप्ते, सूत्रे च वचनव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, स्थापना यथा–योजन ५३५० कला १५ $\frac{१}{२}$ अस्य व्याख्यानं वैताढ्याधिकारसूत्रतो ज्ञेयम्, प्रायः समसूत्रत्वात् । अथैतस्य जीवामाह–"**तस्स जीवा**" इत्यादि, '**तस्य**' क्षुद्रहिमवतो **जीवा उत्तरतो** ग्राह्या, **प्राचीन-प्रतीचीनायता,** "**जाव पच्चत्थिमिल्लाए**" इत्यादि प्राग्वत्, **यावत्**पदात् "पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा" इति ग्राह्यम्, **आयामेन चतुर्विंशतियोजनसहस्राणि नव च द्वात्रिंशद**धिकानि योजनशतानि '**अर्द्धभागं च**' कलार्द्धं (२४९३२ $\frac{१}{३८}$) प्रज्ञप्ता **किंचिद्विशेषोना** किंचिदूना इत्यर्थः, किंचिदूनत्वं चास्या आनयनाय वर्गमूले कृते शेषोपरितनराश्यपेक्षया द्रष्टव्यम् ॥१-B॥

अथास्याः परिधिमाह–

तीसे धणुपट्ठे दाहिणेणं पणवीसं[१] जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तीसे जोअणसए चत्तारि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं पण्णत्ते । रुअगसंठाणसंठिए सव्वकणगामए अच्छे सण्हे लण्हे तहेव जाव[२] पडिरूवे उभओ पासिं[३] दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते दुण्ह वि पमाणं वण्णगो[४] त्ति ॥१-C॥

"**तीसे**" इत्यादि, '**तस्याः**' क्षुद्रहिमवज्जीवायाः **धनुःपृष्ठं** '**दक्षिणतः**' दक्षिणपार्श्वे **पञ्चविंशतिः योजनसहस्राणि द्वे च त्रिंशद**धिके **योजनशते चतुरश्च एकोनविंशति-भागान्** (२५२३० $\frac{४}{१९}$) **योजनस्य** '**परिक्षेपेण**' परिधिना **प्रज्ञप्तम्**, यच्चात्र "तीसे" इति शब्देन जीवा निर्देशस्तत्स्वस्वजीवाऽपेक्षया स्वस्वधनुःपृष्ठस्य यथोक्तमानतोपपत्त्यर्थं, अन्यथा न्यूनाधिकमानसम्भवात् । अथ पर्वतं विशेषणैर्विशिनष्टि–"**रुअग**" इत्यादि, **रुचकसंस्थान-संस्थितः सर्वकनकमय** इत्यादि प्राग्वत्, नवरं **द्वयोरपि पद्मवरवेदिकावनखण्डयोः प्रमाणं वर्णकश्च** ज्ञातव्याविति शेषः ॥१-C॥

---

१. पणुवीसं-अकबस ॥ २. द्र. १।८॥ ३. पसिं-अखत्रिबस J1J2 पुके ॥ ४. द्र. १।१०-१४॥

अथास्य शिखरस्वरूपमाह-

चुल्लहिमवन्तस्स णं वासहरपव्वयस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहाणामए[१] आलिंगपुक्खरेइ[२] वा जाव बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ अ आसयंति जाव विहरंति ॥ २ ॥

"**चुल्लहिमवंत**"मित्यादि, प्राग्व्याख्यातार्थम्, नवरं बहुसमत्वं चात्र नदीस्थानादन्यत्र ज्ञेयम्, अन्यथा नदीश्रोतसां संसरणमेव न स्यात् ॥२॥

अथैतन्मध्यवर्त्तिह्रदस्वरूपनिरूपणायाऽऽह-

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए इत्थ णं एक्के महं पउमद्दहे णामं दहे पण्णत्ते, पाईण-पडीणायए उदीण-दाहिणवित्थिण्णे एक्कं जोअणसहस्सं आयामेणं, पंच जोअणसयाइं विक्खंभेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं अच्छे सण्हे रययामयकूले जाव पासाईए जाव पडिरूवे त्ति । से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते वेइआ-वणसंडवण्णओ भाणिअव्वो[३] त्ति ॥ ३ ॥

"**तस्स ण**"मित्यादि, '**तस्य**' क्षुद्रहिमवतो **बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्रावकाशे एको महान् पद्मद्रहो नाम द्रहः** पद्मह्रदो नाम ह्रदो वा **प्रज्ञप्तः, पूर्वाऽपरायत उत्तर-दक्षिणविस्तीर्णः एकं योजनसहस्रमायामेन पञ्च योजनशतानि विष्कम्भेण दश योजनानि 'उद्वेधेन'** उण्डत्वेन '**अच्छः**' अनाविलजलत्वात्, '**श्लक्ष्णः**' सारवज्रादिमयत्वात्, '**रजतमयकूलः**' इति व्यक्तम् । अत्र **यावत्करणात्** इदं द्रष्टव्यम् "समतीरे वइरामयपासाणे तवणिज्जतले सुवण्णसुब्भ-रययामयवालुए वेरुलिअ-मणि-फालिअपडलपच्चोअडे सुहोयारे सुहुत्तारे णाणामणितित्थसुबद्धे चाउक्कोणे अणुपुव्वसुजाय-वप्पगंभीरसीअलजले संछन्नपत्तभिसमुणाले बहुउप्पल-कुमुअ-सुभग-सोगंधिअ-पुंडरीअ-सय-वत्तफुल्लकेसरोवचिए छप्पयपरिभुज्जमाणकमले अच्छ-विमलसलिलपुण्णे परिहत्थभमंत-मच्छ-कच्छभ-अणेगसउणमिहुणपरिअरिए" इति, "**पासादीए**" अत्र **यावत्पदात्** "दरिसणिज्जे अभिरूवे" इति, एतद्व्याख्या तु जगत्युपरिगतवाप्यादिवर्णकाधिकारतो ज्ञेयेति । "**से**

१-२. द्र. १।१३॥ ३. द्र. १।१०-१३॥

ण''मित्यादि, 'स' पद्मद्रहः **एकया पद्मवरवेदिकया एकेन च वनखण्डेन सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्तः**, **वेदिका-वनखण्डवर्णको भणितव्यः**, प्राग्वदित्यर्थः ॥३॥

तस्स णं पउमद्दहस्स चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, वण्णावासो भाणिअव्वो ॥ ४ ॥

तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ पत्तेअं २ तोरणे पण्णत्ते, ते णं तोरणा णाणामणिमया[१] ॥ ५ ॥

''**तस्स ण**''मित्यादि व्यक्तम् । ''**तेसि ण**''मित्यादि, सर्वं प्राग्वत्, नवरं **णाणामणिमयेत्ति** वर्णकैकदेशेन पूर्णस्तोरणवर्णको ग्राह्यः ॥४-५॥

अथात्र पद्मस्वरूपमाह-

तस्स णं पउमद्दहस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे पउमे पण्णत्ते, जोअणं आयाम-विक्खंभेणं, अद्धजोअणं बाहल्लेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं, दो कोसे ऊसिए जलंताओ, साइरेगाइं दसजोअणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते । से णं एगाए जगईए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते[२] जम्बुद्दीवजगइप्पमाणा गवक्खकडए वि तह चेव पमाणेणं ति ॥ ६ ॥

''**तस्स ण**''मित्यादि, तस्य-**पद्मद्रहस्य बहुमध्यदेशभागे अत्रान्तरे महदेकं पद्मं प्रज्ञप्तम्, एकं योजनमायामतो विष्कम्भतश्च अर्द्धयोजनं 'बाहल्येन'** पिण्डेन, **दश योजनानि 'उद्वेधेन'** जलावगाहेन, **द्वौ क्रोशावुच्छ्रितं 'जलान्तात्'** जलपर्यन्तात्, एवं **सातिरेकाणि दश योजनानि सर्वाग्रेण प्रज्ञप्तानि**, जलावगाहोपरितनभागसत्ककमलमानमीलने एतावत एव सम्भवात् । ''**से ण**''मित्यादि, 'तत्' पद्म**मेकया 'जगत्या'** प्राकारकल्पया **सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्तम्**, सा च जगती **जम्बूद्वीपजगतीप्रमाणा** वेदितव्या, एतच्च प्रमाणं जलादुपरिष्टाद् ज्ञेयम्, दशयोजनात्मकजलावगाहप्रमाणस्याविवक्षितत्वात्, **'गवाक्षकटकोऽपि'** जालकसमूहोऽपि **तथैव प्रमाणेन** उच्चत्वेनार्द्धयोजनं पञ्चधनुःशतानि विष्कम्भेनेत्यर्थः ॥६॥

अथ पद्मवर्णकमाह-

---

१. द्र. ४।२७-३०॥ २. द्र. १।८-९॥

तस्स णं पउमस्स अयमेआरूवे वण्णावासे पं०, तं०-वइरामया मूला, रिट्ठामए कंदे, वेरुलिआमए णाले, वेरुलिआमया बाहिरपत्ता, जम्बूणयामया[1] अब्भिंतरपत्ता, तवणिज्जमया केसरा णाणामणिमया पोक्खरत्थिभाया, कणगामई कण्णिगा, सा णं अद्धजोयणं आयाम-विक्खंभेणं कोसं बाहल्लेणं सव्वकणगामई अच्छा ॥ ७ ॥

"**तस्स**"त्ति, तस्य-**पद्मस्यायमेतद्रूपो वर्णव्यासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-वज्रमयानि 'मूलानि'** कन्दादधस्तिर्यग्निर्गतजटासमूहावयवरूपाणि, **अरिष्ठरत्नमयः** 'कन्दः' मूलनालमध्यवर्त्ती ग्रन्थिः, **वैडूर्यमयं 'नालं'** कन्दोपरि मध्यवर्त्यवयवः, **वैडूर्यमयानि बाह्यपत्राणि**, अत्रायं विशेषो **बृहत्क्षेत्रविचारवृत्त्यादौ**-बाह्यानि चत्वारि पत्राणि वैडूर्यमयानि शेषाणि तु रक्तसुवर्णमयानि । **'जम्बूनदम्'** ईषद्रक्तस्वर्णं तन्मयान्य**भ्यन्तरपत्राणि**, सिरि-निलयमिति **क्षेत्रविचारवृत्तौ** तु पीतस्वर्णमयान्युक्तानि, **'तपनीयमयानि'** रक्तस्वर्णमयानि **'केसराणि'** कर्णिकायाः परितोऽवयवाः, **नानामणिमयाः 'पुष्करास्थिभागाः'** कमल-बीजविभागाः, **कनकमयी 'कर्णिका'** बीजकोशः । अथ कर्णिकामानाद्याह-"**सा ण**"-मित्यादि, **'सा'** कर्णिका **अर्द्धयोजनमायामेन विष्कम्भेण** च **क्रोशं 'बाहल्येन'** पिण्डेन **सर्वात्मना कनकमयी**, अत एव कनकमयीति पूर्वविशेषणेनावयवविभागेऽपि कनकमयत्वं स्यादित्याशङ्का निरस्ता । "**अच्छा**" इत्येकदेशेन "सण्हा" इत्यादिपदान्यपि ज्ञेयानि, तेषां व्याख्या च प्राग्वत् ॥७॥

तीसे णं कण्णिआए उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहा-णामए आलिंग०[2] ॥ ८ ॥

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे भवणे प० कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, देसूणगं कोसं उद्धं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे पासाईए दरिसणिज्जे ॥ ९ ॥

तस्स णं भवणस्स तिदिसिं तओ दारा पं०, ते णं दारा पञ्चधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं विक्खंभेणं, तावतिअं चेव पवेसेणं, सेआवरकणगथूभिआ जाव[3] वणमालाओ णेअव्वाओ ॥ १० ॥

---

१. ०भया-V J1J2 । ०भुया-जीवा. ३।६४३॥ २. द्र. १।१३॥ ३. द्र.जीवा. ३।२९९-३०६ ॥

तस्स णं भवणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहाणामए आलिंग० ॥ ११ ॥

तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महई[१] एगा मणिपेढिआ पं०, सा णं मणिपेढिआ पंचधणुसयाइं आयाम-विक्खंभेणं, अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं सव्वमणिमई अच्छा ॥ १२ ॥

तीसे णं मणिपेढिआए उप्पिं एत्थ णं महं एगे सयणिज्जे पण्णत्ते सयणिज्जवण्णओ भाणिअव्वो[२] त्ति ॥ १३ ॥

"**तीसे ण**"मित्यादि, एतानि सर्वाण्यपि निगदसिद्धानि, **शयनीयवर्णकश्चा**यं जीवाभिगमोक्तः-

"**तस्स णं देवसयणिज्जस्स अयमेआरूवे वण्णावासे पं०, तंजहा-णाणा-मणिमया पडिपाया सोवण्णिआ पाया णाणामणिमयाइं पायसीसगाइं जम्बूणया-मयाइं गत्ताइं वइरामया संधी णाणामणिमए विच्चे रययामई तूली लोहिअक्खामया विब्बोअणा तवणिज्जमईओ गंडोवहाणियाओ**" इति "**से णं सयणिज्जे सालिंगणवट्टिए उभओ विब्बोअणे उभओ उण्णए मज्झे णयगम्भीरे गंगापुलिणवालुआउद्दाल-सालिसए ओअविअखोमदु-गुल्लपट्टपडिच्छयणे आइणग-रूअ-बूर-णवणीअ-तूलतुल्लफासे सुविरइअरयत्ताणे रत्तंसुअसंवुडे सुरम्मे पासादीए ४**" [जीवा.३।१३८] इति ।

अत्र व्याख्या-तस्य देवशयनीयस्यायमेतद्रूपो वर्णव्यासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-नानामणिमयाः प्रतिपादाः-मूलपादानां प्रतिविशिष्टोपष्टम्भकरणाय पादाः प्रतिपादाः, सौवर्णिकाः-सुवर्णमयाः पादाः-मूलपादाः, जाम्बूनदमयानि गात्राणि-ईषादीनि, वज्रमयाः-वज्ररत्नपूरिताः सन्धयः, "नानामणिमए विच्चे" इति, विच्चं नाम व्यूतं विशिष्टं वानमित्यर्थः, रजतमयी तूली लोहिताक्षमयानि "विब्बोअणा" इति उपधानकानि उच्छीर्षकाणीतियावत्, तपनीयमय्यो गण्डोपधानिकाः गल्लमसूरकाणीत्यर्थः । तच्छयनीयं सह आलिङ्गनवर्त्त्या-शरीरप्रमाणेनोप-धानेन यत्तत्तथा, उभयतः-उभौ शिरोऽन्तपादान्तावाश्रित्य विब्बोअणे-उपधाने यत्र तत्तथा, उभयत उन्नतम्, मध्ये नतं च तत् नम्रत्वात् गम्भीरं च महत्त्वात् तत्तथा, गङ्गापुलिनवालुकायाः अवदालः-विदलनं पादादिन्यासे अधोगमनमिति तेन "सालिसए" इति सदृशकं यत्तत्तथा, तथा "ओअविअ"त्ति, विशिष्टं परिकर्म्मितं क्षौमं-कार्पासिकं दुकूलं-वस्त्रं तदेव पट्टः स प्रतिच्छादनम्-आच्छादनं यस्य तत्तथा, "आईणगे"त्यादि, प्राग्वत्, सुविरचितं रजस्त्राणम्-

१. महं एगा-V J1J2 ॥ २. द्र. जीवा. ३।४०७ ॥

आच्छादनविशेषोऽपरिभोगावस्थायां यत्र तत्तथा, रक्तांशुकेन-मशकदंशादिनिवारणार्थकम-शकगृहाभिधानवस्त्रविशेषेण संवृतम्, अत एव सुरम्यम्, "पासादीए" इत्यादि पदचतुष्कं प्राग्वत् ॥८-१३॥ अथास्य प्रथमपरिक्षेपमाह-

से णं पउमे अण्णेणं अट्ठसएणं पउमाणं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमित्ताणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, ते णं पउमा अद्धजोअणं आयाम-विक्खंभेणं, कोसं बाहल्लेणं, दसजोअणाइं उव्वेहेणं, कोसं ऊसिया जलंताओ, साइरेगाइं दसजोअणाइं उच्चत्तेणं[1] ॥ १४ ॥

"**से ण**"मित्यादि, तत्पद्ममन्येनाष्टशतेन पद्मानां '**तदर्द्धोच्चत्वप्रमाणमात्राणां**' तस्य-मूलपद्मप्रमाणस्यार्द्धम्-अर्द्धरूपा उच्चत्वे-उच्छ्रये प्रमाणे च-**आयाम-विस्तारबाहल्य-रूपे** मात्रा-प्रमाणं येषां तानि तथा तेषाम्, **सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्तम्**, अत्र जलोपरितनभागे उच्चत्वस्य व्यवहारप्राप्तस्य विवक्षणादर्द्धप्रमाणं सम्भवति, अन्यथा जलावगाहसहितोच्चत्वविवक्षायामुत्तरसूत्रे सातिरेकपञ्चयोजनानि इति वक्तव्यं स्यात् सामान्यतः । उक्तमेव मानं व्यनक्ति-"**ते ण**"मित्यादि, प्रागुक्तप्रायम् ॥१४॥

तेसिं णं पउमाणं अयमेआरूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा-वइरामया मूला जाव[2] कणगामई कण्णिआ । सा णं कण्णिआ कोसं आयामेणं, अद्धकोसं बाहल्लेणं, सव्वकणगामई अच्छा ॥ १५ ॥

एषां वर्णकमाह-"**तेसि ण**"मित्यादि, व्यक्तम्, "**सा ण**"मित्यादि, इदमपि व्यक्तम्-

तीसे णं कण्णिआए[3] उप्पिं बहुसमरमणिज्जे जाव[4] मणीहिं उवसोभिए ॥ १६ ॥

"**तीसे ण**"मित्यादि, व्यक्तम्, एषु च श्रीदेव्या भूषणादिवस्तूनि तिष्ठन्ति इति सूत्रानुक्तोऽपि विशेषो बोध्यः ॥१५-१६॥

अथ द्वितीयपद्मपरिक्षेपमाह-

---

१. अकखत्रिपबस मु. । सव्वग्गेणं पण्णत्ते-V । "पूर्वप्रकरणे ४/६ 'सव्वग्गेणं पण्णत्ते, इति पाठोऽस्ति । जीवाजीवाभिगमे (३।६५३)पि नीलवद्द्रहप्रकरणे 'सव्वग्गेणं' इति पाठो लभ्यते । वृत्तावपि तथैव व्याख्यातोऽस्ति । अत्राऽपि सव्वग्गेणं इति पाठो युक्तो प्रतिभाति ।" इति V पृ. ४७० टि. ५ ॥ २. द्र. ४।७॥ ३. कण्णियाए-अकखत्रिबस नास्ति ॥ ४. द्र. १।१३॥

तस्स णं पउमस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं सिरीए देवीए चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं चत्तारि पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ॥ १७ ॥

तस्स णं पउमस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं सिरीए देवीए चउण्हं महत्तरिआणं, चत्तारि पउमा प० ॥ १८ ॥

तस्स णं पउमस्स दाहिणपुरत्थिमेणं एत्थ णं सिरीए देवीए अब्भिंतरिआए परिसाए अट्ठण्हं देवसाहस्सीणं अट्ठ पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ । दाहिणेणं मज्झिमपरिसाए दसण्हं देवसाहस्सीणं दस पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ । दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरिआए परिसाए बारसण्हं देवसाहस्सीणं बारस पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ । पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणिआहिवईणं सत्त [1]पउमा पण्णत्ता ॥ १९ ॥

"**तस्स ण**"मित्यादि, तस्य मूलपद्मस्य '**अपरोत्तरस्यां**' वायव्यकोणे **उत्तरस्याम्** '**उत्तरपूर्वस्यां**' ईशानकोणे च सर्वसङ्कलनया तिसृषु दिक्षु, **अत्रान्तरे श्रिया देव्याश्चतुर्णां सामानिकसहस्राणां चत्वारि पद्मसहस्राणि प्रज्ञप्तानि । तस्य पद्मस्य पूर्वस्यां दिशि अत्र श्रियाश्चतसृणां महत्तरिकाणां चत्वारि पद्मानि प्रज्ञप्तानि**, अत्र प्राग्व्यावर्णितविजयदेवसिंहासनपरिवारानुसारेण पार्षद्यादिपद्मसूत्राणि वक्तव्यानि, सुगमत्वाच्च न विव्रियन्ते, यावत् **पश्चिमायां सप्तानीकाधिपतीनां सप्त पद्मानि** ॥१७-१९॥

अथ तृतीयपद्मपरिक्षेपसमयः-

तस्स णं पउमस्स चउद्दिसिं सव्वओ समंता इत्थ णं सिरीए देवीए सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं सोलस पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ॥२०॥

"**तस्स ण**"मित्यादि, तस्य मुख्य**पद्मस्य** चतसृणां दिशां समाहारश्चतुर्दिक् तस्मिन् **चतुर्दिशि सर्वतः समन्तात्, अत्रान्तरे श्रिया देव्याः षोडशानामात्मरक्षकदेवसहस्राणां षोडश पद्मसहस्राणि** । तथाहि-चत्वारि पूर्वस्यां चत्वारि दक्षिणस्यां एवं पश्चिमोत्तरयोः ॥२०॥

---

१. **पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ-अखत्रि । "यत्तु 'सत्त पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ' त्ति पाठो बहुष्वादर्शेषु दृश्यते, सोऽशुद्धोऽवसातव्यो, जीर्णादर्शेषु व्याख्यातपाठस्यैवोपलम्भात्, ग्रन्थान्तरसम्मतत्त्वाच्च" इति हीवृ. ॥**

अथोक्तव्यतिरिक्ताः अन्येऽपि त्रयः परिवेषाः सन्तीत्याह-

से णं पउमे तीहिं पउमपरिक्खेवेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, तं०- अब्भितरकेणं[1] मज्झिमएणं बाहिरएणं, अब्भितरए पउमपरिक्खेवे बत्तीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ । मज्झिमए[2] पउमपरिक्खेवे चत्तालीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ । बाहिरए[3] पउमपरिक्खेवे अडयालीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ । एवमेव सपुव्वा-ऽवरेणं तिहिं पउम-परिक्खेवेहिं एगा पउमकोडी वीसं च पउमसयसाहस्सीओ भवंती ति अक्खायं ॥ २१ ॥

"**से णं पउमे**" इत्यादि, तत्पद्मं 'त्रिभिः' उक्तव्यतिरिक्तैः **पद्मपरिक्षेपैः सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्तम्, तद्यथा-'अभ्यन्तरकेण'** अभ्यन्तरभवेन '**मध्यमकेन**' मध्यभवेन '**बाहिरकेण**' बहिर्भवेन । एतदेव व्यनक्ति-**अभ्यन्तरपद्मपरिक्षेपे द्वात्रिंशत्पद्मानां** 'शत-सहस्राणि' लक्षाणि **मध्यमके चत्वारिंशत्पद्मलक्षाणि बाह्येऽष्टचत्वारिंशत्पद्मलक्षाणि प्रज्ञप्तानि**, इदं च पद्मपरिक्षेपत्रिकं आभियोगिकदेवसम्बन्धि बोध्यम्, अत एव भिन्नत्रिकख्यापनपरं सूत्रं निर्दिष्टम्, अन्यथा सूत्रकृत् चतुर्थ-पञ्चम-षष्ठपरिक्षेपाः इत्येवाकथयिष्यत् । ननु तर्हि आभियोगिकजातीयानामेक एवात्मरक्षकाणामिव वाच्यः, उच्यते, उच्च-मध्य-नीचकार्यनियोज्यत्वेनाभियोगिकानां भिन्नत्वेन परिक्षेपस्यापि भिन्नत्वात् । अथ परिक्षेपत्रिकस्य पद्मसर्वाग्रमाह-"**एवमेव**" इत्यादि, '**एवमेव**' उक्तन्यायेन '**सपूर्वा-ऽपरेण**' सपूर्वा-ऽपरसमुदायेन **त्रिभिः पद्मपरिक्षेपैरेका पद्मकोटी विंशतिश्च पद्मलक्षाणि भवन्तीत्याख्यातं** मयाऽन्यैश्च तीर्थकृद्भिः । सङ्ख्यानयनं च स्वयमभ्यूह्यम्, षण्णां पद्मपरिक्षेपाणां मुख्यपद्मेन सह मीलने सैव सङ्ख्या पञ्चा-शत्सहस्रैकशतविंशत्यधिका ज्ञातव्या, स्थापना यथा-१२०५०१२० ।

ननु कमलानि कमलिन्याः पुष्परूपाणि भवन्ति, मूलं कन्दश्च कमलिन्या एव भवतः, न तु कमलस्य, तत्कथमत्र मूल-कन्दावुक्तौ ?, उच्यते, कमलान्यत्र न वनस्पतिपरिणामानि, किन्तु पृथिवीकायपरिणामरूपाः कमलाकारवृक्षास्तेन तेषामिमौ न विरुद्धाविति । अत्राद्यपरिक्षेप-पद्मानां मूलपद्मादर्द्धमानं सूत्रकृता साक्षादुक्तम्, उत्तरोत्तरपरिक्षेपपद्मानां तु पूर्व२परिक्षेपपद्मेभ्यो-ऽर्द्धार्द्धमानता युक्तितः सङ्गच्छते विजयप्रासादपङ्क्तेरिव, अन्यथाऽल्पर्द्धिक-महर्द्धिकदेवा-

१. ०रए-अब । ०रएणं-V ॥ २. मज्झिमाए-अकखत्रिब ॥ ३. बाहिरियाए-अकखत्रिब J1J2 ॥

नामाश्रयतारतम्यं चतुर्थादिमहापरिक्षेपपद्मानामवकाशः शोभमानस्थितिकत्वं च न सम्भवेत् । अर्द्धार्द्धमानता चैवम्–मूलपद्मं योजनप्रमाणम्, आद्ये परिक्षेपे पद्मानि द्विक्रोशमानानि, द्वितीये क्रोशमानानि, तृतीयेऽर्द्धक्रोशमानानि, चतुर्थे पञ्चधनुःशतमानानि, पञ्चमे सार्द्धद्विशत-धनुर्मानानि, षष्ठे सपादशतधनुर्मानानि, तथा मूलपद्मापेक्षया सर्वपरिक्षेपेषु जलादुच्छ्रयभागो-ऽप्यर्द्धार्द्धक्रमेण ज्ञेयः, यथा मूलपद्मं जलात् क्रोशद्वयमुच्छ्रये आद्ये परिक्षेपे क्रोश उच्छ्रयः, द्वितीये क्रोशार्द्धं, तृतीये क्रोशचतुर्थांशः, चतुर्थे क्रोशाष्टांशः, पञ्चमे क्रोशषोडशांशः, षष्ठे क्रोशद्वात्रिंशांश इति, एवमेव मूलपद्मापेक्षया परिक्षेपपद्मानां बाहल्यमप्यर्द्धार्द्धक्रमेण वाच्यम् ।

ननु षट् परिक्षेपा इति विचार्यम्, योजनात्मना सहस्रत्रयात्मकस्य धनुरात्मना द्विकोटिचत्वारिंशल्लक्षप्रमाणस्य[1] द्रहपरमपरिधेः षष्ठपरिक्षेपपद्मानां षष्टिकोटिधनुःक्षेत्रमात-व्यानाम् एकया पङ्क्त्या कथमवकाशः सम्भवति ? एवं प्रथमपरिक्षेपवर्जं शेषपरिक्षेपाणामपि तत्परिधिमान-पद्ममाने परिभाव्य वाच्यम्, उच्यते, षट् परिक्षेपा इत्यत्र षड्जातीयाः परिक्षेपा इति ग्राह्यम्, आद्या मूलपद्मार्द्धमाना जातिः, द्वितीया तत्पादमाना, तृतीया तदष्टमभागमाना, चतुर्थी तत्षोडशभागमाना, पञ्चमी तद्द्वात्रिंशत्तमभागमाना, षष्ठी तच्चतुःषष्टितमभागमाना, ततश्च तत्तत्परिधिक्षेत्रपरिक्षेपपद्मसङ्ख्या पद्मविस्तारान् परिभाव्य यत्र यावत्यः पङ्क्तयः सम्भवन्ति गणितज्ञेन करणीयाः, तत्र तावतीभिः पङ्क्तिभिरेक एव परिक्षेपो ज्ञेयः, पद्मानामेकजातीयत्वात् ।

किमुक्तं भवति ? महापरिक्षेप एकया पङ्क्त्या न सम्माति, इह परिधिक्षेत्रस्याल्पत्वात्, पद्मानां च बहुत्वात्, ततः पङ्क्तिभिः पद्मानि पूरणीयानि, एवं परिक्षेपः पूर्णो भवति, द्रहपरिधेश्च प्रतिपरिक्षेपं भिन्नमानकत्वात् स पद्मपरिक्षेपो भिन्न एव लक्ष्यते इति । न च द्रहक्षेत्रस्याल्पत्वमिति वाच्यम्, अत्र गणितपदक्षेत्रस्य पञ्चलक्षयोजनप्रमाणत्वात्, सहस्रयोजन-प्रमाणायामस्य पञ्चशतयोजनविष्कम्भेन गुणने एतावत एव लाभात् । पद्मावगाढक्षेत्रं तु सर्वसङ्ख्यया विंशतिः सहस्राणि पञ्चाधिकानि योजनानां षोडशभागीकृतस्यैकस्य योजनस्य त्रयोदश भागाः, २०००५ $\frac{१३}{१६}$ । तथाहि–मूलपद्मावगाहो योजनमेकं जगती च द्वादश योजनानि मूले पृथुरिति, जगतीपूर्वा-ऽपरभागसत्कमूलव्यासमूलपद्मव्यासयोर्मीलनेन पञ्चविंशतिर्योजना-नीति । तथा तत्परिधौ प्रथमः परिक्षेपोऽष्टोत्तरशतपद्मानाम्, तदवगाहक्षेत्रं सप्तविंशतिर्योजनानि, अर्द्धयोजनप्रमाणत्वेन तेषामेकस्मिन् योजने चतुर्णामवकाशाच्चतुर्भिरष्टोत्तरशते भक्ते एतावतामेव लाभात् । ननु योजनार्द्धमानवतां तावतां चतुःपञ्चाशद् योजनानि सम्भवेयुरिति,

१. द्विकोटिद्विचत्वा० मु. ॥

सत्यम्, क्षेत्रबहुत्वादेकपङ्क्त्या व्यवस्थिततत्वेन प्रत्येकं योजनचतुर्थांशावगाहकत्वेन च उक्तसङ्ख्यैव समुचिता, अत्र पद्मरुद्धक्षेत्रस्यैव भणनादिति । तथा द्वितीयः परिक्षेप एकादशाधिकचतुस्त्रिंशत्सहस्राणाम्, तदवगाहक्षेत्रं द्वे सहस्रे पञ्चविंशत्यधिकं शतं च योजनानां एकादश च भागा योजनस्य षोडशभागीकृतस्य २१२५ $\frac{११}{१६}$ ।

उपपत्तिस्तु योजनपादप्रमाणत्वादिमानि षोडश मान्तीति ३४०११ इत्ययं परिक्षेपपद्मराशिः षोडशभिर्भज्यते, आगच्छत्यनन्तरोक्तो राशिः । अस्यां च परिक्षेपजातौ पङ्क्तयः सूत्रोक्तस्व-स्वदिशि निवेशनीयपद्मनिवेशनेन विषमवृत्ताः सम्भाव्यन्ते, पद्मानां विषमसङ्ख्याकत्वादिति । अथ तृतीयः परिक्षेपः षोडशसहस्रपद्मानाम् तदवगाहक्षेत्रं द्वे शते पञ्चाशदधिके योजनानां २५० । उपपत्तिस्तु अमूनि योजनाष्टमभागप्रमाणत्वाद्योजने चतुःषष्टिर्मान्तीति चतुःषष्ट्या १६००० प्रमाणः पद्मराशिर्भज्यते, उपतिष्ठते चायं राशिः । अत्र च पङ्क्तयः समवृत्ता एव निवेशनीयाः, यथेच्छं चतुर्दिक्षु पद्मानां निवेशनादिति । अथ चतुर्थः परिक्षेपो-द्वात्रिंशल्लक्षपद्मानाम्, तदवगाहक्षेत्रं द्वादश सहस्राणि पञ्चशताधिकानि योजनानां १२५०० ।

आनयनोपायस्तु एषां योजनषोडशभागप्रमाणत्वाद्योजने २५६ मान्तीति षट्पञ्चाशदधिक-शतद्वयेन ३२००००० इत्ययं पद्मराशिर्भज्यते, ततो यथोक्तो राशिरायातीति । अथ पञ्चमः परिक्षेपः चत्वारिंशल्लक्षपद्मानाम्, तदवगाहक्षेत्रं त्रीणि सहस्राणि नव शतानि च षडधिकानि योजनानां चत्वारश्च षोडशभागा योजनस्य ३९०६ $\frac{४}{१६}$, उपपत्तिस्तु एषां योजनद्वात्रिंशत्त-मांशप्रमाणत्वादमूनि योजने १०२४ मान्तीति चतुर्विंशत्यधिकसहस्रेण ४०००००० रूपकस्य पद्मराशेर्भागहरणेन प्राप्यते यथोक्तराशिरिति । अथ षष्ठः परिक्षेपः-अष्टचत्वारिंशल्लक्षं पद्मानाम्, तदवगाहक्षेत्रं एकादश शतानि एकसप्तत्यधिकानि योजनानां चतुर्दश च षोडशभागाः योजनस्य ११७१ $\frac{१४}{१६}$, उपपत्तिश्चात्र-अमीषां योजनचतुः-षष्टितमांशप्रमाणत्वाद्योजने ४०९६ मान्तीति षण्णवत्यधिकचतुःसहस्रैः ४८००००० इत्यस्य पद्मराशेर्भागहरणात् यथोक्तो राशिरुपपद्यत इति । पूर्वा-ऽपरपद्मक्षेत्रयोजनमीलनेन च पूर्वोक्तं सर्वाग्रं सम्पद्यते । परिक्षेपाश्चात्र वृत्ताकारेण बोद्ध्याः क्षेत्रस्य बहुत्वात् सम्भवन्तीति । पङ्क्तयश्चात्र द्रहक्षेत्रस्यायतचतुरस्रत्वेन आयामविस्तारयोर्विषमत्वेऽपि पञ्चशतयोजनमर्यादयैव कर्त्तव्या, ततः परं व्याससत्क-पञ्चशतयोजनानां पर्यवसितत्वात्, शोभमानाश्चोक्तरीत्यैव भवन्तीति ।

किञ्च-इमानि पद्मानि शाश्वतानि पार्थिवपरिणामरूपत्वात्, वानस्पतान्यपि बहूनि तत्रोत्पद्यन्ते, यदाहुः **श्रीउमास्वातिवाचकपादाः स्वोपज्ञजम्बूद्वीपसमासप्रकरणे-"नीलोत्पल-**

पुण्डरीक-शतपत्र-सौगन्धिकादिपुष्पाञ्चित" इति । अन्यथा **श्रीवज्रस्वामिपादाः** श्रीदेवता-समर्पितानुपमेयमहापद्मानयनेन पुरिकापुर्य्यां कथं जिनप्रवचनप्रभावनामकार्षुरिति ? एतानि च न शाश्वतानि, तत्रत्यश्रीदेवतादिभिरवचीयमानत्वात्, यदूचुः, **श्रीहेमचन्द्रसूरयःस्वोपज्ञ-परिशिष्टपर्वणि**-

"तदा च देवपूजार्थमवचित्यैकमम्बुजम् ।
श्रीदेव्या देवतागारं, यान्त्या वज्रर्षिरैक्ष्यत ॥१॥" [१२।३७०] इति ।

नन्वयमनन्तरोक्तोऽर्थः कथं प्रत्येतव्यः ?, उच्यते, इदमेव द्वितीयपरिक्षेपसूत्रं प्रत्यायकम् । तथाहि-अत्रैकादशाधिकचतुस्त्रिंशत्सहस्रकमलानि उक्तदिशि मापयितव्यानि । तानि च क्रोशमानानि एकपङ्क्त्या च तदाऽवकाशं लभेरन्, यदा द्वितीयपद्मपरिधिरेका-दशाधिक-चतुस्त्रिंशत्सहस्रकोशप्रमाणः स्यात् । स च तदा स्याद् यदा मूलक्षेत्रायाम-व्यासौ साधिक-षड्विंशतिशतप्रमाणौ स्याताम्, तौ प्रस्तुते न स्तः । तेन यथासम्भवं पङ्क्तिभिर्द्वितीय-परिक्षेपपद्मजातिः पूरणीयेति तात्पर्यम् । एवमन्यपरिक्षेपेष्वपि यथासम्भवं भावना कार्येति । अथ कथमयमर्थः सिद्धान्ततां प्रापित इति ?, उच्यते, अन्यथाऽनुपपत्त्या, न हि यथाक्षरमात्रसन्निवेशं सूरयः सूत्रव्याख्यानपरा भवन्ति, किन्तु प्राक्परार्थाविरोधेन । यदुक्तम्-

"जं[१] जह सुत्ते भणिअं तहेव तं जइ विआलणा नत्थि ।
किं कालिआणुओगो दिट्ठो दिट्ठिप्पहाणेहिं ? ॥१॥" [ ] ति

अलं प्रसङ्गेनेति । अथ पद्मद्रहनामनिरुक्तं पृच्छन्नाह ॥२१॥

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-पउमद्दहे २ ?, गोअमा ! पउमद्दहे णं तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे उप्पलाइं जाव [२]सयसहस्सपत्ताइं [३]पउमद्दहप्पभाइं पउमद्दहवण्णाभाइं [४]सिरी अ इत्थ देवी महिड्ढीआ [५]जाव पलिओवमट्ठिईआ परिवसइ, से एएणट्ठेणं० अदुत्तरं च णं गोअमा ! पउमद्दहस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते, ण कयाइ णासि० ॥ २२ ॥

---

१. यद्यथा सूत्रे भणितम् तथैव तत् यदि विचालना नास्ति ।
किं कालिकानुयोगो दृष्टो दृष्टिप्रधानैः ? ॥१॥

२. सय० V नास्ति । अकखबसमु. J1J2 अस्ति ॥ ३. पउमद्दहप्पभाइं-अकखत्रिपबस नास्ति । V संस्करणे-पउमद्दहागाराइं पउमद्दहवण्णाइं पउमद्दहवण्णाभाइं-पाठः । "जीवाजीवाभिगमे (३।६५९) नीलवद्द्रहवर्णने विशेषणचतुष्टयी विद्यते ।" इति V पृ. ४७१ टि. ७ ॥ ४. सिरी यत्थ-V ॥ ५. द्र. १।२४॥

"**से केणट्ठेण**"मित्यादि, अथ केनार्थेन **भदन्त ! एवमुच्यते-पद्मद्रहः पद्मद्रह ?** इति । **गौतम ! पद्मद्रहे 'तत्र तत्र देशे'** तस्मिन् देशे २ **बहूनि उत्पलानि यावत् शतसहस्रपत्राणि 'पद्मद्रहप्रभाणि'** पद्मद्रहाकाराणि आयतचतुरस्राकाराणीत्यर्थः । एतेन तत्र वानस्पतानि पद्मद्रहाकाराणि पद्मानि बहूनि सन्ति, न तु केवलं पार्थिवानि वृत्ताकाराणि महापद्मादीन्येव तत्र सन्तीति ज्ञापितम् । तथा **पद्मद्रहवर्ण**स्यैव 'आभा' प्रतिभासो येषां तानि तथा । ततस्तानि तदाकारत्वात्तद्वर्णत्वाच्च पद्मद्रहाणीति प्रसिद्धानि, ततस्तद्योगादयं जलाशयोऽपि पद्मद्रहः, उभयेषामपि च नाम्नामनादिकालप्रवृत्तत्वेन नेतरेतराश्रयदोषः । अथ पार्थिवपद्मतोऽप्यस्य नामप्रवृत्तिर्जाताऽस्तीति ज्ञापयितुं प्रकारान्तरेण नामनिबन्धनमाह-**श्रीश्च देवी** पद्मवासाऽत्र **परिवसति**, ततश्च श्रीनिवासयोग्यपद्माश्रयत्वात् पद्मोपलक्षितो द्रह इति पद्मद्रह आख्यायते, मध्यपदलोपिसमासात्, समाधानं शेषं प्राग्वत् ॥२२॥

अथ गङ्गामहानदीस्वरूपमाह-

तस्स णं पउमद्दहस्स पुरत्थिमिल्लेणं तोरणेणं गंगा महाणई पवूढा समाणी पुरत्थाभिमुही पञ्च जोअणसयाइं पव्वएणं गंता गंगावत्तणकूडे आवत्ता समाणी पञ्च तेवीसे जोअणसए तिण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स दाहिणाभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवत्तएणं[1] मुत्तावलिहारसंठिएणं साइरेगजोअणसइएणं पवाएणं[2] पवडइ ॥ २३ ॥

"**तस्स ण**"मित्यादि, **तस्य पद्मद्रहस्य पौरस्त्येन तोरणेन गङ्गा** नाम्नी '**महानदी**' स्वपरिवारभूतचतुर्दशसहस्रनदीसम्पदुपेतत्वेन स्वतन्त्रतया समुद्रगामित्वेन च प्रकृष्टा नदी, एवं सिन्ध्वादिष्वपि ज्ञेयम् । '**प्रव्यूढा**' निर्गता **सती पूर्वाभिमुखी पञ्च योजनशतानि 'पर्वतेन'** पर्वतोपरीत्यर्थः, अथवा णमिति प्राग्वत् पर्वते **गत्वा गङ्गावर्त्तन**नाम्नि **कूटे**, अत्र सामीप्ये सप्तमी "**वटे गावः सुशेरते**" इत्यादिवत्, गङ्गावर्त्तनकूटस्याधस्ताद् 'आवृत्ता सती' प्रत्यावृत्त्येत्यर्थः, **पञ्चयोजनशतानि त्रयोविंशत्यधिकानि त्रींश्चैकोनविंशतिभागान् योजनस्य दक्षिणाभिमुखी पर्वतेन गत्वा महान्** यो **घटस्तन्मुखादिव 'प्रवृत्तिः'** निर्गमो यस्य स तथा तेन । अयमर्थः-यथा घटमुखाज्जलौघो निर्यन् खुभिखुभितिशब्दायमानो बलीयांश्च निर्याति तथाऽयमपीति । '**मुक्तावलीनां**' मुक्तासरीणां यो **हारस्तत्संस्थितेन** तत्संस्थानेनेत्यर्थः, सातिरेकं योजनशतं क्षुद्रहिमवच्छिखरतलादारभ्य दशयोजनोद्वेधप्रपातकुण्डं यावद्धारापातात्

१. ०पवत्तिएणं-J1J2 V **पुके** ॥ **०पवित्तएणं-खस** । **०पवित्तिएणं-त्रि** ॥ २. **पवाहेणं-त्रि** ॥

मानमस्येति **सातिरेकयोजनशतिकस्**तेन तथा '**प्रपातेन**' प्रपतज्जलौघेन, अत्र करणे तृतीया, '**प्रपतति**' प्रपातकुण्डं प्राप्नोतीत्यर्थः । दक्षिणाभिमुखगमनपञ्चयोजनशतादिसङ्ख्या त्वेवम्-हिमवद्गिरिव्यासात् योजन १०५२ कला १२ रूपात् गङ्गाप्रवाहव्यासे योजन ६ क्रोश १ प्रमिते शोधिते शेषं १०४६, क्रोशे तु पादोनं कलापञ्चकं तत्कलाद्वादशकात् शोध्यं ततः शेषाः सप्त सपादाः कलाः, गङ्गाप्रवाहः पर्वतस्य मध्यभागेन पद्मद्रहाद्विनिर्याति तेनास्या दक्षिणाभि-मुखगङ्गाप्रवाहोनगिरिव्यासार्द्धस्य गन्तव्यत्वेन गङ्गाव्यासोनो गिरिव्यासः योजन १०४६ कलसपादसप्त ७ रूपोऽर्द्धीक्रियते जातं यथोक्तं योजन ५२३ कला ३ । यद्यप्यत्र कलात्रिकं किञ्चित्समधिकार्द्धयुक्तमायाति, तथाऽप्यल्पत्वान्न विवक्षितमिति ॥२३॥

अथ जिह्विकाया अवसरः-

गंगा णं महाणई जओ पवडइ, इत्थ णं महं एगा जिब्भिया पण्णत्ता । सा णं जिब्भिआ अद्धजोअणं आयामेणं, छस्सकोसाइं जोअणाइं विक्खंभेणं, अद्धकोसं बाहल्लेणं, मगरमुहविउट्टसंठाणसंठिआ सव्ववइरामई अच्छा सण्हा ॥ २४ ॥

"**गङ्गामहाणई जओ पवडइ इत्थ ण**"मित्यादि, **गङ्गा महानदी** '**यतः**' स्थानात् **प्रपतति अत्रान्तरे महती एका** '**जिह्विका**' प्रणालापरपर्याया **प्रज्ञप्ता** । "**सा णं**" इत्यादि, सा **जिह्विका अर्द्धयोजनमायामेन षट् सक्रोशानि योजनानि विष्कम्भेन** गङ्गामूलव्यासस्य मातव्यत्वात्, **अर्द्धक्रोशं** '**बाहल्येन**' पिण्डेन '**विवृतं**' प्रसारितं यद् '**मकरमुखं**' जलचरविशेषमुखं **तत्संस्थानसंस्थिता** विशेषणस्य परनिपातः प्राग्वत्, **सर्वात्मना वज्रमयी** इत्यादि कण्ठ्यम् ॥२४॥

अथ प्रपातकुण्डस्वरूपमाह-

गंगा णं महाणई जत्थ पवडइ एत्थ णं महं एगे गंगप्पवाए कुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते, सट्ठिं जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं, णउअं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं, अच्छे सण्हे रययामयकूले[1] समतीरे वइरामयपासाणे[2] वइरतले सुवण्ण-सुब्भ-रययाम-यवालुआए वेरुलिअ-मणिफालिअपडलपच्चोअडे सुहोआरे सुहोत्तारे

१. ०मयकुडे-अब J1J2 ॥ २. "**क्षेत्रसमासवृत्तौ तु वज्रमयपार्श्वमित्युक्तम्, तदनुसारेण सूत्रपाठस्तु** '**वयरमयपासे**'**त्ति द्रष्टव्यम्**"-**हीवृ.** ॥

णाणामणितित्थसुबद्धे वट्टे अणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीअलजले संछण्ण-पत्त-भिस-मुणाले बहुउप्पल-कुमुअ-णलिण-सुभग-सोगंधिअ-पोंडरीअ-महा-पोंडरीअ-सयपत्त-सहस्सपत्त-सयसहस्सपत्तपप्फुल्लकेसरोवचिए [1]छप्पय-महुयरपरिभुज्जमाणकमले अच्छ-विमल-पत्थसलिले पुण्णे पडिहत्थभमन्त-मच्छ-कच्छभ-अणेगसउणगणमिहुणपविअरिय सधुन्नइअ-महुरसरणाइए पासाईए। से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसण्डेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, वेइआ-वण[2]संडगाणं पउमाणं [3]वण्णओ भाणिअव्वो ॥ २५ ॥

"**गंगा महाणई**" इत्यादि, **गङ्गा महानदी यत्र प्रपतति** अत्रान्तरे **महदेकं गङ्गाप्रपातकुण्डं 'नाम'** यथार्थनामकं **कुण्डं प्रज्ञप्तम्, षष्टिं योजनान्यायामविष्कम्भाभ्याम्**, अत्र करणविभावनायां "**मूले पण्णासं जोअणवित्थारो ५०, उवरिं सट्ठी ६०**" [ ] इति विशेषोऽस्ति, **श्रीउमास्वातिवाचककृतजम्बूद्वीप-समाससूत्रादा**वपि तथैव। इत्थं च कुण्डस्य यथार्थनामतोपपत्तिरपि भवति, एवमन्येष्वपि यथायोगं ज्ञेयमिति। तथा '**नवतं**' नवत्यधिकं **योजनशतं किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेण** । **श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणपादाः स्वोपज्ञक्षेत्र-विचारसूत्रे**-

"**आयामो विक्खंभो सट्ठिं, कुंडस्स जोअणा हुंति ।**
नउअसयं किंचूणं परिही, दसजोअणोगाहो ॥१॥" [बृ. क्षेत्रस. १।२१८]

इत्यूचुः, **तद्वृत्ता**वपि **श्रीमलयगिरिपादा**स्तथैव, करणरीत्याऽपि तथैवागच्छति, तेन प्रस्तुतसूत्रं गम्भीरार्थं बहुश्रुतैर्विचार्यं नास्मादृशां मन्दमेधसां मतिप्रवेश इति। यद्वा प्रस्तुतसूत्रं पद्मवरवेदिकासहितकुण्डपरिधिविवक्षया प्रवृत्तमिति सम्भाव्यते, तेन न दोषः । तत्त्वं तु केवलिगम्यमिति। **दश योजनानि 'उद्वेधेन'** उण्डत्वेन **'अच्छं'** स्फटिकवद्बहिर्निर्मलप्रदेशं **'श्लक्ष्णं'** श्लक्ष्णपुद्गलनिष्पादितबहिःप्रदेशं **'रजतमयं'** रूप्यमयं **कूलं** यस्य तत्तथा, **समं** न गर्त्तासद्भावतो विषमं **'तीरं'** तीरवर्त्तिजलापूरितं स्थानं यस्मिन् तथा, **वज्रमयाः पाषाणाः** भित्तिबन्धनाय यस्य तत् तथा, **वज्रमयं तलं** यस्य तत्तथा, **'सुवर्णं'** पीतहेम **'सुब्भं'** रूप्यविशेषः **'रजतं'** प्रतीतं त**न्मयो वालुका** यस्मिन् तत्तथा, **वैडूर्यमणि**मयानि **स्फटिक**रत्नसम्बन्धि**पटल**मयानि **'प्रत्यवतटानि'** तटसमीपवर्त्त्यभ्युन्नतप्रदेशा यस्य तत्तथा,

१. छप्पयमहुयरपरिभुज्जमाणकमले-J1J2V नास्ति ॥ २. ०संडपमाणं वण्णओ-V ॥ ३. द्र. १।१०-१३॥

सुखेन 'अवतार:' जलमध्ये प्रवेशनं यस्मिन् तत्तथा, **सुखेन 'उत्तार:'** जलमध्याद् बहिर्विनिर्गमनं यस्मिन् तत्तथा, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः । तथा **नानामणिभिः सुबद्धं तीर्थं** यत्र तत्तथा, अत्र बहुव्रीहावपि क्तान्तस्य परनिपातो भार्यादिदर्शनात् प्राकृतशैलीवशाद्वा । तथा **'वृत्तं'** वर्तुलम् **'आनुपूर्व्येण'** क्रमेण नीचैर्नीचैस्तरभावरूपेण **'सुष्ठु'** अतिशयेन यो **जातो 'वप्र:'** केदारो जलस्थानं तत्र **'गम्भीरम्'** अलब्धस्ताघं **जलं** यस्मिन् तत्तथा, **'सञ्छन्नानि'** जलेनान्तरितानि **पत्र-बिस-मृणालानि** यस्मिन् तत्तथा, अत्र बिसमृणाल-साहचर्यात् पत्राणि-पद्मिनीपत्राणि द्रष्टव्यानि बिसानि-कन्दाः मृणालानि-पद्मनालानि । **बहूनामुत्पलकुमुद-नलिन-सुभग-सौगन्धिक-पुण्डरीक-महापुण्डरीक-शतपत्र-सहस्रपत्र-शतसहस्रपत्राणां 'प्रफुल्लानां'** विकस्वराणां [१]**'केसरैः'** किञ्जल्कैः **'उपशोभितं'** भृतम्, विशेषणस्य व्यस्ततया निपातः प्राकृतत्वात् । **'षट्पदैः'** भ्रमरैः **परिभुज्यमानानि कमलानि** उपलक्षणमेतत् कुमुदादीनि यस्मिन् तत्तथा, **'अच्छेन'** स्वरूपतः स्फटिकवत् शुद्धेन **'विमलेन'** आगन्तुकमलरहितेन **'पथ्येन'** आरोग्यकरणेन **सलिलेन पूर्णम्**, तथा **'पडिहत्था'** अतिप्रभूताः देशीशब्दोऽयं **भ्रमन्तो मत्स्य-कच्छपा** यत्र तत्तथा, **अनेक-शकुनिमिथुनकानां 'प्रविचरितम्'** इतस्ततो गमनं यत्र तत्तथा, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः । तथा **'शब्दोन्न-तिकम्'** उन्नतशब्दकं सारसादिजलचररुतापेक्षया **'मधुरस्वरं'** च हंसभ्रमरादिकूजितापेक्षया, एवंविधं **'नादितं'** विलपितं यत्र तत्तथा । अत्र च यत् कानिचिद्विशेषणानि प्रस्तुतसूत्रदृश्यमानादर्शापेक्षया व्यस्ततया लिखितानि सन्ति, तज्**जीवाभिगम**वाप्यादिवर्णक-सूत्रस्य बहुसमानगमकतया तदनुसारेणेति बोध्यम्, एवमन्यत्रापि । "**पासाईए**"त्ति, अनेन "पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे" इति पदचतुष्टयं ग्राह्यम्, तच्च प्राग्वत् । अथात्र पद्मवरवेदिकाऽऽदिवर्णनायाह-"**से णं**" इत्यादि, व्यक्तम् ॥२५॥

अत्र सुखावतारोत्तारौ कथं भवतः ? इत्याह-

तस्स णं गंगप्पवायकुंडस्स तिदिसिं तओ तिसोवाणपडिरूवगा पं०, तंजहा-पुरत्थिमेणं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं । तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा-वइरामया णेम्मा, रिट्ठामया पइट्ठाणा, वेरुलिआमया खंभा, सुवण्णरुप्पमया फलया, लोहियक्खमईओ सूईओ, वयरामया संधी, णाणामणिमया आलंबणा, आलंबणबाहाओ त्ति ॥२६॥

१. 'केसरैरुपचितम्' इति पुवृ. । 'केसरैः केसरप्रधानैरुपचितं व्याप्तम्' इति हीवृ. ॥

"**तस्स ण**"मित्यादि, तस्य **गङ्गाप्रपात-कुण्डस्य त्रिदिशि** दिक्त्रये वक्ष्यमाणलक्षणे **त्रीणि सोपानप्रतिरूपकाणि प्रज्ञप्तानि**, एतद्व्याख्या प्राग्वत्, शेषं व्यक्तम् । "**तेसि ण**"मित्यादि, व्यक्तम्, जगतीवर्णकतुल्यत्वात् । नवरम् '**आलम्बनाः**' अवतारोत्तारयोरालम्बन-हेतुभूता अवलम्बनबाहाऽवयवाः, **अवलम्बनबाहा** नाम-द्वयोः पार्श्वयोरवलम्बनाश्रयभूता भित्तयः ॥२६॥

तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ पत्तेअं पत्तेअं तोरणे पण्णत्ते । ते णं तोरणा णाणमणिमया णाणामणिमएसु खंभेसु उवणिविट्ठ-संनिविट्ठा विविहमुत्तंतरोवइआ विविहतारारूवोवचिआ ईहामिअ-उसह-तुरग-णर-मगर-विहग-वालग-किण्णर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलयभत्तिचित्ता खंभुग्गयवइरवेइआपरिगयाभिरामा[1] विज्जाहरजमलजुअलजंतजुत्ता[2] विव अच्चीसहस्समालणीआ रूवगसहस्सकलिआ भिसमाणा भिब्भिसमाणा चक्खुल्लोअणलेसा सुहफासा सस्सिरीअरूवा घंटावलिचलिअमहुर-मणहरसरा[3] पासादीआ ॥ २७ ॥

"**तेसि ण**"मित्यादि, तेषां **त्रिसोपानप्रतिरूपकाणां पुरतः प्रत्येकं २ तोरणानि प्रज्ञप्तानि । तानि तोरणानि नानामणिमयानि नानामणिमयेषु स्तम्भेषु 'उपनिविष्टानि'** सामीप्येन स्थितानि, तानि च कदाचिच्चलानि स्थानभ्रष्टानीत्यर्थः, अथवा अपदपतितानि भवेयुरिति '**सन्निविष्टानि**' सम्यग् निश्चलतया अपदपरिहारेण च निविष्टानि, ततो विशेषण-समासः । '**विविधाः**' नानाविच्छित्तिकलिता **मुक्ताः**-मुक्ताफलानि, अन्तराशब्दोऽगृहीत-वीप्सोऽपि सार्मथ्याद्वीप्सां गमयति, **अन्तरान्तरा 'ओअविआ'** आरोपितानि यत्र तानि तथा । **विविधैः 'तारारूपैः'** तारिकारूपै**रुपचितानि**, तोरणेषु हि शोभार्थं तारिका निबध्यन्ते इति प्रतीतं लोकेऽपि । '**ईहामृगाः**' वृकाः '**ऋषभाः**' वृषभाः '**व्यालाः**' भुजगाः '**रुरवः**' मृगविशेषाः '**शरभाः**' अष्टापदाः[4] '**चमराः**' आटव्या गावः '**वनलताः**' अशोकादिलताः प्रतीताः '**पद्मलताः**' पद्मिन्यः शेषं प्रतीतम्, एतासां '**भक्तयः**' विच्छित्तयस्ताभिश्चित्राणि, '**स्तम्भोद्गतया**' स्तम्भोपरिवर्त्तिन्या **वज्रवेदिक**या '**परिगतानि**' परिकरितानि सन्ति यानि

१. खंभुतरवइर० अब ॥ २. अकत्रिबस. मध्ये ०जुअल० नास्ति ॥ ३. घंटावलिचलिअमहुरमण-हरसरा-V नास्ति प राजप्र. सू. २० अस्ति ॥ ४. क । अष्टपदाः-मु. ॥

'अभिरामाणि' अभिरमणीयानि तानि तथा, **'विद्याधरयोः'** विशिष्टशक्तिमत्पुरुषविशेषयोः **'यमलं'** समश्रेणीकं **'युगलं'** द्वन्द्वं तेनैव **'यन्त्रेण'** सञ्चरिष्णुपुरुषप्रतिमाद्वयरूपेण **युक्तानि**, आर्षत्वाच्चैवंविधः समासः, अथवा प्राकृतत्वेन तृतीयालोपात् विद्याधरयमलयुगलेनेवेति, शेषं पूर्ववत् । **'अर्चिषां'** मणिरत्नप्रभाणां **सहस्रैः 'मालनीयानि'** परिवारणीयानि **रूपकसहस्र-कलितानी**ति स्पष्टं, **'भृशम्'** अत्यर्थं **'मानं'** प्रमाणं येषां तानि तथा, "**भिब्भिसमाण**"त्ति, "भासेर्भिस" [श्रीसिद्ध० अ० ८ पा० ४ सू० २०३] इत्यनेन भिसादेशे प्रकृष्टार्थप्रत्यये च रूपसिद्धिः । अत्यर्थं देदीप्यमानानि **लोकने** सति **चक्षुषो 'लेशः'** श्लेषो यत्र तानि त्रिपदो बहुव्रीहिः, पदविपर्यासः प्राकृतत्वात्, शेषं सुबोधम् । नवरं **घण्टावलेर्वा** वशेन **चलिताया मधुरो मनोहरश्च स्वरो** येषु तानि तथा ॥२७॥

तेसि णं तोरणाणं उवरिं बहवे अट्ठमंगलगा पं०, तं०-सोत्थिए सिरिवच्छे जाव[1] पडिरूवा ॥ २८ ॥

तेसि णं तोरणाणं उवरिं बहवे किण्हचामरज्झया जाव[2] सुक्किल्लचामर-ज्झया अच्छा सण्हा रुप्पपट्टा वइरामयदण्डा जलयामलगंधिआ सुरम्मा पासाईया ४ ॥ २९ ॥

"**तेसि ण**"मित्यादि, अस्य व्याख्या प्राग्वत् । "**तेसि ण**"मित्यादि, तेषां **तोरणा-नामुपरि बहवः कृष्णचामरध्वजाः**, एवं नीलचामरध्वजादयोऽपि वाच्याः, ते च सर्वेऽपि कथम्भूताः ? इत्याह-**'अच्छाः'** आकाशस्फटिकवदतिनिर्मलाः, श्लक्ष्णपुद्गलस्कन्धनिर्मापिताः, **रूप्यम**यो वज्रमयस्य दण्डस्योपरि **पट्टो** येषां ते तथा, **वज्रमयो दण्डो** रूप्यपट्टमध्यवर्त्ती येषां ते तथा, जलजानामिव-जलजकुसुमानां पद्मादीनामिवामलः, न तु कुद्रव्यगन्धसम्मिश्रो यो गन्धः स विद्यते येषां ते **जलजामलगन्धिकाः**, "अतोऽनेकस्वराद्" [श्रीसिद्ध० अ० ७ पा० २ सू० ६] इतीकप्रत्ययः, अत एव **सुरम्याः**, "**पासाईआ**" इत्यादि प्राग्वत् ॥२८-२९॥

तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे छत्ताइच्छत्ता पडागाइपडागा घंटाजुअला चामरजुअला उप्पलहत्थगा पउमहत्थगा जाव[3] सयसहस्सपत्तहत्थगा सव्वरयणामया अच्छा जाव[4] पडिरूवा ॥ ३० ॥

---

१. द्र. जीवा. ३।२८७॥ २. द्र. जीवा. ३।२८८॥ ३. द्र. ३।१०॥ ४. द्र. १।८॥

तस्स णं गंगप्पवायकुंडस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे गंगादीवे णामं दीवे पण्णत्ते-अट्ठ जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं साइरेगाइं पणवीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं, दो कोसे ऊसिए जलंताओ सव्ववइरामए अच्छे सण्हे । से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते वण्णओ[1] भाणिअव्वो ॥ ३१ ॥

"**तेसि ण**"मित्यादि, अस्य व्याख्या प्रागवत् ॥३०॥ अथ गङ्गाद्वीपवक्तव्यतामाह-"**तस्स गङ्गप्पवाय**" इत्यादि, **तस्य गङ्गाप्रपातकुण्डस्य बहुमध्यदेशभागेऽत्र महानेको** गङ्गादेव्यावासभूतो द्वीपो **गङ्गाद्वीप** इति **नाम्ना द्वीपः प्रज्ञप्तः**, मध्यलोपिसमासात् साधुः । **अष्टौ योजनान्यायाम-विष्कम्भेण सातिरेकाणि पञ्चविंशतिं योजनानि परिक्षेपेण द्वौ क्रोशौ यावदुच्छ्रितो 'जलान्तात्'** जलपर्यन्तात्, सर्वतोवर्त्तिजलस्य जलानावृतस्य क्षेत्रस्य द्वीपव्यवहारात्, शेषं व्यक्तम् । "**से ण**"मित्यादि, '**स**' गङ्गाद्वीप **एकया पद्मवरवेदिकया एकेन वनखण्डेन च सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्तः, वर्णकश्च भणितव्यो** जगतीपद्मवरवेदिकावदिति ॥३०-३१॥

अथ तत्र यद् यदस्ति तदाह-

गंगादीवस्स णं दीवस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते ॥ ३२ ॥

तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं गंगाए देवीए एगे भवणे पण्णत्ते-कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, देसूणगं च कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे जाव[2] बहुमज्झदेसभाए मणिपेढियाए सयणिज्जे ॥ ३३ ॥

"**गंगादीवस्स ण**"मित्यादि, **गङ्गाद्वीपस्योपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः । तस्य बहुमध्यदेशभागे अत्रान्तरे गङ्गाया देव्या महदेकं भवनं प्रज्ञप्तम्**, आयामादिविभागादिकं शय्यावर्णकपर्यन्तं सूत्रं सव्याख्यानं श्रीभवनानुसारेण ज्ञेयम् ॥३२-३३॥

से केणट्ठेणं जाव[3] सासए णामधेज्जे पण्णत्ते ॥ ३४ ॥

---

१. द्र. १।१०-१३॥ २. द्र. ४।९-१३॥ ३. द्र. ४।२२ पुवृ. हीवृ. ॥

अथ नामान्वर्थं पृच्छति-

तस्स णं गंगप्पवायकुंडस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं गंगामहाणई पवूढा समाणी उत्तरद्धभरहवासं एज्जेमाणी २, सत्तहिं सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी[1] २, अहे खण्डप्पवायगुहाए वेअड्ढपव्वयं दालइत्ता दाहिणड्ढभरहवासं एज्जेमाणी २, दाहिणड्ढभरहवासस्स बहुमज्झदेसभागं गंता पुरत्थाभिमुही आवत्ता समाणी चोद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइत्ता पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ ॥ ३५ ॥

''**से केणट्ठेण**''मित्यादि, व्यक्तम् । अथ गङ्गा यथा यत्र समुपसर्पति तथाऽऽह-''**तस्स ण**''मित्यादि, **तस्य गङ्गाप्रपातकुण्डस्य दाक्षिणात्येन तोरणेन 'प्रव्यूढा'** निर्गता **सती** गङ्गामहानदी **उत्तरार्द्धभरतवर्षं 'इय्रती २'** गच्छन्ती २, **सप्तभिः 'सलिलानां'** नदीनां **सहस्रैः 'आपूर्यमाणा २'** भ्रियमाणा, **अधः खण्डप्रपातगुहाया वैताढ्यपर्वतं 'दारयित्वा'** भित्त्वा **दक्षिणार्द्धभरतं वर्षं इय्रती २, दक्षिणार्द्धभरतवर्षस्य बहुमध्यदेश-भागं गत्वा पूर्वाभिमुखी आवृत्ता सती चतुर्दशभिः सलिलासहस्रैः 'समग्रा'** संपूर्णा आपूर्यमाणा इत्यर्थः, **अधो**भागे **'जगतीं'** जम्बूद्वीपप्राकारं **दारयित्वा पूर्वेण लवणसमुद्रं 'समुपसर्पति'** अवतरतीत्यर्थः ॥३४-३५॥

अथास्या एव प्रवहमुखयोः पृथुत्वोद्वेधौ दर्शयति-

गंगा णं महाणई पवहे छ[2] सकोसाइं जोअणाइं विक्खंभेणं, अद्धकोसं उव्वेहेणं, तयणंतरं च णं मायाए २ परिवड्ढमाणी २ मुहे बासट्ठिं जोअणाइं अद्धजोअणं च विक्खंभेणं, सकोसं जोअणं उव्वेहेणं, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं[3] दोहिं वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता वेइआवणसंडवण्णओ भाणिअव्वो ॥ ३६ ॥

''**गंगा ण**''मित्यादि, **गङ्गा महानदी 'प्रवहे'** यतः स्थानात् नदी वोढुं प्रवर्त्तते स प्रवहः पद्मद्रहात्तोरणान्निर्गम इत्यर्थः, तत्र **षट् सक्रोशानि योजनानि विष्कम्भेण**, तथा **क्रोशार्द्ध-मुद्वेधेन**, महानदीनां सर्वत्रोद्वेधस्य स्वव्यासपञ्चाशत्तमभागरूपत्वात्, अस्तीति शेषः । ''**तदनन्तर**''मिति पद्मद्रहतोरणीयव्यासाद-नन्तरम् एतेन यावत् क्षेत्रं स व्यासोऽनुवृत्तस्तावत् क्षेत्रादनन्तरं गङ्गाप्रपातकुण्डनिर्गमाद-नन्तरमित्यर्थः, एतेन च योऽन्यत्र प्रवहशब्देन

---

१. आपूरेमाणी-V । आभरमाणी-अ । आऊरेमाणी-प. ॥ २. छस्सकोसाइं-V ॥ ३. द्र. १।१०-१३॥

मकरमुखप्रणालनिर्गमः प्रपातकुण्डनिर्गमो वाऽभिहितः स नेति, **श्रीअभयदेवसूरिपादैः समवायाङ्गवृत्तौ श्रीमलयगिरिपादैश्च बृहत्क्षेत्रसमासवृत्तौ** पद्मद्रहतोरणनिर्गमपरत्वेनैव व्याख्यानात्, एवमुद्वेधेऽपि ज्ञेयम् । **'मात्रया २'** क्रमेण २ प्रतियोजनं समुदितयोरुभयोः पार्श्वयोर्धनुर्दशकवृद्ध्या प्रतिपार्श्वं धनुःपञ्चक-वृद्ध्येत्यर्थः, **'परिवर्द्धमाना २' 'मुखे'** समुद्रप्रवेशे **द्वाषष्टिं योजनानि अर्द्धयोजनं च विष्कम्भेन**, प्रवहमानान्मुखमानस्य दशगुणत्वात्, **सक्रोशं योजनमुद्वेधेन**, सार्द्धद्वाषष्टियोजन-प्रमाणमुखव्यासस्य पञ्चाशत्तमभागे एतावत एव लाभात्, **उभयोः पार्श्वयोः द्वाभ्यां पद्मवरवेदिकाभ्यां द्वाभ्यां च वनखण्डाभ्यां सम्परिक्षिप्ता** गङ्गेत्यर्थः ।

प्रतियोजनधनुर्दशकवृद्धिस्त्वेवम्-मुखव्यासात् प्रवहव्यासेऽपनीतेऽवशिष्टे धनूरूपे कृते सरिदायामेन भक्ते लब्धम् इष्टप्रदेशगतयोजनसङ्ख्यया गुण्यते यावत् स्यात् तावत्युभयपार्श्व-योर्वृद्धिर्वाच्या, तथाहि-गङ्गायाः प्रवहे व्यासः योजन ६ क्रोश १, मुखे तु योजन ६२ क्रोश २, तत्र मुखव्यासात् प्रवहव्यासेऽपनीते जातं योजन ५६ क्रोश १, योजनानां च क्रोशकरणाय चतुर्भिर्गुणने उपरितनैकक्रोशप्रक्षेपे च जातः २२५, क्रोशे च धनुषां सहस्रद्वयमिति सहस्रद्वयेन गुण्यन्ते जातानि धनूंषि ४५००००, ततः पञ्चचत्वारिंशता सहस्रैर्भज्यन्ते लब्धानि १० धनूंषि एकेन गुण्यन्ते जातानि १०, "**एकेन गुणितं तदेव भवति**" इति न्यायात्, एतावती च समुदितयोरुभयोः पार्श्वयोः प्रवहादेकस्मिन् योजने गते जलवृद्धिः । अथ मूलाद्योजनद्वयान्ते यदा वृद्धिर्ज्ञातुमिष्यते, तदा दश धनूंषि द्विकेन गुण्यन्ते जातानि २० । एतावती प्रवहादु-भयपार्श्वयोजनद्विकान्ते वृद्धिः स्यात्, अस्याश्चार्द्धे १०, एतावत्येकपार्श्वे वृद्धिः, एवं सर्वत्र भाव्यम् ॥३६॥

अथ गङ्गाऽऽयामादीन्यन्यत्रावतारयति-

एवं सिंधूए वि णेअव्वं जाव[1] तस्स णं पउमद्दहस्स पच्चत्थिमिल्लेणं तोरणेणं सिंधुआवत्तणकूडे दाहिणाभिमुही, सिंधुप्पवायकुंडं, सिंधुद्दीवो, अट्ठो सो चेव जाव अहे[2] तिमिसगुहाए वेअड्ढपव्वयं दालइत्ता पच्चत्थिमा-भिमुही आवत्ता समाणी[3] चोद्दससलिला अहे जगइं पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं जाव[4] समप्पेइ, [5]सेसं तं चेव त्ति ॥ ३७ ॥

१. "अत्र 'णवरं' इति पदमपेक्षितमासीत्, किन्तु न जाने केन कारणेन तस्य स्थाने 'जाव' पदस्य प्रयोगो जातः ।" इति V पृ. ४७४ टि. ६ ॥ २. द्र. ४।३४-३५॥ ३. चोद्दसेहिं सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे-V ॥ ४. द्र. ४।४३॥ ५. द्र. ४।३६॥

"**एवं सिंधु**" इत्यादि, एवं सिन्ध्वा **अपि** स्वरूपं **नेतव्यं यावत् तस्य पद्मद्रहस्य पाश्चात्येन तोरणेन** सिन्धुमहानदी निर्गता सती पश्चिमाभिमुखी पञ्चयोजनशतानि पर्वतेन गत्वा **सिन्ध्वावर्त्तनकूटे** आवृत्ता सती पञ्चयोजनशतानि त्रयोविंशत्यधिकानि त्रींश्चैकोनविंशतिभागान् **दक्षिणाभिमुखी** पर्वतेन गत्वा महता घटमुखप्रवृत्तिकेन यावत्प्रपातेन प्रपतति । सिन्धुमहानदी यतः प्रपतति अत्र महती जिह्विका वाच्या । सिन्धुमहानदी यत्र प्रपतति तत्र **सिन्धुप्रपातकुण्डं** वाच्यम्, तन्मध्ये **सिन्धुद्वीपो** वाच्योऽ**र्थः 'स एव'** यथा गङ्गाद्वीपप्रभाणि गङ्गाद्वीपवर्णाभानि पद्मानि तथा सिन्धुद्वीपप्रभाणि सिन्धुद्वीपवर्णाभानि पद्मानि सिन्धुद्वीप इत्युच्यते, अत्र यावत्पर्यन्तं सूत्रं वाच्यं तथाऽऽह-**यावद् अधस्तमिस्रागुहाया** इत्यादि । अत्र यावत्करणादिदम्-"तस्स णं सिन्धुप्पवायकुंडस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं सिन्धुमहाणई पवूढा समाणी उत्तरद्धभरहवासं एज्जेमाणी २, सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी २" इति सङ्ग्रहः, अधस्तमिस्रागुहाया **वैताढ्यपर्वतं दारयित्वा** "**देशदर्शनाद्देशस्मरण**" [ ] मिति "दाहिणद्धभरहवासस्स बहुमज्झदेसभागं गंता" इति पदानि बोध्यानि । **पश्चिमाभिमुखी आवृत्ता सती चतुर्दशभिः सलिलासहस्रैः 'समग्रा'** पूर्णा **जगतीमधो दारयित्वा पश्चिमायां लवणसमुद्रं समुपसर्पति । 'शेषम्'** उक्तातिरिक्तं प्रवहमुखमानादि **'तदेव'** गङ्गामानसमानमेव ज्ञेयम् ॥३७॥

अथ पद्मद्रहनिर्गततृतीयनदीस्वरूपमाह-

तस्स णं पउमद्दहस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं रोहिअंसा महाणई पवूढा समाणी दोण्णि छावत्तरे जोअणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोअणस्स उत्तराभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवत्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं साइरेगजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ ॥ ३८ ॥

"**तस्स ण**"मित्यादि, व्यक्तम् । नवरं **द्वे षट्-सप्तत्यधिके योजनशते षट् च एकोनविंशतिभागान्** २७६ $\frac{६}{१९}$ **योजनस्य** एतावतीं भुवं **'उत्तराभिमुखी'** हैमवतक्षेत्राभिमुखी **पर्वतेन गत्वा** । अत्रोपपत्तिः-हिमवद्व्यासाद्द्रहव्यासे-ऽपनीते शेषहिमवद्व्यासेऽर्द्धीकृते एतावत एव लाभात् । ननु गङ्गायां दक्षिणाभिमुखं गिरिगमनं पञ्च योजनशतानि २३ योजनानि कलात्रिकं च समधिकमिति, अस्यास्तु षट्सप्त-त्यधिके द्वे शते षट् च कलाः किमित्येतावदन्तरम् ?, उच्यते, गङ्गायाः गिरिमध्यवर्त्तिना पूर्वदिक् तोरणेन निर्गतायाः पञ्चशतयोजनपूर्वाभिमुखगमनानन्तरं दक्षिणादिग्गामिन्याः स्वव्यासरहितगिरि-व्यासार्द्धगामित्वम्, एवं सिन्ध्वा अपि पञ्चशतयोजनपश्चिमाभिमुखगमनादनु, अस्यास्तु

उत्तरदिक्तोरणेन निर्गतायाः उत्तरगामिन्या द्रहव्यासशुद्धगिरिव्यासार्द्धगामित्वमिति भेदः ॥३८॥

अथास्या जिह्विकामाह –

रोहि[१]अंसा णामं महाणई जओ पवडइ, एत्थ णं महं एगा जिब्भिआ पण्णत्ता । सा णं जिब्भिआ जोअणं आयामेणं, अद्धतेरसजोअणाइं विक्खंभेणं, कोसं बाहल्लेणं, मगरमुहविउट्ट-संठाणसंठिआ सव्ववइरामई अच्छा ॥ ३९ ॥

"**रोहिअं**" इत्यादि, व्यक्तम् । नवरं **आयामे योजनं विष्कम्भ**माने**ऽर्द्धत्रयोदशानि 'योजनानि'** सार्द्धद्वादशयोजनानि **बाहल्ये क्रोशं**, गङ्गाजिह्विकाया अस्या द्विगुणत्वात् ॥३९॥

अथ कुण्डस्वरूपमाह–

रोहिअंसा महाणई जहिं पवडइ, एत्थ णं महं एगे रोहिअंसप्पवायकुण्डे णाम कुण्डे पण्णत्ते–सवीसं जोअणसयं आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि असीए जोअणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, दसजोअणाइं उव्वेहेणं, अच्छे कुंडवण्णओ[२] जाव तोरणा ॥ ४० ॥

तस्स णं रोहिअंसप्पवायकुंडस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे रोहिअंसा णामं दीवे पण्णत्ते–सोलस जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं, साइरेगाइं पण्णासं जोयणाइं परिक्खेवेणं, दो कोसे ऊसिए जलंताओ, सव्वरयणामए अच्छे सण्हे सेसं तं चेव[३] जाव भवणं अट्ठो अ भाणिअव्वो त्ति ॥४१॥

"**रोहिअंसा**" इत्यादि, प्रायः प्रकटार्थम्, परमायाम-**विष्कम्भयोर्विंशत्यधिकं [योजनशतम्]**, गङ्गाप्रपातकुण्डादस्य द्विगुणत्वात् । अथात्र द्वीपमाह–"**तस्स ण**"मित्यादि, प्रकटार्थम्, [४]नवरं अर्थः "से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ रोहिअंसादीवे २" इत्याद्यभिलापेन ज्ञेयः ॥४०–४१॥ सम्प्रत्यस्या येन तोरणेन निर्गमः, यस्य च क्षेत्रस्य स्पर्शना, यावांश्च नदीपरिवारः, यत्र च सङ्क्रमस्तथाऽऽह–

तस्स णं रोहिअंसप्पवायकुंडस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं रोहिअंसा महाणई पवूढा समाणी हेमवयं वासं एज्जेमाणी २, चउद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी २, सद्दावइ वट्टवेअड्ढपव्वयं अद्धजोअणेणं असंपत्ता समाणी

---

१. त्रिमु. । ०यंसा णं महा० अकखबस । ०यंसा महा० V ॥ २. द्र. ४।२५–३०॥ ३. द्र. ४।३१–३४॥ ४. नवरं अर्थः – मु.नास्ति, पुके अस्ति ।

पच्चत्थाभिमुही आवत्ता समाणी हेमवयं वासं दुहा विभयमाणी २, अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइत्ता पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ ॥ ४२ ॥

"**तस्स ण**"मित्यादि, तस्य-**रोहितांशाप्रपातकुण्डस्य औत्तराहेण तोरणेन रोहितांशा महानदी 'प्रव्यूढा'** निर्गता **सती हैमवतं वर्षं 'इय्रती २'** गच्छन्ती २, **चतुर्दशभिः सलिलासहस्त्रैः आपूर्यमाणा २, शब्दापाति**नामानं **वृत्तवैताढ्यपर्वतं अर्द्धयोजनेना-सम्प्राप्ता सती पश्चिमाभिमुखी आवृत्ता सती हैमवन्तं वर्षं द्विधा विभजन्ती २, अष्टाविंशत्या सलिलासहस्त्रैः 'समग्रा'** परिपूर्णा **जगतीम् अधो दारयित्वा पश्चिमायां लवणसमुद्रं प्रविशति** ॥४२॥

अस्या एव मूलविस्ताराद्याह-

रोहिअंसा णं पवहे अद्धतेरसजोअणाइं विक्खंभेणं, कोसं उव्वेहेणं, तयणंतरं च णं मायाए २ परिवड्ढमाणी २ मुहमूले पणवीसं जोअणसयं विक्खंभेणं, अड्ढाइज्जाइं जोअणाइं उव्वेहेणं, उभओ पासिं दोहिं पउम-वरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता ॥ ४३ ॥

"**रोहिअंसा ण**"मित्यादि, **रोहितांशा 'प्रवहे'** मूले-ऽ**र्द्धत्रयोदशानि योजनानि विष्कम्भेण**, प्राच्यक्षेत्रनदीतो द्विगुणविस्तारकत्वात् । **क्रोश-मुद्वेधेन** प्रवहव्यासपञ्चाशत्तम-भागरूपत्वात् । **तदनन्तरं 'मात्रया २'** क्रमेण २ प्रतियोजनं समुदितयोरुभयोः पार्श्वयोर्धनुर्विंशत्या वृद्ध्या प्रतिपार्श्वं धनुर्दशकवृद्ध्येत्यर्थः, **परिवर्द्धमाना २ 'मुखमूले'** समुद्रप्रवेशे **पञ्चविंशतं योजनशतिं विष्कम्भेण**, प्रवहव्यासाद्दशगुणत्वात्, **अर्द्धतृतीयानि योजनानि उद्वेधेन**, मुखव्यासपञ्चाशत्तमभागरूपत्वात्, शेषं प्राग्वत् ॥४३॥

अथ हिमवति कूटान्याह-

चुल्लहिमवन्ते णं भन्ते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पं० ?, गोयमा ! एक्कारस कूडा पं०, तं०-सिद्धायतणकूडे १ चुल्लहिमवन्तकूडे २ भरहकूडे[१] ३ इलादेवीकूडे ४ गंगादेवीकूडे ५ सिरिकूडे ६ रोहिअंसकूडे ७ सिन्धु-देवीकूडे ८ सुरादेवीकूडे ९ हेमवयकूडे १० वेसमणकूडे ११ ॥ ४४ ॥

१. त्रिपमु. । सिन्धुकूडे-V ॥

"**चुल्लहिमवन्ते ण**"मित्यादि, व्यक्तम् । नवरं **सिद्धायतनकूटं क्षुल्लहिमवद्गिरि-**कुमारदेव**कूटं भरताधिपदेवकूटम्, इलादेवी-सुरादेवीकूटे** तु षट्पञ्चाशद्दिक्कुमारीदेवी-वर्गमध्यगतदेवीकूटे, **गङ्गादेवीकूटं श्रीदेवीकूटं रोहितांशादेवीकूटं सिन्धुदेवीकूटं हैमवतवर्षेशसुरकूटं वैश्रमण**लोकपाल**कूटम्** ॥४४॥

कहि णं भन्ते ! चुल्लहिमवन्ते वासहरपव्वए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पं० ?, गोअमा ! पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, चुल्लहिमवन्तकूडस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं सिद्धायतणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते-पंच जोअणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले पंच जोअणसयाइं विक्खंभेणं, मज्झे तिण्णि अ पण्णत्तरे जोअणसए विक्खंभेणं, उप्पिं अड्ढाइज्जे जोअणसए विक्खंभेणं, मूले एगं जोअणसहस्सं पंच य एगासीए जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं, मज्झे एगं जोअणसहस्सं एगं च छलसीअं जोअणसयं किंचिविसेसूणं परिक्खेवेणं, उप्पिं सत्तएक्काणउए जोअणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, मूले वित्थिण्णे मज्झे संखित्ते उप्पिं तणुए, गोपुच्छ-संठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे । से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ॥ ४५ ॥

अथ तेषामेव स्थानादिस्वरूपमाह-"**कहि ण**"मित्यादि, क्व **भदन्त ! क्षुल्लहिम-वद्वर्षधरपर्वते सिद्धायतनकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तम् ?**। "**गौतमे**"त्यादि निर्वचनसूत्रं व्यक्तम् । नवरं **पञ्चयोजनशतान्युच्चत्वेन, मूले पञ्चयोजनशतानि विष्कम्भेण, मध्ये त्रीणि च योजनशतानि 'पञ्चसप्ततानि'** पञ्चसप्तत्यधिकानि **विष्कम्भेन, उपरि अर्द्धतृतीयानि योजनशतानि विष्कम्भेन । मूले एकं योजनसहस्त्रं पञ्च एकाशीत्यधिकानि योजन-शतानि 'किञ्चिद्विशेषाधिकानि'** किंचिदधिकानीत्यर्थः, **मध्ये एकं योजनसहस्त्रम् एकं षडशीत्यधिकं योजनशतं 'किंचिद्विशेषोनं'** किंचिदूनमित्यर्थः । अयं भावः-एकं सहस्त्रमेकं शतं पञ्चाशीतिर्योजनानि पूर्णानि शेषं च क्रोशत्रिकं धनुषामष्टशतानि त्रयोविंशत्यधिकानि इति किंचित्षडशीतितमं योजनं विवक्षितमिति । तथा **उपरि सप्त योजनशतानि एकनवत्यधिकानि** ७९१ **किंचिदूनानि परिक्षेपेण** । अत्राप्ययं भावः-सप्त शतानि नवतिर्योजनानि पूर्णानि, शेषं क्रोशद्विकं धनुषां सप्त शतानि पंचविंशत्यधिकानीति

किंचिद्विशेषोनम् एकनवतितमं योजनं विवक्षितम् । परिक्षेपेणेति सर्वत्र ग्राह्यम्, शेषं स्पष्टम् । अथात्र पद्मवरवेदिकाद्याह-"**से ण**"मित्यादि प्रकटम् ।।४५।।

अत्र यदस्ति तत्कथनायोपक्रमते-

सिद्धायणस्स कूडस्स णं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव[1] ।। ४६ ।।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे सिद्धायणे पण्णत्ते-पण्णासं जोअणाइं आयामेणं, पणवीसं जोअणाइं विक्खंभेणं[2], छत्तीसं जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, जाव जिणपडिमावण्णओ भाणिअव्वो[3] ।। ४७ ।।

"**सिद्धायणण**"मित्यादि, निगदसिद्धम् । नवरं प्रथमयावत्पदेन वैताढ्यगतसिद्धायतन-कूटस्येवात्र वर्णको ग्राह्यः, द्वितीयेन तद्गतसिद्धायतना-दिवर्णक इति ।।४६-४७।। अथात्रैव क्षुद्रहिमवद्गिरि-कूटवक्तव्यमाह-

कहि णं भन्ते ! चुल्लहिमवन्ते वासहरपव्वए चुल्लहिमवन्तकूडे नामं कूडे पण्णत्ते ?, गो० ! भरहकूडस्स पुरत्थिमेणं, सिद्धायणकूडस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं चुल्लहिमवन्ते वासहरपव्वए चुल्लहिमवन्तकूडे णामं कूडे पण्णत्ते । एवं जो चेव सिद्धायणकूडस्स उच्चत्त-विक्खंभ-परिक्खेवो जाव[4] ।। ४८ ।।

"**कहि ण**"मित्यादि, क्व **भदन्त ! क्षुद्रहिमवति वर्षधरपर्वते क्षुद्रहिमवत्कूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तम् ?** "**गौतमे**"त्यादि उत्तरसूत्रं प्राग्वत् । नवरं "**एवं जो चेवे**"त्यादि अतिदेशसूत्रे 'एव'मित्युक्तप्रकारेण य एव **सिद्धायतनकूटस्यो**च्चत्वविष्कम्भाभ्यां युक्तः परिक्षेपः **उच्चत्वविष्कम्भपरिक्षेपः**, मध्यपदलोपी समासः, स एव इहापि हिमवत्कूटे बोध्य इत्यर्थः । इदं च वचनम् उपलक्षणभूतं तेन पद्मवरवेदिकादिवर्णनं समभूमिभागवर्णनं च ज्ञेयम् ।।४८।। कियत्पर्यन्तम् ? इत्याह-

बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे पासायवडेंसए पण्णत्ते, बासट्ठिं जोअणाइं अद्धजोअणं च उच्चत्तेणं[5],

१. द्र. १।३६।। २. द्र. १।३७-४०।। ३. त्रिपमु. । णेयव्वो-J1J2 V ।। ४. द्र. ४।४५-४६।। ५. विक्खंभेण-अकखत्रिबस पुवृ. हीवृ. J1J2 । द्र. जीवा. ३।३५९।।

इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च विक्खिंभेणं[१], अब्भुग्गय-मूसिअपहसिए विव विविहमणि-रयणभत्तिचित्ते वाउद्धुअविजयवेजयंतीपडाग-च्छत्ताइच्छत्त-कलिए तुंगे गगणतलमभिलंघमाणसिहरे जालंतररयण पंजरुम्मीलिए व्व मणि-रयणथूभिआए विअसिअसयवत्त-पुंडरीअ-तिलय-रयण-द्धचंदचित्ते णाणामणिमयदामालंकिए अंतो बहिं च सण्हवइर[२]-तवणिज्जरुइलवालु-गापत्थडे सुहफासे सस्सिरीअरूवे पासाईए जाव पडिरूवे ॥ ४९ ॥

यावद् बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्रान्तरे महानेकः प्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः, प्रासादानाम्–आयामाद् द्विगुणोच्छ्रितवास्तुविशेषाणामवतंसक इव–शेखरक इव प्रासादावतंसकः प्रधानप्रासाद इत्यर्थः, स च प्रासादो **द्वाषष्टिं योजना-न्यर्द्धयोजनं च उच्चत्वेन एकत्रिंशद् योजनानि क्रोशं च विष्कम्भेण** समचतुर-स्रत्वादस्यायामचिन्ता सूत्रकृता न कृता, तत्र हेतुर्वैताढ्यकूटगतप्रासादाधिकारे निरूपित इति ततो ज्ञेयः । कीदृशः ? इत्याह–**अभ्युद्गता**–आभिमुख्येन सर्वतो विनिर्गता **उत्सृता**–प्रबलतया सर्वासु दिक्षु प्रसृता, यद्वा अभ्रे–आकाशे उद्गता उत्सृता–प्रबलतया सर्वतस्तिर्यक् प्रसृता एवंविधा या **प्रभा** तया **'सित इव'** बद्ध इव तिष्ठतीति गम्यते, अन्यथा कथमिव सोऽत्युच्चैर्निरालम्बस्तिष्ठतीति भावः । अत्र हि उत्प्रेक्षया इदं सूचितं भवति–ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् आयततया याः प्रासादप्रभास्ताः किल रज्जवस्ताभिर्बद्ध इति, यदिवा प्रबलश्वेतप्रभापटलतया प्रहसित इव–प्रकर्षेण हसित इवेति । **'विविधाः'** अनेकप्रकारा ये **मणयो रत्नानि** च, मणिरत्नयोर्भेदश्चात्र प्राग्वत्, तेषां **'भक्तिभिः'** विच्छित्तिभिः **'चित्रः'** नानारूप आश्चर्यवान् वा, **'वातोद्धूता'** वायुकम्पिता **'विजयः'** अभ्युदयस्तत्संसूचिका **वैजयन्ती**नाम्न्यो याः **पताकाः**, अथवा विजया इति वैजयन्तीनां पार्श्वकर्णिका उच्यन्ते तत्प्रधाना वैजयन्त्यः–पताकास्ता एव विजयवर्जिता वैजयन्त्यः **'छत्रातिच्छत्राणि'** उपर्युपरिस्थितान्यातपत्राणि तैः **कलितः, तुङ्गः** उच्चैस्त्वेन सार्द्धद्वाषष्टियोजनप्रमाणत्वात्, अत एव **गगनतलम् 'अभिलङ्घयद्'** अनुलि-खच्छिखरं यस्य स तथा, **'जालानि'** जालकानि गृहभित्तिषु लोके यानि प्रतीतानि **तदन्तरेषु** विशिष्टशोभानिमित्तं **रत्नानि** रचना वा यस्मिन् स तथा, सूत्रे चात्र विभक्तिलोपः प्राकृतत्वात्,

१. उड्ढं उच्चत्तेणं-अकखबत्रिबस पुवृ. हीवृ. J1J2 ॥ २. द्र. जीवा. ३।३०७॥

पञ्जराद् 'उन्मीलित इव' बहिष्कृत इव, यथा किमपि वस्तु वंशादिमयप्रच्छादनविशेषाद्बहिः कृतमत्यन्तमविनष्टच्छायं भवति, एवं सोऽपि प्रासादावतंसक इति भावः । अथवा जालान्तरगतरत्नपञ्जरैः-रत्नसमुदायविशेषैः उन्मीलित इव उन्मिषितलोचन इवेत्यर्थः, '**मणिकनकमयस्तूपिकाक**'[1] इति प्रतीतम् । '**विकसितानि**' विकस्वराणि **शतपत्राणि** '**पुण्डरीकाणि च**' कमलविशेषाः द्वारादिषु तैः '**चित्रः**' नानारूप आश्चर्यवान् वा, **नानामणिमयदामालङ्कृत** इति व्यक्तम्, **अन्तर्बहिश्च** '**श्लक्ष्णः**' मसृणः स्निग्ध इत्यर्थः, '**तपनीयस्य**' रक्तसुवर्णस्य **रुचिरा** या '**वालुकाः**' कणिकास्तासां '**प्रस्तटः**' प्रतरः प्राङ्गणेषु यस्य स तथा, शेषं पूर्ववत् ॥४९॥

तस्स णं पासायवडेंसगस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पं० जाव[2] सीहासणं सपरिवारं ॥ ५० ॥

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-चुल्लहिमवन्तकूडे २ ?, गो० ! चुल्लहिमवन्ते णामं देवे महिड्ढीए जाव[3] परिवसइ ॥ ५१ ॥

"**तस्स ण**"मित्यादि, व्यक्तम् । अथास्य नामान्वर्थं व्याचिख्यासुराह-"**से केणट्ठेण**"-मित्यादि, अथ केनार्थेन **भदन्त ! एवमुच्यते-क्षुद्रहिमवत्कूटं २ ?। गौतम ! क्षुद्रहिमवन्नामा देवो महर्द्धिको यावत्** अत्र **परिवसति**, तेन 'क्षुद्रहिमवन्तकूट'मिति क्षुद्रहिमवत्कूटम् । अत्र च सूत्रेऽदृष्टमपि "से तेणट्ठेणं चुल्लहिमवन्तकूडे २" इत्येतद्रूपं सूत्रं बोध्यम्, अन्वर्थोपपत्तिश्चात्र दक्षिणार्द्धभरतकूटस्येव ज्ञेयेति ॥५०-५१॥ अथास्य राजधानीवक्तव्यमाह-

कहि णं भन्ते ! चुल्लहिमवन्तगिरिकुमारस्स देवस्स चुल्लहिमवन्ता णामं रायहाणी पं० ?, गो० ! चुल्लहिमवन्तकूडस्स दक्खिणेणं तिरियमसंखेज्जे दीव-समुद्दे वीईवइत्ता अण्णं जम्बुद्दीवं २ दक्खिणेणं बारस जोअण-सहस्साइं ओगाहित्ता इत्थ णं चुल्लहिमवन्तस्स[3] गिरिकुमारस्स देवस्स चुल्लहिमवन्ता णामं रायहाणी पं०-बारस जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं, एवं विजयरायहाणीसरिसा भाणिअव्वा[4] ॥ ५२ ॥

१. द्र. १।४३-४४॥ जीवा. ३।३०८-३१३॥ २. द्र. १।२४॥ ३. चुल्लहिमवंतकूडस्स-अकखत्रिबस J1J2 ॥ ४. द्र. जीवा. ३।३५१-५६५॥ अत्र सूत्र-वृन्त्योर्भेदः ॥

एवं अवसेसाण वि कूडाणं वत्तव्वया णेअव्वा, आयाम-विक्खंभ-परिक्खेव-पासाय-देवयाओ सीहासणपरिवारो[1] अट्ठो अ देवाण य देवीण य रायहाणीओ णेअव्वाओ[2] । चउसु देवा चुल्लहिमवन्त १ भरह २ हेमवय ३ वेसमणकूडेसु ४, सेसेसु देवयाओ ॥ ५३ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, उत्तानार्थम्, **क्षुल्लहिमवती** क्षुद्रहिमवती वा **राजधानी** 'एव'-मित्युक्तप्रकारेण यथौचित्येनेति । "**एव**"मित्यादि, 'एवमि'ति क्षुद्रहिमवत्कूट-न्यायेनाव-**शेषाणामपि** भरतकूटादीनां **वक्तव्यता नेतव्या, आयाम-विष्कम्भ-परिक्षेपाः**, अत्रो-पलक्षणादुच्चत्वमपि, तथा **प्रासादास्तथैव**, '**देवताः**' अत्र देवताशब्दो देवजातिवाची तेन भरतादयो देवा इलादेवीप्रमुखा देव्यश्च, ततो द्वन्द्वे ताः, तथा **सिंहासनं परिवारः 'अर्थश्च'** स्वस्वनामसम्बन्धी तथा **देवानां देवीनां च राजधान्यो नेतव्या** इति । '**चतुर्षु**' क्षुल्ल-हिमवदादिकूटेषु **देवा** अधिपाः, **शेषेषु** '**देवताः**' देव्यः, तत्र इलादेवी-सुरादेव्यौ षट्पञ्चा-शद्दिक्कुमारीगणान्तर्वर्त्तिन्यौ ज्ञेये, एषां च कूटानां व्यवस्था पूर्वं २ पूर्वस्यामुत्तरमुत्तरम-परस्यामिति ॥५२-५३॥

अथास्य क्षुद्रहिमवत्त्वे कारणमाह–

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ–चुल्लहिमवन्ते वासहरपव्वए २ ? गो० ! महाहिमवन्तवासहरपव्वयं पणिहाय आयामुच्चत्तुव्वेह-विक्खंभ-परिक्खेवं पडुच्च ईसिं खुड्डतराए चेव हस्सतराए चेव णीअतराए चेव, चुल्लहिमवन्ते अ इत्थ देवे महिड्ढीए[3] जाव पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से एएणट्ठेणं गो० ! एवं वुच्चइ–चुल्लहिमवन्ते वासहरपव्वए २ । अदुत्तरं च णं गो० ! चुल्ल-हिमवन्तस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते, जं ण कयाइ णासि० ॥ ५४ ॥

"**से केणट्ठेण**"मित्यादि, अथ केनार्थेन **भदन्त ! एवमुच्यते–क्षुल्लहिमवद्वर्षधरपर्वतः २ ?। गौतम ! महाहिमवद्वर्षधरपर्वतं 'प्रणिधाय'** प्रतीत्याश्रित्येत्यर्थः, **आयामोच्चत्वोद्वेध-विष्कम्भ-परिक्षेपम्**, अत्र समाहारद्वन्द्वस्तेन सूत्रे एकवचनम्, '**प्रतीत्य**' अपेक्ष्य ईषत् '**क्षुद्रतरक एव**' लघुतरक एव यथासम्भवं योजनाया विधेयत्वेनायामाद्यपेक्षया **ह्रस्वतरक** **एवोद्वेधापेक्षया नीचतरक एवो**च्चत्वापेक्षया, अन्यच्च **क्षुद्रहिमवांश्चात्र देवो महर्द्धिको यावत् पल्योपमस्थितिकः परिवसति**, शेषं प्राग्वत् ॥५४॥

१. सीहासणसपरिवारो–अ ॥ २. द्र. ४।४७–५१॥ ३. द्र. १।२४॥

अथानेन वर्षधरेण विभक्तस्य हैमवतक्षेत्रस्य वक्तव्यमाह-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे हेमवए णामं वासे पं० ?, गो० ! महाहिमवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं, चुल्लहिमवन्तस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे हेमवए णामं वासे पण्णत्ते। पाईण-पडीणायए उदीण-दाहिणवित्थिण्णे पलिअंकसंठाणसंठिए दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, दोण्णि य जोअणसहस्साइं एगं च पंचुत्तरं जोअणसयं पंच य एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खंभेणं। तस्स बाहा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं छज्जोअणसहस्साइं सत्त य पणवण्णे जोअणसए तिण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं। तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया दुहओ लवणसमुद्दं पुट्ठा पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा, पच्चत्थिमिल्लाए जाव पुट्ठा, सत्ततीसं जोअणसहस्साइं [१]छच्च चउवत्तरे जोअणसए सोलस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स किंचिविसेसूणे आयामेणं। तस्स धणुं दाहिणेणं अट्ठतीसं जोअणसहस्साइं सत्त य चत्ताले जोअणसए दस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं॥ ५५॥

"**कहि ण**"मित्यादि, क्व **भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे हैमवतं नाम वर्षं प्रज्ञप्तम् ?**। **गौतम ! महाहिमवतो वर्षधरपर्वतस्य "दक्खिणेणे**"त्यादि, व्यक्तम्, **अत्रान्तरे जम्बूद्वीपे द्वीपे हैमवतनाम वर्षं प्रज्ञप्तमित्यादि** सर्वं प्राग्वत्। नवरं **पल्यङ्कसंस्थानसंस्थितम्** आयतचतुरस्रत्वात्, तथा **द्वे योजनसहस्रे एकं च पञ्चोत्तरं योजनशतं पञ्च चैकोनविंशतिभागान्** $२१०५\frac{५}{१९}$ **योजनस्य** यावद्विष्कम्भेन, क्षुद्रहिमवद्गिरिविष्कम्भादस्य द्विगुणविष्कम्भ इत्यर्थः। अथास्य बाहाद्याह-"**तस्स बाहा**" इत्यादि, व्यक्तम्। "**तस्स जीवा उत्तरेण**"मित्यादि, प्राग्वत्, **सप्तत्रिंशद् योजनसहस्राणि षट् चतुःसप्ततानि योजन-**

१. छच्च चउदुत्तरे-अ J1। छच्च-योवत्तरे-क। छच्च चोवुत्तरे-त्रि। छच्चेयत्तेर-ब J2। छच्चोयत्तरे-स॥

शतानि षोडश कलाः ३७,६७४ $\frac{१६}{१९}$ किंचिदूना आयामेनेति । ''**तस्स धणु**''मित्यादि, तस्य धनुःपृष्ठ**मष्टत्रिंशद्योजनसहस्राणि सप्त च** 'चत्वारिंशानि' चत्वारिंशदधिकानि **योजनशतानि दश च एकोनविंशतिभागान् योजनस्य ३८७४० $\frac{१०}{१९}$ परिक्षेपेणेति** ॥५५॥

हेमवयस्स णं भन्ते ! वासस्स केरिसए आयारभावपडोआरे पण्णत्ते ?, गो० ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, एवं[1] तइअसमाणुभावो [2]णेअव्वो त्ति ॥ ५६ ॥

अथ कीदृशमस्य स्वरूपम् ? इत्याह-''**हेमवयस्स ण**''मित्यादि, व्याख्यातप्रायम् । नवरं ''**एव**''मिति उक्तप्रकारेण '**तृतीयसमा**' सुषमदुष्षमारकस्तस्य '**अनुभावः**' स्वभावः स्वरूपमितियावत् '**नेतव्यः**' स्मृतिपथं प्रापणीय इत्यर्थः ॥५६॥

अथात्र क्षेत्रविभागकारिगिरिस्वरूपं निर्दिशति-

कहि णं भन्ते ! हेमवए वासे [3]सद्दावई णामं वट्टवेअड्डपव्वए पण्णत्ते ?, गोअमा ! रोहिआए महाणईए पच्चत्थिमेणं, रोहिअंसाए महाणईए पुरत्थिमेणं, हेमवयवासस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं सद्दावई णामं वट्टवेअड्डपव्वए पण्णत्ते-एगं जोअणसहस्सं उड्ढं उच्चत्तेणं, अड्डाइज्जाइं

---

१. एरवयतइयसमयभावो-अब J1J2 । एरवततइयमणुस्सभावो-ख । ''एरवततइयसमाणुभावो णेयव्वोत्ति-ऐरवतक्षेत्रसत्क सुषमदुष्षमालक्षणतृतीयारकानुभाववदत्रत्यमनुष्याणामप्यनुभावो नेतव्य इत्यर्थः । ऐरावतग्रहणं भरतस्योपलक्षणार्थं यथा हि भरतैरावतयोस्तृतीयारकमनुष्या एकगव्यूतोच्चादिभावास्तथा अत्रत्या अपि ज्ञेया इत्यर्थः - पुवृ । एवं तइयसमाणुभावो-पुवृपा. ॥ २. द्र. २।५६॥ ३. ''प्रस्तुतसूत्रे हेमवत-हरिवर्ष-रम्यक-हैरण्यवतसूत्रेषु वृत्तवैताढ्यपर्वतानां देवानां च स्थानाङ्गतः भिन्ना परम्परा विद्यते, द्रष्टव्यं निम्नवर्तियन्त्रम्- (V पृ. ४७८ टि.१)

	हैमवत			रम्यक	
	जं. ४।५७	ठाणं ४।३०७	गंधावई	जं. ४।२६४	ठाणं ४।३०७
वृत्तवैताढ्य	सद्दावई	सद्दावाती	वृत्तवैताढ्य	गंधावई	मालवंतपरिताते
देव		साती	देव	पउमे	पउमे
	हरिवर्ष			हैरण्यवत	
	जं. ४।८४	ठाणं ४।३०७		जं. ४।२७२	ठाणं ४।३०७
वृत्तवैताढ्य	वियडावई	गंधावाती	वृत्तवैताढ्य	मालवंतपरिआए	वियडावाती
देव	अरुणे	अरुणे	देव	पभासे	पभासे

जोअणसयाइं उव्वेहेणं, सव्वत्थसमे पल्लगसंठाणसंठिए एगं जोअणसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि जोअणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, सव्वरयणामए अच्छे। से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, वेइआ-वणसंडवण्णओ भाणिअव्वो[1] ॥ ५७ ॥

"**कहि णं भन्ते**" इत्यादि, क्व भदन्त ! **हैमवतवर्षे शब्दापातीनाम्ना वृत्तवैताढ्य-पर्वतः प्रज्ञप्तः ?** वैताढ्यान्वर्थस्तु प्रागुक्तः, असौ च वृत्ताकारो न भरतादिक्षेत्रवर्त्तिवैताढ्य-पर्वतवत् पूर्वा-ऽपरायतस्तेन वृत्तवैताढ्य इत्युच्यते । अत एव एतत्कृतः क्षेत्रविभागः पूर्वतोऽपरतश्च भवति, यथा पूर्वहैमवतमपरहैमवतमिति । आह–पञ्चकला-ऽधिकैकविंशतिशत-योजनप्रमाणविस्तारस्य हैमवतस्य मध्यवर्त्ती योजनसहस्रमान एष गिरिः कथं क्षेत्रं द्विधा विभजति ?, उच्यते, प्रस्तुतक्षेत्रव्यासो हि उभयोः पार्श्वयोः रोहिता-रोहितांशाभ्यां नदीभ्यां रुद्धः मध्यतस्त्वनेन । अथ नदीरुद्धक्षेत्रं वर्जयित्वाऽवशिष्टक्षेत्रमसौ द्विधा करोतीत्यस्मिन्नन्वर्थवती वैताढ्यशब्दप्रवृत्तिरिति । एवं शेषेष्वपि वृत्तवैताढ्येषु स्वस्वक्षेत्र-स्वस्वनदीनामभिलापेन भाव्यम् । दिग्विभागनियमनं सुलभमिति न व्याख्यायते । **एकं योजनसहस्रमूर्ध्वोच्चत्वेन अर्द्धतृतीयानि योजनशतान्युद्वेधेन सर्वत्र 'समः'** तुल्योऽधो-मध्योर्ध्वदेशेषु सहस्र-सहस्रविस्तारकत्वात्, अत एव **पल्यङ्कसंस्थानसंस्थितः**, पल्यङ्कश्च–लाटदेशप्रसिद्धो वंशदलेन निर्मापितो धान्याधारकोष्ठकः । **एकं योजनसहस्रमायाम-विष्कम्भाभ्यां त्रीणि योजन-सहस्राणि एकं च द्वाषष्ट्यधिकं योजनशतं 'किञ्चिद्विशेषेण'** करणवशादागतेन सूत्रा-निर्द्दिष्टेन राशिना **अधिकं परिक्षेपेण प्रज्ञप्तम् । सर्वात्मना रत्नमयः, केचन** रजतमयान् वृत्तवैताढ्यानाहुः, परं तेषामनेन ग्रन्थेन सह विरुद्धत्वमिति । अथात्र पद्मवरवेदिकाद्याह–"**से ण**"मित्यादि, व्यक्तम् ॥५७॥

सद्दावइस्स णं वट्टवेअड्ढपव्वयस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते ॥ ५८ ॥

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे पासायवडेंसए पण्णत्ते-बावट्ठिं जोअणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं

---

१. द्र. २।१०-१३॥

उच्चत्तेणं, इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च आयाम-विक्खंभेणं[1] जाव सीहासणं सपरिवारं ॥ ५९ ॥

"**सद्दावइस्स ण**"मित्यादि, व्यक्तम् ॥५८-५९॥ अथ नामार्थं निरूपयन्नाह -

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ- सद्दावई वट्टवेयड्ढपव्वए[2] २ ?, गोअमा ! सद्दावइवट्टवेअड्ढपव्वए णं खुड्डा-खुड्डिआसु वावीसु जाव बिलपंतिआसु बहवे उप्पलाइं पउमाइं सद्दावइप्पभाइं सद्दावइवण्णाइं सद्दावतिवण्णाभाइं, सद्दावई[3] अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव महाणुभावे पलिओवमठिइए परिवसइ त्ति, से णं तत्थ चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं जाव रायहाणी मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं अण्णंमि जम्बुद्दीवे दीवे० ॥ ६० ॥

"**से केणट्ठेणं भन्ते !**" इत्यादि, प्रागुक्तऋषभकूटप्रकरणवद् व्याख्येयम् । नवरम् ऋषभकूटप्रकरणे ऋषभकूटप्रभैः ऋषभकूटवर्णैरुत्पलादिभिर्ऋषभकूटनामनिरुक्तिर्दर्शिता, अत्र तु शब्दापातिप्रभैः शब्दापातिवर्णैः उत्पलादिभिः शब्दापातिवृत्तवैताढ्यनामनिरुक्तिर्द्रष्टव्या । **शब्दापाती चात्र देवो महर्द्धिको यावद् महानुभावः पल्योपमस्थितिकः परिवसति ।** अथ शब्दापातिदेवमेव विशिनष्टि-"**से णं तत्थ**" इत्यादि, '**स**'शब्दापाती देवः '**तत्र**'-प्रस्तुतगिरौ **चतुर्णां सामानिकसहस्राणां** यावत्पदात् विजयदेववर्णकसूत्रं सर्वमपि ज्ञेयं व्याख्येयं च । कियत्पर्यन्तम् ? इत्याह-**राजधानी मन्दरस्य दक्षिणस्यामन्यस्मिन् जम्बूद्वीपे द्वीपे** इति । **जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्या**दर्शेषु एतत्सूत्रदृष्टेऽपि "पलिओवमठिइ[ए] परिवसती"त्ययं सूत्रादेशः पूर्वसूत्रे यद्योजितस्तद्बहुषु विजयदेवप्रकरणादिसूत्रेष्वित्थमेव दृष्टत्वात्, बहुग्रन्थ-साम्मत्येन क्वचिदादर्शवैगुण्यमुद्भाव्यान्यथा योजनं बहुश्रुतसम्मतमेवास्ति इत्यलं विस्तरेण । ननु अस्य शब्दापातिवृत्तवैताढ्यस्य **क्षेत्रविचारादि**ग्रन्थेषु अधिपः स्वातिनामा उक्तः, तत्कथं न तैः सह विरोधः ?, उच्यते, नामान्तरं मतान्तरं वा ॥६०॥

---

१. द्र. ४।४८-४९॥ २. द्र. जीवा. ३।२८६॥ ३. से णं तत्थ चउण्हं सामाणिय-साहस्सीणं पलिओवमट्ठितीए जाव परिवसइ रायहाणी वि णेयव्वा-अकखत्रिबस हीवृ. । "से तेणट्ठेणं जाव सद्दावई वट्टवेयड्ढपव्वए सद्दावई वट्टवेयड्ढपव्वए । रायहाणीवि णेयव्वा-V ।

पुण्यसागरीयवृत्तौ V स्वीकृतपाठ एव व्याख्यातोऽस्ति । हीरविजयवृत्तौ 'साहस्सीणं' इति पदानन्तरं 'पलिओवमड्ढिईए' इत्यादि व्याख्यातमस्ति, किन्तु पूर्वपाठानुसन्धानेन नैतत् सङ्गच्छते । बहुषु आदर्शेष्वपि एषा पाठविसङ्गतिरस्ति । अस्या विसङ्गतेर्निवारणर्थम् उपाध्यायशान्तिचन्द्रेण प्रयत्नः कृतः । तस्यानुसारी 'प' प्रतिगतः पाठो व्याख्या चापि सङ्गच्छेत ।" इति V पृ. ४७९ टि. ४ ॥

अथ हैमवतवर्षस्य नामार्थं पृच्छति-

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ- हेमवए वासे २ ?, गोअमा ! चुल-हिमवन्त-महाहिमवन्तेहिं वासहरपव्वएहिं दुहओ समवगूढे[1] णिच्चं हेमं दलइ[2], णिच्चं हेमं दलइत्ता० णिच्चं हेमं पगासइ, हेमवए अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिइए परिवसइ । से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ- हेमवए वासे हेमवए वासे ॥ ६१ ॥

"**से केणट्ठेणं**" इत्यादि, अथ केनार्थेन **भगवन् ! एवमुच्यते-हैमवतं वर्षं हैमवतं वर्षमिति ? गौतम ! क्षुद्रहिमवन्महाहिमवद्भ्यां वर्षधरपर्वताभ्यां 'द्विधातः'** दक्षिणोत्तर-पार्श्वयोः 'समवगाढं' संश्लिष्टं ततो हिमवतोरिदं हैमवतम् । अयं भावः-क्षुद्रहिमवतो महाहिम-वतश्चापान्तराले तत् क्षेत्रम्, ततो द्वाभ्यामपि ताभ्यां यथाक्रममुभयोर्दक्षिणोत्तरपार्श्वयोः कृतसीमाकमिति भवति तयोः सम्बन्धि । यदिवा '**नित्यं**' कालत्रयेऽपि '**हेम**' सुवर्णं **ददाति** आसनप्रदानादिना प्रयच्छति । कोऽर्थः ? तत्रत्ययुग्मिमनुष्याणामुपवेशनाद्युपभोगे हेममयाः शिलापट्टका उपयुज्यन्ते, तत उपचारेण ददातीत्युक्तम् । **नित्यं हेम प्रकाशयति**, ततो हेम नित्ययोगि प्रशस्यं वाऽस्यास्तीति हेमवत् हेमवदेव हैमवतम्, प्रज्ञादेराकृतिगणतया "**प्रज्ञादिभ्यः**" [श्रीसिद्ध० अ० ७ पा० २ सू० १६५] इति स्वार्थेऽण् प्रत्ययः । **हैमवतश्चात्र देवो महर्द्धिकः पल्योपमस्थितिकः परिवसति** । '**तेन**' तद्योगाद्धैमवतमिति व्यपदिश्यते, हैमवतो देवः स्वामित्वेनास्यास्तीत्यभ्रादित्वादप्रत्यये वा ॥६१॥

अथास्यैवोत्तरतः सीमाकारी यो वर्षधरगिरिस्तं विवक्षुराह-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २ महाहिमवन्ते णामं वासहरपव्वए पं० ?, गो० ! हरिवासस्स दाहिणेणं, हेमवयस्स वासस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवण-समुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाहिमवंते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते, पाईण-पडीणायए उदीण-दाहिणवित्थिण्णे पलियंकसंठाणसंठिए दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे-

१. कखपस पुवृ शावृ हीवृ । समुवगूढे-V पुवृपा. ॥ २. दलइ-मु. । दलति-प । "त्रि प्रतौ 'दलयइ' इति पदस्य स्थाने 'मुंचति' इति पदं विद्यते । कखबस प्रतिषु हीरविजयवृत्तौ पुण्यसागरवृत्तौ च 'दलयइ' इति पदस्याग्रे 'णिच्चं हेमं मुंचइ' इति पाठो विद्यते, एतत्पदं क्वचिन्न दृश्यते (पुवृ)" इति V पृ. ४७९ टि. ६ ॥

पुरत्थिमिल्लाए कोडीए जाव पुट्ठे, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, दो जोअणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पण्णासं जोअणाइं उव्वेहेणं, चत्तारि जोअणसहस्साइं दोण्णि अ दसुत्तरे जोअणसए दस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खंभेणं। तस्स बाहा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं णव जोअणसहस्साइं दोण्णि अ छावत्तरे जोअणसए णव य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं। तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा, पच्चत्थिमिल्लाए जाव पुट्ठा, तेवण्णं जोअणसहस्साइं नव य एगतीसे जोअणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोअणस्स किंचिविसेसाहिए आयामेणं। तस्स धणुं दाहिणेणं सत्तावण्णं जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तेणउए जोअणसए दस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं। रुअगसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते ॥ ६२ ॥

"**कहि णं भन्ते !**" इत्यादि, सर्वं प्राग्वत्। नवरं **द्वे योजनशते उच्चत्वेन** क्षुद्रहिमवद्वर्षधरतो द्विगुणोच्चत्वात् **पञ्चाशद्योजनानि 'उद्वेधेन'** भूप्रविष्टत्वेन, मेरुवर्जसमयक्षेत्रगिरीणां स्वोच्चत्वचतुर्थांशेनोद्वेधत्वात्। **चत्वारि योजनसहस्राणि द्वे च योजनशते दशोत्तरे दश च योजनैकोनविंशतिभागान्** [४२१० $\frac{१०}{१९}$] **विष्कम्भेण,** हैमवतक्षेत्रतो द्विगुणत्वात्। अथास्य बाहादिसूत्रत्रयमाह[१]-"**तस्स**"त्ति, सूत्रत्रयमपि व्यक्तम्, प्रायः प्राग्व्याख्यातसूत्रसदृशगमकत्वात्। नवरम् अत्रास्य सर्वरत्नमयत्वमुक्तम्, बृहत्क्षेत्रविचारादौ तु पीतस्वर्णमयत्वमिति तेन मतान्तरमवसेयम्, अनेनैव मतान्तराभिप्रायेण जम्बूद्वीपपट्टादावस्य पीतवर्णत्वं दृश्यते ॥६२॥

अथास्य स्वरूपाविर्भावनायाह-

महाहिमवन्तस्स णं वासहरपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे[२] पण्णत्ते जाव णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहि अ तणेहि अ उवसोभिए जाव आसयंति सयंति य ॥ ६३ ॥

१. सूत्रत्रयमाह-पुके ॥ २. द्र. जीवा. ३।२७७-२९७ ॥

"**महाहिमवन्तस्स ण**"मित्यादि, सर्वं जगतीपद्मवर-वेदिकावनखण्डवर्णकवद् ग्राह्यम् ॥६३॥

सम्प्रति अत्र ह्रदस्वरूपमाह-

तस्स[१] णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे[२] महापउमद्दहे णामं दहे पण्णत्ते-दो जोअणसहस्साइं आयामेणं, एगं जोअणसहस्सं विक्खंभेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं, अच्छे रययामयकूले[३] एवं आयाम-विक्खंभविहूणा जा चेव पउमद्दहस्स वत्तव्वया सा चेव णेअव्वा[४] । पउमप्पमाणं दो जोअणाइं अट्ठो जाव महापउमद्दहवण्णाभाइं, हिरी अ इत्थ देवी जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसइ, से एएणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ । अदुत्तरं च णं गोअमा ! महापउमद्दहस्स सासए णामधिज्जे पं०-जं ण कयाइ णासी ३ ॥ ६४ ॥

"**तस्स णं**" इत्यादि प्रायः पद्मद्रहसूत्रानुसारेण व्याख्येयम् ॥६४॥ अथैतद्दक्षिणद्वारनिर्गतां नदीं निर्दिशन्नाह-

तस्स णं महापउमद्दहस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं रोहिआ महाणई पवूढा समाणी सोलस पंचुत्तरे जोअणसए पंच य एगूणवीसइभाए जोअणस्स दाहिणाभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवित्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं साइरेगदोजोअणसइएणं[५] पवाएणं पवडइ ॥ ६५ ॥

"**तस्स ण**"मित्यादि, तस्य **महापद्मद्रहस्य दाक्षिणात्येन तोरणेन रोहिता महानदी** '**प्रव्यूढा**' निर्गता **सती षोडश पञ्चोत्तराणि योजनशतानि पञ्च चैकोनविंशतिभागान्** $१६०५\frac{५}{१९}$ **योजनस्य दक्षिणाभिमुखी पर्वतेन गत्वा महता घटमुखप्रवृत्तिकेन मुक्तावलिहारसंस्थितेन सातिरेकद्वियोजनशतिकेन**, सातिरेकत्वं च रोहिताप्रपातकुण्डोद्वेधापेक्षया बोध्यम् । **प्रपातेन प्रपतति** । षोडशेत्यादिसङ्ख्यानयनं तु चतुःसहस्रद्विशतदशयोजनतदेकोनविंशतिभागात्मकभागदशकाद्गिरिव्यासात् सहस्रयोजनात्मके द्रहव्यासेऽपनीते सत्यर्द्धीकृताद्भवति, अन्यत् सर्वं रोहितांशागमेन वाच्यम् ॥६५॥

---

१. पुके J12 । महाहिमवंतस्स-मु. ॥ २. महं एगे-कखत्रिस ॥ ३. रयणामय० अखत्रिब ॥ ४. द्र. ४।३-२२॥ ५. साइरेगजोयणदुस० J12 अब ॥

अथ सा यतः प्रपतति तदास्पदं दर्शयति-

रोहिआ णं महाणई जओ पवडइ, एत्थ णं महं एगा जिब्भिया पं० । सा णं जिब्भिआ जोअणं आयामेणं, अद्धतेरसजोअणाइं विक्खंभेणं, कोसं बाहल्लेणं, मगरमुहविउट्ट-संठाणसंठिआ सव्ववइरामई अच्छा ॥ ६६ ॥

रोहिआ णं महाणई जहिं पवडइ, एत्थ णं महं एगे रोहिअप्पवायकुंडे णामं कुंडे पं०-सवीसं जोअणसयं आयाम-विक्खंभेणं पण्णत्ते,[1] तिण्णि असीए जोअणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं, अच्छे सण्हे सो चेव वण्णओ, वइरतले वट्टे समतीरे जाव[2] तोरणा ॥ ६७ ॥

"**रोहिआ ण**"मित्यादि, प्राग्वत् । अथ यत्र प्रपतति तदाह "**रोहिआ ण**"मित्यादि, प्राग्व्याख्यातप्रायम् । नवरं **सविंशतिकं योजनशतं [आयाम-विष्कम्भाभ्यां]** गङ्गाप्रपातकुण्डतो द्विगुणायाम-विष्कम्भत्वात् । **त्रीणि योजनशतानि अशीत्यधिकानि किञ्चिद्विशेषोनानि**, ऊनत्वं करणेन यो० ३७९ क्रोशः १ कियद्धनुरधिकः, तेन किञ्चिदूनाऽशीतिरुक्ता इत्यर्थः, **परिक्षेपेणेति** । ॥६६-६७॥ अधुनाऽस्य द्वीपवक्तव्यमाह-

तस्स णं रोहिअप्पवायकुण्डस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे रोहिअदीवे णामं दीवे पण्णत्ते-सोलस जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं, साइरेगाइं पण्णासं जोअणाइं परिक्खेवेणं, दो कोसे ऊसिए जलंताओ, सव्ववइरामए अच्छे । से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ॥ ६८ ॥

"**तस्स ण**"मित्यादि व्यक्तम् । नवरं गङ्गाद्वीपतो द्विगुणायाम-विष्कम्भत्वात् **षोडश योजनानि** रोहिताद्वीपप्रमाणमित्यर्थः । "**से ण**"मित्यादि, सुगमम् ॥६८॥

रोहिअदीवस्स णं दीवस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते ॥ ६९ ॥

---

१. अकखत्रिषबस J2 । पण्णत्तं-मु. । V नास्ति ॥ २. द्र. ४।२५-३०॥

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे भवणे पण्णत्ते-कोसं आयामेणं, सेसं तं चेव पमाणं च अट्ठो अ भाणिअव्वो ॥ ७० ॥

"**रोहिअदीव**" इत्यादि, सुगमम् । नवरं '**शेषं**' विष्कम्भादिकं **प्रमाणं तदेव** । कोऽर्थः ? अर्द्धक्रोशं विष्कम्भेन देशोनक्रोशमुच्चत्वेनेति, चशब्दाद्रोहितादेवीशयनादिवर्णकोऽपि, **अर्थश्च** "से केणट्ठेणं भन्ते ! रोहिअदीवे" इत्यादि सूत्रावगम्यः ॥६९-७०॥ सम्प्रति यथेयं लवणगामिनी तथाऽऽह-

तस्स णं रोहिअप्पवायकुण्डस्स दक्खिणिल्लेणं तोरणेणं रोहिआ महाणई पवूढा समाणी हेमवयं वासं एज्जेमाणी २, सद्दावइं वट्टवेअड्ढपव्वयं अद्धजोअणेणं असंपत्ता पुरत्थाभिमुही आवत्ता समाणी हेमवयं वासं दुहा विभयमाणी २, अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइत्ता पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ ॥ ७१ ॥

"**तस्से**"त्यादि, **तस्य-रोहिताप्रपातकुण्डस्य दाक्षिणात्येन तोरणेन** द्वारेणेत्यर्थः, **रोहिता महानदी** '**प्रव्यूढा**' निर्गता **सती हैमवतं वर्षम् आगच्छन्ती २**, हैमवतक्षेत्राभिमुखमायान्तीत्यर्थः, **शब्दापातिनामानं वृत्तवैताढ्यपर्वतम्** '**अर्द्धयोजनेन**' क्रोशद्वयेन-'**असम्प्राप्ता**' असंस्पृष्टा दूरस्थितेत्यर्थः, **पूर्वाभिमुखी आवृत्ता सती हैमवतं वर्षं द्विधा** '**विभजन्ती २**' द्विभागं कुर्वती २, **अष्टाविंशत्या सलिलासहस्रैः** '**समग्रा**' पूर्णा, भरतनदीतो द्विगुणनदीपरिवारत्वात् । **अधोभागे** '**जगतीं**' जम्बूद्वीपकोट्टं **दारयित्वा पूर्वभागेन लवणसमुद्रं समुपसर्पति** प्रविशतीत्यर्थः ॥७१॥

अथ लाघवार्थं रोहितांशातिदेशेन रोहितावक्तव्यमाह-

रोहिआ णं जहा रोहिअंसा तहा पवहे अ मुहे अ भाणिअव्वा इति जाव संपरिक्खित्ता ॥ ७२ ॥

तस्स णं महापउमद्दहस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं हरिकंता महाणई पवूढा समाणी सोलस पंचुत्तरे जोअणसए पंच य एगूणवीसइभाए जोअणस्स उत्तराभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवत्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं साइरेगदुजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ ॥ ७३ ॥

---

१. द्र. ४।३३-३४॥

"**रोहिआ ण**"न्ति, अतिदेशसूत्रत्वादेव प्राग्वत् ॥७२॥ अथास्मादुत्तरगामिनीयं नदी क्वावतरति ? इत्याशंक्याह-"**तस्स ण**"मिति व्यक्तम् ॥७३॥

हरिकंता णं महाणई जओ पवडइ एत्थ णं महं एगा जिब्भिआ पं०-दो जोयणाइं आयामेणं, पणवीसं जोअणाइं विक्खंभेणं, अद्धं जोअणं बाहल्लेणं मगरमुहविउट्ठसंठाणसंठिआ सव्वरयणा(वइरा)मई अच्छा ॥ ७४ ॥

"**हरिकंता**" इत्यादि कण्ठ्यम् । अत्र "सव्वरयणामई"ति पाठो बह्वादर्शदृष्टोऽपि लिपिप्रमादापतित एव सम्भाव्यते, **बृहत्क्षेत्रविचारादिषु** सर्वासां जिह्विकानां वज्रमयत्वेनैव भणनात्, जलाशयानां प्रायो वज्रमयत्वेनैवोपपत्तेश्च ॥७४॥

हरिकंता णं महाणई जहिं पवडइ एत्थ णं महं एगे हरिकंतप्पवायकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते-दोण्णि अ चत्ताले जोअणसए आयाम-विक्खंभेणं, सत्तअउणट्ठे जोयणसए परिक्खेवेणं अच्छे, एवं कुण्डवत्तव्वया सव्वा नेयव्वा [१]जाव तोरणा ॥ ७५ ॥

"**हरिकंता ण**"मित्यादि, व्यक्तम् । नवरं हरिकान्ताप्रपातकुण्डं **द्वे योजनशते चत्वारिंशदधिके** २४० **आयाम-विष्कम्भाभ्यां सप्त योजनशतानि 'एकोनषष्टानि'** एकोनषष्ट्यधिकानि ७५९ **परिधिना इति** ॥७५॥

तस्स णं हरिकंतप्पवायकुण्डस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे हरिकंतदीवे णामं दीवे पं०-बत्तीसं जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं, एगुत्तरं जोअणसयं परिक्खेवेणं, दो कोसे ऊसिए जलंताओ,[२] सव्वरयणामए अच्छे । से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं जाव संपरिखित्ते वण्णओ [३]भाणिअव्वो, पमाणं च सयणिज्जं च अट्ठो अ [४]भाणिअव्वो ॥ ७६ ॥

तस्स णं हरिकंतप्पवायकुण्डस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं [५]जाव पवूढा समाणी [६]हरिवासं वासं एज्जेमाणी २, विअडावइं वट्टवेअड्ढं जोअणेणं

---

१. द्र. ४।२५-३०॥ २. द्र. ४।३१॥ ३. द्र. १।१०-१३॥ ४. द्र. ४।३२-३४॥ ५. द्र. ४।३५॥ ६. पु V । हरिवस्सं-अपबमु. । हरिवंसं-J1 ॥

असंपत्ता पच्चत्थाभिमुही आवत्ता समाणी हरिवासं दुहा विभयमाणी २, छप्पण्णाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दलइत्ता पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ ॥ ७७ ॥

''**तस्स ण**''मित्यादि, सूत्रत्रयं प्राक् सूत्रानुसारेण बोद्धव्यम् । नवरं **विकटापातिनं वृत्तवैताढ्यं योजनेनासम्प्राप्ता पश्चिमेनावृत्ता सती हरिवर्षं नाम 'क्षेत्रं'** वक्ष्यमाणस्वरूपं **द्विधा विभजमाना २ षट्पञ्चाशता नदीसहस्रैः 'समग्रा'** परिपूर्णा, हैमवतक्षेत्रनदीतो द्विगुणनदीपरिवारत्वात्, **पश्चिमेन** भागेन **लवणोदधिमुपैति** ॥७६-७७॥ सम्प्रत्यस्याः प्रवाहादि कियन्मानम् ? इत्याह-

हरिकंता णं महाणई पवहे पणवीसं जोअणाइं विक्खम्भेणं, अद्धजोअणं उव्वेहेणं, तयणंतरं च णं मायाए २ परिवड्ढमाणी २, मुहमूले अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं विक्खम्भेणं, पञ्च जोअणाइं उव्वेहेणं, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता ॥ ७८ ॥

''**हरिकंता**'' इत्यादि, हरिकान्ता **महानदी 'प्रवहे'** द्रहनिर्गमे **पञ्चविंशतियोजनानि विष्कम्भेण अर्द्धयोजनमुद्वेधेन, तदनन्तरं 'च मात्रया २'** क्रमेण २ प्रतियोजनं समुदितयोरुभयोः पार्श्वयोः चत्वारिंशद्धनुर्वृद्ध्या, प्रतिपार्श्वं धनुर्विंशतिवृद्ध्येत्यर्थः, **परिवर्द्धमाना २, 'मुखमूले'** समुद्रप्रवेशेऽ**र्द्धतृतीयानि योजनशतानि विष्कम्भेन पञ्चयोजनान्युद्वेधेन, उभयोः पार्श्वयोर्द्वाभ्यां पद्मवरवेदिकाभ्यां द्वाभ्यां च वनखण्डाभ्यां सम्परिक्षिप्ता** ॥७८॥

अथैतस्य कूटवक्तव्यमाह-

महाहिमवन्ते णं भन्ते ! वासहरपव्वए कइ कूडा प० ?, गो० ! अट्ठ कूडा प०, तं०-सिद्धायतणकूडे १ महाहिमवन्तकूडे २ हेमवयकूडे ३ रोहिअकूडे ४ हिरिकूडे ५ हरिकंतकूडे ६ हरिवासकूडे ७ वेरुलिअकूडे ८ । एवं चुल्लहिमवंतकूडाणं जा चेव[1] वत्तव्वया सच्चेव[2] णेअव्वा ॥ ७९ ॥

''**महाहिमवन्ते**''त्ति, **महाहिमवति वर्षधरपर्वते भगवन्! कति कूटानि?** ''**गौतमे**''-त्यादि सूत्रं सुगमम् । कूटानां नामार्थस्त्वयं-**सिद्धायतनकूटं महाहिमवदधिष्ठातृकूटं**

१. चेन-V नास्ति ॥ २. द्र. ४।४५-५४॥

हैमवतपतिकूटं रोहितानदीसुरीकूटं ह्रीसुरीकूटं हरिकान्तानदीसुरीकूटं हरिवर्षपतिकूटं वैडूर्यकूटं तु तद्रत्नमयत्वात् तत्स्वामिकत्वाच्चेति । "**एव**"मिति, कूटानामुच्चत्वादि सिद्धायतनप्रासादानां च मानादि तत्स्वामिनां च यथारूपं महर्द्धिकत्वं यत्र च राजधान्यस्तत्सर्वं अत्रापि वाच्यम् । केवलं नामविपर्यास एव देवानां तद्राजधानीनां चेति ॥७९॥

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-महाहिमवंते वासहरपव्वए २ ?, गोअमा ! महाहिमवंते णं वासहरपव्वए चुल्लहिमवंतं वासहरपव्वयं पणिहाय आयामुच्चत्तुव्वेह-विक्खम्भ-परिक्खेवेणं महंततराए[१] चेव दीहतराए चेव, महाहिमवंते अ इत्थ देवे महिड्ढीए[२] जाव पलिओवमट्ठिइए परिवसइ ॥ ८० ॥

साम्प्रतं महाहिमवतो नामार्थं निरूपयन्नाह-"**से केणट्ठेण**"मित्यादि, व्यक्तम् । नवर-मुत्तरसूत्रे **महाहिमवान् वर्षधरपर्वतः क्षुद्रहिमवन्तं वर्षधरपर्वतं 'प्रणिधाय'** प्रतीत्य क्षुद्रहिमवदपेक्षयेत्यर्थः, योजनाया विचित्रत्वात् आयामापेक्षया **दीर्घतरक एव** उच्चत्वाद्य-पेक्षया **महत्तरक एवेति** । अथवा **महाहिमवन्नामाऽत्र देवः पल्योपमस्थितिकः परिवसति**, सूत्रे आयामोच्चत्वेत्यादावेकवद्भावः समाहाराद् बोध्यः ॥८०॥

अथ हरिवर्षनामकवर्षावसरः-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे हरिवासे णामं वासे पं० ?, गो० ! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं, महाहिमवन्तस्सवासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स[३] पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे २ हरिवासे णामं वासे पण्णत्ते, एवं जाव पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, अट्ठ जोअण-सहस्साइं चत्तारि अ एगवीसे जोअणसए एगं च एगूणवीसइभागं जोअणस्स विक्खम्भेणं । तस्स बाहा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं तेरस जोअणसहस्साइं तिण्णि अ एगसट्ठे जोअणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं । तस्स जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा-पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं जाव लवणसमुद्दं पुट्ठा, तेवत्तरिं जोअणसहस्साइं णव य एगुत्तरे जोअणसए

---

१. महंतराए-क्जे२ अकखत्रिब ॥ २. द्र. १।२४॥ ३. द्र. १।१०-१३॥

सत्तरस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं । तस्स धणुं दाहिणेणं चउरासीइं जोअणसहस्साइं सोलसजोअणाइं य चत्तारि एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं ॥ ८१ ॥

"**कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २**" इत्यादि, व्यक्तम् । नवरं **अष्टौ योजनसहस्राणि चत्वारि च योजनशतानि एकविंशत्यधिकानि एकं चैकोनविंशतितमं भागं** ८४२१ $\frac{१}{१९}$ **योजनस्य विष्कम्भेन**, महाहिमवतो द्विगुणविष्कम्भकत्वादिति । अधुनाऽस्य बाहादित्रयमाह-"**तस्स बाहा**" इत्यादि, "**तस्स जीवा**" इत्यादि, "**तस्स धणु**"मित्यादि, सूत्रत्रयमपि व्यक्तम् ॥८१॥

अथास्य स्वरूपं पिपृच्छिषुराह-

हरिवासस्स णं भन्ते ! वासस्स केरिसए आगारभावपडोआरे पं० ?, गोअमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणीहिं तणेहि अ उवसोभिए, एवं मणीणं तणाण य वण्णो गन्धो फासो सद्दो य भाणिअव्वो [१] ॥ ८२ ॥

"**हरिवास**" इत्यादि, हरिवर्षस्य **वर्षस्य भगवन् ! कीदृश आकारभावप्रत्यवतारः प्रज्ञप्तः ? गौतम ! बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः** । अत्रातिदेशवाक्यमाह-**यावद् मणिभिस्तृणैश्चोपशोभितः, एवं मणीनां तृणानां च वर्णो गन्धः स्पर्शः शब्दश्च भणितव्यः**, पद्मवरवेदिकानुसारेणेत्यर्थः ॥८२॥

अत्र जलाशयस्वरूपं निरूपयन्नाह-

हरिवासे णं तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे खुड्डा खुड्डिआओ, एवं जो सुसमाए अणुभावो सो चेव अपरिसेसो वत्तव्वो [२] ॥ ८३ ॥

"**हरिवासे ण**"मित्यादि, क्षेत्रस्य सरसत्वेन **तत्र तत्र देशप्रदेशेषु क्षुद्रिकादयो** जलाशया अखाता एव सन्तीत्यर्थः, अत्रैकदेशग्रहणेन सर्वोऽपि वाप्यादिजलाशयालापको ग्राह्यः । अत्र कालनिर्णयार्थमाह-"**एवं जो सुसमाए**" इत्यादि, '**एवम्**' उक्तप्रकारेण वर्ण्यमाने तस्मिन् क्षेत्रे यः '**सुषमायाः**' अवसर्प्पिणी-द्वितीया-रकस्यानुभावः **स एव** '**अपरिशेषः**' सम्पूर्णो **वक्तव्यः**, सुषमाप्रतिभागनामकाव-स्थितकालस्य तत्र सम्भवात् ॥८३॥ अथास्य क्षेत्रस्य विभाजकगिरिमाह -

---

१. द्र. जीवा. ३।२७७-२८५॥ २. द्र. २।५२-५३॥

कहि णं भन्ते ! हरिवासे वासे वि[१]अडावई णामं वट्टवेअड्ढपव्वए पण्णत्ते ?, गो० ! हरीए महाणईए पच्चत्थिमेणं, हरिकंताए महाणईए पुरत्थिमेणं, हरिवासस्स २ बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं विअडावई णामं वट्टवेअड्ढपव्वए पण्णत्ते, एवं जो चेव सद्दावइस्स विक्खंभुच्चत्तुव्वेह-परिक्खेव-संठाण- वण्णावासो अ सो चेव विअडावइस्स वि [२]भाणिअव्वो । णवरं अरुणो देवो पउमाइं जाव विअडावइवण्णाभाइं, अरुणे अ इत्थ देवे महिड्ढीए एवं जाव दाहिणेणं रायहाणी णेअव्वा ॥ ८४ ॥

''**कहि ण**''मित्यादि, प्रश्नसूत्रं व्यक्तम् । उत्तरसूत्रे '**हरितः**' हरिसलिलाया **महानद्याः पश्चिमायां हरिकान्ताया महानद्याः पूर्वस्यां हरिवर्षस्य २ बहुमध्यदेशभागे अत्रान्तरे विकटापातिनामा वृत्तवैताढ्यपर्वतः प्रज्ञप्तः** । अत्र निगमयंल्लाघवार्थमतिदेशसूत्रमाह– '**एवं**' विकटापातिवृत्तवैताढ्यवर्णने क्रियमाणे **य एव शब्दापातिनो विष्कम्भोच्चत्वोद्वेध-परिक्षेप-संस्थानानां** '**वर्णव्यासो**' वर्णकग्रन्थविस्तरः, **च**कारात्तत्रत्यप्रासाद-तत्स्वामि-राजधान्यादिसङ्ग्रहः, विकटापातिप्रभाणि **विकटापातिवर्णाभानि** च तेन विकटापातीति नाम । **अरुणश्चात्र देव** आधिपत्यं परिपालयति, तेन तद्योगादपि तथा नाम प्रसिद्धम् । आह– विसदृशनामकदेवाद्विकटापातीति नाम कथमुपपद्यते ?, उच्यते, अरुणो विकटापातिपतिरिति **तत्कल्पपुस्तका**दिषु आख्यायते, सामानिकादीनामप्यनेनैव नाम्ना प्रसिद्ध इति सार्मथ्या-द्विकटापातीति । सुस्थितलवणोदाधिपतेर्गौतमाधिपतित्वाद् गौतमद्वीप इव, **बृहत्क्षेत्रविचारा**दिषु हैरण्यवते विकटापाती हरिवर्षे गन्धापातीत्युक्तम्, तत्त्वं तु केवलिगम्यम् । **एवं यावद् दक्षिणस्यां** दिशि मेरो **राजधानी नेतव्या** ॥८४॥ अथ हरिवर्षनामार्थं पिपृच्छिषुराह–

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ–हरिवासे २?, गोअमा ! हरिवासे णं वासे मणुआ अरुणा अरुणोभासा सेआ णं [३]संखदलसण्णिकासा, हरिवासे अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ ॥ ८५ ॥

---

१. द्रष्टव्यं ४।५७ सूत्रे टिप्पणम् ॥ २. द्र. ४।५७-६०॥ ३. संखतल० V ॥

"**से केणट्ठेणं**" इत्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमम् । उत्तरसूत्रे **हरिवर्षे २** केचन **मनुजा 'अरुणाः'** रक्तवर्णाः । अरुणं च चीनपिष्टादिकम् आसन्नवस्तूनि अरुणप्रकाशं न कुरुते अभास्वरत्वाद्, इमे च न तथा इत्याह-**अरुणावभासा** इति, केचन **श्वेताः 'णं'** पूर्ववत् **'शङ्खदलानि'** शङ्खखण्डास्ते हि अतिश्वेताः स्युस्तेषां **'सन्निकाशाः'** सदृशाः, तेन तद्योगाद्धरिवर्षं क्षेत्रमुच्यते । कोऽर्थः ? हरिशब्देन सूर्यश्चन्द्रश्च, तत्र केचन मनुष्याः सूर्य इवारुणा अरुणावभासाः, सूर्यश्चात्र रक्तवर्णप्रस्तावादुद्गच्छन् गृह्यते । केचन चन्द्र इव श्वेता इति, हरय इव हरयो मनुष्याः, साध्यवसानलक्षणतयाऽभेदप्रतिपत्तिः । ततस्तद्योगात् क्षेत्रं हरय इति व्यपदिश्यते, हरयश्च तद्वर्षं च हरिवर्षम् । यदा च मनुष्ययोगात् हरिशब्दः क्षेत्रे वर्त्तते, तदा स्वभावाद्बहुवचनान्तः प्रयुज्यते, यदाह **तत्त्वार्थमूलटीकाकृद् गन्धहस्ती-"हरयो विदेहाश्च पञ्चालादितुल्या" [सूत्र ३।१० वृत्तौ]** इति, यदिवा **हरिवर्ष**नामा **अत्र देव** आधिपत्यं परिपालयति, तेन तद्योगादपि हरिवर्षम् ॥८५॥

अथानन्तरोक्तं क्षेत्रं निषधाद्दक्षिणस्यामुक्तम्, तर्हि स निषधः क्वास्तीति पृच्छति-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २ णिसहे णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ?, गोअमा ! महाविदेहस्स वासस्स दक्खिणेणं, हरिवासस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे णिसहे णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते । पाईण-पडीणायए उदीण-दाहिणवित्थिण्णे दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे-पुरत्थिमिल्लाए जाव पुट्ठे पच्चत्थिमिल्लाए जाव पुट्ठे, चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि गाउअसयाइं उव्वेहेणं, सोलस जोअणसहस्साइं अट्ठ य बायाले जोअणसए दोण्णि य एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खम्भेणं । तस्स बाहा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं वीसं जोअणसहस्साइं एगं च पणट्ठं जोअणसयं दुण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स अद्धभागं च आयामेणं । तस्स जीवा उत्तरेणं जाव चउणवइं जोअणसहस्साइं एगं च छप्पण्णं जोअणसयं दुण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं ति । तस्स धणुं दाहिणेणं एगं जोअणसयसहस्सं चउवीसं च जोअणसहस्साइं तिण्णि अ छायाले जोअणसए णव य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं ति ।

रुअगसंठाणसंठिए सव्वतवणिज्जमए अच्छे, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं जाव[१] संपरिक्खित्ते ॥ ८६ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, प्रश्नसूत्रं व्यक्तम् । उत्तरसूत्रे **महाविदेहस्य वर्षस्य दक्षिणस्यां हरिवर्षस्योत्तरस्यां पौरस्त्यलवणोदस्य पश्चिमायां पश्चिमलवणसमुद्रस्य पूर्वस्याम्** अत्रान्तरे **जम्बूद्वीपे द्वीपे निषधो नाम वर्षधरपर्वतः प्रज्ञप्तः** । '**प्राचीनप्रतीचीने**'त्यादि प्राग्वत्, **चत्वारि योजनशतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन चत्वारि गव्यूतशतानि 'उद्वेधेन'** भूप्रवेशेन, मेरुवर्जसमयक्षेत्रगिरीणां स्वोच्चत्वचतुर्थांशेनोद्वेधत्वात् । **षोडश योजनसहस्राणि 'द्विचत्वारिंशानि'** द्विचत्वारिंशदधिकानि **अष्टौ च योजनशतानि द्वौ च एकोनविंशतिभागौ** १६,८४२ $\frac{२}{१९}$ **योजनस्य विष्कम्भेण**, महाहिमवतो द्विगुणविष्कम्भमानत्वात् । अथ बाहादिसूत्रत्रयमाह-"**तस्स बाहा**" इत्यादि, "**तस्स जीवा**" इत्यादि । अत्र **यावत्पदात्** "पाईण-पडीणायया दुहओ लवणसमुद्दं पुट्ठा-पुरत्थिमिल्लाए लवणसमुद्दं जाव पुट्ठा" इति ग्राह्यम् । "**तस्स धणु**"मित्यादि, सर्वं पूर्वसूत्रानुसारेण व्याख्येयम् । अथ निषधमेव विशेषणैर्विशिनष्टि-"**रुअग**" इत्यादि, अत्र **यावत्पदात्** "सव्वओ समंता" इति ग्राह्यम्, शेषं प्राग्वत् ॥८६॥

अथास्य देवक्रीडायोग्यत्वं वर्णयन्नाह-

णिसहस्स णं वासहरपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव आसयंति सयंति ॥ ८७ ॥

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे तिगिंछिद्दहे णामं दहे पण्णत्ते-पाईण-पडीणायए उदीण-दाहिणवित्थिण्णे चत्तारि जोअणसहस्साइं आयामेणं, दो जोअणसहस्साइं विक्खम्भेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं, अच्छे सण्हे रययामयकूले ॥ ८८ ॥

"**णिसह**" इत्यादि, अत्र **यावत्पदात्** आलिङ्ग-पुष्करादिपदकदम्बकं बोध्यम् । अथ ह्रदवक्तव्याऽवसरः-"**तस्स ण**"मित्यादि, तस्य **बहुसम-रमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागेऽत्रान्तरे महानेकः** 'तिगिंछिः' पौष्परज-स्तत्प्रधानो द्रह**स्तिगिंछिद्रहो नाम द्रहः प्रज्ञप्तः**, प्राकृते पुष्परजःशब्दस्य "तिगिंछि" इति निपातः देशीशब्दो वा, अन्यत् सर्वं प्रागनुसारेणेति । अथास्यातिदेशसूत्रेण सोपानादि-वर्णनायाह ॥८७-८८॥

१. द्र. ४।३१॥

तस्स णं तिगिच्छिद्दहस्स चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पं०, एवं जाव[1] आयाम-विक्खम्भविहूणा जा चेव महापउमद्दहस्स वत्तव्वया, सा चेव तिगिंछिद्दहस्स वि वत्तव्वया, तं चेव पउम-द्दहप्पमाणं अट्ठो जाव तिगिंछिवण्णाइं । धिई अ इत्थ देवी पलिओवमट्ठिईआ परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ तिगिंछिद्दहे तिगिंछिद्दहे ॥ ८९ ॥

"**तस्स ण**"मित्यादि, 'तस्य'तिगिंछिद्रहस्य **चतुर्दिक्षु चत्वारि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि प्रज्ञप्तानि, 'एवम्'** इत्थंप्रकारेण ह्रदवर्णके क्रियमाणे **यावच्छब्दो**ऽत्र कात्स्न्यर्वाच्यव्ययम्, तेन यावत्परिपूर्णा **यैव महापद्मद्रहस्य वक्तव्यता आयाम-विष्कम्भविहीना, सैव तिगिंछिद्रहस्य वक्तव्यता** । एतदेव व्यक्त्या आचष्टे-"**तं चेव**" इत्यादि, '**तदेव**' महापद्म-द्रहगतमेव '**पद्मानां**' धृतिदेवीकमलानां '**प्रमाणम्**' एककोटिविंशतिलक्षपञ्चाशत्सहस्रैकशत-विंशतिरूपम्, अन्यथाऽत्र पद्मानामायाम-विष्कम्भरूपप्रमाणस्य महापद्मद्रहगतपद्मेभ्यो द्विगुणत्वेन विरोधापातात् । **द्रहस्य** च प्रमाणमुद्वेधरूपं बोध्यम्, आयाम-विष्कम्भयोः पृथगुक्तत्वादिति । '**अर्थः**' तिगिंछिद्रहस्य वाच्यः, स चैवं "से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-तिगिंछिद्दहे २" इत्यादि प्राक्सूत्रानुसारेण वाच्यं **यावत् तिगिंछिद्रहवर्णा**भानि उत्पलादीनि, **धृतिश्चा**त्राधिपत्यं **परिपालयति, "से तेणट्ठेणं"** इत्यादि प्राग्वत् ॥८९॥

अथास्माद्द्रहाद् दक्षिणेन नदी प्रवहति तामाह-

तस्स णं तिगिंछिद्दहस्स दक्खिणिल्लेणं[2] तोरणेणं हरिमहाणई पवूढा समाणी सत्त जोअणसहस्साइं चत्तारि अ एकवीसे जोअणसए एगं च एगूणवीसइभागं जोअणस्स दाहिणाभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवित्तिएणं जाव साइरेगचउजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ । एवं जा चेव हरिकन्ताए वत्तव्वया, सा चेव हरीए वि णेअव्वा । जिब्भिआए कुंडस्स दीवस्स भवणस्स तं चेव पमाणं, अट्ठोऽवि भाणिअव्वो जाव अहे जगइं दालइत्ता छप्पण्णाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिमं लवणसमुद्दं समप्पेइ । तं चेव पवहे अ मुहमूले अ पमाणं उव्वेहो अ जो हरिकन्ताए जाव वणसंडसंपरिक्खित्ता ॥ ९० ॥

---

१. द्र. ४।६४॥ २. दक्खिणेणं-अकखत्रिबस J1J2 ॥

"**तस्स ण**"मित्यादि, **तस्य तिगिंछिद्रहस्य दाक्षिणात्येन तोरणेन 'हरिनाम्नी'** हरिसलिलाऽपरपर्याया **महानदी प्रव्यूढा सती सप्तयोजनसहस्राणि चत्वारि च योजनशतानि 'एकविंशानि'** एकविंशत्यधिकानि **एकं च एकोनविंशतिभागं योजनस्य दक्षिणाभिमुखी पर्वतेन गत्वा** इत्यादि प्राग्वत् । गिरिगन्तव्योपपत्तिस्तु षोडशसहस्राष्टशतद्वाचत्वारिंशद्योजनप्रमाणान्निषधव्यासाद् द्विसहस्रयोजनप्रमाणे ह्रदव्यासेऽपनीते शेषेऽर्द्धीकृते भवतीति । निगमयन्नतिदेशसूत्रमाह-"**एव**"मित्यादि, 'एव'मित्युक्तप्रकारेण **यैव हरिकान्ताया वक्तव्यता, सैव हरितोऽपि** महानद्या नेतव्या । **जिह्विकाया** हरि**कुण्डस्य** हरिद्वीपस्य **भवनस्य** च **तदेव प्रमाणं** हरिकान्ता-प्रकरणोक्तमवसेयम्, '**अर्थोऽपि**' हरिद्वीपनाम्नो **वाच्यः** । अत्र **यावत्**पदवाच्यं साक्षाल्लिखितं च सर्वं हरिकान्ताप्रकरण इव ज्ञेयम् ॥९०॥

तस्स णं तिगिंछिद्दहस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं सीओदा[१] महाणई पवूढा समाणी सत्त जोअणसहस्साइं चत्तारि अ एगवीसे जोअणसए एगं च एगूणवीसइभागं जोअणस्स उत्तराभिमुही पव्वएणं गंता महया घडमुहपवित्तिएणं जाव साइरेगचउजोअणसइएणं पवाएणं पवडइ । सीओदा णं महाणई जओ पवडइ एत्थ णं महं एगा जिब्भिआ पण्णत्ता-चत्तारि जोअणाइं आयामेणं, पण्णासं जोअणाइं विक्खम्भेणं, जोअणं बाहल्लेणं, मगरमुहविउट्टसंठाणसंठिआ सव्ववइरामई अच्छा ॥ ९१ ॥

अथास्माद्या उत्तरेण नदी प्रवहति तामाह-"**तस्स णं तिगिंछिद्दह**" इत्यादि, व्यक्तम् । गिरिगन्तव्यं तु हरिन्नद्या इवावसेयम् । अथास्या जिह्विकास्वरूपमाह-"**सीओआ**" इत्यादि, उत्तानार्थम् । नवर**मायामेन चत्वारि योजनानि**, हरिन्नदीजिह्विकाद्विगुणत्वात्, **पञ्चाशद् योजनानि विष्कम्भे**न, हरिन्नदीप्रवहतो द्विगुणस्य सीतोदाप्रवहस्य मातव्यत्वात्, एवं **बाहल्यम**पि पूर्वजिह्विकातो द्विगुणमवसेयम् ॥९१॥

अथ कुण्डस्वरूपमाह-

सीओदा णं महाणई जहिं पवडइ एत्थ णं महं एगे सीओअप्पवायकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते-चत्तारि असीए जोअणसए आयाम-विक्खंभेणं, पण्णरसअट्ठारे जोअणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, अच्छे, एवं कुंडवत्तव्वया णेअव्वा[२] जाव तोरणा ॥ ९२ ॥

१. सीओता-अब । सीओदा-त्रि । सीओआ-प ॥ २. द्र. ४।२५-३०॥

"सीओआ णं महाणई जहिं" इत्यादि, **"एत्थ ण"**मित्यादि, अत्र कुण्डस्य योजनसङ्ख्या हरिकुण्डतो द्वैगुण्येनोपपादनीया ॥९२॥ अथ शीतोदाद्वीपस्वरूपमाह–

तस्स णं सीओदप्पवायकुण्डस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे सीओददीवे[1] णामं दीवे पण्णत्ते–चउसट्ठिं जोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं, दोण्णि बिउत्तरे जोअणसए परिक्खेवेणं, दो कोसे ऊसिए जलंताओ, सव्ववइरामए[2] अच्छे, सेसं तमेव वेइया-वणसंड-भूमिभाग-भवण-सयणिज्ज-अट्ठो भाणिअव्वो ॥ ९३ ॥

"तस्स ण"मित्यादि, अत्र **शीतोदाद्वीपः आयाम-विष्कम्भाभ्यां चतुःषष्टियोजनानि**, पूर्वनदीद्वीपतो द्विगुणायामविष्कम्भत्वात्, **द्व्यधिके द्वे शते परिक्षेपेण**, अत्र सूत्रेऽनुक्तमपि करणवशात् किञ्चित्साधिकत्वं ज्ञेयम् । **द्वौ क्रोशौ जलादुत्थितः सर्ववज्रमयः अच्छः** 'शेषं' उक्तातिरिक्तं गङ्गाद्वीपप्रकरणोक्तमवसेयम्, तच्च विनेयस्मारणार्थं नामतो निर्दिशति–**वेदिका-वनखण्ड-भूमिभाग-भवन-शयनीयानि** वाच्यानि, अत्र सूत्रे विभक्तिलोपः प्राकृतत्वात्, अर्थश्च शीतोदाद्वीपस्य गङ्गाद्वीपवत् **भणितव्य** इति ॥९३॥

अथ यथेयं पयोधिमुपयाति तथाह–

तस्स णं सीओअप्पवायकुण्डस्स उत्तरिल्लेणं तोरणेणं सीओदा महाणई पवूढा समाणी देवकुरुं[3] एज्जेमाणी २, चित्त-विचित्तकूडे पव्वए निसढ-देवकुरु[4]-सूर-सुलस-विज्जुप्पभद्दहे अ दुहा विभयमाणी २, चउरासीए सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी २, भद्दसालवणं एज्जेमाणी २, मंदरं पव्वयं दोहिं जोअणेहिं असंपत्ता पच्चत्थिमाभिमुही आवत्ता[5] समाणी अहे विज्जुप्पभं वक्खारपव्वयं दालइत्ता मन्दरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं अवरविदेहं वासं दुहा विभयमाणी २, एगमेगाओ चक्कवट्टिविजयाओ अट्ठावीसाए २ सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी २, पञ्चहिं सलिलासयसहस्सेहिं दुतीसाए अ सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जयंतस्स दारस्स जगइं दालइत्ता पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेति ॥ ९४ ॥

१. सीओदद्दीवे-अब । सीतोददीवे-कखपस ॥ २. द्र. ४।३१-३४॥ ३. ०कुरं-V ॥ ४. ०कुर० VJ2 ॥
५. पाठान्तरे आवर्तमाना-पुवृ. ॥

"**तस्स णं सीओअप्पवाय**" इत्यादि, **तस्य शीतोदाप्रपातकुण्डस्य औत्तराहेण तोरणेन शीतोदा महानदी प्रव्यूढा सती देवकुरून् 'इय्रती २'** गच्छन्ती २, अत्र सूत्रे एकवचनम् आकारान्तत्वं च प्राकृतत्वात् । **चित्र-विचित्रकूटौ पर्वतौ** पूर्वा-ऽपरकूलवर्त्तिनौ **निषध १ देवकुरु २ सूर ३ सुलस ४ विद्युत्प्रभ ५ द्रहांश्च द्विधा 'विभजन्ती २'** तन्मध्ये वहन्ती २ । अत्रेयं विभागयोजना-चित्र-विचित्रकूटपर्वतयो-र्मध्ये वहनेन चित्रकूटं पर्वतं पूर्वतः कृत्वा विचित्रकूटं च पश्चिमतः कृत्वा देवकुरुषु वहन्ती इति, द्रहांश्च पञ्चापि समश्रेणिवर्त्तिन एकैकरूपान् द्विभागीकरणेन वहन्तीति । अत्रान्तराले देवकुरुवर्त्तिभि**श्चतुरशीत्या सलिलासहस्त्रैरापूर्यमाणा २, 'भद्रशालवनं'** मेरुप्रथमवनम् **इय्रती २ मन्दरं पर्वतं द्वाभ्यां योजनाभ्यामसम्प्राप्ता,** शीतोदा-मेर्वोरष्टौ क्रोशा अन्तरालमित्यर्थः, ततः **पश्चिमाभिमुखी परावृत्ता सती विद्युत्प्रभं 'वक्षस्कारपर्वतं'** नैर्ऋत्यकोणगतकुरुगोप-कगिरि**मधो दारयित्वा मन्दरस्य पर्वतस्य पश्चिमेन 'अपरविदेहवर्षं'** पश्चिमविदेहं **द्विधा विभजन्ती २, एकैकस्माच्चक्रवर्त्तिविजयादष्टाविंशत्या २ नदीसहस्त्रैरापूर्यमाणा २** । तथाहि-अस्या दक्षिणकूलगतविजयाष्टके द्वे द्वे महानद्यौ गङ्गा-सिन्धुनाम्नी चतुर्दश २ सहस्त्रनदीपरिवारे उत्तरकूलवर्त्तिविजयाष्टके च द्वे द्वे महानद्यौ रक्तारक्तवतीनाम्नी तावत्परिवारे स्त[1] इति प्रतिविजयमष्टाविंशतिनदीसहस्राणि । अथ सर्वाग्रेणास्या नदीपरिवारं विशेषणद्वारे-णाह- **पञ्चभिर्नदीलक्षै र्द्वात्रिंशता च ५,३२,००० नदीसहस्त्रैः 'समग्रा'** परिपूर्णा । तथाहि-अस्या उभयकूलवर्त्तिविजयषोडशकेऽष्टाविंशति२र्नदीसहस्राणीत्यष्टाविंशतिसहस्राणि षोडशभि-र्गुण्यन्ते, जातं चतुर्लक्षाण्यष्टचत्वारिंशत्सहस्राणि, अत्र राशौ कुरुगत ८४ सहस्त्रनदीप्रक्षेपे जातं यथोक्तं मानमिति । **अधो जयन्तस्य 'द्वारस्य'** पश्चिमदिग्वर्त्तिजम्बूद्वीपद्वारस्य **जगतीं दारयित्वा 'पश्चिमेन'** पश्चिमभागेन **लवणसमुद्रं समुपसर्पतीति**[2] ॥९४॥

अधुनाऽस्या विष्कम्भाद्याह-

सीओआ णं महाणई पवहे पण्णासं जोअणाइं विक्खम्भेणं, जोअणं उव्वेहेणं, तयणंतरं च णं मायाए २ परिवड्ढमाणी २ मुहमूले पञ्च जोअणसयाइं विक्खम्भेणं, दस जोअणाइं उव्वेहेणं उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता ॥ ९५ ॥

---

१. यथा सीतोदाया उत्तरकूलविजयेषु रक्ता-रक्तवत्यौ दक्षिणकूलकाये च गङ्गा-सिन्धू तथा न शीतायाः किन्तु उत्तरतो गङ्गा-सिन्धू दक्षिणत इतरे इति-ही. वृत्तौ ॥ २. "गङ्गादि-सीतोदापर्यन्तनदीनां जलप्रवेशनिमित्तं समुद्रोऽपि तत्र तत्र प्रदेशे अनादिजगत्स्थित्या यावज्जलप्रवेशोचितप्रणालयुक्तः सम्भाव्यते अतो न किञ्चिदनुपपन्नम्" (ही. वृत्तौ) । तेन योजनसहस्त्रनिम्नत्वे कथं सीतोदायाः समुद्रे प्रवेश । इति नाशङ्क्यम् ॥

"**सीओआ**" इत्यादि, **शीतोदा महानदी 'प्रवहे'** ह्रदनिर्गमे **पञ्चाशद्योजनानि विष्कम्भेण**, हरिन्नदीप्रवहादस्याः प्रवहस्य द्विगुणत्वात्, **योजनम् 'उद्वेधेन'** उण्डत्वेन, पञ्चाशद्योजनानां पञ्चाशता भागे एकस्यैव लाभात् । **तदनन्तरं 'मात्रया २'** क्रमेण २ प्रतियोजनं समुदितयोरुभयोः पार्श्वयोरशीतिधनुर्वृद्ध्या, प्रतिपार्श्वं चत्वारिंश-द्धनुर्वृद्ध्येत्यर्थः, **परिवर्द्धमाना २ मुखमूले**-समुद्रप्रवेशे **पञ्च योजनशतानि विष्कम्भेण** प्रवहविष्कम्भापेक्षया मुखविष्कम्भस्य दशगुणत्वात्, **दशयोजनान्युद्वेधेन**, आद्यप्रवहोद्वेधा-पेक्षयाऽस्य दशगुणत्वात्, शेषं व्यक्तम् ॥९५॥

अथ निषधे कूटवक्तव्यमाह-

णिसढे णं भन्ते ! वासहरपव्वए णं कति कूडा पण्णत्ता ?, गोयमा ! णव कूडा पण्णत्ता, तंजहा-सिद्धायणकूडे १ णिसढकूडे २ हरिवासकूडे ३ पुव्वविदेहकूडे ४ हरिकूडे ५ धिईकूडे ६ सीओदाकूडे ७ अवरविदेहकूडे ८ रुअगकूडे ९, जो चेव चुल्लहिमवंतकूडाणं[१] उच्चत्त-विक्खम्भ-परिक्खेवो पुव्ववण्णिओ रायहाणी अ सच्चेव इहं पि णेअव्वा ॥ ९६ ॥

"**णिसढे ण**"मित्यादि, **सिद्धायतनकूटं निषध**वर्षधरा-धिपवास**कूटं हरिवर्ष**क्षेत्र-पति**कूटं पूर्वविदेह**पतिकूटं हरिसलिलानदीसुरी**कूटं 'धृतिः'** तिगिंछिद्रहसुरी तस्याः **कूटं** शीतोदानदीसुरी**कूटं अपरविदेह**पति**कूटं 'रुचकः'** चक्रवाल-गिरिविशेषस्तदधिपति**कूटम्** । अत्र वक्तव्येऽतिदेशसूत्रमाह-"**जो चेव**" इत्यादि, य एव **क्षुद्रहिमवति कूटा**नामुच्चत्व-विष्कम्भाभ्यां सहितः परिक्षेपः **उच्चत्व-विष्कम्भ-परिक्षेपः**, चशब्दात् कूटवर्णकः **'पूर्ववर्णितः'** अधस्तनग्रन्थोक्तः, स एव इहापि ज्ञातव्यः । तथाहि-पञ्चयोजनशतान्युच्चत्वं मूलविष्कम्भश्चेत्यादि, **राजधानी च सैव इहापि नेतव्या**, अत्र लिङ्गविपरिणामेनार्थयोजना इति, कोऽर्थः ? यथा क्षुद्रहिमवद्गिरिकूटस्य दक्षिणेन तिर्यग-सङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्या-न्यस्मिन् जम्बूद्वीपे क्षुद्रहिमवती नाम्नी राजधानी, तथा इहापि निषधा नाम राजधानीति ॥९६॥

अधुनाऽस्य नामार्थं प्रश्नयन्नाह-

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ- णिसहे वासहरपव्वए २ ?, गोअमा ! णिसहे णं वासहरपव्वए बहवे कूडा णिसहसंठाणसंठिआ उसभसंठाण-संठिआ, णिसहे अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिई परिवसइ । से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ- णिसहे वासहरपव्वए २ ॥ ९७ ॥

---

१. द्र. ४।४५-५३॥

"**से केणट्ठेण**"मित्यादि, व्यक्तम् । **नवरं निषधे वर्षधरपर्वते बहूनि कूटानि निषधसंस्थानसंस्थितानि**, तत्र नितरां सहते स्कन्धे पृष्ठे वा समारोपितं भारमिति निषधः-वृषभः पृषोदरादित्वादिष्टरूपसिद्धिः, तत्संस्थानसंस्थितानि, एतदेव पर्यायान्तरेणाह-**वृषभ-[संस्थान]संस्थितानि, निषधश्चात्र देव** आधिपत्यं परिपालयति, तेन निषधाकारकूट-योगान्निषधदेवयोगाद्वा निषध इति व्यवह्रियते इति ॥९७॥

अथ यन्निषधसूत्रे "महाविदेहस्स वासस्स दक्खिणेण"(सू. ८६) मित्युक्तम्, तत् किं महाविदेहम् ? इत्याह-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे णामं वासे पण्णत्ते ?, गोअमा ! णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं, णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे णामं वासे पण्णत्ते, पाईण-पडीणायए उदीणदाहिणवित्थिण्णे[1] पलिअंकसंठाणसंठिए दुहा लवणसमुद्दं-पुट्ठे पुरत्थिम जाव पुट्ठे, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं जाव पुट्ठे, तित्तीसं जोअणसहस्साइं छच्च चुलसीए जोअणसए चत्तारि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खम्भेणं ति ॥९८-A॥

"**कहि ण**"मित्यादि, **क्व भदन्त** ! इत्यादि सूत्रं स्वयं योज्यम् । नवरं **महाविदेहं नाम** '**वर्षं**' चतुर्थं क्षेत्रं **प्रज्ञप्तं ?, गौतम ! नीलवतो** '**वर्षधरपर्वतस्य**' चतुर्थस्य क्षेत्रविभाग-कारिणो 'दक्खिणेणं' दक्षिणेनेत्यर्थः । "**णिसहस्स**" इत्यादि व्यक्तम् । नवरं **पल्यङ्कसंस्थान-संस्थित**मायतचतुरस्रत्वात्, विस्तारेण **त्रयस्त्रिंशद्योजनसहस्राणि षट् च योजनशतानि** चतुरशीत्यधिकानि **चतुरश्चैकोनविंशतिभागान्** [३३६८४$\frac{४}{१९}$] **योजनस्य विष्कम्भेन**, निषधविष्कम्भाद् द्विगुणविष्कम्भकत्वात् ॥९८-A॥

अथ बाहादिसूत्रत्रयमाह-

तस्स बाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं तेत्तीसं जोअणसहस्साइं सत्त य सत्तसट्ठे जोअणसए सत्त य एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं ति ॥९८-B॥

"**तस्स बाहा**" इत्यादि, '**तस्य**' महाविदेहस्य वर्षस्य **पूर्वाऽपरभागेन बाहा** प्रत्येकं **त्रयस्त्रिंशद् योजनसहस्राणि सप्त च योजनशतानि सप्तषष्ट्याऽ**धिकानि **सप्त च एकोनविंशतिभागान्** [३३७६७$\frac{७}{१९}$] **योजनस्य आयामेनेति** । ननु

१. द्र. ४१९॥

"महया धणुपट्ठाओ, डहरागं सोहिआहि धणुपट्ठं ।
जं तत्थ हवइ सेसं, तस्सद्धे णिद्दिसे बाहं ॥१॥" [बृहत्क्षेत्र समास १।४६]

इति वचनात् महतो धनुःपृष्ठाद् विदेहानां दक्षिणार्द्धस्योत्तरार्द्धस्य च सम्बन्धिनो लक्षमेकमष्टपञ्चाशत्सहस्राणि शतमेकं त्रयोदशाधिकं योजनानां षोडश च कलाः सार्द्धा योजन १५८११३ कलाः १६ कलार्द्धं चेत्येवंपरिणामाल्लघु धनुःपृष्ठं निषधाद्रिसम्बन्धि लक्षमेकं चतुर्विंशतिसहस्राणि त्रीणि शतानि षट्चत्वारिंशदधिकानि योजनानां नव च कला योजन १२४३४६ कला ९ इत्येवंपरिमाणं शोधय, ततश्च शेषमिदं त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि सप्त शतानि सप्तषष्ट्यधिकानि योजनानां सप्त च कलाः सार्द्धा योजनानां ३३७६७ कला ७ कलार्द्धं च, एषामर्द्धे षोडश योजनसहस्राणि अष्टौ शतानि त्र्यशीत्यधिकानि योजनानां त्रयोदश च कलाः सपादाः [१६,८८३ $\frac{१३}{१९}$] इत्येवंरूपा बाहा विदेहानां सम्भवति, अत्र तु त्रयस्त्रि-शत्सहस्रादिरूपा उक्ता तत्किम् ? इति, उच्यते, सर्वत्र वैताढ्यादिषु पूर्वबाहा अपरबाहा च यावती दक्षिणतस्तावती उत्तरतोऽपि परं व्यवहितत्वेन सा सम्मील्य नोक्ता, इयं तु सम्मिलितत्वात् सम्मील्यैवोक्ता सूत्रे दक्षिणबाहाप्रमाणैवोत्तरबाहेत्येनमर्थं बोधयितुमिति ॥९८-B॥

अथास्य जीवामाह-

तस्स जीवा बहुमज्झदेसभाए पाईण-पडीणायया दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा-पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा, एवं पच्चत्थिमिल्लाए जाव पुट्ठा, एगं जोयणसयसहस्सं आयामेणं ति । ॥ ९८-C॥

"**तस्स जीवा**" इत्यादि, '**तस्य**' विदेहस्य **जीवा बहुमध्यदेशभागे** विदेहमध्ये इत्यर्थः, अन्येषां तु वर्षवर्षधराणां चरमप्रदेशपङ्क्तिर्जीवा अस्य तु मध्यप्रदेशपङ्क्तिरित्यर्थः, इयमेव च जम्बूद्वीपमध्यम् अत एव **चायामेन लक्षयोजनमाना**, मध्यात्परतस्तु[1] जम्बूद्वीपस्य सर्वत्र दक्षिणत उत्तरतो वा लक्षान्न्यूनन्यूनमानत्वात् ॥९८-C॥

अथास्य धनुःपृष्ठमाह-

तस्स धणुं उभओ पासिं उत्तर-दाहिणेणं एगं जोयणसयसहस्सं अट्ठावण्णं च जोअणसहस्साइं एगं च तेरसुत्तरं जोअणसयं सोलस य एगूणवीसइभागे जोयणस्स किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं ति ॥ ९८-D॥

"**तस्स धणुं**" इत्यादि, '**तस्य**' विदेहस्योभयोः **पार्श्वयोः**, एतदेव विवृणोति-"**उत्तर-दाहिणेणं**"ति, उत्तरपार्श्वे दक्षिणपार्श्वे वा **एकं योजनलक्षम् अष्टपञ्चाशच्च योजनसहस्राणि**

---

१. पुके । मध्यमात्प० मु. ॥

एकं च योजनशतं त्रयोदशोत्तरं षोडश चैकोनविंशतिभागान् [१,५८, ११३ $\frac{१६}{१९}$] **योजनस्य किंचिद्विशेषाधिकान् परिक्षेपेण**, यच्चान्यत्र सार्द्धाः षोडश कला उक्तास्तदत्र किंचिद्विशेषाधिकपदेन संगृहीतम्, उद्धरितकलांशास्तु न विवक्षिता इति ।

अत्राधिकार्थसूचनार्थं करणान्तरं दर्श्यते–जम्बूद्वीपपरिधिस्तिस्रो लक्षाः षोडश सहस्राणि द्वे शते सप्तविंशत्यधिके योजनानां क्रोशत्रयमष्टाविंशं धनुःशतं त्रयोदशांगुलान्येकमर्द्धाङ्गुलं योजन ३१६२२७ क्रोश ३ धनूंषि १२८ अङ्गुल १३ अर्द्धाङ्गुलं $\frac{१}{२}$, तत्र योजनराशिरर्द्धीक्रियते, लब्धमेकं लक्षमष्टापञ्चाशत्सहस्राणि शतमेकं त्रयोदशाधिकं योजन १५८११३, यत्त्वेकं योजनं शेषं तत्कलाः क्रियन्ते लब्धाः एकोनविंशतिः क्रोशत्रये च लब्धाः सपादाश्चतुर्दश कलाः उभयमीलने जाताः सपादास्त्रयस्त्रिंशत् कलाः तासामर्द्धे लब्धाः सार्द्धाः षोडश कलाः, यश्च कलाया अष्टमो भागोऽधिक उद्धरति यानि च धनुषामर्द्धे लब्धानि चतुःषष्टिर्धनूंषि यानि च सार्द्धत्रयोदशाङ्गुलानामर्द्धे पादोनानि सप्ताङ्गुलानि तदेतत्सर्वमल्पत्वान्न विवक्षितमिति ॥९८–D॥

अधुना विदेहवर्षस्य भेदान्निरूपयन्नाह–

महाविदेहे णं वासे चउव्विहे चउप्पडोआरे पण्णत्ते, तंजहा–पुव्वविदेहे १ अवरविदेहे २ देवकुरा ३ उत्तरकुरा ४ ॥ ९९ ॥

"**महाविदेहे ण**"मित्यादि, **महाविदेहं वर्षं 'चतुर्विधं'** चतुष्प्रकारं पूर्वविदेहाद्यन्यतरस्य महाविदेहत्वेन व्यपदिश्यमानत्वात्, अत एव 'चतुर्षु' पूर्वा-ऽपरविदेह-देवकुरूत्तरकुरुरूपेषु क्षेत्रविशेषेषु **'प्रत्यवतारः'** समवतारो विचारणी-यत्वेन यस्य तत्तथा, चतुर्विधस्य पर्यायो वाऽयम् । तत्र पूर्वविदेहो यो मेरोर्जम्बूद्वीपगतः प्राग्विदेहः, एवं पश्चिमतः सोऽपरविदेहः, दक्षिणतो देवकुरुनामा विदेहः, उत्तरतस्तु उत्तरकुरुनामा विदेहः । ननु पूर्वा-ऽपरविदेहयोः समानक्षेत्रानुभावकत्वेन महाविदेहव्यपदेश्यता-ऽस्तु, देवकुरूत्तरकुरूणां त्वकर्मभूमिकत्वेन कथं महाविदेहत्वेन व्यपदेशः ?, उच्यते, प्रस्तुतक्षेत्रयोर्भरताद्यपेक्षया महाभोगत्वात् महाकायमनुष्ययोगित्वान्महाविदेहदेवाधिष्ठेयत्वाच्च महाविदेहवाच्यता समुचितैवेति सर्वं सुस्थम् ॥९९॥

अथास्य स्वरूपं वर्णयितुमाह–

महाविदेहस्स णं भन्ते ! वासस्स केरिसए आगारभावपडोआरे पण्णत्ते ?, गोअमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव[1] कित्तिमेहिं[2] चेव अकित्तिमेहिं चेव ॥ १०० ॥

१. द्र. १।२१॥ २. कत्तिमेहिं-चेव अकत्ति० V ॥

महाविदेहे णं भन्ते ! वासे मणुआणं केरिसए आयारभावपडोआरे पण्णत्ते ?, गो० तेसि णं मणुआणं छव्विहे संघयणे, छव्विहे संठाणे, पञ्च-धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं[१] उक्कोसेणं, पुव्वकोडीआउअं पालेन्ति, पालेत्ता अप्पेगइआ णिरयगामी जाव अप्पेगइआ सिज्झंति बुज्झंति जाव[२] अंतं करेन्ति ॥ १०१ ॥

"**महाविदेह**" इत्यादि, प्राग्वत्, अत्र यावत्करणात् "आलिंगपुक्खरे इ वा जाव णाणाविह-पञ्चवण्णेहिं मणीहिं तणेहि अ उवसोभिए" इति । सम्प्रत्यत्र मनुजस्वरूपमाह-"**महाविदेहे ण**"मित्यादि, प्राग्वत्, आभ्यां सूत्राभ्यामस्य कर्मभूमित्वमभाणि, अन्यथा कर्षकादिप्रवृत्तानां तृणादीनां कृत्रिमत्वं तद्वर्षजातानां च मनुष्याणां पञ्चमगतिगामित्वं न स्यात् ॥१००-१०१॥

अथास्य नामार्थं प्रश्नयन्नाह-

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-महाविदेहे वासे २ ?, गोअमा ! महाविदेहे णं वासे भरहेरवय-हेमवय[३]-हेरण्णवय-हरिवास-रम्मगवासेहिंतो आयाम-विक्खम्भ-संठाण-परिणाहेणं वित्थिण्णतराए चेव विपुलतराए चेव महंततराए चेव सुप्पमाणतराए चेव, महाविदेहा य इत्थ मणूसा परिवसंति, महाविदेहे अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ-महाविदेहे वासे २ । अदुत्तरं च णं गोअमा ! महाविदेहस्स वासस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते, जं ण कयाइ णासि० ३ ॥ १०२ ॥

"**से केणट्ठेण**"मित्यादि, प्राग्वत्, प्रश्नसूत्रं सुगमम् । उत्तरसूत्रे-**गौतम ! महाविदेहो वर्षं भरतैरावत-हैमवत-हैरण्य-हरिवर्ष-रम्यक-वर्षेभ्यः आयाम-विष्कम्भ-संस्थान-परिणाहेन**, समाहारादेकवद्भावः, तत्रायामादित्रिकं प्रतीतं, 'परिणाहः'परिधिः, अत्र च व्यस्ततया विशेषणनिर्देशेऽपि योजना यथासम्भवं भवतीत्यायामेन **महत्तरक एव** लक्षप्रमाणजीवाकत्वात्, तथा विष्कम्भेन **विस्तीर्णतरक एव** साधिक-चतुरशीतिषट्शताधिक-त्रयस्त्रिंशद्योजनसहस्रप्रमाणत्वात्, तथा संस्थानेन पल्यङ्करूपेण **विपुलतरक एव**

१-२. द्र. १।२२॥ ३. हेमवएरण्णवय-कखबस । हेमवयएरण्णवय-त्रि ॥

पार्श्वद्वयेऽपीषयोस्तुल्यप्रमाणत्वात्, हैमवतादीनां पल्यङ्कसंस्थिततत्वेऽपि पूर्वजगतीकोणानां संवृतत्वेन पूर्वापरेषयोर्वैषम्यादिति । तथा परिणाहेन **सुप्रमाणतरक एव**, एतद्धनुःपृष्ठस्य जम्बूद्वीपपरिध्यर्द्धमानत्वादिति, अत एव 'महान्'अतिशयेन 'विकृष्टः'गरीयान् 'देहः'शरीरमाभोग इतियावत् येषां ते **महाविदेहाः**, अथवा 'महान्'अतिशयेन 'विकृष्टः'-गरीयान् 'देहः'शरीरं कलेवरं येषां ते तथा, ईदृशास्तत्रत्या **मनुष्याः** । तथाहि–तत्र विजयेषु सर्वदा पञ्चधनुःशतोच्छ्रया देवकुरूत्तरकुरुषु त्रिगव्यूतोच्छ्रयाः, ततो महाविदेहमनुष्ययोगादि-दमपि क्षेत्रं महाविदेहाः, महाविदेहश्च शब्दः स्वभावाद् बहुवचनान्त एव, एतच्च प्रागेवोक्तम्, ततो बहुवचनेन व्यवह्रियते, दृश्यते च क्वचिदेकवचनान्तोऽपि, तदपि प्रमाणम्, पूर्वमहर्षिभिस्तथाप्रयोगकरणात् । अथवा **महाविदेह**नामा **देवोऽत्राधि**पत्यं परिपालयति, तेन तद्योगादपि महाविदेह इति, शेषं प्राग्वत् ॥१०२॥

सम्प्रत्युत्तरकुरूर्वक्तुकामस्तदुपयोगित्वेन प्रथमं गन्धमादनवक्षस्कारगिरिप्रश्नमाह–

कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे गन्धमायणे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?, गोअमा ! णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपच्चत्थिमेणं, गंधिलावइस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं, उत्तरकुराए पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं महाविदेहे वासे गन्धमायणे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते-उत्तर-दाहिणायए पाईण-पडीणवित्थिण्णे तीसं जोअणसहस्साइं दुण्णि अ णउत्तरे जोअणसए छच्च य एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं । णीलवंतवासहरपव्वयंतेणं चत्तारि जोअणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि गाउअसयाइं उव्वेहेणं, पञ्च जोअणसयाइं विक्खम्भेणं, तयणंतरं च णं मायाए २ उस्सेहुव्वेहपरिवुड्ढीए परिवड्ढमाणे २, विक्खम्भपरिहाणीए परिहायमाणे २, मंदरपव्वयंतेणं पञ्च जोअणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पञ्च गाउअसयाइं उव्वेहेणं, अंगुलस्स असंखिज्जइभागं विक्खम्भेणं पण्णत्ते गयदन्तसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते ॥ १०३ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, **क्व भदन्त ! महाविदेहे वर्षे गन्धमादनो नाम** 'वक्षसि' मध्ये स्वगोप्यं क्षेत्रं द्वौ सम्भूय कुर्वन्तीति वक्षस्कारा:, तज्जातीयोऽयमिति '**वक्षस्कारपर्वत:**' गजदन्तापरपर्याय: **प्रज्ञप्त:** ?, **गौतम ! नीलवन्नाम्नो वर्षधरपर्वतस्य दक्षिण**भागेन **मन्दरस्य** '**पर्वतस्य**' मेरो: '**उत्तरपश्चिमेन**' उत्तरस्या: पश्चिमायाश्च अन्तरालवर्त्तिना दिग्विभागेन वायव्यकोणे इत्यर्थ:, '**गन्धिलावत्या:**' शीतोदोत्तरकूलवर्त्तिनोऽष्टमविजयस्य **पूर्वेण** '**उत्तर-कुरूणां**' सर्वोत्कृष्टभोगभूमिक्षेत्रस्य **पश्चिमेन अत्रान्तरे महाविदेहे वर्षे गन्धमादनो नाम वक्षस्कारपर्वत: प्रज्ञप्त:, उत्तर-दक्षिणयोरायत:** '**प्राचीन-प्रतीचीनयो:**' पूर्व-पश्चिमयोर्दिशो: **विस्तीर्ण:, त्रिंशद्योजनसहस्राणि द्वे च नवोत्तरे योजनशते षट् च एकोनविंशतिभागान्** [३३२०९ $\frac{६}{१९}$] **योजनस्यायामेन**, अत्र यद्यपि वर्षधराद्रिसम्बद्धमूलानां वक्षस्कारगिरीणां साधिकैकादशाष्टशतद्विचत्वारिंशद्योजनप्रमाण-कुरुक्षेत्रान्तर्वर्त्तिनामेतावानायामो न सम्पद्यते, तथाऽप्येषां वक्रभावपरिणतत्वेन बहुतर-क्षेत्रावगाहित्वात् सम्भवतीति । **नीलवद्वर्षधर**समीपे **चत्वारि योजनशतानि ऊर्ध्वोच्चत्वेन चत्वारि गव्यूतशतानि उद्वेधेन पञ्चयोजनशतानि विष्कम्भेन, तदनन्तरं** '**मात्रया २**' क्रमेण क्रमेण '**उत्सेधोद्वेधयो:**' उच्चत्वोण्डत्वयो: **परिवृद्ध्या परिवर्द्धमान: २, विष्कम्भपरिहाण्या परिहीयमाण: २,** '**मन्दरपर्वतस्य**' मेरो: '**अन्ते**' समीपे **पञ्चयोजनशतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन पञ्चगव्यूति-शतानि उद्वेधेन अङ्गुलस्या-सङ्ख्यभागं विष्कम्भेन प्रज्ञप्त:,** गजदन्तस्य यत् '**संस्थानं**' प्रारम्भे नीचत्वमन्ते उच्चत्वमित्येवंरूपं तेन **संस्थित:, सर्वात्मना** रत्नमय:, **श्रीउमास्वातिवाचककृत-जम्बूद्वीपसमासप्रकरणे** तु कनकमय इति, शेषं प्राग्वत् ॥१०३॥

अथास्य भूमिसौभाग्यमावेदयति-

गन्धमायणस्स णं वक्खारपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे जाव[१] आसयन्ति ॥ १०४ ॥

गन्धमायणे णं वक्खारपव्वए कति कूडा पण्णत्ता ?, गो० ! सत्त कूडा, तंजहा-सिद्धाययणकूडे १ गन्धमायणकूडे २ गंधिलावइकूडे ३ उत्तरकुरु-कूडे ४ फलिहकूडे ५ लोहियक्खकूडे ६ आणंदकूडे ७ ॥ १०५ ॥

"**गन्धमायण**" इत्यादि, **गन्धमादनस्य वक्षस्कार-पर्वतस्योपरि बहुसमरमणीयो भूमिभाग: प्रज्ञप्त:**, अत्र **यावत्पदाद्वैताढ्याद्रिशिखर**-तलवर्णकगतं सर्वं बोध्यम् । सम्प्रत्यत्र

१. द्र. १।१३॥

कूटवक्तव्यतामाह-"**गन्धमायणे**" इत्यादि, व्यक्तम् । नवरं **स्फटिककूटं** स्फटिकरत्नमयत्वात् **लोहिताक्षकूटं** लोहितरत्नवर्णत्वात्, आनन्दनाम्नो देवस्य कूट**मानन्दकूटम्** ॥१०४-१०५॥

ननु यथा वैताढ्यादिषु सिद्धायतनादिकूटव्यवस्था पूर्वा-ऽपरायतत्वेन, तद्वदत्रापि उत कश्चिद्विशेषः ? इत्याह-

कहि णं भन्ते ! गंधमायणे वक्खारपव्वए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?, गोअमा ! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपच्चत्थिमेणं, गंधमायण-कूडस्स दाहिणपुरत्थिमेणं, एत्थ णं गंधमायणे वक्खारपव्वए सिद्धाय-यणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते । जं चेव चुल्लहिमवन्ते सिद्धाययणकूडस्स पमाणं तं चेव एएसिं सव्वेसिं[1] भाणिअव्वं । एवं चेव विदिसाहिं तिण्णि कूडा भाणिअव्वा, चउत्थे ततिअस्स उत्तरपच्चत्थिमेणं, पञ्चमस्स दाहिणेणं, सेसा उ उत्तरदाहिणेणं । फलिह-लोहिअक्खेसु भोगंकर-भोगवईओ दे[2]वयाओ सेसेसु सरिसणामया देवा । छसु वि पासायवडेंसगा रायहाणीओ विदिसासु ॥ १०६ ॥

"**कहि णं भन्ते !**" इत्यादि, व्यक्तम् । नवरं यथा वैताढ्यादिषु सिद्धायतनकूटं समुद्रासन्नं पूर्वेण ततः क्रमेण शेषाणि स्थितानि, तथाऽत्र मन्दरासन्नं सिद्धाय-तनकूटं **मन्दराद्** '**उत्तरपश्चिमायां**' वायव्यां दिशि **गन्धमादनकूटस्य तु** '**दक्षिणपूर्वस्याम्**' आग्नेय्यामस्ति । **यदेव क्षुद्रहिमवति सिद्धायतनकूटस्य प्रमाणं तदेवैतेषां** '**सर्वेषां**' सिद्धायतनादिकूटानां **भणितव्यम्** । अर्थाद् वर्णनमपि तद्वदेवेति, व्यवस्था तु शेषकूटानामत्र भिन्नप्रकारेणेति मनसिकृत्याह-"**एवं चेव**" इत्यादि, 'एवं चेव' इत्येवंसिद्धायतनानुसारेण '**विदिक्षु**' वायव्यकोणेषु **त्रीणि कूटानि** सिद्धायतनादीनि **भणितव्यानि**, उक्त-वक्तव्यानां मिश्रितनिर्देशस्तु "एवं चत्तारि वि दारा भाणिअव्वा" इति सूत्रविवरणोक्तयुक्त्या समाधेयः । अयमर्थः-मेरुत उत्तरपश्चिमायां सिद्धायतनकूटं, तस्मादुत्तर-पश्चिमायां गन्धमादनकूटं तस्माच्च गन्धिलावतीकूटमुत्तरपश्चिमायामिति, अत्र तिस्रो वायव्यो दिशः समुदिता विवक्षिता इति बहुत्वेन निर्देशः । '**चतुर्थम्**' उत्तरकुरुकूटं '**तृतीयस्य**' गन्धिलावतीकूट**स्योत्तरपश्चिमायां** '**पञ्चमस्य**' स्फटिककूटस्य **दक्षिणतः** ।

---

१. द्र. १।३५-४६॥ २. दो देव० V ॥

ननु यथा तृतीयाद् गन्धिलावतीकूटाच्चतुर्थं उत्तरकुरुकूटमुत्तरपश्चिमायां चतुर्थाच्च तृतीयं दक्षिणपूर्वस्यां तथा पञ्चमात् स्फटिककूटात् कथं दक्षिणपूर्वस्यां चतुर्थं कूटं न सङ्गच्छते ?, उच्यते, पर्वतस्य वक्रत्वेन चतुर्थकूटत एव दक्षिणपूर्वां प्रति वलनात् पञ्चमाच्चतुर्थं दक्षिणस्यामिति, **शेषाणि** स्फटिककूटादीनि त्रीणि **उत्तर-दक्षिण**श्रेणिव्यवस्थया स्थितानि । कोऽर्थः ? पञ्चमं चतुर्थस्योत्तरतः षष्ठस्य दक्षिणतः, षष्ठं पञ्चमस्योत्तरतः सप्तमस्य दक्षिणतः, सप्तमं षष्ठस्योत्तरत इति परस्परमुत्तर-दक्षिणभाव इति, अत्र पञ्चशतयोजनविस्ताराण्यपि कूटानि यत् क्रमहीयमानेऽपि प्रस्तुतगिरिक्षेत्रे मान्ति, तत्र सहस्राङ्ककूटरीतिर्ज्ञेया । अथैषामेवाधिष्ठातृस्वरूपं निरूपयति-"**फलिह-लोहिअक्खे**" इत्यादि, स्फटिककूट-लोहिताक्षकूटयोः पञ्चम-षष्ठयो**र्भोगङ्करा-भोगवत्यौ** द्वे '**देवते**' दिक्कुमार्यौ वसतः, **शेषेषु कूटसदृशनामका देवाः, षट्स्वपि 'प्रासादावतंसकाः'** स्वस्वाधिपतिवासयोग्याः, एषां च '**राजधान्यः**' असङ्ख्याततमे जम्बूद्वीपे '**विदिक्षु**' उत्तरपश्चिमासु ॥१०६॥

सम्प्रति नामार्थं पिपृच्छिषुराह-

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-गंधमायणे वक्खारपव्वए २ ?, गो० ! गंधमायणस्स णं वक्खारपव्वयस्स गंधे से जहा णामए कोट्ठपुडाण वा जाव[1] पीसिज्जमाणाण वा उक्किरिज्जमाणाण वा विकिरिज्जमाणाण वा परिभुज्जमाणाण वा जाव[2] ओराला मणुण्णा जाव[3] गंधा अभिणिस्सवन्ति, भवे एआरूवे ?, णो इणट्ठे समट्ठे, गंधमायणस्स णं इत्तो इट्ठतराए चेव जाव गंधे पण्णत्ते । से एएणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ गंधमायणे वक्खारपव्वए २, गंधमायणे अ इत्थ देवे महिड्ढीए परिवसइ, अदुत्तरं च णं सासए णामधिज्जे इति ॥ १०७ ॥

"**से केणट्ठेणं**" इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमम् । उत्तरसूत्रे **गन्धमादनस्य वक्षस्कारपर्वतस्य गन्धः स यथा नाम कोष्ठपुटानां यावत्पदात्** तगरपुटादीनां सङ्ग्रहः, '**पिष्यमाणानां वा**' सञ्चूर्ण्यमानानां **उत्कीर्यमाणानां वा विकीर्य-माणानां वा परिभुज्यमानानां वा यावत्पदात्** भाण्डात् भाण्डान्तरं वा संह्रियमाणानामिति, '**उदाराः**' **मनोज्ञाः यावत्पदात् गन्धा** इति कर्तृपदम्, **अभिनिःस्रवन्ति** । एवमुक्ते शिष्यः पृच्छति-**भवेदेतद्रूपो** गन्धमादनस्य गन्ध

१. द्र. जीवा. ३।२८३॥ २-३. जीवा. द्र. ३।२८१॥

इति ?, भगवानाह-**नायमर्थः समर्थः, गन्ध-मादनस्य** 'इतः' भवदुक्ताद् गन्धादिष्टतरक **एव यावत्करणात्** कान्ततरक एवेत्यादिपदग्रहः । निगमनवाक्ये **तेनार्थेन गौतम ! एवमुच्यते,** गन्धेन स्वयं माद्यतीव मदयति वा तन्निवासि-देवदेवीनां मनांसि इति **गन्धमादनः,** "कृद्बहुल" [श्रीसिद्ध० अ० ५ पा० १ सू० २]मिति वचनात् कर्त्तर्यनट्प्रत्ययः, "घञ्युपसर्गस्य वे" [श्रीसिद्ध० अ० ३ पा० २ सू० ८६]त्यत्र बहुलाधिकारादतिशायितादिवत् मकाराकारस्य दीर्घत्वमिति, **गन्धमादन-नामा चात्र देवो महर्द्धिकः परिवसति,** तेन तद्योगादिति नाम, अन्यत् सर्वं प्राग्वत् ॥१०७॥

अथ यासामुपयोगित्वेन गन्धमादनो निरूपितस्ता उत्तरकुरूः निरूपयति-

कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे उत्तरकुरा णामं कुरा पं० ?, गो० ! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं, णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं, गन्धमायणस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, मालवन्तस्स[1] पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं उत्तरकुरा णामं कुरा पण्णत्ता-पाईण-पडीणायया उदीण-दाहिणवित्थिण्णा अद्धचंदसंठाणसंठिआ इक्कारस जोअणसहस्साइं अट्ठ य बायाले जोअणसए दोण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खम्भेणं । तीसे जीवा उत्तरेणं पाईण-पडीणायया दुहा वक्खारपव्वयं पुट्ठा, तंजहा-पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं पुट्ठा, एवं पच्चत्थिमिल्लाए जाव पच्चत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं पुट्ठा, तेवण्णं जोअणसहस्साइं आयामेणं । तीसे णं धणुं दाहिणेणं सट्ठिं जोअणसहस्साइं चत्तारि अ अट्ठारसे जोअणसए दुवालस य एगूणवीसइभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं ॥ १०८ ॥

"**कहि ण**"-मित्यादि, **क्व भदन्त ! महाविदेहे वर्षे उत्तरकुरवो नाम्ना कुरवः प्रज्ञप्ताः ?, गौतम ! मन्दरस्य पर्वतस्योत्तरतो नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य दक्षिणतो गन्धमादनस्य वक्षस्कार-पर्वतस्य पूर्वतो** वक्ष्यमाणस्वरूपस्य **माल्यवतः पश्चिमतः अत्रान्तरे उत्तरकुरवो नाम्ना कुरवः प्रज्ञप्ताः, प्राक्पश्चिमायता उत्तर-दक्षिण विस्तीर्णाः अर्द्धचन्द्राकारा एकादश-योजनसहस्राण्यष्टौ शतानि द्वाचत्वारिंशदधिकानि द्वौ चैकोनविंशतिभागौ** ११८४२ $\frac{२}{१९}$ **योजनस्य विष्कम्भेन,** अत्रोपपत्तिर्यथा

---

१. पुके J12 । ०स्स वक्खारपव्वयस्स पच्च० मु. ॥

महाविदेहविष्कम्भात् ३३६८४ कला ४ इत्येवंरूपात् मेरुविष्कम्भेऽपनीते शेषस्यार्द्धे कृते उक्ताङ्कराशिः स्यात् । ननु वर्ष-वर्षधरादीनां क्रमव्यवस्था प्रज्ञापकापेक्षयाऽस्ति यथा प्रज्ञापकासन्नं भरतं ततो हिमवानित्यादि, ततो विदेहकथनानन्तरं क्रमप्राप्ता देवकुरूर्विमुच्य कथमुत्तरकुरूणां निरूपणम् ?, उच्यते, चतुर्दिग्मुखे विदेहे प्रायः सर्वं प्रादक्षिण्येन व्यवस्थाप्यमानं समये श्रूयते, तेन प्रथमत उत्तरकुरुकथनं भरतपार्श्वस्थौ विद्युत्प्रभसौमनसौ विहाय गन्धमादनमाल्यवद्वक्षस्कारप्ररूपणं भरतासन्नविजयान् विहाय कच्छमहाकच्छादि-विजयकथनं चेति । अथैतासां जीवामाह-"**तीसे**" इत्यादि, 'तासाम्' उत्तरकुरूणां, सूत्रे एकवचनं प्राकृतत्वात्, **जीवा-उत्तरतो** नीलवद्वर्षधरासन्ना कुरुचरमप्रदेश-श्रेणिः **पूर्वा-ऽपरायता 'द्विधा'** पूर्वपश्चिमभागाभ्यां **वक्षस्कारपर्वतं स्पृष्टा** । एतदेव विवृणोति-**तद्यथा-पौरस्त्यया कोट्या पौरस्त्यं 'वक्षस्कारपर्वतं'** माल्यवन्तं **स्पृष्टा, पाश्चात्यया 'पाश्चात्यं'** गन्धमादननामानं **वक्षस्कारपर्वतं स्पृष्टा, त्रिपञ्चाशद्योजन-सहस्राणि आयामेन** । तत्कथम् ? इति, उच्यते, मेरोः पूर्वस्यां दिशि भद्रशाल-वनमायामतो द्वाविंशतिर्योजनसहस्राणि एवं पश्चिमायामपि, उभयमीलने जातं चतुश्चत्वारिंशत्सहस्राणि मेरुविष्कम्भे दशसहस्रयोजनात्मके प्रक्षिप्ते जातं चतुष्पञ्चाशद्योजनसहस्राणि, एकैकस्य वक्षस्कारगिरेर्वर्षधरसमीपे पृथुत्वं पञ्च योजनशतानि, ततो द्वयोर्वक्षस्कारगिर्योः पृथुत्वपरिमाणं योजनसहस्रं तत्पूर्वराशेरपनीयते, जातः पूर्वराशिस्त्रिपञ्चाशद्योजनसहस्राणीति । अथैतासां धनुःपृष्ठमाह-"**तीसे णं धणुं दाहिणेण**" मित्यादि, तासां धनुःपृष्ठं दक्षिणतो मेर्वासन्न इत्यर्थः, **षष्टियोजनसहस्राणि चत्वारि च योजनशतानि 'अष्टादशानि'** अष्टादशाधिकानि **द्वादश चैकोनविंशतिभागान्** [६०,४१८ $\frac{१२}{१९}$] **योजनस्य परिक्षेपेण** । तथाहि-एकैकवक्षस्कार-गिरेरायामस्त्रिंशद्योजन-सहस्राणि द्वे च नवोत्तरे षट् च कलाः ३०,२०९$\frac{६}{१९}$, ततो द्वयोर्वक्षस्कारयोर्मीलने यथोक्तं मानमिति ॥१०८॥

उत्तरकुराए णं भन्ते ! कुराए केरिसए आयारभावपडोआरे पण्णत्ते ?, गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, एवं पुव्ववण्णिआ जच्चेव सुसमसुसमावत्तव्वया सच्चेव णेअव्वा [१] जाव पउमगंधा १ मिअगंधा २ अममा ३ सहा ४ तेतली ५ सणिंचारी ६ ॥ १०९ ॥

१. द्र. २१७-५०॥

अथैतासां स्वरूपप्ररूपणायाह-"**उत्तरकुराए ण**"मित्यादि, **उत्तरकुरूणां भदन्त ! कीदृश** '**आकारभावप्रत्यवतारः**' स्वरूपाविर्भावः **प्रज्ञप्तः** ?, **गौतम ! बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः**, '**एवम्**' उक्तन्यायेन '**पूर्वं**' भरतप्रकरणे **वर्णिता या एव** '**सुषम-सुषमायाः**' आद्यारकस्य **वक्तव्यता सैव निरवशेषा नेतव्या** । कियत्पर्यन्तम् इत्याह-**यावत्** षट्प्रकाराः **पद्मगन्धादयो** मनुष्यास्तावदिति ॥१०९॥

उक्तोत्तरकुरुवक्तव्यताऽथ तद्वर्त्तिनौ यमकपर्वतौ प्ररूपयति-

कहि णं भन्ते ! उत्तरकुराए जमगा णामं दुवे पव्वया पण्णत्ता ?, गोअमा ! णीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणिल्लाओ चरिमन्ताओ अट्ठजोअणसए चोत्तीसे चत्तारि अ सत्तभाए जोअणस्स अबाहाए, सीआए महाणईए उभओ कूले एत्थ णं जमगा णामं दुवे पव्वया पण्णत्ता-जोअणसहस्सं उड्ढं उच्चत्तेणं, अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं उव्वेहेणं, मूले एगं जोअणसहस्सं आयाम-विक्खम्भेणं, मज्झे अद्धट्ठमाणि जोअणसयाइं आयाम-विक्खम्भेणं, उवरिं पंच जोअणसयाइं आयाम-विक्खम्भेणं, मूले तिण्णि जोअणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं[१] परिक्खेवेणं मज्झे दो जोअण-सहस्साइं तिण्णि बावत्तरे जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं, उवरि एगं जोअणसहस्सं पञ्च य एकासीए जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं, मूले वित्थिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुआ जमग-[२]संठाणसंठिआ सव्वकणगामया अच्छा सण्हा पत्तेअं २ पउमवरवेइआ-परिक्खित्ता पत्तेअं २ वणसंडपरिक्खित्ता । ताओ णं पउमवरवेइआओ दो गाऊआइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पञ्च धणुसयाइं विक्खम्भेणं, वेइआ-वण-सण्डवण्णओ [३]भाणिअव्वो ॥ ११० ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, क्व **भदन्त ! उत्तरकुरुषु यमकौ नाम द्वौ पर्वतौ प्रज्ञप्तौ** ?, **गौतम ! नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य दाक्षिणात्याच्चरमान्तात्** इत्यत्र दाक्षिणात्यं चरमान्तम् आरभ्येति ज्ञेयम्, क्यब्लोपे पञ्चमी, दाक्षिणात्याच्चरमान्तादारभ्यार्वाक् दक्षिणाभिमुखमित्यर्थः,

---

१. V । ०विसेसाहिए-अकखत्रिबस J ॥ २. अकपबस पुवृ शावृ हीवृ । गोपुच्छसंठाणसंठिया-V । जीवाभिगमे (३।६३२) तु गोपुच्छ संस्थानसंस्थितः-पुवृ. ॥ ३. द्र. १।१०-१३॥

अष्टौ योजनशतानि चतुस्त्रिंशदधिकानि चतुरश्च सप्तभागान् योजनस्य 'अबाधया' अपान्तराले कृत्वेति शेषः, **शीताया महानद्या 'उभयोः कूलयोः'** एकः पूर्वकूले एकः पश्चिमकूले इत्यर्थः, **अत्रान्तरे यमकौ नाम द्वौ पर्वतौ प्रज्ञप्तौ । एकं योजनसहस्र-मूर्ध्वोच्चत्वेन अर्द्धतृतीयानि योजनशतान्युद्वेधेन,** उच्छ्रयचतुर्थांशस्य भूम्यवगाहात्, **मूले योजनसहस्रमायाम-विष्कम्भाभ्यां** वृत्ताकारत्वात्, **'मध्ये'** भूतलतः पञ्चयोजनशतातिक्रमे-**ऽर्द्धाष्टमानि योजनशतानि आयाम-विष्कम्भाभ्याम् 'उपरि'** सहस्रयोजनातिक्रमे **पञ्च-योजनशतान्यायाम-विष्कम्भाभ्याम्, मूले त्रीणि योजनसहस्राणि एकं च योजनशतं द्वाषष्ट्यधिकं किंचिद्विशेषाधिकं** कियत्कलमित्यर्थः, **परिक्षेपेण,** एवं मध्यपरिधिरुपरितन-परिधिश्च स्वयमभ्यूह्यौ, **मूले विस्तीर्णौ मध्ये सङ्क्षिप्तावुपरि तनुकौ 'यमकौ'** यमलजातौ भ्रातरौ तयोर्यत्**संस्थानं** तेन **संस्थितौ,** परस्परं सदृशसंस्थानावित्यर्थः । अथवा यमका नाम शकुनिविशेषास्तत्संस्थानसंस्थितौ, संस्थानं चानयोर्मूलतः प्रारभ्य सङ्क्षिप्तसङ्क्षिप्तप्रमाण-त्वेन गोपुच्छस्येव बोध्यम्, **सर्वात्मना कनकमयौ** शेषं व्यक्तम् । अष्टशताद्यङ्कोत्पत्तिरेवम्-नीलवद्वर्षधरस्य यमकयोश्च[1] प्रथमम्, यमकयोः प्रथमह्रदस्य च द्वितीयम्, प्रथमह्रदस्य द्वितीयह्रदस्य च तृतीयम्, द्वितीयह्रदस्य तृतीयह्रदस्य च चतुर्थम्, तृतीयह्रदस्य चतुर्थह्रदस्य च पञ्चमम्, चतुर्थह्रदस्य पञ्चमह्रदस्य च षष्ठम्, पञ्चमह्रदस्य वक्षस्कारगिरिपर्यन्तस्य च सप्तमम्, एतानि च सप्ताप्यन्तराणि समप्रमाणानि, ततश्च कुरुविष्कम्भात् योजन ११८४२ कला २ इत्येवंरूपात् योजनसहस्रायामयोर्यमकयोः योजनसहस्रमेकं तावत्प्रमाणायामानां पञ्चानां ह्रदानां च योजनसहस्रमे(कै)कम् उभयमीलने योजनसहस्रषट्कं शोध्यते, शोधिते च जातं योजन ५८४२ कला २ ततः सप्तभिर्भागे हृते ८३४-४/७, यच्चावशिष्टं कुरुसत्कं कलाद्वयं तदल्प-त्वान्न विवक्षितमिति । अत्रैवानन्तरोक्तवेदिकावनखण्डप्रमाणाद्याह-"**ताओ ण**"मित्यादि, व्यक्तम् ॥११०॥

सम्प्रत्येतयोर्यदस्ति तदाह-

तेसि णं जमगपव्वयाणं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, जाव[2] ॥ १११ ॥

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं दुवे पासायवडेंसगा पं० । ते णं पासायवडेंसगा बावट्ठिं जोअणाइं अद्धजोअणं च उड्ढं उच्चत्तेणं, इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च आयाम-विक्खंभेणं,

१. ०श्चान्तरमेकं य० पुके ॥ २. द्र. जीवा. ३।६३३॥

पासायवण्णओ भाणिअव्वो[1] । सीहासणा सपरिवारा जाव एत्थ णं जमगाणं देवाणं सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं सोलस भद्दासण-साहस्सीओ पण्णत्ताओ ॥ ११२ ॥

"**तेसि ण**"मित्यादि, **तयोर्यमकपर्वतयोरुपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः**, अत्र पूर्वोक्तः सर्वो भूभागवर्णक उन्नेतव्यः । कियत्पर्यन्तः ? इत्याह-**यावत् तयोर्बहुसमरमणीयस्य भूभागस्य बहुमध्यदेशभागे द्वौ प्रासादावतंसकौ प्रज्ञप्तौ** । अथ तयोरुच्चत्वाद्याह-"**ते ण**"मित्यादि, निरवशेषं विजयदेवप्रासादसिंहासनादिव्यवस्थिति-सूत्रवद्वक्तव्यम् । नवरं यमकदेवाभिलापेनेति ॥१११-११२॥

अथानयोर्नामार्थं प्रश्नयन्नाह-

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-जमगा पव्वया २ ?, गोअमा ! जमगपव्वएसु णं तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे खुड्डा-खुड्डियासु वावीसु[2] जाव बिलपंतियासु[3] बहवे उप्पलाइं जाव जमगवण्णाभाइं,[4] जमगा य इत्थ दुवे देवा महिड्ढीया, ते णं तत्थ चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं जाव भुञ्जमाणा विहरंति, से तेणट्ठेणं गो० ! एवं वुच्चइ-जमगपव्वया २ । अदुत्तरं च णं सासए णामधिज्जे जाव[5] जमगपव्वया[6] २ ॥ ११३ ॥

"**से केणट्ठेण**"मित्यादि, प्रश्नसूत्रं व्यक्तम् । उत्तरसूत्रे **यमकपर्वतयोस्तत्र तत्र देशे तत्र तत्र प्रदेशे क्षुद्र-क्षुद्रिकासु यावद् बिलपङ्क्तिषु बहून्युत्पलानि**, अत्र **यावत्पदात्** कुमुदादीनि वाच्यानि । तथा यमकप्रभाणीति परिग्रहः, तत्र यमकः-यमकपर्वतस्तत्प्रभाणि तदाकाराणीत्यर्थः, तथा '**यमकवर्णाभानि**' यमकवर्णसदृश-वर्णानीत्यर्थः, यदिवा **यमकाभिधानौ द्वौ देवौ महर्द्धिकौ** अत्र परिवसतस्तेन यमकाविति शेषं प्राग्वत् ॥११३॥

अथानयो राजधानीप्रश्नावसरः-

कहि णं भन्ते ! जमगाणं देवाणं जमिगाओ[7] रायहाणीओ पण्णत्ताओ ?, गोअमा ! जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं अण्णंमि जम्बुद्दीवे २

---

१. द्र. जीवा. ३।६३४-६३५॥ २. ०याओ जाव विलपंतियाओ-अकखत्रिपबस । याओ वावीओ जाव बिलपंतियाओ J12 ॥ ३-४. द्र. जीवा. ३।६३७॥ ५. द्र. ३।२२६॥ ६. जमगापव्वया-अकखबस J12 ॥ ७. कखपस पुवृ. शावृ. । जमगाओ-J12 एवमग्रेऽपि । "प्रायः सर्वत्र जीवाभिगमेऽपि 'जगमाओ' इति पाठो विद्यते" इति V पृ. ४८९ टि. १० ॥

बारस जोअणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं जमगाणं देवाणं जमिगाओ रायहाणीओ पण्णत्ताओ–बारस जोअणसहस्साइं आयाम-विक्खम्भेणं, सत्तत्तीसं जोअणसहस्साइं णव य अडयाले जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं, पत्तेअं २ पायारपरिक्खित्ता । ते णं पागारा सत्तत्तीसं जोअणाइं अद्धजोअणं च उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले अद्धत्तेरस जोअणाइं विक्खम्भेणं, मज्झे छस्सकोसाइं[१] जोअणाइं विक्खम्भेणं, उवरिं तिण्णि सअद्धकोसाइं जोअणाइं विक्खम्भेणं, मूले वित्थिण्णा, मज्झे संखित्ता, उप्पिं तणुआ, बाहिं वट्टा, अंतो चउरंसा, सव्वरयणामया अच्छा । ते णं पागारा णाणामणिपञ्चवण्णेहिं कविसीसएहिं उवसोहिआ, तंजहा–किण्हेहिं जाव सुक्किल्लेहिं । ते णं कविसीसगा अद्धकोसं आयामेणं, देसूणं अद्धकोसं उड्ढं उच्चत्तेणं, पञ्च धणुसयाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमया अच्छा ॥ ११४ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, **क्व भदन्त ! यमकयोर्देवयो-र्यमिके नाम राजधान्यौ प्रज्ञप्ते ?, गौतम ! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्यो-त्तरेणान्यस्मिन् जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वादशयोजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे यमकयोर्देवयो-र्यमिके नाम राजधान्यौ प्रज्ञप्ते– द्वादशयोजनसहस्राण्यायाम-विष्कम्भाभ्यां सप्तत्रिं-शद्योजनसहस्राणि नव च योजनशतानि अष्टचत्वारिंशद**धिकानि ३७,९४८ **किंचिद्वि-शेषाधिकानि परिक्षेपेण, 'प्रत्येकं २'** द्वे अपि **प्राकारपरिक्षिप्ते** । कीदृशौ तौ प्राकारौ ? इति तत्स्वरूपमाह–"**ते णं पागारा**" इत्यादि, तौ प्राकारौ **सप्तत्रिंशद्योजनानि योजनार्द्ध**सहितानि **ऊर्ध्वोच्चत्वेन मूले** अर्द्धं त्रयोदशं योजनं येषु तान्य**र्द्धत्रयोदशानि योजनानि विष्कम्भेण, मध्ये षट् सक्रोशानि योजनानि विष्कम्भेन**, मूलविष्कम्भतो मध्यविष्कम्भस्यार्द्धमानत्वात्, **उपरि त्रीणि सार्द्धक्रोशानि योजनानि विष्कम्भेण**, अस्यापि मध्यविष्कम्भतोऽर्द्धमानत्वात्, अत एव **मूले विस्तीर्णावि**त्यादि पदत्रयं विवृतप्रायम्, **बहिर्वृत्तौ** अनुपलक्ष्यमाणकोणत्वात् **अन्तश्चतुरस्रौ** उपलक्ष्यमाणकोणत्वात् शेषं प्राग्वत् । अथानयोः कपिशीर्षकवर्णकमाह–"**ते णं पागारा णाणामणि**" इत्यादि, **तौ प्राकारौ 'नानामणीनां'** पद्मरागस्फटिकमरकताञ्जनादीनां **पञ्चप्रकारा वर्णा** येषु तानि तथा तैः **'कपिशीर्षकैः'** प्राकाराग्रै**रुपशोभितौ** । एतदेव

---

१. J12 क V । छसकोः मु. ॥ छच्च सकोः कखस ॥

विवृणोति **तद्यथा-कृष्णैर्यावच्छुक्लैरिति** । अथैतेषां कपिशीर्षकाणामुच्चत्वादिमानमाह-"**ते ण**"मित्यादि, निगदसिद्धम् ॥११४॥

अथानयोः कियन्ति द्वाराणि ? इत्याह-

जमिगाणं रायहाणीणं एगमेगाए बाहाए पणवीसं पणवीसं दारसयं पण्णत्तं । ते णं दारा बावट्ठिं जोअणाइं अद्धजोअणं च उड्ढं उच्चत्तेणं, इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च विक्खम्भेणं, तावइअं चेव[1] पवेसेणं, सेआ वरकणगथूभिआगा एवं रायप्पसेणइज्जविमाणवत्तव्वयाए[2] दारवण्णओ जाव अट्ठमंगलगाइं ॥ ११५ ॥

"**जमिगाण**"मित्यादि, यमिकयो राजधान्योरे-कैकस्यां '**बाहायां**' पार्श्वे **पञ्चविंशत्यधिकं २ द्वारशतं प्रज्ञप्तम् । तानि द्वाराणि द्वाषष्टियोजनानि अर्द्धयोजनं च ऊर्ध्वोच्चत्वेन एकत्रिंशद्योजनानि क्रोशं च विष्कम्भेन, तावदेव प्रवेशेन, श्वेतानि वरकनकस्तूपिकाकानि** । लाघवार्थमतिदेशेनाह-**एवं राजप्रश्नीये यद् 'विमानं' सूर्याभनामकं** तस्य **वक्तव्यतायां** यो **द्वारवर्णकः** स इहापि ग्राह्यः । कियत्पर्यन्तम् ? इत्याह-**यावदष्टाष्टमङ्गलकानि**, अत्रातिदिष्टमपि सूत्रं न लिखितम्, विजय-द्वारप्रकरणे सूत्रतोऽर्थतश्च लिखितत्वात् अतिदिष्टत्वस्योभयत्रापि साम्याच्चेति ॥११५॥

अथानयोर्बहिर्भागे वनखण्डवक्तव्यमाह-

जमियाणं[3] रायहाणीणं[4] चउद्दिसिं पञ्च पञ्च जोअणसए अबाहाए चत्तारि वणसण्डा पण्णत्ता, तंजहा-असोगवणे १ सत्तिवण्णवणे २ चंपगवणे ३ चूअवणे ४ । ते णं वणसंडा साइरेगाइं बारसजोअणसहस्साइं आयामेणं, पञ्च जोअणसयाइं विक्खम्भेणं, पत्तेअं २ पागारपरिक्खित्ता[6] किण्हा वणसण्डवण्णओ[5] भूमीओ पासायवडेंसगा य भाणिअव्वा ॥ ११६ ॥

"**जमियाण**"मित्यादि, **यमिकयो राजधान्यो-श्चतुर्दिशि** चतसृणां दिशां समाहारश्चतुर्दिक् तस्मिंस्तथा, पूर्वादिष्वित्यर्थः, **पञ्चपञ्चयोजन-शतानि 'अबाधायाम्'** अपान्तराले कृत्वेति गम्यते **चत्वारि वनखण्डानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-अशोकवनं**

---

१. ०व्वया-अकखत्रिबस पुवृ. हीवृ. ॥ २. राजप्र. सू. १२९-१६८ ॥ ३. जवियाणं-J12 अखब ॥ ४. ०णं पंच पंच जोयणसए अबाहाए चउद्दिसिं चत्तारि-अकखबत्रिस पुवृ. हीवृ. राजप्र. १७० जीवा. ३।३५८ मु. V मध्ये स्वीकृतपाठसंवादी पाठो विद्यते-V पृ. ४९० टि. ४॥ ५. द्र. जीवा. ३।३५८ ॥ ६. जीवा. ३।३५९॥

सप्तपर्णवनं चम्पकवनम् आम्रवनमिति । अथैतेषामायामाद्याह-"**ते णं वणसण्डा**" इत्यादि, ते च वनखण्डाः **सातिरेकाणि द्वादशयोजनसहस्राणि आयामेन, पञ्चयोजनशतानि विष्कम्भेन, प्रत्येकं २ प्राकारैः परिक्षिप्ताः, कृष्णा** इति पदोपलक्षितो जम्बूद्वीपपद्मवरवेदिकाप्रकरणलिखितः पूर्णो **वनखण्डवर्णको भूमयः प्रासादावतंसकाश्च भणितव्याः** ॥११६॥

जमिगाणं रायहाणीणं अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, वण्णगो त्ति ॥ ११७ ॥

भूमयश्चैवम्-"तेसि णं वणसंडाणं अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता, से जहाणामए आलिंगपुक्खरे इ वा जाव णाणाविहपंचवण्णेहिं तणेहिं मणीहिं अ उवसोभिआ" इति । प्रासादसूत्रमप्येवं "तेसि णं वणसंडाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेअं २ पासायवडेंसए पण्णत्ते, ते णं पासायवडेंसया बावट्ठिं जोअणाइं अद्धजोअणं च उड्ढं उच्चत्तेणं, इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च विक्खम्भेणं, अब्भुग्गयमूसिअपहसिआ इव । तहेव बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे उल्लोओ सीहासणा सपरिवारा । तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढीआ जाव पलिओवमट्ठिइआ परिवसंति, तं०-असोए सत्तिवण्णे चंपए चूए" इति । अत्राशोकवनप्रासादेऽशोकनामा देवः, एवं त्रिष्वपि तत्तन्नामानो देवाः परिवसन्तीत्यर्थः । अथानयोरन्तर्भागवर्णकमाह-"**जमिगाण**"मित्यादि, **यमिकयो राजधान्योरन्त**र्मध्यभागे **बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, 'वर्णक'** इति सूत्रगतपदेन "आलिंगपुक्खरे इ वा जाव पंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए वणसंडविहुणो जाव बहवे देवा य देवीओ अ आसयंति जाव विहरंती"त्यन्तो ग्राह्यः ॥११७॥

→तेसिं[१] णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं दुवे उवयारियालयणा पण्णत्ता-बारस जोअणसयाइं आयाम-विक्खम्भेणं←

---

१. "चिह्नाङ्कितः पाठः अकखत्रिब J12 आदर्शेषु नास्ति । हीरविजयसूरिणा अस्य पाठस्य अपेक्षा प्रत्यपादि-अत्र तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं उवयारियालयणे पण्णत्ते बारसजोयणासयाइ आयामविक्खंभेणमित्यादिसूत्रं श्रीजीवाभिगमतोऽध्याहृत्याऽध्येतव्यं तत्र उपकारिकालयनम् उपकरोत्युपष्टभ्नातीति उपकारिकाराजधानीस्वामिसत्कप्रासादावतंसकादीनां पीठिका उपकारिकालयनमिवोपकारिकालयनं यत् अन्यथा तिजोयणसहस्साइमित्यादि परिक्षेपप्रतिपादकस्य तत्रानुपपत्तेः विष्कम्भाद्युपेतपदार्थपरिज्ञानाभावे कस्य परिक्षेप उपवर्ण्यते ग्रामो नास्ति कुतः सीमेति वचनात् अध्याहृतसूत्रस्याभिधेयं यदुपकारिकालयनं तस्य परिधानमाह । →

तिण्णि जोअणसहस्साइं सत्त य पञ्चाणउए जोअणसए परिक्खेवेणं अद्धकोसं[1] च बाहल्लेणं, सव्वजंबूणयामया अच्छा, पत्तेअं पत्तेअं पउमवर-वेइआपरिक्खित्ता, पत्तेअं पत्तेअं वणसंडवण्णओ भाणिअव्वो[2], तिसोवाण-पडिरूवगा तोरणचउद्दिसिं भूमिभागो य भाणिअव्वो ॥ ११८ ॥

अत्र च उपकारिकालयनसूत्रमादर्शेष्वदृश्यमानमपि राजप्रश्नीयसूर्याभविमानवर्णके जीवाभिगमे विजयाराजधानीवर्णके च दृश्यमानत्वात् "**तिण्णि जोअणसहस्साइं सत्त य पंचाणउए जोअणसए परिक्खेवेण**"मित्यादिसूत्रस्यान्यथानुपपत्तेश्च जीवाभिगमतो लिख्यते, आदर्शेष्वदृश्यमानत्वं च लेखकवैगुण्यादेवेति । तद्यथा-"**तेसि ण**"मित्यादि, **तेषां च बहुसमरमणीयानां भूमिभागानां बहुमध्यदेशभागे अत्रान्तरे द्वे उपकारिकालयने प्रज्ञप्ते**, उपकरोति-उपष्टभ्नाति प्रासादावतंसकानित्युपकारिका-राजधानीप्रभुसत्कप्रासादा-वतंसकादीनां पीठिका, अन्यत्र त्वियमुपकार्योपकारिकेति प्रसिद्धा, उक्तं च-"गृहस्थानं स्मृतं राज्ञामुपकार्योपकारिके"ति **सा** लयनमिव-गृहमिव ते च प्रतिराजधानि भवत इति द्वे उक्ते । **द्वादशयोजनशतानि आयाम-विष्कम्भाभ्यां त्रीणि योजनसहस्राणि सप्त च योजन-शतानि पञ्चनवत्य**धिकानि ३,१९५ **परिक्षेपेण**, '**अर्द्धक्रोशं**' धनुःसहस्रपरिमाणं **बाहल्येन सर्वात्मना जाम्बूनदमये अच्छे**, '**प्रत्येकं २**' प्रत्युपकारिकालयनं **पद्मवरवेदिकापरिक्षिप्ते**, **प्रत्येकं २ वनखण्डवर्णको भणितव्यः**, स च जगतीगतपद्मवरवेदिकास्थवनखण्डानु-सारेणेति, '**त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि**' आरोहा-ऽवरोहमार्गास्तानि '**चतुर्दिशि**' पूर्वादिदिक्षु ज्ञेयानि **तोरणानि** चतुर्दिशि **भूमिभागश्चो**पकारिकालयनमध्यगतो **भणितव्यः** । तत्सूत्राणि जीवाभिगमोपाङ्गगतानि क्रमेणैवं-"से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोअणाइं चक्कवाल-विक्खंभेणं उवयारिआलयणसमए परिक्खेवेणं । तेसि णं उवयारिआलयणाणं चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, वण्णओ । तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरओ पत्तेअं २ तोरणा पण्णत्ता, वण्णओ । तेसि

उपाध्यायशान्तिचन्द्रेण एष पाठः समादृतः, पाठस्य अप्राप्तिश्च लेखकप्रमादात् प्रतिपादिता-अत्र च उपकारिकालयनसूत्रमादर्शेष्वदृश्यमानमपि राजप्रश्नीयसूर्याभविमानवर्णके जीवाभिगमे विजयाराजधानी-वर्णके च दृश्यमानत्वात् 'तिण्णि जोयणसहस्साइं सत्त य पंचाणउए जोयणसए परिक्खेवेण'-मित्यादिसूत्रस्यान्यथानुपपत्तेश्च जीवाभिगमतो लिख्यते, आदर्शेष्वदृश्यमानत्वं च लेखकवैगुण्यादेवेति, तद्यथा-'तेसि ण' मित्यादि । प्रस्तुतपाठस्य सम्बन्धावलोकनार्थं द्रष्टव्यं राय.सू. १८८, जीवाजीवाभिगमे ३।३६१॥" इति V पृ. ४९० टि. ९ ॥ १. अद्धजोयणं-अकखत्रिबसजे१ पुवृ. हीवृ. ॥ २. द्र. जीवा. ३।३६२-३६४ ॥

णं उवयारियालयणाणं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणीहिं उवसोभिए' [जीवा. ३।३६२-४] इति । अत्र व्याख्या सुगमा ॥११८॥

अथ यमकदेवयोर्मूलप्रासादस्वरूपमाह-

तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे[1] पासायवडेंसए[2] पण्णत्ते बावट्ठिं जोअणाइं अद्धजोअणं च उड्ढं उच्चत्तेणं, इक्कतीसं जोअणाइं कोसं च आयाम-विक्खम्भेणं, वण्णओ[3] उल्लोआ भूमिभागा सीहासणा सपरिवारा । एवं पासायपंतीओ[4] (एत्थ पढमापंती ते णं पासायवडिंसगा) एक्कतीसं जोअणाइं कोसं च उड्ढं उच्चत्तेणं, साइरेगाइं अद्धसोलसजोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं ॥ ११९-A ॥

"**तस्स ण**"मित्यादि, '**तस्य**' उपकारिकालय-नस्य **बहुमध्यदेशभागे अत्रान्तरे एकः प्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः-द्वाषष्टिं योजनान्य-र्द्धयोजनं च ऊर्ध्वोच्चत्वेन एकत्रिंशद्योजनानि क्रोशं चायाम-विष्कम्भाभ्यां वर्णको** विजयप्रासादस्येव वाच्यः, '**उल्लोकौ**' उपरिभागौ '**भूमिभागौ**' अधोभागौ **सिंहासने 'सपरिवारे'** सामानिकादिपरिवारभद्रासनव्यवस्थासहिते, यच्चात्र उपकारिकालयनस्य प्रासादावतंसकस्य चैकवचनेन विवक्षा उल्लोक-भूमिभाग-सिंहासनानां च द्विवचनेन विवक्षा तत्सूत्रकाराणां विचित्रप्रवृत्तिकत्वादिति । अथास्य परिवारप्रासाद-प्ररूपणामाह-"**एवं पासाय-पंतीओ**" इत्यादि, '**एवं**' मूलप्रासादावतंसकानुसारेण परिवार-प्रासादपङ्क्तयो ज्ञातव्या **जीवाभिगमतः**, पङ्क्तयश्चात्र मूलप्रासादतश्चतुर्दिक्षु पद्मानामिव परिक्षेपरूपा अवगन्तव्याः, न पुनः सूचिश्रेणिरूपाः । तत्र प्रथमप्रासादपङ्क्तिपाठ एवम्-"**से णं पासायवडेंसए अण्णेहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तपमाणमित्तेहिं पासायवडेंसएहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते**" स प्रासादावतंसकोऽन्यैश्चतुर्भिः प्रासादावतंसकैस्तदर्द्धोच्चत्व-प्रमाणमात्रैः, अत्रोच्चत्वशब्देनोत्सेधो गृह्यते प्रमाणशब्देन च विष्कम्भा-ऽऽयामौ, तेन मूलप्रासादापेक्षया अर्धोच्चत्वविष्कम्भा-ऽऽयामैरित्यर्थः, सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्ताः । एषामुच्चत्वादिकं तु साक्षात् सूत्रकृदेवाह-**एकत्रिंशद्योजनानि क्रोशं चोच्चत्वेन,**

---

१. अकखत्रिबस पुवृ. हीवृ. J2-एगे नास्ति ॥ २. द्र. जीवा. ३।३६२-४ ॥ ३. द्र. जीवा. ३६४-३६७ ॥ ४. "प्रस्तुतप्रकरणे संक्षिप्तः पाठः उपलभ्यते, अस्य सम्यगवबोधार्थं जीवाजीवाभिगमस्य ३।३६८ सूत्र-मवलोकनीयमस्ति । तत्र एवं पाठो विद्यते-'से णं पासायवडेंसए अण्णेहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तपमाणमेत्तेहिं पसायवडेंसएहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता णं पासायवडेंसगा एगतीसं जोयणाइं' इत्यादि" इति V पृ. ४९१ टि. ६ ॥ ५. वीतित० अस J12 । द्र. जीवा. ३।३६९ ॥ ६. साइरेगाइं-अकखत्रिबस J12 - नास्ति ॥ ७. द्र. जीवा. ३।३७० ॥

सार्द्धद्वाषष्टियोजनानामर्द्धे एतावत एव लाभात्, **'सातिरेकाणि'** अर्द्धक्रोशाधिकानि **'अर्द्धषोडशानि'** सार्द्धपञ्चदश**योजनानि विष्कम्भा-ऽऽयामाभ्यामिति** ॥११९-A॥

अथ **द्वितीयप्रासादपङ्क्तिः**, तत्पाठश्चैवम्-

बिइअपासायपंती[5] **ते णं पासायवडेंसया साइरेगाइं**[6] **अद्धसोल-सजोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, साइरेगाइं अद्धट्ठमाइं जोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं, तइअपासायपंती ते णं पासायवडेंसया साइरेगाइं अद्धट्ठमाइं जोअणाइं**[7] **उड्ढं उच्चत्तेणं, साइरेगाइं अद्धुट्ठजोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं, वण्णओ सीहासणा सपरिवारा ॥ ११९-B ॥**

"**ते णं पासायवडेंसया अण्णेहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमित्तेहिं पासायवडेंसएहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता**" इति । ते प्रथमपङ्क्तिगताश्चत्वारः प्रासादाः प्रत्येकमन्यैश्च-तुर्भिस्तदर्द्धोच्चत्व-विष्कम्भाऽऽयामैर्मूलप्रासादापेक्षया चतुर्भागप्रमाणैः प्रासादैः परिक्षिप्ताः, अत एवैते षोडश प्रासादाः सर्वसङ्ख्यया स्युः । एषामुच्चत्वादिकं तु साक्षादेव सूत्रकृदाह-**ते प्रासादाः 'सातिरेकाणि'** अर्द्धक्रोशाधिकानि **सार्द्धपञ्चदशयोजनान्युच्चत्वेन 'सातिरेकाणि'** क्रोशचतुर्थांशाधिकानि अर्द्धाष्टमयोजनान्यायामविष्कम्भाभ्यामिति । अथ **तृतीया पङ्क्तिः**, तत्सूत्रमेवम्-"**ते णं पासायवडेंसया अण्णेहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमित्तेहिं पासायवडेंसएहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता**" ते द्वितीयपरिधिस्थाः षोडश प्रासादाः प्रत्येकमन्यैश्चतुर्भिस्तदर्द्धोच्चत्वविष्कम्भाऽऽयामैर्मूलप्रासादापेक्षयाऽष्टांशप्रमाणोच्चत्व-विष्कम्भाऽऽयामैः सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्ताः, अत एवैते तृतीयपङ्क्तिगताश्चतुः-षष्टिप्रासादाः । एतेषामुच्चत्वादिप्रमाणं सूत्रकृदाह-**ते** चतुःषष्टिरपि **प्रासादाः सातिरेकाण्यर्द्धाष्टम-योजनान्युच्चत्वेन सातिरेकत्वं** च प्राग्वत्, **'अध्युष्टानि'** अर्द्धतृतीयानि **'सातिरेकाणि'** सार्द्धक्रोशाष्टांशाधिकानि **विष्कम्भाऽऽयामाभ्याम्**, एषां सर्वेषां **वर्णकः सिंहासनानि च सपरिवाराणि** प्राग्वत् ।

अत्र च पङ्क्तिप्रासादेषु सिंहासनं प्रत्येकमेकैकम्, मूलप्रासादे तु मूलसिंहासनं सिंहासन-परिवारोपेतमित्यादि **क्षेत्रसमासवृत्तौ श्रीमलयगिरिपादाः**, तथा प्रथम-तृतीयपङ्क्त्योर्मूल-प्रासादे परिवारे भद्रासनानि द्वितीयपङ्क्तौ च परिवारे पद्मासनानि इति **जीवाभिगमोपाङ्गे** इत्यादि विसंवादसमाधानं बहुश्रुतगम्यम् । यद्यपि **जीवाभिगमे विजयदेवप्रकरणे** तथा **श्रीभगवत्यङ्गवृत्तौ चमरप्रकरणे** प्रासादपङ्क्तिचतुष्कम्, तथाप्यत्र यमकाधिकारे पङ्क्तित्रयं बोध्यम् । पंक्तित्रयप्रासादसङ्ग्रहश्चैवम्- [४-१६-६४, **सर्व सं. ८५**] मूलप्रासादेन सह सर्वसंख्यया

पञ्चाशीतिः प्रासादाः ८५ ॥११९-B॥ अथात्र सभापञ्चकं प्रपञ्चयितुकामः सुधर्मासभास्वरूपं निरूपयति–

तेसि णं मूलपासायवडिंसयाणं उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं जमगाणं देवाणं सहाओ सुहम्माओ पण्णत्ताओ–अद्धतेरस जोअणाइं आयामेणं, छस्सकोसाइं जोअणाइं विक्खम्भेणं, णव जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठा [1] सभावण्णओ ॥ १२० ॥

"**तेसि ण**"मित्यादि, **तयोर्मूलप्रासादावतंसकयोः 'उत्तरपूर्वस्यां'** ईशानकोणेऽत्रैतस्मिन् **भागे यमकयोर्देवयोर्योग्ये सुधर्मे** नाम **सभे प्रज्ञप्ते** । सुधर्माशब्दार्थस्तु सुष्ठु–शोभनो धर्मः–देवानां माणवकस्तम्भवर्त्तिजिनसक्थ्याशातनाभीरुकत्वेन देवाङ्गनाभोगविरतिपरिणामरूपो यस्यां सा तथा, वस्तुतस्तु सुष्ठु–शोभनो धर्मः–राजधर्मः समन्तु-निर्मन्तु-निग्रहा-ऽनुग्रहस्वरूपो यस्यां सा तथा । ते **चार्द्धत्रयोदशयोजनान्यायामेन सक्रोशानि षट् योजनानि विष्कम्भेन नवयोजनान्यूर्ध्वोच्चत्वेन** । अत्र लाघवार्थं सभावर्णकसूत्रमतिदिशति–**अनेकस्तम्भशतसन्निविष्टे** इत्यादिपदसूचितः **सभावर्णको** जीवाभिगमोक्तो ज्ञेयः । स चैवम्–

"**अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठाओ अब्भुग्गय-सुकयवइरवेइआ-तोरण-वररइअसालभंजिआ-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-संठिअ-पसत्थवेरुलिअविमलखंभाओ णाणामणि-कणग-रयणखचिअ-उज्जलबहुसमसुविभत्त-भूमिभागाओ ईहामिग-उसभ-तुरग-णर-मगर-विहग-वालग-किंनर-रुरु-सरभ-चमर-कुञ्जर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्ताओ खंभुग्गयवइरवेइआपरिगयाभिरामाओ विज्जाहरजमल-जुअलजंतजुत्ताओ विव अच्चीसहस्समालणीआओ रूवगसहस्सकलिआओ भिसमाणीओ भिब्भिसमाणीओ चक्खुल्लोअणलेसाओ सुहफासाओ सस्सिरीअरूवाओ कंचण-मणिरयणथूभिआगाओ णाणाविह-पंचवण्णघंटा-पडागपरि-मंडिअअग्गसिहराओ धवलाओ मरीइकवयविणिम्मुअंतीओ लाउल्लोइअमहिआओ गोसीससरस-सुरभिरत्तचन्दणदद्दरदिण्णपंचंगुलितलाओ उवचिअवन्दणकलसाओ वन्दणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेस-भागाओ आसत्तोसत्त-विउल-वट्ट-वग्घारिअमल्लदामकलावाओ पंचवण्ण-सरस-सुरहिमुक्कपुप्फपुंजोवयार-कलिआओ कालागुरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूवडज्झंतमघमघेंतगन्धुद्धुआभिरामाओ सुगंधवरगंधिआओ गन्धवट्टिभूआओ अच्छरगणसंघविकिण्णाओ दिव्वतुडिअसद्दसंपणदिआओ सव्वरयणामईओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ**" [जीवा. ३।३७२] इति । अत्र व्याख्या तु सिद्धायतनतोरणादिवर्णकेषु उञ्छवृत्तिन्यायेन सुलभेति न पुनरुच्यते । नवरम् अप्सरोगणानां–अप्सरःपरिवाराणां यः सङ्घः–समुदायस्तेन सम्यक्–रमणीयतया विकीर्णाः–आकीर्णा दिव्यानां त्रुटितानाम्–आतोद्यानां ये शब्दास्तैः सम्यक् श्रोत्रमनोहारितया प्रकर्षेण नदिता–शब्दवती, शेषं प्राग्वत् ॥१२०॥

---

१. द्र. जीवा. ३।३७२॥

अथास्यां कति द्वाराणि ? इत्याह-

तासि णं सभाणं सुहम्माणं तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता । ते णं दारा दो जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, जोअणं विक्खम्भेणं, तावइअं चेव पवेसेणं, सेआ वण्णओ जाव[1] वणमाला ॥ १२१ ॥

"**तासि णं सभाण**"मित्यादि, **तयोः सभयोः सुधर्मयोस्त्रिदिशि त्रीणि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि**, पश्चिमायां द्वाराभावात् । **तानि द्वाराणि** प्रत्येकं **द्वे योजने ऊर्ध्वोच्चत्वेन, योजनमेकं विष्कम्भेण, 'तावदेव'** योजनमेकं **प्रवेशेन, श्वेता** इत्यादि पदेन सूचितः परिपूर्णो द्वार**वर्णको** वाच्यो **यावद्वनमाला** ॥१२१॥

अथ मुखमण्डपादिषट्कनिरूपणायाह-

तेसि णं दाराणं पुरओ पत्तेअं २ तओ मुहमंडवा पण्णत्ता । ते णं मुहमंडवा अद्धतेरसजोअणाइं आयामेणं, छस्सकोसाइं जोअणाइं विक्खम्भेणं, साइरेगाइं दो जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं जाव[2] दारा भूमिभागा य त्ति ॥ १२२ ॥

"**तेसि णं दाराण**"मित्यादि, **तेषां द्वाराणां पुरतः प्रत्येकं २ त्रयो मुखमण्डपाः प्रज्ञप्ताः**, सभाद्वाराग्रवर्त्तिनो मण्डपा इत्यर्थः । **ते च मण्डपा अर्द्धत्रयोदशयोजनान्यायामेन, षट् सक्रोशानि योजनानि विष्कम्भेण, सातिरेके द्वे योजने ऊर्ध्वोच्चत्वेन** । एतेषामपि "अणेगखंभसयसण्णिविट्ठा" इत्यादि वर्णनं सुधर्मासभा इव निरवशेषं द्रष्टव्यम्, **यावद् द्वाराणां भूमिभागानां** च वर्णनम् । यद्यप्यत्र द्वारान्तमेव सभावर्णनं तदतिदेशेन मुखमण्डपसूत्रेऽपि तावन्मात्रमेवायाति, तथाऽपि **जीवाभिगमादिषु** मुखमण्डपवर्णके भूमिभागवर्णकस्य दृष्टत्वात् अत्रातिदेशः ॥१२२॥

अथ प्रेक्षामण्डपवर्णकं लाघवादाह-

पेच्छाघरमंडवाणं तं चेव पमाणं[3] भूमिभागो मणिपेढिआओ त्ति । ताओ णं मणिपेढिआओ जोअणं आयाम-विक्खम्भेणं, अद्धजोअणं बाहल्लेणं, सव्वमणिमईआ सीहासणा भाणिअव्वा[4] ॥ १२३ ॥

---

१. द्र. जीवा. ३।३७३॥ २. द्र. जीवा. ३।३७४-३७५॥ ३. द्र. जीवा. ३।३७६ ॥ ४. द्र. जीवा. ३।३७७-३७९ ॥

"**पेच्छाघरमण्डवाण**"मित्यादि, '**प्रेक्षागृहमण्डपानां**' रङ्गमण्डपानां '**तदेव**' मुखमण्डपोक्तमेव **प्रमाणम्, भूमिभाग** इतिपदेन सर्वं द्वारादिकं भूमिभागपर्यन्तं वाच्यम्, एषु च **मणिपीठिका** वाच्या । एतावदर्थसूचकमिदं सूत्रम्-"**तेसि णं मुहमण्डवाणं पुरओ पत्तेअं २ पेच्छाघरमंडवा पण्णत्ता । ते णं पेच्छाघरमंडवा अद्धतेरसजोअणाइं आयामेणं जाव दो जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं जाव मणिफासो । तेसि णं बहुमज्झदेसभाए पत्तेअं २ वइरामया अक्खाडया पण्णत्ता । तेसि णं बहुमज्झदेसभाए पत्तेअं २ मणिपेढिआओ पण्णत्ताओ**" [**जीवा. ३।३७४-७**] त्ति उक्तप्रायम् । नवरमक्षपाटः-चतुरस्राकारो मणिपीठिकाऽऽधारविशेषः । अस्याः प्रमाणाद्यर्थमाह-"**ताओ णं मणिपेढिआओ जोअणं आयाम-विक्खंभेणं अद्धजोअणं बाहल्लेणं सव्वमणिमईओ सीहासणा भाणिअव्वा**" इति, अत्र सिंहासनानि भणितव्यानि सपरिवाराणीत्यर्थः, शेषं व्यक्तम् ॥१२३॥

अथ स्तूपावसरः-

तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरओ मणिपेढिआओ पण्णत्ताओ । ताओ णं मणिपेढिआओ [१]दो जोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं, [२]जोअणं बाहल्लेणं, सव्वमणिमईओ ॥ १२४ ॥

"**तेसि ण**"मित्यादि, **तेषां प्रेक्षागृहमण्डपानां पुरतो मणिपीठिकाः**, अत्र बहुवचनं न प्राकृतशैलीभवं यथा द्विवचनस्थाने बहुवचनं हत्था पाया इत्यादिषु, किन्तु बहुत्वविवक्षार्थम्, तेनात्र तिसृषु प्रेक्षागृहमण्डपद्वारदिक्षु एकैकसद्भावात् तिस्रो ग्राह्याः, अन्यत्र **जीवाभिगमादिषु** तथा दर्शनात् । अथैतासां मानमाह-"**ताओ ण**"मित्यादि, कण्ठ्यम्, यद्यप्येतत्सूत्रादर्शेषु 'जोअणं आयाम-विक्खम्भेणं अद्धजोअणं बाहल्लेणं' इति पाठो दृश्यते तथाऽपि **जीवाभिगम** पाठदृष्टत्वेन **राजप्रश्नीयादिषु** प्रेक्षामण्डपमणिपीठिकातः स्तूपमणि-पीठिकाया द्विगुणमानत्वेन दृष्टत्वाच्चायं सम्यक् पाठः सम्भाव्यते, **आदर्शेषु** लिपिप्रमादस्तु सुप्रसिद्ध एव ॥१२४॥

अथ स्तूपवर्णनायाह-

तासि णं उप्पिं पत्तेअं २ [३]तओ थूभा । ते णं थूभा [४]दो जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं [५]दो जोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं सेआ [६]संखदल [७]जाव अट्ठमंगलया ॥ १२५ ॥

---

१. **जोयणं-अकखत्रिबस** J12 ॥ २. **अद्धजोयणं-अकखत्रिबस** J12 ॥ ३. **अकखत्रिबस । थूभा पण्णत्ता**-V । **चेइयथूभे पण्णत्ते-जीवा. ३।३८१** ॥ ४. **सातिरेगाइं दो जो० जीवा. ३।३८१** ॥ ५. **जोयणं-अकखत्रिबस** J12 ॥ ६. **द्र. जीवा. ३।३८१-३८२** ॥ **संखतल०** V ॥ ७. **द्र. जीवा. ३।३८१-३८२**॥

"**तासि ण**"मित्यादि, '**तासां**' मणिपीठिकाना**मुपरि प्रत्येकं २ स्तूपाः प्रज्ञप्ताः**, **जीवाभिगमादौ** तु चैत्यस्तूपा इति । **द्वे योजने ऊर्ध्वोच्चत्वेन द्वे योजने आयाम-विष्कम्भाभ्यां** "**व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति**"रिति देशोने द्वे योजने आयाम-विष्कम्भाभ्यां ग्राह्ये, अन्यथा मणिपीठिकास्तूपयोरभेद एव स्यात्, **जीवाभिगमादौ** तु सातिरेके द्वे योजने उच्चत्वमित्यर्थः, ते च **श्वेताः** । श्वेतत्वमेवोपमया द्रढयति-"**संखदल**"त्ति, **यावत्करणात्** "संखदल-विमल-निम्मल-दधि-घण-गोखीर-फेण-रययनिअरप्पगासा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा" इति प्रागवत् । कियद्दूरं ग्राह्यम् ? इत्याह-यावद**ष्टाष्टमङ्गलकानीति** ॥१२५॥

अथ तच्चतुर्दिशि यदस्ति तदाह-

तेसि णं थूभाणं चउद्दिसिं चत्तारि मणिपेढिआओ पण्णत्ताओ । ताओ णं मणिपेढिआओ जोअणं आयाम-विक्खम्भेणं, अद्धजोअणं बाहल्लेणं, जिणपडिमा[1]ओ [2]वत्तव्वाओ, चेइअरुक्खाणं मणिपेढिआओ [3]दो जोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं, जोअणं बाहल्लेणं [4]चेइअरुक्खवण्णओ ॥ १२६ ॥

"**तेसि णं थूभाण**"मित्यादि, तेषां स्तूपानां प्रत्येकं **चतुर्दिक्षु चतस्रो मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ताः । ताश्च** मणिपीठिकाः **योजनमायाम-विष्कम्भेन अर्द्धयोजनं बाहल्येन**, अत्र **जिनप्रतिमा वक्तव्याः** । तत्सूत्रं चेदम्-"**तासि णं मणिपेढिआणं उप्पिं पत्तेअं पत्तेअं चत्तारि जिणपडिमाओ जिणुस्सेहप्पमाणमित्ताओ पलिअंकसण्णिसण्णाओ थूभाभि-मुहीओ सण्णिक्खित्ताओ चिट्ठंति, तंजहा-उसभा वद्धमाणा चन्दाणणा वारिसेणा**" [जीवा. २।१३७] इति । एतद्वर्णनादिकं वैताढ्ये सिद्धायतनाधिकारे प्रागुक्तम्, गताः स्तूपाः । "**चेइअरुक्खाण**" मित्यादि, व्यक्तम् । अत्र **चैत्यवृक्षवर्णको** जीवाभिगमोक्तो वाच्यः । स चायम्-"**तेसि णं चेइअरुक्खाणं अयमेआरूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं०-वइरमूल-रययसुपइट्ठिअविडिमा रिट्ठामयकंद-वेरुलिअरुइलखंधा सुजाय-वरजायरूवपढमविसालसाला णाणामणिरयणविविहसाहप्पसाह-वेरुलि-अपत्त-तवणिज्जपत्तबेंटा जम्बूणय-रत्तमउअसुकुमालपवाल-पल्लववरंकुरधरा विचित्तमणि-रयण-सुरभिकुसुम-फलभरणमिअसाला सच्छाया सप्पभा सस्सिरीआ सउज्जोआ अमयरससमरसफला अहिअमण-नयणणिव्वुइकरा पासादीआ जाव पडिरूवा ४**" [जीवा. ३।३८७] इति ।

अत्र व्याख्या-तेषां चैत्यवृक्षाणामयमेतद्रूपो वर्णावासः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-वज्ररत्नमयानि मूलानि येषां ते वज्रमूलाः, तथा रजता-रजतमयी सुप्रतिष्ठिता विडिमा-बहुमध्यदेशभागे

---

१. ०माओ चेव व० अब J12 ॥ २. द्र. जीवा. ३।३८३-३८४ ॥ ३. दो-अब J2 नास्ति ॥ ४. द्र. जीवा. ३।३८५-३९१ ॥

ऊर्ध्वविनिर्गता शाखा येषां ते तथा, ततः पूर्वपदेन कर्मधारयः, रिष्टरत्नमयः कन्दो येषां ते तथा, तथा वैडूर्यरत्नमयो रुचिरः स्कन्धो येषां ते तथा, ततः पूर्वपदेन कर्मधारयः, सुजातं-मूलद्रव्यशुद्धं वरं-प्रधानं यज्जातरूपं-रूप्यं तदात्मिकाः प्रथमिकाः-मूलभूता विशालाः शालाः-शाखा येषां ते तथा, नानामणि-रत्नात्मिका विविधाः शाखाः-मूलशाखाविनिर्गतशाखाः प्रशाखाः-शाखाविनिर्गतशाखा येषां ते तथा, तथा वैडूर्याणि-वैडूर्यमयानि पत्राणि येषां ते तथा, तथा तपनीयानि-तपनीयमयानि पत्रवृन्तानि येषां ते तथा, ततः पूर्ववत् पदद्वयपद-द्वयमीलनेन कर्मधारयः, जाम्बूनदा-जाम्बूनदनामक-सुवर्णविशेषमया रक्तवर्णा मृदुसुकुमारा-अत्यन्तकोमलाः प्रवालाः-ईषदुन्मीलितपत्रभावरूपाः पल्लवाः-जातपूर्णप्रथमपत्रभावरूपा वराङ्कुराः-प्रथममुद्भिद्यमानास्तान् धरन्ति ये ते तथा, विचित्रमणिरत्नमयानि सुरभीणि कुसुमानि फलानि च तेषां भरेण नमिताः-नामं ग्राहिताः शाखा येषां ते तथा, सती-शोभना छाया येषां ते सच्छायाः, एवं सत्प्रभाः, अत एव सश्रीकाः, तथा सोद्द्योताः मणि-रत्नानामुद्द्योतभावात्, अमृतरससमरसानि फलानि येषां ते तथा, अधिकं नयन-मनोनिर्वृतिकराः, शेषं प्राग्वत् ।

"ते णं चेइअरुक्खा अन्नेहिं बहूहिं तिलय-लवयछत्तोवग-सिरीस-सत्तिवण्ण-दहिवण्ण-लोद्ध-धव-चंदण-नीव-कुडय-कयंब-पणस-ताल-तमाल-पिआल-पिअंगु-पारावय-रायरुक्ख-नन्दिरुक्खेहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता" [जीवा. ३।३८८] इति, ते चैत्यवृक्षा अन्यैर्बहुभिस्तिलक-लवग-च्छत्रोपग-शिरीष-सप्तपर्ण-दधिपर्ण-लोध्र-धव-चन्दन-नीप-कुटज-कदम्ब-पनस-ताल-तमाल-प्रियाल-प्रियंगु-पारापत-राजवृक्ष-नन्दिवृक्षैः सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्ताः, एते च वृक्षाः केचिन्**नामकोशतः** केचिल्लोकतश्चावगन्तव्याः ।

"ते णं तिलया जाव नंदिरुक्खा मूलवन्तो कंदवन्तो जाव सुरम्मा" [जीवा. ३।३८९] ते च तिलकादयो वृक्षा मूलवन्तः कन्दवन्त इत्यादि वृक्षवर्णनं **प्रथमोपाङ्गतो**ऽवसेयं यावत्सुरम्या इति । **"ते णं तिलया जाव नन्दिरुक्खा अन्नाहिं बहूहिं पउमलयाहिं जाव सामलयाहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता"** [जीवा. ३।३९०] ते च तिलकादयो वृक्षाः अन्याभिर्बहूभिः पद्मलताभिर्यावच्छ्या-मलताभिः सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्ताः, यावच्छब्दादत्र नागलता-चम्पकलताद्या ग्रहणीयाः । **"ताओ णं पउमलयाओ जाव सामलयाओ निच्चं कुसुमिआओ जाव पडिरूवाओ"** [जीवा. ३।३९०] ताश्च पद्मलताऽऽद्या नित्यं कुसुमिता इत्यादि लतावर्णनं यावत्प्रतिरूपाः । **"तेसि णं चेइअरुक्खाणं उप्पिं अट्ठमंगलया बहवे झया छत्ताइच्छत्ता,"** [जीवा. ३।३९१] तेषां चैत्यवृक्षाणामुपरि अष्टावष्टौ मङ्गलकानि बहवः कृष्णचामरध्वजाः छत्रातिच्छत्राणीत्यादि चैत्यस्तूपकवद्वक्तव्यम् ॥१२६॥

गताश्चैत्यवृक्षाः, अथ महेन्द्रध्वजावसरः-

तेसि णं चेइअरुक्खाणं पुरओ ताओ मणिपेढिआओ पण्णत्ताओ । ताओ णं मणिपेढिआओ जोयणं आयाम-विक्खम्भेणं अद्धजोअणं बाहल्लेणं ॥ १२७ ॥

"**तेसि णं चेइअरुक्खाण**"मित्यादि, **तेषां चैत्यवृक्षाणां पुरतस्तिस्रो मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ताः । ताश्च मणिपीठिकाः योजनमायाम-विष्कम्भाभ्याम्, अर्द्धयोजनं बाहल्येन** ॥१२७॥

तासि णं उप्पिं पत्तेअं २ महिंदज्झया पण्णत्ता । ते णं अद्धट्ठमाइं जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धकोसं उव्वेहेणं, अद्धकोसं बाहल्लेणं, वइरामयवट्टवण्णओ[1] वेइआ-वणसंड-तिसोवाण-तोरणा य भाणिअव्वा[2] ॥ १२८ ॥

"**तासि णं उप्पिं पत्तेअं**" इत्यादि, **तासां** मणिपीठिकानामुपरि **प्रत्येकं २ महेन्द्रध्वजाः प्रज्ञप्ताः । ते च 'अर्द्धाष्टमानि'** सार्द्धसप्तयोजनानि **ऊर्ध्वोच्चत्वेन 'अर्द्धक्रोशं'** धनुःसहस्रं **'उमुद्वेधेन'** उण्डत्वेन तदेव **बाहल्येन, "वइरामयवट्ट"** इतिपदोपलक्षितः परिपूर्णो **जीवाभिगमाद्युक्तवर्णको** ग्राह्यः । स चायम्-"**वइरामय-वट्टलट्ठ-संठिअ-सुसिलिट्ठ-परिघट्ठ-मट्ठ-सुपइट्ठिआ अणेगवरपञ्चवण्णकुडभीसहस्सपरिमण्डिआभिरामा वाउद्धुअविजयवेजयन्तीपडागा-छत्ताइच्छत्तकलिआ तुंगा गगणतलमभिलंघमाणसिहरा पासादीआ जाव पडिरूवा**" [जीवा. ३।३९३] इति । अत्र व्याख्या-वज्रमयाः तथा वृत्तं-वर्त्तुलं लष्टं-मनोज्ञं संस्थितं-संस्थानं येषां ते तथा, तथा सुश्लिष्टा यथा भवन्ति एवं परिघृष्टा इव खरशाणया पाषाणप्रतिमेव सुश्लिष्ट-परिघृष्टाः, तथा मृष्टाः-सुकुमारशाणया पाषाणप्रतिमेव तथा सुप्रतिष्ठिताः-मनागप्यचलनात् तथा अनेकैर्वरैः-प्रधानैः पञ्चवर्णैः कुडभीनां-लघुपताकानां सहस्रैः परिमण्डिताः सन्तोऽभिरामाः, शेषं प्राग्वत् । "**तेसि णं महिंदज्झयाणं उप्पिं अट्ठट्ठमङ्गलया झया छत्ताइछत्ता**" इत्यादि सर्वं तोरणवर्णक इव वाच्यं **जीवाभिगमत** इति । उक्ता महेन्द्रध्वजाः, अथ पुष्करिण्यः ताश्च "**वेइआ-वणसंड**" इत्यादिपर्यन्तसूत्रेण सङ्गृह्यते । तथाहि-"**तेसि णं महिंदज्झयाणं पुरओ तिदिसिं तओ णंदा पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ अद्धतेरसजोअणाइं आयामेणं छस्सकोसाइं जोअणाइं विक्खम्भेणं दसजोअणाइं उव्वेहेणं अच्छाओ सण्हाओ पुक्खरिणीवण्णओ, पत्तेअं २ पउमवरवेइआपरिक्खित्ताओ पत्तेअं २ वणसण्डपरिक्खित्ताओ वण्णओ**" [जीवा. ३।३९५] तथा "**तासि णं णन्दापुक्खरिणीणं**

१. द्र. जीवा. ३।३९३-३९४ ॥ २. द्र. जीवा. ३९५-३९६ ॥

पत्तेअं २ तिदिसिं तओ तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता । तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं वण्णओ तोरणवण्णओ अ भाणिअव्वो जाव छत्ताइछत्ताइं" [जीवा. ३।३९६] इति, अत्र जगतीगतपुष्करिणीवत् सर्वं वाच्यम् ॥१२८॥

अथ सुधर्मसभायां यदस्ति तदाह-

तासि णं सभाणं सुहम्माणं छच्च मणोगुलिआसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तंजहा-पुरत्थिमेणं दो साहस्सीओ पण्णत्ताओ, पच्चत्थिमेणं [1] दो साहस्सीओ, दाहिणेणं एगा साहस्सी, उत्तरेणं एगा [2] जाव दामा चिट्ठंति त्ति ॥ १२९ ॥

"**तासि ण**"मित्यादि, **तयोः सभयोः सुधर्मयोः षट् 'मनोगुलिकानां'** पीठिकानां **सहस्राणि प्रज्ञप्तानि**, तथाहि-**पूर्वस्यां द्वे सहस्रे पश्चिमायां द्वे सहस्रे दक्षिणस्यामेकं सहस्रम् उत्तरस्यामेकं सहस्रं**, "**जाव दामा**" इत्यत्र यावत्पदादिदं ग्राह्यम्-"**तासु णं मणोगुलिआसु बहवे सुवण्ण-रुप्पमया फलगा पण्णत्ता । तेसि णं सुवण्ण-रुप्पमएसु फलगेसु बहवे वइरामया णागदन्तगा पण्णत्ता । तेसु णं वइरामएसु नागदन्तेसु बहवे किण्हसुत्त-वग्घारि-अमल्लदामकलावा जाव सुक्किल्लसुत्तवग्घारिअमल्लदामकलावा । ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा चिट्ठंति**" [जीवा. ३।३९७]त्ति सर्वं विजयद्वारवद्वाच्यम् ॥१२९॥

अनन्तरोक्तं गोमानसिकासूत्रेऽतिदिशति-

एवं गोमाणसिआओ, णवरं धूवघडिआओ त्ति ॥ १३० ॥

तासि णं सुहम्माणं सभाणं अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे [3] पण्णत्ते ॥ १३१ ॥

मणिपेढिआ दो जोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं, जोअणं बाहल्लेणं ॥ १३२ ॥

"**एवं गोमाणसिआओ**" इत्यादि, '**एवं**' मनोगुलिकान्यायेन '**गोमानस्यः**' शय्यारूपाः स्थानविशेषा वाच्याः, **नवरं** दामस्थाने **धूपवर्णको** वाच्यः । अथास्या एव भूभागवर्णकमाह- "**तासि ण**"मित्यादि, तयोः **सुधर्मयोः सभयोः अन्तर्बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः**, अत्र मणिवर्णादयो वाच्याः, उल्लोकाः पद्मलतादयोऽपि च चित्ररूपाः । अत्र विशेषतो यद्वक्तव्यं तदाह-"**मणिपेढिआ**" इत्यादि, अत्र सुधर्मयोर्मध्यभागे प्रत्येकं **मणिपीठिका** वाच्या, **द्वे योजने आयाम-विष्कम्भाभ्यां योजनं बाहल्येन** ॥१३०-१३२॥

---

१. दोण्णि दाहि० अब । दुण्णि दाहि० कखत्रिस ॥ २. द्र. जीवा ३।३९७ ॥ ३. द्र. जीवा. ३।३९९-४०० ॥

तासि णं मणिपेढिआणं उप्पिं माणवए चेइअखम्भे महिंदज्झयप्पमाणे[1] ॥ १३३ ॥

उवरिं[2] छक्कोसे[3] ओगाहित्ता हेट्ठा छक्कोसे[4] वज्जित्ता जिणसकहाओ पण्णत्ताओ ॥ १३४ ॥

"**तासि ण**"मित्यादि, **तयोर्मणिपीठिकयोरुपरि** प्रत्येकं **माणवक**नाम्नि **चैत्यस्तम्भे महेन्द्रध्वज**समाने **प्रमाण**तोऽर्द्धाष्टमयोजनप्रमाण इत्यर्थः वर्णकतोऽपि महेन्द्रध्वजवत्, **उपरि षट् क्रोशान् अवगाह्य** उपरितनषट्क्रोशान् वर्जयित्वेत्यर्थः, **अधस्तादपि षट् क्रोशान् वर्जयित्वा** मध्येऽर्धपञ्चमेषु योजनेषु इति गम्यम्, **जिनसक्थीनि-जिनास्थीनि** व्यन्तर-जातीयानां जिनदंष्ट्राग्रहणेऽनधिकृतत्वात्, सौधर्मेशान-चमर-बलीन्द्राणामेव तद्ग्रहणात्, **प्रज्ञप्ता-नीति**, शेषो वर्णकश्चात्र **जीवाभिगमोक्तो** ज्ञेयः । स चायं-"**तस्स णं माणवगचेइअस्स खम्भस्स उवरिं छक्कोसे ओगाहित्ता, हिट्ठावि छक्कोसे वज्जित्ता, मज्झे अद्धपञ्चमेसु जोअणेसु एत्थ णं बहवे सुवण्ण-रुप्पमया फलगा पण्णत्ता, तेसु णं बहवे वइरामया णागदन्तगा पण्णत्ता, तेसु णं बहवे रययामया सिक्कगा पण्णत्ता । तेसु णं बहवे वइरामया गोलयवट्टसमुग्गया पण्णत्ता । तेसु णं बहवे जिणसकहाओ सण्णिखित्ताओ चिट्ठन्ति, जाओ णं जमगाणं देवाणं अन्नेसिं च बहूणं वाणमन्तराणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइअं पज्जुवासणिज्जाओ**" [जीवा. ३।४०२] इति । अत्र व्याख्या-"**तस्स ण**"मित्याद्यारभ्य "वज्जित्ता" इति पर्यन्तं प्रायः प्रस्तुतसूत्रे साक्षाद् दृष्टत्वादनन्तरमेव व्याख्यातम्, मध्ये-ऽर्द्धपञ्चमेषु योजनेषु अवशिष्टयोजनेष्वित्यर्थः, अत्रान्तरे बहूनि सुवर्ण-रूप्यमयानि फलकानि प्रज्ञप्तानि । तेषु फलकेषु बहवो वज्रमया नागदन्तकाः प्रज्ञप्ताः । तेषु नागदन्तकेषु बहूनि रजतमयानि शिक्यकानि प्रज्ञप्तानि । तेषु शिक्यकेषु बहवो वज्रमया गोलकः-वृत्तोपलस्तद्वद् वृत्ताः समुद्गकाः-प्रसिद्धाः प्रज्ञप्ताः । तेषु समुद्गकेषु बहूनि जिनसक्थीनि सन्निक्षिप्तानि तिष्ठन्ति, यानि यमकयोर्देवयोः अन्येषां च बहूनां यमकराजधानीवास्तव्यानां वानमन्तराणां देवानां देवीनां च अर्चनीयानि चन्दनादिना वन्दनीयानि स्तुत्यादिना पूजनीयानि पुष्पादिना सत्कारणीयानि वस्त्रादिना सन्माननीयानि बहुमानकरणतः कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यमिति पर्युपासनीयानीति, एतदाशातनाभीरुतयैव तत्र देवा देवयुवतिभिर्न सम्भोगादिकमाद्रियन्ते, नापि मित्रदेवादिभिर्हास्यक्रीडादिपराः स्युरिति । ननु जिनगृहादिषु जिनप्रतिमानां देवा-

---

१. द्र. ४।१३२ ॥ २. "**पूर्णपाठावबोधार्थं द्रष्टव्यं जीवाजीवाभिगमस्य ३।४०२-४०३ सूत्रम् ।**" इति V पृ. ४९३ टि. १० ॥ ३-४. **छस्सकोसे-अकखत्रिबस** J12 ॥

नामर्चनीयत्वादिकमाशातनात्यागश्च युक्तौ, तासां सद्भावस्थापनारूपत्वेनाराध्यतासङ्कल्प-प्रादुर्भावसम्भवात्, न तथा जिनदंष्ट्रादिषु, तेन कथं तौ घटेते ?, [इति, उच्यते,] पूज्या-नामङ्गानि पूज्या इव पूज्यानीति सङ्कल्पस्यात्रापि प्रादुर्भावात् पूज्यत्वं महावैरोपशमकगुणवत्त्वेन च, अस्मिन्नर्थे पूज्यश्रीरत्नशेखरसूरीन्द्रोपज्ञश्राद्धविधिवृत्तिसम्मतिः । तथाहि परीक्षाप्राप्तनिर्लोभतागुणं **रत्नसार**कुमारं प्रति **चन्द्रशेखर**वचः-

"हरिसेनानीर्हरिणैगमेष्यनिमिषाग्रणीः ।
युक्तमेव तव श्लाघां, कुरुते सुरसाक्षिकम् ॥१॥

वक्ति स्म विस्मयस्मेरः, कुमारः स सुराग्रणीः ।
मामश्लाघ्यं श्लाघते किं ?, सोऽप्युवाच शृणु ब्रुवे ॥२॥

नव्योत्पन्नतयाऽन्यर्हि, सौधर्मेशानशक्रयोः ।
विवादोऽभूद्विमानार्थं, हर्म्यार्थमिव हर्मिणोः ॥३॥

विमानलक्षा द्वात्रिंशत्तथाऽष्टाविंशतिः क्रमात् ।
सन्त्येतयोस्तथाऽप्येतौ, विवदेते स्म धिग् भवम् ॥४॥

तयोरिवोर्वीश्वरयोर्विमानर्द्धिप्रलुब्धयोः ।
नियुद्धादिमहायुद्धान्यप्यभूवन्ननेकशः ॥५॥

निवार्यते हि कलहस्तिरश्चां तरसा नरैः ।
नराणां च नराधीशैर्नराधीशां सुरैः क्वचित् ॥६॥

सुराणां च सुराधीशैः, सुराधीशां पुनः कथम् ।
केन वा स निवार्येत, वज्राग्निरिव दुःशमः ? ॥७॥ युग्मम् ।

माणवकाख्यस्तम्भस्थार्हद्दंष्ट्राशान्तिवारिणा ।
आधिव्याधिमहादोषमहावैरनिवारिणा ॥८॥

कियत्कालव्यतिक्रान्तौ, सिक्तौ महत्तरैः सुरैः ।
बभूवतुः प्रशान्तौ तौ, किं वा सिध्येन्न तज्जलात् ॥९॥ युग्मम् ।

ततस्तयोर्मिथस्त्यक्तवैरयोः सचिवैर्द्वयोः ।
प्रोचे पूर्वव्यवस्थैवं, सुधियां समये हि गीः ॥१०॥

सा चैवम्-

दक्षिणस्यां विमाना ये, सौधर्मेशस्य तेऽखिलाः ।
उत्तरस्यां तु ते सर्वेऽपीशानेन्द्रस्य सत्तया ॥११॥

पूर्वस्यामपरस्यां च, वृत्ताः सर्वे विमानकाः ।
त्रयोदशापीन्द्रकाश्च, स्युः सौधर्मसुरेशितुः ॥१२॥

पूर्वा-ऽपरदिशोस्त्र्यस्त्राश्चतुरस्त्राश्च ते पुनः ।
सौधर्माधिपतेरर्द्धा, अर्द्धा ईशानचक्रिणः ॥१३॥

सनत्कुमार-माहेन्द्रेऽप्येष एव भवेत् क्रमः ।
वृत्ता एव हि सर्वत्र, स्युर्विमानेन्द्रकाः पुनः ॥१४॥

इत्थं व्यवस्थया चेतःस्वास्थ्यमास्थाय सुस्थिरौ ।
विमत्सरौ प्रीतिपरौ, जज्ञाते तौ सुरेश्वरौ ॥१५॥" [श्राद्धविधिप्र.स्वोपज्ञवृत्तौ रत्नसारकथा श्लो. ७०८-७२२] इति ॥१३३-१३४॥

अथ प्रकृतं प्रस्तूयते-

माणवगस्स पुव्वेणं सीहासणा सपरिवारा, पच्चत्थिमेणं सयणिज्जा वण्णओ[१] ॥ १३५ ॥

सयणिज्जाणं उत्तरपुरत्थिमे[२] दिसिभाए खुड्डगमहिंदज्झया मणिपेढिआविहूणा महिंदज्झयप्पमाणा[३] ॥ १३६ ॥

"**माणवगस्स**" इत्यादि, '**माणवकस्य**' चैत्यस्तम्भस्य '**पूर्वेण**' पूर्वस्यां दिशि सुधर्मायामेव सभायां **सिंहासने सपरिवारे** स्तः, यमकदेवयोः प्रत्येकमेकैक-सद्भावात् । तस्मादेव **पश्चिमायां** दिशि **शयनीये वर्णकश्च** तदीयः श्रीदेवीवर्णनाधिकारे उक्तः । **शयनीययोरुत्तरपूर्वस्यां दिशि क्षुल्लकमहेन्द्रध्वजौ** स्तः, तौ च मानतो **महेन्द्रध्वजप्रमाणौ**, सार्द्धसप्तयोजनप्रमाणावुच्चत्वेना-ऽर्द्धक्रोशमुद्वेधेन-बाहल्याभ्यामित्यर्थः । ननु यदीमौ प्रागुक्तमहेन्द्रध्वजतुल्यौ तदा किमिमौ क्षुल्लकेन विशेषितौ ?, उच्यते, **मणिपीठिकाविहीनौ**, अत एव क्षुल्लौ । कोऽर्थः ? द्वियोजनप्रमाणमणिपीठिकोपरिस्थितत्वेन पूर्वे महान्तो महेन्द्रध्वजास्तदपेक्षया इमौ च क्षुल्लावित्यर्थादागतमिति ॥१३५-१३६॥

तेसिं अवरेणं चोप्पाला पहरणकोसा, तत्थ णं बहवे फलिहरयणपामुक्खा जाव[४] चिट्ठंति ॥ १३७ ॥

सुहम्माणं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा ॥ १३८ ॥

'**तयोः**' क्षुल्लमहेन्द्रध्वजयोरेकैकराजधानीसम्बन्धिनोः '**अपरेण**' पश्चिमायां **चोप्पालो** नाम '**प्रहरणकोशः**' प्रहरणभाण्डागारम्, **तत्र बहूनि परिघरत्नप्रमुखाणि यावत्पदात्**

१. द्र. जीवा. ३।४०६-४०७ ॥ २. उत्तरओ-अकखत्रिबस J12 ॥ ३. द्र. जीवा. ३।४०८-४०९ ॥ ४. द्र. जीवा. ३।४१० ॥

प्रहरणरत्नानि सन्निक्षिप्तानि **तिष्ठन्ति** । "**सुहम्माण**"मित्यादि, सुधर्मयो**रुपर्यष्टाष्टमङ्गलकानि** इत्यादि तावद् वक्तव्यं यावद् बहवः सहस्रपत्रहस्तकाः सर्वरत्नमया इत्यादि ॥१३७-१३८॥

तासि णं उत्तरपुरत्थिमेणं सिद्धायणा एस चेव जिणघराण वि गमो त्ति, णवरं इमं णाणत्तं-एतेसि णं बहुमज्झदेसभाए पत्तेअं २ मणिपेढिआओ दो जोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं, जोअणं बाहल्लेणं । तासिं उप्पिं पत्तेअं २ देवच्छंदया पण्णत्ता, दो जोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं, साइरेगाइं [१] दो जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, सव्वरयणामया । जिणपडिमावण्णओ जाव धूवकडुच्छुगा ॥ १३९ ॥

सुधर्मसभातः परं किमस्ति ? इत्याह-"**तासि ण**"मित्यादि, '**तयोः**' सुधर्मसभयो**रुत्तर-पूर्वस्यां** दिशि द्वे **सिद्धायतने** प्रज्ञप्ते इति शेषः, प्रतिसभमेकैकसद्भावादिति । अत्र लाघवार्थ-मतिदेशमाह-**एष 'एव'** सुधर्मासभोक्त एव **जिनगृहाणामपि 'गमः'** पाठोऽवगन्तव्यः । स चायम्-"**ते णं सिद्धाययणा अद्धतेरसजोअणाइं आयामेणं छस्सकोसाइं विक्खम्भेणं णव जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठा**" [तुला. जीवा. ३।४१२] इत्यादि, यथा सुधर्म्मायास्त्रीणि पूर्वदक्षिणोत्तरवर्त्तीनि द्वाराणि, तेषां पुरतो मुखमण्डपाः, तेषां च पुरतः प्रेक्षामण्डपाः, तेषां पुरतः स्तूपाः, तेषां पुरतश्चैत्यवृक्षाः, तेषां पुरतो महेन्द्रध्वजाः, तेषां पुरतो नन्दापुष्करिण्य उक्तास्तदनु सभायां षड् मनोगुलिकासहस्राणि षड् गोमानसीसहस्राण्युक्तानि, एवमनेनैव क्रमेण सर्वं वाच्यम् । अत्र च सुधर्मातो यो विशेषस्तमाह-"**णवरं इमं णाणत्तं**" इत्यादि व्यक्तम् ॥१३९॥

अथ सुधर्मासभोक्तमेव सभाचतुष्केऽतिदिशन्नाह-

एवं [२] अवसेसाण वि सभाणं जाव उववायसभाए सयणिज्जं [३] हरओ अ, अभिसेअसभाए बहु आभिसेक्के भंडे, [४] अलंकारिअसभाए बहु [५] अलंकारिअभंडे चिट्ठइ, ववसायसभासु पुत्थयरयणा, णंदा पुक्खरिणीओ, बलिपेढा [६] दो जोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं जोअणं बाहल्लेणं जाव [७] त्ति-

१. द्र. जीवा. ३।४१२-४२० ॥ २. एवं चेव अव० V ॥ ३. अकखत्रिबस पुवृ. हीवृ. J12 एतेषु सर्वेष्वपि 'हरओय' इति पाठः 'अभिसेक्के भंडे' इति पाठान्तरं विद्यते, किन्तु जीवाजीवाभिगमस्य ३।४२५ सूत्रावलोकनेन एतज्ज्ञायते-उपपातसभायाः उत्तरपौरस्त्ये ह्रदो विद्यते, तस्य उत्तरपौरस्त्ये अभिषेकसभा विद्यते, अतः 'हरओ य' इति पाठः अभिषेकसभातः पूर्वमेव युज्यते इति V पृ. ४९४ टि. ४ ॥ ४. आलं० अब J12 । ५. आलं० अबकखत्रिस J12 ॥ ६. सव्वरयणामया सकोसं जोयणं बाहल्लेण-अकखत्रिबस पुवृ. हीवृ. ॥ ७. द्र. जीवा. ३।४२१-४३८ ॥

उववाओ संकप्पो, अभिसेअ-विहूसणा य ववसाओ ।
अच्चणिअ-सुधम्मगमो, जहा य परिवारणाइड्डी ॥१॥
जावइयंमि पमाणंमि हुंति, जमगाओं णीलवंताओ ।
तावइअमन्तरं खलु, जमगदहाणं दहाणं च ॥२॥ १४० ॥

"**एवं अवसेसाण वि**" इत्यादि, **एवं** सुधर्मान्यायेन '**अवशिष्टानामु**'पपात**सभादीनां** वर्णनं ज्ञेयम् । कियत्पर्यन्तम् ? इत्याह–**यावद्** '**उपपातसभायाम्**' उत्पित्सुदेवोत्पत्त्युपलक्षित-सभायां **शयनीयं** वर्णनीयं तच्च प्राग्वत्, तथा **ह्रदश्च** वक्तव्यो नन्दापुष्करिणीमानः, स चोत्पन्नदेवस्य शुचित्वजलक्रीडादिहेतुः । ततः '**अभिषेकसभायाम्**' अभिनवोत्पन्न-देवाभिषेकमहोत्सवस्थानभूतायां **बहु** '**आभिषेक्यम्**' अभिषेकयोग्यं **भाण्डं** वाच्यम् । तथा '**अलङ्कारसभायाम्**' अभिषिक्तसुरभूषणपरिधानस्थानरूपायां **सुबहु** '**अलङ्कारिकभाण्डम्**' अलङ्कारयोग्यं भाण्डं **तिष्ठति** । '**व्यवसायसभयोः**' अलङ्कृतसुरशुभाध्यवसायानुचिन्तन-स्थानरूपयोः **पुस्तकरत्ने**, ततो '**बलिपीठे**' अर्चनिकोत्तरकालं नवोत्पन्नसुरयोर्बलिविसर्जन-पीठे **द्वे योजने आयाम-विष्कम्भाभ्यां योजनं बाहल्येन यावत्**पदात् "सव्वरयणामया अच्छा पासाईआ ४", ततो **नन्दा**ऽभिधाने '**पुष्करिण्यौ**' बलिक्षेपोत्तरकालं सुधर्मासभां जिगमिषतोरभिनवोत्पन्नसुरयोर्हस्तपादप्रक्षालनहेतुभूते । अत एव सूत्रे प्रथमोक्ते अपि नन्दापुष्करिण्यौ प्रयोजनक्रमवशात् पश्चाद् व्याख्याते, क्रमप्राधान्याद् व्याख्यानस्य ।

अथ यथा सुधर्मासभातः उत्तरपूर्वस्यां दिशि सिद्धायतनम्, तथा तस्योत्तरपूर्वस्यां दिशि उपपातसभा, एवं पूर्वस्मात् पूर्वस्मात् परं परमुत्तरपूर्वस्यां वाच्यम्, यावद्बलिपीठा-दुत्तरपूर्वस्यां नन्दा पुष्करिणीति । अत्र च "जमिगाओ रायहाणीओ" इत्यादिसूत्रेषु द्विवचनेन, "तासिं जाव उप्पिं माणवए चेइअखम्भे" इत्यादिसूत्रेष्वेकवचनेन निर्देशः सूत्रकाराणां प्रवृत्ति-वैचित्र्यादिति । वर्णिते यमिकाभिधे राजधान्यौ, अथानयोरधिपयोर्यमकदेवयोरुत्पत्त्यादि-स्वरूपाख्यानाय विस्तरारुचिः सूत्रकृत् सङ्ग्रहगाथामाह–"**उववाओ संकप्पो**" इत्यादि, '**उपपातः**' यमकयोर्देवयोरुत्पत्तिर्वाच्या, ततः उत्पन्नयोः सुरयोः शुभव्यवसायचिन्तनरूपः **सङ्कल्पः, ततः** '**अभिषेकः**' इन्द्राभिषेकः, ततः '**विभूषणा**' अलङ्कारसभायामलङ्कार-परिधानम्, ततो '**व्यवसायः**' पुस्तकस्योद्घाटनरूपः, ततः '**अर्चनिका**' सिद्धायतनाद्यर्चा, ततः **सुधर्मायां गमनम्, यथा च** '**परिवारणा**' परिवारकरणं स्वस्वोक्तदिशि परिवार-

स्थापनम्, यथा यमकयोर्देवयोः सिंहासनयोः परितो वामभागे चतुःसहस्रसामानिकभद्रासनस्थापनम्, सैव '**ऋद्धिः**' सम्पत्, रूपनिष्पत्तिस्तु "**णिज् बहुलं नाम्नः कृगादिषु**" [**श्रीसिद्ध० अ० ३ पा० ४ सू० ४२**] इत्यनेन करणार्थे "**णिवेत्त्यासश्रथघट्टवन्देरनः**" [**श्रीसिद्ध० अ० ५ पा० ३ सू० १११**] इत्यनेन चानप्रत्यये स्त्रीलिङ्गीय आप्प्रत्यये साधुः तथा वाच्यं **जीवाभिगमादिभ्यः** । अथ यमकौ द्रहाश्च यावताम् अन्तरेण परस्परं स्थितास्तन्निर्णेतुमाह-"**जावइयं**" इत्यादि, **यावति** '**प्रमाणे**' अन्तरमाने **नीलवतो यमकौ भवतः**, '**खलु**' निश्चितम् **तावद्** '**अन्तरं**' योजनसप्तभागचतुर्भागाभ्यधिक-चतुस्त्रिंशदधिकाष्टशतयोजनरूपं [८३४ $\frac{४}{७}$] **यमकद्रहयोर्द्रहाणां च बोध्य**मिति शेषः, उपपत्तिस्तु प्राग्वत् ॥१४०॥

अथ येषां ह्रदानामन्तरमानमनन्तरमुक्तं तान् स्वरूपतो निर्दिशति-

कहि णं भन्ते ! उत्तरकुराए [कुराए] णीलवन्तद्दहे णामं दहे पण्णत्ते ?, गोअमा ! जमगाणं दक्खिणिल्लाओ चरिमन्ताओ अट्ठसए चोत्तीसे चत्तारि अ सत्तभाए[१] जोअणस्स अबाहाए सीआए महाणईए बहुमज्झदेसभाए [२]एत्थ णं णीलवन्तद्दहे णामं दहे पण्णत्ते-दाहिण-उत्तरायए पाईण-पडीणवित्थिण्णे जहेव पउमद्दहे तहेव वण्णओ णेअव्वो । णाणत्तं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि य वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते, [३]णीलवन्ते णामं णागकुमारे देवे, सेसं तं चेव [४]णेअव्वं ॥ १४१ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, **क्व भदन्त ! उत्तरकुरुषु** २ **नीलवद्द्रहो नाम द्रहः प्रज्ञप्तः** ?, **गौतम ! यमकयोर्दाक्षिण्याच्चरमान्तादष्ट शतानि चतुस्त्रिंशद**धिकानि **चत्वारि च सप्तभागान् योजनस्य अबाधया** कृत्वा इति गम्यम्, अपान्तराले मुक्त्वेति भावः, **शीताया महानद्या बहुमध्यदेशभागेऽत्रान्तरे नीलवद्द्रहो नाम द्रहः प्रज्ञप्तः, दक्षिणोत्तरायतः प्राचीन-प्रतीचीनविस्तीर्णः**, पद्मद्रहश्च प्रागपरायतः उदग्दक्षिणपृथुरिति पृथग्विशेषणम्, **यथैव पद्मद्रहे वर्णकस्तथैव नेतव्यः** । '**नानात्वम्**' इति विशेषोऽयम्, **द्वाभ्यां**

---

१. ०ए अबाहाए जोयणस्स-अत्रिबस J12 । ०ए आबाहाए जोयणस्स-कख ॥ २. एत्थ णं णीलवन्तद्दहे णामं दहे पण्णत्ते-अकखबस J12 नास्ति ॥ ३. णीलवन्ते णामं-अकखत्रिबस J2 नास्ति ॥ ४. द्र. ४।३-२२ ॥

पद्मवरवेदिकाभ्यां द्वाभ्यां च वनखण्डाभ्यां सम्परिक्षिप्तः । अयं भावः-पद्मद्रह एकया पद्मवरवेदिकया एकेन च वनखण्डेन परिक्षिप्तः, अयं तु प्रविशन्त्या निर्यान्त्या च शीतया महानद्या द्विभागीकृतत्वेनोभयोः पार्श्वयोर्वर्त्तिनीभ्यां वेदिकाभ्यां युक्त इति सम्यक् । अर्थश्च नीलवद्वर्षधरनिभानि तत्र तत्र प्रदेशेषु शतपत्रादीनि सन्ति, अथवा **नीलवन्नामा नागकुमारो देवो**ऽत्राधिपतिरिति नीलवान् ह्रद इति, **'शेषं'** पद्मादिकं **तदेव नेतव्यम्**, पद्मद्रह इव पद्ममान-सङ्ख्या-परिक्षेपादिकं ज्ञातव्यमित्यर्थः ॥१४१॥

अथ काञ्चनगिरिव्यवस्थामाह-

णीलवन्तद्दहस्स पुव्वावरे पासे दस २ जोअणाइं अबाहाए एत्थ णं वीसं कंचणगपव्वया पण्णत्ता-एगं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं-

मूलंमि जोअणसयं, पण्णत्तरि जोअणाइँ मज्झंमि ।
उवरितले कंचणगा, पण्णासं जोअणा हुंति ॥१॥

मूलंमि तिण्णि सोले, सत्तत्तीसाइँ दुण्णि मज्झंमि ।
अट्ठावण्णं च सयं, उवरितले परिरओ होइ ॥२॥

पढमित्थ नीलवन्तो १, बितिओ उत्तरकुरू २ मुणेअव्वो ।
चंदद्दहोत्थ तइओ ३, एरावय[१] ४ मालवन्तो अ ५॥३॥

एवं वण्णओ, अट्ठो पमाणं पलिओवमट्ठिइआ देवा ॥ १४२ ॥

"णीलवन्त" इत्यादि, **नीलवद्द्रहस्य पूर्वा-ऽपर-पार्श्वयोः** प्रत्येकं **दशदशयोजनान्यबाधया** कृत्वेति गम्यम्, अपान्तराले मुक्त्वेति भावः, **अत्रान्तरे** दक्षिणोत्तरश्रेण्या परस्परं मूले सम्बद्धाः, अन्यथा शतयोजनविस्ताराणामेषां सहस्र-योजनमाने द्रहायामेऽवकाशासम्भव इति, **विंशतिः काञ्चनकपर्वताः प्रज्ञप्ताः, एकं योजनशतमूर्ध्वोच्चत्वेन** । गाथाद्वयेनैतेषां विष्कम्भ-परिक्षेपावाह-**मूले योजनशतं 'मध्ये'** मूलतः पञ्चाशद्योजनोर्ध्वंगमने **पञ्चसप्ततिर्योजनानि 'उपरितने'** शिखरतले **पञ्चाशद्योजनानि** विस्तारेण **भवन्ति काञ्चनका**भिधाः पर्वताः ॥१॥ **मूले त्रीणि** योजनशतानि **षोडशा**धिकानि **मध्ये द्वे** योजनशते **सप्तत्रिंशद**धिके **अष्टपञ्चाशद**धिकं योजन**शतम् उपरितले 'परिरयः'** परिधिरिति ॥२॥ इह

---

१. एरावण-J12 V ॥

च मूले परिधौ मध्यपरिधौ च किंचिद्विशेषाधिकत्वं गाथा-बन्धानुलोम्यादनुक्तमप्यवसेयम् । अथ सङ्ख्याक्रमेण पञ्चानामपि ह्रदानां नामान्याह–"**पढमित्थ**" इत्यादि, **प्रथमो नीलवान् द्वितीय उत्तरकुरुर्ज्ञातव्यः चन्द्रद्रहोऽत्र तृतीयः ऐरावतश्चतुर्थः पञ्चमो माल्यवांश्च** । अथानन्तरोक्तानां काञ्चनाद्रीणाम् एषां च द्रहादीनां स्वरूपप्ररूपणाय लाघवार्थमेकमेव सूत्रमाह– "**एवं वण्णओ**" इत्यादि, '**एवं**' उक्तन्यायेन नीलवद्द्रहन्यायेनेत्यर्थः, उत्तरकुरुह्रदादीनामपि ज्ञेयः पद्मवरवेदिका-वनखण्ड-त्रिसोपानप्रति-रूपक-तोरण-मूलपद्माष्टोत्तरशतपद्मपरिवारपद्म-शेष-पद्मपरिक्षेपत्रयवक्तव्यताऽपि, तथैव 'अर्थः' उत्तरकुर्वादिद्रहनामान्वर्थः उत्तरकुरुह्रदप्रभोत्तर-कुरुह्रदाकारोत्पलादियोगादुत्तरकुरुदेवस्वामि-कत्वाच्चोत्तरकुरुह्रद इति । चन्द्रह्रदप्रभाणि-चन्द्र-ह्रदाकाराणि चन्द्रह्रदवर्णानि चन्द्रश्चात्र देवः स्वामीति चन्द्रह्रदः । ऐरावतम्–उत्तरपार्श्ववर्त्ति-भरतक्षेत्रप्रतिरूपकक्षेत्रविशेषस्तत्प्रभाणि–तदा-काराणि, आरोपितज्यधनुराकाराणीत्यर्थः, उत्पलादीनि ऐरावतश्चात्र देवः प्रभुरित्यैरावतः । माल्यवद्वक्षस्कारनिभोत्पलादियोगान्माल्यवद्देवस्वामि-कत्वाच्च माल्यवद्ह्रद इति, प्रमाणं च सहस्रं योजनान्यायामस्तदर्द्धं विष्कम्भ इत्यादिकम् । **पल्योपमस्थितिकाश्चात्र देवाः** परिवसन्ति, तत्राद्यस्य नागेन्द्र उक्तः, शेषाणां व्यन्तरेन्द्राः । काञ्चनाद्रीणां च वर्णको यमका-द्रिवद्वाच्यः । **अर्थश्च** काञ्चनवर्णोत्पलादियोगात् काञ्चनाभिध-देवस्वामिकत्वाच्च काञ्चनाद्रयः, '**प्रमाणं**' योजनशतोच्चत्वं मूले योजनशतं विस्तार इत्यादिकं उत्तरकुरुह्रदादिशेष-द्रहपार्श्ववर्त्तिकाञ्चनाचलापेक्षयेदं बोध्यम्, अथवा प्रमाणं प्रतिह्रदं विंशतिः प्रतिपार्श्वं दश सर्वसङ्ख्यया शतमित्यादिकम्, पल्योपमस्थितिकाश्चात्र देवा इति राजधान्यश्चै-तेषामत्रानुक्ता अपि यमकदेवराजधानीवद्वाच्याः परं तत्तदभिलापेनेति ॥१४२॥

अथ यन्नाम्ना इदं जम्बूद्वीपं ख्यातम्, तां सुदर्शनानाम्नीं जम्बूं विवक्षुस्तदधिष्ठानमाह–

कहि णं भन्ते ! उत्तरकुराए २ जम्बूपेढे णामं पेढे पण्णत्ते ?, गोअमा ! णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दक्खिणेणं, मन्दरस्स [पव्वयस्स] [1] उत्तरेणं [उत्तरपुरत्थिमेणं] मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स [2] पच्चत्थिमेणं [गंधमादणस्स

१. "यथा देवकुरुप्रकरणे (४।२०७) 'मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं' इति पाठोस्ति तथाऽत्रापि 'मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं' इति पाठो युज्यते । जीवाजीवाभिगमे (३।६६८)ऽपि एवंविधः पाठो लभ्यते ।" इति V पृ. ४९५ टि. ५ ॥ २. "यथा देवकुरुप्रकरणे (४।२०७) 'विज्जुप्पभस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं' इति पाठोऽस्ति तथाऽत्रापि 'गंधमादणस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं' इति पाठो युज्यते । जीवाजीवाभिगमेऽपि (३।६६८) एवंविधः पाठो लभ्यते ।" इति V पृ. ४९५ टि. ६ ॥

वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं ?] सीआए महाणईए पुरत्थिमिल्ले कूले एत्थ णं उत्तरकुराए कुराए जम्बूपेढे णामं पेढे पण्णत्ते-पञ्च जोअणसयाइं आयाम-विक्खम्भेणं, पण्णरस[1] एक्कासीयाइं जोअणसयाइं[2] किंचिविसेसाहिआइं[3] परिक्खेवेणं, बहुमज्झदेसभाए बारस जोअणाइं बाहल्लेणं, तयणन्तरं च णं मायाए २ पदेसपरिहाणीए २ सव्वेसु णं चरिमपेरंतेसु दो दो गाउआइं बाहल्लेणं, सव्वजम्बूणयामए अच्छे। से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते दुण्हं पि वण्णओ[4] ॥ १४३ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, **क्व भदन्त ! उत्तरकुरुषु २ जम्बूपीठं नाम पीठं प्रज्ञप्तं ?** निर्वचनसूत्रे **गौतम**ेत्यामन्त्रणं गम्यम्, **नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य दक्षिणेन, मन्दरस्य पर्वतस्योत्तरेण, माल्यवतो 'वक्षस्कारपर्वतस्य'** गजदन्तापरपर्यायस्य '**पश्चिमेन**' पश्चिमायां **शीताया महानद्याः 'पूर्वकूले'** शीताद्विभागीकृतोत्तरकुरुपूर्वार्द्धे तत्रापि मध्यभागे **अत्रान्तरे उत्तरकुरुषु कुरुषु जम्बूपीठं नाम पीठं प्रज्ञप्तम्-पञ्चयोजनशतान्यायाम-विष्कम्भेन योजनानां पञ्चदशशतान्येकाशीत्य**धिकानि **किंचिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण, 'बहुमध्यदेशभागे'** विवक्षितदिक्प्रान्तादर्धतृतीयशतयोजनातिक्रमे इत्यर्थः, **बाहल्येन द्वादश योजनानि, तदनन्तरं 'मात्रया २'** क्रमेण २ **प्रदेशपरिहाण्या** परिहीयमाणः २ "**सव्वेसु**"त्ति प्राकृतत्वात् पञ्चम्यर्थे सप्तमी तेन सर्वेभ्य**श्चरमप्रान्तेषु** मध्यतोऽर्द्धतृतीययोजनशतातिक्रमे इत्यर्थः, **द्वौ द्वौ क्रोशौ बाहल्येन, सर्वात्मना जाम्बूनदमयं "अच्छ"**मित्यादि । "**से णं एगाए पउम**" इत्यादि, 'तद्' इति अनन्तरोक्तं जम्बूपीठम् एकया पद्म**वरवेदिकया एकेन च वनखण्डेन सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्तमि**ति शेषः, '**द्वयोरपि**' पद्मवरवेदिका-वनखण्डयो**र्वर्णकः** स्मर्त्तव्यः प्राक्तनः ॥१४३॥

तस्स णं जम्बूपेढस्स चउद्दिसिं एए चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता वण्णओ जाव[5] तोरणाइं ॥ १४४ ॥

---

१. पण्णरसे एक्कतीसाइं-अब J12 । पण्णरसेक्कासीयाइं-कखत्रिस ॥ २. जोयणसयाइं-अब J12 ॥ ३. ०साहिए-अकखत्रिबस J12 ॥ ४. द्र. १।१०-१३॥ ५. द्र. जीवा. ३।२८७-२९१ ॥

तस्स णं जम्बूपेढस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं मणिपेढिआ पण्णत्ता-अट्ठजोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं चत्तारि जोअणाइं बाहल्लेणं ॥ १४५ ॥

तच्च जघन्यतोऽपि चरमान्ते द्विक्रोशोच्चं कथं सुखारोहा-ऽवरोहम् ? इत्याशङ्क्याह- "**तस्स ण**"मित्यादि, **तस्य जम्बूपीठस्य चतुर्दिशि 'एतानि'** दिग्नामोपलक्षितानि **चत्वारि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि प्रज्ञप्तानि**, एतानि च त्रीणि मिलितानि द्विक्रोशोच्चानि भवन्ति क्रोशविस्तीर्णानि, अत एव प्रान्ते द्विक्रोशबाहल्यात् पीठात् उत्तरतामवतरतां च सुखावहद्वारभूतानि **वर्णकश्च** तावद्वक्तव्यो **यावत् तोरणानि** । "**तस्स ण**"मित्यादि, व्यक्तम् ॥१४४-१४५॥

तीसे णं मणिपेढिआए उप्पिं एत्थ णं जम्बूसुदंसणा पण्णत्ता-अट्ठ जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, अद्धजोअणं उव्वेहेणं । तीसे णं खंधो दो जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, अद्धजोअणं बाहल्लेणं । तीसे णं साला छ जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोअणाइं आयाम-विक्खंभेणं, साइरेगाइं अट्ठ जोअणाइं सव्वग्गेणं । तीसे णं[1] अयमेआरूवे वण्णावासे प०-वइरामया मूला रयय-सुपइट्ठिअविडिमा[2] जाव अहिअ-मणणिव्वुइकरी पासाईआ दरिसणिज्जा० ॥ १४६ ॥

"**तीसे ण**"मित्यादि, **तस्या मणिपीठिकाया उपरि अत्र जम्बूः सुदर्शनानाम्नी प्रज्ञप्ता-अष्ट योजनान्यूर्ध्वोच्चत्वेन अर्द्धयोजनम् 'उद्वेधेन'** भूप्रवेशेन । अथास्या एवोच्चत्वस्याष्ट योजनानि विभागतो द्वाभ्यां सूत्राभ्यां दर्शयति-"**तीसे ण**"मित्यादि, **'तस्याः'** जम्ब्वाः **'स्कन्धः'** कन्दादुपरितनः शाखाप्रभवपर्यन्तोऽवयवो **द्वे योजने ऊर्ध्वोच्चत्वेनार्द्धयोजनं 'बाहल्येन'** पिण्डेन । **तस्याः 'शाला'** विडिमापरपर्याया दिक्प्रसृता शाखामध्यभागप्रभवा ऊर्ध्वगता शाखा **षड् योजनान्यूर्ध्वोच्चत्वेन**, तथा **बहुमध्यदेशभागे** प्रकरणाज्जम्बूरिति गम्यम्, **अष्टौ योजनान्यायम-विष्कम्भाभ्याम्,** तान्येवास्याः स्कन्धोपरितनभागाच्चतसृष्वपि दिक्षु प्रत्येकमेकैका शाखा निर्गता ताश्च क्रोशोनानि चत्वारि योजनानि, तेन पूर्वा-ऽपरशाखादैर्घ्य-स्कन्ध-बाहल्यसम्बन्ध्यर्द्धयोजनमीलनेनोक्तसङ्ख्यानयनम् । बहुमध्य-

१. वइरामया मूला रतयामया विडिमा सुविदिसि अब । वइरामया मूला रजतमया विडिमा सु(सुवि- कख)दिसि-कखत्रि हीवृ. । ०रयतामया विडिमा-सपुवृ. । "जीवाभिगमे तु वज्रमयमूला रजतमयसुप्रतिष्ठितविडिमा इत्यादिरूपो वर्णको दृश्यते-पुवृ. ।" इति V पृ. ४९६ टि. १ ॥ २. द्र. जीवा. ३।६७२ ॥

देशभागश्चात्र व्यावहारिको ग्राह्यः, वृक्षादीनां शाखाप्रभवस्थाने मध्यदेशस्य लोकैर्व्यवह्रियमाणत्वात्, पुरुषस्य कटिभाग इव । अन्यथा विडिमाया द्वियोजनातिक्रमे निश्चयप्राप्तस्य मध्यभागस्य ग्रहणे पूर्वा-ऽपरशाखाद्वय-विस्तारस्य ग्रहणसम्भवः विषमश्रेणिकत्वात् । अथवा बहुमध्यदेशभागः शाखानामिति गम्यते । कोऽर्थः ? यतश्चतुर्दिक्शाखामध्यभागस्तस्मिन्नित्यर्थः, अष्टयोजनानयनं तु तथैव । उच्चत्वेन तु '**सर्वाग्रेण**' सर्वसङ्ख्यया कन्द-स्कन्ध-विडिमा-परिमाणमीलने **सातिरेकाण्यष्टौ योजनानीति** । अथास्या वर्णकमाह-"**तीसे ण**"मित्यादि, '**तस्याः**' जम्ब्वा **अयमेतद्रूपो वर्णावासः प्रज्ञप्तः**-वज्रमयानि मूलानि यस्याः सा **वज्रमयमूला**, तथा '**रजता**' रजतमयी सुप्रतिष्ठिता '**विडिमा**' बहुमध्यदेशभागे ऊर्ध्वविनिर्गता शाखा यस्याः सा **रजत-सुप्रतिष्ठितविडिमा**, ततः पदद्वयकर्मधारयः, यावत्पदात् चैत्यवृक्षवर्णकः सर्वोऽप्यत्र वाच्यः । कियत्पर्यन्तम्? इत्याह-**अधिकमनोनिर्वृतिकरी प्रासादीया दर्शनीया** इत्यादि ॥१४६॥

अथास्याः शाखाव्यक्तिमाह-

जंबूए णं सुदंसणाए चउद्दिसिं चत्तारि साला पं० । तेसि णं सालाणं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं सिद्धाययणे पण्णत्ते-कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खम्भेणं, देसूणगं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं, अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठे जाव दारा पञ्चधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं जाव वणमालाओ, मणिपेढिआ पञ्चधणुसयाइं आयाम-विक्खम्भेणं, अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं । तीसे णं मणिपेढिआए उप्पिं देवच्छन्दए पंचधणुसयाइं आयाम-विक्खम्भेणं, साइरेगाइं पञ्च-धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, जिणपडिमावण्णओ[१] णेअव्वो । तत्थ णं जे से पुरत्थिमिल्ले साले एत्थ णं भवणे पण्णत्ते-[२]कोसं आयामेणं [३]एमेव, णवरमित्थ सयणिज्जं सेसेसु [४]पासायवडेंसया सीहासणा य [५]सपरिवारा इति ॥ १४७ ॥

---

१. द्र. जीवा. ६७४-६७७ ॥ २. कोसं आयामेण-अकखत्रिबस J2 नास्ति ॥ ३. J12 V । एवमेव-मु. । द्र. जीवा. ३।६७३ ॥ ४. द्र. जीवा. ३।६७३ ॥ ५. "अपरिवारा (क.स) सीहासणा अपरिवारत्ति अत्र प्रासादेषु सिंहासनानि अपरिवाराणि किमुक्तं भवति एकैकस्य प्रासादावतंसकस्य मध्ये पञ्चधनुः-शतायामविष्कम्भा अर्धतृतीयधनुःशतबाहल्या मणिमयी पीठिका । तासां च मणिपीठिकानामुपरि प्रत्येक-मनादृतदेवयोग्यं सर्वरत्नमयं सिंहासनं भद्रासनरूपपरिवार रहितं वाच्यमिति (पुवृ.) सिंहासनानि चापरिवाराणि परिवाररहितानि वाच्यानि, क्वचित् सपरिवार इत्यपि पाठः (ह्री.वृ.)" इति V पृ. ४९६ टि. ९ ॥

"**जंबूए ण**"मित्यादि, **जम्ब्वाः सुदर्शनायाः चतुर्दिशि चतस्रः 'शालाः'** शाखाः प्रज्ञप्ताः । **तासां शालानां 'बहुमध्यदेशभागे'** उपरितनविडिमा-शालायामित्यध्याहार्यम्, **जीवाभिगमे** तथा दर्शनात्, शेषं सुलभं वैताढ्यसिद्धकूटगत-सिद्धायतनप्रकरणतो ज्ञेयमित्यर्थः । अत्र पूर्वशालादौ यत्र यदस्ति, तत्र तद्वक्तुमाह-"**तत्थ ण**"मित्यादि, '**तत्र**' तासु चतसृषु शालासु **या सा पौरस्त्या शाला**, सूत्रे प्राकृतत्वात् पुंस्त्वनिर्देशः, **अत्र भवनं प्रज्ञप्तम्-क्रोशमायामेन "एवमेवे"**ति सिद्धायतनवदिति । अर्द्धक्रोशं विष्कम्भेन देशोनं क्रोशमुच्चत्वेनेति प्रमाणं द्वारादिवर्णकश्च वाच्यः । **नवरमत्र शयनीयं** वाच्यम्, **'शेषासु'** दाक्षिणात्यादिशालासु प्रत्येकमेकैकभावेन त्रयः **प्रासादावतंसकाः सिंहासनानि सपरिवाराणि च** बोद्धव्यानि, तेषां प्रमाणं च भवनवत् । तत्र खेदापनोदाय भवनेषु शयनीयानि प्रासादेषु त्वास्थानसभा इति । ननु भवनानि विषमायाम-विष्कम्भानि, पद्मद्रहादिमूलपद्मभवनादिषु तथा दर्शनात्, प्रासादास्तु समायाम-विष्कम्भाः, दीर्घवैताढ्य-कूटगतेषु वृत्तवैताढ्यगतेषु विजयादि-राजधानीगतेषु अन्येष्वपि विमानादिगतेषु च प्रासादेषु समचतुरस्रत्वेन समायाम-विष्कम्भत्वस्य सिद्धान्तसिद्धत्वात्, तत्कथमत्र प्रासादानां भवन-तुल्यप्रमाणता घटते ?, उच्यते, "**ते पासाया कोसं समूसिआ अद्धकोसवित्थिण्णा**" इत्यस्य **पूज्यश्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणोपज्ञक्षेत्रविचारगाथार्द्धस्य वृत्तौ-"ते प्रासादाः क्रोशमेकं देशोनमिति शेषः, समुच्छ्रिताः-उच्चाः क्रोशार्द्धं-अर्द्धक्रोशं विस्तीर्णाः परिपूर्णमेकं क्रोशं दीर्घा इति, श्रीमलयगिरिपादाः** तथा **जम्बूद्वीपसमासप्रकरणे "प्राच्ये शाले भवनं इतरेषु प्रासादाः मध्ये सिद्धायतनं सर्वाणि विजयार्द्धमानानी"**ति, **श्रीउमास्वातिवाचकपादाः** तथा **तपागच्छाधिराजपूज्यश्रीसोमतिलकसूरिकृतनव्यबृहत्क्षेत्रविचारसत्कायाः "पासाया सेसदिसासालासु वेअड्ढगिरिगयव्व तओ"** इत्यस्या गाथाया **अवचूर्णौ-"शेषासु तिसृषु शाखासु प्रत्येकमेकैकभावेन तत्र त्रयः प्रासादाः-आस्थानोचितानि मन्दिराणि देशोनं क्रोशमुच्चाः क्रोशार्द्धं विस्तीर्णाः पूर्णं क्रोशं दीर्घाः"** इति **श्रीगुणरत्नसूरिपादाः** यदाहुः तदाशयेन प्रस्तुतोपाङ्गस्योत्तरत्र जम्बूपरिक्षेप-कवन-वापीपरिगतप्रासादप्रमाणसूत्रानुसारेण च इत्येवं निश्चिनुमो जम्बूप्रकरणप्रासादा विषमायाम-विष्कम्भा इति । यत्तु **श्रीजीवाभिगमसूत्रवृत्तौ "क्रोशमेकमूर्ध्वमुच्चैस्त्वेन अर्द्धक्रोशं विष्कम्भेणे"** [३।६७३]त्युक्तं तद्गम्भीराशयं न विद्मः ॥१४७॥

अथास्याः पद्मवरवेदिकादिस्वरूपमाह-

जम्बू णं बारसहिं पउमवरवेइआहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता, वेइआणं वण्णओ[1] ॥ १४८ ॥

"**जंबू ण**"मित्यादि, **जम्बूर्द्वादशभिः 'पद्मवर-वेदिकाभिः'** प्राकारविशेषरूपाभिः **सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्ता, वेदिकानां वर्णकः** प्राग्वत्, इमाश्च मूलजम्बूं परिवृत्य स्थिता ज्ञातव्याः, या तु पीठपरिवेष्टिका सा तु प्रागेवोक्ता ॥१४८॥ अथास्याः प्रथमपरिक्षेपमाह-

जम्बू णं अण्णेणं अट्ठसएणं जम्बूणं तदद्धुच्चत्ताणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता, तासि णं वण्णओ[2] । ताओ णं जम्बू छहिं पउमवर-वेइआहिं संपरिक्खित्ता ॥ १४९ ॥

"**जंबू ण**"मित्यादि, **जम्बूः 'णमि'**ति वाक्यालङ्कारे **अन्येन 'अष्टशतेन'** अष्टोत्तरशतेन **जम्बूवृक्षाणां "तदर्द्धोच्चत्वानां"** तस्या मूलजम्ब्वाः अर्द्धप्रमाणमुच्चत्वं यासां तास्तथा, तासां **सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्ता,** उपलक्षणं चैतत् तेनोद्वेधायाम-विस्तारा अपि अर्द्धप्रमाणा ज्ञेयाः । तथाहि-ता अष्टाधिकशतसङ्ख्या जम्ब्वः प्रत्येकं चत्वारि योजनान्युच्चैस्त्वेन, क्रोशमेकमवगाहेन, एकं योजनमुच्चः स्कन्धः, त्रीणि योजनानि विडिमा, सर्वाग्रेणोच्चैस्त्वेन सातिरेकाणि चत्वारि योजनानि, तत्रैकैका शाखा अर्द्धक्रोशहीने द्वे योजने दीर्घा क्रोशपृथुत्वः स्कन्ध इति भवन्ति, सर्वसङ्ख्यया आयाम-विष्कम्भतश्चत्वारि योजनानि, आसु चानादृतदेवस्याभरणादि तिष्ठति । एतासां वर्णकज्ञापनायाह-"**तासि णं वण्णओ**"त्ति, तासां च वर्णको मूलजम्बूसदृश एवेति । अथासां यावत्यः पद्मवरवेदिकास्ता आह-"**ताओ ण**"मित्यादि, उत्तानार्थम् । नवरं प्रतिजम्बूवृक्षं षट् **षट् पद्मवरवेदिका** इत्यर्थः । एतासु च १०८ जम्बूषु अत्र सूत्रे **जीवाभिगमे बृहत्क्षेत्रविचारादौ** सूत्रकृद्भिः वृत्तिकृद्भिश्च जिनभवन-भवनप्रासादचिन्ता काऽपि न चक्रे, बहवोऽपि च बहुश्रुताः **श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र-चूर्णिकारादयो** मूलजम्बूवृक्षगत-तत्प्रथमवनखण्डगतकूटाष्टकजिनभवनैः सह सप्तदशोत्तरं शतं जिनभवनानां मन्यमानाः इहाप्येकैकं सिद्धायतनं पूर्वोक्तमानं मेनिरे, ततोऽत्र तत्त्वं केवलिनो विदुरिति ॥१४९॥ सम्प्रति शेषान् परिक्षेपान् वक्तुं सूत्रचतुष्टयमाह-

---

१. द्र. १।१०-११ ॥ २. द्र. जीवा. ३।६७९ ॥

जम्बूए णं सुदंसणाए उत्तरपुरत्थिमेणं[1] उत्तरेणं उत्तरपच्चत्थिमेणं एत्थ णं अणाढिअस्स देवस्स चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं[2] चत्तारि जम्बूसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ॥ १५० ॥

"**जंबूए ण**"मित्यादि, **जम्ब्वाः सुदर्शनायाः 'उत्तरपूर्वस्याम्'** ईशानकोणे **उत्तरस्याम् 'उत्तरपश्चिमायां'** वायव्यकोणे **अत्रान्तरे** दिक्त्रयेऽपीत्यर्थः, **'अनादृतनाम्नः'**-जम्बूद्वीपाधिपतेर्देवस्य **चतुर्णां सामानिकसहस्राणां चत्वारि जम्बूसहस्राणि प्रज्ञप्तानि** ॥१५०॥

तीसे णं पुरत्थिमेणं चउण्हं अग्गमहिसीणं[3] चत्तारि जम्बूओ पण्णत्ताओ-

दक्खिणपुरत्थिमे दक्खिणेण, तह अवरदक्खिणेणं च ।
अट्ठ दस बारसेव य, भवन्ति जम्बूसहस्साइं ॥१॥
अणिआहिवाण पच्चत्थिमेण, सत्तेव होंति जम्बूओ ।
सोलस साहस्सीओ, चउद्दिसिं आयरक्खाणं ॥२॥ १५१ ॥

"**तीसे ण**"मित्यादि, कण्ठ्यम् । गाथाबन्धेन पार्षद्यदेवजम्बूराह-"**दक्खिण**" इत्यादि, **'दक्षिणपौरस्त्ये'** आग्नेयकोणे **दक्षिणस्याम् 'अपरदक्षिणस्यां'** नैर्ऋतकोणे **चः** समुच्चये एतासु तिसृषु दिक्षु यथासंख्यम् **अष्ट दश द्वादश जम्बूनां सहस्राणि भवन्ति, एवो**ऽवधारणे तेन नाधिकानि न न्यूनानीत्यर्थः, **चः** प्राग्वत् । अनीकाधिपजम्बूस्तृतीयपरिक्षेपजम्बूश्च गाथाबन्धेनाह-"**अणिआहिवाण**" इत्यादि, **'अनीकाधिपानां'** गजादिकटकाधीशानां सप्तानां **सप्तैव जम्बूः पश्चिमायां भवन्ति**, द्वितीयः परिक्षेपः पूर्णः ॥ अथ तृतीयमाह-**आत्मरक्षकाणाम**नादृतदेवसामानिकचतुर्गुणानां **षोडशसहस्राणाम्**, जम्ब्वः एकैकदिक्षु चतुःसहस्र२ सद्भावात् षोडश सहस्राणि भवन्ति, यद्यपि चानयोः परिक्षेपयोर्जम्बूनामुच्चत्वादिप्रमाणं न पूर्वाचार्यैश्चिन्तितम्, तथाऽपि पद्मह्रदपद्मपरिक्षेपन्यायेन पूर्वपूर्वपरिक्षेपजम्ब्वपेक्षयोत्तरोत्तरपरिक्षेपजम्ब्वोऽर्द्धमाना ज्ञातव्याः । अत्राप्येकैकस्मिन् परिक्षेपे एकैकस्यां पङ्क्तौ क्रियमाणायां क्षेत्रसाङ्कीर्ण्येनानवकाशदोषस्तथैवोद्भावनीयस्तेन परिक्षेप-जातयस्तिस्रस्तथैव वाच्याः ॥१५१॥

---

१. **उत्तरेणं पुरत्थिमेणं दक्खिणेणं-क । उत्तरपुरत्थिमेणं उत्तरपच्चत्थिमेणं**-J2 । **उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं उत्तरपच्च० जीवा. ३।६७० ॥ २. सामाणिय देवसाहस्सीणं-कखत्रिस ॥ ३. अग्गवरम० अखब** J12 ॥

सम्प्रत्यस्या एव वनत्रयपरिक्षेपान् वक्तुमाह-

जम्बूए णं तिहिं सइएहिं वणसंडेहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता [[1] तं जहा-अब्भंतरएणं मज्झिमेणं बाहिरेणं ?] ॥ १५२ ॥

जम्बूए णं पुरत्थिमेणं पण्णासं जोअणाइं पढमं वणसंडं ओगाहित्ता, एत्थ णं भवणे पण्णत्ते-कोसं आयामेणं सो चेव [2] वण्णओ सयणिज्जं च, एवं सेसासु वि दिसासु भवणा ॥ १५३ ॥

"**जंबूए ण**"मित्यादि, सा चैवंपरिवारेति गम्यम्, **त्रिभिः 'शतिकैः'** योजनशतप्रमाणै**र्वनखण्डैः सर्वतः सम्परिक्षिप्ताः**, तद्यथा-अभ्यन्तरेण मध्यमेन बाह्येनेति । अथात्र यदस्ति तदाह-"**जंबूए ण**"मित्यादि, **जम्ब्वाः** सपरिवारायाः **पूर्वेण पञ्चाशद्योजनानि प्रथमवनखण्डमवगाह्यात्रान्तरे भवनं प्रज्ञप्तम् क्रोशमायामेन** । उच्चत्वादिकथनायातिदेशमाह-**स एव** मूलजम्बूपूर्वशाखागतभवनसम्बन्धी **वर्णको** ज्ञेयः, **शयनीयं चा**नादृतयोग्यम् । **एवं 'शेषास्वपि'** दक्षिणादिदिक्षु स्वस्वदिशि पञ्चाशद्योजनान्यवगाह्याद्ये वने **भवनानि** वाच्यानि ॥१५२-१५३॥

अथात्र वने वापीस्वरूपमाह-

जम्बूए णं उत्तरपुरत्थिमेणं पढमं वणसण्डं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता, एत्थ णं चत्तारि पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा-पउमा १ पउमप्पभा २ कुमुदा ३ कुमुदप्पभा ४ । ताओ णं कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खम्भेणं, पञ्चधणुसयाइं उव्वेहेणं [3] वण्णओ ॥ १५४ ॥

"**जंबूए णं उत्तरे**"त्यादि, **जम्ब्वाः उत्तरपौरस्त्ये** दिग्भागे **प्रथमं वनखण्डं पञ्चाशद्योजनान्यवगाह्यात्रान्तरे चतस्रः पुष्करिण्यः प्रज्ञप्ताः** । एताश्च न सूचीश्रेण्या व्यवस्थिताः, किन्तु स्वविदिग्गतप्रासादं परिक्षिप्य स्थिताः, तेन प्रादक्षिण्येन तन्नामान्येवं-**पद्मा** पूर्वस्यां **पद्मप्रभा** दक्षिणस्यां **कुमुदा** पश्चिमायां **कुमुदप्रभा** उत्तरस्याम् । एवं दक्षिणपूर्वादिविदिग्गतवापीष्वपि वाच्यम् । **ताश्च क्रोशमायामेन अर्द्धक्रोशं विष्कम्भेण पञ्चधनुःशतान्युद्वेधेनेति** ॥१५४॥

---

१. "जीवाजीवाभिगमेऽपि (३।६८१) एष पाठः उपलभ्यते-'तं जहा-अब्भंतरएणं मज्झिमेणं बाहिरेणं ।' तेन आदर्शेषु अनुपलब्धोऽपि एष पाठो युज्यते ।" इति V पृ. ४९७ टि. २ ॥ २. द्र. जीवा. ३।६७३॥ ३. द्र. जीवा. ३।२८६॥

अथात्र वापीमध्यगतप्रासादस्वरूपमाह-

तासि णं मज्झे पासायवडेंसगा[1] कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खम्भेणं, देसूणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं, वण्णओ सीहासणा सपरिवारा, एवं सेसासु विदिसासु । गाहा-

पउमा पउमप्पभा चेव, कुमुदा कुमुदप्पहा ।
उप्पलगुम्मा णलिणा, उप्पला उप्पलुज्जला ॥१॥
भिंगा भिंगप्पभा[2] चेव, अंजणा[3] कज्जलप्पभा ।
सिरिकंता सिरिमहिआ, सिरिचंदा चेव सिरिनिलया ॥२॥ १५५ ॥

"**तासि ण**"मित्यादि, '**तासां**' वापीनां चतसृणां **मध्ये प्रासादावतंसकाः प्रज्ञप्ताः**, बहुवचनं च उक्त-वक्ष्यमाणानां वापीनां प्रासादापेक्षया द्रष्टव्यम् । तेन प्रतिवापीचतुष्कमेकैक-प्रासादभावेन चत्वारः प्रासादाः, एवं निर्देशो लाघवार्थम् । **क्रोशमायामेनार्द्धक्रोशं विष्कम्भेण देशोनं क्रोशमुच्चत्वेन, वर्णको** मूलजम्बूदक्षिण-शाखागतप्रासादवद् ज्ञेयः, एषु चानादृतदेवस्य क्रीडार्थं **सिंहासनानि सपरिवाराणि** वाच्यानि, **जीवाभिगमे** त्वपरिवाराणि । एवं '**शेषासु**' दक्षिणपूर्वादिषु **विदिक्षु** वाप्यः प्रासादाश्च वक्तव्याः । एतासां नामदर्शनाय गाथाद्वयम्-**पद्मादयः** प्रागुक्ताः पुनः पद्यबन्धबद्धत्वेन सङ्गृहीता इति न पुनरुक्तिः, एताश्च सर्वा अपि सत्रिसोपान-चतुर्द्वाराः पद्मवरवेदिका-वनखण्डयुक्ताश्च बोध्याः । अथ दक्षिणपूर्वस्याम् **उत्पलगुल्मा** पूर्वस्यां **नलिना** दक्षिणस्याम् **उत्पलोज्ज्वला**, पश्चिमायाम् **उत्पला**, उत्तरस्याम् । तथा अपरदक्षिणस्यां **भृङ्गा भृङ्गप्रभा अञ्जना कज्जलप्रभा**, तथा अपरोत्तरस्यां **श्रीकान्ता श्रीमहिता श्रीचन्द्रा श्रीनिलया**, **चैवशब्दः** प्राग्वत् ॥१५५॥

अथास्य वनस्य मध्यवर्त्तीनि कूटानि स्वरूपतो लक्षयति-

जम्बूए णं पुरत्थिमिल्लस्स भवणस्स[4] उत्तरेणं, उत्तरपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स दक्खिणेणं, एत्थ णं कूडे पण्णत्ते-अट्ठ जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दो जोअणाइं उव्वेहेणं, मूले अट्ठ जोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं, बहुमज्झदेसभाए छ जोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं, उवरिं चत्तारि जोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं-

---

१. द्र. जीवा. ३।६८३-६८४ ॥ २. भिंगणिभा-कख जीवा. ३।६८७ ॥ ३. कज्जला-स ॥ ७. महं एगे कूडे-V । एगे महं-त्रि हीवृ. ॥

पणवीसट्ठारस बारसेव मूले अ मज्झि[1] उवरिं च ।
सविसेसाइँ परिरओ, कूडस्स इमस्स बोद्धव्वो ॥१॥

मूले वित्थिण्णे, मज्झे संखित्ते, उवरिं तणुए, सव्वकणगामए अच्छे वेइआवणसंडवण्णओ[2], एवं[3] सेसावि कूडा इति ॥ १५६ ॥

"**जंबूए णं**" इत्यादि, **जम्ब्वा** अस्मिन्नेव प्रथमे वनखण्डे **पौरस्त्यस्य भवनस्य उत्तरस्याम्** '**उत्तरपौरस्त्यस्य**' ईशानकोण-सत्कस्य **प्रासादावतंसकस्य दक्षिणस्याम् अत्रान्तरे कूटं प्रज्ञप्तम् अष्टौ योजनान्यूर्ध्वो-च्चत्वेन द्वे योजने उद्वेधेन**, वृत्तत्वेन य एव आयामः स एव विष्कम्भ इति । **मूलेऽष्ट-योजनान्यायाम-विष्कम्भाभ्यां** '**बहुमध्यदेशभागे**' भूमितश्चतुर्षु योजनेषु गतेष्वित्यर्थः, **षड् योजनान्यायाम-विष्कम्भाभ्याम्**, '**उपरि**' शिखरभागे **चत्वारि योजनान्यायाम-विष्कम्भाभ्याम्** । अथामीषां परिधिकथनाय पद्यमाह- "**पणवीसे**"त्यादिकं सर्वं प्रथमपाठ-गतऋषभकूटाभिलापानुसारेण वाच्यम् । नवरं **पञ्चविंशतिं** योजनानि '**सविशेषाणि**' किञ्चिदधिकानि **मूले परिरय** इत्यादि यथासङ्ख्यं योज्यम् । **जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणै**स्तु "**अट्ठसहकूडसरिसा सव्वे जम्बूणयामया भणिआ**"[बृ. क्षेत्र.स. १।२९९] इत्यस्यां गाथायामृषभकूटसमत्वेन भणितत्वात् द्वादश योजनानि अष्टौ मध्ये चेत्यूचे, तत्त्वं तु बहुश्रुतगम्यम्, एषु च प्रत्येकं जिनगृहमेकैकं विडिमागतजिनगृहतुल्यमिति । अथ शेषकूटवक्तव्यतामतिदेशेनाह-"**एवं सेसावि कूडा**" इति, '**एवम्**' उक्तरीत्या वर्णप्रमाणपरिध्याद्यपेक्षया '**शेषाण्यपि**' सप्त **कूटानि** बोध्यानि । स्थानविभागस्त्वयं तेषाम्, तथाहि-पूर्वदिग्भाविनो भवनस्य दक्षिणतो दक्षिणपूर्वदिग्भाविनः प्रासादावतंसकस्योत्तरतो द्वितीयं कूटम्, तथा दक्षिणदिग्भाविनो भवनस्य पूर्वतो दक्षिणपूर्वदिग्भाविनः प्रासादावतंसकस्य पश्चिमायां तृतीयम्, तथा दक्षिणदिग्भाविनो भवनस्य पश्चिमायां दक्षिणापरदिग्भाविनः प्रासादावतंसकस्य पूर्वतश्चतुर्थम्, तथा पश्चिम-दिग्भाविनो भवनस्य दक्षिणतो दक्षिणापरदिग्भाविनः प्रासादावतंसकस्योत्तरतः पञ्चमम्, तथा पश्चिमदिग्भाविनो भवनस्योत्तरतः उत्तरपश्चिमदिग्भाविनः प्रासादावतंसकस्य दक्षिणतः षष्ठम्, तथा उत्तरदिग्भाविनो भवनस्य पश्चिमायां उत्तरपश्चिम-दिग्भाविनः प्रासादावतंसकस्य पूर्वतः सप्तमम्, तथा उत्तरदिग्भाविनो भवनस्य पूर्वतः उत्तरपूर्वदिग्भाविनः प्रासादावतंसकस्य अपरतोऽष्टममिति, अत्रैषां स्थापना यथा यन्त्रे तथा विलोकनीया ॥१५६॥

---

१. मज्झ उवरिं-कखस । मज्झे उवरिं-त्रि । मज्झमुवरिं-V ॥ २. द्र. १।१०-१३ ॥ ३. द्र. जीवा. ३।६८९-६९८ ॥

अथ जम्ब्वा नामोत्कीर्त्तनमाह-

जम्बूए णं सुदंसणाए दुवालस णामधेज्जा पं०, तं०-

सुदंसणा १ अमोहा २ य, सुप्पबुद्धा ३ जसोहरा ४ ।

विदेहजम्बू ५ सोमणसा ६, [1]णिअया ७ णिच्चमंडिआ ८॥१॥

सुभद्दा य ९ विसाला य १०, सुजाया ११ सुमणा १२ वि आ ।

सुदंसणाए जम्बूए, णामधेज्जा दुवालस ॥२॥ १५७ ॥

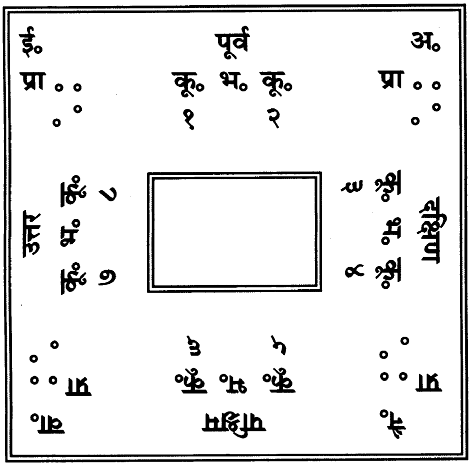

"**जंबूए ण**"-मित्यादि, **जम्ब्वाः सुदर्शनायाः द्वादश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा 'सुष्ठु'** शोभनं नयनमनसो-रानन्दकत्वेन **दर्शनं** यस्याः सा तथा, '**अमोघा**' सफला, इयं हि स्वस्वामिभावेन प्रतिपन्ना सती जम्बूद्वीपाधिपत्यं जनयति, तदन्तरेण तद्विषयस्य स्वामिभावस्यैवायोगात्, **सुष्ठु**-अतिशयेन '**प्रबुद्धा**' उत्फुल्ला उत्फुल्लफुल्लयोगा-दियम-प्युत्फुल्ला, सकल-भुवनव्यापकं यशो धरतीति **यशोधरा,"लिहादित्वादच्" [सिद्धहे. ५।१।५०]** जम्बूद्वीपो ह्यनया जम्ब्वा भुवनत्रयेऽपि विदितमहिमा, ततः सम्पन्नं यथोक्तयशोधारित्वमस्याः । विदेहेषु जम्बूः **विदेहजम्बू**र्विदेहान्तर्गतोत्तरकुरुकृतनिवासत्वात्, सौमनस्यहेतुत्वात् **सौमनस्या**, न हि तां पश्यतः कस्यापि मनो दुष्टं भवति, '**नियता**' सर्वकालमवस्थिता शाश्वतत्वात्, **नित्यमण्डिता** सदा भूषणभूषितत्वात् १॥ '**सुभद्रा**' शोभनकल्याणभाजिनी, न ह्यस्याः कदाचिदुपद्रवसम्भवो महर्द्धिकेनाश्रिततत्वात्, **चः** समुच्चये, '**विशाला**' विस्तीर्णा, **चः** पूर्ववत्, आयाम-विष्कम्भाभ्यामुच्चत्वेन चाष्टयोजनप्रमाणत्वात्, शोभनं '**जातं**' जन्म यस्याः सा **सुजाता**, विशुद्धमणिकनक-रत्नमूलद्रव्यजनिततया जन्मदोषरहितेति भावः, शोभनं मनो यस्याः सकाशाद्भवति सा **सुमनाः, अपि चेति** समुच्चये । अत्र **जीवाभिगमादिषु** विदेहजम्ब्वादीनां सुदशर्नादीनां च नाम्ना व्यत्यासेन पाठो दृश्यते, तत्रापि न कश्चिद्विरोध इति ॥१५७॥

जम्बूए [2]णं अट्ठट्ठमंगलगा० ॥ १५८ ॥

---

१. णितिया-अकखत्रिबस । तितिया-J2 ॥ २. णं उप्पिं-अब J2 ॥

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-जम्बू सुदंसणा २ ?, गोअमा ! जम्बूए णं सुदंसणाए अणाढिए णामं देवे जम्बुद्दीवाहिवई परिवसइ महिद्धीए । से णं तत्थ चउण्हं सामाणिअसाहस्सीणं जाव[1] आयरक्खदेवसाहस्सीणं जम्बुद्दीवस्स णं दीवस्स जम्बूए सुदंसणाए अणाढिआए रायहाणीए अण्णेसिं च बहूणं देवाण य देवीण य जाव[2] विहरइ, →[3]से तेणट्ठेणं गो० ! एवं वुच्चइ । अदुरुत्तरा णं च णं गोअमा ! जम्बूसुदंसणा जाव[4] भुविं च ३ धुवा णिअआ सासया अक्खया जाव अवट्ठिआ← ॥ १५९ ॥

"**जंबूए णं अट्ठट्ठमंगलगा**" इति, व्यक्तम् । उपलक्षणाद् ध्वज-च्छत्रादिसूत्राणि वाच्यानीति । सम्प्रति सुदर्शनाशब्दप्रवृत्तिनिमित्तं पिपृच्छिषुरिदमाह-"**से केणट्ठेण**"मित्यादि, प्रश्नः प्रतीतः । उत्तरसूत्रे-**गौतम ! जम्ब्वां** सुदर्शनायामनादृतो नाम जम्बूद्वीपाधिपतिः, न आदृता-आदरविषयीकृताः शेषजम्बूद्वीपगता देवा येनात्मनोऽनन्यसदृशं महर्द्धिकत्वमीक्षमाणेन सोऽनादृत इति यथार्थनामा **परिवसति, महर्द्धिक** इत्यादि प्राग्वत् । **स** च **तत्र चतुर्णां सामानिकसहस्राणां यावदात्मरक्षकसहस्राणां जम्बूद्वीपस्य [२] जम्ब्वाः सुदर्शनायाः अनादृतनाम्न्या राजधान्या अन्येषां च बहूनां देवानां देवीनां** चानादृताराजधानी-वास्तव्यानामाधिपत्यं पालयन् **यावद्विहरति, तदेतेनार्थेन एवमुच्यते**-जम्बूसुदर्शनेति । कोऽर्थः ? अनादृतदेवस्य सदृशमात्मनि महर्द्धिकत्वदर्शनमत्रकृतावासस्येति, सुष्ठु-शोभनमति-शयेन वा दर्शनं-विचारणमनन्तरोक्तस्वरूपं चिन्तनमितियावत् अनादृतदेवस्य यस्याः सकाशात् सा सुदर्शना इति । यद्यप्यनादृता राजधानीप्रश्नोत्तरसूत्रे सुदर्शनाशब्दप्रवृत्तिनिमित्तप्रश्नोत्तर-सूत्रनिगमनसूत्रान्तर्गते बहुष्वादर्शेषु दृष्टे, तथाऽपि "**से तेणट्ठेण**"मित्यादि निगमन-सूत्रमुत्तरसूत्रानन्तरमेव वाचयितृणामव्यामोहाय सूत्रपाठेऽस्माभिर्लिखितं व्याख्यातं च, उत्तर-सूत्रानन्तरं निगमनसूत्रस्यैव यौक्तिकत्वादिति । अथापरं गौतम ! यावच्छब्दाज्जम्ब्वाः सुदर्शनाया एतच्छाश्वतं नामधेयं प्रज्ञप्तम्, यन्न कदाचिन्नासीदित्यादिकं ग्राह्यम्, नाम्नः शाश्वतत्वं दर्शितम् । अथ प्रस्तुतवस्तुनः शाश्वतत्वमस्ति नवा ? इत्याशङ्कां परिहरन्नाह-"**जंबूसुदंसणा**" इत्यादि, व्याख्याऽस्य प्राग्वत् ॥१५८-१५९॥

---

१. द्र. ४।१५१ ॥ २. द्र. जीवा. ३।३५० ॥ ३. →←चिह्नद्वयमध्यवर्तिपाठः प सङ्केतितां प्रतिं शान्तिचन्द्रीयवृत्तिं च मुक्त्वा सर्वेष्वपि आदर्शेषु वृत्तिद्वयेऽपि च परवर्तिसूत्रे 'निरवसेसो' इति पदानन्तरं विद्यते ।" इति V पृ. ४९८ टि. ११ ॥ ४. द्र. १।४७ ॥

कहि णं भन्ते ! अणाढिअस्स देवस्स अणाढिआ णामं रायहाणी पण्णत्ता ?, गोअमा ! जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं जं चेव पुव्ववण्णिअं जमिगापमाणं तं चेव णेअव्वं जाव[1] उववाओ अभिसेओ अ निरवसेसो[2] ॥ १६० ॥

अथ प्रस्तावादस्य राजधानीं विवक्षुराह-"**कहि णं भन्ते ! अणाढिअस्स**" इत्यादि, गतार्थम् । नवरं यदेव **प्राग्वर्णितं यमिकाराजधानीप्रमाणं तदेव नेतव्यं यावदनादृतदेवस्योपपातोऽभिषेकश्च निरवशेषो** वक्तव्य इति शेषः ॥१६०॥

अथोत्तरकुरुनामार्थं पिपृच्छिषुरिदमाह-

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-उत्तरकुरा २ ?, गोअमा ! उत्तरकुराए उत्तरकुरू णामं देवे परिवसइ महिड्ढीए जाव[3] पलिओवमट्ठिइए । से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ-उत्तरकुरा २ । अदुत्तरं च णं ति जाव[4] सासए ॥ १६१ ॥

कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे मालवंते णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?, गो० ! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं, णीलवंतस्स[5] वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, उत्तरकुराए पुरत्थिमेणं, कच्छस्स चक्कवट्टिविजयस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं महाविदेहे वासे मालवंते णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते-उत्तरदाहिणायए पाईणपडीणवित्थिण्णे जं चेव गंधमायणस्स पमाणं विक्खम्भो अ । णवरमिमं णाणत्तं सव्ववेरुलिआमए अवसिट्ठं तं चेव जाव[6] गोअमा ! नव कूडा पण्णत्ता, तंजहा-सिद्धाययणकूडे०

सिद्धे य मालवन्ते, उत्तरकुरु कच्छसागरे रयए[7] ।
सीया य पुण्णभद्दे[8] हरिस्सहे[9] चेव बोद्धव्वे ॥१॥ १६२ ॥

१. द्र. ४।११४-१४० ॥ २. 'निरवसेसो से तेणट्ठेणं गो. एवं वुच्चइ जंबू सुदंसणा जाव भुविं च ३ धुवा णितिया सासया अक्खया अवट्ठिया । अदुत्तरं च णं गोयमा जाव पडुच्च-अकखत्रिबस पुवृ. हीवृ. J12 ॥ ३. द्र. २।२४ ॥ ४. द्र. १।४७ ॥ ५. णेलमंतस्स-अब एवमग्रेऽपि ॥ ६. द्र. ४।१०३-१०५ ॥ ७. "रुचककूटं पाठान्तरे रजतकूटं-पुवृ. ।" इति V पृ. ४९९ टि. १० ॥ ८. पुण्णणामे-अकखबस J2 । क्वचित् पूर्णनामेतिपाठः-हीवृ. ॥ ९. हरिकूडे-अकखत्रिबस J2 ॥

"से केणट्ठेण"मित्यादि, प्रतीतम् । नवरं **उत्तरकुरुनामाऽत्र देवः परिवसति, तेनेमा** उत्तरकुरव इत्यर्थः । अथ यस्मादुत्तरकुरवः पश्चिमायामुक्तास्तं माल्यवन्तं नाम द्वितीयं गजदन्ताकारगिरिं प्ररूपयति-**"कहि ण"**मित्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमम् । उत्तरसूत्रे-**गौतम ! मन्दरस्य पर्वतस्य 'उत्तरपौरस्त्यै'** ईशानकोणे **नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य दक्षिणस्यामुत्तर-कुरूणां पूर्वस्यां कच्छ**नाम्न**श्चक्रवर्त्तिविजयस्य पश्चिमायामत्रान्तरे महाविदेहेषु माल्यव-न्नाम्ना वक्षस्कारपर्वतः प्रज्ञप्त** इति शेषः, **उत्तरदक्षिणयोरायतः पूर्वपश्चिमयोर्विस्तीर्णः** । किं बहुना विस्तरेण ?, **यदेव 'गन्धमादनस्य'** पूर्वोक्तवक्षस्कारगिरेः **प्रमाणं विष्कम्भश्च** तदेव ज्ञातव्यमिति शेषः । **नवरमिदं 'नानात्वम्'** अयं विशेषः, **सर्वात्मना वैडूर्यरत्नमयः, अवशिष्टं तदेव** । कियत्पर्यन्तम् ? इत्याह-**"जाव"**त्ति, सुलभम् । नवरम् उत्तरसूत्रे उक्तमपि सिद्धायतनकूटं यत्पुनरुच्यते "सिद्धे य मालवन्ते" इति तद् गाथाबन्धेन सर्वसङ्ग्रहायेति । **सिद्धायतनकूटं 'चः'** पादपूरणे **'माल्यवत्कूटं'** प्रस्तुतवक्षस्काराधिपतिवासकूटं **'उत्तरकुरु-कूटम्'** उत्तरकुरुदेवकूटं **'कच्छकूटं'** कच्छविजयाधिपकूटं **सागर**कूटं **रजत**कूटम्, इदं चान्यत्र रुचकमिति प्रसिद्धम्, **'शीताकूटं'** शीतासरित्सुरीकूटं, पदैकदेशे पदसमुदायोपचार इति सिद्धिः, **चः** समुच्चये, पूर्णभद्रनाम्नो व्यन्तरेशस्य कूटं **पूर्णभद्र**कूटम्, हरिस्सहनाम्न उत्तरश्रेणिपतिविद्युत्कुमारेन्द्रस्य कूटं **हरिस्सह**कूटं, **चैव**शब्दः पूर्ववत् ॥१६१-१६२॥ सम्प्रत्यमीषां स्थानप्ररूपणायाह-

कहि णं भन्ते ! मालवन्ते वक्खारपव्वए सिद्धायणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?, गोअमा ! मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं, मालवंतस्स कूडस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं एत्थ णं सिद्धाययणे कूडे पण्णत्ते[1]-पंच जोअणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अवसिट्ठं तं चेव जाव[2] रायहाणी । एवं मालवन्तकूडस्स उत्तरकुरुकूडस्स कच्छकूडस्स, एए चत्तारि कूडा दिसाहिं पमाणेहि णेअव्वा[3], कूडसरिसणामया देवा ॥ १६३ ॥

"कहि ण"मित्यादि, प्रश्नः प्रतीतः । उत्तरसूत्रे **मन्दरस्य पर्वतस्य 'उत्तरपूर्वस्याम्'** ईशानकोणे प्रत्यासन्न**माल्यवत्कूटस्य दक्षिणपश्चिमायां** नैर्ऋतकोणे, **अत्र सिद्धायतनकूटं प्रज्ञप्त**मिति गम्यम् । **पञ्च योजनशतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन 'अवशिष्टं'** मूलविष्कम्भादिकं वक्तव्यं

---

१. पण्णत्ते-VJ2 नास्ति ॥ २. द्र. ४।४५-४७ ॥ ३. द्र. ४।४८-५२ ॥

'तदेव' गन्धमादनसिद्धायतनकूटवदेव वाच्यम्, **यावद्राजधानी** भणितव्या स्यात् । अयमर्थः-सिद्धायतनकूटवर्णके सामान्यतः कूटवर्णकसूत्रं विशेषतः सिद्धायतनादिवर्णकसूत्रं च द्वयमपि वाच्यम् । तत्र सिद्धायतनकूटे राजधानीसूत्रं न सङ्गच्छते इति राजधानीसूत्रं विहाय तदधस्तनसूत्रं वाच्यमिति, अत्र यावच्छब्दो न सङ्ग्राहकः, किन्त्ववधिमात्रसूचकः, यथा "**आसमुद्रक्षितीशाना**"[**रघुवंशे १।५**]मित्यत्र समुद्रं विहाय क्षितीशत्वं वर्णितमिति । लाघवार्थमत्राति-देशमाह-"**एवं मालवन्तस्स**" इत्यादि, **एवं** सिद्धायतनकूटरीत्या **माल्यवत्कूटस्य उत्तर-कुरुकूटस्य कच्छकूटस्य** वक्तव्यम्, ज्ञेयमिति गम्यम् । अथैतानि किं परस्परं स्थानादिना तुल्यानि उतातुल्यानि ? इत्याह-**'एतानि'** सिद्धायतनकूटसहितानि **चत्वारि** परस्परं **'दिग्भिः'** ईशानविदिग्रूपाभिः **प्रमाणैश्च नेतव्यानि**, तुल्यानीति शेषः । अयमर्थः-प्रथमं सिद्धायतनकूटं मेरोरुत्तरपूर्वस्या दिशि, ततस्तस्य दिशि द्वितीयं माल्यवत्कूटम्, ततस्तस्यामेव दिशि तृतीयमुत्तरकुरुकूटम्, ततोऽप्यस्यां दिशि कच्छकूटम्, एतानि चत्वार्यपि कूटानि विदिग्भावीनि मानतो हिमवत्कूटप्रमाणानीति । **कूटसदृग्नामकाश्चात्र** देवाः । अत्र "**यावत्सम्भवं विधिप्राप्ति**" [ ]रिति न्यायात् सिद्धकूटवर्जेषु त्रिषु कूटेषु कूटनामका देवा इति बोध्यम्, सिद्धायतनकूटे तु सिद्धायतनम् । अन्यथा-

> "**छसयरि कूडेसु तहा चूलाचउ वणतरूसु जिणभवणा ।**
> **भणिआ जम्बुद्दीवे सदेवया सेसठाणेसु ॥१॥**" [ ]

इति **स्वोपज्ञक्षेत्रविचारे रत्नशेखरसूरिवचोविरोधमापद्येतेति** ॥१६३॥

अथावशिष्टकूटस्वरूपमाह-

कहि णं भन्ते ! मालवन्ते सागरकूडे नामं कूडे पण्णत्ते ?, गोअमा ! कच्छकूडस्स उत्तरपुरत्थिमेणं [1]रययकूडस्स दक्खिणेणं एत्थ णं सागरकूडे णामं कूडे पण्णत्ते-पंच जोअणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, [2]अवसिट्ठं तं चेव । सुभोगा देवी रायहाणी उत्तरपुरत्थिमेणं, रययकूडे भोगमालिणी देवी, रायहाणी उत्तरपुरत्थिमेणं, अवसिट्ठा कूडा उत्तरदाहिणेणं णेअव्वा, एक्केणं पमाणेणं ॥ १६४ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमम् । उत्तरसूत्रे **कच्छकूटस्य** चतुर्थस्योत्तर**पूर्वस्यां रजतकूटस्य दक्षिणस्यामत्रान्तरे सागरकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तम्** । **पञ्चयोजन-**

१. रयणकूडस्स-अखब । रजतकूडस्स-क ॥ २. अवसिट्ठं तं चेव-अखत्रिबस नास्ति ॥

शतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन 'अवशिष्टं' मूलविष्कम्भादिकं **तदेव** । अत्र **सुभोगा**नाम्नी दिक्कुमारी **देवी** अस्या **राजधानी** मेरो**रुत्तरपूर्वस्याम्, 'रजतकूटं'** षष्ठं पूर्वस्मादुत्तरस्याम्, अत्र **भोगमालिनी** दिक्कुमारी **सुरी राजधानी उत्तरपूर्वस्याम् । 'अवशिष्टानि'** शीताकूटादीनि **उत्तरदक्षिणस्यां नेतव्यानि** । कोऽर्थः ? पूर्वस्मात् २ उत्तरोत्तरमुत्तरस्याम् २ उत्तरस्मादुत्तरस्मात्पूर्वं २ दक्षिणस्यां २ इत्यर्थः । **'एकेन'** तुल्येन **प्रमाणेन** सर्वेषामपि हिमवत्कूटप्रमाणत्वात् ॥१६४॥

अथ नवमं सहस्राङ्कमिति पृथग्निर्देष्टुमाह-

कहि णं भन्ते ! मालवन्ते हरिस्सहकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?, गोअमा ! पुण्णभद्दस्स उत्तरेणं, णीलवन्तस्स दक्खिणेणं, एत्थ णं हरिस्सहकूडे[1] णामं कूडे पण्णत्ते-एगं जोअणसहस्सं उड्ढं उच्चत्तेणं जमगपमाणेणं णेअव्वं । रायहाणी उत्तरेणं असंखेज्जदीवे अण्णंमि जम्बुद्दीवे दीवे उत्तरेणं बारस जोअणसहस्साइं[2] ओगाहित्ता एत्थ णं हरिस्सहस्स देवस्स हरिस्सहा[3] णामं रायहाणी पण्णत्ता-चउरासीइं जोअणसहस्साइं आयाम-विक्खम्भेणं, बे जोअणसयसहस्साइं पण्णट्ठिं च सहस्साइं छच्च बत्तीसे[4] जोअणसए परिक्खेवेणं । सेसं जहा चमरचञ्चाए रायहाणीए तहा पमाणं भाणिअव्वं[5], महिड्ढीए महज्जुईए ॥ १६५ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, **क्व भदन्त ! 'माल्यवति'** वक्षस्कारगिरौ **हरिस्सहकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तम् ? गौतम ! पूर्णभद्रस्योत्तरस्यां 'नीलवतः'** वर्षधरपर्वतस्य **दक्षिणस्याम् अत्रान्तरे हरिस्सहकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तम्, एकं योजनसहस्रमूर्ध्वोच्चत्वेन** अवशिष्टं **यमकगिरिप्रमाणेन नेतव्यम्** । तच्चेदम्-"अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं उव्वेहेणं, मूले एगं जोअणसहस्सं आयाम-विक्खम्भेण"मित्यादि । आह परः-५०० योजनपृथुगजदन्ते १००० योजनपृथु इदं कथं माति ? उच्यते, अनेन गजदन्तस्य ५०० योजनानि रुद्धानि ५०० योजनानि पुनर्गजदन्ताद्बहिराकाशे, ततो न कश्चिद्दोष इति । अस्य चाधिपस्यापरराजधानीतो

१. द्र. ४।११० ॥ २. ०हस्सं-अ J2 । ०हस्सा-खत्रिबस ॥ ३. हरिकंता णामं-अकखत्रिबस J2 पुवृ. हीवृ. ॥ ४. छत्तीसे-त्रिपमु । "अशुद्धं प्रतिभाति बकारस्थाने छकारो जातः लिपिप्रमादात् ।" इति V पृ. ५०० टि. ७ ॥ ५. द्र. भगवतीसूत्रे २।१२१, १३।९६॥

दिक्प्रमाणाद्यैर्विशेष इति तां विवक्षुराह-"**रायहाणी**" इत्यादि, **राजधानी उत्तरस्यामिति** । एतदेव विवृणोति-"**असंखेज्जदीवे**"त्ति पदं स्मारकम्, तेन "मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं तिरिअमसंखेज्जाइं दीव-समुद्दाइं वीईवइत्ता" इति ग्राह्यम्, **अन्यस्मिन् जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरस्यां द्वादशयोजनसहस्राण्यवगाह्य अत्रान्तरे हरिस्सहदेवस्य हरिस्सहनाम्नी राजधानी प्रज्ञप्ता-चतुरशीतियोजनसहस्राण्यायाम-विष्कम्भाभ्यां द्वे योजनलक्षे पञ्चषष्टिं च** योजन**सहस्राणि षट् च द्वात्रिंशद**धिकानि **योजनशतानि परिक्षेपेण । शेषं यथा 'चमर-चञ्चायाः'** चमरेन्द्रराजधान्याः प्रमाणं भणितं **भगवत्यङ्गे, तथा प्रमाणं** प्रासादादीनां **भणितव्यमिति । "महिड्ढीए महज्जुईए"** इति सूत्रेणास्य नामनिमित्तविषयके प्रश्न-निर्वचने सूचिते । ते चैवम्-"से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-हरिस्सहकूडे २ ?, गोअमा ! हरिस्सहकूडे बहवे उप्पलाइं पउमाइं हरिस्सहकूडसमवण्णाइं जाव हरिस्सहे णामं देवे अ इत्थ महिड्ढीए जाव परिवसइ । से तेणट्ठेणं जाव अदुत्तरं च णं गोअमा ! जाव सासए णामधेज्जे" इति ॥१६५॥

अथास्य वक्षस्कारस्य नामार्थं प्रश्नयति-

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-मालवन्ते वक्खारपव्वए २ ?, गोअमा ! मालवन्ते णं वक्खारपव्वए तत्थ तत्थ देसे तहिं २ बहवे [1]सरिआगुम्मा णोमालिआगुम्मा [2]जाव मगदन्तिआगुम्मा । ते णं गुम्मा दसद्धवण्णं [3]कुसुमं कुसुमेंति, जे णं तं मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं वायविधुअग्गसालामुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिअं करेन्ति । मालवंते अ इत्थ देवे महिड्ढीए [4]जाव पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ० । अदुत्तरं च णं [5]जाव णिच्चे ॥ १६६ ॥

"**से केणट्ठेण**"मित्यादि, प्रश्नार्थः प्राग्वत् । उत्तरसूत्रे **गौतम ! माल्यवति वक्षस्कारपर्वते तत्र तत्र 'देशे'** स्थाने **तस्मिन् तस्मिन्** 'प्रदेशे' देशैकदेशे इत्यर्थः, **बहवः सरिकागुल्मा नवमालिकागुल्माः यावन्मगदन्तिका-गुल्माः** सन्तीति शेषः । **ते गुल्माः** क्षेत्रानुभावतः सदैव **पञ्चवर्णं कुसुमं 'कुसुमयन्ति'** जनयन्ति इत्यर्थः । [6]ये गुल्मास्तं **माल्यवतो वक्षस्कारपर्वतस्य बहुसम[7]रमणीयं भूमिभागं वातविधुताग्रशालामुक्त-पुष्पपुञ्जोपचारकलितं कुर्वन्ति**, एतदर्थः प्राग्वत् । ततो 'माल्यं' पुष्पं नित्यमस्यास्तीति

---

१. खत्रिप शावृ. । सिरि० अब J12 । सरि० V । सेडि० क ॥ २. द्र. २।१० ॥ ३. कुसुमं-खत्रि हीवृ. नास्ति ॥ ४. द्र. १।२४ ॥ ५. द्र. १।४७ ॥ ६. पुके । ये-मु. ॥ ७. ०रमणिज्जं-मु. ॥

माल्यवान् **माल्यवान्नाम्ना देवश्चात्र महर्द्धिको यावत्पल्योपम-स्थितिकः,** **तेन** तद्योगादयमपि माल्यवान्, "**अथापरं चे**"त्यादि, प्राग्वत् ॥

इह द्विविधा विदेहाः, तद्यथा-पूर्वविदेहा अपरविदेहाश्च, तत्र ये मेरोः प्राक् ते पूर्वविदेहाः, ते च शीतया महानद्या दक्षिणोत्तरभागाभ्यां द्विधा विभक्ताः । एवं ये मेरोः पश्चिमायां ते अपरविदेहास्तेऽपि तथैव शीतोदया द्विधा विभक्ताः । एवं विदेहानां चत्वारो भागाः दर्शिताः । सम्प्रत्यमीषु विजयवक्षस्कारादिव्यवस्थालाघवार्थं पिण्डार्थगत्या सूत्रकृद्दर्शयिष्यमाणरीत्या बोधनीयानां दुर्बोधा इति विस्तरतो निरूप्यते । तत्रैकैकस्मिन् भागे यथायोगं माल्यवदादेर्गजदन्ताकारवक्षस्कारगिरेः समीपे एको विजयः, तथा चत्वारः सरलवक्षस्कारास्तिस्रश्चान्तर्नद्यः, एषां सप्तानां वस्तूनामन्तराणि षट् । सर्वत्राप्यन्तराणि रूपोनानि भवन्ति तथाऽत्र, प्रतीतमेतच्चतसृणामङ्गुलीनामप्यन्तरालानि त्रीणीति । ततोऽन्तरे २ एकैकसद्भावात् षड् विजयाः । एते चत्वारो वक्षस्काराद्रय एकैकान्तरनद्याऽन्तरितास्ततश्चतुर्णामद्रीणामन्तरे सम्भ-वत्यन्तरनदीत्रयमिति व्यवस्था स्वयमवसातव्या । तथा वनमुखमवधीकृत्यैको विजय इति प्रतिविभागं सिद्धा अष्टौ विजयाः चत्वारो वक्षस्कारास्तिस्त्रोऽन्तरनद्यो वनमुखं चैकमिति । इयमत्र भावना-पूर्वविदेहेषु माल्यवतो गजदन्तपर्वतस्य पूर्वतः शीताया उत्तरत एको विजयः, ततः पूर्वस्यां प्रथमो वक्षस्कारः, ततोऽपि पूर्वस्यां द्वितीयो विजयः ततोऽपि पूर्वस्यां प्रथमान्तरनदी, अनेन क्रमेण तृतीयो विजयः द्वितीयो वक्षस्कारः चतुर्थो विजयः द्वितीयान्तरनदी पञ्चमो विजयः तृतीयो वक्षस्कारः षष्ठो विजयः तृतीयान्तरनदी सप्तमो विजयः चतुर्थो वक्षस्कारः अष्टमो विजयः, ततश्चैकं वनमुखं जगत्यासन्नम् । एवं शीताया दक्षिणतोऽपि सौमनसगजदन्तपर्वतस्य पूर्वतोऽयमेव विजयादिक्रमो वाच्यः । तथा पश्चिमविदेहेषु शीतोदाया दक्षिणतो विद्युत्प्रभस्य पश्चिमतोऽप्ययमेव क्रमः । तथा शीतोदाया उत्तरतोऽपि गन्धमादनस्य पश्चिमत इति । अथ प्रादक्षिण्येन निरूपणेऽयमेव हि आद्य इति ॥१६६॥

प्रथमविभागमुखे कच्छविजयं विवक्षुराह-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे कच्छे णामं विजए पण्णत्ते ?, गोअमा ! सीआए महाणईए उत्तरेणं, णीलवंतस्स वासहर-पव्वयस्स दाहिणेणं, चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे

वासे कच्छे णामं विजए पण्णत्ते । उत्तर-दाहिणायए पाईण-पडीणवित्थिण्णे पलिअंकसंठाणसंठिए [१]गंगा-सिंधूहिं महाणईहिं वेयड्ढेण य पव्वएणं छब्भागपविभत्ते सोलस जोअणसहस्साइं पंच य बाणउए जोअणसए दोण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं दो जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तेरसुत्तरे जोअणसए किंचिविसेसूणे विक्खम्भेणं ॥ १६७ ॥

"**कहि णं भन्ते**"त्ति, **क्व भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहे वर्षे कच्छो नाम विजयः प्रज्ञप्तः ?, गौतम ! शीताया महानद्या उत्तरस्यां नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य दक्षिणस्यां चित्रकूटस्य** सरल**वक्षस्कारपर्वतस्य पश्चिमायां 'माल्यवतः'** गजदन्ताकार-**वक्षस्कारपर्वतस्य पूर्वस्याम् अत्रान्तरे महाविदेहे वर्षे कच्छो नाम** चक्रवर्त्तिविजेतव्य-भूविभागरूपो **विजयः प्रज्ञप्तः** । सर्वात्मना विजेतव्यश्चक्रवर्त्तिनामिति विजयः अनादि-प्रवाहनिपतितेयं सञ्ज्ञा तेनेदमन्वर्थमात्रदर्शनम्, न तु साक्षात्प्रवृत्तिनिमित्तोपदर्शनमिति । **उत्तर-दक्षिणाभ्यामायतः पूर्वा-ऽपरविस्तीर्णः पल्यङ्क-संस्थानसंस्थितः** आयतचतुरस्रत्वात्, **गङ्गा-सिन्धुभ्यां महानदीभ्यां वैताढ्येन च पर्वतेन षड्भागप्रविभक्तः** षट्खण्डीकृत इत्यर्थः, एवमन्येऽपि विजया भाव्याः । परं शीताया उदीच्याः कच्छादयः शीतोदाया याम्याः पक्ष्मादयो **गङ्गा-सिन्धुभ्यां** षोढा कृताः, शीताया याम्या वच्छादयः शीतोदाया उदीच्या वप्रादयो रक्ता-रक्तवतीभ्यामिति । उत्तरदक्षिणायतेति विवृणोति–**षोडश योजनसहस्राणि पञ्चयोजनशतानि द्विनवत्यधिक**ानि **द्वौ चैकोनविंशतिभागौ** [$१६५९२\frac{२}{१९}$] **योजनस्या-यामेन** । अत्रोपपत्तिर्यथा–विदेहविस्तारात् योजन ३३६८४ कला ८ रूपात् शीतायाः शीतोदाया वा विष्कम्भो योजन ५०० रूपः शोध्यते, शेषस्यार्द्धे लभ्यते यथोक्तं मानम् । इह यद्यपि शीतायाः शीतोदाया वा समुद्रप्रवेशे एव पञ्चशतयोजनप्रमाणो विष्कम्भोऽन्यत्र तु हीनो हीनतरः, तथापि कच्छादिविजयसमीपे उभयकूल[२]वर्त्तिनौ रमणप्रदेशाववधीकृत्य पञ्चयोजनशत-प्रमाणो विष्कम्भः प्राप्यत इति ।

प्राचीनप्रतीचीनेति विवृणोति–**द्वे योजनसहस्रे द्वे च योजनशते त्रयोदशोत्तरे किञ्चिदूने** । अत्राप्युपपत्तिर्यथा–इह महाविदेहेषु देवकुरूत्तरकुरु-मेरु-भद्रशालवन-वक्षस्कार-पर्वता-ऽन्तरनदी-वनमुखव्यतिरेकेणान्यत्र सर्वत्र विजयाः । ते च पूर्वा-ऽपरविस्तृतास्तुल्य-

---

१. गंगासिंधूमहा० अब J2 ॥ २. ०वर्तिनो रमणप्रदेशावधिकृत्य-मु. ॥

विस्तारा: । तत्रैकस्मिन् दक्षिणभागे उत्तरभागे वाऽष्टौ वक्षस्कारगिरय: । एकैकस्य पृथुत्वं पञ्चयोजनशतानि, सर्ववक्षस्कारपृथुत्वमीलने चत्वारि योजनसहस्राणि । अन्तरनद्यश्च षट् एकैकस्याश्चान्तरनद्या विष्कम्भ: पञ्चविंशं योजनशतम्, तत: सर्वान्तरनदीपृथुत्वमीलने जातानि सप्त शतानि पञ्चाशदधिकानि ७५० । द्वे च वनमुखे एकैकस्य वनमुखस्य पृथुत्वमेकोनत्रिंशच्छतानि द्वाविंशत्यधिकानि २९२२, उभयपृथुत्वमीलने जातानि अष्टापञ्चाशच्छतानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि ५८४४ । मेरुपृथुत्वं दशसहस्राणि १००००, पूर्वा-ऽपरभद्रशालवनयोरायामश्चतुश्चत्वारिंशत्सहस्राणि ४४००० । सर्वमीलने जातानि चतु:षष्टिसहस्राणि पञ्चशतानि चतुर्नवत्यधिकानि ६४५९४ । एतज्जम्बूद्वीपविस्तारात् शोध्यते, शोधिते च सति जातं शेषं पञ्चत्रिंशत्सहस्राणि चत्वारि शतानि षडुत्तराणि ३५४०६ । एकैकस्मिंश्च दक्षिणे उत्तरे वा भागे विजया: षोडश, तत: षोडशभिर्भागे हृते लब्धानि द्वाविंशतिशतानि किंचिदूनत्रयोदशाधिकानि २२१३, त्रयोदशस्य योजनस्य षोडशचतुर्दशभागात्मकत्वात्, एतावानेवैकैकस्य विजयस्य विष्कम्भ: ॥१६७॥

अयं च भरतवद्वैताढ्येन द्विधाकृत इति तत्र तं विवक्षुराह–

कच्छस्स णं विजयस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं वेअड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते, जे णं कच्छं[1] विजयं दुहा विभयमाणे २ चिट्ठइ, तंजहा– दाहिणड्ढकच्छं च उत्तरड्ढकच्छं च ॥ १६८ ॥

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे दाहिणड्ढकच्छे णामं विजए पं० ?, गोअमा ! वेअड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे दाहिणड्ढकच्छे णामं विजए पं०–उत्तर-दाहिणायए पाईण-पडीणवित्थिण्णे अट्ठ जोअणसहस्साइं दोण्णि अ एगसत्तरे जोअणसए एक्कं च एगूणवीसइभागं जोअणस्स आयामेणं, दो जोअणसहस्साइं[2] दोण्णि अ तेरसुत्तरे जोअणस्सए किंचिविसेसूणे विक्खम्भेणं, पलिअंकसंठाणसंठिए ॥ १६९ ॥

---

१. कच्छ० अत्रिब J2 ॥ २. खत्रिस पुवृ. हीवृ. । पलियंकसंठिए-V ॥

"**कच्छस्स ण**"मित्यादि, **कच्छस्य विजयस्य बहुमध्यदेशभागे वैताढ्यः पर्वतः प्रज्ञप्तः, यः कच्छं विजयं द्विधा विभजं**स्तिष्ठति, **तद्यथा-दक्षिणार्द्धकच्छं चोत्तरार्द्धकच्छं च,** चशब्दौ उभयोस्तुल्य-कक्षताद्योतनार्थौ । दक्षिणार्द्धकच्छं स्थानतः पृच्छन्नाह-"**कहि ण**"मित्यादि, **क्व भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहनाम्नि वर्षे दक्षिणार्द्धकच्छो नाम विजयः प्रज्ञप्तः ?, गौतम ! वैताढ्यपर्वतस्य दक्षिणस्यां शीताया महानद्या उत्तरस्यां चित्रकूटस्य वक्षस्कारपर्वतस्य पश्चिमायां माल्यवतो वक्षस्कार-पर्वतस्य पूर्वस्याम्** अत्रान्तरे **जम्बूद्वीपे द्वीपे** यावद् **दक्षिणार्द्धकच्छो नाम विजयः प्रज्ञप्तः** । उत्तरेत्यादिविशेषणद्वयं प्राग्वद् बोध्यम् । **अष्टौ योजनसहस्राणि द्वे च एकसप्तत्यु-त्तरे योजनशते एकं चैकोनविंशतिभागं** [८,२७१ $\frac{१}{१९}$] योजनस्यायामेन । एतदङ्कोत्पत्तिश्च षोडशसहस्रपञ्चशतद्विनवतियोजन-कलाद्वयरूपात् कच्छविजयमानात् पञ्चाशद्योजनप्रमाणे वैताढ्यव्यासे(ऽपनीते ततो)ऽर्द्धीकृते भवति, शेषं प्राग्वद् ॥१६८-१६९॥

अयं च कर्मभूमिरूपोऽकर्मभूमिरूपो वेति निर्णेतुमाह-

दाहिणड्ढकच्छस्स णं भन्ते ! विजयस्स केरिसए आयारभावपडोआरे पण्णत्ते ?, गोअमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, तंजहा-जाव [१]कत्तिमेहिं चेव [२]अकत्तिमेहिं चेव ॥ १७० ॥

दाहिणड्ढकच्छे णं भन्ते ! विजए मणुआणं केरिसए आयारभाव-पडोआरे पण्णत्ते ?, गोअमा ! तेसि णं मणुआणं छव्विहे संघयणे [३]जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेंति ॥ १७१ ॥

"**दाहिणद्ध**" इत्यादि, दक्षिणार्द्ध-भरतप्रकरण इवेदं निर्विशेषं व्याख्येयम् । अत्र मनुजस्वरूपं पृच्छति-"**दाहिण**" इत्यादि, कण्ठ्यम् ॥१७०-१७१॥ अथास्य सीमाकारिणं वैताढ्य इति नाम्ना प्रतीतं गिरिं स्थानतः पृच्छति-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे कच्छे विजए वेअड्ढे णामं पव्वए ?, गोअमा ! दाहिणड्ढकच्छविजयस्स उत्तरेणं, उत्तरड्ढकच्छस्स

---

१. कित्ति० अकब ॥ २. अकित्ति० अकब ॥ ३. द्र. २।१२३ ॥

दाहिणेणं, चित्तकूडस्स पच्चत्थिमेणं, मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं कच्छे विजए वेअड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते, तंजहा- पाईण-पडीणायए उदीण-दाहिणवित्थिण्णे, दुहा[1] वक्खारपव्वए पुट्ठे- पुरत्थिमिल्लाए कोडीए जाव[2] दोहि वि पुट्ठे, भरहवेअड्ढसरिसए[3] । णवरं दो बाहाओ जीवा धणुपट्ठं च ण कायव्वं, विजयविक्खम्भसरिसे आयामेणं, विक्खम्भो उच्चत्तं उव्वेहो तहच्चेव विज्जाहर-सेढीओ तहेव । णवरं पणपण्णं २ विज्जा-हरणगरावासा प० । आभिओगसेढीए उत्तरिल्लाओ सेढीओ सीआए ईसाणस्स सेसाओ सक्कस्स त्ति । कूडा-

"सिद्धे १ कच्छे २ खंडग ३, माणी ४ वेअड्ढ ५ पुण्ण ६ तिमिसगुहा ७ ।
कच्छे ८ वेसमणे वा ९, वेंअड्ढे होति कूडाइं ॥१॥' ॥ १७२ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, स्पष्टम् । नवरं **द्विधा 'वक्षस्कारपर्वतौ'** माल्यवच्चित्रकूटवक्षस्कारौ **स्पृष्टः** । इदमेव समर्थयति-**पूर्वया कोट्या यावत्**करणात् "पुरत्थिमिल्लं वक्खार-पव्वयं पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं वक्खारपव्वयं" इति बोध्यम्, तेन पौरस्त्यं वक्षस्कारं-चित्रकूटं नामानं पाश्चात्यया कोट्या पाश्चात्यं वक्षस्कारं-माल्यवन्तम् । अत एव **'द्वाभ्यां'** कोटिभ्यां **स्पृष्टः, 'भरतवैताढ्यसदृशकः'** रजतमयत्वात् रुचकसंस्थानसंस्थित-त्वाच्च । **नवरं द्वे बाहे जीवा धनुःपृष्ठं च न कर्त्तव्यम**वक्रक्षेत्रवर्त्तित्वात् । लम्बभागश्च न भरतवैताढ्यसदृश इत्याह-**'विजयस्य'** कच्छादेर्यो **'विष्कम्भः'** किंचिदूनत्रयोदशाधिक-द्वाविंशतिशतयोजनरूपस्तेन **सदृश आयामेन** । कोऽर्थः ? विजयस्य यो विष्कम्भभागः सोऽस्यायामविभाग इति । **'विष्कम्भः'** पञ्चाशद्योजनरूपः, **'उच्चत्वं'** पञ्चविंशतियोजनरूपम् **'उद्वेधः'** पञ्चविंशतिक्रोशात्मकः **'तथैव'** भरतवैताढ्यवदेवेत्यर्थः । उच्चत्वस्य प्रथमदश-योजनातिक्रमे **विद्याधरश्रेण्यौ तथैव, 'नवरम्'** इति विशेषः **पञ्चपञ्चाशत् २ विद्याधरनगरावासाः प्रज्ञप्ताः** । एकैकस्यां श्रेणौ-दक्षिणश्रेणौ उत्तरश्रेणौ वा, भरतवैताढ्ये तु दक्षिणतः पञ्चाशदुत्तरतस्तु षष्टिर्नगराणीति भेदः । **आभियोग्यश्रेणौ** तथेवेति गम्यम् । कोऽर्थः ? विद्याधरश्रेणिभ्यामूर्ध्वं दशयोजनातिक्रमे दक्षिणोत्तरभेदेन द्वे भवतः ।

---

१. अग्रेतनसूत्रपाठैः (४।१०३, १०८, १६२) सह अस्य पाठस्य कथं सङ्गतिः स्याद् इति विद्वद्भिः चिन्तनीयम् ॥ २. द्र. ४।१०८ । तत्र पौरस्त्यं चित्रकूटनामानं वक्षस्कारपर्वतं स्पृष्टः, पाश्चात्यया कोट्या पाश्चात्यं माल्यवन्तं वक्षस्कारपर्वतं स्पृष्टः-हीवृ. ॥ ३. द्र. १।२३-४७ ॥

अत्राधिकारात् सर्ववैताढ्याभियोग्यश्रेणिविशेषमाह-**उत्तर**दिक्स्था: आभियोग्य**श्रेणय: शीताया** महानद्या '**ईशानस्य**' द्वितीयकल्पेन्द्रस्य '**शेषा:**' शीतादक्षिणस्था: '**शक्रस्य**' आद्यकल्पेन्द्रस्य । किमुक्तं भवति ? शीताया उत्तरदिशि ये विजयवैताढ्यास्तेषु या आभियोग्यश्रेणयो दक्षिणगा वा उत्तरगा वा ता: सर्वा: 'इशाने'(ईशाने)न्द्रस्येति, बहुवचनं चात्र विजयवर्त्तिसर्ववैताढ्यश्रेण्यपेक्षया द्रष्टव्यम् । अथ कूटानि वक्तव्यानीति तदुद्देशमाह-"**कूडा**" इति, व्यक्तम् । अथ तन्नामान्याह-"**सिद्धे**" इत्यादि, पूर्वस्यां प्रथमं सिद्धायतनकूटम् । तत: पश्चिमदिशमवलम्ब्येमान्यष्टावपि कूटानि वाच्यानि, तद्यथा-द्वितीयं दक्षिण**कच्छार्द्ध**कूटम्, तृतीयं **खण्ड**प्रपातगुहाकूटम्, चतुर्थं **माणी**ति पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् माणिभद्रकूटम्, शेषं व्यक्तम्, परं विजयवैताढ्येषु सर्वेष्वपि द्वितीयाष्टमकूटे स्वस्वदक्षिणोत्तरार्द्धविजयसमनामके यथा द्वितीयं दक्षिणकच्छार्द्धकूटम् अष्टममुत्तरकच्छार्द्धकूटम् इतराणि भरतवैताढ्यकूटसमनामकानीति ॥१७२॥

अथोत्तरार्द्धकच्छं प्रश्नयति-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे वासे उत्तरद्धकच्छे णामं विजए पण्णत्ते ?, गोअमा ! वेयड्ढस्स पव्वयस्स उत्तरेणं, णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे[1] जाव सिज्झन्ति, तहेव णेअव्वं सव्वं[2] ॥ १७३ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, व्यक्तम् । '**तथैव**' दक्षिणार्द्धकच्छवद् **ज्ञेयं यावत्सिद्ध्यन्तीति** ॥१७३॥ अथैतदन्तर्वर्त्तिसिन्धुकुण्डं वक्तव्यमित्याह-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे उत्तरद्धकच्छे विजए सिंधुकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते ?, गोअमा ! मालवन्तस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, उसभकूडस्स पच्चत्थिमेणं, णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे, एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे उत्तरड्ढकच्छविजए सिंधुकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते-सट्ठिं जोअणाणि आयामविक्खम्भेणं[3] जाव भवणं अट्ठो रायहाणी अ णेअव्वा । भरहसिंधुकुंडसरिसं

१. द्र. ४।१६९-१७१ ॥ २. सव्वं-ख प शावृ. हीवृ नास्ति ॥ ३. द्र. ४।३७ ॥

सव्वं णेअव्वं जाव तस्स णं सिंधुकुण्डस्स दाहिणिल्लेणं तोरणेणं सिंधुमहाणई पवूढा समाणी उत्तरद्धकच्छविजयं एज्जेमाणी[1] २, सत्तहिं सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी २, अहे तिमिसगुहाए वेअड्ढपव्वयं दालयित्ता दाहिणकच्छविजयं एज्जेमाणी २, चोद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं समग्गा दाहिणेणं सीयं[2] महाणइं समप्पेइ । सिंधुमहाणई पवहे अ मूले अ भरहसिंधु-सरिसा पमाणेणं[3] जाव दोहिं वणसंडेहिं संपरिक्खित्ता ॥ १७४ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, व्यक्तम्, परं 'नितम्बः' कटकः । लाघवार्थमतिदेशमाह– "**भरतसिन्धुकुण्डसरिसं सव्वं णेअव्वं**" इत्यादि, सर्वं गतार्थम्, गङ्गागमेन व्याख्यातत्वात् ॥१७४॥ तत्रैव ऋषभकूटवक्तव्यमाह–

कहि णं भन्ते ! उत्तरद्धकच्छविजए[4] उसभकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते ?, गोअमा ! सिंधुकुंडस्स पुरत्थिमेणं, गंगाकुण्डस्स पच्चत्थिमेणं, णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे, एत्थ णं उत्तरद्धकच्छ-विजए उसहकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते-अट्ठ जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, तं चेव पमाणं जाव[5] रायहाणी, से णवरं उत्तरेणं भाणिअव्वा ॥ १७५ ॥

कहि णं भन्ते ! उत्तरद्धकच्छे विजए गंगाकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते ?, गोअमा ! चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, उसहकूडस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं, णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे, एत्थ णं उत्तरद्धकच्छे गंगाकुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते-सट्ठिं जोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं, तहेव जहा सिंधू[6] जाव वणसंडेण य संपरिक्खित्ता ॥ १७६ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, प्राग्वत् । अथ गङ्गाकुण्डप्रस्तावनार्थमाह–"**कहि ण**"मित्यादि, सिन्धुकुण्डगमो निर्विशेषः सर्वोऽपि वाच्यः, परं ततो गङ्गानदी खण्डप्रपातगुहाया अधो वैताढ्यं विभिद्य दक्षिणे भागे शीतां समुपसर्पतीति । ननु भरते नदीमुख्यत्वेन गङ्गामुपवर्ण्य

१. पज्जेमाणी-अकखत्रिबस । पाययन्ती-हीवृ. ॥ २. सिंधु णं महा० अकखबस J2 । सिंधू महा० V ॥ ३. द्र. ४।३७ ॥ ४. ०कच्छे-अकखत्रिबस । एवमग्रेऽपि ॥ ५. द्र. ४।१७४ ॥ ६. द्र. ४।१७४ ॥

सिन्धुरुपवर्णिता, इह तु सिन्धुमुपवर्ण्य सा वर्ण्यते इति कथं व्यत्ययः ?, उच्यते, इह माल्यवद्वक्षस्कारतो विजयप्ररूपणायाः प्रक्रान्तत्वेन तदासन्नत्वात् सिन्धुकुण्डस्य प्रथमं सिन्धुप्ररूपणा, ततो गङ्गाया इति ॥१७५-१७६॥

[१]से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-कच्छे विजए कच्छे विजए ?, गोअमा ! [२]कच्छे विजए वेअड्ढस्स पव्वयस्स दाहिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, गंगाए महाणईए पच्चत्थिमेणं, सिंधूए महाणईए पुरत्थिमेणं, दाहिणद्ध-कच्छविजयस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं खेमाणामं रायहाणी प० विणीआरायहाणीसरिसा भाणिअव्वा । तत्थ णं खेमाए रायहाणीए कच्छे णामं राया समुप्पज्जइ, महयाहिमवन्त जाव सव्वं भरहोअवणं भाणिअव्वं निक्खमणवज्जं, सेसं सव्वं भाणिअव्वं [३]जाव भुंजए माणुस्सए सुहे । कच्छणामधेज्जे अ कच्छे इत्थ देवे महड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिईए परिवसइ । से [४]तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ-कच्छे विजए कच्छे विजए जाव णिच्चे ॥ १७७ ॥

अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते-कच्छो विजयः कच्छो विजयः ?, गौतम ! कच्छे विजये वैताढ्यस्य दक्षिणस्यां शीताया महानद्या उत्तरस्यां गङ्गायाः महानद्याः पश्चिमायां सिन्धोर्महानद्याः पूर्वस्यां दक्षिणार्द्धकच्छविजयस्य 'बहुमध्यदेशभागे' मध्यखण्डेऽत्रान्तरे **क्षेमानाम्ना राजधानी प्रज्ञप्ता, विनीताराजधानीसदृशी भणितव्या,** विनीतावर्णकः सर्वोऽप्यत्र वाच्य इत्यर्थः । **तत्र क्षेमायां राजधान्यां कच्छो नामराजा** चक्रवर्त्ती **समुत्पद्यते** । कोऽर्थः ? यस्तत्र षट्खण्डभोक्ता समुत्पद्यते, स तत्र लोकैः 'कच्छ' इति व्यवह्रियते । अत्र वर्त्तमाननिर्देशेन सर्वदापि यथासम्भवं चक्रवर्त्त्युत्पत्तिः सूचिता, न तु भरत इव चक्रवर्त्त्युत्पत्तौ कालनियम इति । "**महयाहिमवन्ते**"त्यादिकः सर्वो ग्रन्थो वाच्यः, यावत्**सर्वं भरत**स्य क्षेत्रस्य '**ओअवणमिति**' साधनं स्वायत्तीकरणं भरतस्य चक्रिण इति शेषः, '**निष्क्रमणं**' प्रव्रज्याप्रतिपत्तिस्त**द्वर्जं भणितव्यम्**, भरतचक्रिणा सर्वविरतिर्गृहीता

---

१. कहि णं भंते ! खेमा णामं रायहाणी पण्णत्ता गोयमा ! - अब J12 ॥ २. कच्छे णं विजए णं - अकखबस J2 । कच्छे विजए णं-त्रि । ३. द्र. ३।१-२२१, २२६ ॥ ४. अत्रिब । एएणट्ठेणं-मु. । एणट्ठेणं-कखस ॥

कच्छचक्रिणस्तु तद्ग्रहणेऽनियम इति । कियत्पर्यन्तम् ? इत्याह-**यावद् भुङ्क्ते मानुष्यकानि सुखानि** । अथवा **कच्छनामधेयश्चात्र कच्छे विजये देवः पल्योपमस्थितिकः परिवसति । तेनार्थेन गौतम ! एवमुच्यते**-कच्छराजस्वामिकत्वात् कच्छदेवाधिष्ठितत्वाच्च **कच्छविजयः** २ इति, **यावन्नित्य** इत्यन्तमन्योऽन्याश्रयनिवारणार्थकं सूत्रं प्रागवदेव योजनीयमिति ॥१७७॥

गतः प्रथमो विजयः, अथ यतोऽयं पश्चिमायामुक्तम्, तं चित्रकूटं वक्षस्कारं लक्षयन्नाह-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे चित्तकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?, गोअमा ! सीआए महाणईए उत्तरेणं, णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, [1]कच्छस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं, सुकच्छस्स विजयस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे चित्तकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते-उत्तर-दाहिणायए पाईण-पडीणवित्थिण्णे सोलसजोअणसहस्साइं पञ्च य बाणउए जोअणसए दुण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं, पञ्च जोअणसयाइं विक्खम्भेणं, नीलवन्तवासहरपव्वयंतेणं चत्तारि जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, चत्तारि गाउअसयाइं उव्वेहेणं, [2]तयणंतरं च णं मायाए २ [3]उस्सेहोव्वेहपरिवुड्ढीए परिवद्धमाणे २ सीयामहाणईअंतेणं पञ्च जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, पञ्च गाउअसयाइं उव्वेहेणं, [4]आसखन्धसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे सण्हे [5]जाव पडिरूवे । उभओ [6]पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसंडेहिं संपरिक्खित्ते, [7]वण्णओ दुण्ह वि ॥ १७८ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, सुलभम् । नवरम् **आयामः षोडशसहस्त्रयोजनादिरूपो** विजयसमान एव, विजयानां विजयवक्षस्काराणां च तुल्यायामत्वात्, तेन तत्करणं प्रागवदेव । **विष्कम्भे तु पञ्च योजनशतानीति** विशेषस्तेन । ननु तानि कथम् ? इति, उच्यते, जम्बूद्वीपपरिमाणविष्कम्भात् षण्णवतिसहस्त्रेषु शोधितेषु अवशिष्टानि चत्वारि सहस्त्राणि एकस्मिन् दक्षिणभागे उत्तरे वाऽष्टौ वक्षस्कारगिरयस्ततोऽष्टभिर्विभज्यन्ते, ततः सम्पद्यते

---

१. J12 V । **कच्छवि० मु. प** ॥ २. **तयाणं०** J12 **अखब** । **तदाणं० त्रि** ॥ ३. **०परवट्ढीए-अखब** J12 ॥ ४. **आसखंधगसंठाण० अखत्रिब** J12 । **अस्सखं० मु.** ॥ ५. **द्र. १।८** ॥ ६. **पसिंस-अत्रिब** J12 ॥ ७. **द्र. १।१०-१३**॥

वक्षस्काराणां प्रत्येकं पूर्वोक्तो विष्कम्भः । इह हि विदेहेषु विजया-ऽन्तरनदी-मुखवन-मेर्वादिव्यतिरेकेणान्यत्र सर्वत्र वक्षस्कारगिरयस्ते पूर्वा-ऽपरविस्तृताः सर्वत्र तुल्यविस्तारास्त-तोऽस्य करणस्यावकाशः । तत्र विजयषोडशकपृथुत्वं पञ्चत्रिंशत्सहस्राणि चत्वारि शतानि षडुत्तराणि ३५४०६, अन्तरनदीषट्कपृथुत्वं सप्त शतानि पञ्चाशदधिकानि ७५०, मेरु-विष्कम्भपूर्वा-ऽपरभद्रशालवनाऽऽयामपरिमाणं चतुःपञ्चाशत्सहस्राणि ५४०००, मुखवनद्वय-पृथुत्वमष्टापञ्चाशच्छतानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि ५८४४, सर्वमीलने जातानि षण्णवतिसहस्राणि ९६००० इति । तथा **नीलवद्वर्षधरपर्वतसमीपे चत्वारि योजनशतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन चत्वारि गव्यूतशतानि उद्वेधेन, तदनन्तरं च 'मात्रया २'** क्रमेण २ **उत्सेधोद्वेधपरिवृद्ध्या परिवर्द्धमानः** २, यत्र यावदुच्चत्वं तत्र तच्चतुर्थभाग उद्वेध इति द्वाभ्यां प्रकाराभ्याम-धिकतरो२भवन्नित्यर्थः । **शीतामहानद्यन्ते पञ्चयोजनशतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन पञ्चगव्यूतशता-न्युद्वेधेन**, अत **एवाश्वस्कन्धसंस्थानसंस्थितः**, प्रथमतोऽतुङ्गत्वात् क्रमेणान्ते तुङ्गत्वात्, **सर्वरत्नमयः**, शेषं प्राग्वत् ॥१७८॥

अथास्य शिखरसौभाग्यमावेदयति–

चित्तकूडस्स[1] णं वक्खारपव्वयस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव आसयन्ति ॥ १७९ ॥

चित्तकूडे णं भन्ते ! वक्खारपव्वए कति कूडा पण्णत्ता ?, गोअमा ! चत्तारि कूडा[2] पण्णत्ता, तंजहा-सिद्धाययणकूडे[3] चित्तकूडे कच्छकूडे सुकच्छकूडे, समा उत्तरदाहिणेणं परुप्परं ति । पढमए[4] सीआए[5] उत्तरेणं, चउत्थए नीलवन्तस्स[6] वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, अट्ठो एत्थ णं चित्तकूडे णामं देवे महिड्ढीए जाव रायहाणी से त्ति ॥ १८० ॥

"**चित्तकूडस्स ण**"मित्यादि, व्यक्तम् । अथात्र कूट-सङ्ख्यार्थं पृच्छति-"**चित्तकूडे**" इत्यादि, पदयोजना सुलभा । भावार्थस्त्वयम्–**परस्परमे**तानि चत्वार्यपि कूटानि **उत्तर-दक्षिण**भावेन **'समानि'** तुल्यानीत्यर्थः । तथाहि–प्रथमं सिद्धाय-तनकूटं द्वितीयस्य चित्रकूटस्य दक्षिणस्यां चित्रकूटं च सिद्धायतनकूटस्योत्तरस्याम्, एवं प्राक्तनं प्राक्तनम् अग्रेतनाद् अग्रेतनाद्दक्षिणस्याम् अग्रेतनमग्रेतनं प्राक्तनात् २ उत्तरस्यां ज्ञेयम् । तर्हि शीता-नीलवतोः कस्यां दिशि इमानि ? इत्याह–**प्रथमकं शीताया उत्तरतः चतुर्थकं नीलवतो**

१. द्र. ४।२ ॥ २. समं-अखत्रिकबस J2 ॥ ३. पढमए णं-J2 । पढमं-मु. ॥ ४. J2 । अट्ठो-मु. नास्ति ॥ ५. एत्थ णं-अब J2 नास्ति ॥ ६. द्र. ४।५१-५२ ॥

वर्षधरपर्वतस्य दक्षिणत इति । सूत्रपाठोक्तक्रमबलात् द्वितीयं चित्रनामकं प्रथमादनन्तरं ज्ञेयम्, तृतीयं कच्छनामकं चतुर्थादर्वाक् ज्ञेयमिति । चित्रकूटादिषु वक्षस्कारेष्वेवं कूटनामनिवेशे पूर्वेषां सम्प्रदायः-सर्वत्राद्यं सिद्धायतनकूटं महानदीसमीपतो गण्यमानत्वाद्, द्वितीयं स्वस्ववक्षस्कारनामकम्, तृतीयं पाश्चात्यविजयनामकम्, चतुर्थं प्राच्यविजयनामकमिति । अथास्य नामार्थं प्ररूपयति-"**एत्थ ण**"मित्यादि, अत्र **चित्रकूटनामा देवः** परिवसति तद्योगाच्चित्रकूट इति नाम । अस्य **राजधानी** मेरोरुत्तरतः शीताया उत्तरदिग्भाविवक्षस्काराधिपतित्वात्, एवमग्रेतनेष्वपि वक्षस्कारेषु यथासम्भवं वाच्यमिति ॥१७९-१८०॥

गतः प्रथमो वक्षस्कारः, अधुना द्वितीयविजयप्रश्नावसरः-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सुकच्छे णामं विजए पण्णत्ते ?, गोअमा ! सीआए महाणईए उत्तरेणं, णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, गाहावईए महाणईए पच्चत्थिमेणं, चित्तकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे[1] दीवे महाविदेहे वासे सुकच्छे णामं विजए पण्णत्ते-उत्तर-दाहिणायए जहेव कच्छे विजए तहेव सुकच्छे विजए । णवरं खेमपुरा रायहाणी सुकच्छे राया समुप्पज्जइ, तहेव सव्वं ॥ १८१ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, सर्वं सुगमं कच्छतुल्यवक्तव्यत्वात् । **नवरं खेमपुरा राजधानी सुकच्छस्तत्र 'राजा'** चक्रवर्ती **समुत्पद्यते**, विजयसाधनादिकं **तथैव सर्वं** वक्तव्यमिति शेषः ॥१८१॥

उक्तः सुकच्छः, अथ प्रथमान्तरनद्यवसरः-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे वासे गाहावइकुंडे णामं कुंडे पण्णत्ते ?, गो० सुकच्छस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं, महाकच्छस्स विजयस्स पच्चत्थिमेणं, णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णितम्बे, एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे गाहावइकुंडे णामं कुण्डे पण्णत्ते, जहेव रोहिअंसाकुण्डे[2] तहेव जाव गाहावइ[3] दीवे भवणे ॥ १८२ ॥

---

१. द्र. ४।१६७-१७७ ॥ २. द्र. ४।४०-४१ ॥ ३. गाहवइदेवी भवणे-अबसपुवृ । "असौ संक्षिप्तपाठः रोहितांशकुण्डाय समर्पितोऽस्ति, तत्र 'तस्स णं रोहियंसप्पवायकुंडस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे रोहियंसदीवे णामं दीवे पण्णत्ते' इति पाठोऽस्ति तेनात्र 'गाहावइदीवे' इति पाठ एव युक्तोऽस्ति । एका भिन्ना पाठपरम्परा दृश्यते, तस्यां ग्राहावतीद्वीपस्योल्लेखो नास्ति, किन्तु 'गाहावइदेवीभवणे' एष पाठः सम्मतोऽस्ति, स च पाठान्तरत्वेन स्वीकृतः ।" इति V पृ. ५०४ टि. ७ ॥

"**कहि णं भन्ते !**" इत्यादि, **क्व भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहे वर्षे** ग्राहावत्या अन्तरनद्याः '**कुण्डं**' प्रभवस्थानं **ग्राहावती-कुण्डनाम कुण्डं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! सुकच्छस्य विजयस्य पूर्वस्यां महाकच्छस्य विजयस्य पश्चिमायां नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य दाक्षिणात्ये नितम्बे** '**अत्र**' सामीपिकेऽधिकरणे सप्तमी, तेन नितम्बसमीपे इत्यर्थः, अत्र **जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहे वर्षे ग्राहावतीकुण्डं नाम कुण्डे प्रज्ञप्तम्, यथैव रोहितांशाकुण्डं तथे**दमपि विंशत्यधिक-शतयोजनायाम-विष्कम्भमित्यादिरीत्या ज्ञेयम् । क्रियत्पर्यन्तम् ? इत्याह-**यावद् ग्राहावती द्वीपं भवनं** चेति । उपलक्षणं चैतत्, तेनार्थेन सूत्रमपि भावनीयम् । तथाहि-"से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-गाहावई दीवे गाहावई दीवे ?, गोअमा ! गाहावई दीवे णं बहूइं उप्पलाइं जाव सहस्सपत्ताइं गाहावईदीवसमप्पभाइं समवण्णाइं" इत्यादि ॥१८२॥

अथास्माद्या नदी प्रवहति तामाह-

तस्स णं गाहावइस्स कुण्डस्स दाहिणिल्लेणं तोरणेणं गाहावई महाणई पवूढा समाणी सुकच्छ-महाकच्छविजए दुहा विभयमाणी २ अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा दाहिणेणं सीअं महाणइं समप्पेइ । गाहावई णं महाणई पवहे अ मुहे अ सव्वत्थ समा पणवीसं[1] जोअणसयं विक्खम्भेणं अड्ढाइज्जाइं जोअणाइं उव्वेहेणं,[2] उभओ पासिं दोहि अ पउमवरवेइआहिं दोहि अ वणसण्डेहिं जाव दुण्ह वि वण्णओ ॥ १८३ ॥

"**तस्स ण**"मित्यादि व्यक्तम् । नवरं ग्राहाः-तन्तुनामानो जलचरा महाकायाः सन्त्यस्यामिति **ग्राहावती**, मतुब्प्रत्यये मस्य वत्वे ङीप्रत्यये रूपसिद्धिः, दीर्घत्वं चात्राकृतिगणत्वात् "**अनजिरादिबहुस्वरशरादीनां मतौ**" [**श्रीसिद्ध० अ० ३ पा० २ सू० ७८**] इत्यनेन, **महानदी प्रव्यूढा सती सुकच्छ-महाकच्छौ विजयौ द्विधा विभजन्ती २ अष्टाविंशत्या नदीसहस्रैः** '**समग्रा**' सहिता **दक्षिणेन** भागेन-मेरोर्दक्षिणदिशि **शीतां महानदीं समुपसर्पति** । अथास्य विष्कम्भादिकमाह-"**गाहावई ण**"मित्यादि, **ग्राहावती महानदी** '**प्रवहे**' ग्राहावतीकुण्डनिर्गमे '**मुखे**' शीताप्रवेशे **च** '**सर्वत्र**' मुखप्रवहयोरन्यत्रापि स्थाने '**समा**' समविस्तरोद्वेधा । एतदेव दर्शयति-**पञ्चविंशत्यधिकं योजनशतं विष्कम्भेन, अर्द्धतृतीयानि योजनान्युद्वेधेन**, सपादशतयोजनानां पञ्चाशत्तमभागे एतावत एव लाभात्,

१. पणुवीसं-अकत्रिबस J12 ॥ २. द्र. १।१०-१३ ॥

पृथुत्वं च प्राग्वत् । तथाहि–महाविदेहेषु कुरु-मेरु-भद्रशाल-विजय-वक्षस्कार-मुखवनव्यतिरेकेणान्यत्र सर्वत्रान्तरनद्यः, ताश्च पूर्वा-ऽपरविस्तृतास्तुल्यविस्तारप्रमाणास्तत एव तत्करणावकाशः । तत्र मेरुविष्कम्भपूर्वा-ऽपरभद्रशालवनायामप्रमाणं चतुःपञ्चाशत्सहस्राणि, विजय१६-पृथुत्वं पञ्चत्रिंशत्सहस्राणि चतुःशतानि षडुत्तराणि ३५,४०६, वक्षस्कार ८ पृथुत्वं चत्वारि सहस्राणि, मुखवनद्वय २ पृथुत्वं ५८४४, सर्वमीलनेन नवनवतिसहस्राणि द्वे शते पञ्चाशदधिके, एतज्जम्बूद्वीपविष्कम्भलक्षाच्छोध्यते शोधिते च जातं सप्तशतानि पञ्चाशदग्राणि ७५०, एतच्च दक्षिणे उत्तरे वा भागेऽन्तरनद्यः षट् सन्तीति षड्भिर्विभज्यते, लब्धः प्रत्येकमन्तरनदीनामुक्तो विष्कम्भ इति । आयामस्तु विजयायामप्रमाणः, विजय-वक्षस्कारा-ऽन्तरनदी-मुखवनानां समायामकत्वात् । ननु "**जावइया सलिलाओ माणुसलोगंमि सव्वंमि ॥२९॥ पणयालीस सहस्सा आयामो होइ सव्वसरिआणं**" [बृ.क्षेत्र. २३०-१] इति वचनात् कथमिदं सङ्गच्छते ?, उच्यते, इदं वचनं भरतगङ्गादिसाधारणम् । तेन यथा तत्र नदीक्षेत्रस्याल्पत्वेनानुपपत्तावुपपत्त्यर्थं कोट्टाककरणमाश्रयणीयं तथाऽत्रापि । अत्र **श्रीमलयगिरिपादाः क्षेत्रसमासवृत्तौ** "**जम्बूद्वीपाधिकारे एताश्च ग्राहावतीप्रमुखा नद्यः सर्वा अपि सर्वत्र कुण्डाद्विनिर्गमे शीता-शीतोदयोः प्रवेशे च तुल्यप्रमाणविष्कम्भोद्वेधा**" इत्युक्त्वा यत्पुन-र्धातकीखण्ड-पुष्करार्द्धाधिकारयोर्नदीनां द्वीपे द्वीपे द्विगुणविस्तारं व्याख्यानयन्तः प्रोचुः । "**यथा जम्बूद्वीपे रोहितांशा-रोहिता-सुवर्णकूला-रूप्यकूलानां ग्राहावत्यादीनां च द्वादशानामन्तरनदीनां सर्वाग्रेण षोडशानां नदीनां प्रवाह-विष्कम्भा द्वादशयोजनानि सार्द्धानि उद्वेधः क्रोशमेकम्, समुद्रप्रवेशे ग्राहावत्यादीनां च महानदीप्रवेशे विष्कम्भो योजन १२५ उद्वेधो योजन २ क्रोश २ इति**" तत्र पूर्वा-ऽपरविरोधि, यतस्तत्रैव तैः "**अत्र लघुवृत्त्यभिप्रायेण प्रवह-प्रवेशयोर्विशेषोऽभिहित**" [बृ.क्षे.वृत्ति गा. २२९] इति कथनेन समाहितम् । एवमन्योऽपि **लघुवृत्ति**-गतस्तत्राभिप्रायो दर्शितो वर्त्तते, उभयत्रापि तत्त्वं तु सर्वविदो विदन्ति । किंच–आसां सर्वत्र समविष्कम्भत्वे आगम-वद्युक्तिरप्यनुकूला । तथाहि–आसां विष्कम्भवैषम्य उभयपार्श्व-वर्तिनोर्विजययोरपि विष्कम्भ-वैषम्यं स्यादिष्यते च समविष्कम्भकत्वमिति, शेषं व्यक्तमिति ॥१८३॥ अथ तृतीयं विजयं प्रश्नयन्नाह–

कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे महाकच्छे णामं विजये पण्णत्ते ?, गोअमा ! णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, सीआए महाणईए

उत्तरेणं, पम्हकूडस्स[1] वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, गाहावईए महाणईए पुरत्थिमेणं, एत्थ णं महाविदेहे वासे महाकच्छे णामं विजए पण्णत्ते । सेसं जहा कच्छविजयस्स जाव महाकच्छे इत्थ देवे महिड्डीए, अट्ठो अ भाणिअव्वो[2] ॥ १८४ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, स्पष्टम् । नवरं **यावत्पदात्** "तत्थ णं अरिट्ठाए रायहाणीए महाकच्छे णामं राया समुप्पज्जइ, महया हिमवन्त जाव सव्वं भरहोअवणं भाणिअव्वं, णिक्खमणवज्जं सेसं भाणिअव्वं, जाव भुंजइ माणुस्सए सुहे, महाकच्छणामधेज्जे' इति ग्राह्यम् । ईदृशेनाभिलापेनार्थो महाकच्छशब्दस्य भणितव्यः ॥१८४॥ सम्प्रति ब्रह्मकूटप्रश्नः-

कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे पम्हकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?, गोअमा ! णीलवन्तस्स दक्खिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, महाकच्छस्स पुरत्थिमेणं, कच्छगावईए[3] पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं महाविदेहे वासे पम्हकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते-उत्तर-दाहिणायए पाईण-पडीणवित्थिण्णे, सेसं जहा चित्तकूडस्स जाव[4] आसयन्ति ॥ १८५ ॥

पम्हकूडे चत्तारि कूडा पं०, तं०-सिद्धायणकूडे पम्हकूडे महाकच्छकूडे कच्छावइकूडे एवं जाव[5] अट्ठो । पम्हकूडे इत्थ देवे महड्डिए पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, से तेणट्ठेणं० ॥ १८६ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, सर्वं व्यक्तम् । ब्रह्मकूटनामा द्वितीयो वक्षस्कारः चित्रकूटातिदेशेन **यावत्पदादायामसूत्रादिकं** भूमिरमणीयसूत्रान्तं च सर्वं वाच्यम् । अथात्र कूटवक्तव्यतामाह- "**ब्रह्मकूडे चत्तारि कूडा**" इत्यादि, व्यक्तम् । नवरम् 'एवं' चित्रकूटवक्षस्कारकूटन्यायेन वाच्यम् । **यावत्करणात्** समा उत्तर-दाहिणेणं परुप्परंतीत्यादि ग्राह्यम्, '**अर्थः**' ब्रह्मकूटशब्दार्थः, "से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-ब्रह्मकूडे २" इत्यालापकेन उल्लेख्यः । **ब्रह्मकूटनामा देवश्चात्र पल्योपमस्थितिकः परिवसति, तदेतेनार्थेनेति** सुगमम् ॥१८५-१८६॥ अथ चतुर्थविजयः-

---

१. बम्हकूडस्स-कखत्रिपस पुके । ब्रह्मकूट-पुवृ. प्रायः सर्वत्र ॥ २. द्र. ४।१६७-१७७ ॥ ३. कच्छावइस्स-कप । कच्छावयस्स-स । कच्छावईए-मु. ॥ ४. द्र. ४।१७८-१७९ ॥ ५. द्र. ४।१८०, ५१, ५२ ॥

कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे कच्छगावती णामं विजए पं० ?, गो० ! णीलवन्तस्स दाहिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, दहावतीए[1] महाणईए पच्चत्थिमेणं, पम्हकूडस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं महाविदेहे वासे कच्छगावती णामं विजए पं० उत्तर-दाहिणायए[2] पाईण-पडीणवित्थिण्णे । सेसं जहा कच्छस्स विजयस्स जाव कच्छगावई अ इत्थ देवे ॥ १८७ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, व्यक्तम् । परं **द्रहावत्याः** अन्तरनद्याः पश्चिमायां '**कच्छगावती-विजयः**' कच्छा एव कच्छकाः-मालुकाकच्छादयः सन्त्यस्यामतिशायिन इति "**अनजिरे**"ति सूत्रे [**श्रीसि० अ० ३ पा० २ सू० ७८**] शरादीनामाकृतिगणत्वेन सिद्धिः, शेषं प्राग्वत् ॥१८७॥

अथायमनन्तरोक्तो विजयो यस्याः पश्चिमायां तामन्तरनदीं लक्षयितुमाह-

कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे दहावई कुण्डे णामं कुण्डे पण्णत्ते ?, गोअमा ! आवत्तस्स विजयस्स पच्चत्थिमेणं, कच्छगावईए विजयस्स पुरत्थिमेणं, णीलवन्तस्स दाहिणिल्ले णितंबे, एत्थ णं महाविदेहे[3] वासे दहावईकुण्डे णामं कुण्डे पं० । सेसं जहा गाहावईकुण्डस्स जाव अट्ठो ॥ १८८ ॥

तस्स णं दहावईकुण्डस्स दाहिणेणं तोरणेणं दहावई महाणई पवूढा समाणी कच्छावई-आवत्ते[4] विजए दुहा विभयमाणी २ दाहिणेणं सीअं महाणइं समप्पेइ, सेसं जहा गाहावईए ॥ १८९ ॥

"**कहि ण**"-मित्यादि, प्रश्नसूत्रं व्यक्तम् । उत्तरसूत्रे **आवर्त्त**नाम्नः पूर्वदिग्वर्त्तिनो **विजयस्य पश्चिमायां कच्छा[च्छगा]वत्या विजयस्य पूर्वस्यां** यावद् **द्रहावतीकुण्डं नाम कुण्डं प्रज्ञप्तम्** । **शेषं यथा ग्राहावतीकुण्डस्य** स्वरूपाख्यानं ग्राहावतीद्वीपपरिमाण-भवनवर्णक-नामार्थकथनप्रमुखं तथा ज्ञेयम् । नवरं द्रहावतीद्वीपो द्रहावतीदेवीभवनं द्रहावतीप्रभपद्मादियोगाद् द्रहावतीति नामार्थः समधिगम्यः । द्रहाः-अगाधजलाशयाः सन्त्यस्यामिति द्रहावती साधनिका प्राग्वत् । अथ यथेयं महानदीं समुपैति तथाऽऽह-"**तस्स ण**"मित्यादि, उक्तप्रायम् ॥१८८-१८९॥

१. दहवतीए-अकखत्रिबस पुवृ. हीवृ J12 । एवमग्रेऽपि ॥ २. द्र. ४।१६७-१७७॥ ३. द्र. ४।१८२ ॥ ४. द्र. ४।१८३ ॥

अथ पञ्चमो विजयः-

कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे आवत्ते णामं विजए पण्णत्ते ?, गोअमा ! णीलवन्तस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं, सीआए महाणईए उत्तरेणं, णलिणकूडस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, दहावतीए महाणईए पुरत्थिमेणं, एत्थ णं महाविदेहे वासे आवत्ते णामं विजए पण्णत्ते, सेसं जहा[१] कच्छस्स विजयस्स ॥ १९० ॥

कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे णलिणकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?, गो० ! णीलवन्तस्स दाहिणेणं, सीआए उत्तरेणं, [२]मंगलावइस्स विजयस्स पच्चत्थिमेणं, आवत्तस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं महाविदेहे वासे णलिणकूडे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते-उत्तर-दाहिणायए पाईण-पडीणवित्थिण्णे । सेसं जहा चित्तकूडस्स [३]जाव आसयन्ति ॥ १९१ ॥

णलिणकूडे णं भन्ते ! कति कूडा पं० ?, गोअमा ! चत्तारि कूडा पण्णत्ता, तंजहा-सिद्धायणकूडे [४]णलिणकूडे आवत्तकूडे मंगलावत्तकूडे, एए कूडा पञ्चसइआ रायहाणीओ उत्तरेणं ॥ १९२ ॥

कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे मंगलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते ?, गोअमा ! णीलवन्तस्स दक्खिणेणं, सीआए उत्तरेणं, णलिणकूडस्स पुरत्थिमेणं, पंकावईए पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं मंगलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते । जहा कच्छस्स विजए तहा एसो भाणियव्वो [५]जाव मंगलावत्ते अ इत्थ देवे परिवसइ, से एएणट्ठेणं० ॥ १९३ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, व्यक्तम् । अथ तृतीयो वक्षस्कारः-"**कहि ण**"मित्यादि, सूत्रद्वयमपि व्यक्तम् । नवरं द्वितीयसूत्रे **कूटानि 'पञ्चशतिकानि'** पञ्चशत-प्रमाणानीति । अथ षष्ठो विजयः-"**कहि ण**"मित्यादि, स्पष्टम् । **'पङ्कवत्याः'** तृतीयान्तरनद्या इति ॥१९०-१९३॥

---

१. द्र. ४।१६७-१७७ ॥ २. जंगला० अब J12 । एवमग्रेऽपि ॥ ३. द्र. ४।१७८-१७९ ॥ ४. णलिणि० अकखबस J2 ॥ ५. द्र. ४।१६७-१७७ ॥

अथ तृतीयान्तरनद्यवसरः-

कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे [१]पंकाव[२]ई कुंडे णामं कुण्डे पण्णत्ते ?, गोअमा ! मंगलावत्तस्स पुरत्थिमेणं पुक्खलविजयस्स पच्चत्थिमेणं, णीलवन्तस्स दाहिणे णितंबे एत्थ णं [३]पंकावई जाव कुण्डे पण्णत्ते । [४]तं चेव गाहावइकुण्डप्पमाणं जाव मंगलावत्त-[५]पुक्खलविजये दुहा विभयमाणी २ अवसेसं तं [६]चेव जं चेव गाहावईए ॥ १९४-१९५ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, प्रायः प्राग्वत् । नवरं पङ्कोऽतिशयेना-स्त्यस्यामिति **पङ्कावती** प्राग्वद्रूपसिद्धिः ॥१९४-१९५॥ अथ सप्तमविजयावसरः-

कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे [७]पुक्खलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते ?, गोअमा ! णीलवन्तस्स दाहिणेणं, सीआए उत्तरेणं, पंकावईए पुरत्थिमेणं, [८]एगसेलस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं [९]पुक्खलावत्ते णामं विजए पण्णत्ते । जहा कच्छविजए तहा भाणिअव्वं [१०]जाव पुक्खले अ इत्थ देवे महिड्डिए पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से एएणट्ठेणं० ॥ १९६ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि व्यक्तम् ॥१९६॥ अथ चतुर्थवक्षस्कारः-

कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे एगसेले णामं वक्खारपव्वए पं० ?, गो० ! [११]पुक्खलावत्तचक्कवट्टिविजयस्स पुरत्थिमेणं, पोक्खलावतीचक्कवट्टिविजयस्स पच्चत्थिमेणं, णीलवन्तस्स दक्खिणेणं, सीआए उत्तरेणं, एत्थ णं एगसेले णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते । चित्तकूडगमेणं णेअव्वो [१२]जाव देवा आसयन्ति ॥ १९७ ॥

चत्तारि कूडा, तं०-सिद्धायणकूडे एगसेलकूडे [१३]पुक्खलावत्तकूडे पुक्खलावई कूडे । कूडाणं तं चेव [१४]पञ्चसइअं परिमाणं जाव एगसेले अ देवे महिड्डीए ॥ १९८ ॥

---

१. पंक० अकब J12 । एवमग्रेऽपि । ग्रन्थान्तरे वेगवतीत्यस्यानाम पठ्यते-इति पुवृ. ॥ २. पोक्खलावइस्स-अब J12 । पुक्खलावइस्स-कख ॥ ३. पंकावइ पण्णत्ते-अकखत्रिबस ॥ ४. द्र. ४।१८२ ॥ ५. J12 पुके V । ०पुक्खलावत्तवि० मु. ॥ ६. द्र. ४।१८३ ॥ ७-९. पुक्खले णामं-J12 पुके V ॥ ८. एगसेलगस्स-अब J12 ॥ १०. द्र. ४।१६७-१७७ ॥ ११. पुक्खलचक्क० V । पोक्खलावइ० अब । पुक्खलावइ० कख ॥ १२. द्र. ४।१७८-१७९ ॥ १३. पुक्खलकूडे-V J2 ॥ १४. द्र. ४।१८० ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, सर्वं स्पष्टम् । नवरं '**पुष्कलावर्त्तः**' सप्तमो विजयः स एव चक्रवर्त्तिविजेतव्यत्वेन **चक्रवर्त्तिविजय** इत्युच्यते, एवं **पुष्कलावती-चक्रवर्तिविजयोऽपि** बोध्यः ॥१९७-१९८॥

सम्प्रत्यष्टमो विजयः-

कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे पुक्खलावई णामं चक्कवट्टिविजए पण्णत्ते ?, गोअमा !, णीलवन्तस्स दक्खिणेणं, सीआए उत्तरेणं, उत्तरिल्लस्स सीआमुहवणस्स पच्चत्थिमेणं, एगसेलस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं महाविदेहे वासे पुक्खलावई णामं विजए पण्णत्ते । उत्तर-दाहिणायए, एवं जहा कच्छविजयस्स जाव[1] पुक्खलावई अ इत्थ देवे परिवसइ, एएणट्ठेणं० ॥ १९९ ॥

"**कहि णं भन्ते ! महाविदेहे**" इत्यादि, प्रकटार्थम् । नवरम् **औत्तराहस्य शीतामहानद्या** '**मुखवनस्य**' अनन्तरसूत्रे वक्ष्यमाणस्वरूपस्य शीतामहानदी-नीलवद्वर्षधरमध्यवर्त्तिमुखवनस्य **पश्चिमायामित्यर्थः**, दाक्षिणात्याच्छीतामुखवनादयं वायव्यां स्यादिति औत्तराहग्रहणमिति ॥१९९॥

अथानन्तरमेवोक्तं शीतामुखवनं लक्षयन्नाह-

कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे सीआए महाणईए उत्तरिल्ले सीआमुहवणे णामं वणे पं० ?, गोअमा ! णीलवन्तस्स दक्खिणेणं, सीआए उत्तरेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पुक्खलावइचक्कवट्टिविजयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं सीआमुहवणे णामं वणे पण्णत्ते-उत्तर-दाहिणायए पाईण-पडीणविच्छिण्णे सोलसजोअणसहस्साइं पञ्च य बाणउए जोअणसए दोण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स आयामेणं, सीआए[2] महाणईए अन्तेणं दो जोअणसहस्साइं नव य बावीसे[3] जोअणसए विक्खम्भेणं, तयणंतरं च णं मायाए २ परिहायमाणे २ णीलवन्तवासहरपव्वयंतेणं एगं एगूणवीसइभागं जोअणस्स विक्खम्भेणं । से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसण्डेणं संपरिक्खित्तं, वण्णओ[4] सीआमुहवणस्स जाव देवा

१. द्र. ४।१६७-१७७ ॥ २. सीयं महा० अकखत्रिबस J2 । सीयामहाणइंतेणं-V ॥ ३. तेवीसे-अकखत्रिबस पुवृ. हीवृ. J2 पुके । अत्र तेवीसे इति पाठोऽशुद्धः इति वृत्तौ ॥ ४. द्र. १।१३ ॥

आसयन्ति, एवं उत्तरिल्लं पासं समत्तं । विजया भणिआ । रायहाणीओ इमाओ-

खेमा १ खेमपुरा २ चेव, रिट्ठा ३ रिट्ठपुरा ४ तहा ।
खग्गी ५ मंजूसा ६ अवि अ, ओसही ७ पुंडरीगिणी ८॥१॥

[सोलस विज्जाहरसेढीओ] तावइआओ अभिओगसेढीओ सव्वाओ इमाओ ईसाणस्स, सव्वेसु विजएसु कच्छवत्तव्वया जाव अट्ठो रायाणो सरिसणामगा विजएसु, सोलसण्हं[1] वक्खारपव्वयाणं चित्तकूडवत्तव्वया जाव कूडा चत्तारि २, बारसण्हं णईणं गाहावइवत्तव्वया जाव उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं वणसण्डेहि अ वण्णओ ॥ २०० ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, क्व **भदन्त ! महाविदेहे वर्षे शीताया महानद्या** उत्तरदिग्वर्त्ति-शीतायाः मुखे-समुद्रप्रवेशे वनं **शीतामुखवनं नाम वनं प्रज्ञप्तम्** ?, अत्र शीतामुखेत्यनेन शीतोदावनमुखद्वयं उत्तरेत्यनेन च दाक्षिणात्यं शीतामुखवनं निरस्तम् । तथाहि-चत्वारि मुखवनानि-एकं शीता-नीलवतोर्मध्ये १ द्वितीयं शीता-निषधयोः २ तृतीयं शीतोदा-निषधयोः ३ चतुर्थं शीतोदा-नीलवतोः ४, एषां मध्ये आद्यस्यैव शीतात उत्तरेण दर्शनात् । **गौतम ! नीलवतो दक्षिणस्यां शीताया उत्तरस्यां पौरस्त्यलवणसमुद्रस्य पश्चिमायां पुष्कलावती-चक्रवर्त्तिविजयस्य पूर्वस्याम् अत्रान्तरे शीतामुखवनं नाम वनं प्रज्ञप्तम्-उत्तर-दक्षिणायते**त्यादिविशेषणानि विजयवद्वाच्यानि । इह विजय-वक्षस्कार-गिर्यन्तरनद्यः सर्वत्र तुल्यविस्ताराः, वनमुखानि तु निषधसमीपे नीलवत्समीपे चाल्प-विष्कम्भानि, शीता-शीतोदोभयकूलपार्श्वे तु पृथुविष्कम्भानि जगत्यनुरोधात् । तथाहि-पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि निषधान्नीलवतो वाऽऽरभ्य जगती वक्रगत्या शीतां शीतोदां वा प्राप्ता, जगतीसंस्पर्शवर्त्तीनि च मुखवनानि । ततस्तदनुरोधाद् दर्शयति-**शीतामहानद्यन्ते द्वे योजनसहस्रे नव च द्वाविंशत्यधिकानि योजनशतानि [२,९२२] विष्कम्भेन**, अत्रोपपत्तिः प्राग्वत् । विजय-वक्षस्काराद्यन्तरनदी-मेरुपृथुत्व-पूर्वा-ऽपरभद्रशालवनायाममीलने जातानि ९४१५६ । अस्य राशेर्जम्बूद्वीपपरिमाणात् शोधने शेषं ५८४४ । अस्य शीता-शीतोदयोरेकस्मिन् दक्षिणे उत्तरे वा भागे द्वे मुखवने इति द्वाभ्यां भागे हृते आगतानि द्वाविंशत्यधिकान्येकोनत्रिंशद्योजनशतानि २९२२ ।

---

१. सोलस वक्खारपव्वया-पुवृ J2 । सोलसण्हं वक्खारपव्वयाणं-पुवृपा. ॥

अत्र च तेवीसे इति पाठोऽशुद्धः । एतच्च पृथुत्वपरिमाणं न सर्वत्र शीता-शीतोद-योर्मुखप्रत्यासत्तावेतत्करणावकाशादत्रैव महाविदेहवर्षस्य सर्वोत्कृष्टविस्तारलाभादित्याह- **तदनन्तरं च 'मात्रया २'** अंशेनांशेन **'परिहीयमाण २'** हानिमुपगच्छद् **नीलवद्वर्षधर-पर्वतान्ते एकमेकोनविंशतिभागं योजनस्य विष्कम्भेण**, एकां कलां यावत्पृथुत्वेनेत्यर्थः, **"कालाध्वनोर्व्याप्तौ"** [श्रीसिद्ध० अ० २ पा० २ सू० ४२] इत्यनेन द्वितीया ।

अत्र करणं-मुखवनानां सर्वलघुर्विष्कम्भो वर्षधरपार्श्वे ततो वर्षधरजीवात इदं करणं समुत्तिष्ठति । तथाहि-प्रस्तुते नीलवज्जीवा चतुर्नवतिसहस्राणि शतमेकं षट्पञ्चाशदधिकं योजनानां द्वे चैकोनविंशतिभागरूपे कले योजनस्य ९४१५६ कला २, अथ पूर्वोक्तानि विजय १६ वक्षस्कारः ८ अन्तरनदी ६ गन्धमादन १ माल्यवत् १ गजदन्तपृथुत्वोत्तरकुरुजीवा-परिमाणान्येकत्र मील्यन्ते । जातानि चतुर्नवतिसहस्राणि शतमेकं षट्पञ्चाशदधिकं ९४१५६ । एतस्मिन् प्रागुक्ताज्जीवापरिमाणाच्छोधिते शेषं द्वे कले तत् एकस्मिन् दक्षिणे उत्तरे वा भागे शीता-शीतोदासत्के द्वे वने इति द्वाभ्यां भज्यते आगतैका कला इति । ननु विजय-वक्षस्कारादीनां सर्वत्र तुल्यविस्तारकत्वेन वनमुखानां च वर्षधरसमीपे एककलामात्र-विष्कम्भकत्वेन सप्तदशकलाधिकैकोनत्रिंशद्योजनशतप्रमाणः शेषजम्बूद्वीपक्षेत्र-विभागः कुत्रान्तर्भावनीयः ?, उच्यते, अत्र जगत्या वृत्तत्वेन सङ्कीर्णभूतत्वात् समाधेयम् ।

अयमर्थः-पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि निषधान्नीलवतो वा आरभ्य जगती वक्रगत्या शीता-शीतोदे प्राप्ता, जगतीसंस्पर्शवर्त्तीनि च वनमुखानि ततस्तदनुरोधात् वर्षधरसमीपे तेषां स्तोको विष्कम्भः, शीता-शीतोदासमीपे तु भूयानिति, एषामिष्टस्थाने विष्कम्भपरिज्ञानाय सूत्रेऽनुक्तमपि प्रसङ्गत्या करणमुच्यते-अतिक्रान्तं योजनादिकं गुरुपृथुत्वेन २९२२ इत्येवंरूपेण गुण्यते, गुणितश्च योजनराशिः कलीकरणार्थमेकोनविंशत्या गुण्यते । तन्मध्ये च गुरुपृथुत्वगुणितः कलाराशिः प्रक्षिप्यते । ततः कलीकृतेन वनायामपरिमाणराशिना ह्रियते, ततो लभ्यते इष्टस्थाने वनमुखविष्कम्भः । यथा यथा निषधान्नीलवतो वा षोडशसहस्राणि पञ्च शतानि द्विनवत्यधिकानि योजनानां द्वे च कले इत्येतावद् गत्वा विष्कम्भो ज्ञातुमिष्टः तेनैष राशिर्ध्रियते १६५९२ कला २, धृत्वा च एकोनत्रिंशच्छतैर्द्वाविंशत्यधिकैर्गुण्यते । जातो योजनराशिः ४८४८१८२४, कलाद्वयमपि २९२२ अनेनैव गुण्यते जातः कलाराशिः ५८४४ । ततो योजनराशौ ४८४८१८२४ सवर्णिते जातं ९२११५४६५६, ततः कलाराशिः ५८४४ क्षेपे जातं ९२११६०५०० । ततोऽस्य मुखवनायामेन १६५९२ सवर्णितेन कलाद्वययुक्तेन ३१५२५० भागे

हृते लब्ध इष्टस्थाने २९२२ योजनरूपो विष्कम्भः, एवमन्यत्रापि भावनीयम् । अथास्य पद्मवरवेदिकादिवर्णनायाह-(२००-B)"**से णं एगाए पउ०**" इत्यादि, 'तद्' मुखवन**मेकया पद्मवरवेदिकया एकेन च वनखण्डेन सम्परिक्षिप्तम्** । अथ शीतामुखवनस्य **वर्णको** वाच्यः-"किण्हे किण्होभासे" इत्यादि । कः कियत्पर्यन्तम् ? इत्याह-**यावद्देवता आसते** शेरते इत्यादि । अत्र विजयदिशि पद्मवरवेदिका गोपिका, लवणदिशि तु जगत्येव गोपिका इत्येका, इयं च पद्मवरवेदिकां जगतीवन्मुखवनव्यास एवान्तर्लीना । यत्र तु वनव्यासः कलाप्रमाणस्तत्र विजयव्यासं रुणद्धीति तात्पर्यम्, अन्यथा विजयादिभिर्जम्बूद्वीपस्य परिपूर्णलक्षपूर्ताविुभयतो जगत्यादेः क्वावकाशः स्यात् । अत एवाह-

"[1]**अविवक्खिऊण जगइं, सवेइवणमुहचउक्कपिहुलत्तं ।**
गुणतीससयदुवीसं णइंति, गिरिअंति एगकला ॥१॥" [ ] इति ।

अथोपसंहारमाह-"**एवं उत्तरिल्लं**" इत्यादि, '**एवं**' विजयादिकथनेन उत्तरदिग्वर्त्ति **पार्श्वं समाप्तम्**, प्राच्यमिति शेषः । प्राक् चतुर्विभागतयोद्दिष्टस्य विदेहक्षेत्रस्य प्राच्योत्तरपार्श्वं विजयादिकथनापेक्षया पूर्णं निर्दिष्टमित्यर्थः । अथ प्रतिविजयमेकैकां राजधानीं निर्दिशन्नाह-"**विजया**" इत्यादि, **विजया भणिताः** । अत्र च भणितानामपि विजयानां यत्पुनर्भणनमुक्तं तद्राजधानीनिरूपणार्थम् ।(२००-C) **राजधान्यश्चेमाः** पद्यबन्धेन सङ्गृह्णाति, कच्छविजयतः क्रमेण नामतो ज्ञेयाः । **क्षेमा १ क्षेमपुरा २ अरिष्ठा ३ अरिष्ठपुरा ४ तथा खड्गी ५ मञ्जूषा ६ अपि चे**ति समुच्चये, **औषधी ७ पुण्डरीकिणी ८** इति । एताः शीताया औदीच्यानां विजयानां दक्षिणार्द्धमध्यमखण्डेषु वेदितव्याः । अथैषु श्रेणिस्वरूपमाह-"**सोलस विज्जाहरसेढीओ**" इत्यादि, उक्तेष्वष्टसु विजयेषु षोडश विद्याधरश्रेणयो वाच्याः, प्रतिवैताढ्यं श्रेणिद्वयद्वय-सम्भवात् । आसु च विद्याधरश्रेणिषु प्रत्येकं दक्षिणोत्तरपार्श्वयोः पञ्चपञ्चाशन्नगराणि वाच्यानि, उभयत्रापि वैताढ्यस्य समभूमिकत्वात् । **तावत्य आभियोग्यश्रेण्यो** वाच्याः षोडश इत्यर्थः, **सर्वाश्च 'इमाः'** अभियोग्यश्रेणय **ईशानेन्द्रस्य** मेरुत उत्तरदिग्वर्त्तित्वात् । अत्र च विद्याधरश्रेणिसूत्रम् आदर्शान्तरेष्वदृष्टमपि प्रस्तावादाभियोग्यश्रेणिसङ्गत्यनुपपत्तेश्च प्राकृतशैल्या संस्कृत्य मया लिखितमस्तीति बहुश्रुतैर्मयि सूत्राशातना न चिन्तनीयेति । उत्तरत्रापि सूत्रकारेण सङ्ग्रहगाथायामाभियोग्य-

१. एकोनत्रिंशच्छतानि द्वाविंशत्यधिकानि नदीपार्श्वे गिरिपार्श्वे एका कला ॥१॥ अविवक्षित्वा जगतीं सवेदिकावनमुखचतुष्कपृथुत्वं ।

श्रेणिसङ्ग्रहो विद्याधरश्रेणिसङ्ग्रहपूर्वकमेव वक्ष्यते । अथ शेष-विजयवक्षस्कारादीनां स्वरूपप्ररूपणाय लाघवाशयेनातिदेशसूत्रमाह-"**सव्वेसु**" इत्यादि, **सर्वेषु विजयेषु कच्छवक्तव्यता** ज्ञेया । यावद् '**अर्थः**' विजयानां नाम निरुक्तम् । तथा **विजयेषु** विजय**सदृशनामका राजानो** ज्ञेयाः । तथा **षोडशवक्षस्कारपर्वतानां चित्रकूट-वक्तव्यता** ज्ञेया **यावच्चत्वारि २ कूटानि** व्यावर्णितानि भवन्ति । तथा **द्वादशानां 'नदीनाम्'** अन्तरनदीनामित्यर्थः, **ग्राहावतीवक्तव्यता** ज्ञेया **यावदुभयोः पार्श्वयोर्द्वाभ्यां पद्मवरवेदिकाभ्यां द्वाभ्यां वनखण्डाभ्यां च** सम्परिक्षिप्ता **वर्णक**श्चेति ॥२००॥

अथ द्वितीयं विदेहविभागं निर्देष्टुमाह-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सीआए महाणईए दाहिणिल्ले सीयामुहवणे णामं वणे पण्णत्ते ?[1], एवं जह चेव उत्तरिल्लं सीआमुहवणं तह चेव दाहिणं पि भाणिअव्वं । णवरं णिसहस्स वासहर-पव्वयस्स उत्तरेणं, सीआए महाणईए दाहिणेणं, पुरत्थिमलवण-समुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, वच्छस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सीआए महाणईए दाहिणिल्ले सीआमुहवणे णामं वणे पं० उत्तर-दाहिणायए तहेव सव्वं । णवरं णिसहवासहरपव्वयंतेणं[2] एगमेगूण-वीसइभागं जोअणस्स विक्खम्भेणं, किण्हे किण्होभासे जाव महया गन्धद्धाणिं मुअंते[3] जाव आसयन्ति, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइआहिं वणव्वण्णओ ॥ २०१ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, **क्व भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहे वर्षे शीतामहानद्या दाक्षिणात्यं शीतामुखवनं** शीतानिषधमध्यवर्त्तीत्यर्थः अतिदेशसूत्रत्वेनोत्तरसूत्रं स्वयं भाव्यम्, परं '**वच्छस्य विजयस्य**' विदेहद्वितीयभागाद्यविजयस्य **पूर्वत** इति ॥२०१॥

अथ द्वितीये महाविदेहविभागे विजयादिव्यवस्थामाह-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे वच्छे णामं विजए पण्णत्ते ?, गोअमा ! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, सीआए महाणईए

---

१. द्र. ४।२०० ॥ २. कखत्रि पस । जाव महया गंधद्धाणिं मुयंते-V J12 नास्ति ॥ ३. द्र. १।१३ ॥

दाहिणेणं, दाहिणिल्लस्स सीआमुहवणस्स पच्चत्थिमेणं, तिउडस्स वक्खार-पव्वयस्स पुरत्थिमेणं,[1] एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे वच्छे णामं विजए पण्णत्ते । तं चेव पमाणं सुसीमा रायहाणी १, तिउडे वक्खारपव्वए । सुवच्छे विजए कुण्डला रायहाणी २, तत्तजला णई, महावच्छे विजए अपराजिआ रायहाणी ३, वेसमणकूडे वक्खारपव्वए । वच्छावई विजए पभंकरा रायहाणी ४, मत्तजला णई । रम्मे विजए अंकावई रायहाणी ५, अंजणे वक्खारपव्वए । रम्मगे विजए पम्हावई रायहाणी ६, उम्मत्तजला महाणई । रमणिज्जे विजए सुभा रायहाणी ७, मायंजणे[2] वक्खारपव्वए । मंगलावई विजए रयणसंचया रायहाणी ८ ॥२०२-A॥

"**कहि ण**"मित्यादि, प्रश्नः सुलभः । उत्तरसूत्रे **निषधस्य वर्षधरपर्वतस्योत्तरस्यां शीताया महानद्या दक्षिणस्यां दाक्षिणात्यस्य शीतामुखवनस्य पश्चिमतः त्रिकूटस्य वक्षस्कारपर्वतस्य पूर्वस्याम् अत्रान्तरे जम्बूद्वीपे महाविदेहे वर्षे वत्सो विजयः प्रज्ञप्तः, सुसीमा राजधानी** १, विजय-विभाजकश्च **त्रिकूटनामा वक्षस्कारपर्वतः सुवत्सो विजयः कुण्डला राजधानी २, तप्तजला-ऽन्तरनदी महावत्सो विजयः अपराजिता राजधानी ३, वैश्रमणकूटो नाम वक्षस्काराद्रिः वत्सावती विजयः प्रभङ्करा राजधानी ४, मत्तजला नदी, रम्यो विजयः अङ्कावती राजधानी ५, अञ्जनो वक्षस्कारः रम्यको विजयः पक्ष्मावती राजपूः ६ उन्मत्तजला महानदी रमणीयो विजयः शुभा राजपूः ७, मातञ्जनो वक्षस्काराद्रिः मङ्गलावती विजयः रत्नसञ्चया नगरी ८**, सुलभसूत्रे शब्दसंस्कार एव विवरणमिति, इमाश्च राजधान्यः शीतादक्षिणदिग्भाविराजधानीत्वेन विजयानामुत्तरार्द्धमध्यमखण्डेषु ज्ञेयाः ॥२०२-A॥

अथ विजयादीनां व्यासादिसाम्ये दर्शितेऽपि केनचित्प्रकारेण न पार्श्वयोः परस्परं भेदो भविष्यतीत्याशङ्कानिवृत्त्यर्थमाह-

एवं जह चेव सीआए महाणईए उत्तरं पासं तह चेव दक्खिणिल्लं[3] भाणिअव्वं, दाहिणिल्लसीआमुहवणाइ । इमे वक्खारकूडा तं०-तिउडे[4] १ वेसमणकूडे २ अंजणे ३ मायंजणे ४, (णईओ तत्तजला १ मत्तजला २ उम्मत्तजला ३) । विजया तं०-

---

१. द्र. ४।१६७-१७७ ॥ २. अंजणे-अब J12 ॥ ३. दक्खिणं-अकखत्रिबस J12 ॥ ४. तिउडकूडे-अब J2 । तिउडे कूडे-कखत्रि ॥

वच्छे सुवच्छे महावच्छे, चउत्थे[५] वच्छगावई ।
रम्मे रम्मए चेव, रमणिज्जे मंगलावई ॥१॥

रायहाणीओ, तंजहा-

सुसीमा कुण्डला चेव, अवराइअ पहंकरा ।
अंकावई पम्हावई, सुभा रयणसंचया ॥२॥२०२-B॥

"**एवं जह**" इत्यादि, '**एवं**' प्रागुक्तप्रकारेण **यथैव शीताया महानद्या उत्तरं पार्श्वं** प्राच्यमिति शेषः **तथैव दाक्षिणात्यं** पार्श्वमिति शेषः **भणितव्यम्**, अत्र विशेषणद्वारेण सङ्ग्रहमाह, किंविशिष्टमिदं पार्श्वम् ? दाक्षिणात्यशीतामुखवनमादौ यत्र तद् **दाक्षिणात्यशीता-मुखवनादि**, अनेन यथा प्रथमविभागस्य कच्छविजय आदिरुक्तस्तथा द्वितीयविभागस्य दाक्षिणात्यशीतामुखवनमादिरुक्तमिति । तथा '**इमे**' वक्ष्यमाणा **वक्षस्कारकूटाः**, कूटशब्देनात्र कूटान्येषां सन्तीत्यभ्रादित्वादप्रत्यये 'कूटाः' पर्वताः, **तद्यथा-त्रिकूटे**त्यादि । विजयानां राजधानीनां च सङ्ग्रहाय पद्यमेकैकम् इमानि च सङ्ग्रहसूत्राणि सुखप्रतिपत्तिहेतुभूतानीति न पुनरुक्तिर्विभाव्या ॥२०२-B॥

अथ पूर्वसूत्राल्लब्धेऽपि वत्सविजयदिग्नियमे विचित्रत्वात् सूत्रप्रवृत्तेः रीत्यन्तरमाह-

वच्छस्स विजयस्स णिसहे दाहिणेणं, सीआ उत्तरेणं, दाहिणिल्लसी[६]-यामुहवणे पुरत्थिमेणं, तिउडे पच्चत्थिमेणं, सुसीमा रायहाणी, पमाणं तं चेवेति । वच्छाणंतरं तिउडे, तओ सुवच्छे विजए । एएणं कमेणं तत्तजला णई, महावच्छे विजए । वेसमणकूडे वक्खारपव्वए, वच्छवई विजए । मत्तजला णई, रम्मे विजए । अंजणे वक्खारपव्वए, रम्मए विजए । उम्मत्तजला णई, रमणिज्जे विजए । मायंजणे वक्खारपव्वए मंगलावई विजए ॥२०२-C॥

"**वच्छस्स**" इत्यादि, **वत्सस्य विजयस्य निषधो दक्षिणेन** तथा तस्यैव **शीता उत्तरेणे**त्यादि स्पष्टम् । न चैवं निषधादयो लक्ष्याः लक्षणं वत्सविजय इति वाच्यम्, लक्ष्यलक्षणभावस्य कामचारात्, प्रस्तुते च प्रकरणबलात् वत्स एव लक्ष्यत इति । **सुसीमा राजधानी प्रमाणं 'तदेव'** अयोध्यासम्बन्ध्येव, प्रमाणाभिधानाय राजधान्याः पुनरुपन्यासेन न पुनरुक्तिदोषः । अथैषां विजयादीनां स्थानक्रमदर्शनायाह-"**वच्छाण**"मित्यादि, सुगमम् ।

५. चउत्थे-अखत्रिबस नास्ति ॥ ६. ०सीयावणमुहे-अकखत्रिबस J12 ॥

नवरं **वत्सानन्तरं त्रिकूटः** पश्चिमत इति बोध्यम्, अन्यथा पूर्वतो दाक्षिणात्यशीतामुखवनस्य प्रतिपत्तिः स्यादित्युक्तो द्वितीयो विदेहविभागः ॥२०२-C॥

अथ क्रमायातं गजदन्तगिरिं सौमनसाख्यं लक्षयितुमाह-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे सोमणसे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते ?, गो० णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, मन्दरस्स पव्वयस्स दाहिण-पुरत्थिमेणं, [1]मंगलावईविजयस्स पच्चत्थिमेणं, देवकुराए पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे वासे सोमणसे णामं वक्खारपव्वए पण्णत्ते-उत्तर-[2]दाहिणायए पाईण-पडीणवित्थिण्णे [3]जहा मालवन्ते वक्खारपव्वए तहा, [4]णवरं [5]सव्वरययामए अच्छे [6]जाव पडिरूवे । णिसहवासहरपव्वयंतेणं चत्तारि जोअणसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं, चत्तारि गाऊअसयाइं उव्वेहेणं, सेसं तहेव सव्वं । णवरं अट्ठो से [केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चई-सोमणसे वक्खारपव्वए २?] गोअमा ! सोमणसे णं वक्खारपव्वए बहवे देवा य देवीओ अ सोमा [7]सुमणा, सोमणसे अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव परिवसइ, से एएणट्ठेणं गोअमा ! [8]जाव णिच्चे ॥ २०३ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, **क्व भदन्ते**त्यादिप्रश्नः सुलभः । उत्तरसूत्रे **निषधस्य वर्षधर-पर्वतस्य उत्तरस्यां मन्दरस्य पर्वतस्य 'पूर्वदक्षिणस्याम्'** आग्नेयकोणे **मङ्गलावतीविजयस्य पश्चिमायां देवकुरूणां पूर्वस्यां** यावत् **सौमनसो वक्षस्कारपर्वतः प्रज्ञप्तः** इत्यादि सर्वं **माल्यवद्ग**जदन्तानुसारेण भाव्यम् । यत्तु सप्रपञ्चं प्रथमं व्याख्याते गन्धमादनेऽतिदेशयितव्ये माल्यवतोऽतिदेशनं तदस्यासन्नवर्त्तित्वेन सूत्रकारशैलीवैचित्र्यज्ञापनार्थम् । **नवरं सर्वात्मना रजतमयोऽयम्,** माल्यवांस्तु नीलमणिमयः । अयं च **निषधवर्षधरपर्वतान्ते चत्वारि योजनशतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन चत्वारि गव्यूतिशतान्युद्वेधेन** माल्यवांस्तु नीलवत्समीपे इति विशेषः । **अर्थे** च विशेषमाह-"**से केणट्ठेण**"मित्यादि, प्राग्वत् । भगवानाह-गौतम ! **सौमनसवक्षस्कारपर्वते बहवो देवा देव्यश्च 'सौम्याः'** कायकुचेष्टाया अभावात् **'सुमनसः'**

१. मंगलावइस्स वि० अकखत्रिब ॥ २. उदीण दाहिण वि० ॥ ३. द्र. ४।१६२ ॥ ४. णवरि-अकत्रिबस J12 । एवमग्रेऽपि ॥ ५. सव्वरयणामए-अत्रिबस हीवृ. । ६. द्र. १।८ ॥ ७. सुमणा सोमणसिया-सोमणस J12 V । क्वचित् सोमणस्सिया-पुवृ. ॥ ८. द्र. ४।१०३, १०४, १०७ ॥

मनःकालुष्याभावात् परिवसन्ति, ततः सुमनसामयमावास इति सौमनसः । **सौमनस**नामा चात्र **देवो महर्द्धिकः परिवसति,** तेन तद्योगात् सौमनस इति । "**से एएणट्ठेण**"मित्यादि, प्राग्वत् ॥२०३॥

सोमणसे वक्खारपव्वए कइ कूडा पं० ?, गो० ! सत्त कूडा पं०, तं०-

सिद्धे १ सोमणसे २ विअ[1] बोद्धव्वे मंगलावईकूडे ३ ।

देवकुरु ४ विमल ५ कंचण ६ वसिट्ठकूडे ७ अ बोद्धव्वे ॥१॥

एवं सव्वे पञ्चसइआ कूडा । एएसिं पुच्छा दिसिविदिसाए भाणिअव्वा [2]जहा गन्धमायणस्स, विमलकञ्चणकूडेसु णवरिं देवयाओ सुवच्छा वच्छमित्ता य अवसिट्ठेसु कूडेसु [3]सरिसणामया देवा, रायहाणीओ दक्खिणेणं ॥ २०४ ॥

"**सौमनसे**" इति प्रायः सूत्रं व्यक्तम् । नवरमेषां कूटानां 'पृच्छे'ति प्रश्नसूत्ररूपा **दिशि विदिशि** च **भणितव्या,** "कहि णं भन्ते ! सोमणसे वक्खारपव्वए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते" इत्यादिरूपा । **यथा 'गन्धमादनस्य'** प्रथमवक्षस्कारगिरेः सप्तानां कूटानां दिग्विदिग्वक्तव्यता तथाऽत्रापि, अत्र चासन्नत्वेन प्रागतिदेशितोऽपि माल्यवान्नवकूटाश्रयत्वेन कूटाधिकारे उपेक्षित इति । कूटानां दिग्विदिग्वक्तव्यता यथा-मेरोः प्रत्यासन्नं दक्षिणपूर्वस्यां दिशि सिद्धायतनकूटम्, तस्य दक्षिणपूर्वस्यां दिशि द्वितीयं सौमनसकूटम्, तस्यापि दक्षिणपूर्वस्यां दिशि तृतीयं मङ्गलावतीकूटम्, इमानि त्रीणि कूटानि विदिग्भावीनि मङ्गलावतीकूटस्य दक्षिणपूर्वस्यां पञ्चमविमलकूटस्योत्तरस्यां चतुर्थं देवकुरुकूटम्, तस्य दक्षिणतः पञ्चमं विमलकूटम्, तस्यापि दक्षिणतः षष्ठं काञ्चनकूटम्, अस्यापि च दक्षिणतो निषधस्योत्तरेण सप्तमं वासिष्ठकूटम् । सर्वाणि रत्नमयानि परिमाणतो हिमवत्कूटतुल्यानि प्रासादादिकं सर्वं तद्वत्, **विमलकूटे सुवत्सा** देवी **काञ्चनकूटे वत्समित्रा अवशिष्टेषु कूटेषु** कूटस**दृशनामानो देवाः**, तेषां **राजधान्यो** मेरो**र्दक्षिणत** इति ॥२०४॥ इदानीं देवकुरवः -

कहि णं भन्ते ! महाविदेहे वासे देवकुरा णामं कुरा पण्णत्ता ?, गोअमा ! मन्दरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं, णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं,

१. या-अकखत्रिबस J12 ॥ २. द्र. ४।१०६ ॥ ३. सरिणामया-अखबस ॥

विज्जुप्पहवक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, सोमणसवक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, एत्थ णं महाविदेहे वासे देवकुराणामं कुरा पण्णत्ता-पाईण-पडीणायया उदीण-दाहिणवित्थिण्णा[1] इक्कारस जोअणसहस्साइं अट्ठ य बायाले जोअणसए दुण्णि अ एगूणवीसइभाए जोअणस्स विक्खम्भेणं, जहा उत्तरकुराए वत्तव्वया[2] जाव अणुसज्जमाणा पम्हगन्धा मिअगन्धा अममा सहा तेतली सणिचारीति ६ ॥ २०५ ॥

"**कहि णं भन्ते !**" इत्यादि, **क्व भदन्त ! महाविदेहे वर्षे देवकुरवो नाम कुरवः प्रज्ञप्ताः ?, गौतम ! मन्दरगिरेर्दक्षिणतो निषधाद्रेरुत्तरतो विद्युत्प्रभवक्षस्काराद्रेः**-नैर्ऋतकोणस्थगजदन्ताकारगिरेः **पूर्वतः सौमनसवक्षस्काराद्रेः पश्चिमायाम् अत्रान्तरे देवकुरवो नाम कुरवः प्रज्ञप्ताः**, शेषं प्राग्वत् । इमाश्चोत्तरकुरूणां यमलजातका इवेति तददितिदेशमाह-**यथोत्तरकुरूणां वक्तव्यता** । कियद्दूरम् ? इत्याह-यावद् '**अनुसज्जन्तः**' सन्तानेनानुवर्त्तमानाः सन्ति, वर्त्तमाननिर्देशः कालत्रयेऽप्येतेषां सत्ताप्रतिपादनार्थम् । आह-के ते ? **इत्याह-पद्मगन्धाः १ मृगगन्धा २ अममाः ३ सहाः ४ तेजस्तलिनः ५ शनैश्चारिणः** ६, एते मनुष्यजातिभेदाः, एतद्व्याख्यानं प्राक् सुषमसुषमावर्णनतो ज्ञेयम् ॥२०५॥

अथैतासूत्तरकुरुतुल्यवक्तव्यत्वेन यमकाविव चित्रविचित्रकूटौ पर्वतौ स्थानतः पृच्छति-

कहि णं भन्ते ! देवकुराए चित्त-विचित्तकूडाणामं दुवे पव्वया पं० ?, गो० ! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरिल्लाओ चरिमंताओ अट्ठचोत्तीसे जोअणसए चत्तारि अ सत्तभाए जोअणस्स अबाहाए सीओआए[3] महाणईए पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं उभओ कूले, एत्थ णं चित्त-विचित्तकूडा णामं दुवे पव्वया पं०, एवं जच्चेव जमगपव्वयाणं सच्चेव[4], एएसिं रायहाणीओ दक्खिणेणं ॥ २०६ ॥

"**कहि णं भन्ते ! देवकुराए चित्त-विचित्तकूडा**" इत्यादि, व्यक्तम् । नवरम् '**एवम्**' उक्तन्यायेन **यैव यमकपर्वतयोर्वक्तव्यता** इति शेषः, **सैवैतयोश्चित्रविचित्रकूटयोः, एतदधि**-पतिचित्र**विचित्रदेवयोः राजधान्यौ दक्षिणेनेति** ॥२०६॥

---

१. "अतः परम् उत्तरकुरुप्रकरणे (४।१०८) अद्धचंदसंठाण संठिया-इति पाठोऽपि विद्यते ।" इति V पृ. ५०९ टि. १४ ॥ २. द्र. ४।१०८-१०९ ॥ ३. सीयाए-अत्रिपब J12 पुके ॥ ४. द्र. ४।११०-१४० ॥

अथ ह्रदपञ्चकस्वरूपमाह–

कहि णं भन्ते ! देवकुराए २ णिसढद्दहे णामं दहे पण्णत्ते ?, गो० ! तेसिं चित्त-विचित्तकूडाणं पव्वयाणं उत्तरिल्लाओ चरिमन्ताओ अट्ठ चोतीसे जोअणसए चत्तारि अ सत्तभाए जोअणस्स अबाहाए सीओआए महाणईए बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं णिसहद्दहे णामं दहे पण्णत्ते, एवं जच्चेव नीलवंत-उत्तरकुरु-चन्देरावण[1]-मालवंताणं वत्तव्वया सच्चेव[2] णिसह-देवकुरु-सूर-सुलस-विज्जुप्पभाणं णेअव्वा, रायहाणीओ दक्खिणेणं ॥ २०७ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, 'एवम्' उक्तालापकानुसारेण **यैव नीलवदुत्तरकुरुचन्द्रैरावत-माल्यवतां** पञ्चानां द्रहाणाम् उत्तरकुरुषु **वक्तव्यता सैव निषध-देवकुरु-सूर-सुलस-विद्युत्प्र-भनामकानां नेतव्या,** एतदीयाधिपसुराणां **राजधान्यो** मेरुतो **दक्षिणेनेति** शेषः ॥२०७॥

अथैतासु जम्बूपीठतुल्यं वृक्षपीठं क्वास्ति ? इति पृच्छन्नाह–

कहि णं भन्ते ! देवकुराए २ कूडसामलिपेढे णामं पेढे पण्णत्ते ?, गोअमा ! मन्दरस्स पव्वयस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं, णिसहस्स वासहर-पव्वयस्स उत्तरेणं, विज्जुप्पभस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं, →[3]सोमणसस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं ← सीओआए महाणईए पच्चत्थिमेणं, देवकुरुपच्चत्थिमद्धस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं देवकुराए कुराए [4]कूडसामलीए कूडसामलीपेढे णामं पेढे पं० । एवं जच्चेव जम्बूए सुदंसणाए वत्तव्वया सच्चेव सामलीए वि भाणिअव्वा णामविहूणा [5]गरुलदेवे रायहाणी दक्खिणेणं, अवसिट्ठं तं चेव [6]जाव देवकुरू अ इत्थ देवे पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गो० ! एवं वुच्चइ देवकुरा २ । अदुत्तरं च णं देवकुराए० ॥ २०८ ॥

---

१. ०रावण० V, J12 ॥ ०रावय० कत्रिपस पुवृ. शावृ. हीवृ. । द्रष्टव्यं ४।१४२ सूत्रम् । जीवाजीवाभिगमेऽपि ३।६६९ 'एरावणद्दहे' इति पाठो दृश्यते ॥" इति V पृ. ५१० टि. ३ ॥ लघुक्षेत्रसमास गा. १३३ वृत्तौ च – 'ऐरावत' इति नाम ॥ २. द्र. १४१-१४२ ॥ ३. →← चिह्नद्वय-मध्यवर्तिपाठः-मु. नास्ति, J12 V अस्ति ॥ ४. J12 V । कूडसामलिए-४मु. नास्ति ॥ ५. अखत्रिपब हीवृ. । गरुलवेणु देवे-V ॥ ६. द्र. ४।१४३-१६१ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्। नवरं **कूटा**कारा-शिखराकारा **शाल्मली** तस्याः **पीठम्**। उत्तरसूत्रे **मन्दरस्य पर्वतस्य 'दक्षिणपश्चिमायां'** नैर्ऋतकोणे **निषधस्योत्तरस्यां विद्युत्प्रभवक्षस्कारस्य पूर्वतः शीतोदाया महानद्याः पश्चिमायां देवकुरूणां** शीतयोत्तर-कुरूणामिव शीतोदया द्विधाकृतानां **पश्चिमार्द्धस्य बहुमध्यदेशभागे 'अत्र'** प्रज्ञापकनिर्दिष्टदेशे **देवकुरुषु कूटशाल्मल्याः कूटशाल्मलीपीठं प्रज्ञप्तम्। 'एवम्'** उक्तसूत्रानुसारेण **यैव जम्ब्वाः सुदर्शनाया वक्तव्यता सैव शाल्मल्या अपि भणितव्या।** अत्र विशेषमाह **'नामभिः'** प्राग्व्यावर्णितैर्द्वादशभिर्जम्बूनामभि**र्विहीना**, इह शाल्मलीनामानि न सन्तीत्यर्थः। तथा अनादृतस्थाने **गरुडदेवो**ऽत्र, गरुडः-गरुडजातीयो वेणुदेवनामा **मतान्तरेण** गरुडवेग-नामा वा देवः, **राजधान्यस्य** मेरुतो **दक्षिणस्याम्**। तथा सूत्रेऽनुक्तमपीदं बोध्यम्-अस्य पीठं कूटानि च प्रासादभवनान्तरालवर्त्तीनि रजतमयानि, जम्बूवृक्षस्य तु स्वर्णमयानि। अपि चायं शाल्मलीवृक्षो यदा तदा वा सुपर्णकुमाराधिपवेणुदेववेणुदालिक्रीडास्थानम्। तथा चाह सूत्रकृताङ्गचूर्णिकृत् **शाल्मलीवृक्षवक्तव्यतावसरे**-"**तत्थ वेणुदेवे वेणुदाली अ वसइ**" [ ] तयोर्हि 'तत् क्रीडास्थान'मिति। **अवशिष्टं 'तदेव'** जम्बूप्रकरणप्रोक्तमेव यो विशेषः स दर्शित इत्यर्थः। कियत्पर्यन्तम्? इत्याह-**यावद्देवकुरुर्नाम्ना देवोऽत्र परिवसति, तेनार्थेन देवकुरवो देवकुरवः, अथापर**मित्यादि प्राग्वत्॥२०८॥

अथ चतुर्थवक्षस्कारावसरः-

कहि णं भन्ते! जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे वासे विज्जुप्पभे णामं वक्खारपव्वए पन्नत्ते?, गो०! णिसहस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरेणं, मन्दरस्स पव्वयस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं, देवकुराए पच्चत्थिमेणं, पम्हस्स विजयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे[१] २ महाविदेहे वासे विज्जुप्पभे वक्खारपव्वए पं०, उत्तर-दाहिणायए एवं जहा मालवन्ते णवरि सव्वतवणिज्जमए अच्छे जाव देवा आसयन्ति॥ २०९॥

"**कहि ण**"मित्यादि, सर्वं स्पष्टम्, माल्यवदतिदेशेन वाच्यत्वात्। नवरमयं **सर्वात्मना रक्तसुवर्णमयः**॥२०९॥ अथात्र कूटवक्तव्यतामाह-

विज्जुप्पभे णं भन्ते! वक्खारपव्वए कइ कूडा पं०?, गो०! नव कूडा पं०, तं०-सिद्धायतणकूडे विज्जुप्पभकूडे देवकुरुकूडे पम्हकूडे कणगकूडे सोवत्थिअकूडे सीओआकूडे सयज्जलकूडे हरिकूडे।

१. द्र. ४।१६२॥

सिद्धे अ विज्जुणामे, देवकुरू पम्ह कणग सोवत्थी ।
सीओआ य सयज्जल[1], हरिकूडे चेव बोद्धव्वे ॥१॥

एए हरिकूडवज्जा पञ्चसइआ णेअव्वा । एएसिं कूडाणं पुच्छाए[2] दिसिविदिसाओ णेअव्वाओ[3] जहा मालवन्तस्स हरिस्सहकूडे तह चेव हरिकूडे रायहाणी[4] जह चेव दाहिणेणं चमरचंचा रायहाणी तह णेअव्वा । कणग-सोवत्थिअकूडेसु वारिसेणबलाहयाओ दो देवयाओ, अवसिट्ठेसु कूडेसु कूडसरिसणामया देवा, रायहाणीओ दाहिणेणं ॥ २१० ॥

"**विज्जुप्पभे**" इत्यादि, प्रश्नसूत्रं व्यक्तम् । उत्तरसूत्रे **सिद्धायतनकूटं विद्युत्प्रभ-**वक्षस्कारनाम्ना **कूटं देवकुरु**नाम्ना **कूटं पक्ष्म**विजय**कूटं कनककूटं सौवस्तिककूटं शीतोदाकूटं शतज्वलकूटं** हरिनाम्नो दक्षिणश्रेण्यधिपविद्युत्कुमारेन्द्रस्य कूटं **हरिकूटम्** । उक्तमेव सङ्ग्रहगाथयाऽऽह-"**सिद्धे अ विज्जुनामे**" इत्यादि, **एतानि हरिकूट[वर्जा]नि**[5] **पञ्चशतिकानि ज्ञातव्यानि** । **एतेषां कूटा**नां "कहि णं भन्ते ! विज्जुप्पभे वक्खारपव्वए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?" इत्येवंरूपायां **पृच्छायां दिशो विदिशश्च ज्ञेयाः**, यथायोगमवस्थित्याधारतया वाच्या इत्यर्थः । तथाहि-मेरोर्दक्षिणपश्चिमायां दिशि मेरोरासन्नमाद्यं सिद्धायतनकूटम्, तस्य दक्षिणपश्चिमायां दिशि विद्युत्प्रभकूटम्, ततोऽपि तस्यां दिशि तृतीयं देवकूरुकूटम्, तस्यापि तस्यामेव दिशि चतुर्थं पक्ष्मकूटम्, एतानि चत्वारि कूटानि विदिग्भावीनि, चतुर्थस्य दक्षिणपश्चिमायां षष्ठस्य कूटस्योत्तरतः पञ्चमं कनककूटम्, तस्य दक्षिणतः षष्ठं सौवस्तिककूटम्, तस्यापि दक्षिणतः सप्तमं शीतोदाकूटम्, तस्यापि दक्षिणतो-ऽष्टमं शतज्वलकूटम् । नवमस्य सविशेषत्वेन हरिस्सहातिदेशमाह-**यथा माल्यवद्वक्षस्कारस्य हरिस्सहकूटं तथैव हरिकूटं** बोद्धव्यम्-सहस्रयोजनोच्चम् अर्द्धतृतीयशतान्यवगाढं मूले सहस्रयोजनानि पृथु इत्यादि, तथा पृथुत्वविषयकावाक्षेप-परिहारौ तथैव वाच्यौ । नवरमष्टमतो दक्षिणत इदं निषधासन्नमित्यर्थः, हरिस्सहकूटम् उत्तरतो नीलवदासन्नम् । अस्य **राजधानी यथैव दक्षिणेन चमरचञ्चा राजधानी तथैव ज्ञेया** । **कनकसौवस्तिककूटयोर्वा-**

---

१. सयंजलकूडे-त्रि । सूर्यजलकूटम्-हीवृ. ॥ २. V । पुच्छादे-अब । पुच्छा-पमु. । ३. द्र. ४।१६३-१६५ ॥ ४. "रायहाणीत्यादि राजधानी चास्य देवस्य दक्षिणतो तथैव चमरचञ्चा राजधानी तथैव ज्ञेया । क्वचिद् 'रायहाणी तह चेव दाहिणेणं चमरचंचा रायहाणिप्पमाणेणं णायव्वा' इति पाठः-पुवृ. ।" इति V पृ. ५११ टि. ४ ॥ ५. हरिकूटवर्जानि-पुवृ. हीवृ. बाह्मणमुनिवृत्तिः ॥

रिषेणबलाहके दिक्कुमार्यौ **द्वे देवते, 'अवशिष्टेषु'** विद्युत्प्रभादिषु **कूटेषु कूटसदृशनामानो देवा** देव्यश्च **राजधान्यो दक्षिणेन** । यद्यप्युत्तरकुरु-वक्षस्कारयोर्यथायोगं सिद्धहरिस्सहकूट-वर्ज्यकूटाधिपराजधान्यो यथाक्रमं वायव्यामैशान्यां च प्रागभिहितास्तथा देवकुरु-वक्षस्कार-योर्यथायोगं सिद्धहरिकूटवर्ज्यकूटाधिपराजधान्यो यथाक्रममाग्नेय्यां नैर्ऋत्यां च वक्तुमुचिताः, तथापि प्रस्तुतसूत्रसम्बन्धियावदादर्शेषु पूज्य**श्रीमलयगिरिकृतक्षेत्रविचारवृत्तौ** च तथादर्शना-भावात् अस्माभिरपि राजधान्यो दक्षिणेनेत्यलेखि ॥२१०॥ अथास्य नामनिमित्तं पिपृच्छिषुराह-

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-विज्जुप्पभे वक्खारपव्वए २ ?, गोअमा ! विज्जुप्पभे णं वक्खारपव्वए विज्जुमिव सव्वओ समन्ता ओभासेइ उज्जोवेइ पभासइ, विज्जुप्पभे य इत्थ देवे पलिओवमट्ठिइए जाव परिवसइ, से एएणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ विज्जुप्पभे २ । अदुत्तरं च णं जाव णिच्चे ॥ २११ ॥

"**से केणट्ठेण**"मित्यादि, उत्तरसूत्रे **विद्युत्प्रभो वक्षस्कारपर्वतो विद्युदिव** रक्तस्वर्णमय-त्वात् **सर्वतः समन्तादवभासते** द्रष्टृणां चक्षुषि प्रतिभाति यदयं विद्युत्प्रकाश इति । एतदेव दृढयति-भास्वरत्वादासन्नं वस्तु **द्योतयति**, स्वयं च **'प्रभासते'** शोभते, तेन विद्युदिव प्रभातीति विद्युत्प्रभः, **विद्युत्प्रभश्चात्र देवः परिवसति तेन विद्युत्प्रभः**, शेषं प्राग्वत् ॥२११॥

अथ महाविदेहस्य दाक्षिणात्यपश्चिमनामानं तृतीयं विभागं वक्तुं तद्गतविजयादीनाह-

एवं पम्हे विजए, अस्सपुरा रायहाणी, अंकावई वक्खारपव्वए १ । सुपम्हे विजए, सीहपुरा रायहाणी, खीरोदा महाणई २ । महापम्हे विजए, महापुरा रायहाणी, पम्हावई वक्खारपव्वए ३ । पम्हगावई विजए, विजयपुरा रायहाणी, [1]सीअसोआ महाणई ४ । संखे विजए, [2]अवराइआ रायहाणी, आसीविसे वक्खारपव्वए ५ । कुमुदे विजए, अरजा रायहाणी, अंतोवाहिणी महाणई ६ । णलिणे विजए, असोगा रायहाणी, सुहावहे

---

१. त्रिप शावृ हीवृ । "सीहसोगा-अकब । शीघ्रस्रोताः सिंहस्रोता वा ग्रन्थान्तरे शीतस्रोताः-पुवृ । द्रष्टव्यं स्थानाङ्गे ३।४६१ ॥" इति V पृ. ५११ टि. १३ ॥ २. अवरा-स । "स्थानाङ्गे २।३४१ अपि 'अवरा' इति पाठो विद्यते, किन्तु अस्मिन्नेव सूत्रे किञ्चिदग्रे 'अरया' इति पाठो सर्वेष्वप्यादर्शेषु विद्यते तेनात्रापि 'अरजा' इति पाठः स्वीकृतः ।" इति V पृ. ५११ टि. १३ ॥

वक्खारपव्वए ७ । णलिणावई[1] विजए, वीयसोगा रायहाणी ८ दाहिणिल्ले सीओआमुहवणसंडे । उत्तरिल्ले वि एमेव भाणिअव्वे जहा सीआए । वप्पे विजए, विजया[2] रायहाणी, चन्दे वक्खारपव्वए १ । सुवप्पे विजए, वेजयन्ती रायहाणी, उम्मिमालिणी णई २ । महावप्पे विजए, जयन्ती रायहाणी, सूरे वक्खारपव्वए ३ । वप्पावई विजए, अपराइआ रायहाणी, फेणमालिणी णई ४ । वग्गू विजए, चक्कपुरा रायहाणी, णागे वक्खारपव्वए ५ । सुवग्गू विजए, खग्गपुरा रायहाणी, गंभीरमालिणी अंतरणई ६ । गन्धिले विजए, अवज्झा रायहाणी, देवे वक्खारपव्वए ७ । गंधिलावई विजए, अओज्झा रायहाणी ८ । एवं मन्दरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लं पासं भाणिअव्वं तत्थ ताव सीओआए णईए दक्खिणिल्ले णं कूले इमे विजया, तं०-

पम्हे सुपम्हे महापम्हे, चउत्थे[3] पम्हगावई ।
संखे कुमुए णलिणे, अट्ठमे णलिणावई ॥१॥

इमाओ रायहाणीओ, तं०-

आसपुरा सीहपुरा, महापुरा चेव हवइ विजयपुरा ।
अवराइआ य अरया, असोग तह वीअसोगा य ॥२॥

इमे वक्खारा, तं जहा-अंके पम्हे[4] आसीविसे सुहावहे ॥२१२-A॥

"एवं पम्हे विजए" इत्यादि, स्पष्टेऽप्यत्र लिपिप्रमादाद् भ्रम इति तन्निरासाय शब्द-संस्कारमात्रेण लिख्यते-**पक्ष्मो विजयः अश्वपुरी राजधानी**, सूत्रे चाऽऽकार आर्षत्वात्, एवमग्रेऽपि । **अङ्कावती वक्षस्कारपर्वतः १, सुपक्ष्मो विजयः सिंहपुरा राजधानी क्षीरोदा अन्तरनदी २, महापक्ष्मो विजयः महापुरी राजपूः पक्ष्मावती वक्षस्कारः ३, पक्ष्मावती विजयः विजयपुरी राजधानी शीतस्त्रोता महानदी ४, शङ्खो विजयः अपराजिता नगरी आशीविषो वक्षस्कारः ५, कुमुदो विजयः अरजपूः अन्तर्वाहिनी नदी ६, नलिनो विजयः अशोका पूः सुखावहो वक्षस्कारः ७, 'नलिनावती विजयः'** सलिलावतीति पर्यायः, **वीतशोका राजधानी ८, दाक्षिणात्यं शीतोदामुखवनखण्डमिति** । अथ

१. प । सलिलावती ग्रन्थान्तरे नलिनावती पुवृ । सलिलावई-V । सलिलावती-स्थानाङ्गे २।३४० ॥
२. V । जयन्ती-मु. ॥ ३. चउत्थे-अकखत्रिबस ॥ ४. पउमे-अकखबस ॥

चतुर्थविभागावसरः-"**उत्तरिल्ले**" इत्यादि, 'एवमेव' उक्तन्यायेनैव दाक्षिणात्यशीतामुखवनानुसारेणोत्तरदिग्भाविशीतोदामुखवनखण्डे भणितव्यम्, यथा शीताया औत्तराहमुखवनं व्याख्यातं तथा व्याख्येयमित्यर्थः । चतुर्थविभागविजयादयस्त्विमे-**वप्रो विजयो विजया राजधानी चन्द्रो वक्षस्कारपर्वतः** १, **सुवप्रो विजयो वैजयन्ती राजधानी ऊर्मिमालिनी नदी** २, **महावप्रो विजयो जयन्ती राजधानी सूरो वक्षस्कारपर्वतः** ३, **वप्रावती विजयोऽपराजिता राजधानी फेनमालिनी नदी** ४, **वल्गुर्विजयश्चक्रपुरा राजधानी नागो वक्षस्कारः** ५, **सुवल्गुर्विजयः खड्गपुरी राजधानी गम्भीरमालिनी अन्तरनदी**, गम्भीरं जलं मलते-धारयतीति गम्भीरमालिनी, एवं ऊर्मिमालिनी फेनमालिनीति ६, **गन्धिलो विजयोऽवध्या राजधानी देवो वक्षस्कारः** ७, **गन्धिलावती विजयोऽयोध्या राजधानी** ८, '**एवम्**' उक्ताभिलापेन शीतोदाकृतविभागद्वयगतविजयादिनिरूपणेनेत्यर्थः, **मन्दरस्य पाश्चात्यं पार्श्वं भणितव्य**मिति । अथात्र सङ्ग्रहमाह-"**तत्थ ताव सीओआ**" इत्यादि, विवृतप्रायम् । नवरं तत्र सङ्ग्रहे विवक्षितव्ये तावदिति भाषाक्रमे '**अङ्के**'ति पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् अङ्कावती, एवं '**पम्हेति**' पक्ष्मावतीति ॥२१२-A॥

अथ द्वात्रिंशतोऽपि विजयानां नामानयनोपायमाह-

एवं इत्थ परिवाडीए [१] दो दो विजया कूडसरिसणामया भाणिअव्वा, दिसा विदिसाओ अ भाणिअव्वाओ । सीओआमुहवणं च भाणिअव्वं, सीओआए [२] दाहिणिल्लं उत्तरिल्लं च ॥२१२-B॥

"**एवं इत्थ परिवाडी**" इत्यादि, '**एवं**' उक्तरीत्या **अत्र परिपाट्यां** विभागचतुष्टयगतविजयानुपूर्व्यां **द्वौ २ विजयौ कूटसदृग्नामकौ भणितव्यौ**, स्वस्वविजयविभेदकवक्षस्कारगिरितृतीयचतुर्थकूटसदृशनामकावित्यर्थः । तथाहि-चित्रकूटवक्षस्कारे कूटचतुष्टयमध्ये आद्यं सिद्धायतनकूटम्, ततः स्ववक्षस्कारनामकम् ततस्तृतीयं कच्छनामकम्, चतुर्थं सुकच्छनामकम्, तेन कच्छ-सुकच्छ-विजयावित्यर्थः, एवं सर्वत्र भावनीयमिति । '**दिशः**' प्राच्याद्याः विपरीतदिशो **विदिशश्च भणितव्याः** । यथा प्राच्याः प्रतीची उदीच्याश्चापाची, एवं दिग्विदिग्नियमः कार्यः । तथाहि-कच्छो विजयः शीताया महानद्या उत्तरस्यां नीलवतो वर्षधरस्य दक्षिणस्यां चित्रकूटसरलवक्षस्कारपर्वतस्य पश्चिमायां माल्यवतो गजदन्ताकारवक्षस्कारपर्वतस्य पूर्वस्यामिति । एवं सुकच्छादिषु विजयेष्वपि स्वस्वदिश्यवस्त्वनुसारेण तत्तद्दिग्नियमः कार्यः, एवं शीतोदामुखवनं च भणितव्यम् । तद्विभागतो दर्शयति-**शीतोदाया दाक्षिणात्यं चौत्तराहं चेति** ॥२१२-B॥

१. इदं तु ध्येयम्-अस्यैव सूत्रस्यान्ते दो दो कूडा विजयसरिसणामया-इति पाठः ॥ २. दक्खिणिल्लं-अकखत्रिबस ।

अथ चतुर्थविभागगतविजयादिसङ्ग्रहः-

सीओआए उत्तरिल्ले पासे इमे विजया, तं जहा-

वप्पे सुवप्पे महावप्पे, चउत्थे [१]वप्पयावई ।

वग्गू अ सुवग्गू अ, [२]गंधिले गंधिलावई ॥१॥

रायहाणीओ इमाओ तं जहा-

विजया वेजयन्ती, जयन्ती अपराजिआ ।

चक्कपुरा खग्गपुरा, हवइ अवज्झा अउज्झा य ॥२॥

इमे वक्खारा तंजहा-चन्दपव्वए १ सूरपव्वए २ नागपव्वए ३ देवपव्वए ४ । इमाओ णईओ सीओआए महाणईए दाहिणिल्ले कूले-खीरोआ [३]सीहसोआ [४]अंतरवाहिणीओ णईओ ३, उम्मिमालिणी १ फेणमालिणी २ गंभीरमालिणी ३ उत्तरिल्लविजयाणन्तराउ त्ति । इत्थ परिवाडीए दो दो कूडा विजयसरिसणामया भाणिअव्वा, इमे दो दो कूडा अवट्ठिआ, तंजहा-सिद्धायवणकूडे पव्वयसरिसणामकूडे ॥२१२-C॥

"**सीओआए**" इत्यादि । सम्प्रत्यनुक्तपूर्वं पाश्चात्यविभागद्वयगतान्तरनदीसङ्ग्रहमाह-"**सीओ[खीरो]आ**" इत्यादि, प्राग्वत् । नवरम् "**उत्तरिल्लविजयाण**" इति औत्तराहविजयानां, "**अंतराओ**"त्ति अन्तरनद्यः "ते लुग्वा" [**श्रीसिद्ध० अ० ३ पा० २ सू० १०८**] इत्यनेन उत्तरपदलोपः । यत्तु पूर्वविभागे विजयादिसङ्ग्रहः प्राच्यविभागद्वयेऽन्तरनदीसङ्ग्रहश्च नोक्तस्तत्र सूत्रकाराणां प्रवृत्तिवैचित्र्यं हेतुर्व्यवच्छिन्नसूत्रता वेति । अथ सरलवक्षस्कारकूटेषु नामव्यवस्थोपायमाह-"**इत्थ परिवाडीए**" इत्यादि, **अत्र** '**परिपाट्या**' अर्थाद्वक्षस्कारानुपूर्व्यां **द्वौ द्वौ कूटौ विजयसदृशनामकौ भणितव्यौ** । अयं भावः-प्रतिवक्षस्कारं चत्वारि २ कूटानि, तत्राद्यद्वयं नियतम्, तच्च सूत्रकार एव व्यक्तीकरिष्यतीति । अपरं च द्वयमनियतं तत्र यो यो वक्षस्कारगिरिर्यौ यौ विजयौ विभजति तन्मध्ये यो यः पाश्चात्यो विजयस्तन्नामकं तस्मिन् वक्षस्कारे तृतीयं कूटम्, यो यश्चाग्रिमो विजयस्तन्नामकं चतुर्थं कूटम्, **द्वौ द्वौ चावस्थितौ कूटौ, तद्यथा**-एकं **सिद्धायतनकूटं** द्वितीयं **पर्वतसदृशनामकं** कूटम्, वक्षस्कारसदृशनामकमित्यर्थः, कस्मिन्नपि वक्षस्कारे इमे नाम्नी न व्यभिचरत इत्यवस्थितौ ।

१. वप्पावई-अत्रिब ॥ २. गंधिला-अकखत्रिबस ॥ ३. सीयसोया-प ॥ ४. अंतोवाहिणी-अखत्रिब ॥

ननु सिद्धायतनकूटमवस्थितमिति युक्तम्, पर्वतसदृग्नामकं तु भिन्न २वक्षस्कारनामानुयायित्वेन कथमवस्थितमिति ?, उच्यते, पर्वतसदृग्नामकत्वेन धर्मेणास्यावस्थितत्वम्, एतादृशधर्मस्य सर्वेष्वपि वक्षस्कारद्वितीयकूटेषु अव्यभिचारात् । न च तर्हि अपरकूटद्वयस्य विजयसमनामकत्वेन धर्मेणावस्थितत्वं भवतु, उक्तधर्मस्य सर्वत्राव्यभिचारात् इति वाच्यम्, विजयसमनामकस्य धर्मस्य द्वयोः कूटयोः साधारण्येनान्यतरानिश्चयेन झटिति नामव्यवहारानुपपत्तेरिति ॥२१२-C॥

सम्प्रति महाविदेहवर्षस्य पूर्वा-ऽपरविभागकारिणं मेरुं पृच्छन्नाह-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २ महाविदेहे वासे मन्दरे[१] णामं पव्वए पण्णत्ते ?, गोअमा ! उत्तरकुराए दक्खिणेणं, देवकुराए उत्तरेणं, पुव्वविदेहस्स वासस्स पच्चत्थिमेणं, अवरविदेहस्स वासस्स पुरत्थिमेणं, जम्बुद्दीवस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे मन्दरे णामं पव्वए पण्णत्तेणवणउतिजोअणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं, एगं जोअणसहस्सं उव्वेहेणं, मूले दसजोअणसहस्साइं णवइं च जोअणाइं दस य एगारसभाए जोअणस्स विक्खम्भेणं, धरणिअले दस जोअणसहस्साइं विक्खम्भेणं, तयणन्तरं च णं मायाए २ परिहायमाणे परिहायमाणे उवरितले एगं जोअणसहस्सं विक्खंभेणं ॥२१३-A॥

"**कहि ण**"मित्यादि, प्रश्नः प्राग्वत् । उत्तरसूत्रे **गौतम ! उत्तरकुरूणां दक्षिणस्यां देवकुरूणाम् उत्तरस्यां पूर्वविदेहस्य वर्षस्य पश्चिमायां पश्चिममहाविदेहस्य वर्षस्य पूर्वस्यां जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य बहुमध्यदेशभागे अत्रान्तरे जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरो नाम पर्वतः प्रज्ञप्तः-नवनवतियोजनसहस्राणि ऊर्ध्वोच्चत्वेन एकं योजनसहस्रमुद्वेधेन** सर्वाग्रेण पूर्णं लक्षमित्यर्थः, वक्ष्यमाणचूलासत्कानि चत्वारिंशद्योजनानि त्वधिकानि, उच्छ्रयचतुर्थांशो भूम्यवगाहस्तु मेरुवर्जपर्वतेषु ज्ञेय इति । '**मूले**' कन्दे **दशयोजनसहस्राणि नवतिं च योजनानि दश चैकादशभागान् योजनस्य विष्कम्भेन** १००९० अंशाः १०, एकादशरूपेण छेदेन क्रमादपचीयमानविष्कम्भोऽसौ '**धरणीतले**' समे भागे **दशयोजनसह स्राणि [१०,०००] विष्कम्भेन**, मूलतो योजनसहस्रमूद्‌र्ध्वगमने मूलगतानि नवतियोजनानि दश च एकादशभागा योजनस्य तुत्रुटुरित्यर्थः । **तदनन्तरं 'मात्रया २'** ऊर्ध्वगमने-उच्चत्वस्य योजनैका-दशांशवृद्‌ध्या **विष्कम्भस्य योजनैकाद(कां)शांशहा**निस्तथोच्चत्वैकादशयोजनवृद्‌ध्या विष्कम्भैकयोजनहानिः एवमेकादशयोजनशतवृद्‌ध्या योजनशतहानिः, तथा

१. मंदिरे-अब J2 । एवमग्रेऽपि ॥

एकादशयोजन-सहस्रवृद्ध्या योजनसहस्रहानिरित्येवंरूपेण परिमाणेन **परिहीयमाणः २ 'उपरितले'** शिरोभागे यत्र चूलिकाया उद्भवस्तत्र[1] **एकं योजनसहस्रं १००० यो० विष्कम्भेण**, समभूतलतो नवनवतियोजनसहस्राण्यूर्ध्वगमने पृथुत्वगतनवयोजनसहस्राणि तुत्रुटुरित्यर्थः ॥२१३-A॥

अथास्य परिधिः-

मूले एक्कत्तीसं जोअणसहस्साइं णव य दसुत्तरे जोअणसए तिण्णि अ एगारसभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं, धरणिअले एक्कत्तीसं जोअणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोअणसए परिक्खेवेणं, उवरितले तिण्णि जोअणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोअणसयं किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं, मूले वित्थिण्णे मज्झे संखित्ते उवरिं[2] तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे सण्हे ॥२१३-B॥

मूले एकत्रिंशद्योजनसहस्राणि नव च शतानि दशोत्तराणि त्रींश्चैकादशभागान् योजनस्य ३१,९१० $\frac{३}{११}$ यो० परिक्षेपेण, धरणीतले एकत्रिंशद्योजनसहस्राणि षट् च त्रयोविंशत्यधिकानि योजनशतानि ३१,६२३ परिक्षेपेण, उपरितले त्रीणि योजन-सहस्राणि एकं च द्वाषष्ट्यधिकं योजनशतं ३,१६२ किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेण ।

अथाद्यपरिधिगणितं मूले विष्कम्भस्य सच्छेदत्वाद्विषममिति दर्श्यते-मूले च विष्कम्भो दशयोजनसहस्राणि नवत्यधिकानि दश चैकादशभागा योजनस्य १००९० १०/११ । तत्र योजनराशावेकादशभागकरणार्थमेकादशभिर्गुणिते उपरितनदशभागक्षेपे च जाता एकादशभागा लक्षमेकादश च सहस्राणि १११०००, ततोऽस्य राशेर्वर्गकरणे जातं एकको द्विकस्त्रिको द्विक एककः षट् च शून्यानि १२३२१००००००, ततोऽस्य दशभिर्गुणने जातानि सप्त शून्यानि १२३२१००००००० । अथास्य वर्गमूलानयने लब्धस्त्रिकः पञ्चक एककः शून्यमेकको द्विकः ३५१०१२, अथास्य योजनकरणार्थं ११ भागः, लब्धं योजन ३१९१० अंश २, शेषं ५७५८५६ ।७०२०२४, अर्द्धाभ्यधिकत्वाद्रूपे दत्ते अंशाः ३, समभूतलगतपरिधावपि ३१६२२ योजनानि अवशिष्टांशानामर्द्धाभ्यधिकत्वाद्रूपे दत्ते त्रयोविंशतिर्योजनानि, शिखरपरिधौ चार्द्धतो न्यूनत्वादंशानां सूत्रे किंचिदधिकत्वं न्यवेदि । अत एव **मूले विस्तीर्णो मध्ये संक्षिप्त उपरि**

१. उद्गमः-के ॥ २. उप्पिं-अकखत्रिबस J12 ॥

तनुक ऊर्ध्वं मेखलाद्वयाविवक्षया उदस्त**गोपुच्छाकारेण संस्थितः सर्वात्मना रत्नमयः**। इदं च प्रायोवचनम्, अन्यथा काण्डत्रयविवेचने आद्यकाण्डस्य पृथ्व्युपलशर्करावज्रमयत्वं तृतीयकाण्डे जाम्बूनदमयत्वं च भणिष्यमाणं विरुणद्धि, शेषं प्राग्वत् ॥२१३-B॥

अथात्र पद्मवरवेदिकाद्याह-

से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते वण्णओ[1] ॥२१३-C॥

"से णं एगाए" इत्यादि, व्यक्तम्। अत्र चारोहेऽवरोहे च इष्टस्थाने विस्तारादिकरणानि सूत्रेऽनुक्तान्यपि उत्तरग्रन्थे बहूपयोगानीति[2] दर्श्यन्ते-तत्र कन्दादारोहे करणमिदम्-ऊर्ध्वगतस्य यत्र योजनादौ विस्तारजिज्ञासा तस्मिन् योजनादिके एकादशभिर्भक्ते यल्लब्धं तस्मिन् कन्दविस्तारादपनीते यदवशिष्टं स तत्र प्रदेशे मेरुव्यासः। तथाहि-कन्दाद्योजनलक्षमूर्ध्वं गतस्ततो योजनलक्षं ध्रियते, तस्मिन्नेकादशभिर्भक्ते लब्धानि नवतिशतानि नवत्यधिकानि योजनानां दश चैकादशभागा योजनस्य [९०९० $\frac{१०}{११}$], अस्मिन् कन्दव्यासात् दशयोजनसहस्राणि नवत्यधिकानि दश चैकादशभागा योजनस्येत्येवंपरिमाणादपनीयते शेषं योजनसहस्रं, एतावानत्र प्रदेशे मेरूपरितले व्यासः। अथवा योजनसहस्रमारूढस्ततो योजनसहस्रे एकादशभिर्भक्ते लब्धानि नवतियोजनानि दश चैकादशभागा योजनस्य, अस्मिन् पूर्वोक्तात् कन्दव्यासाच्छोधिते शेषं दशयोजनसहस्राणि एवमन्यत्रापि भाव्यम्। अथ शिखरादवरोहे करणम्-यथा मेरुशिखरादवपत्य यत्र योजनादौ विष्कम्भजिज्ञासा तस्मिन् योजनादिके एकादशभिर्भक्ते यल्लब्धं तत्सहितं तत्र प्रदेशे मेरुव्यासमानम्, यथा शिखराद्योजनलक्षमवतीर्णस्ततो लक्षे एकादशभिर्भक्ते लब्धानि नवतिशतानि नवत्यधिकानि दश चैकादशभागाः, अस्मिन् योजनसहस्रप्रक्षेपे जातानि १००९०-१०/११ इयान् कन्दे व्यासः। अथवा शिखरान्नवनवति-योजनसहस्राण्यवतीर्णस्ततस्तेषामेकादशभिर्भागे हृते लब्धानि नवसहस्राणि तानि सहस्र-सहितानि जातानि दशसहस्राणि एतावान् धरणीतले विस्तारः, एवमन्यत्रापि।

अथ मेरौ मूलादारोहे मौलितोऽवरोहे च विष्कम्भविषयकहानि-वृद्धिज्ञानार्थं करणमिदम्-उपरितनाधस्तनयोर्विस्तारयोर्विश्लेषे कृते तयोर्मध्यवर्त्तिना पर्वतोच्छ्रयेण भक्ते यल्लब्धं सा हानिर्वृद्धिश्च। तथाहि-उपरितने विस्तारे योजनसहस्रम् अधस्तनाद्योजन १००९०-१०/११ इत्येवंरूपाच्छोधिते शेषं ९०९०-१०/११, सवर्णनार्थं योजनराशिमेकादशगुणीकृत्य अधस्तना

१. द्र. १।१०-१३ ॥ २. बहुपयोगीनीति दर्श्यते-पुके ॥

दश भागाः प्रक्षेप्याः जातं १०००००/११, अस्य च भजनार्थं मध्यवर्त्तिनि पर्वतोच्छ्रये १००००० इत्येवंरूपे एकादशगुणे कृते जातं १/११ शून्य ५/शून्य ५। अत्र छेदराशेरेकादश-गुणत्वाद्भागाप्राप्तौ उभयोर्लक्षेणापवर्त्ते कृते जातं १/११, इयती प्रतियोजनं हानिर्वृद्धिश्च। तथा इदमेव लब्धमर्द्धीकार्यम् एककस्यार्द्धासम्भवात् छेद एव द्विगुणीक्रियते जातं १/२२, इयं मेरोरेकस्मिन् पार्श्वे वृद्धिर्हानिश्चेति।

अथोच्चत्वपरिज्ञानाय करणमिदम्–मेरोर्यत्र भूतलादौ प्रदेशे यो यावान् विस्तारः तस्मिन् मूलविस्ताराच्छोधिते यच्छेषं तदेकादशभिर्गुणितं सत् यावद् भवति तावत्प्रमाण उत्सेधः। तथाहि–शिखरव्यासो योजनसहस्रं तस्मिन् कन्दव्यासात् पूर्वोक्ताच्छोधिते शेषं नवतिसहस्राणि नवत्यधिकानि दश चैकादशभागा योजनस्येत्येतदात्मकं योजनराशिरेकादशभिर्गुण्यते जातं ९९९९०, ये च दशैकादशभागास्तेऽपि एकादशभिर्गुण्यन्ते जातं ११०, तस्यैकादशभिर्भागे हृते लब्धानि दश योजनानि पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते जातं योजनानां लक्षम्। एतावदधोविस्तारो-परितनविस्तारयोरन्तरे उच्चत्वम्, एवं मध्यभागादावप्युच्चत्वपरिमाणं भावनीयमिति। नन्विह कस्मादेकादशलक्षणः छेदः कस्माद्वा तेन शेषं गुण्यते ?, उच्यते, एकादशानां योजनानामन्ते एकं योजनम् एकादशानां योजनशतानामन्ते एकं योजनशतम् एकादशानां योजनसहस्राणामन्ते एकं योजनसहस्रं त्रुट्यति, तत एकादशलक्षणः छेदः, तेनोच्चत्वपरिज्ञानाय विस्तारशेषं गुण्यते, अन्यथा योजनानां दशसहस्राणि नवत्यधिकानि दश चैकादशभागा योजन-स्येत्येवंविस्तारात् कन्दादारोहणे धरणीतले नवतिर्योजनानि दश चैकादशभागाः कथं त्रुट्येयुरिति। ननु मेखलाद्वये प्रत्येकं परितः पञ्चयोजनशत-विस्तारयोर्नन्दन-सौमनसवनयोः सद्भावात् प्रत्येकं योजनसहस्रस्य युगपत् त्रुटिः ततः किमित्येकादशभागपरिहाणिः ?, उच्यते, कर्णगत्या समाधेयमिति। का च कर्णगतिः ? इति चेत्, उच्यते, कन्दादारभ्य शिखरं यावदेकान्तऋजुरूपायां दवरिकायां दत्तायां यदपान्तराले क्वापि कियदाकाशं तत्सर्वं कर्णगत्या मेरोराभाव्यमिति मेरुतया परिकल्प्य गणितज्ञाः सर्वत्रैकादशभागपरिहाणिं परिवर्णयन्ति। अयं चार्थः **श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणपूज्यैरपि** **विशेषणवत्यां** लवणोदधिघनगणितनिरूपणावसरे दृष्टान्तद्वारेण ज्ञापित एवेति ॥२१३-C॥

सम्प्रत्येतद्गतवनखण्डवक्तव्यतामाह–

मन्दरे णं भन्ते ! पव्वए कइ वणा पं० ?, गो० ! चत्तारि वणा पं०, तं०-भद्दसालवणे १ णन्दणवणे २ सोमणसवणे ३ पंडगवणे ४ ॥ २१४ ॥

"**मन्दरे ण**"मित्यादि, प्रश्नसूत्रं व्यक्तम् । उत्तरसूत्रे **चत्वारि वनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा**-भद्रा:-सद्भूमिजातत्वेन सरला: शाला: साला वा-तरुशाखा यस्मिन् तत् भद्रशालं भद्रसालं वा, अथवा भद्रा: शाला:-वृक्षा यत्र तद् **भद्रशालम्**, नन्दयति-आनन्दयति देवादीनिति **नन्दनम्**, सुमनसां-देवानामिदं **सौमनसं** देवोपभोग्यभूमिकासनादि-मत्त्वात्, पण्डते-गच्छति जिन-जन्माभिषेक-स्थानत्वेन सर्ववनेष्वतिशायितामिति णकप्रत्यये **पण्डकम्**, इमानि चत्वार्यपि स्वस्वस्थाने मेरुं परिक्षिप्य स्थितानि ॥२१४॥

आद्यवनं स्थानत: पृच्छति-

कहि णं भन्ते ! मन्दरे पव्वए भद्दसालवणे णामं वणे पं० ?, गोअमा ! धरणिअले एत्थ णं मन्दरे पव्वए भद्दसालवणे णामं वणे पण्णत्ते-पाईण-पडीणायए उदीण-दाहिणवित्थिण्णे सोमणस-विज्जुप्पह-गंधमायण-मालवंतेहिं वक्खारपव्वएहिं सीआ-सीओआहि अ महाणईहिं अट्ठभागपविभत्ते, मन्दरस्स पव्वयस्स [1]पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं बावीसं बावीसं जोअणसहस्साइं आयामेणं, [2]उत्तर-दाहिणेणं अड्ढाइज्जाइं अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं विक्खम्भेणं । से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते, दुण्ह वि [3]वण्णओ भाणिअव्वो किण्हे किण्होभासे जाव देवा आसयन्ति सयन्ति ॥ २१५ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, प्रश्न: प्राग्वत् । निर्वचनसूत्रे **गौतम ! धरणीतलेऽत्र मेरौ भद्रशालवनं प्रज्ञप्तम्, प्राचीने**त्यादि प्राग्वत् । **सौमनस-विद्युत्प्रभ-गन्धमादन-माल्यवद्भि-र्वक्षस्कारपर्वतै: शीता-शीतोदाभ्यां च महानदीभ्याम् 'अष्टभाग-प्रविभक्तम्'** अष्टधाकृतम्, तद्यथा-एको भागो मेरो: पूर्वत: १ द्वितीयोऽपरत: २ तृतीयो विद्युत्प्रभसौमनसमध्ये दक्षिणत: ३ चतुर्थो गन्धमादनमाल्यवन्मध्ये उत्तरत: ४ । तथा शीतोदया उत्तरतो गच्छन्त्या दक्षिणखण्डं पूर्व-पश्चिमविभागेन द्विधा कृतं ततो लब्ध: पञ्चमो भाग: ५, तथा पश्चिमतो गच्छन्त्या पश्चिमखण्डं दक्षिणोत्तरविभागेन द्विधा कृतं ततो लब्ध: षष्ठो भाग: ६, तथा शीतया महानद्या दक्षिणाभिमुखं गच्छन्त्या उत्तरखण्डं पूर्व-पश्चिमभागेन द्विधा कृतं ततो लब्ध: सप्तमो भाग: ७, तथा पूर्वतो गच्छन्त्या पूर्वखण्डं दक्षिणोत्तरविभागेन द्विधा कृतं ततो लब्धोऽष्टमो भाग: ८ । स्थापना यथा- ।

---

१. पुरत्थिम-अब J12 नास्ति ॥ पच्चत्थिमेण पुरत्थिमेणं-कखस । पुरत्थिमेणं पच्चत्थिमेणं-त्रि । पश्चिम-पूर्वाभ्यां-हीवृ. ॥ २. उत्तरेण दा० अकखत्रिबस J12 ॥ ३. द्र. १।१०-१३ ॥

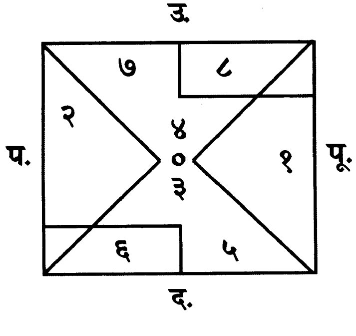

मन्दरस्य पूर्वतः पश्चिमतश्च द्वाविंशतिं २ योजनसहस्राण्यायामेन, कथम् ? इति चेत्, उच्यते, कुरुजीवा त्रिपञ्चाशद्योजनसहस्राणि ५३०००, एकैकस्य[1] च वक्षस्कारगिरेर्मूले पृथुत्वं पञ्चयोजनशतानि, ततो द्वयोः शैलयोर्मूले पृथुत्वपरिमाणं योजनसहस्रम्, तस्मिन् पूर्वराशौ प्रक्षिप्ते जातानि चतुःपञ्चाशद् योजनसहस्राणि ५४००० । तस्मान्मेरुव्यासे शोधिते शेषं चतुश्चत्वारिंशद्योजनसहस्राणि ४४०००, तेषामर्द्धे द्वाविंशतिर्योजनसहस्राणि २२००० पूर्वतः पश्चिमतश्च भवन्ति । अथवेदमुपपत्त्यन्तरम्-शीतावनमुखं २९२२ योजनानि अन्तरनदीषट्कं ७५० योजनानि वक्षस्काराष्टकं ४००० योजनानि विजयषोडशकपृथुत्वं ३५४०६ योजनानि शीतोदावनमुखं २९२२ योजनानि, एतेषां विस्तारसर्वाग्रमीलने षट्चत्वारिंशद् योजनसहस्राणि ४६००० यो० एतच्च लक्षप्रमाणमहाविदेहजीवायाः शोध्यते, शेषं चतुःपञ्चाशद्योजनसहस्राणि, एतावद्भद्रशालवनक्षेत्रं तच्च मेरुसहितमिति धरणीतलसत्कदशयोजनसहस्रशोधने शेषं चतुश्चत्वारिंशद्योजनसहस्राणि तस्यार्द्धे एकैकपार्श्वे द्वाविंशतिर्योजनसहस्राणीति । उत्तरतो **दक्षिणतश्चार्द्धतृतीयानि योजनशतानि विष्कम्भेन**, दक्षिणत उत्तरतश्च तद्भद्रशालवनमर्द्धतृतीययोजनशतानि यावद् देवकुरूत्तरकुरुषु प्रविष्टमित्यर्थः, अत एव देवकुरुमेरूत्तरकुरुव्यासरुद्धे विदेहव्यासे क्व भद्रशालवनावकाशः ? इति प्रश्नो दूरापास्त इति । अथैतद्वर्णनातिदेशायाह- "**से णं एगाए**" इत्यादि, प्राग्वत् ॥२१५॥

अथात्र सिद्धायतनादिवक्तव्यमाह-

मन्दरस्स णं पव्वयस्स पुरत्थिमेणं भद्दसालवणं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता, एत्थ णं महं एगे सिद्धायतणे पण्णत्ते-पण्णासं जोअणाइं आयामेणं, पणवीसं जोअणाइं विक्खम्भेणं, छत्तीसं जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठे वण्णओ[2] ॥ २१६ ॥

"**मन्दरस्स**" इत्यादि, **मेरोः पूर्वतः पञ्चाशद्योजनानि भद्रशालवनम् 'अवगाह्य'** अतिक्रम्यात्रान्तरे **महदेकं सिद्धायतनं प्रज्ञप्तम्-पञ्चाशद्योजना-न्यायामेन पञ्चविंशतिर्योजनानि विष्कम्भेन षट्त्रिंशद्योजनानि ऊर्ध्वोच्चत्वेन अनेक-स्तम्भशतसन्निविष्टे**त्यादिकः सूत्रतोऽर्थतश्च **वर्णकः** प्रागुक्तो ग्राह्यः ॥२१६॥

---

१. पुके । ०स्यां-मु. ॥ २. द्र. १।३७ ॥

अथात्र द्वारादिवर्णकसूत्राण्याह-

तस्स णं सिद्धायय़णस्स तिदिसिं तओ दारा पं०, ते णं दारा अट्ठ जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, चत्तारि जोअणाइं[1] विक्खम्भेणं, तावइयं चेव पवेसेणं, सेआ वरकणगथूभिआगा जाव वणमालाओ भूमिभागो अ भाणिअव्वो ॥ २१७ ॥

तस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगा मणिपेढिया पण्णत्ता-अट्ठ जोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं, चत्तारि जोअणाइं बाहल्लेणं, सव्वरयणा-मई अच्छा ॥ २१८ ॥

तीसे णं मणिपेढिआए उवरिं देवच्छन्दए-अट्ठ जोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं, साइरेगाइं अट्ठ[2] जोअणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, जाव जिणपडि-मावण्णओ देवच्छन्दगस्स जाव धूवकडुच्छुआणं ॥ २१९ ॥

"**तस्स ण**"मित्यादि, प्राग्वत् । "**तस्स**"त्ति, "**तीसे ण**"मित्यादि, सूत्रद्वयं व्यक्तम् ॥२१७-२१९॥

अथोक्तरीतिमवशिष्टसिद्धायतनेषु दर्शयति-

मन्दरस्स णं पव्वयस्स दाहिणेणं भद्दसालवणं पण्णासं एवं चउद्दिसिंपि मन्दरस्स भद्दसालवणे चत्तारि सिद्धायय़णा भाणिअव्वा ॥ २२० ॥

"**मन्दरस्स**" इत्यादि, मन्दरस्य **पर्वतस्य दक्षिणतो भद्रशालवनं पञ्चाशद्योजनान्य-**वगाह्येत्याद्यालापको ग्राह्यः, **एवं चतुर्दिक्ष्वपि मन्दरस्य भद्रशालवने चत्वारि सिद्धायतनानि भणितव्यानि**, यच्च त्रिष्वतिदेष्टव्येषु चत्वार्यतिदिष्टानि तत्र **जम्बूद्वीपद्वार-**वर्णके "एवं चत्तारि वि दारा भाणिअव्वा" इत्येतत्सूत्र-व्याख्यानमनुस्मरणीयम् ॥२२०॥

अथैतद्गतपुष्करिण्यो वक्तव्याः-

मन्दरस्स णं पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं भद्दसालवणं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता, एत्थ णं चत्तारि णन्दापुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं०-

पउमा १ पउमप्पभा २ चेव, कुमुदा ३ कुमुदप्पभा ४ ।

---

१. द्र. जीवा. ६।३००-३०६ ॥ २. द्र. जीवा. ३।४१४-४१९ ॥

ताओ णं पुक्खरिणीओ पण्णासं जोअणाइं आयामेणं, पणवीसं जोअणाइं विक्खम्भेणं, दसजोअणाइं उव्वेहेणं, वण्णओ[1] वेइआ-वणसंडाणं भाणिअव्वो जाव[2] चउद्दिसिं तोरणा। तासि णं पुक्खरिणीणं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो पासायवडिंसए पण्णत्ते- पञ्चजोअणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं विक्खंभेणं, अब्भुग्गयमूसिय० एवं सपरिवारो पासायवडिंसओ भाणिअव्वो[3]।२२१।

"**मन्दरस्स**" इत्यादि, सुगमम् । अथासां प्रमाणाद्याह-"**ताओ ण**"मित्यादि, मेरोरीशान्यां **दिशि भद्रशालवनं पञ्चाशद्योजनान्यवगाह्यात्रान्तरे चतस्रो 'नन्दा'** नन्दाभिधानाः शाश्वताः **पुष्करिण्यः प्रज्ञप्ताः**, आसां च प्रादक्षिण्येन नामानि **पद्मा पद्मप्रभा कुमुदा कुमुदप्रभा चैवः** समुच्चये । **ताश्च पुष्करिण्यः पञ्चाशद्योजना-न्यायामेन पञ्चविंशतिं योजनानि विष्कम्भेन दशयोजनानि 'उद्वेधेन'** उण्डत्वेन **वर्णको वेदिका-वनखण्डानां भणितव्यः** प्राग्वत्, **यावच्चतुर्दिशि तोरणानि** । अथैतासां मध्ये यदस्ति तदाह-"**तासि ण**"मित्यादि, **तासां पुष्करिणीनां बहुमध्यदेशभागे अत्रान्तरे महानेकः ईशानस्य**[4] **देवेन्द्रस्य देवराज्ञः प्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः**, कोऽर्थः ? तं प्रासादं चतस्रः पुष्करिण्यः परिक्षिप्य स्थिता इति । **पञ्चयोजनशतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन अर्द्धतृतीयानि योजनशतानि विष्कम्भेन** समचतुरस्रत्वादायामेनापि । "**अब्भुग्गयमूसिअ**" इत्यादि प्रासादानां[5] वर्णनं प्राग्वत्, '**एवम्**' उक्ताभिलापानुसारेण '**सपरिवारः**' ईशानेन्द्रयोग्यशयनीय-सिंहासनादिपरिवारयुक्तः **प्रासादावतंसको भणितव्यः** ॥२२१॥

अथ प्रादक्षिण्येन शेषविदिग्गतपुष्करिण्यादिप्ररूपणायाह-

मंदरस्स णं एवं दाहिणपुरत्थिमेणं पुक्खरिणीओ-

उप्पलगुम्मा णलिणा४ उप्पला उप्पलुज्जला ।

तं चेव पमाणं मज्झे पासायवडेंसओ सक्कस्स सपरिवारो तेणं चेव पमाणेणं ॥ २२२ ॥

---

१. द्र. जीवा. ३।२८६ ॥ २. द्र. ४।२६-३० ॥ ३. द्र. जीवा. ३।३३८-३४५ । पण्णवणा-२।५१ ॥ ४. केपु । ईशानदे० मु. ॥ ५. प्रासादव० के ॥

"**मन्दरस्स**" इत्यादि, मेरोः **एवमितिपदमुक्तातिदेशार्थम्**, तेन "भद्दसालवणं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता" इत्यादि ग्राह्यम् । नवरं **दक्षिणपूर्वस्यामिति**-आग्नेय्यां दिशीत्यर्थः, ताश्चोत्पलगुल्मादयः पूर्वक्रमेण **तदेव 'प्रमाणम्'** ईशानविदिग्गतप्रासादप्रमाणेनेत्यर्थः ॥२२२॥

दाहिणपच्चत्थिमेणवि पुक्खरिणीओ-

भिंगा भिंगनिभा चेव, अंजणा कज्जलप्पभा[१] ।

पासायवडिंसओ सक्कस्स सीहासणं सपरिवारं ॥ २२३ ॥

'दक्षिणपश्चिमायामपि' नैर्ऋत्यां विदिशि **पुष्करिण्यो भृङ्गाद्याः** प्रादक्षिण्येन ज्ञेयाः, **प्रासादावतंसकः शक्रस्य सिंहासनं सपरिवारम्** ॥२२३॥

उत्तरपच्चत्थिमेणं पुक्खरिणीओ-

सिरिकंता १ सिरिचन्दा २ सिरिमहिआ ३ चेव सिरिणिलया ४ । पासायवडिंसओ ईसाणस्स सीहासणं सपरिवारं ॥ २२४ ॥

'उत्तरपश्चिमायां' वायव्यां विदिशि **पुष्करिण्यः श्रीकान्ताद्याः प्रासादावतंसकः** ईशानस्य **सिंहासनं सपरिवारम्**, अत्र उत्तरदिक्सम्बद्धत्वेन ऐशान-वायव्यप्रासादौ ईशानेन्द्र-सत्कौ, दक्षिणदिक्सम्बद्धत्वेन आग्नेय-नैर्ऋतप्रासादौ शक्रेन्द्रसत्काविति ॥२२४॥

सम्प्रति दिग्गजकूटवक्तव्यतामाह-

मन्दरे णं भन्ते ! पव्वए भद्दसालवणे कइ दिसाहत्थिकूडा पं० ?, गो० ! अट्ठ दिसाहत्थिकूडा पण्णत्ता, तंजहा-

पउमुत्तरे १ णीलवन्ते २, सुहत्थी ३ अंजणागिरी[२] ४ ।

कुमुदे अ ५ पलासे अ ६, वडिंसे[३] ७ रोअणागिरी[४] ८॥१॥ २२५ ॥

"**मन्दरे णं भन्ते ! पव्वए**" इत्यादि, प्रश्नसूत्रे 'दिक्षु' ऐशान्यादिविदिक्प्रभृतिषु हस्त्याकाराणि कूटानि **दिग्हस्तिकूटानि** । कूटशब्दवाच्यानामप्येषां पर्वतत्वव्यवहारः ऋषभ-कूटप्रकरण इव ज्ञेयः, **स्थानाङ्गेऽष्टमस्थाने** तु "**पूर्वादिषु दिक्षु हस्त्याकाराणि कूटानीति**" । उत्तरसूत्रे पद्मोत्तरेति श्लोकः, **पद्मोत्तरः नीलवान् सुहस्ती अञ्जनागिरिः** "अञ्जनादीनां गिरौ" [**श्रीसिद्ध० अ० ३ पा० २ सू०**] इत्यादिना दीर्घः, **कुमुदः पलाशः अवतंसः रोचनागिरिः**, अन्यत्र रोहणागिरिः, अत्रापि दीर्घत्वं प्राग्वत् ॥२२५॥

---

१. J12 V । अंजणप्पमा-मु. प ॥ २. अंजण० अपबस J1पु ॥ ३. वडेंसए-अब J12 ॥ ४. रोहणा० इति वृत्तौ पाठा. ॥

अथैषां दिग्व्यवस्थां पृच्छन्नाह-

कहि णं भन्ते ! मन्दरे पव्वए भद्दसालवणे पउमुत्तरे णामं दिसाहत्थिकूडे पं० ?, गोअमा ! मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं पुरत्थिमिल्लाए सीआए उत्तरेणं, एत्थ णं पउमुत्तरे णामं दिसाहत्थिकूडे पण्णत्ते-पञ्चजोअणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पञ्चगाउअसयाइं उव्वेहेणं, एवं विक्खम्भ[1] परिक्खेवो भाणिअव्वो[2] चुल्लहिमवन्तसरिसो, पासायाण य तं चेव पउमुत्तरो देवो रायहाणी उत्तरपुरत्थिमेणं १ ॥ २२६ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, **क्व भदन्त ! मेरौ भद्रशालवने पद्मोत्तरो नाम दिग्हस्तिकूटः प्रज्ञप्तः ?, गौतम ! मन्दरस्यैशान्यां 'पौरस्त्यायाः'** मेरुतः पूर्वदिग्वर्त्तिन्याः **शीताया उत्तरस्याम्**, अनेनोत्तरदिग्वर्त्तिन्याः शीताया व्यवच्छेदः कृतः । **अत्रान्तरे पद्मोत्तरो नाम दिग्हस्तिकूटः प्रज्ञप्तः**, ऐशानवापीचतुष्कमध्यस्थप्रासाद-प्राच्यजिन-भवनयोरन्तरालवर्त्तीत्यर्थः, अत एव दिग्हस्तिकूटा अपि मेरुतः पञ्चाशद्योजनातिक्रम एव भवन्ति, प्रासादजिनभवन-समश्रेणिस्थितत्वात् । **पञ्चयोजनशतान्यूर्ध्वोच्चत्वेन पञ्चगव्यूत-शतान्युद्वेधेन 'एवम्'** उच्चत्वन्यायेन **विष्कम्भः**, अत्र विभक्तिलोपः प्राकृतत्वात्, **परिक्षेपश्च भणितव्यः** । तथाहि-मूले पञ्चयोजनशतानि, मध्ये त्रीणि योजनशतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि, उपरि अर्द्धतृतीयानि योजनशतानीत्येवंरूपो विष्कम्भः । तथा मूले पञ्चदशयोजनशतानि एकाशीत्यधिकानि १५८१, मध्ये एकादशयोजनशतानि षडशीत्यधिकानि ११८६, किञ्चिदूनानि, उपरि सप्तयोजन-शतान्येकनवत्यधिकानि ७९१ किञ्चिदूनानीति परिक्षेपः **'प्रासादानां च'** एतद्वर्त्तिदेवसत्कानां तदेव प्रमाणमिति गम्यं यत् **क्षुद्रहिमवत्**कूटपतिप्रासादस्येति । अत्र बहुवचननिर्देशो वक्ष्यमाणदिग्हस्तिकूटवर्त्तिप्रासादेष्वपि समानप्रमाणसूचनार्थम् । **पद्मोत्तरोऽत्र देवः**, तस्य **राजधानी उत्तरपूर्वस्याम्** उक्तविदिग्वर्त्तिकूटाधिपत्वादस्येति १ ॥२२६॥

अथ शेषेषु उक्तन्यायं प्रदक्षिणाक्रमेण दर्शयन्नाह-

एवं णीलवन्तदिसाहत्थिकूडे मन्दरस्स दाहिणपुरत्थिमेणं पुरत्थिमिल्लाए सीआए दक्खिणेणं, एअस्सवि नीलवन्तो देवो, रायहाणी दाहिणपुरत्थिमेणं २ ॥ २२७ ॥

---

१. **कखत्रिपस । विक्खंभे**-J2 V ॥ २. **द्र.** ४।४८-५२ ॥

"**एवं नीलवन्त**" इत्यादि, व्यक्तम् । नवरम् **एवमि**ति–पद्मोत्तरन्यायेन **नीलवन्नाम्ना दिग्हस्तिकूटः मन्दरस्य दक्षिणपूर्वस्यां पौरस्त्यायाः शीताया दक्षिणस्याम्**, ततोऽयं प्राच्यजिनभवना-ऽग्नेयप्रासादयोर्मध्ये ज्ञेयः, **एतस्यापि नीलवान् देवः** प्रभुस्तस्य **राजधानी दक्षिणपूर्वस्यामिति** २ ॥२२७॥

एवं सुहत्थिदिसाहत्थिकूडे मंदरस्स दाहिणपुरत्थिमेणं, दक्खिणिल्लाए सीओआए पुरत्थिमेणं, एअस्स वि सुहत्थी देवो, रायहाणी दाहिणपुरत्थिमेणं ३ ॥ २२८ ॥

"**एवं सुहत्थि**" इत्यादि, नवरं '**दाक्षिणात्यायाः**' मेरुतो दक्षिणदिग्वर्त्तिन्याः **शीतोदायाः पूर्वतः**, अनेन मेरुतः पश्चिमदिग्वर्त्तिन्याः शीतोदाया व्यवच्छेदः कृतः, अत्रान्तरे **सुहत्थिदिग्हस्तिकूटः**, आग्नेयप्रासाद-दाक्षिणात्यजिनभवनमध्यवर्त्तीत्यर्थः, **एतस्यापि सुहस्ती देवो राजधानी** तस्य **दक्षिणपूर्वस्याम्**, नीलवत्सुहस्तिनोरेकस्यामेव दिशि राजधानीत्यर्थः, एवं समविदिग्वर्त्तिनो दिग्हस्तिकूटाधिपयोरेकस्यां विदिशि राजधानीद्वयं २ अग्रेऽपि भाव्यम् ३ ॥२२८॥

एवं चेव अंजणागिरिदिसाहत्थिकूडे मन्दरस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं, दक्खिणिल्लाए सीओआए पच्चत्थिमेणं, एअस्स वि अंजणागिरी देवो, रायहाणी दाहिणपच्चत्थिमेणं ४ ॥ २२९ ॥

"**एवं चेव**" इत्यादि, व्यक्तम् । नवरं दाक्षिणात्यजिनगृह-नैर्ऋतप्रासादयोर्मध्ये इत्यर्थः ४ ॥२२९॥

एवं कुमुदे वि दिसाहत्थिकूडे मन्दरस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमिल्लाए सीओआए दक्खिणेणं, एअस्स वि कुमुदो देवो, रायहाणी दाहिणपच्चत्थिमेणं ५ ॥ २३० ॥

"**एव**"मित्यादि, व्यक्तम् । नवरं '**पाश्चात्यायाः**' पश्चिमाभिमुखं वहन्त्याः **शीतोदाया दक्षिणस्यामिति**, नैर्ऋतप्रासाद-पाश्चात्यजिनभवनयोर्मध्यवर्त्तीत्यर्थः ५ ॥२३०॥

एवं पलासे वि दिसाहत्थिकूडे मन्दरस्स उत्तरपच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमिल्लाए सीओआए उत्तरेणं, एअस्स वि पलासो देवो, रायहाणी उत्तरपच्चत्थिमेणं ६ ॥ २३१ ॥

एवं वडेंसे वि दिसाहत्थिकूडे मन्दरस्स उत्तरपच्चत्थिमेणं, उत्तरिल्लाए सीआए महाणईए पच्चत्थिमेणं, एअस्सवि वडेंसो देवो, रायहाणी उत्तरपच्चत्थिमेणं ॥ २३२ ॥

"**एव**"मिति, व्यक्तम् । पाश्चात्यजिनभवन-वायव्यप्रासादयोरन्तरे इत्यर्थः ६ "**एवं वडेंसे वि दिसाहत्थिकूडे**" इत्यादि गतार्थम् । नवरम् '**औत्तराह्याः**' मेरुत उत्तरदिग्वर्त्तिन्याः **शीतायाः पश्चिमतः**, अनेन पूर्वदिग्वर्त्तिन्याः शीतायाः व्यवच्छेदः कृतः, वायव्यप्रासादौत्तराहभवनयोर्मध्यवर्त्तीत्यर्थ ७ ॥२३१-२३२॥

एवं रोअणागिरी दिसाहत्थिकूडे मंदरस्स उत्तरपुरत्थिमेणं, उत्तरिल्लाए सीआए पुरत्थिमेणं, एयस्स वि रोअणागिरी देवो, रायहाणी उत्तरपुरत्थिमेणं ॥ २३३ ॥

"**एवं रोअणागिरी दिसाहत्थिकूडे**" इत्यादि व्यक्तम् । नवरम् **औत्तराह्याः-शीतायाः पूर्वत**, [1]औत्तराह्यजिनभवनैशानप्रासादयोरन्तराले इत्यर्थः । एषु च बहुभिः **पूर्वाचार्यैः** शाश्वतजिनभवनसूत्रेषु जिनभवनान्युच्यन्ते, इह तु सूत्रकृता नोक्तानि, तेन तत्त्वं केवलिनो विदन्ति । अत एवोक्तं **रत्नशेखरसूरिभिः स्वोपज्ञक्षेत्रविचारे**-

"[2]करिकूड-कुण्ड-नइ-दह-कुरु-कंचण-जमल-[3]समविअड्ढेसुं ।
जिणभवणविसंवाओ जो तं जाणंति गीअत्था ॥१॥" [**लघुक्षेत्रसमास. गा. ७८**] इति,

अथैषां वापीचतुष्कप्रासादानां जिनभवनानां करिकूटानां च स्थाननियमनेऽयं **वृद्धानां सम्प्रदायः** । तथाहि-भद्रशालवने हि मेरोश्चतस्रोऽपि दिशो नदीद्वयप्रवाहैः रुद्धाः, अतो दिक्ष्वेव भवनानि न भवन्ति, किन्तु नदीतटनिकटस्थानि भवनानि, गजदन्तनिकटस्थाः प्रासादाः, भवन-प्रासादान्तरालेष्वष्टसु करिकूटाः । अत एव विशेषतो दर्श्यते-मेरोरुत्तरपूर्वस्यामुत्तरकुरूणां बहिः शीताया उत्तरदिग्भागे पञ्चाशद्योजनेभ्यः परः प्रासादः, तत्परिक्षेपिण्यश्चतस्रो वाप्यः, एवं शेषेष्वपि प्रासादेषु ज्ञेयम् । मेरोः पूर्वस्यां शीताया दक्षिणतः ५० योजनेभ्यः परं सिद्धायतनम्, मेरोर्दक्षिणपूर्वस्यां ५० योजनातिक्रमे देवकुरूणां बहिः शीताया

१. औतराह० पुके ॥
२. **"हस्तिकूटकुण्डनदीद्रहकुरुकाञ्चनयमकवृत्तवैताढ्येषु ।**
यो जिनभवनविसंवादस्तं गीतार्था जानन्ति ॥१॥"
३. ०सप्तम० के ॥

दक्षिणत एव प्रासादः, मेरोर्दक्षिणतः ५० योजनातिक्रमे देवकुरूणां मध्ये शीतोदायाः पूर्वतः सिद्धायतनम्, मेरोरपरदक्षिणतः ५० योजनान्यवगाह्य देवकुरूणां बहिः शीतोदाया दक्षिणतः प्रासादः, मेरोः पश्चिमायां ५० योजनातिक्रमे शीतोदाया उत्तरतः सिद्धायतनम्, मेरोरपरोत्तरस्यां ५० योजनान्यवगाह्योत्तरकुरूणां बहिः शीतोदाया उत्तरत एव प्रासादः, मेरोरुत्तरतः पञ्चाशद्योजनेभ्यः उत्तरकुरूणां मध्ये शीतायाः पश्चिमतः सिद्धायतनमिति, एतेषां चाष्टस्वन्तरेष्वष्टौ [करि]कूटा इति ॥२३३॥

अत्र सुखावबोधाय स्थापना यथा-

अथ द्वितीयवनं पृच्छन्नाह-

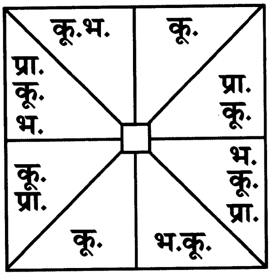

कहि णं भन्ते ! मन्दरे पव्वए णंदणवणे णामं वणे पण्णत्ते ?, गो० ! भद्दसालवणस्स बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ पञ्च जोअणसयाइं उड्ढं उप्पइत्ता, एत्थ णं मन्दरे पव्वए णन्दणवणे णामं वणे पण्णत्ते- पञ्चजोअणसयाइं चक्कवालविक्खम्भेणं वट्टे वलयाकारसंठाण-संठिए, जे णं मन्दरं पव्वयं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ । णवजोअणसहस्साइं णव य चउप्पण्णे जोअणसए छच्चेगारसभाए जोअणस्स बाहिं गिरिविक्खम्भो, एगत्तीसं जोअणसहस्साइं चत्तारि अ अउणासीए जोअणसए किंचिविसेसाहिए बाहिं गिरिपरिरए णं अट्ठ जोअणसहस्साइं णव य चउप्पण्णे जोअणसए छच्चेगारसभाए जोअणस्स अंतो गिरिविक्खम्भो, अट्ठावीसं जोअणसहस्साइं तिण्णि य सोलसुत्तरे जोअणसए अट्ठ य इक्कारसभाए जोअणस्स अंतो गिरिपरिरए णं । से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता[1] संपरिक्खित्ते, वण्णओ जाव[2] देवा आसयन्ति ॥ २३४ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, प्रश्नः प्रतीतः । उत्तरसूत्रे **गौतम ! भद्रशालवनस्य बहुसमरमणीयाद्भूमिभागात् पञ्चयोजनशतान्यूर्द्ध्वम् 'उत्पत्त्य'** गत्वाऽग्रतो वर्द्धिष्णाविति गम्यं, **मन्दरे पर्वते** एतस्मिन् प्रदेशे **नन्दनवनं नाम वनं प्रज्ञप्तम्-पञ्चयोजन-शतानि**

१. समन्ता-J12 ॥ २. द्र. १।१०-१३ ॥

"चक्रवालविष्कम्भेन" चक्रवालं-विशेषस्य सामान्येऽनुप्रवेशात् समचक्रवालं तस्य यो विष्कम्भः-स्वपरिक्षेपस्य सर्वतः समप्रमाणतया विष्कम्भस्तेन, अनेन विषमचक्रवालादि-विष्कम्भनिरासः, अत एव **वृत्तम्** । तच्च मोदकादिवत् घनमपि स्यादत आह-**'वलयाकारं'** मध्ये शुषिरं यत् संस्थानं तेन **संस्थितम्** । इदमेव द्योतयति-**यन्मन्दरं पर्वतं सर्वतः समन्तात् 'सम्परिक्षिप्य'** वेष्टयित्वा **तिष्ठति** । अथ मेरोर्बहिर्विष्कम्भादिमानमाह-**"णवजोअण"** इत्यादि, मेखलाविभागे हि गिरीणां बाह्याभ्यन्तररूपं विष्कम्भद्वयं भवति । तत्र मेरौ बाह्य-विष्कम्भोऽयम्-**नवयोजनसहस्राणि नव शतानि चतुष्पञ्चाशद**धिकानि **षट् चैकादश-भागा [९९५४ $\frac{६}{११}$] योजनस्य** ।

तथाहि-मेरोरूर्ध्वमेकस्मिन् योजने गते विष्कम्भसम्बन्धी एक एकादशभागो योजनस्य गतो लभ्यते इति प्रागुक्तम् । ततोऽत्र त्रैराशिकम्-यद्येकयोजनारोहे मेरोरुपरि व्यासस्यापचयः सर्वत्रैकादशो भागो योजनस्यैको लभ्यते, ततः पञ्चशतयोजनारोहे कोऽपचयो लभ्यते ?, लब्धानि ४५ योजनानि ५/११ । एतत् समभूतलगतव्यासात् दशयोजनसहस्ररूपात् त्यज्यते, जातं यथोक्तं मानम् । एतच्च नन्दनवनस्य बहिः पूर्वा-ऽपरयोरुत्तर-दक्षिणयोर्वा अन्तयोः सम्भवति, अतो नन्दनवनाद्बहिर्वर्त्तित्वेन **बाह्यो गिरिविष्कम्भः** । तथा **एकत्रिंशद्योजन-सहस्राणि चत्वारि शतानि एकोनाशी**त्यधिकानि [३१,४७९ यो०] **किञ्चिद्विशेषाधिकानि** इत्ययं **बाह्यो 'गिरिपरिरयः'** मेरुपरिधिरित्यर्थः, **णमिति** वाक्यालङ्कारे । **'अन्तर्गिरिविष्कम्भः'** नन्दनवनादर्वाक् यो गिरिविस्तारः **सोऽष्टयोजनसहस्राणि नव च योजनशतानि चतुष्पञ्चाश**-दधिकानि **षट् च एकादशभागा** [८,९५४ $\frac{६}{११}$] योजनस्येत्येतावत्प्रमाणः, अयं च बाह्यगिरि-विष्कम्भे सहस्रोने यथोक्तः स्यात् । तथा **अष्टाविंशतियोजनसहस्राणि त्रीणि च योजन-शतानि षोडशा**धिकानि **अष्ट चैकादशभागा योजनस्यै**तावत्प्रमाणो**ऽन्तर्गिरिपरिरय** इति, **णमिति** प्राग्वत् । अथात्र पद्मवरवेदिकाद्याह-**"से णं एगाए पउम"** इत्यादि, व्यक्तम् ॥२३४॥

अथात्र सिद्धायतनादिवक्तव्यमारभ्यते-[१]

मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं महं एगे सिद्धायणे प० । एवं चउद्दिसिं चत्तारि सिद्धाययणा विदिसासु पुक्खरिणीओ,[२] तं चेव पमाणं सिद्धाययणाणं, पुक्खरिणीणं च, पासायवडिंसगा तह चेव [३]सक्केसाणाणं तेणं चेव पमाणेणं ॥ २३५ ॥

---

१. वक्तव्यतामारभते-पुके ॥ २. द्र. ४।२१६-२२४ ॥ ३. सक्कीसा० अकब J12 ॥

"**मन्दरस्स ण**"मित्यादि, **मन्दरस्य पूर्वस्याम्** '**अत्र**' नन्दने पञ्चाशद्योजनातिक्रमे **महदेकं सिद्धायतनं प्रज्ञप्तम्** । '**एवमि**'ति भद्रशाल-वनानुसारेण **चतसृषु दिक्षु चत्वारि सिद्धायतनानि विदिक्षु पुष्करिण्यः, तदेव प्रमाणं सिद्धायतनानां पुष्करिणीनां च** यद्भद्रशाले उक्तं **प्रासादावतंसकास्तथैव शक्रेशान-योर्वा**च्याः, यथा भद्रशाले दक्षिणदिक्सम्बद्ध-विदिग्वर्त्तिनः प्रासादाः शक्रस्य, तथोत्तर-दिक्सम्बद्धविदिग्वर्त्तिनस्तु ईशानेन्द्रस्य **तेनैव** '**प्रमाणेन**' पञ्चयोजनशतोच्चत्वादिनेति । अत्र च पुष्करिणीनां नामानि सूत्रकारालिखित-त्वाल्लिपिप्रमादाद्वा आदर्शेषु न दृश्यन्त इति तत्रैशान्यादिप्रासादक्रमादिमानि नामानि द्रष्टव्यानि **पूज्यप्रणीतक्षेत्रविचारतः**-नन्दोत्तरा १ नन्दा २ सुनन्दा ३ नन्दिवर्द्धना ४, तथा नन्दिषेणा १ अमोघा २ गोस्तूपा ३ सुदर्शना ४, तथा भद्रा १ विशाला २ कुमुदा ३ पुण्डरीकिणी ४, तथा विजया १ वैजयन्ती २ अपराजिता ३ जयन्ती ४ इति । कूटान्यपि मेरुतस्तावत्येवान्तरे सिद्धायतनप्रासादावतंसकमध्यवर्त्तीनि ज्ञातव्यानि । तत्र यो विशेषस्तमाह ॥२३५॥

णंदणवणे णं भन्ते ! कइ कूडा पं० ?, गोअमा ! णव कूडा पण्णत्ता, तंजहा-णन्दणवणकूडे १ मन्दरकूडे २ णिसहकूडे ३ हिमवयकूडे ४ रययकूडे ५ रुअगकूडे ६ सागरचित्तकूडे ७ वइरकूडे ८ बलकूडे ९ ॥ २३६ ॥

"**णन्दणवणे ण**"मित्यादि, व्यक्तम् । भद्रशालेऽष्टौ कूटानि इह तु नव, ततः सङ्ख्यया नामभिश्च विशेषः । तेष्वाद्यं स्थानतः पृच्छति ॥२३६॥

कहि णं भन्ते ! णन्दणवणे णंदणवणकूडे णामं कूडे पं० ?, गोअमा ! मन्दरस्स पव्वयस्स [1]पुरत्थिमिल्लसिद्धाययणस्स उत्तरेणं, उत्तरपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसयस्स दक्खिणेणं एत्थ णं णन्दणवणे [2]णंदणवणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते । पञ्चसइआ कूडा पुव्ववण्णिआ भाणिअव्वा, देवी मेहंकरा रायहाणी विदिसाए १ ॥ २३७ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, क्व **भदन्त ! नन्दनवने नन्दनवनकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तम्** ?, **गौतम ! मन्दरस्य पर्वतस्य** सम्बन्धिनः **पौरस्त्यसिद्धायतनस्योत्तरत** '**उत्तरपौरस्त्ये**' ईशानदिग्वर्त्तिनः **प्रासादावतंसकस्य दक्षिणेन** एतस्मिन् प्रदेशे **नन्दनवनकूटं नाम कूटं**

१. पुरत्थिमिल्लस्सउ० कखत्रिस J1 । पुरत्थिमिल्लस्स सिद्धायणस्स उ० J2 ॥ २. पुके । णंदणवणे णामं-मु. । णामं-V ॥

प्रज्ञप्तम्। अत्रापि मेरुतः पञ्चाशद्योजनातिक्रम एव क्षेत्रनियमो बोध्यः, अन्यथाऽस्य प्रासाद-भवनयोरन्तरालवर्त्तित्त्वं न स्यात् । अथ लाघवार्थमुक्तस्य वक्ष्यमाणानां च कूटानां साधारणमतिदिशति-**पञ्चशतिकानि कूटानि 'पूर्वं'** विदिग्हस्तिकूटप्रकरणे **'वर्णितानि'** उच्चत्वव्यासपरिधिवर्णसंस्थानराजधानीदिगादिभिः तान्यत्र **भणितव्यानीति** शेषः, सदृश-गमत्वात् । अत्र **देवी मेघङ्करा** नाम्नी, अस्य **राजधानी विदिशि**, अस्य पद्मोत्तरकूटस्थानीय-त्वेन राजधानीविदिगुत्तरपूर्वा ग्राह्या ॥२३७॥

अथ शेषकूटानां तद्देवीनां तद्राजधानीनां च का व्यवस्था ? इत्याह-

एआहिं चेव पुव्वाभिलावेणं णेअव्वा इमे कूडा इमाहिं दिसाहिं पुरत्थिमिल्लस्स भवणस्स दाहिणेणं, दाहिणपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स उत्तरेणं, मन्दरे कूडे मेहवई देवी रायहाणी पुव्वेणं २ । दक्खिणिल्लस्स भवणस्स पुरत्थिमेणं, दाहिणपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेणं [१]णिसहे कूडे सुमेहा देवी रायहाणी दक्खिणेणं ३ । दक्खिणिल्लस्स भवणस्स पच्चत्थिमेणं, दक्खिणपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पुरत्थिमेणं [२]हेमवए कूडे मे[३]हमालिनी देवी रायहाणी दक्खिणेणं ४ । पच्चत्थिमिल्लस्स भवणस्स दक्खिणेणं, दाहिणपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स उत्तरेणं [४]रयए कूडे सुवच्छा देवी रायहाणी पच्चत्थिमेणं ५ । पच्चत्थिमिल्लस्स भवणस्स उत्तरेणं, उत्तरपच्चत्थिमिल्लस्स पासाय-वडेंसगस्स दक्खिणेणं, [५]रुअगे कूडे वच्छमित्ता देवी, रायहाणी पच्चत्थिमेणं ६ । उत्तरिल्लस्स भवणस्स पच्चत्थिमेणं, उत्तरपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडें-सगस्स पुरत्थिमेणं [६]सागरचित्ते कूडे, वइरसेणा देवी, रायहाणी उत्तरेणं ७ । उत्तरिल्लस्स भवणस्स पुरत्थिमेणं, उत्तरपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेणं [७]वइर कूडे बलाहया देवी, रायहाणी उत्तरेणं ८ ॥ २३८ ॥

---

१. णिसहकूडे-अकखत्रिबस । णिसभकूडे-J2 ॥ २. हेमवयकूडे-अकखत्रिबस । हेमवतकूडे-J12 ॥ ३. मेघमा० V । हेममा० मु. ॥ ४. रययकूडे-अब J12 । रजतकूडे-कखस ॥ ५. रुयगकूडे-अकखत्रिबस J12 ॥ ६. सागरचित्तकूडे-अकखत्रिबस J12 ॥ ७. वइरकूडे-अकखत्रिबस मु. ॥

"**एआहिं**" इत्यादि, '**एताभिः**' देवीभिश्चशब्दाद् राजधानीभिरनन्तरसूत्रे वक्ष्यमाणाभिः सह '**पूर्वाभिलापेन**' नन्दनवनकूटसत्कसूत्रगमेन **नेतव्यानि** '**इमानि**' वक्ष्यमाणानि **कूटानि** '**इमाभिः**' इक्ष्यमाणा-**भिर्दिग्भिः** । एतदेव दर्शयति-"**पुरत्थिमिल्लस्स**" इत्यादि, इदं च सर्वं भद्रशालवनगमसदृशं तेन तदनुसारेण व्याख्येयम् । विशेषश्चात्रायम्-पञ्चशतिके नन्दनवने मेरुतः पञ्चाशद्योजनान्तरे स्थितानि, पञ्चशतिकानि कूटानि किञ्चिन्मेखलातो बहिराकाशे स्थितानि बोध्यानि बलकूटवत्, एतत्कूटवासिन्यश्च देव्योऽष्टौ दिक्कुमार्यः ॥२३८॥ अत्र नवमं कूटं सहस्राङ्कमिति पृथक् पृच्छति-

कहि णं भन्ते ! [1]णन्दणवणे बलकूडे णामं कूडे पण्णत्ते ?, गोअमा ! मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं, एत्थ णं णन्दणवणे बलकूडे णामं कूडे प० । एवं जं [2]चेव हरिस्सहकूडस्स पमाणं रायहाणी अ, तं चेव बलकूडस्स वि । णवरं बलो देवो, रायहाणी उत्तरपुरत्थिमेणं ॥ २३९ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, **क्व भदन्त ! नन्दनवने बलकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तम्** ?, **गौतम ! मेरोरीशान**विदिशि **नन्दनवनम् अत्रान्तरे बलकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तम्** । अयमर्थः-मेरुतः पञ्चाशद्योजनातिक्रमे ईशानकोणे ऐशानप्रासादस्ततोऽपीशानकोणे बलकूटम्, महत्तमवस्तुनो विदिशोऽपि महत्तमत्त्वात् । '**एवम्**' अनेनाभिलापेन **यदेव** '**हरिस्सहकूटस्य**' माल्यवद्व-क्षस्कारगिरेर्नवमकूटस्य '**प्रमाणं**' सहस्रयोजनरूपम्, यथा चाल्पेऽपि स्वाधारक्षेत्रे महतोऽप्य-स्यावकाशः, या **च राजधानी** चतुरशीतियोजनसहस्रप्रमाणा **तदेव** सर्वं **बलकूटस्यापि** । **नवरमत्र बलो देव**स्तत्र तु हरिस्सहनामा ॥२३९॥

अथ तृतीयवनोपक्रमः-

कहि णं भन्ते ! मन्दरए पव्वए सोमणसवणे णामं वणे प० ?, गोअमा ! णन्दणवणस्स बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ अद्धतेवट्ठिं जोअणसहस्साइं उद्धं उप्पइत्ता, एत्थ णं मन्दरे पव्वए सोमणसवणे णामं वणे पण्णत्ते-पञ्चजोयणसयाइं चक्कवालविक्खम्भेणं वट्टे वलयाकारसंठाणसंठिए, जे णं मन्दरं पव्वयं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ । चत्तारि जोअण-

१. नंदणवणे-२-अकखबस J2 ॥ २. द्र. ४।१६५ ॥

सहस्साइं दुण्णि य बावत्तरे जोअणसए अट्ठ य इक्कारसभाए जोअणस्स बाहिं[1] गिरिविक्खम्भेणं, तेरस जोअणसहस्साइं पञ्च य एक्कारे जोअणसए छच्च इक्कारसभाए जोअणस्स बाहिं गिरिपरिरए णं । तिण्णि जोअणसहस्साइं दुण्णि अ बावत्तरे जोअणसए अट्ठ य इक्कारसभाए जोयणस्स अंतो गिरिविक्खम्भेणं, दस जोअणसहस्साइं तिण्णि अ अउणापण्णे जोअणसए तिण्णि अ इक्कारसभाए जोअणस्स अंतो गिरिपरिरए णं । से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते वण्णओ[2] किण्हे किण्होभासे जाव आसयन्ति, एवं कूडवज्जा सच्चेव णन्दणवणवत्तव्वया भाणियव्वा, तं चेव ओगाहिऊण जाव पासायवडेंसगा सक्कीसाणाणं ॥ २४० ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, **क्व भदन्त ! मेरौ सौमनसवनं नाम वनं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! नन्दनवनस्य बहुसमरमणीयाद् भूमिभागादर्द्धत्रिषष्टिं** सार्द्धद्वाषष्टिरित्यर्थः, **योजनसहस्राण्यूदूर्ध्वमुत्पत्त्यात्रान्तरे मन्दरे पर्वते सौमनसवनं नाम वनं प्रज्ञप्तम्-पञ्चयोजनशतानि चक्रवालविष्कम्भे**नेत्यादिपदानि प्राग्वत् । **यन्मन्दरं पर्वतं सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्य तिष्ठति** । एतच्च कियता विष्कम्भेण कियता च परिक्षेपेण ? इत्याह-"**चत्तारी**"त्यादि, प्रथममेखलायामिव द्वितीयमेखलायामपि विष्कम्भद्वयं वाच्यम् । तत्र **बहिर्गिरिविष्कम्भेन चत्वारि योजनसहस्राणि द्वे च योजनशते द्विसप्तते[3]** द्विसप्तत्यधिके **अष्टौ चैकादशभागा** [४,२७२ $\frac{8}{11}$] **योजनस्य** । एतदुपपत्तिरेवम्-धरणीतलात् सौमनसं यावद् गमने मेरूच्छ्रयस्य ६३ सहस्रयोजनान्यतिक्रान्तानि । एषां चैकादशभिर्भागे लब्धं ५७२७-३/११, अस्मिश्च राशौ धरणीतलगतमेरुव्यासाद्दशसहस्रयोजनप्रमाणाच्छोधिते जातं यथोक्तं मानमिति । **बहिर्गिरिपरिरयेण त्रयोदश योजनसहस्राणि पञ्चयोजनशतानि 'एकादशानि'** एकादशाधिकानि **षट् च एकादशभागा १३,५११ $\frac{6}{11}$ योजनस्य**, तथाऽ**न्तर्गिरिविष्कम्भेन त्रीणि योजनसहस्राणि द्वे द्वासते[4]** द्विसप्तत्यधिके **योजनशते अष्टौ चैकादशभागा योजनस्य** । उपपत्तिस्तु बहिर्गिरिविष्कम्भात् उभयतो मेखलाद्वयव्यासे पञ्चशत२योजनरूपे-

---

१. बाहिरवि० अखबस । बाहिर गिरिवि० त्रि ॥ २. द्र. १।१०-१३ ॥ ३. पुके । द्विसप्तत्यधिके-मु. ॥ ४. पुके । द्वासप्तत्यधिके-मु. ॥

ऽपनीते यथोक्तमानम् । **अन्तर्गिरिपरिरयेण तु दश सहस्त्रयोजनानि त्रीणि च योजनशतानि एकोनपञ्चाशदधिकानि त्रयश्चैकादशभागा** [१०,३४९ $\frac{३}{११}$] **योजनस्ये**ति । अथास्य वर्णकसूत्रम्-"**से णं एगाए**" इत्यादि, व्यक्तम् । नवरम् '**एवं**' उक्ताभिलापेन **कूटवर्ज्जा सैव नन्दनवनवक्तव्यता भणितव्या** । कियत्पर्यन्तम् ? इत्याह-'**तदेव**' मेरुतः पञ्चाशद्योजनरूपं क्षेत्र**मवगाह्य यावत्प्रासादावतंसकाः शक्रेशानयो**रिति । वापीनामानि त्विमानि तेनैव क्रमेण-सुमनाः १ सौमनसा २ सौमनांसा सौमनस्या वा ३ मनोरमा ४, तथा उत्तरकुरुः १ देवकुरुः २ वारिषेणा ३ सरस्वती ४, तथा विशाला १ माघभद्रा २ अभयसेना ३ रोहिणी ४, तथा भद्रोत्तरा १ भद्रा २ सुभद्रा ३ भद्रावती भद्रवती वा ४ ॥२४०॥

अथ चतुर्थं वनं-

कहि णं भन्ते ! मन्दरपव्वए पंडगवणे णामं वणे प० ?, गो० ! सोमणसवणस्स बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ छत्तीसं जोअणसहस्साइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं मन्दरे पव्वए सिहरतले पंडगवणे णामं वणे पण्णत्ते-चत्तारि चउणउए जोयणसए चक्कवालविक्खम्भेणं वट्टे वलयाकारसंठाणसंठिए, जे णं [१]मंदरचूलिअं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ । तिण्णि जोअणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोअणसयं किंचिविसे[२]साहिअं परिक्खेवे णं । से णं एगाए पउमवरवेइआए एगेण य [३]वणसंडेणं [४]जाव किण्हे देवा आसयन्ति ॥ २४१ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, प्रश्नः प्रतीतः । उत्तरसूत्रे **सौमनसवनस्य बहुसमरमणीयाद् भूमिभागादूर्ध्वं षट्त्रिंशद्योजनसहस्त्राणि उत्पत्य अत्र देशे मन्दरे पर्वते 'शिखरतले'** मौलिभागे **पण्डकवनं नाम वनं प्रज्ञप्तम्-चत्वारि योजनशतानि चतुर्नवत्य**धिकानि ४९४ यो० **चक्रवालविष्कम्भेन** । एतदुपपत्तिस्तु-सहस्त्रयोजनप्रमाणाच्छिखरव्यासान्मध्यस्थितचूलिकामूलव्यासे द्वादशयोजनप्रमाणे शोधितेऽवशिष्टेऽर्धीकृते यथोक्तमानम् । '**यत्**' पण्डकवनं **मन्दरचूलिकां सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्य तिष्ठति**, यथा नन्दनवनं मेरुं सर्वतः समन्तात्

१. मंदिरस्स चूलियं-अब J12 । मंदरस्स चूलियं-कखत्रिस ॥ २. ०साहिए-अकखत्रिबस J12 ॥ ३. द्र. ११०-१३ ॥ ४. "जाव इति पदं किण्हे पदानन्तरं युज्यते, अत्र कश्चिद् लिपिप्रमादः सम्भाव्यते ।" इति V पृ. ५१८ टि. २ ॥

सम्परिक्षिप्य स्थितम्, तथेदं मेरुचूलिकामिति । **त्रीणि योजनसहस्राणि एकं च 'द्वाषष्टं'** द्वाषष्ट्यधिकं **योजनशतं [३,१६२ यो०] किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेणे**ति । अथास्य वर्णकमाह-"**से णं**" इत्यादि, व्यक्तम् ॥२४१॥

या च पण्डकवनमभिवाप्य स्थिता सा क्व चूलिका ? इत्याह-

पंडगवणस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं मंदरचूलिआ णामं चूलिआ पण्णत्ता-चत्तालीसं जोअणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले बारस जोअणाइं विक्खम्भेणं, मज्झे अट्ठ जोअणाइं विक्खम्भेणं, उप्पिं चत्तारि जोअणाइं विक्खम्भेणं, मूले साइरेगाइं सत्ततीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं, मज्झे साइरेगाइं पणवीसं जोअणाइं परिक्खेवेणं, उप्पिं साइरेगाइं बारस[1] जोअणाइं परिक्खेवेणं, मूले वित्थिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुआ गोपुच्छसंठाण-संठिआ सव्ववेरुलिआमई अच्छा । सा णं एगाए पउमवरवेइआए[2] जाव संपरिक्खित्ता इति । उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे जाव[3] सिद्धायायणं बहुमज्झदेसभाए-कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खम्भेणं देसूणगं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसय जाव[4] धूवकडुच्छुगा ॥ २४२ ॥

"**पंडगवणे**"त्ति, **पण्डकवनस्य 'मध्ये'** द्वयोश्चक्रवालविष्कम्भयोर्विचाले **अत्रान्तरे** 'मन्दरस्य' मेरोः 'चूलिका' शिखा इव **मन्दरचूलिका नाम चूलिका प्रज्ञप्ता-चत्वारिंशतं योजनान्यूर्ध्वोच्चत्वेन, मूले द्वादश योजनानी**त्यादिसूत्रं प्राग्वत्, केवलं **सर्वात्मना वैडूर्यमयी,** नीलवर्णत्वात् ।

साम्प्रतं सूत्रेऽनुक्तोऽपि वाचयितृणामपूर्वार्थजिज्ञापयिषया चूलिकाया इष्टस्थाने विष्कम्भ-परिज्ञानाय प्रसङ्गगत्योपायो लिख्यते, यथा तत्राधोमुखगमने करणमिदं-चूलिकायास्सर्वो-परितनभागादवपत्य यत्र योजनादावतिक्रान्ते विष्कम्भजिज्ञासा तस्मिन्नतिक्रान्तयोजनादिके पञ्चभिर्भक्ते लब्धराशिश्चतुर्भिर्युतस्तत्र व्यासः स्यात्, तत्र उपरितलाद्विंशतियोजनान्यवतीर्णस्ततो विंशतिर्ध्रियते तस्याः पञ्चभिर्भागे लब्धाश्चत्वारः ते चतुर्भिः सहिताः अष्टौ एतावानुपरितला-द्विंशतियोजनातिक्रमे विष्कम्भः, एवमन्यत्रापि भावनीयम् । यदा तूर्ध्वमुखगत्या विष्कम्भ-जिज्ञासा तदाऽयमुपायः-चूलिकाया मूलादुत्पत्य यत्र योजनादौ विष्कम्भजिज्ञासा तस्मिन्न-

१. दुवालस-अत्रिब J2 । २. द्र. ४।३ ॥ ३. द्र. १।३६-३७ ॥ ४. द्र. १।३७-४० ॥

तिक्रान्तयोजनादिके पञ्चभिर्भक्ते यल्लब्धं तावत्प्रमाणे मूलविष्कम्भादपनीते अवशिष्टं तत्र विष्कम्भः । तथाहि-मूलात्किल विंशतिर्योजनान्यूर्ध्वं गतस्ततो विंशतिर्ध्रियते तस्याः पञ्चभिर्भागे लब्धानि चत्वारि योजनानि तानि मूलविष्कम्भाद् द्वादशयोजनप्रमाणादपनीयन्ते शेषाण्यष्टौ एतावान् मूलादूर्ध्वं विंशतियोजनातिक्रमे विष्कम्भः, एवमन्यत्रापि भावनीयम् । यथा मेरौ एकादशभिरंशैरेकोंऽशः एकादशभिर्योजनैरेकं योजनं व्यासस्य चीयते अपचीयते च तथाऽस्यां पञ्चभिरंशैरेकोंऽशः पञ्चभिर्योजनैरेकं योजनं व्यासस्येति तात्पर्यार्थः[१] । अत्र बीजम्-द्वादशयोजनप्रमाणाच्चूलाव्यासादारोहे चत्वारिंशद्योजनेषु गतेषु अष्टौ योजनानि त्रुट्यन्ति, अवरोहे च तान्येव वर्द्धन्ते ततस्त्रैराशिकस्थापना-।४० ।८ ।१ । मध्यराशावन्त्यराशिना गुणिते एकेन गुणितं तदेव भवतीति जाता अष्टौ, अस्य राशेश्चत्वारिंशता भजने भागाप्राप्तौ द्वयो राश्योरष्टभिरपवर्त्ते जातं १/५ ।

अथास्य वर्णकसूत्रम्-"**सा णं एगाए पउमवर० जाव**" इत्यादि, प्राग्वत् । अथास्यां बहुसमरमणीयभूमिभागवर्णनं सिद्धायतनवर्णनं चातिदेशेनाह-"**उप्पिं बहुसम**" इत्यादि, अस्याश्चूलिकाया **उपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः** प्रज्ञप्तः, स च **यावत्**पदकरणात् "से जहा णामए आलिंगपुक्खरे इ वा" इत्यादिको ग्राह्यः । तथा तस्य **बहुमध्यदेशभागे सिद्धायतनं** वाच्यम्-**क्रोशमायामेनार्द्धक्रोशं विष्कम्भेन देशोनं क्रोशमुच्चत्वेन अनेकस्तम्भशत**सन्निविष्टमित्यादिकः सिद्धायतनवर्णको वाच्यो **यावद् धूवकडुच्छुका**नामष्टोत्तरं शतमिति ॥२४२॥

अथ प्रस्तुतवने भवनप्रासादादिवक्तव्यगोचरं सूत्रम्-

मन्दरचूलिआए णं पुरत्थिमेणं पंडगवणं पण्णासं जोअणाइं ओगाहित्ता, एत्थ णं महं एगे भवणे प० । एवं जच्चेव सोमणसवणे[२] पुव्ववण्णिओ[३] गमो भवणाणं पुक्खरिणीणं पासायवडेंसगाण य, सो चेव णेअव्वो जाव सक्कीसाणवडेंसगा, तेणं चेव परिमाणेणं[४] ॥ २४३ ॥

"**मन्दरचूलिआ**" इत्यादि, मन्दर-चूलिकायाः **पूर्वतः पण्डकवनं पञ्चाशद्योजनान्यवगाह्य अत्रान्तरे महदेकं 'भवनं'** सिद्धायतनं **प्रज्ञप्तम्, 'एवम्'** उक्ताभिलापेन **य एव सौमनसवने** 'पूर्ववर्णितः' नन्दनवनप्रस्तावोक्तो **'गमः'** कूटवर्जः सिद्धायतनादिव्यवस्थाधायकः सदृशालापकः पाठः **स एवात्रापि भवनानां पुष्करिणीनां प्रासादावतंसकानां च ज्ञातव्यः,**

१. कारणमित्यर्थः ॥ २. सोमणसवणं-अखत्रिबस J12 । सोमणस-क । सोमणसे-पु.मु. ॥ ३. ०वण्णियं भवणं-J12 ॥ ४. द्र. ४।२४० ॥

यावच्छक्रेशानप्रासादावतंसकास्तेनैव प्रमाणेनेति । अत्र वापीनामानि प्रागुक्तयुक्त्या सूत्रेऽदृष्टान्यपि ग्रन्थान्तरतो लिख्यन्ते, तद्यथा-ऐशानप्रासादे पूर्वादिक्रमेण पुण्ड्रा १ पुण्ड्रप्रभा २ सुरक्ता ३ रक्तावती ४, आग्नेयप्रासादे क्षीररसा १ इक्षुरसा २ अमृतरसा ३ वारुणी ४, नैर्ऋतप्रासादे शङ्खोत्तरा १ शङ्खा २ शङ्खावर्त्ता ३ बलाहका ४, वायव्यप्रासादे पुष्पोत्तरा १ पुष्पवती २ सुपुष्पा ३ पुष्पमालिनी ४ चेति ॥२४३॥

अथात्राभिषेकशिलावक्तव्यतामाह-

पण्डकवणे णं भन्ते ! वणे कइ अभिसेअसिलाओ पण्णत्ताओ ?, गोअमा ! चत्तारि अभिसेअसिलाओ प०, तं०-पंडुसिला १ पण्डुकंबल-सिला २ रत्तसिला ३ रत्तकम्बलसिला ४ ॥ २४४ ॥

"**पण्डकवणे**" इत्यादि, **पण्डकवने भदन्त ! कति** 'अभिषेकाय' जिनजन्मस्नात्राय शिला **अभिषेकशिलाः प्रज्ञप्ताः ?, गौतम ! चतस्रोऽभिषेकशिलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-पाण्डुशिला १ पाण्डुकम्बलशिला २ रक्तशिला ३ रक्तकम्बलशिला ४**, अन्यत्र तु पाण्डुकम्बला १ अतिपाण्डुकम्बला २ रक्तकम्बला ३ अतिरक्तकम्बलेति ४ नामान्तराणीति ॥२४४॥

सम्प्रति प्रथमायाः स्थानं पृच्छति-

कहि णं भन्ते ! पण्डगवणे पंडुसिला[1] णामं सिला पण्णत्ता ?, गोअमा ! मन्दरचूलिआए पुरत्थिमेणं, पंडगवणपुरत्थिमपेरंते एत्थ णं पंडगवणे पंडुसिला णामं सिला पण्णत्ता-उत्तर-दाहिणायया पाईण-पडीणवित्थिण्णा अद्धचन्दसंठाणसंठिआ पंचजोअणसयाइं आयामेणं, अड्ढाइज्जाइं जोअण-सयाइं विक्खम्भेणं, चत्तारि जोअणाइं बाहल्लेणं, सव्वकणगामई अच्छा, वेइआ-वणसंडेणं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ता वण्णओ[2] ॥ २४५ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, प्रश्नः प्रतीतः । उत्तरसूत्रे **मन्दरचूलिकायाः पूर्वतः पण्डकवनपूर्वपर्यन्ते पाण्डुशिला नाम शिला प्रज्ञप्ता-उत्तरतो दक्षिणतश्चायता पूर्वतोऽपरतश्च विस्तृता अर्द्धचन्द्रसंस्थानसंस्थिता पञ्चयोजनशतानि 'आयामेन'** मुखविभागेन **अर्द्धतृतीयानि योजनशतानि 'विष्कम्भेन'** मध्यभागेन, अर्द्धचन्द्राकार-क्षेत्राणा[3]मेवमेव परमव्याससम्भवात्, अत एवास्याः परमव्यासः शरत्वेन लम्बो जीवात्वेन

१. पंडकसिला नाम-J12 ॥ २. द्र. १।१०-१३ ॥ ३. ०मेयमेव-पुके ॥

परिक्षेपो धनुःपृष्ठत्वेन तत्करणरीत्या आनेतव्या । तथा **चत्वारि योजनानि 'बाहल्येन'** पिण्डेन **सर्वात्मना कनकमयी** प्रस्तावादर्जुनसुवर्णमयी **अच्छा, वेदिका-वनखण्डेन सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्ता**, वक्रता च चूलिकासन्ना सरलता तु स्वस्वदिक्क्षेत्राभिमुखा, **वर्णकश्च** वेदिकावनखण्डयोर्वक्तव्यः ॥२४५॥

चतुर्योजनोच्छ्रिता च शिला दुरारोहा आरोहकाणामित्याह-

तीसे णं पण्डुसिलाए[१] चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता जाव[२] तोरणा, वण्णओ ॥ २४६ ॥

तीसे णं पण्डुसिलाए उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव[३] देवा आसयन्ति सयन्ति ॥ २४७ ॥

"**तीसे ण**"मित्यादि, **तस्यां शिलायां चतुर्दिशि चत्वारि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि प्रज्ञप्तानि**, तेषां च **वर्णको** वाच्यो **यावत् तोरणानि** ॥२४६-२४७॥

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए उत्तर-दाहिणेणं एत्थ णं दुवे अभिसेया[४] सीहासणा पण्णत्ता-पञ्च धणुसयाइं आयाम-विक्खम्भेणं, अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं बाहल्लेणं, सीहासणवण्णओ भाणिअव्वो[५] विजयदूसवज्जो । तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले सीहासणे तत्थ णं बहूहिं भवणवइ-वाणमन्तरजोइसिअ-वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ कच्छाइआ तित्थयरा अभिसिच्चन्ति[६] । तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले सीहासणे तत्थ णं बहूहिं भवणवइ जाव वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ वच्छाईआ तित्थयरा अभिसिच्चन्ति[७] ॥ २४८ ॥

अथास्या भूमिसौभाग्यमावेदयन्नाह-"**तीसे ण**"मित्यादि, **'तस्याः'** पाण्डुशिलायाः **उपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः यावद्देवा आसते शेरते** इत्यादि । अथात्राभिषेकासनवर्णनायाह-"**तस्स ण**"मित्यादि, **तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे उत्तरतो दक्षिणतश्च अत्रान्तरे द्वे 'अभिषेकसिंहासने'** जिनजन्माभिषेकाय

१. पंडुकंबलसिलाए-J12 ॥ २. द्र. ४।२६-३० ॥ ३. द्र. १।१३ ॥ ४. अब J12 । अभिसेय० V । अभिसेया-मु. नास्ति ॥ ५. द्र. जीवा. ३।३१ ॥ ६-७. अभिसिंचंति-अब J12 एवमग्रेऽपि ॥

पीठे **प्रज्ञप्ते-पञ्चधनुःशतान्यायाम-विष्कम्भाभ्याम् अर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि 'बाहल्येन'** उच्चत्वेनेत्यर्थः, अत्र च **सिंहासनवर्णको भणितव्यः**, स च **'विजयदूष्यवर्जः'** उपरिभागे विजयनामकचन्द्रोदयवर्णनारहित इत्यर्थः, शिलासिंहासनानामनाच्छादितदेशे स्थितत्वात्, अत्र च सिंहासनानामायाम-विष्कम्भयोस्तुल्यत्वेन समचतुरस्रतोक्ता। नन्वत्रैकेनैव सिंहासनेनाभिषेके सिद्धे किमर्थं सिंहासनद्वयमित्याह-"**तत्थ ण**"मित्यादि, '**तत्र**' तयोः सिंहासनयोर्मध्ये "**से**" इति भाषालङ्कारे **यदौत्तराहं सिंहासनं तत्र बहुभिर्भवनपति-व्यन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकैर्देवै-र्देवीभिश्च कच्छादि**विजयाष्टकजाता**स्तीर्थकरा 'अभिषिच्यन्ते'** जन्मोत्सवार्थं स्नप्यन्ते, **यत्तु दाक्षिणात्यं सिंहासनं तत्र वच्छादिका इति**। अत्रायमर्थः-एषा हि शिला पूर्वदिग्मुखा, एतद्दिगभिमुखं च क्षेत्रं पूर्वमहाविदेहाख्यम्, तत्र च युगपज्जगद्गुरुयुगं जन्मभाग् भवति। तत्र शीतोत्तरदिग्वर्त्तिविजयजातो जगद्गुरुरुत्तरदिग्वर्त्तिनि सिंहासनेऽभिषिच्यते, तस्या एव दक्षिणदिग्वर्त्तिविजयजातो जगद्गुरुर्दक्षिणदिग्वर्त्तिनीति ॥२४८॥ इदानीं द्वितीयशिलाप्रश्नावतारः-

कहि णं भन्ते ! पण्डगवणे पण्डुकंबलासिला णामं सिला पण्णत्ता ?, गोअमा ! मन्दरचूलिआए दक्खिणेणं, पण्डगवणदाहिणपेरंते एत्थ णं पंडगवणे पंडुकंबलसिला णामं सिला पण्णत्ता-पाईण-पडीणायया उत्तर-दाहिणवित्थिण्णा, एवं तं चेव पमाणं वत्तव्वया य भाणिअव्वा जाव[१] ॥ २४९ ॥

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं महं एगे सीहासणे प० । तं चेव सीहासणप्पमाणं[२], तत्थ णं बहूहिं भवणवइ जाव[३] भारहगा तित्थयरा अहिसिच्चन्ति ॥ २५० ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, प्रश्नः प्रतीतः । उत्तरसूत्रे **मेरुचूलिकाया दक्षिणतः पण्डकवनदाक्षिणात्यपर्यन्ते पाण्डुकम्बला नाम्नी शिला प्रज्ञप्ता**-प्राक्पश्चिमायता उत्तर-दक्षिणविस्तीर्णा । आद्या तु प्राक्पश्चिमविस्तीर्णा उत्तरदक्षिणायतेत्येतद्विशेषणद्वयं विहायान्यत् प्रागुक्तमतिदिशति-'**एवम्**' उक्ताभिलापेन **तदेव 'प्रमाणं'** शिलायाः पञ्चयोजनशतायामादिकं **वक्तव्यता** चार्जुनस्वर्णवर्णादिका **भणितव्या यावत्तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य**

१. द्र. ४।२४५-२४७ ॥ २-३. द्र. ४।२४८ ॥

बहुमध्यदेशभागेऽत्रान्तरे महदेकं सिंहासनं प्रज्ञप्तम् । **'तदेव'** पञ्चधनुःशतादिकं **सिंहासनप्रमाण**मुच्चत्वादौ ज्ञेयम् । **तत्र बहुभिर्भवनपत्यादिभिर्देवैः 'भारतका'** भरतक्षेत्रोत्पन्ना**स्तीर्थकृतोऽभिषिच्यन्ते** । ननु पूर्वशिलायां सिंहासनद्वयम्, अत्र तु एकं सिंहासनं किमिति ?, उच्यते, एषा हि शिला दक्षिणदिगभिमुखा, तद्दिगभिमुखं च क्षेत्रं भारताख्यम्, तत्र चैककालमेक एव तीर्थकृदुत्पद्यत इति तदभिषेकानुरोधेनैकत्वं सिंहासनस्येति ॥२४९-२५०॥

अथ तृतीयशिला-

कहि णं भन्ते ! पण्डगवणे रत्तसिला णामं सिला प० ?, गो० ! मन्दरचूलिआए पच्चत्थिमेणं, पण्डगवणपच्चत्थिमपेरंते एत्थ णं पण्डगवणे रत्तसिला णामं सिला पण्णत्ता-उत्तर-दाहिणायया पाईण-पडीणवित्थिण्णा जाव[१] तं चेव पमाणं सव्वतवणिज्जमई अच्छा । उत्तरदाहिणेणं एत्थ णं दुवे सीहासणा पण्णत्ता । तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले सीहासणे तत्थ णं बहूहिं भवण० पम्हाइआ तित्थयरा अहिसिच्चन्ति । तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले सीहासणे तत्थ णं बहूहिं भवणवइ जाव वप्पाइआ तित्थयरा अहिसिच्चंति ॥ २५१ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, इदं च सूत्रं पूर्वशिलागमेन बोध्यम्, केवलं वर्णतः **सर्वात्मना तपनीयमयी**, रक्तवर्णत्वात् । सिंहासनद्वित्वभावना त्वेवम्-एषा पश्चिमाभिमुखा तद्दिगभिमुखं च क्षेत्रं पश्चिममहाविदेहाख्यं शीतोदादक्षिणोत्तररूपभागद्वयात्मकम्, तत्र च प्रतिविभागमेकैकजिनजन्मसम्भवाद्युगपज्जिनद्वयमुत्पद्यते । **तत्र दाक्षिणात्ये सिंहासने** दक्षिणभागगत**पक्ष्मादि**विजयाष्टकजाता **जिनाः स्नप्यन्ते, औत्तराहे** च उत्तरभागगत**वप्रादि**विजयाष्टकजाता इति ॥२५१॥

सम्प्रति चतुर्थी शिला-

कहि णं भन्ते ! पण्डगवणे रत्तकंबलसिला णामं सिला पण्णत्ता ?, गोअमा ! मंदरचूलिआए उत्तरेणं पंडगवणउत्तरचरिमंते एत्थ णं पंडगवणे रत्तकंबलसिला णामं सिला पण्णत्ता-पाईण-पडीणायया उदीण-दाहिणवित्थिण्णा सव्वतवणिज्जमई अच्छा जाव[२] मज्झदेसभाए सीहासणं ।

१. द्र. ४।२४५-२४८ ॥ २. द्र. ४।२४५-२४८ ॥

तत्थ णं बहूहिं भवणवइ जाव देवेहिं देवीहि अ एरावयगा तित्थयरा अहिसिच्चन्ति ॥ २५२ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, प्रश्नः प्राग्वत् । उत्तरसूत्रे सर्वं द्वितीय-शिलानुसारेण वाच्यम्, वर्णतश्च **सर्वतपनीयमयी**, **श्रीपूज्यैस्तु** सर्वा अर्जुनस्वर्णवर्णा उक्ता इति । "**ऐरावतका**" इति ऐरावतक्षेत्रभवाः, सिंहासनस्यैकत्वं भरतक्षेत्रोक्तयुक्त्या वाच्यम् ॥२५२॥

अथ मेरौ काण्डसङ्ख्यां जिज्ञासुर्गौतमः पृच्छति-

मन्दरस्स णं भन्ते ! पव्वयस्स कइ कण्डा पण्णत्ता ?, गोयमा ! तओ कंडा पण्णत्ता, तंजहा- हिट्ठिल्ले[1] कंडे मज्झिल्ले[2] कण्डे उवरिल्ले कण्डे ॥ २५३ ॥

"**मन्दरस्स ण**"मित्यादि, **मेरोर्भदन्त ! पर्वतस्य कति काण्डानि प्रज्ञप्तानि** ?, काण्डं नाम विशिष्टपरिणामानुगतो विच्छेदः पर्वतक्षेत्रविभाग इतियावत् । **गौतम ! त्रीणि काण्डानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-अधस्तनं काण्डं मध्यमं काण्डम् उपरितनं काण्डम्** ॥२५३॥

अथ प्रथमं काण्डं कतिप्रकारम् ? इति पृच्छति-

मन्दरस्स णं भन्ते ! पव्वयस्स हिट्ठिल्ले कण्डे कतिविहे पण्णत्ते ?, गोअमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा-पुढवी १ उवले २ वइरे ३ सक्करा ४ ॥ २५४ ॥

"**मन्दरस्स**" इत्यादि, प्रश्नः प्रतीतः । निर्वचनसूत्रे '**पृथ्वी**' मृत्तिका '**उपलाः**' पाषाणाः '**वज्राणि**' हीरकाः '**शर्कराः**' कर्करिकाः, एतन्मयः कन्दो मन्दरस्य, एतदेव हि प्रथमं काण्डं सहस्रयोजनप्रमाणम् । ननु प्रथमकाण्डस्य चतुष्प्रकारत्वात् तदीययोजनसहस्रस्य चतुर्विभजने एकैकप्रकारस्य योजनसहस्रचतुर्थांशप्रमाण-क्षेत्रता स्यात्, तथा च सति विशिष्टपरिणामानुगत-विच्छेदरूपत्वात् त एव काण्डसङ्ख्यां कथं न वर्द्धयन्तीति ?, उच्यते, क्वचित्पृथ्वीबहुलं क्वचिदुपलबहुलं क्वचिद् वज्रबहुलं क्वचि-च्छर्कराबहुलम् । इदमुक्तं भवति-उक्त-चतुष्टयमन्तरेणान्यत् किमप्यङ्कुरत्नादिकं न तदारम्भक-मिति, अतो नैयत्येन पृथिव्यादि-रूपविभागाभावान्न काण्डसङ्ख्यावर्द्धनावकाश इति ॥२५४॥

---

१. V के । हेट्ठिलकंडे मज्झिमकंडे उवरिल्लकंडे-अत्रिब पुवृ. हीवृ. ॥ २. V के । मज्झिमल्ले-J12 । मज्झिल्ले-मु. ॥

मध्यकाण्डगतवस्तु-पृच्छार्थमाह-

मज्झमिल्ले णं भन्ते ! कण्डे कतिविहे पं० ?, गोअमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा-अंके १ फलिहे २ जायरूवे ३ रयए ४ ॥ २५५ ॥

उवरिल्ले कण्डे कतिविहे पण्णत्ते ?, गोअमा ! एगागारे पण्णत्ते सव्वजम्बूणयामए ॥ २५६ ॥

"**मज्झिमिल्ले**" इत्यादि, अङ्करत्नानि**स्फटिकर**त्नानि '**जातरूपं**' सुवर्णं '**रजतं**' रूप्यम् । अत्रापीयं भावना-क्वचिदङ्कबहुलमित्यादि । अथ तृतीयं काण्डम्-"**उवरिल्ले**" इत्यादि, प्रश्नो व्यक्तः । उत्तरसूत्रे '**एकाकारं**' भेदरहितं **सर्वा**त्मना '**जाम्बूनदं**' रक्तसुवर्णं तन्**मय**मिति ॥२५५-२५६॥ काण्डपरिमाणद्वारा मेरुपरिमाणमाह-

मन्दरस्स णं भन्ते ! पव्वयस्स हेड्डिल्ले कण्डे केवइअं बाहल्लेणं पं० ?, गोयमा ! एगं जोअणसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ते ॥ २५७ ॥

"**मन्दरस्स ण**"मित्यादि, **भगवन्** ! मन्दरस्या**धस्तनं काण्डं कियद्** '**बाहल्येन**' उच्चत्वेन **प्रज्ञप्तम्** ?, **गौतम ! एकं योजनसहस्रं बाहल्येन प्रज्ञप्तम्** ॥२५७॥

मज्झिमिल्ले कण्डे पुच्छा, गोअमा ! तेवट्ठिं जोअणसहस्साइं बाहल्लेणं पं० ॥ २५८ ॥

मध्यमे काण्डे '**पृच्छा**' प्रश्नपद्धतिर्वाच्या, सा च "मन्दरस्स णं भन्ते ! पव्वयस्स मज्झिमिल्ले काण्डे केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?" इत्यादिरूपा स्वयमभ्यूह्या । **गौतम ! त्रिषष्टिं योजनसहस्राणि बाहल्येन प्रज्ञप्तम्**, अनेन भद्रशालवनं नन्दनवनं सौमनसवनं द्वे अन्तरे चैतत् सर्वं मध्यमकाण्डे अन्तर्भूतमिति । यत्तु **समवायाङ्गे अष्टत्रिंशत्तमे समवाये** "**द्वितीय-काण्डविभागोऽष्टत्रिंशत्सहस्रयोजनान्युच्चत्वेन भवति**" [सूत्र ३८ वृत्तौ] इत्युक्तं तन्**मतान्तरेणे**ति ॥२५८॥

उवरिल्ले पुच्छा, गोयमा ! छत्तीसं जोअणसहस्साइं बाहल्लेणं पं० । एवामेव सपुव्वा-ऽवरेणं मन्दरे पव्वए एगं जोअणसयसहस्सं सव्वग्गेणं पण्णत्ते ॥ २५९ ॥

एवमुपरितने काण्डे **पृच्छा** ज्ञेया, **षट्त्रिंशद्योजनसहस्राणि बाहल्येन** प्रज्ञप्तम्, '**एवम्**' उक्तरीत्या "**सपुव्वा-ऽवरेण**" पूर्वा-ऽपरमीलनेन **मन्दरपर्वत एकं योजनशतसहस्रं**

'सर्वाग्रेण' सर्वसङ्ख्यया प्रज्ञप्तः । ननु चत्वारिंशद्योजनप्रमाणा शिरःस्था चूलिका मेरुप्रमाणमध्ये कथं न कथिता ?, उच्यते, क्षेत्रचूलात्वेन तस्या अगणनात्, पुरुषोच्छ्रयगणने शिरोगतकेशपाशस्येवेति, इयं च सूत्रत्रयी एकार्थप्रतिबद्धत्वेन समुदितैवालेखि ॥२५९॥

अथ मेरोः समयप्रसिद्धानि षोडश नामानि प्रश्नयितुमाह-

मन्दरस्स णं भन्ते ! पव्वयस्स कति णामधेज्जा पण्णत्ता ?, गोअमा ! सोलस णामधेज्जा पण्णत्ता, तंजहा-

मन्दर[१] १ मेरु २ मणोरम ३, सुदंसण ४ सयंपभे अ ५ गिरिराया ६ ।
रयणोच्चए[२] ७ सिलोच्चएँ ८, मज्झे लोगस्स ९ णाभी य १०॥१॥
अच्छे अ ११ सूरिआवत्ते १२, सूरिआवरणे १३ ति या ।
उत्तमे १४ अ दिसादी अ १५, वडेंसेति १६ अ सोलसे ॥२॥ २६० ॥

"मन्दरस्स ण"मित्यादि, **मन्दरस्य पर्वतस्य भगवन् ! कति 'नामधेयानि'** नामानि **प्रज्ञप्तानि ?, गौतम ! षोडश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-"मन्दरे"**त्यादि गाथाद्वयम्, मन्दरदेवयोगात् **मन्दरः**, एवं मेरुदेवयोगात् **मेरुरि**ति । नन्वेवं मेरोः स्वामिद्वयमापद्येतेति चेत्, उच्यते, एकस्यापि देवस्य नामद्वयं सम्भवतीति न काप्याशङ्का, निर्णीतिस्तु बहुश्रुतगम्येति २ । तथा मनांसि देवानामप्यतिसुरूपतया रमयतीति **मनोरमः** ३ । तथा 'सुष्ठु' शोभनं जाम्बूनदमयतया रत्नबहुलतया च मनोनिर्वृतिकरं दर्शनं यस्यासौ **सुदर्शनः** ४ । तथा रत्नबहुलतया 'स्वयम्' आदित्यादिनिरपेक्षा 'प्रभा' प्रकाशो यस्यासौ **स्वयम्प्रभः** ५, 'चः' समुच्चये । तथा सर्वेषामपि गिरीणामुच्चत्वेन तीर्थकरजन्माभिषेकाश्रयतया च राजा **गिरिराजः** ६ । तथा **'रत्नानां'** नानाविधानाम् 'उत्' प्राबल्येन 'चयः' उपचयो यत्र स **रत्नोच्चयः** ७, तथा 'शिलानां' पाण्डुशिलादीनाम् 'ऊर्ध्वं' शिरस उपरि 'चयः' सम्भवो यत्र स **शिलोच्चयः** ८, तथा **लोकस्य मध्यम्**, अस्य सकललोकमध्यवर्त्तित्वात् ।

---

१. समवायाङ्गे (१६।३) त्रयाणां नाम्नां भेदोदृश्यते-
"मंदर-मेरु-मणोरम-सुदंसण सयंपभे च गिरिराया ।
रयणुच्चय पियदंसण, मज्झे लोगस्स नाभीय ॥१॥
अत्थे य सूरियावत्ते, सूरियावरणेत्ति य ।
उत्तरे य दिसाई य, वडेंसे इ य सोलस ॥२॥" इति V पृ. ५२० टि. १० ॥

२. V पुके J2 । रयणुच्चय सिलुच्चय-मु. चन्द्रप्रज्ञप्तिवृत्तौ पञ्चमप्राभृतान्ते । रयणुच्चए सिलुच्चए-कखत्रिस ॥

नन्वत्र लोकशब्देन चतुर्दशरज्ज्वात्मकलोके व्याख्यातव्ये "**घम्माइ लोगमज्झं जोअणअस्संखकोडीहिं**" [ ] इति वचनात् समभूतलाद्रत्नप्रभाया असङ्ख्याताभिर्योजनकोटीभिरतिक्रान्ताभिर्लोकमध्यं तत्र च मेरोरसम्भवेन बाधितं व्याख्यानम् । अथ लोकशब्देन तिर्यग्लोकस्तस्याप्यष्टादशशतयोजनप्रमाणोच्चस्यास्मिन्नेवान्तर्लीनत्वात् कुतस्तरामस्य लोकमध्यवर्त्तित्वमिति चेत्, उच्यते, तिर्यग्लोके तिर्यग्भागस्य स्थालाकारैकरज्जुप्रमाणायामविष्कम्भस्यात्र लोकशब्देन विवक्षणात् तस्य मध्यम्, मेरुः तन्मध्यवर्त्तीत्यर्थः, अस्मात् सर्वतोऽप्यलोकस्य पञ्चसहस्रोनार्द्धरज्जुप्रमाणेन दूरव्यवहितत्वात् । अत एवोपलक्षणादलोकस्याप्यसौ मध्यम्, अस्मात् सर्वतोऽप्यलोकस्यानन्तयोजनप्रमाणत्वात् ९ । एवं "**नाभीय**"त्ति अत्र च देहलीप्रदीपन्यायेन लोकशब्दस्य संयोजनात् लोकनाभिः, अत्र भावना तु उक्तन्यायेनैव १० । **चः** समुच्चये ।

अथ श्लोकबन्धेन "**अच्छे**" इत्यादि, '**अच्छः**' सुनिर्मलः, जाम्बूनदरत्नबहुलत्वात् । **चतुर्थाङ्गे षोडशसमवाये** तु "**अत्थे**" [**सम. १६/३**] इति **पाठः**, तत्र अनेन ह्यन्तरितः सूर्यादिः '**अस्तः**' इत्यभिधीयते, इदं च पूर्वा-ऽपरमहाविदेहापेक्षया ज्ञेयम्, अतोऽयमपि कारणे कार्योपचारादस्त इति ११ । तथा सूर्या उपलक्षणमेतत्तेन चन्द्रादयश्च प्रदक्षिणमावर्त्तन्ति यस्य स **सूर्यावर्त्तः** १२, तथा सूर्यैरुपलक्षणमेतत् चन्द्र-ग्रह-नक्षत्रादिभिश्च समन्ताद् भ्रमणशीलैरः 'आव्रियते स्म'वेष्ट्यते स्मेति **सूर्यावरणः** "**कृद्बहुल**" [**श्रीसिद्ध० ६-१-११५**]मिति वचनात् कर्मण्यनट्प्रत्ययः १३ । **इति**शब्दो नामसमाप्तौ '**चः**' समुच्चये । तथा 'उत्तमः' गिरिषु सर्वतोऽप्यधिकसमुन्नतत्वात् । **समवायाङ्गे** तु "**उत्तरः**" [**१६/३**] इति पाठः, तत्र 'उत्तरतः' उत्तरदिग्वर्त्ती सर्वेभ्यो भरतादिवर्षेभ्य इति, यदाह–"**सर्वेषामुत्तरो मेरु**"रिति । ननु भरतादिभ्यः उत्तरदिग्वर्त्तित्वं जम्बूद्वीपपट्टादौ विलोकनेन सुज्ञेयम्, ऐरावतादिभ्यः कथमुत्तर-दिग्वर्त्तित्वम् ?, उच्यते, यत्क्षेत्रीयाणां यस्यां दिशि सूर्योदयः, तत्क्षेत्रीयाणां सा पूर्वेति सर्वेषां सम्प्रदायः, तेन तदनुसारेण तत्तत्क्षेत्रेषु पूर्वादिदिग्व्यवहारं जम्बूद्वीपपट्टादौ गुरुहस्तकलातः परिभाव्यैरावतादिभ्योऽप्यस्योत्तरदिग्वर्त्तित्वमवसेयम् १४ । '**चः**' समुच्चये । 'दिशामादिः' प्रभवो **दिगादिः** । तथाहि–रुचकाद्दिशां विदिशां च प्रभवो रुचकश्चाष्टप्रदेशात्मको मेरुमध्यवर्त्ती, ततो मेरुरपि दिगादिरित्युच्यते १५ । तथा '**अवतंसः**' शेखरः, गिरीणां श्रेष्ठ इत्यर्थः १६ । '**चः**' पूर्ववत् । अस्यैवार्थस्य निगमनमाह–**इति षोडशः** ॥२६०॥

अथ यदुक्तम्-षोडशसु नामसु मन्दरेति मुख्यं नाम तन्निदानं पिपृच्छिषुराह-

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-मन्दरे पव्वए २ ?, गोअमा ! मन्दरे पव्वए मन्दरे णामं देवे परिवसइ महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिइए, से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ मन्दरे पव्वए २ । अदुत्तरं तं चेव[1] ॥ २६१ ॥

"**से केणट्ठेण**"मित्यादि, व्यक्तम् ॥२६१॥

उक्ता महाविदेहाः, अथ तत्परतोवर्त्तिनं नीलवन्तं नाम गिरिं पिपृच्छिषुराह-

कहि णं भन्ते ! जम्बूद्दीवे दीवे [2]णीलवन्ते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ?, गोयमा ! महाविदेहस्स वासस्स उत्तरेणं, रम्मगवासस्स दक्खिणेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे २ णीलवन्ते णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते-पाईण-पडीणायए उदीण-दाहिणवित्थिण्णे णिसहवत्तव्वया णीलवन्तस्स [3]भाणिअव्वा । णवरं जीवा दाहिणेणं [4]धणु उत्तरेणं । [5]एत्थ णं केसरिद्दहो, [6]सीआ महाणई पवूढा समाणी उत्तरकुरुं [7]एज्जेमाणी २, जमगपव्वए णीलवन्त-उत्तर-कुरु-चन्देरावत-मालवन्तद्दहे अ दुहा विभयमाणी २, चउरासीए सलिला-सहस्सेहिं [8]आपूरेमाणी २, भद्दसालवणं एज्जेमाणी २, मन्दरं पव्वयं दोहिं जोअणेहिं असंपत्ता पुरत्थाभिमुही आवत्ता समाणी अहे मालवन्त-वक्खारपव्वयं दालयित्ता मन्दरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पुव्वविदेहवासं दुहा विभयमाणी २, एगमेगाओ चक्कवट्टिविजयाओ अट्ठावीसाए २ सलिलासहस्सेहिं आपूरेमाणी २, पञ्चहिं सलिलासयसहस्सेहिं [9]बत्तीसाए अ सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे विजयस्स दारस्स जगइं दालइत्ता पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ, अवसिट्ठं तं चेव । एवं णारिकंता वि उत्तराभिमुही णेअव्वा । णवरमिमं णाणत्तं-

---

१. द्र. १।४७ ॥ २. णेलवंते-अकत्रिब J12 । एवमग्रेऽपि ॥ ३. द्र. ४।८६-८९ ॥ ४. धणु [धणुपट्ठं ?]-V । एवमन्यत्राऽपि ॥ ५. तत्थ-अकखत्रिबस J1 ॥ ६. पु J12 V । दाहिणेणं सीआ-मु. ॥ ७. पज्जेमाणी-अकखत्रिब पुवृ. हीवृ. । एवमग्रेऽपि ॥ ८. आपूरयमाणी-अब J12 । आपूरमाणी-खस । एवमग्रेऽपि ॥ ९. दुवत्तीसाए-J12 त्रि अब ॥

[१]गन्धावइवट्टवेअड्डपव्वयं जोअणेणं असंपत्ता पच्चत्थाभिमुही आवत्ता समाणी, अवसिट्ठं तं चेव पवहे अ मुहे अ [२]जहा हरिकन्ता सलिला ॥ २६२ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, **क्व भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे नीलवान्नाम्ना वर्षधरपर्वतः प्रज्ञप्तः** ?, उत्तरसूत्रं व्यक्तम् । नवरं रम्यक्क्षेत्रं महाविदेहेभ्यः परं युग्मिमनुजाश्रयभूतमस्ति तस्य **दक्षिणतः** । अयं च निषधबन्धुरिति तत्साम्येन लाघवं दर्शयति-"**णिसह**" इत्यादि, **निषधवक्तव्यता नीलवतोऽपि भणितव्या** । **नवरमस्य** '**जीवा**' परमायामो **दक्षिणतः**, उत्तरतः क्रमेण जगत्या वक्रत्वेन न्यूनतरत्वात्, **धनुःपृष्ठमुत्तरतः** । **अत्र केसरिद्रहो** नाम द्रहः, अस्माच्च **शीता महानदी प्रव्यूढा सती उत्तरकुरून्** '**इग्रती २**' परिगच्छन्ती २, **यमकपर्वतौ नीलवदुत्तरकुरु-चन्द्रैरावतमाल्यवन्**नामकान् पञ्चापि **द्रहांश्च द्विधा विभजन्ती २, चतुरशीत्या सलिलासहस्रैरापूर्यमाणा २, भद्रशालवनम्** ? '**इग्रती २**' आगच्छन्ती २, **मन्दरं पर्वतं द्वाभ्यां योजनाभ्यामसम्प्राप्ता पूर्वाभिमुखी परावृत्ता सती माल्यवद्वक्षस्कारपर्वतमधो विदार्य मेरोः पूर्वस्यां पूर्वमहाविदेहं द्विधा विभजन्ती २, एकैकस्माच्चक्रवर्त्तिविजयादष्टाविंशत्या २ सलिलासहस्रैरापूर्यमाणा २**, आत्मना सह **पञ्चभिर्नदीलक्षैर्द्वात्रिंशता च सहस्रैः समग्रा अधो विजयस्य द्वारस्य जगतीं विदार्य पूर्वस्यां लवणसमुद्रमुपैति, 'अवशिष्टं'** प्रवहव्यासोण्डत्वादिकं '**तदेवे**'ति निषधनिर्गतशीतोदाप्रकरणोक्तमेव । अथास्मादेवोत्तरतः प्रवृत्तां नारीकान्तामतिदिशति-"**एवं नारीकंता**" इत्यादि, '**एवम्**' उक्तन्यायेन नारीकान्ता**ऽपि उत्तराभिमुखी नेतव्या** । कोऽर्थः ? यथा नीलवति केसरिद्रहाद् दक्षिणाभिमुखी शीता निर्गता तथा नारीकान्ताऽप्युत्तराभिमुखी निर्गता । तर्हि अस्याः समुद्रप्रवेशोऽपि तद्वदेव ? इत्याशङ्कमानमाह-**नवरमिदं नानात्वम्-गन्धापातिनं वृत्तवैताढ्यपर्वतं योजनेनासम्प्राप्ता पश्चिमाभिमुखी आवृत्ता सती** इत्यादिक**मवशिष्टं** सर्वं '**तदेव**' हरिकान्तासलिलावद् भाव्यम् । तद्यथा-"रम्मगवासं दुहा विभयमाणी २, छप्पण्णाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा अहे जगइं दालइ, २ त्ता पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ"त्ति । अत्र चावशिष्टपदसङ्ग्रहे प्रवहमुखव्यासादिकं न चिन्तितम्, समुद्रप्रवेशावधिकस्यैवालापकस्य दर्शनात्, तेन तत् पृथगाह-**प्रवहे च मुखे च यथा हरिकान्ता सलिला** । तथाहि-प्रवहे २५ योजनानि विष्कम्भेन अर्द्धयोजनमुद्वेधेन, मुखे २५० योजनानि विष्कम्भेण ५ योजनान्युद्वेधेनेति । यच्चात्र हरिसलिलां विहाय प्रवहमुखयोर्हरिकान्तातिदेश उक्तस्तत् हरिसलिलाप्रकरणेऽपि हरिकान्तातिदेशस्योक्तत्वात् ॥२६२॥

---

१. मालवंतपरियागं वट्टवेयड्ढ० अब J12 ॥ २. द्र. ४।९० ॥

अथात्र कूटानि प्रष्टव्यानि-

णीलवन्ते णं भन्ते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?, गोअमा ! नव कूडा पं०, तंजहा-सिद्धायणकूडे०,

सिद्धे १ णीले २ पुव्वविदेहे ३, सीआ य ४ कित्ति ५ णारी अ ६ ।
अवरविदेहे ७ रम्मगकूडे ८ उवदंसणे चेव ९॥१॥

सव्वे एए कूडा पञ्चसइआ, रायहाणीओ उत्तरेणं ॥ २६३ ॥

"**णीलवन्ते ण**"मित्यादि, **नीलवति भदन्त ! वर्षधरपर्वते कति कूटानि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम ! नव कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-सिद्धायतनकूटम्** । अत्र नवानामप्येकत्र सङ्ग्रहायेयं गाथा-"**सिद्धे**"त्ति, 'सिद्धकूटं' सिद्धायतनकूटम्, तच्च पूर्वदिशि समुद्रासन्नम् । ततो '**नीलवत्**कूटं' नीलवद्वक्षस्काराधिपकूटम्, **पूर्वविदेह**ाधिपकूटं '**शीता**कूटं' शीतासुरीकूटम्, '**चः**' समुच्चये, '**कीर्त्ति**कूटं' केसरिद्रहसुरीकूटं '**नारी**कूटं' नारीकान्तानदीसुरीकूटम्, '**चः**' पूर्ववत्, '**अपरविदेह**कूटम्' अपरविदेहाधिपकूटं '**रम्यक**कूटं' रम्यकक्षेत्राधिपकूटम् '**उपदर्शन**कूटम्' उपदर्शननामकं कूटम् । **एतानि** च **कूटानि** हिमवत्कूटवत् '**पञ्चशतिकानि**' पञ्चशतयोजन-प्रमाणानि वाच्यानि वक्तव्यताऽपि तद्वत्, कूटाधिपानां **राजधान्यो** मेरो**रुत्तरस्याम्** ॥२६३॥

अथास्य नामनिबन्धनं पृच्छन्नाह-

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-णीलवन्ते वासहरपव्वए २ ?, गोअमा ! णीले णीलोभासे, णीलवन्ते अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव परिवसइ, सव्ववेरुलिआमए णीलवन्ते जाव णिच्चे ॥ २६४ ॥[1][2]

"**से केणट्ठेणं**" इत्यादि, प्रश्नः प्राग्वत् । उत्तरसूत्रे चतुर्थो वर्षधरगिरिः 'नीलः' नीलवर्णवान् '**नीलावभासः**' नीलप्रकाशः, आसन्नं वस्त्वन्यदपि नीलवर्णमयं करोति तेन नीलवर्णयोगान्नीलवान्, **नीलवांश्चात्र महर्द्धिको देवः** पल्योपमस्थितिको **यावत्परिवसति**, तेन तद्योगाद्वा नीलवान् । अथवा असौ **सर्ववैडूर्यरत्नमय**स्तेन वैडूर्यरत्नपर्यायकनीलमणि-योगान्नीलः, शेषं प्राग्वत् ॥२६४॥

अथ पञ्चमं वर्षं प्रश्नयन्नाह-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २ रम्मए णामं वासे पण्णत्ते ?, गो० णीलवन्तस्स उत्तरेणं, रुप्पिस्स दक्खिणेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स

१. द्र. १।२४ ॥ २. द्र. १।४७ ॥

पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एवं जह चेव हरिवासं[1] तह चेव रम्मयं वासं[2] भाणिअव्वं[3] । णवरं दक्खिणेणं जीवा उत्तरेणं धणुं, अवसेसं तं चेव ॥ २६५ ॥

"**कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे रम्मए णामं वासे**" इत्यादि, प्रश्नः प्रतीतः । उत्तरसूत्रे **नीलवत उत्तरस्यां** 'रुक्मिणः' वक्ष्यमाणस्य पञ्चमवर्षधराद्रेर्**दक्षिणस्याम् । एवं यथैव हरिवर्षं तथैव रम्यकं वर्षम्**, यश्च विशेषः स **नवरमि**त्यादिना सूत्रेण साक्षादाह-"**दक्खिणेणं जीवे**"त्यादि, व्यक्तम् ॥२६५॥

अथ यदुक्तं नारीकान्ता नदी रम्यकवर्षं गच्छन्ती गन्धापातिनं वृत्तवैताढ्यं योजनेनासम्प्राप्तेति, तदेष गन्धापाती क्वास्ति ? इति पृच्छति-

कहि णं भन्ते ! रम्मए वासे गन्धावई[4] णामं वट्टवेअड्डपव्वए पण्णत्ते ?, गोअमा ! णरकन्ताए पच्चत्थिमेणं, णारीकन्ताए पुरत्थिमेणं, रम्मगवासस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं गन्धावई णामं वट्टवेअड्डे पव्वए पण्णत्ते । जं चेव विअडावइस्स तं चेव गन्धावइस्सवि वत्तव्वं, अट्ठो, बहवे उप्पलाइं जाव[5] गंधावईवण्णाइं[6] गन्धावइप्पभाइं, पउमे अ इत्थ देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, रायहाणी उत्तरेण ॥ २६६ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, **क्व भदन्त ! रम्यके वर्षे गन्धापाती नाम वृत्तवैताढ्यपर्वतः प्रज्ञप्तः ?, गौतम ! नरकान्ताया** महानद्याः **पश्चिमायां नारीकान्तायाः पूर्वस्यां रम्यकवर्षस्य बहुमध्यदेशभागे अत्रान्तरे गन्धापाती[7] नाम वृत्तवैताढ्यः प्रज्ञप्तः । यदेव 'विकटापातिनः'** हरिवर्षक्षेत्रस्थितवृत्त-वैताढ्यस्योच्चत्वादिकं **तदेव गन्धापातिनोऽपि वक्तव्यम्**, यच्च सविस्तरं निरूपितस्य शब्दापातिनोऽतिदेशं विहाय विकटापातिनोऽतिदेशः कृतस्तत्र तुल्यक्षेत्रस्थितिकत्वं हेतुः । अत्र यो विशेषस्तमाह-**अर्थस्त्वयं** वक्ष्यमाणः-**बहून्युत्पलानि यावद् 'गन्धापातिवर्णानि'** तृतीयवृत्तवैताढ्यवर्णानि, गन्धापातिवर्णसदृशानीत्यर्थः रक्तवर्णत्वात् **'गन्धापातिप्रभाणि'** गन्धापातिवृत्तवैताढ्याकाराणि सर्वत्र समत्वात् तेन तद्वर्णत्वात्

१. हरिकंतावासं-J1 ॥ २. वासं-अकखत्रिबस पुवृ. हीवृ. नास्ति ॥ ३. द्र. ४।८१-८३ ॥ ४. द्रष्टव्यं ४।५७ सूत्रस्य पादटिप्पणम् ॥ ५. द्र. ४।८४ ॥ ६. इतोऽग्रे गंधावइवण्णाभाइं-इत्यधिकं V मध्ये । अपबशावृ मु. नास्ति ॥ ७. "स्थानाङ्ग-क्षेत्रसमासयोस्तु माल्यवन्नामा वृत्तवैताढ्यरम्यकेऽभिधीयते ।" इति पुण्य. वृत्तौ ॥

तदाकारत्वाच्च गन्धापातीनीत्युच्यन्ते । **पद्मश्चात्र देवो महर्द्धिकः पल्योपमस्थितिकः परिवसति**, तेन तद्योगात्तत्स्वामिकत्वाच्च गन्धापातीति । यथा च विसदृशनामकस्वामिकत्वेन नामान्वर्थोपपत्तिस्तथा प्रागभिहितम्, अस्याधिपस्य **राजधान्युत्तरस्याम्** ॥२६६॥

अथ रम्यकक्षेत्रनामनिबन्धनमाह-

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-रम्मए वासे २ ?, गोअमा ! रम्मगवासे णं रम्मे रम्मए रमणिज्जे, रम्मए अ इत्थ देवे जाव परिवसइ, से तेणट्ठेणं० ॥२६७॥

"**से केणट्ठेण**"मित्यादि, **अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते-रम्यकं वर्षं २ ?, गौतम ! रम्यकं वर्षं** 'रम्यते' क्रीड्यते नानाकल्पद्रुमैः स्वर्णमणिखचितैश्च तैस्तैः प्रदेशैरतिरमणीयतया रतिविषयतां नीयते इति **रम्यं** रम्यमेव **रम्यकं रमणीयं** च त्रीण्येकार्थिकानि रम्यतातिशयप्रतिपादकानि, **रम्यकश्चात्र देवो यावत् परिवसति तेन तद्** रम्यकमिति व्यवह्रियते ॥२६७॥

अथ पञ्चमो वर्षधरः-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २ रुप्पी णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ?, गोअमा ! रम्मगवासस्स उत्तरेणं, हेरण्णवय[1]वासस्स दक्खिणेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे रुप्पी णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते-पाईण-पडीणायए उदीण-दाहिणवित्थिण्णे, एवं [2]जा चेव महाहिमवन्तवत्तव्वया सा चेव रुप्पिस्स वि । णवरं दाहिणेणं जीवा उत्तरेणं धणु, अवसेसं तं चेव, महापुण्डरीए दहे [3]णरकन्ता महाणदी दक्खिणेणं णेअव्वा, [4]जहा रोहिआ पुरत्थिमेणं गच्छइ, रुप्पकूला उत्तरेणं णेअव्वा, [5]जहा हरिकन्ता पच्चत्थिमेणं गच्छइ, अवसेसं तं चेव ॥ २६८ ॥

"**कहि णं भन्ते !**" इत्यादि, **क्व भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे रुक्मी नाम वर्षधरपर्वतः प्रज्ञप्तः ?, गौतम ! रम्यकवर्षस्य उत्तरस्यां** वक्ष्यमाण-**हैरण्यवतक्षेत्रस्य दक्षिणस्यां पूर्वलवणसमुद्रस्य पश्चिमायां पश्चिमलवणसमुद्रस्य पूर्वस्याम् अत्रान्तरे जम्बूद्वीपे द्वीपे**

१. V । ०वय० अकखत्रिबस J2 नास्ति ॥ २. द्र. ४।६२-६३ ॥ ३. णारिकंता-अब । स्थानाङ्गेऽपि २।२९३ 'णरकंता' इत्येव पाठोलभ्यते ॥ ४. द्र. ४।६४-७२ ॥ ५. द्र. ४।७३-७८ ॥

रुक्मीनाम्ना पञ्चमो **वर्षधरः प्रज्ञप्तः-प्राचीन-प्रतीचीनायतः उत्तर-दक्षिणयोर्विस्तीर्णः, 'एवम्'** उक्तानुसारेण **यैव महाहिमवद्वर्षधर-वक्तव्यता सैव रुक्मिणोऽपि । परं दक्षिणतो जीवा उत्तरस्यां धनुःपृष्टम्, 'अवशेषं'** व्यासादिकं **'तदेव'** द्वितीयवर्षधरप्रकरणोक्तमेव, द्वयोः परस्परं समानत्वात् । **महापुण्डरीकोऽत्र द्रहो** महापद्मद्रहतुल्यः, अस्माच्च निर्गता **दक्षिण**तोरणेन **नरकान्ता महानदी नेतव्या ।** अत्र च का नदी निदर्शनीया ? इत्याह-**''जहा रोहिय''**त्ति, **यथा रोहिता ''पुरत्थिमेणं गच्छइ''**त्ति, पूर्वेण गच्छति समुद्रमिति शेषः, यथा रोहिता महाहिमवतो महापद्मद्रहतो दक्षिणेन प्रव्यूढा सती पूर्वसमुद्रं गच्छति, तथैषाऽपि प्रस्तुतवर्षधराद्दक्षिणेन निर्गता पूर्वेणाब्धिमुपसर्पतीति भावः । **रूप्यकूला 'उत्तरेण'** उत्तरतोरणेन निर्गता **नेतव्या, यथा 'हरिकान्ता'** हरिवर्षक्षेत्रवाहिनी महानदी **''पच्चत्थिमेणं गच्छइ''**त्ति, पश्चिमाब्धिं गच्छति । अथ नरकान्तायाः समानक्षेत्रवर्त्तित्वेन हरिकान्ताया, रूप्यकूलायास्तु रोहितायाः अतिदेशो वक्तुमुचित इत्याह-**'अवशेषं'** गिरिगन्तव्यमुख-मूलव्याससरित्सम्पदादिकं वक्तव्यं **'तदेवे'**ति समानक्षेत्र-वर्त्तिसरित्प्रकरणोक्तमेव, तच्च नरकान्ताया हरिकान्ताप्रकरणोक्तम्, रूप्यकूलायास्तु रोहिता-प्रकरणोक्तम् । यत्तु नरकान्ताया अतुल्यक्षेत्रवर्त्तिन्या रोहितया सह, रूप्यकूलायास्तु हरिकान्तया सहातिदेशकथनं तत्र समानदिग्निर्गतत्वं समानदिग्गामित्वं च हेतुः ॥२६८॥

अथात्र कूटवक्तव्यमाह-

रुप्पिंमि णं भन्ते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पं० ?, गो० अट्ठ कूडा पं० तं०-

सिद्धे १ रुप्पी २ रम्मग ३, णरकन्ता ४ बुद्धि ५ रुप्पकूला य ६ ।
हेरण्णवय ७ मणिकंचण ८, अट्ठ य रुप्पिंमि कूडाइं ॥१॥

सव्वेवि एए पंचसइआ, रायहाणीओ उत्तरेणं ॥ २६९ ॥

''रुप्पिंमि ण''मित्यादि, **रुक्मिणि पर्वते भगवन् ! कति कूटानि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम ! अष्ट कूटानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा**-प्रथमं समुद्रदिशि **सिद्धायतनकूटम्,** ततो **'रुक्मिकूटं'** पञ्चमवर्षधरपतिकूटं **'रम्य[क]कूटं'** रम्यकक्षेत्राधि-पदेवकूटं **नरकान्ता**-नदीदेवीकूटं **'बुद्धिकूटं'** महापुण्डरीकद्रहसुरीकूटं **रूप्यकूला**नदीसुरीकूटं **'हैरण्यवत**कूटं' हैरण्यवतक्षेत्राधिपदेवकूटमणिकाञ्चनकूटम्, **एतानि** प्रागपरायतश्रेण्या व्यवस्थितानि **पञ्चशति-कानि सर्वाण्यपि, राजधान्यः** कूटाधि-पदेवाना**मुत्तरस्याम्** ॥२६९॥

सम्प्रत्यस्य नामनिदानं पर्यनुयुङ्क्ते-

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-रुप्पी वासहरपव्वए २ ?, गोअमा ! रुप्पी[1] णं वासहरपव्वए रुप्पी रुप्पपट्टे[2] रुप्पिओभासे[3] सव्वरुप्पामए, रुप्पी अ इत्थ देवे पलिओवमट्ठिईए परिवसइ, से एएणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ ॥ २७० ॥

"**से केणट्ठेण**"मित्यादि, **अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते-रुक्मी वर्षधरपर्वतः २** इति ?, **गौतम ! रुक्मी वर्षधरपर्वतो** 'रुक्मं' रूप्यं शब्दानामनेकार्थत्वात् तदस्यातीति **रुक्मी**, एष सर्वदा रूप्यमयः शाश्वतिक इति नित्ययोगे इन् प्रत्ययः, "**रूप्यावभासो**" रूप्यमिव सर्वतोऽवभासः-प्रकाशो भास्वरत्वेन यस्यासौ तथा । एतदेव व्याचष्टे-**सर्वात्मना रूप्यमय** इति, **रुक्मी चात्र देव**स्ततस्तन्मयत्वात् तत्स्वामि-कत्वाच्च रुक्मीति व्यपदिश्यते ॥२७०॥

अथ षष्ठं वर्षं विभावयितुमाह-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे २ हेरण्णवए णामं वासे पण्णत्ते ?, गो० ! रुप्पिस्स उत्तरेणं, सिहरिस्स दक्खिणेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे हिरण्णवए वासे पण्णत्ते, एवं जह चेव हेमवयं तह चेव हेरण्णवयंपि[4] भाणिअव्वं । णवरं जीवा दाहिणेणं उत्तरेणं धणुं, अवसिट्ठं तं चेव ॥ २७१ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, **क्व भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे हैरण्यवतं नाम वर्षं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! रुक्मिणो** वर्षधरस्योत्तरस्यां '**शिखरिणः**' वक्ष्यमाणवर्षधरस्य **दक्षिणस्यां** "**पुरत्थिमे**"त्यादि, प्राग्वत् **अत्रान्तरे जम्बूद्वीपे द्वीपे हैरण्यवतनाम वर्षं प्रज्ञप्तम्, 'एवम्'** उक्ताभिलापेन **यथैव हैमवतं तथैव हैरण्यवतमपि भणितव्यम्** । "**नवर**"मित्यादि पाठसिद्धम्, '**अवशिष्टं**' व्यासादिकं '**तदेव**' हैरण्यवत-वर्षप्रकरणोक्तमेवेति ॥२७१॥

अथ माल्यवत्पर्यायो वृत्तवैताढ्यः क्वास्ति ? इति पृच्छति-

कहि णं भन्ते ! हेरण्णवए वासे मालवन्तपरिआए णामं वट्टवेअड्ढपव्वए पं० ?, गो० ! सुवण्णकूलाए पच्चत्थिमेणं, रुप्पकूलाए पुरत्थिमेणं, एत्थ णं

---

१. VJ2 । रुप्पिणाम-मु.प पुके । २. रुप्पपटे-पुके शावृप नास्ति ॥ ३. J1 V । रुप्पोभासे-मु.प ॥ ४. द्र. ४।५५-५६ ॥

→ हेरण्णवयस्स वासस्स बहुमज्झदेसभाए ← मालवन्तपरिआए णामं वट्टवेअड्ढे पं०, जह चेव सद्दावइ तह चेव मालवंतपरिआएवि । अट्ठो, उप्पलाइं पउमाइं मालवन्तप्पभाइं मालवन्तवण्णाइं मालवन्तवण्णाभाइं, पभासे अ इत्थ देवे महिड्ढीए पलिओवमड्ढिईए परिवसइ, से एएणट्ठेणं०, रायहाणी उत्तरेणं ॥ सू० २७२ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, **क्व भदन्त ! हैरण्यवतवर्षे माल्यवत्पर्यायो नाम वृत्तवैताढ्यपर्वतः प्रज्ञप्तः ?, गौतम ! 'सुवर्णकूलायाः'** अत्रैव क्षेत्रे पूर्वगामिमहानद्याः **पश्चिमतो 'रूप्यकूलायाः'** अत्रैव पश्चिम-गामिमहानद्याः **पूर्वतः, हैरण्यवतस्य वर्षस्य बहुमध्यदेशभागेऽत्रान्तरे माल्यवत्पर्यायो नाम वृत्तवैताढ्यपर्वतः प्रज्ञप्तः, यथैव शब्दापाती तथैव माल्यवत्पर्यायः** । विशेषस्त्वर्थे इति तमाह-**अर्थोऽयम् 'उत्पलानि'** पद्मानि उपलक्षणात् शतपत्रादिग्रहः, **माल्यवत्प्रभाणि माल्यवद्वर्णानि माल्यवद्वर्णाभानीति** प्राग्वत् । **प्रभासश्चात्र देवः पल्योपमस्थितिकः परिवसति "से तेणट्ठेण"**मित्यादि, निगमनसूत्रं प्राग्वत्, **राजधानी** तस्यो**त्तरस्याम्**, शब्दापातिनस्तु दक्षिणस्यां मेरोरिति ॥२७२॥

अथ हैरण्यवतनाम्नोऽर्थव्यक्तये पृच्छति-

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-हेरण्णवए वासे २ ?, गोअमा ! हेरण्णवए णं वासे रुप्पीसिहरीहिं वासहरपव्वएहिं दुहओ समुवगूढे णिच्चं हिरण्णं दलयइ, णिच्चं हिरण्णं मुंचइ, णिच्चं हिरण्णं पगासइ, हेरण्णवए अ इत्थ देवे परिवसइ, से एएणट्ठेणं ॥ २७३ ॥

"**से केणट्ठेण**"मित्यादि, **अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते-हैरण्यवतं वर्षं हैरण्यवतं वर्षमिति ?, गौतम ! हैरण्यवतं वर्षं रुक्मि-शिखरिभ्यां वर्षधरपर्वताभ्यां 'द्विधातः'** उभयोर्दक्षिणोत्तरपार्श्वयोः **'समुपगूढं'** समालिङ्गितम्, कृतसीमाकमित्यर्थः । अथ कथमाभ्यां समालिङ्गितत्वेनास्य हैरण्यवतमिति नाम सिद्धम् ?, उच्यते, रुक्मी शिखरी च द्वावप्येतौ पर्वतौ यथाक्रमं रूप्य-सुवर्णमयौ, यच्च यन्मयं तत्र तद्विद्यते । हिरण्यशब्देन सुवर्णं रूप्यमपि

---

१. →← चिह्नद्वयमध्यवर्तिपाठः-अकखत्रिबस पुवृ. हीवृ. J1 नास्ति ॥ २. द्र. ४।५७-६० ॥ ३. मालवंतप्पभाइं-अकखत्रिबस नास्ति ॥ ४. उभओ-त्रि पुवृ. हीवृ. ॥ ५. समुवगूढे-V । समवगूढे-त्रि पुवृ. हीवृ. मु. ॥ ६. णिच्चं हिरण्णं मुंचइ-V पुके नास्ति ॥

च, ततो हिरण्यं-सुवर्णं विद्यते यस्यासौ हिरण्यवान्-शिखरी, हिरण्यं-रूप्यं विद्यते यस्यासौ हिरण्यवान्-रुक्मी, द्वयोः हिरण्यवतोरिदं हैरण्यवतम् । यदिवा **हिरण्यं** जनेभ्यः आसनप्रदानादिना **प्रयच्छति**, अथवा दर्शनमनोहारितया तत्र तत्र प्रदेशे **हिरण्यं** जनेभ्यः **प्रकाशयति** । तथाहि-बहवस्तत्र मिथुनकमनुष्याणामुपवेशनशयनादि-रूपोपभोगयोग्या हिरण्यमयाः शिलापट्टकाः सन्ति । पश्यन्ति च ते मनुष्यास्तत्र तत्र प्रदेशे मनोहारिणो हिरण्यमयान्निवेशान्, ततो हिरण्यं प्रशस्यं प्रभूतं नित्ययोगि वाऽस्यास्तीति हिरण्यवत् तदेव हैरण्यवतं, स्वार्थेऽण्प्रत्ययः । यदिवा **हैरण्यवतनामात्र देवः** पल्योपम-स्थितिकः आधिपत्यं **परिपालयति**, तेनैतत्स्वामिकत्वा-द्धैरण्यवतम् ॥२७३॥

अथ षष्ठवर्षधरावसरः-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे सिहरी णामं वासहरपव्वए पण्णत्ते ?, गोअमा ! हेरण्णवयस्स उत्तरेणं, एरावयस्स दाहिणेणं, पुरत्थिमलवण[१]-समुद्दस्स पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एवं जह चेव चुल्लहिमवन्तो तह चेव सिहरीवि । णवरं जीवा दाहिणेणं, धणुं उत्तरेणं[२], अवसिट्ठं तं चेव, पुण्डरीए दहे सुवण्णकूला महाणई दाहिणेणं णेअव्वा जहा रोहिअंसा पुरत्थिमेणं गच्छइ । एवं जह चेव गंगा-सिन्धूओ तह चेव रत्ता-रत्तवईओ णेअव्वाओ, पुरत्थिमेणं रत्ता पच्चत्थिमेण रत्तवई, अवसिट्ठं तं चेव, अपरिसेसं णेअव्वं ॥ २७४ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, **क्व भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे शिखरी नामवर्षधरपर्वतः प्रज्ञप्तः ?, गौतम ! हैरण्यवतस्योत्तरस्याम् 'ऐरावतस्य'** वक्ष्यमाण-सप्तमक्षेत्रस्य **दक्षिणस्यां** "**पुरत्थिमे**"त्यादि प्राग्वत् । **'एवम्'** उक्ताभिलापेन **यथा क्षुद्रहिमवान् तथैव शिखर्यपि । नवरं जीवा दक्षिणेन धनुरुत्तरेण, अवशिष्टं 'तदेवे'ति** क्षुद्रहिमवत्-प्रकरणोक्तमेव, तत्र **पुण्डरीको द्रहः**, तस्मात्**सुवर्णकूला महानदी दक्षिणे**न निर्गता **नेतव्या**, परिवारादिना च **यथा रोहितांशा** । सा च पश्चिमायां समुद्रं प्रविशति, इयं च पूर्वस्यामित्यत आह- "**पुरत्थिमेणं गच्छइ**" **'एवम्'** उक्ताभिलापेन सुवर्णकूलायाः रोहितांशातिदेशन्यायेन, **यथैव गङ्गा-सिन्धू तथैव रक्ता-रक्तवत्यौ नेतव्ये** । तत्रापि दिग्व्यक्तिमाह-**पूर्वस्यां रक्ता पश्चिमायां रक्तावती, अवशिष्टं 'तदेव'** गङ्गा-सिन्धुप्रकरणोक्तमेव **सम्पूर्णं नेतव्यम्** ॥२७४॥

---

१. द्र. ४।१-२ ॥ २. द्र. ४।३-४३ । जहा रोहिया-पुवृ. हीवृ. । क्वचित् जहा रोहियंसा-पुवृ. । यत्तु बहुष्वादर्शेषु जहा रोहिअंस त्ति पाठः स चायुक्तो लेखकदोषः - हीवृ. ॥

अथात्र कूटवक्तव्यमाह-

सिहरिम्मि णं भन्ते ! वासहरपव्वए कइ कूडा पण्णत्ता ?, गो० ! इक्कारस कूडा पं०, तं०-सिद्धाययणकूडे १ सिहरिकूडे २ हेरण्णवयकूडे ३ सुवण्णकूलाकूडे ४ सुरादेवीकूडे ५ रत्ताकूडे ६ लच्छीकूडे ७ रत्तवईकूडे ८ इलादेवीकूडे ९ एरवयकूडे १० तिगिच्छिकूडे[1] ११ । एवं सव्वेवि एते कूडा पंचसइआ, रायहाणीओ उत्तरेणं ॥ २७५ ॥

"**सिहरिम्मि णं भन्ते ! वासहरपव्वए**" इत्यादि, **शिखरिणि पर्वते** भगवन् ! **कति कूटानि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम ! एकादश कूटानि प्रज्ञप्तानि**, तद्यथा-पूर्वस्यां **सिद्धायतनकूटम्**, ततः क्रमेण '**शिखरिकूटं**' शिखरिवर्षधरनाम्ना कूटं **हैरण्यवत**-क्षेत्रसुर**कूटं सुवर्णकूलानदीसुरीकूटं सुरादेवी**दिक्कुमारी**कूटं रक्ता**वर्त्तन**कूटं 'लक्ष्मीकूटं'** पुण्डरीकद्रहसुरीकूटं **रक्तावत्या**वर्त्तन**कूटम् इलादेवी**दिक्कुमारी**कूटं ऐरावत**क्षेत्रपति**कूटं तिगिच्छि**द्रहपति**कूटम्, एवं सर्वाण्यप्येतानि पञ्चशतिकानि** ज्ञातव्यानि, क्षुद्रहिमवत्-कूटतुल्यवक्तव्यताकानि ज्ञेयानि, एतत्स्वामिनां **राजधान्य उत्तरस्यामिति** ॥२७५॥

से केणट्ठेणं भन्ते ! एवमुच्चइ-सिहरिवासहरपव्वए २ ?, गोअमा ! सिहरिंमि वासहरपव्वए बहवे कूडा सिहरिसंठाणसंठिआ सव्वरयणामया, सिहरी अ इत्थ देवे जाव[2] परिवसइ, से तेणट्ठेणं० ॥ २७६ ॥

अथास्य नामनिबन्धनं प्रष्टुमाह-"**से केणट्ठेण**"मित्यादि, **अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते-शिखरीवर्षधरपर्वतः २ ?, गौतम ! शिखरिणि पर्वते बहूनि कूटानि 'शिखरी'** वृक्षस्तत्**संस्थानसंस्थितानि सर्वरत्नमयानि** सन्तीति तद्योगाच्छिखरी । कोऽर्थः ? अत्र वर्षधराद्रौ यानि सिद्धायतनकूटादीन्येकादश कूटान्युक्तानि तेभ्योऽतिरिक्तानि बहूनि शिखराणि वृक्षाकारपरिणतानि सन्तीति । अनेन चान्येभ्यो वर्षधरेभ्यो व्यावृत्तिः कृता, अन्यथा तेषामपि कूटवत्वेन शिखरित्वव्यपदेशः स्यादिति । अथवा **शिखरी चात्र देवो** महर्द्धिको **यावत्** पल्योपमस्थितिकः **परिवसति**, तेन तत्स्वामिकत्वात् शिखरीति । "**से तेणट्ठेण**"मित्यादि, निगमनवाक्यं पूर्ववदिति ॥२७६॥

अथ सप्तमवर्षावसरः-

कहि णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे एरावए णामं वासे पण्णत्ते ?, गोअमा ! सिहरिस्स उत्तरेणं, उत्तरलवणसमुद्दस्स दक्खिणेणं, पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स

---

१. तिगिच्छ ०अ J1 । तिगिंछि० कत्रिप पुके । तिगिच्छे ०ख । तेगिच्छि ०ब ॥ २. द्र. १।२४ ॥

पच्चत्थिमेणं, पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जम्बुद्दीवे दीवे एरावए णामं वासे पण्णत्ते । खाणुबहुले कंटकबहुले एवं जच्चेव भरहस्स वत्तव्वया सच्चेव सव्वा निरवसेसा णेअव्वा, सओअवणा सणिक्खमणा सपरिनिव्वाणा । णवरं एरावओ चक्कवट्टी एरावओ देवो, से तेणट्ठेणं एरावए वासे २ ॥ २७७ ॥

"**कहि ण**"मित्यादि, **क्व भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे ऐरावतं नाम वर्षं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! शिखरिणो** वर्षधरस्**योत्तरस्याम्** उत्तरदिग्वर्त्तिनो **लवणसमुद्रस्य दक्षिणस्यां** "**पुरत्थिमे**"त्यादि, प्राग्वत् **अत्रान्तरे जम्बूद्वीपे [२] ऐरावतं नाम वर्षं प्रज्ञप्तम् । स्थाणुबहुलं कण्टकबहुलं** 'एवम्' अनेन प्रकारेण **यैव भरतस्य वक्तव्यता सैवास्यापि सर्वा निरवशेषा नेतव्या**, यतो यन्मेरोर्दक्षिणभागे तन्निरवशेषमुत्तरेऽपि भागे भवति, यथा वैताढ्येन द्वेधा कृतं भरतमित्याद्युक्तं तथैवैरावतेऽपि विज्ञेयमिति । सा च कथंभूता ? इत्याह- '**सओअवणा**' षट्खण्डैरावतक्षेत्रसाधनसहिता '**सनिक्खमणा**' दीक्षाकल्याणकवर्णकसहिता '**सपरिनिर्वाणा**' मुक्तिगमनकल्याणकसहिता । **नवरं** राजनगरी क्षेत्रदिगपेक्षया ऐरावतोत्तरार्द्धमध्ये तापक्षेत्रदिगपेक्षया त्वेषाऽपि दक्षिणार्द्ध एव केवलमिह शास्त्रे क्षेत्रदिगपेक्षया व्यवहारः, क्षेत्रदिक् च 'इंदा विजयदाराणुसाराओ' इत्यादिना भावनीयेति । तथा वैताढ्यश्चात्र विपर्ययनगरसङ्ख्यः, जगत्यनुरोधेन क्षेत्रसाङ्कीर्ण्यात्, **तथैरावत**नामा **चक्रवर्त्ती** वक्तव्यः । कोऽर्थः ? यथा भरतक्षेत्रे भरतश्चक्रवर्त्ती तस्य च दिग्विजयनिष्क्रमणादिकं निरूपितं तथैरावतचक्रवर्त्तिनो वाच्यम्, अनेन चैरावतस्वामियोगादैरावतमिति नाम सिद्धम् । अथवा **ऐरावतो** नाम्नाऽत्र **देवो** महर्द्धिको यावत्पल्योपमस्थितिकः परिवसति चेत्यध्याहार्यम्, **तेन** तत्स्वामिकत्वा**दैरावत**मिति व्यवह्रियते इति निगमनवाक्यं स्वयमभ्यूह्यम् ॥२७७॥

इति सातिशयधर्मदेशनारससमुल्लासविस्मयमानऐदंयुगीननराधिपति-
चक्रवर्तिसमानश्रीअकब्बरसुरत्राणप्रदत्तषाण्मासिकसर्वजगज्जन्तुजाताभयप्रदानशत्रुञ्जयादि-
करमोचनस्फुरन्मानप्रदानप्रभृतिबहुमानसाम्प्रतविजयमानश्रीमत्तपागच्छाधिराजश्रीहीरविजय-
सूरीश्वरपदपद्मोपासनाप्रवणमहोपाध्यायश्रीसकलचन्द्रगणि-
शिष्योपाध्यायश्रीशान्तिचन्द्रगणिविरचितायां जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्तौ रत्नमञ्जूषानाम्न्यां
क्षुद्रहिमवदादिवर्षधरैरावतान्तवर्षवर्णनो नाम चतुर्थो वक्षस्कारः ॥

●●●

---

१. द्र. ३।१-२६६ ॥

अथ पञ्चमो वक्षस्कारः ।।५।।

सम्प्रति यदुक्तं पाण्डुकम्बलाशिलादौ सिंहासनवर्णनाधिकारे 'अत्र जिना अभिषिच्यन्ते' तत्सिंहावलोकनन्यायेनानुस्मरन् जिनजन्माभिषेकोत्सववर्णनार्थं प्रस्तावनासूत्रमाह-

जया णं एक्कमेक्के चक्कवट्टिविजए भगवन्तो[1] तित्थयरा समुप्पज्जन्ति, तेणं कालेणं तेणं समएणं अहेलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ महत्तरिआओ सएहिं २ कूडेहिं सएहिं २ भवणेहिं सएहिं २ पासायवडेंसएहिं पत्तेअं २ चउहिं सामाणिअसाहस्सीहिं चउहिं य महत्तरिआहिं सपरिवाराहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणिआहिवईहिं सोलसएहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहि अ बहूहिं[2] भवणवइ-वाणमन्तरेहिं देवेहिं देवीहि अ सद्धिं संपरिवुडाओ महया हय-णट्ट-गीय-वाइअ जाव भोगभोगाइं भुंजमाणीओ विहरंति, तं जहा-

भोगंकरा १ भोगवई २, सुभोगा ३ भोगमालिनी ४ ।
[3]तोयधारा ५ विचित्ता य ६, पुप्फमाला ७ अणिंदिआ ८।। १ ।।

"**जया णं एक्कमेक्के**" इत्यादि, '**यदा**' यस्मिन् काले **एकैकस्मिन् चक्रवर्त्तिविजेतव्ये** क्षेत्रखण्डे भरतैरावतादौ **भगवन्तस्तीर्थंकराः 'समुत्पद्यन्ते'** जायन्ते तदाऽयं जन्ममहोत्सवः प्रवर्त्तते इति शेषः । अत्र च चक्रवर्त्तिविजये इत्यनेनाकर्मभूमिषु देवकुर्वादिषु जिनजन्मासम्भव इत्युक्तं भवति । एकैकस्मिन्नित्यत्र वीप्साकरणेन च सर्वत्रापि कर्मभूमौ जिनजन्मसम्भवश्च यथाकालमभिहित इति । तत्र चादौ षट्पञ्चाशतो दिक्कुमारीणामितिकर्त्तव्यता वक्तव्या, तत्राप्यधोलोकवासिनीनामष्टानामिति तासां स्वरूपमाह-"**तेणं कालेण**"मित्यादि, '**तस्मिन् काले**' सम्भवज्जिनजन्मके भरतैरावतेषु तृतीय-चतुर्थारकलक्षणे महाविदेहेषु चतुर्थारकप्रतिभागलक्षणे, तत्र सर्वदापि तदाद्यसमयसदृशकालस्य विद्यमानत्वात् '**तस्मिन् समये**'

---

१. भगवं-अकखत्रिबस ।। २. बहुहिं वाणमंतरेहिं-अकखत्रिबस J12 ।। ३. स्थानाङ्गे ८/९९-१०० भिन्नानिनामानि दृश्यन्ते ।।

सर्वत्राप्यर्द्धरात्रलक्षणे, तीर्थकराणां हि मध्यरात्र एव जन्मसम्भवात्, '**अधोलोकवास्तव्याः**' चतुर्णां गजदन्तानामधः समभूतलान्नवशतयोजनरूपां तिर्यग्लोकव्यवस्थां विमुच्य प्रतिगजदन्तं द्विद्विभावेन, तत्र भवनेषु वसनशीलाः । यत्तु गजदन्तानां षष्ठ-पञ्चमकूटेषु पूर्वं गजदन्तसूत्रे आसां वासः प्ररूपितस्तत्र क्रीडार्थमागमनं हेतुरिति । अन्यथा आसामपि चतुःशतयोजनादि-पञ्चशतयोजनपर्यन्तोच्चत्वगजदन्तगिरिगतपञ्च-शतिककूटगतप्रासादावतंसकवासित्वेन नन्दन-वनकूटगतमेघङ्करादिदिक्कुमारीणामिवोर्ध्वलोक-वासित्वापत्तिः ।

अथ प्रकृतं प्रस्तुमः-**अष्टौ** '**दिक्कुमार्य**' दिक्कुमारभवनपतिजातीया '**महत्तरिकाः**' स्ववर्ग्येषु प्रधानतरिकाः **स्वकेषु स्वकेषु** '**कूटेषु**' गजदन्तादिगिरिवर्त्तिषु **स्वकेषु २** '**भवनेषु**' भवनपतिदेवावासेषु **स्वकेषु २** '**प्रासादावतंसकेषु**' स्वस्वकूटवर्त्तिक्रीडावासेषु, सूत्रे च सप्तम्यर्थे तृतीया प्राकृतत्वात्, **प्रत्येकं २ चतुर्भिः** '**सामानिकानां**' दिक्कुमारी-सदृशद्युतिविभवादिकदेवानां **सहस्रैः, चतसृभिश्च** '**महत्तरिकादिभिः**' दिक्कुमारिकातुल्य-विभवाभिस्ताभिरनतिक्रमणीयवचनाभिश्च **स्वस्वपरिवारस**हिताभिः **सप्तभिः** '**अनीकैः**' हस्त्यश्व-रथ-पदाति-महिष-गन्धर्व-नाट्यरूपैः **सप्तभिरनीकाधिपतिभिः षोडशभिरात्म-रक्षकदेवसहस्रै**रित्यादिकं सर्वं विजयदेवाधिकार इव व्याख्येयम् ।

ननु कासाञ्चित् दिक्कुमारीणां व्यक्त्या **स्थानाङ्गे** पल्योपमस्थितेर्भणनात् समानजाती-यत्वेनासामपि तथाभूतायुषः सम्भाव्यमानत्वाद् भवनपतिजातीयत्वं सिद्धम्, तेन भवनपति-जातीयानां वानमन्तरजातीयपरिकरः कथं सङ्गच्छते ?, उच्यते, एतासां महर्द्धिकत्वेन ये आज्ञाकारिणो व्यन्तरास्ते ग्राह्या इति । अथवा वानमन्तरशब्देनात्र वनानामन्तरेषु चरन्तीति यौगिकार्थसंश्रयणात् भवनपतयोऽपि वानमन्तरा इत्युच्यन्ते, उभयेषामपि प्रायो वन-कूटादिषु विहरणशीलत्वादिति सम्भाव्यते, तत्त्वं तु बहुश्रुतगम्यमिति सर्व सुस्थम् । आसां नामान्याह- "**तं जहा**" इत्यादि, तद्यथा-**भोगङ्करे**त्यादिरूपकमेतत्, कण्ठ्यम् ॥१॥

अथैतास्वेवं विहरन्तीषु सतीषु किं जातम् ? इत्याह-

तए णं तासिं अहेलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारीमहत्तरिआणं[1] पत्तेयं पत्तेअं आसणाइं चलंति ॥ २ ॥

"**तए ण**"मित्यादि, **ततस्ता-सामधोलोकवास्तव्यानामष्टानां दिक्कुमारीणां महत्तरिकाणां प्रत्येकम् २आसनानि चलन्तीति** ॥२॥ अथैताः किं किमकार्षुः ? इत्याह-

---

१. J12 V । ०कुमारीणं मयहरिआणं-मु. ॥

तए णं ताओ अहेलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीओ महत्तरिआओ पत्तेयं २ आसणाइं चलिआइं पासन्ति, २ त्ता ओहिं पउंजंति, पउंजित्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएंति, २ त्ता अण्णमण्णं सद्दाविंति, २ त्ता एवं वयासी-उप्पण्णे खलु भो ! जम्बुद्दीवे दीवे भयवं तित्थयरे, तं जीयमेअं तीअ-पच्चुप्पण्णमणागयाणं अहेलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारीमहत्तरिआणं [1]भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करेत्तए, तं गच्छामो णं अम्हे वि भगवओ जम्मणमहिमं करेमो त्तिकट्टु एवं वयंति, २ त्ता पत्तेअं पत्तेअं [2]आभिओगिए देवे सद्दावेंति, २ त्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठे लीलट्ठिअ० एवं विमाणवण्णओ भाणिअव्वो [3]जाव जोअणवित्थिण्णे दिव्वे जाणविमाणे विउव्वह विउव्वित्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह त्ति ॥ ३ ॥

"**तए ण**"मित्यादि, '**ततः**' आसनप्रकम्पानन्तरं **ताः-अधोलोकवास्तव्या अष्टौ दिक्कुमार्यो महत्तरिकाः प्रत्येकं २ आसनानि चलितानि पश्यन्ति, दृष्ट्वा चावधिं प्रयुञ्जन्ति, प्रयुज्य च भगवन्तं तीर्थकरमवधिना आभोगयन्ति, आभोग्य च अन्यमन्यं शब्दयन्ति, शब्दयित्वा च एवमवादिषुः** । यदवादिषुस्तदाह-"**उप्पण्णे**" इत्यादि, **उत्पन्नः खलु भो ! जम्बूद्वीपे द्वीपे भगवांस्तीर्थकरः 'तज्जीतमेतत्'** कल्प एषोऽ**तीत-प्रत्युत्पन्ना-ऽनागतानामधोलोकवास्तव्यानामष्टानां दिक्कुमारीमहत्तरिकाणां भगवतो जन्ममहिमां कर्त्तुं, तद् गच्छामो वयमपि भगवतो जन्ममहिमां कुर्म 'इतिकृत्वा'** धातूनामनेकार्थत्वा-न्निश्चित्य मनसा '**एवम्**' अनन्तरोक्तं **वदन्ति, उदित्वा च प्रत्येकं २ आभियोगिकान् देवान् शब्दयन्ति, शब्दयित्वा च एवमवादिषुः** । किमवादिषुः ? इत्याह-"**खिप्पामेव**" इत्यादि, **भो देवानुप्रियाः ! क्षिप्रमेव अनेकस्तम्भशतसन्निविष्टानि लीलास्थितशालभञ्जिका-नीति 'एवम्'** अनेन क्रमेण **विमानवर्णको भणितव्यः** । स चायम् "ईहामिग-उसभ-तुरग-णर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुञ्जर-वणलय-पउमलयभत्तिचित्ते खंभुग्गय-वइरवेइआपरिगयाभिरामे विज्जाहरजमलजुअलजन्तजुत्ते विव अच्चीसहस्समालिणीए रूवगसहस्सकलिए भिसमाणे भिब्भिसमाणे चक्खुल्लोअणलेसे सुहफासे सस्सिरीअरूवे

---

१. भगवओ तित्थगरस्स-J12 पुके V नास्ति ॥ २. आभिओगे-J12 अकखत्रिबस ॥ ३. द्र. ५।२८ ॥

घंटावलिअमहुरमणहरसरे सुभे कंते दरिसणिज्जे निउणोविअमिसिमिसेंतमणिरयणघंटिआ-जालपरिक्खित्ते''त्ति । कियत्पर्यन्तम् ? इत्याह-**यावद् योजनविस्तीर्णानि दिव्यानि** यानाय-इष्टस्थाने गमनाय विमानानि अथवा यानरूपाणि-वाहनरूपाणि विमानानि **यानविमानानि 'विकुर्वत'** वैक्रियशक्त्या सम्पादयत, **विकुर्वित्वा** च **एनामाज्ञप्तिं प्रत्यर्पयत** । अथ यानविमानवर्णकव्याख्या प्राग्वद् ज्ञेया, तोरणादिवर्णकेषु एतद्विशेषणगणस्य व्याख्याततत्वात् ॥३॥ ततस्ते किं चक्रुः ? इत्याह-

तए[1] णं ते आभिओगा देवा अणेगखम्भसय० जाव पच्चप्पिणंति ॥४॥

''**तए ण**''मित्यादि **ततस्ते आभियोगिका देवा अनेकस्तम्भशत**सन्निविष्टानि **यावदाज्ञां प्रत्यर्पयन्ति** ॥४॥ अथैताः किं कुर्वन्ति ? इत्याह-

तए णं ताओ अहेलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ हट्ठतुट्ठ० पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणिअसाहस्सीहिं चउहिं महत्तरिआहिं जाव अण्णेहिं बहूहिं देवेहिं देवीहि अ सद्धिं संपरिवुडाओ ते दिव्वे जाणविमाणे दुरुहंति, दुरुहित्ता सव्विड्डीए सव्वजुईए घणमुइंग-पणवपवाइअरवेणं ताए उक्किट्ठाए जाव[2] देवगईए जेणेव भगवओ तित्थगरस्स जम्मणणगरे जेणेव तित्थयरस्स जम्मणभवणे तेणेव उवागच्छन्ति, २ त्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणं तेहिं दिव्वेहिं जाणविमाणेहिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति, करित्ता उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए ईसिं चउरंगुलमसंपत्ते धरणिअले ते दिव्वे जाणविमाणे ठविंति, ठवित्ता पत्तेअं २ चउहिं सामाणिअसाहस्सेहिं जाव सद्धिं संपरिवुडाओ दिव्वेहिंतो जाणविमाणेहिंतो पच्चोरुहंति, २ त्ता सव्विड्डीए जाव णाइएणं जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छन्ति, २ त्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च तिखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति, २ त्ता पत्तेअं २ करयलपरिग्गहिअं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी-॥५-A॥

''**तए णं ताओ**'' इत्यादि, **ततस्ता अधोलोकवास्तव्या अष्टौ दिक्कुमारीमहत्तरिकाः** हट्ठतुट्ठेत्याद्येकदेशदर्शनेन सम्पूर्ण आलापको ग्राह्यः । स चायम् ''हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिआ पीअमणा

---

१. सूत्र ४ अब J12 नास्ति ॥ २. द्र. ३।२६ ॥

परमसोमणस्सिआ हरिसवसविसप्पमाणहिअया विअसिअवरकमलनयणा पचलिअवरकडग-तुडिअ-केऊर-मउड-कुण्डलहारविरायंतरइअवत्था पालंबपलंबमाणघोलंतभूसणधरा ससंभमं तुरिअं चवलं सीहासणाओ अब्भुट्ठेन्ति २ त्ता, पायपीढाओ पच्चोरुहन्ति २ त्ता" इति । **प्रत्येकं २ चतुर्भिः सामानिकसहस्रैः चतसृभिश्च महत्तरिकाभिर्यावदन्यैर्बहुभिर्देवैर्देवीभिश्च सार्द्धं सम्परिवृतास्तानि दिव्यानि यानविमानान्यारोहन्ति** । **आरोह**णोत्तरकालं येन प्रकारेण सूतिकागृहमुपतिष्ठन्ते तथाऽऽह "**दुरुहित्ता**" इत्यादि, आरुह्य च **सर्वर्द्ध्या सर्वद्युत्या 'घनमृदङ्ग'** मेघवद् गम्भीरध्वनिकं मृदङ्गं '**पणवः**' मृत्पटहः, उपलक्षणमेतत् तेनान्येषामपि तूर्याणां सङ्ग्रहः, एतेषां **प्रवादितानां** यो **रवस्तेन, तया उत्कृष्टया यावत्**करणात् "तुरिआए चवलाए" इत्यादिपदसङ्ग्रहः प्राग्वत् **देवगत्या यत्रैव भगवतस्तीर्थकरस्य जन्मनगरं यत्रैव** च **तीर्थकरस्य जन्मभवनं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य च भगवतस्तीर्थकरस्य जन्मभवनं तैर्दिव्यैर्यानविमानैस्त्रिकृत्वः आदक्षिणप्रदक्षिणं कुर्वन्ति**, त्रीन् वारान् प्रदक्षिणयन्तीत्यर्थः, त्रिः प्रदक्षिणी**कृत्य** च '**उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे**' ईशानकोणे **ईषच्च-तुरङ्गुलमसम्प्राप्तानि धरणितले तानि दिव्यानि यानविमानानि स्थापयन्तीति** । अथ यच्चक्रुस्तदाह–"**ठवित्ता**" इत्यादि, स्थापयित्वा च **प्रत्येकं २** अष्टावपीत्यर्थः, **चतुर्भिः सामानिकसहस्रैर्यावत् सार्द्धं सम्परिवृता दिव्येभ्यो यानविमानेभ्यः प्रत्यवरोहन्ति, प्रत्यवरुह्य च सर्वर्द्ध्या यावच्छ**ब्दात् सर्वद्युत्यादिपरिग्रहः । कियत्पर्यन्तम् ? इत्याह–"संख-पणव-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरज-मुइंग-दुंदुहिनिग्घोसनाइएणं"ति, **यत्रैव भगवांस्तीर्थ-करमाता च तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य च भगवन्तं तीर्थकरं तीर्थकरमातरं च त्रिः प्रदक्षिणयन्ति, त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य च प्रत्येकं [२] करतलपरिगृहीतं शिरस्यावर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा 'एवं'** वक्ष्यमाणमवादिषुः ॥५-A॥ यदवादिषुस्तदाह–

णमोत्थु ते रयणकुच्छिधारिए जगप्पईवदाईए [१]सव्वजगमंगलस्स चक्खुणो [२]अ मुत्तस्स सव्वजगजीववच्छलस्स [३]हिअकारगमग्गदेसियवा[४]गिड्ढि-विभुपभुस्स जिणस्स णाणिस्स नायगस्स बुद्धस्स बोहगस्स [५]सव्वलोगनाहस्स निम्ममस्स पवरकुलसमुब्भवस्स जाईए खत्तिअस्स जंसि लोगुत्तमस्स जणणी धण्णासि तं पुण्णासि [६]कयत्थासि । अम्हे णं देवाणुप्पिए !

---

१. तुला आवश्यकचूर्णौ पृ. १३७ ॥ २. ख मु. । य मुत्तस्स–V । असुत्तस्स–त्रि । सुत्तस्सत्ति सूत्रमिव सूत्रं ज्ञानादिरत्नावलिनिबन्धहेतुत्वात् तस्य यथा 'असुत्तस्स'त्ति अखण्डमिव विशेषणं तत्र न सुप्तोऽसुप्तः सर्वत्रापि सदनुष्ठानेषु निद्रारहितो जागरुकोऽप्रमत्त इत्यर्थः हीवृ. । इति V ५२७ टि. २ ॥ ३. ०करग० अकखबस पुवृहीवृ J12 ॥ ४. प शावृ. । ०पाउड्ढि० VJ1 ॥ ५. सकललो० अव J12 ॥ ६. कयत्थे–अब आव. चू. पृ. १३७ ॥

अहेलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामो, तण्णं तुब्भाहिं[१] ण भाइयव्वं ॥५-B॥

"**नमोऽत्थु ते**" इत्यादि, **नमोऽस्तु 'ते'** तुभ्यं '**रत्न**' भगवल्लक्षणं कुक्षौ धरतीति **रत्नकुक्षिधारिके**, अथवा रत्नगर्भावद् गर्भधारकत्वेनापरस्त्रीकुक्षिभ्योऽतिशायित्वेन रत्नरूपां कुक्षिं धरतीति, शेषं तथैव । तथा '**जगतः**' जगद्वर्त्तिजनानां सर्वभावानां प्रकाशकत्वेन **प्रदीप** इव प्रदीपो भगवान् तस्य **दायिके**[२], **सर्वजगन्मङ्गल**भूतस्य चक्षुरिव **चक्षुः** सकलजगद्भाव-दर्शकत्वेन तस्य, '**चः**' समुच्चये । चक्षुश्च द्रव्य-भावभेदाभ्यां द्विधा । तत्राद्यं भावचक्षुरसहकृतं नार्थ(सर्व)प्रकाशकम्, तेन भावचक्षुषा भगवानुपमीयते, तच्चामूर्त्तमिति ततो विशेषमाह-'**मूर्त्तस्य**' मूर्त्तिमतः चक्षुर्ग्राह्यस्येत्यर्थः, **सर्वजगज्जीवानां 'वत्सलस्य'** उपकारकस्य । उक्तार्थे विशेषणद्वारा हेतुमाह-**हितकारको 'मार्गः'** मुक्तिमार्गः सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूपस्तस्य '**देशिका**' उपदेशिका उपदेशदर्शिकेत्यर्थः । तथा '**विभ्वी**' सर्वभाषानुगमनेन परिणमनात् सर्वव्यापिनी सकलश्रोतृ-जनहृदयसङ्क्रान्ततात्पर्यार्था, एवंविधा '**वागृद्धिः**' वाक्सम्पत्तस्याः '**प्रभुः**' स्वामी सातिशयवचनलब्धिक इत्यर्थः, तस्य तथा, अत्र विशेषणस्य परनिपातः प्राकृतत्वात् । '**जिनस्य**' रागद्वेषजेतुः '**ज्ञानिनः**' सातिशयज्ञानयुक्तस्य '**नायकस्य**' धर्मवरचक्रवर्त्तिनः '**बुद्धस्य**' विदिततत्त्वस्य '**बोधकस्य**' परेषामावेदिततत्त्वस्य '**सकललोकनाथस्य**' सर्व-प्राणिवर्गस्य बोधिबीजाधान-संरक्षणाभ्यां योगक्षेमकारित्वात् '**निर्ममस्य**' ममत्वरहितस्य **प्रवरकुलसमुद्भवस्य जात्या क्षत्रियस्य** एवंविधविख्यातगुणस्य **लोकोत्तमस्य** यत्त्वमसि **जननी** तत्त्वं **धन्याऽसि पुण्यवत्यसि कृतार्थाऽसि । वयं हे देवानुप्रिये ! अधोलोक-वास्तव्या अष्टौ दिक्कुमारीमहत्तरिका भगवतो जन्ममहिमां करिष्यामः, तेन युष्माभिर्न भेतव्यम्**, 'असम्भाव्यमानपरजनापातेऽस्मिन् रहःस्थाने इमा विसदृशजातीयाः किम्' इति शङ्काकुलं चेतो न कार्यमित्यर्थः ॥५-B॥ अथैतासामितिकर्त्तव्यतामाह-

तिकट्टु उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमन्ति, २ त्ता वेउव्विअसमुग्घाएणं सम्मोहणंति, २ त्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरंति, तंजहा-रयणाणं जाव संवट्टगवाए विउव्वंति, २ त्ता तेणं सिवेणं मउएणं मारुएणं अणुद्धुएणं भूमितल-विमलकरणेणं मणहरेणं सव्वोउअसुरहिकुसुमगन्धाणुवासिएणं पिण्डिमणिहारिमेणं गन्धुद्धुएणं[३] तिरिअं पवाइएणं भगवओ तित्थयरस्स

---

१. VJ । तुब्भेहिं-मु. ॥ २. दीपिके-मु. ॥ ३. गंधुद्धुरेणं-V ॥

जम्मणभवणस्स सव्वओ समन्ता जोअणपरिमण्डलं से जहा णामए कम्मगरदारए सिआ जाव[१] तहेव ॥५-c॥

"**इतिकट्टु उत्तरपुरत्थिमं दिसीभाग**"मित्यादि, '**इतिकृत्वा**' प्रस्तावादित्युक्त्वा ता एवोत्तरपौरस्त्यं **दिग्भागमप-क्रामन्ति, अपक्रम्य** च **वैक्रियसमुद्घातेन समवघ्नन्ति, समवहत्य च सङ्ख्यातानि योजनानि दण्डं निसृजन्ति** । निसृज्य च किं ताः कुर्वन्ति ?, तदेवाह-**तद्यथा-रत्नानां यावत्**पदात् "वइराणं वेरुलिआणं लोहिअक्खाणं मसारगल्लाणं हंसगब्भाणं पुलयाणं सोगंधियाणं जोईरसाणं अंजणाणं पुलयाणं रयणाणं जायरूवाणं अंकाणं फलिहाणं रिट्ठाणं अहाबायरे पुग्गले परिसाडेइ, अहासुहुमे पुग्गले परिआएइ, दुच्चं पि वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणंति २ त्ता" इति पदसङ्ग्रहः । एतत्सविस्तरव्याख्या पूर्वं भरताभियोगिकदेवानां वैक्रियकरणाधिकारे कृता तेन ततो ग्राह्या, वाक्ययोजनार्थं तु किञ्चिल्लिख्यते । एषां रत्नानां बादरान् पुद्गलान् परिशाट्य, सूक्ष्मान् पुद्गलान् गृह्णन्ति, पुनर्वैक्रियसमुद्घातपूर्वकं **संवर्त्तक-वातान् विकुर्वन्ति**, बहुवचनं चात्र चिकीर्षितकार्यस्य सम्यक्सिद्ध्यर्थं पुनः पुनर्वात-विकुर्वणाज्ञापनार्थम् । **विकुर्व्य च 'तेन'** तत्कालविकुर्वितेन '**शिवेन**' उपद्रवरहितेन '**मृदुकेन**' भूमिसर्प्पिणा **मारुतेन 'अनुद्धूतेन'** अनूर्ध्वंचारिणा **भूमितलविमलकरणेन मनोहरेण 'सर्वर्तुकानां'** षड्ऋतुसम्भवानां **सुरभिकुसुमानां गन्धेनानुवासितेन 'पिण्डिमः'** पिण्डितः सन् '**निर्हारिमः**' दूरं विनिर्गमनशीलो यो **गन्धस्तेन उद्धुरेण** बलिष्ठेनेत्यर्थः, '**तिर्यक्प्रवातेन**' तिर्यक् वातुमारब्धेन **भगवतस्तीर्थकरस्य जन्मभवनस्य सर्वतो** दिक्षु **समन्ताद्विदिक्षु योजनपरिमण्डलम्, 'से जहाणामए कम्मारदारए सिआ जाव'** इत्येतत्सूत्रैकदेशसूचित-दृष्टान्तसूत्रान्तर्गतेन '**तहेवे**'ति दार्ष्टान्तिकसूत्रबलादायातेन सम्मार्जतीतिपदेन सहान्वययोजना कार्या । तच्चेदं दृष्टान्तसूत्रम्-

"से जहाणामए कम्मयरदारए सिआ तरुणे बलवं जुगवं जुवाणे अप्पायंके थिरग्गहत्थे दढपाणिपाए पिट्ठंतरोरुपरिणए घणणिचिअ-वट्टवलिअखंधे चम्मेट्ठगदुहण-मुट्ठिअसमाहयनिचि-अगत्ते उरस्सबलसमण्णागए तलजमलजुअलपरिघबाहू लंघण-पवण-जइण-पमद्दणसमत्थे छेए दक्खे पट्ठे कुसले मेहावी निउणसिप्पोवगए एगं महंतं सिलागहत्थगं वा दंडसंपुच्छणिं वा वेणुसिलागिगं वा गहाय रायंगणं वा रायंतेउरं वा देवकुलं वा सभं वा पवं वा आरामं वा उज्जाणं वा अतुरिअमचवलमसंभंतं निरन्तरं सनिउणं सव्वओ समन्ता संपमज्जति" [राजप्र. १२]

---

१. द्र. राजप्र. सू. १२ ॥

स यथानामकः-यत्प्रकारनामकः कर्मदारकः स्याद्-भवेत् । आसन्नमृत्युर्हि दारको न विशिष्टसार्मथ्यभाग् भवतीत्यत आह-तरुणः-प्रवर्द्धमानवयाः । स च बलहीनोऽपि स्यादित्यत आह-बलवान् । कालोपद्रवोऽपि विशिष्टसामर्थ्यविघ्नहेतुरित्यत आह-युगं-सुषमदुष्षमादि-कालः सोऽदुष्टः-निरुपद्रवो विशिष्टबलहेतुर्यस्यास्त्यसौ युगवान् । एवंविधश्च को भवति ? युवा-यौवनवयस्थः । ईदृशोऽपि ग्लानः सन् निर्बलो भवत्यतः-अल्पातङ्कः, अल्पशब्दो-ऽत्राभाववचनः, तेन निरातङ्क इत्यर्थः । तथा स्थिरः-प्रस्तुतकार्यकरणेऽकम्पोऽग्रहस्तः-हस्ताग्रं यस्यासौ तथा । तथा दृढं-निबिडितरचयमापन्नं पाणि-पादं यस्य स तथा, पृष्ठं-प्रतीतम् अन्तरे-पार्श्वरूपे ऊरू-सक्थिनी एतानि परिणतानि-परिनिष्ठिततां गतानि यस्य स तथा, सुखादिदर्शनात् पाक्षिकः क्तान्तस्य परनिपातः, अहीनाङ्ग इत्यर्थः । घननिचितौ-निबिडतर-चयमापन्नौ वलिताविव वलितौ हृदयाभिमुखौ जातावित्यर्थः, वृत्तौ स्कन्धौ यस्य स तथा । तथा चर्मेष्टकेन-चर्मपरिणद्धकुट्टनोपकरणविशेषेण द्रुघणेन-घनेन मुष्टिकया च-मुष्ट्या समाहताः-समाहताः सन्तस्ताडिताः-ताडिताः सन्तो ये निचिताः-निबिडीकृताः प्रवहणप्रेष्यमाण-वस्त्रग्रन्थकादयस्तद्वद् गात्रं यस्य स तथा, उरसि भवमुरस्यं ईदृशेन बलेन समन्वागतः-आन्तरोत्साहवीर्ययुक्तः, तलौ-तालवृक्षौ तयोर्यमलं-समश्रेणीकं यद्युगलं-द्वयं परिघश्च-अर्गला तन्निभे-तत्सदृशे दीर्घसरलपीनत्वादिना बाहू यस्य स तथा, लङ्घने-गर्त्तादेरतिक्रमे प्लवने-मनाक् विक्रमवति गमने जवने-अतिशीघ्रगमने प्रमर्दने-कठिनस्यापि वस्तुनश्चूर्णने समर्थः, छेकः-कलापण्डितः दक्षः-कार्याणामविलम्बितकारी प्रष्ठः-वाग्मी कुशलः-सम्यक्क्रिया-परिज्ञानवान् मेधावी-सकृत्श्रुतदृष्टकर्मज्ञः 'निपुणशिल्पोपगतः' निपुणं यथा भवत्येवं शिल्प-क्रियासु कौशलं उपगतः-प्राप्तः, एकं महान्तं शलाकहस्तकं-सरित्पर्णादिशलाका-समुदायं सरित्पर्णादिशलाकामयीं सम्मार्जनीमित्यर्थः, वाशब्दा विकल्पार्थाः, दण्डसम्पुञ्छनीं-दण्डयुक्तां सम्मार्जनीं वेणुशलाकिकीं-वंशशलाकानिर्वृत्तां सम्मार्जनीं गृहीत्वा, राजाङ्गणं वा राजान्तःपुरं वा देवकुलं वा सभां वा-पुरप्रधानानां सुखनिवेशनहेतुमण्डपिकामित्यर्थः, प्रपां वा-पानीय-शालाम् आरामं वा-दम्पत्योर्नगरासन्नरतिस्थानम् उद्यानं वा-क्रीडार्थागतजनानां प्रयोजनाभावे-नोर्ध्वावलम्बितयानवाहनाद्याश्रयभूतं तरुखण्डम् अत्वरितमचपलमसम्भ्रान्तम्, त्वरायां चापल्ये सम्भ्रमे वा सम्यक्कचवराद्यपगमासम्भवात् । तत्र त्वरा-मानसौत्सुक्यं चापल्यं-कायौत्सुक्यं सम्भ्रमश्च-गतिस्खलनमिति । निरन्तरं न तु अपान्तरालमोचनेन सुनिपुण-मल्पस्याप्यचोक्षस्या-पसारणेन सम्प्रमार्जयेदिति ॥५-८॥ अथोक्तदृष्टान्तस्य दार्ष्टान्तिकयोजनायाह-तथैवैता अपि योजन-परिमण्डलं-योजनप्रमाणं वृत्तक्षेत्रं सम्मार्जयन्तीति—

जं तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कयवरं वा असुइमचोक्खं पूइअं दुब्भिगन्धं तं सव्वं आहुणिअ २ एगन्ते एडेंति, २ त्ता जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छन्ति, २ त्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए अ अदूरसामन्ते आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥५-D॥

यत् '**तत्र**' योजन-परिमण्डले **तृणं वा पत्रं वा काष्ठं वा कचवरं वा** '**अशुचिम्**' अपवित्रम् '**अचोक्षं**' मलिनं पूतिकं **दुरभिगन्धं** '**तत्सर्वमाधूय २**' सञ्चाल्य २ '**एकान्ते**' योजनमण्डलादन्यत्र '**एडयन्ति**' अपनयन्ति । अपनीयार्थात् संवर्त्तकवातोपशमं विधाय च **यत्रैव भगवांस्तीर्थकरस्तीर्थकरमाता च तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य च भगवतस्तीर्थकरस्य तीर्थकरमातुश्च नातिदूरासन्ने** '**आगायन्त्यः**' आ-ईषत्स्वरेण गायन्त्यः प्रारम्भकाले मन्दरस्वरेण गायमानत्वात्, '**परिगायन्त्यः**' गीतप्रवृत्तिकालानन्तरं तारस्वरेण गायन्त्यस्तिष्ठन्ति ॥५-D॥

अथोर्ध्वलोकवासिनीनामवसरः-

तेणं कालेणं तेणं समएणं उड्ढलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ सएहिं २ कूडेहिं सएहिं २ भवणेहिं सएहिं २ पासायवडेंसएहिं पत्तेअं २ चउहिं सामाणिअसाहस्सीहिं एवं तं चेव पुव्ववण्णिअं[१] जाव विहरंति, तंजहा-

मेहंकरा १ मेहवई २, सुमेहा ३ मेहमालिनी ४ ।
सुवच्छा ५ वच्छमित्ता य ६, वारिसेणा ७ बलाहगा ॥१॥ ६ ॥

"**तेणं कालेण**"मित्यादि, व्यक्तम् । नवरम् ऊर्ध्वलोकवासित्वं चासां समभूतलात् पञ्चशतयोजनोच्चनन्दनवनगतपञ्चशतिकाष्टकूटवासित्वेन ज्ञेयम् । नन्वधोलोकवासिनीनां गजदन्तगिरिगत-कूटाष्टके यथा क्रीडानिमित्तको वासस्तथैव तासामप्यत्र भविष्यतीति चेत्, मैवम्, यथाऽधोलोकवासिनीनां गजदन्तगिरीणामधो भवनेषु वासः श्रूयते, तथैतासामश्रूयमाणत्वेन तत्र निरन्तरं वासस्ततश्चोर्ध्वलोकवासित्वम् । ताश्चेमा नामतः पद्यबन्धेनाह-

१. द्र. ५।१ ॥

"मेघङ्करा १ मेघवती २, सुमेघा ३ मेघमालिनी ४ ।

सुवत्सा ५ वत्समित्रा ६ चः समुच्चये, वारिषेणा ७ बलाहका ८॥१॥" ॥६॥

अथ यत्तासां वक्तव्यं तदाह-

तए णं तासिं उड्ढलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारीमहत्तरिआणं पत्तेअं २ आसणाइं चलन्ति, एवं तं चेव पुव्ववण्णिअं[1] भाणिअव्वं जाव अम्हे णं देवाणुप्पिए ! उड्ढलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामो तुब्भाहिं ण भाइअव्वं तिकट्टु उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमन्ति, २ त्ता जाव[2] अब्भवद्दलए विउव्वन्ति, २ त्ता जाव ॥७-A॥

"**तए णं तासिं उड्ढलोगवत्थव्वाण**"मित्यादि, व्यक्तम् । नवरं **तदेव पूर्ववर्णितं भणितव्यम्** । कियत्पर्यन्तम् ? इत्याह-"**जाव अम्हे ण**"मित्यादि, अत्र यावच्छब्दोऽवधि-वाचकः, न तु सङ्ग्राहकः । '**अवक्कमित्ता जाव**'त्ति, अत्र यावत्पदात् "वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणंति, २ त्ता जाव दोच्चं पि वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणंति, २ त्ता" इति बोध्यम् । '**अभ्रवार्दलकानि विकुर्व्वन्ति**' 'अभ्रे' आकाशे 'वाः' पानीयं तस्य दलकानि अभ्रवार्दलकानि मेघानित्यर्थः । "**विउव्वित्ता जाव**"त्ति, अत्र यावत्करणादिदं दृश्यम् "**से जहाणामए कम्मारदारए जाव सिप्पोवगए एगं महंतं दगवारगं वा दगकुंभयं वा दगथालगं वा दगकलसं वा दगभिंगारं वा गहाय रायंगणं वा प० सभं वा जाव समन्ता आवरिसिज्जा । एवमेव ताओ वि उड्ढलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ अब्भवद्दलए विउव्वित्ता खिप्पामेव पतणतणायंति, २ त्ता खिप्पामेव [प]विज्जुआयंति, २ त्ता भगवओ तित्थगरस्स जम्मणभवणस्स सव्वओ समन्ता जोअणपरिमंडलं णच्चोअगं नाइमट्टिअं पविरलपफुसिअं रयरेणुविणासणं दिव्वं सुरभिगन्धोदयवासं वासंति २**" ।

अत्र व्याख्या-स यथा कर्मदारक इत्यादि प्राग्वत् व्याख्येयम्, एकं महान्तं दकवारकं वा-मृत्तिकामयजलभाजनविशेषं दककुम्भकं वा-जलघटं दकस्थालकं वा-कांस्यादिमयं जलपात्रं दककलशं वा जलभृङ्गारं वा गृहीत्वा राजाङ्गणं वा यावदुद्यानं वा आवर्षेत्-समन्तात् सिञ्चेत् । 'एवमेता अपि उड्ढलोगवत्थव्वाओ' इत्यादि प्राग्वत्, क्षिप्रमेव 'पतणतणायन्ति'त्ति, अत्यन्तं

१. द्र. ५।२-५ ॥ २. द्र. राजप्र. सू. १२ ॥

गर्जन्तीत्यर्थः, गर्जित्वा च 'पविज्जुआयन्ति'त्ति, प्रकर्षेण विद्युतं कुर्वन्ति, कृत्वा च भगवतस्तीर्थकरस्य जन्मभवनस्य सर्वतः समन्ताद्योजनपरिमण्डलं क्षेत्रं यावत्, अत्र नैरन्तर्ये द्वितीया, निरन्तरं योजनपरिमण्डलक्षेत्रे इत्यर्थः । नात्युदकं नातिमृत्तिकं यथा स्यात्तथा प्रकर्षेण यावता रेणवः स्थगिता भवन्ति, तावन्मात्रेणोत्कर्षेणेति भावः, उक्तप्रकारेण विरलानि-सान्तराणि घनभावे कर्दमसम्भवात् प्रस्पृष्टानि-प्रकर्षवन्ति स्पर्शनानि मन्दस्पर्शनसम्भवे रेणुस्थगनासम्भवात् यस्मिन् वर्षे तत् प्रविरलप्रस्पृष्टम् । अत्र एव रजसां-श्लक्ष्णरेणुपुद्गलानां रेणूनां च-स्थूलतमतत्पुद्गलानां विनाशनं दिव्यम्-अतिमनोहरं सुरभिगन्धोदकवर्षं वर्षन्ति, वर्षित्वा च ॥७-A॥

अथ प्रस्तुतसूत्रमनुश्रियते-

तं निहयरयं णट्ठरयं भट्ठरयं पसंतरयं उवसंतरयं करेंति, २ खिप्पामेव पच्चुवसमन्ति । एवं पुप्फवद्दलंसि पुप्फवासं वासंति, वासित्ता जाव कालागुरुपवर जाव सुरवराभिगमणजोग्गं करेंति, २ त्ता जेणेव भयवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छन्ति, २ त्ता जाव आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥७-B॥

'**तद्**' योजनपरिमण्डलं क्षेत्रं **निहतरजः कुर्वन्ती**ति योगः । '**निहतं**' भूय उत्थानाभावेन मन्दीकृतं रजो यत्र तत्तथा । तत्र निहतत्वं रजसः क्षणमात्रमुत्थानाभावेनापि सम्भवति, तत आह-'**नष्टरजः**' नष्टं सर्वथा अदृश्यीभूतं रजो यत्र तत्तथा, तथा '**भ्रष्टं**' वातोद्धूततया योजनमात्रात् दूरतः क्षिप्तं **रजो** यत्र तत्तथा, अत एव '**प्रशान्तं**' सर्वथाऽसदिव **रजो** यत्र तत्तथा । अस्यैवात्यन्तिकताख्यापनार्थमाह-**उपशान्तं रजो** यत्र तत्तथा, **कृत्वा च क्षिप्रमेव प्रत्युपशाम्यन्ति**, गन्धोदकवर्षणान्निवर्त्तन्त इत्यर्थः । अथासां तृतीयकर्त्तव्यकरणावसरः '**एवं**' गन्धोदकवर्षणानुसारेण '**पुष्पवार्दलकेन**' पुष्पवर्षुकवार्दलकेन प्राकृतत्वात् तृतीयार्थे सप्तमी **पुष्पवर्षं वर्षन्ती**ति । अत्रैवमित्यादिवाक्यसूचितमिदं सूत्रं ज्ञेयम्-"**तच्चं पि वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणंति, २ त्ता पुप्फवद्दलए विउव्वन्ति । से जहाणामए मालागारदारए सिआ जाव सिप्पोवगए एगं महं पुप्फछज्जिअं वा पुप्फपडलगं वा पुप्फचंगेरीअं वा गहाय रायंगणं वा जाव समन्ता कयग्गहगहिअकरयलपब्भट्ठविप्पमुक्केणं दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं पुप्फपुंजोवयारकलिअं करेति । एवमेव ताओ वि उड्ढलोगवत्थव्वाओ जाव पुप्फवद्दलए विउव्वित्ता खिप्पामेव पतणतणायन्ति जाव जोअणपरिमण्डलं जलयथलयभासुरप्पभूयस्स बिंटट्ठाइस्स दसद्धवण्णस्स कुसुमस्स जाणुस्सेहपमाणमित्तं वासं वासंति**"त्ति ।

अत्र व्याख्या–तृतीयवारं वैक्रियसमुद्घातेन समवघ्नन्ति । कोऽर्थः ? संवर्त्तकवातविकुर्वणार्थं हि यत् वेलाद्वयमपि वैक्रियसमुद्घातेन समवहननं तत्किलैकम्, एवमभ्रवार्दलकविकुर्वणार्थं द्वितीयम्, इदं तु पुष्पवार्दलकविकुर्वणार्थं तृतीयम् । समवहत्य च पुष्पवार्दलकानि विकुर्वन्ति । स यथानामको मालाकारदारकः–मालिकपुत्रः अस्यैव प्रस्तुतकार्ये व्युत्पन्नत्वात् स्याद्यावन्नि-पुणशिल्पोपगतः एकां महतीं 'पुष्पच्छाद्यिकां वा' छाद्यते–उपरि स्थग्यते इति छाद्या छाद्यैव छाद्यिका पुष्पैर्भृता छाद्यिका पुष्पच्छाद्यिका ताम्, पुष्पपटलकं वा–पुष्पाधारभाजनविशेषं पुष्पचङ्गेरिकां वा प्रतीतां यावत् समन्तात् रतकलहे या पराङ्मुखी सुमुखी तत्सन्मुखीकरणाय केशेषु ग्रहणं कचग्रहस्तत्प्रकारेण गृहीतम्, तथा करतलाद्विप्रमुक्तं सत् प्रभ्रष्टं करतलप्रभ्रष्ट-विप्रमुक्तं प्राकृतत्वात् पदव्यत्ययस्ततो विशेषणसमासः तेन कचग्रहगृहीतकरतलप्रभ्रष्टविप्र-मुक्तेन दशार्द्धवर्णेन–पञ्चवर्णेन कुसुमेन–जात्यपेक्षया एकवचनं कुसुमजातेन पुष्पपुञ्जोपचारः–बलिप्रकारस्तेन कलितं करोति । एवमेता अपि ऊर्ध्वलोकवास्तव्या अष्टौ दिक्कुमारी-महत्तरिकाः 'पुप्फवद्दलए विउव्वित्ता' इत्यादिकं योजनपरिमण्डलान्तं प्राग्वद् व्याख्येयम् । वाक्ययोजना तु योजनपरिमण्डलं यावत् दशार्द्धवर्णस्य कुसुमस्य वर्षं वर्षन्तीति । कथंभूतस्य कुसुमस्य ? 'जलज-स्थलजभासुरप्रभूतस्य' जलजं–पद्मादि स्थलजं–विचकिलादि भास्वरं–दीप्यमानं प्रभूतं च–अतिप्रचुरम्, ततः कर्मधारयः भास्वरं च तत् प्रभूतं च भास्वरप्रभूतम्, जलस्थलजं च तत् भास्वरप्रभूतं च तत्तथा । तथा 'वृन्तस्थायिनः' वृन्तेन–अधोभागवर्त्तिना तिष्ठतीत्येवंशीलस्य, तथा, वृन्तमधोभागे पत्राण्युपरीत्येवं स्थानशीलस्येत्यर्थः । कथंभूतं वर्षं ? जान्ववधिक उत्सेधो जानूत्सेधस्तस्य प्रमाणं–द्वात्रिंशदङ्गुललक्षणं तेन सदृशी मात्रा यस्य स तथा तम् । द्वात्रिंशदङ्गुलानि चैवं–चरणस्य चत्वारि जङ्घायाश्चतुर्विंशतिः जानुनश्चत्वारीति, एवमेव सामुद्रिके चरणादिमानस्य भणनात्, वर्षित्वा च । कियत्पर्यन्तोऽयम् 'एव'मित्यादि-वाक्यसूचितसूत्रसङ्ग्रहः ? इत्याह–**यावत् "कालागुरुपवर"**त्ति, अत्र यावच्छब्दोऽवधिवाची **"जाव सुरवराभिगमणजोग्गं"**ति, अत्र यावत्करणात् 'कुंदुरुक्क-तुरुक्कडज्झंतधूवमघमघन्त-गंधुद्धुआभिरामं सुगंधवरगन्धिअं गन्धवट्टिभूअं दिव्वं'ति पर्यन्तं सूत्रं ज्ञेयम् । तत्कालागुरु-प्रभृतिधूपधूपितं धूपालापकव्याख्या प्राग्वत्, अत एव **'सुरवराभिगमनयोग्यं'** 'सुरवरस्य' इन्द्रस्य 'अभिगमनाय' अवतरणाय योग्यं **कुर्वन्ति, कृत्वा च यत्रैव भगवांस्तीर्थकर-स्तीर्थकरमाता च तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य च यावच्छब्दात्** "भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए य अदूरसामंते" इति ग्राह्यम्, **आगायन्त्यः परिगायन्त्यस्तिष्ठन्तीति** ॥७-B॥

अथ रुचकवासिनीदिक्कुमारीवक्तव्ये प्रथमं पूर्वरुचकस्थानामष्टानां वक्तव्यमाह-

तेणं कालेणं तेणं समएणं पुरत्थिमरुअगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी-महत्तरिआओ सएहिं २ कूडेहिं तहेव जाव विहरंति, तंजहा-

णंदुत्तरा य १ णन्दा २, आणन्दा ३ णंदिवद्धणा ४ ।
विजया य ५ वेजयन्ती ६, जयन्ती ७ अपराजिआ ८॥१॥

सेसं तहेव जाव[1] तुब्भाहिं ण भाइअव्वं तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए अ पुरत्थिमेणं आयंसहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति ॥ ८ ॥

"**तेणं कालेणं तेणं समएण**"मित्यादि, **तस्मिन् काले तस्मिन् समये 'पौरस्त्य-रुचकवास्तव्याः'** पूर्वदिग्भागवर्त्तिरुचककूटवासिन्योऽ**ष्टौ दिक्कुमारीमहत्तरिकाः स्वकेषु स्वकेषु कूटेषु तथैव यावद् विहरन्ति, तद्यथा-नन्दोत्तरा १ 'चः'** समुच्चये **नन्दा २ आनन्दा ३ नन्दिवर्धना ४ विजया ५ 'चः'** पूर्ववत् **वैजयन्ती ६ जयन्ती ७ अपराजिता** ८ इत्येता नामतः कथिताः । **'शेषं'** आसनप्रकम्पा-ऽवधिप्रयोग-भगवद्दर्शन-परस्पराह्वान-स्वस्वाभियोगिककृतयानविमानविकुर्वणादिकं **तथैव यावद् युष्माभिर्न भेतव्यमिति कृत्वा भगवतस्तीर्थकरस्य तीर्थकरमातुश्च** पूर्वरुचकसमागतत्वात् **पूर्वतो हस्तगत 'आदर्श'** दर्पणो जिन-जनन्योः शृङ्गारादिविलोकनाद्युपयोगी यासां तास्तथा, विशेषणपरनिपातः प्राकृतत्वात्, **आगायन्त्यः परिगायन्त्यस्तिष्ठन्तीति** । अत्र च रुचकादिस्वरूपप्ररूपणेयम्-एकादेशेन एकादशे द्वितीयादेशेन त्रयोदशे तृतीयादेशेन एकविंशे रुचकद्वीपे बहुमध्ये वलयाकारो रुचकशैलश्चतुरशीतियोजनसहस्राण्युच्चः, मूले १००२२, मध्ये ७०२३ शिखरे ४०२४ योजनानि विस्तीर्णः, तस्य शिरसि चतुर्थे सहस्रे पूर्वदिशि मध्ये सिद्धायतनकूटम् । उभयोः पार्श्वयोश्चत्वारि २ दिक्कुमारीणां कूटानि, नन्दोत्तराद्यास्तेषु वसन्तीति ॥८॥

सम्प्रति दक्षिणरुचकस्थानां वक्तव्यमुपक्रम्यते-

तेणं कालेणं तेणं समएणं दाहिणरुअगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी-महत्तरिआओ तहेव जाव विहरंति, तंजहा-

समाहारा १ सुप्पइण्णा २, सुप्पबुद्धा ३ जसोहरा ४ ।
लच्छिमई ५ सेसवई ६, चित्तगुत्ता ७ वसुंधरा ८ ॥१॥

---

१. द्र. ५।२-५॥

तहेव जाव तुब्भाहिं न भाइअव्वं तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए अ दाहिणेणं भिंगारहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति ॥ ९ ॥

"**तेणं कालेण**"मित्यादि, **तस्मिन् काले तस्मिन् समये 'दक्षिणरुचकवास्तव्याः'** इति पूर्ववद्रुचकशिरसि दक्षिणदिशि मध्ये सिद्धायतनकूटम् उभयतश्चत्वारि २ कूटानि, तत्र वासिन्य इत्यर्थः, **अष्टौ दिक्कुमारी-महत्तरिकाः तथैव यावद् विहरन्ति, तद्यथा-समाहारा १ सुप्रदत्ता २ सुप्रबुद्धा ३ यशोधरा ४ लक्ष्मीवती ५ शेषवती ६ चित्रगुप्ता ७ वसुन्धरा ८ तथैव यावद् युष्माभिर्न भेतव्यमितिकृत्वा जिन-जनन्योर्दक्षिण[1]**दिगागतत्वाद्दक्षिण-दिग्भागे जिनजननीस्नपनोपयोगि-जल**पूर्णकलशहस्ता आगायन्त्यः परिगायन्त्यस्तिष्ठन्तीति** ॥९॥

साम्प्रतं पश्चिमरुचकस्थानां वक्तव्यतामाह-

तेणं कालेणं तेणं समएणं पच्चत्थिमरुअगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारीमहत्तरिआओ सएहिं २ जाव विहरंति, तं०

इलादेवी १ सुरादेवी २, पुहवी ३ पउमावई ४ ।
एगणासा ५ णवमिआ ६, भद्दा ७ सीआ[2] य ८ अट्ठमा ॥१॥

तहेव जाव तुब्भाहिं ण भाइअव्वं तिकट्टु जाव भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए अ पच्चत्थिमेणं तालिअंटहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति ॥ १० ॥

"**तेणं कालेण**"मित्यादि, सर्वं तथैव नवरं **'पश्चिमरुचकवास्तव्याः'** पश्चिमदिग्भागवर्त्तिरुचकवासिन्य इति । नामान्यासां पद्येनाह-**इलादेवी १ सुरादेवी २ पृथिवी ३ पद्मावती ४ एकनासा ५ नवमिका ६ भद्रा ७ सीता ८ 'चः'** समुच्चये, **अष्टमी** चेति । कूटव्यवस्था **तथैव**, पश्चिमरुचकागतत्वा**ज्जिन-जनन्योः पश्चिमदि**ग्भागे **'तालवृन्तं'** व्यजनं तद्**हस्तगतास्तिष्ठन्ती**ति ॥१०॥

उदीच्या अप्येवमेवेति तत्सूत्रमाह-

तेणं कालेणं तेणं समएणं उत्तरिल्लरुअगवत्थव्वाओ जाव विहरंति, तंजहा-

---

१. पुके । दिग्गत० मु. ॥ २. सीता भद्दा-स्थानाङ्गे ८।६७॥

अलंबुसा १ मिस्सकेसी २, पुण्डरीआ य ३ वारुणी ४ ।
हासा ५ सव्वप्पभा ६ चेव, [1]सिरि ७ हिरि ८ चेव उत्तरओ ॥१॥

तहेव जाव वन्दित्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए अ उत्तरेणं चामरहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति ॥ ११ ॥

"**तेणं कालेण**"मित्यादि, व्यक्तम् । नवरम् '**उत्तर-रुचकवास्तव्या**' उत्तरदिग्भागवर्त्ति-रुचकवासिन्य इति । नामान्यासां पद्येनाह-**अलम्बुसा १ मिश्रकेसी २ पुण्डरीका ३ 'चः'** प्राग्वत् **वारुणी ४ हासा ५ सर्वप्रभा ६ चैवेति** प्राग्वत् **श्रीः ७ ह्री ८ श्चोत्तरतः** । कूटव्यवस्था **तथैव**, उत्तररुचकागतत्वा**ज्जिन-जनन्योरुत्तर**-दिग्भागे **चामरहस्तगता आगायन्त्यः परिगायन्त्यस्तिष्ठन्ति** ॥११॥

अथ विदिग्रुचकवासिनीनामागमनावसरः-

तेणं कालेणं तेणं समएणं विदिसिरुअगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसा-कुमारीमहत्तरिआओ जाव विहरंति, तंजहा-

चित्ता य १ चित्तकणगा २, सतेरा ३ य सोदामिणी ४ । तहेव जाव ण भाइअव्वं तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए अ चउसु विदिसासु दीविआहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्ति ॥ १२ ॥

"**तेणं कालेण**"मित्यादि, व्यक्तम् । नवरं '**विदिग्रुचकवास्तव्याः**' तस्यैव रुचकपर्वतस्य शिरसि चतुर्थे सहस्रे चतसृषु विदिक्षु एकैकं कूटं तत्र वासिन्यश्चतस्रो विदिक्कुमार्यो **यावद् विहरन्ति**, इमाश्च **स्थानाङ्गे** विद्युत्कुमारी-महत्तरिका इत्युक्ता इति । एतासां चैशान्यादिक्रमेण नामान्येवम् **चित्रा १ 'चः'** समुच्चये **चित्रकनका २ शतेरा ३ सौदामिनी ४ तथैव यावन्न भेतव्यमितिकृत्वा**, विदिगागतत्वात् **भगवतस्तीर्थकरस्य तीर्थकरमातुश्च चतसृषु विदिक्षु दीपिकाहस्तगता आगायन्त्यः परिगायन्त्यस्तिष्ठन्तीति** ॥१२॥

अथ मध्यरुचकवासिन्य [2]आगमितव्याः-

तेणं कालेणं तेणं समएणं मज्झिमरुअगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसा-कुमारीमहत्तरिआओ सएहिं २ कूडेहिं तहेव जाव विहरंति, तंजहा-रूआ १ [3]रूआसिआ २, सुरूआ ३ रूअगावई ४ । तहेव जाव तुब्भाहिं ण भाइयव्वं

---

१. हिरि सिरी-अकखबस J12 ॥ २. आगमयितव्या-पुके ॥ ३. प । रूयंसा-V J12 ॥

तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स चउरंगुलवज्जं णाभिणालं[1] कप्पेन्ति, कप्पेत्ता विअरगं खणन्ति, खणित्ता विअरगे णाभिं णिहणंति, णिहणित्ता रयणाण य वइराण य पूरेंति, २ त्ता हरिआलिआए पेढं बन्धंति, २ त्ता तिदिसिं तओ कयलीहरए विउव्वंति । तए णं तेसिं कयलीहरगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ चाउस्सालए विउव्वन्ति । तए णं तेसिं चाउस्सालगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ सीहासणे विउव्वन्ति । तेसि णं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, सव्वो वण्णगो भाणिअव्वो[2] ॥ १३ ॥

"**तेणं कालेण**"मित्यादि, **तस्मिन्काले तस्मिन् समये 'मध्यरुचकवास्तव्याः'** मध्यभागवर्त्तिरुचकवासिन्यः । कोऽर्थः ? चतुर्विंशत्यधिक-चतुःसहस्रप्रमाणे रुचकशिरोविस्तारे द्वितीयसहस्रे चतुर्दिग्वर्त्तिषु चतुर्षु कूटेषु पूर्वादिक्रमेण चतस्रस्ता वसन्तीत्यर्थः, **श्रीअभयदेवसूरयस्तु षष्ठाङ्गवृत्तौ मल्ल्यध्ययने "मज्झिमरुअगवत्थव्वा"** [८।७२] इत्यत्र रुचकद्वीपस्याभ्यन्तरार्द्धवासिन्य इत्याहुः, अत्र तत्त्वं बहुश्रुतगम्यम् । **चतस्रो दिक्कुमारिका यावद् विहरन्ति, तद्यथा-रूपा १ रूपासिका २ सुरूपा ३ रूपकावती ४ । तथैव युष्माभिर्न भेतव्यमितिकृत्वा भगवतस्तीर्थकरस्य चतुर-ङ्गुलवर्जं नाभिनालं कल्पयन्ति, कल्पयित्वा च 'विदरकं'** गर्त्तां **खनन्ति, खनित्वा च विदरके** कल्पितां तां **नाभिं निधानयन्ति, निधानयित्वा च रत्नैश्च वज्रैश्च** प्राकृतत्वाद् विभक्तिव्यत्ययः **पूरयन्ति, पूरयित्वा च 'हरितालिकाभिः'** दूर्वाभिः **पीठं बध्नन्ति** । कोऽर्थः ? पीठं बद्ध्वा तदुपरि हरितालिका वपन्तीत्यर्थः, [3]वितरकखननादिकं च सर्वं भगवदवयवस्याशातनानिवृत्त्यर्थम् । **पीठं बद्ध्वा** च **'त्रिदिशि'** पश्चिमावर्जदिक्त्रये **त्रीणि कदलीगृहाणि विकुर्वन्ति । ततस्तेषां कदलीगृहाणां बहुमध्यदेशभागे त्रीणि 'चतुःशालकानि'** भवनविशेषान् **विकुर्वन्ति । ततस्तेषां चतुःशालकानां बहुमध्यदेशभागे त्रीणि सिंहासनानि विकुर्वन्ति । तेषां सिंहासनानामयमेतादृशो वर्णव्यासः प्रज्ञप्तः,** सिंहासनानां **सर्वो वर्णकः** पूर्ववद् **भणितव्यः** ॥१३॥

सम्प्रति सिंहासनविकुर्वणानन्तरीयकृत्यमाह-

तए णं ताओ रुअगमज्झवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीमहत्तरियाओ जेणेव भयवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छन्ति, २ त्ता भगवं

---

१. णाभिं-अब J12 आव.चू. पृ. १३९ ॥ २. द्र. राजप्र. सू. ३७-४० ॥ ३. विवरक० पुके ॥

तित्थयरं करयलसंपुडेणं[1] गिण्हन्ति तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हन्ति, २ त्ता जेणेव दाहिणिल्ले कयलीहरए जेणेव चाउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छन्ति, २ त्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति, २ त्ता सयपागसहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भंगेंति, २ त्ता सुरभिणा गन्धवट्टएणं[2] उव्वट्टेंति, २ त्ता भगवं तित्थयरं करयलपुडेण[3] तित्थयरमायरं च बाहासु गिण्हन्ति, २ त्ता जेणेव पुरत्थिमिल्ले कयलीहरए जेणेव चाउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीआवेंति, २ त्ता तिहिं उदएहिं मज्जावेंति, तंजहा-गन्धोदएणं १ पुप्फोदएणं २ सुद्धोदएणं ३, मज्जावित्ता सव्वालंकारविभूसिअं करेंति, २ त्ता भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयर-मायरं व बाहाहिं गिण्हन्ति, २ त्ता जेणेव उत्तरिल्ले कयलीहरए जेणेव चाउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छन्ति, २ त्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीआविंति, २ त्ता आभिओगे देवे सद्दाविन्ति, २ त्ता एवं वयासी-'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चुल्लहिमवन्ताओ वासहरपव्वयाओ गोसीसचंदणकट्ठाइं[4] साहरह' ॥ १४ ॥

"**तए णं ताओ रुअगमज्झवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीओ**" इत्यादि, ततस्ता रुचकमध्यवास्तव्याश्चतस्रो **दिक्कुमारीमहत्तरिका यत्रैव भगवांस्तीर्थकरस्तीर्थकरमाता च तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य** च **भगवन्तं तीर्थकरं करतलसम्पुटेन तीर्थकरमातरं च बाहाभिर्गृह्णन्ति, गृहीत्वा** च **यत्रैव दाक्षिणात्यं कदलीगृहं यत्रैव चतुःशालकं यत्रैव च सिंहासनं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य** च **भगवन्तं तीर्थकरं तीर्थकरमातरं च सिंहासने 'निषादयन्ति'** उपवेशयन्ति, **निषाद्य** च **'शतपाकैः सहस्रपाकैः'** शतकृत्वोऽपरापरौषधिरसेन कार्षापणानां शतेन वा यत्पक्वं तच्छतपाकम्, एवं सहस्रपाकमपि बहुवचनं तथाविधसुरभितैलसङ्ग्रहार्थं **'तैलैरभ्यङ्गयन्ति'** तैलमभ्यज्जयन्ती-त्यर्थः, **अभ्यङ्गयित्वा** च

१. करयलपुडेणं-V J12 ॥ २. अकखत्रि पबस पुवृ. शावृ. हीवृ. । गंधट्टएण-V । द्रष्टव्यं स्थानाङ्गे ३।८७ ॥ ३. ०पुडेहिं-अकखत्रि बस J12 । एवमग्रेऽपि ॥ ४. अकख पबस पुवृ. शावृ. । सरसाइं गोसीस० V ॥

सुरभिणा गन्धवर्त्तकेन 'गन्धद्रव्याणां' उत्पलकुष्ठादीनाम् 'उद्वर्त्तकेन' चूर्णपिण्डेन गन्धयुक्तगोधूमचूर्णपिण्डेन वा **उद्वर्त्तयन्ति** म्रक्षिततैलापनयनं कुर्वन्ति, **उद्वर्त्त्य** च **भगवन्तं तीर्थकरं करतलपुटेन तीर्थकरमातरं च बाह्वोर्गृह्णन्ति, गृहीत्वा च यत्रैव पौरस्त्यं कदलीगृहं यत्रैव चतुःशालं यत्रैव च सिंहासनं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य च भगवन्तं तीर्थकरं तीर्थकरमातरं च सिंहासने निषादयन्ति, निषाद्य च त्रिभिरुदकैः 'मज्जयन्ति'** स्नपयन्ति, तान्येव त्रीणि दर्शयति-"**तद्यथे**"त्यादिना, '**गन्धोदकेन**' कुङ्कुमादिमिश्रितेन '**पुष्पोदकेन**' जात्यादिमिश्रितेन '**शुद्धोदकेन**' केवलोदकेन, **मज्जयित्वा सर्वालङ्कार-विभूषितौ कुर्वन्ति**, मातृपुत्राविति शेषः, **कृत्वा** च **भगवन्तं तीर्थकरं करतलपुटेन तीर्थकरमातरं च बाहाभिर्गृह्णन्ति, गृहीत्वा च यत्रैवोत्तराहं कदलीगृहं यत्रैव च चतुःशालकं यत्रैव च सिंहासनं तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागत्य च भगवन्तं तीर्थकरं तीर्थकरमातरं च सिंहासने निषादयन्ति, निषाद्य च आभियोगान् देवान् शब्दयन्ति, शब्दयित्वा च एवमवादिषुः-क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! क्षुद्रहिमवतो वर्षधरपर्वताद् गोशीर्षचन्दनकाष्ठानि 'संहरत'** समानयत ॥१४॥

तए णं ते आभिओगा देवा ताहिं रुअगमज्झवत्थव्वाहिं[1] चउहिं दिसाकुमारीमहत्तरिआहिं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव[2] विणएणं वयणं पडिच्छन्ति, २ त्ता खिप्पामेव चुल्लहिमवन्ताओ वासहरपव्वयाओ सरसाइं गोसीसचन्दणकट्ठाइं साहरन्ति ॥ १५ ॥

ततस्ते आभियोगा देवास्ताभी रुचकमध्यवास्तव्याभिश्चतसृभिर्दिक्कुमारीमहत्तरि-काभिः 'एवं' अनन्तरोक्तम् **'उक्ताः'** आज्ञप्ताः **सन्तः 'हृष्टतुष्ट'** इत्यादि **यावद् विनयेन वचनं 'प्रतीच्छन्ति'** अङ्गीकुर्वन्ति, **प्रतीष्य** च **क्षिप्रमेव क्षुद्रहिमवतो वर्षधरपर्वतात् सरसानि गोशीर्षचन्दनकाष्ठानि संहरन्ति** ॥११५॥

तए णं ताओ मज्झिमरुअगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीमहत्तरि-आओ सरगं करेन्ति, २ त्ता अरणिं घडेंति, अरणिं घडित्ता सरएणं अरणिं महिंति, २ त्ता अग्गिं पाडेंति, २ त्ता अग्गिं संधुक्खंति, २ त्ता गोसीस-चन्दणकट्ठे पक्खिवन्ति, २ त्ता अग्गिं उज्जालंति, २ त्ता समिहाकट्ठाइं[3]

---

१. मज्झरुअगव० J2 ॥ २. द्र. ३।८ ॥ ३. समिहाकट्ठाइं पक्खिविंति, २ त्ता-आव.चूर्णौ पृ. १३८ नास्ति ॥

पक्खिविन्ति, २ त्ता अग्गिहोमं करेंति, २ त्ता भूतिकम्मं करेंति, २ त्ता रक्खापोट्टलिअं बंधन्ति, बन्धेत्ता णाणामणिरयणभत्तिचित्ते दुविहे पाहाण[1]-वट्टगे [गिण्हन्ति,] गहाय भगवओ तित्थयरस्स कण्णमूलंमि टिट्टिआविन्ति भवउ भयवं पव्वयाउए २ ॥ १६ ॥

ततस्ता मध्यरुचकवास्तव्याश्चतस्रो दिक्कुमारीमहत्तरिकाः 'शरकं' शरप्रतिकृति-तीक्ष्णमुखमग्न्युत्पादकं काष्ठविशेषं **कुर्वन्ति, कृत्वा** च तेनैव शरकेन सह **'अरणिं'** लोकप्रसिद्धं काष्ठविशेषं **'घटयन्ति'** संयोजयन्ति, **घटयित्वा** च **शरकेनाग्निं [नाऽरणिं] मथ्नन्ति, मथित्वा** च **अग्निं पातयन्ति, पातयित्वा** च **अग्निं 'सन्धुक्षन्ति'** सन्दीपयन्ति, **सन्धुक्ष्य** च **गोशीर्षचन्दनकाष्ठानि** प्रस्तावात् खण्डशः कृतानीति बोध्यम्, यादृशैश्चन्दन-काष्ठैरग्निरुद्दीपितः स्यात् तादृशानीतिभावः, **प्रक्षिपन्ति, प्रक्षिप्य** च **अग्नि-मुज्ज्वालयन्ति, उज्ज्वाल्य[2]** च प्रदेशप्रमाणानि हवनोपयोगीनीन्धनानि **समिधस्तद्रूपाणि काष्ठानि प्रक्षिपन्ति,** पूर्वो हि काष्ठप्रक्षेपोऽग्न्युद्दीपनाय अयं च रक्षाकरणायेति विशेषः । **प्रक्षिप्य** च **अग्निहोमं कुर्वन्ति, कृत्वा** च **'भूतेः'** भस्मनः **'कर्म'** क्रिया **तां कुर्वन्ति,** येन प्रयोगेणेन्धनानि भस्मरूपाणि भवन्ति तथा कुर्वन्तीत्यर्थः । **कृत्वा** च जिनजनन्योः शाकिन्यादिदुष्टदेवताभ्यो दृग्दोषादिभ्यश्च **रक्षाकरीं पोट्टलिकां बध्नन्ति, बद्ध्वा** च **नानामणि-रत्नानां 'भक्ती'** रचना तया **विचित्रौ द्वौ पाषाणवृत्तगोलकौ** पाषाणगोलकावित्यर्थः **गृह्णन्ति, गृहीत्वा** च **भगवतस्तीर्थकरस्य कर्णमूले** टिट्टिआवेंतीत्यनुकरणशब्दोऽयं तेन **'टिट्टिआवेंति'** परस्परं ताडनेन टिट्टीतिशब्दोत्पादनपूर्वकं वादयन्तीत्यर्थः, अनेन हि बाललीलावशादन्यत्र व्यासक्तं भगवन्तं वक्ष्यमाणाशीर्वचनश्रवणे पटु कुर्वन्तीति भावः । तथा कृत्वा च **भवतु भगवान् पर्वतायुः** २ इत्याशीर्वचनं ददतीति ॥१६॥

तए णं ताओ रुअगमज्झवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारीमहत्तरिआओ भयवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हन्ति, गिण्हित्ता जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणे तेणेव उवागच्छन्ति, २ त्ता तित्थयरमायरं सयणिज्जंसि णिसीआविंति, णिसीआवित्ता भयवं तित्थयरं

---

१. पाहाणपट्टगे-अब J12 । पाहाणवट्टगोलए-त्रि शावृ. हीवृ. ॥ २. उदापयंति उज्ज्वाल्य-के । ओद्दापयंति उज्ज्वाल्य-पु ॥

माऊए[1] पासे ठवेंति, ठवित्ता आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठन्ती ॥ १७ ॥

'**ततः**' उक्तसकलकार्यकरणानन्तरं **ता रुचकमध्यवास्तव्याश्चतस्रो दिक्कुमारी-महत्तरिका भगवन्तं तीर्थकरं करतलपुटेन तीर्थकरमातरं च बाहाभिर्गृह्णन्ति, गृहीत्वा च यत्रैव भगवतस्तीर्थकरस्य जन्मभवनं तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य च तीर्थकरमातरं शय्यायां निषादयन्ति, निषाद्य च भगवन्तं तीर्थकरं मातुः पार्श्वे स्थापयन्ति, स्थापयित्वा** च नातिदूरासन्नगा **आगायन्त्यः परिगायन्त्यस्तिष्ठन्ति**। एतासां च मध्येऽष्टावधोलोकवासिन्यो गजदन्तगिरीणामधोभवनवासिन्यः, यत्त्वेतदधिकारसूत्रे 'सएहिं २ कूडेहिं' इति पदं तदपरसकलदिक्कुमार्यधिकारसूत्रपाठसंरक्षणार्थं, साधारणसूत्रपाठे हि यथासम्भवं विधि-निषेधौ समाश्रयणीयाविति। ऊर्ध्वलोकवासिन्योऽष्टौ नन्दनवने योजनपञ्चशतिककूटवासिन्यः, अन्याश्च सर्वा अपि रुचकसत्ककूटेषु योजनसहस्रोच्चेषु मूले सहस्रयोजनविस्तारेषु शिरसि पञ्चशत-विस्तारेषु वसन्ति, उक्तं षट्पञ्चाशद्दिक्कुमारीकृत्यमिति ॥१७॥

अथेन्द्रकृत्यावसरः-

तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के णामं देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरंदरे सयक्कऊ[2] सहस्सक्खे मघवं पागसासणे दाहिणड्ढलोगाहिवई बत्तीस-विमाणावाससयसहस्साहिवई एरावणवाहणे सुरिंदे अरयंबरवत्थधरे आलइयमालमउडे नवहेमचारुचित्तचंचलकुण्डलविलिहिज्जमाणगंडे भासुर-बोंदी पलम्बवणमाले महिड्ढीए महज्जुईए महाबले महायसे महाणुभागे महासोक्खे सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए सक्कंसि सीहासणंसि [निसण्णे] ॥ १८ ॥

से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससयसाहस्सीणं, चउरासीए सामाणिअसाहस्सीणं, तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं, चउण्हं लोगपालाणं, अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणिआणं, सत्तण्हं अणिआहिवईणं, चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं,

१. माताए-अब J12 । माउए-मु. ॥ २. सयकेऊ-मु. ॥

अन्नेसिं च बहूणं सोहम्मकप्पवासीणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य[1] आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहयणट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिअ-घणमुइंग-पडुपड-हवाइअरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ ॥ १९ ॥

तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणं चलइ ॥ २० ॥

तए णं से सक्के जाव आसणं चलिअं पासइ, २ त्ता ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएइ, २ त्ता हट्ठतुट्ठचित्ते[2] आनंदिए णंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहिअए धाराहयनीवसुरभिकुसुमचंचुमालइअऊसविअरोमकूवे विअसिअवरकमलनयण-वयणे पचलिअवरकडग-तुडिअकेऊर-मउडे कुण्डलहारविरायंतवच्छे पालम्ब-पलम्बमाण-घोलंतभूसणधरे ससंभमं तुरिअं चवलं सुरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, २ त्ता [3]पायपीढाओ पच्चोरुहइ, २ त्ता वेरुलिअ-वरिट्ठ-रिट्ठ-अंजण-निउणोवचिअमिसिमिसिंतमणि-रयणमंडिआओ पाउआओ ओमुअइ, २ त्ता एगसाडिअं उत्तरासंगं करेइ, २ त्ता अंजलिमउलियग्गहत्थे तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, २ त्ता वामं जाणुं अंचेइ, २ त्ता दाहिणं जाणुं धरणीअलंसि [4]साहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि [5]निवेसेइ, २ त्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, २ त्ता कडगतुडिअथंभिआओ भुआओ साहरइ, २ त्ता करयलपरिग्गहिअं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी-णमोत्थु णं अरहंताणं भगवन्ताणं, आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुण्डरीआणं पुरिसवरगन्धहत्थीणं, लोगुत्तमाणं

१. अतः परं अकखत्रिब J12 आदर्शेषु 'अण्णे पढंति' इत्युल्लेखपूर्वकं पाठान्तरं लिखितं दृश्यते-'अण्णे पढंति अण्णेसिं च बहूणं देवाण य देवीण य आभिओगउववण्णगाणं ।' पुवृ. हीवृ. इति वृत्तिद्वयेऽपि इदं व्याख्यातमस्ति इति V पृ. ५३२ टि. ८ ॥ २. V J12 । धाराहयकयंब कुसुम० मु. ॥ ३. पायपीढाओ पच्चोरुहइ, २ त्ता-अकखत्रिबस पुवृ. हीवृ. नास्ति ॥ ४. णिहट्टु-J12 अकखत्रिबस पुवृ. हीवृ. ॥ ५. निवाडेइ-J12 अकखत्रिबस पुवृ. हीवृ. ॥

लोगणाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपज्जोअगराणं, अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं, धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरन्तचक्कवट्टीणं, दीवो ताणं सरणं गई पइट्ठा अप्पडिहयवरनाण-दंसणधराणं विअट्टछउमाणं, जिणाणं जावयाणं तिण्णाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोअगाणं, सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं सिवमयलमरुअमणन्तमक्खय-मव्वाबाहमपुणरा-वित्तिसिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्ताणं [१]णमो जिणाणं जिअभयाणं, णमोऽत्थु णं भगवओ तित्थगरस्स आइगरस्स जाव संपाविउकामस्स, वंदामि णं भगवन्तं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भयवं ! तत्थगए इहगयंतिकट्टु वन्दइ णमंसइ, २ त्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ॥ २१ ॥

"**तेणं कालेण**"मित्यादि, **तस्मिन् काले तस्मिन् समये** इत्यत्र समयो दिक्कुमारी-कृत्यानन्तरीयत्वेन विशेषणीयः, **शक्रो नाम** सौधर्माधिपतिरित्यादिव्याख्यानं **कल्पसूत्र-टीकादौ** प्रसिद्धत्वान्नात्र लिख्यते ॥१८-२१॥

अथ वन्दननमस्करणानन्तरं शक्रस्य सिंहासनोपवेशने यदभूत्तदाह-

तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अयमेआरूवे [२]जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था-उप्पण्णे खलु भो जम्बुद्दीवे दीवे भगवं तित्थयरे तं जीयमेयं तीअ-पच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवराईणं तित्थयराणं जम्मणमहिमं करेत्तए, तं गच्छामि णं अहंपि भगवओ तित्थगरस्स जम्मण-महिमं करेमित्तिकट्टु एवं संपेहेइ, २ त्ता हरिणेगमेसिं पायत्ताणीयाहिवइं देवं सद्दावेन्ति, २ त्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! सभाए सुहम्माए मेघोघरसिअं [३]गंभीर-महुरयरसद्दं जोयणपरिमण्डलं सुघोसं सूसरं घंटं तिक्खुत्तो उल्लालेमाणे २ महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे २ एवं

१. "नमो जिणाणं-अकखत्रि हीवृ. अस्ति । णमो जिणाणं जियभयाणं-पुस । प्राचीनादर्शेषु ठाणं संपत्ताणं इति पर्यवसितः पाठो लभ्यते, भगवत्यामपि (१।७) ठाणं संपाविउकामे-इत्येव पाठो विद्यते" इति V पृ. ५३३ टि. ११ ॥ २. द्र. ५।२० ॥ ३. गंभीरतरमहुर० अकखत्रिबस पुवृ. हीवृ. । गंभीरतरमहरसद्दं-आव.चू. पृ. १४० ॥

वयाहि-आणवेइ णं भो ! सक्के देविंदे देवराया, गच्छइ णं भो ! सक्के देविंदे देवराया जम्बुद्दीवे २ भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करित्तए, तं तुब्भेवि णं देवाणुप्पिआ ! सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वणाडएहिं [1]सव्वोवरोहेहिं सव्वपुप्फ-गन्ध-मल्ला-ऽलंकार-विभूसाए सव्वदिव्वतुडिअ-सद्दसण्णिणाएणं महया इड्ढीए [2]जाव रवेणं णिअयपरिआलसंपरिवुडा सयाइं २ [3]जाणविमाण-वाहणाइं दुरूढा समाणा अकालपरिहीणं चेव सक्कस्स [4]जाव अंतिअं पाउब्भवह ॥ २२ ॥

"**तए णं तस्स सक्कस्स**" इत्यादि, '**ततः**' सिंहासनोपवेशनानन्तरं **तस्य शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराज्ञो-ऽयमेतादृशो यावत्सङ्कल्पः समुदपद्यत** । कोऽसौ ? इत्याह-**उत्पन्नः खलु भो ! जम्बूद्वीपे द्वीपे भगवांस्तीर्थकरः तस्माज्जीतमेतदतीतप्रत्युत्पन्नानागतानां शक्राणां देवेन्द्राणां देवराज्ञां तीर्थकराणां जन्ममहिमां कर्त्तुं, तद् गच्छामि णमिति** प्राग्वत् **अहमपि भगवतस्तीर्थकरस्य जन्ममहिमां करोमि 'इतिकृत्वा'** इतिहेतुमुद्भाव्य **'एवं'** वक्ष्यमाणं **सम्प्रेक्षते, सम्प्रेक्ष्य** च 'हरेः' इन्द्रस्य '[5]**निगमं**' आदेशमिच्छतीति **हरिनिगमेषी**, तम्, अथवा इन्द्रस्य नैगमेषी नामा देवस्तं **पदात्यनीकाधिपतिं देवं शब्दयति, शब्दयित्वा चैवमवादीत्** । किमवादीद् ? इत्याह-"**खिप्पामेव भो**" इत्यादि, क्षिप्रमेव भो **देवानुप्रिया ! सभायां सुधर्मायां** मेघानाम् 'ओघः' सङ्घातो **मेघौघस्तस्य 'रसितं'** गर्जितं तद्वद् **गम्भीरो मधुरतरश्च शब्दो** यस्याः सा तथा, तां **योजन**प्रमाणं **'परिमण्डलं'** भावप्रधानत्वान्निर्देशस्य '**पारिमाण्डल्यं**' वृत्तत्वं यस्याः सा तथा, तां **सुघोषां** नाम **सुस्वरां घण्टां 'त्रिकृत्त्वः'** त्रीन् वारान् '**उल्लालयन् २**' ताडयन् २ **महता २ शब्देनोद्घोषयन् २ एवं वद-आज्ञापयति भो देवाः ! शक्रो देवेन्द्रो देवराजा** । किम् ? इत्याह-**गच्छति भोः ! शक्रो देवेन्द्रो देवराजा जम्बूद्वीपे द्वीपे भगवतस्तीर्थकरस्य जन्ममहिमां कर्त्तुम्** । सामान्यतो जिनवर्णके प्रक्रान्तेऽपि यज्जम्बूद्वीपनामग्रहणं तज्जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यधिकारात् । **तद्यूयमपि देवानुप्रियाः ! सर्वर्द्ध्या सर्वद्युत्या सर्वबलेन सर्वसमुदायेन सर्वादरेण**

१. सव्वोरोहेहिं-V पुके । सव्वरोहेहिं-अक । सव्वाव० त्रि । सव्वारो० ब । सव्वोवरोहेहिं-आव.चू. पृ. १४० ॥ २. द्र. ३।१२ ॥ ३. जाणाइं वाहणविमाणाइं-अब । जाणवाहणविमाणइं-अकखत्रिस पुवृ. हीवृ. आव.चूर्णिः पृ. १४० ॥ ४. द्र. ५।२० ॥ ५. नैगमं-पुके ॥

सर्वविभूत्या सर्वविभूषया सर्वदिव्यत्रुटितशब्दसन्निनादेन महत्या ऋद्ध्या यावद् रवेण, अत्राव्याख्यातपदानि यावत्पदसङ्ग्राह्यं च प्राग्वत् । **निजकपरिवारसम्परिवृताः स्वकानि स्वकानि यान-विमानानि** प्राग्वत् **'वाहनानि'** शिबिकादीन्**यारूढाः सन्तः 'अकाल-परिहीणं'** निर्विलम्बं यथा स्यात्तथा **'चैवः'** अवधारणे **शक्रस्य यावत्**करणात् 'देवेन्द्रस्य देवराज्ञः' इति पदद्वयं ग्राह्यम्, **'अन्तिकं'** समीपं **प्रादुर्भवत** ॥२२॥

अथ स्वाम्यादेशानन्तरं हरिणेगमेषी यदकरोत् तदाह–

तए णं से हरिणेगमेसी देवे पायत्ताणीयाहिवई सक्केणं देविंदेण देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ[1] जाव एवं देवोत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, २ त्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतिआओ[2] पडिणिक्खमइ, २ त्ता जेणेव सभाए सुहम्माए मेघोघरसि-अ-गम्भीर-महुरयरसद्दा जोअणपरि-मण्डला सुघोसा घण्टा तेणेव उवागच्छइ, २ त्ता तं मेघोघरसिअ-गम्भीर-महुरयरसद्दं जोअणपरिमण्डलं सुघोसं घण्टं तिक्खुत्तो उल्लालेइ ॥ २३ ॥

"तए णं से हरिणेगमेसी" इत्यादि, **ततः स हरिणेगमेषी देवः पदात्यनीकाधिपतिः शक्रेण देवेन्द्रेण देवराज्ञा एवमुक्तः सन् 'हृष्ट'** इत्यादि **यावदेवं देव इति आज्ञया विनयेन वचनं प्रतिशृणोति, प्रतिश्रुत्य** च **शक्रान्तिकात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य** च **यत्रैव सभायां सुधर्मायां मेघौघरसित-गम्भीर-मधुरतरशब्दा योजनपरिमण्डला सुघोषा घण्टा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य** च **तां मेघौघरसित-गम्भीरमधुरतरशब्दां योजनपरिमण्डलां सुघोषां घण्टां त्रिकृत्व उल्लालयतीति** ॥२३॥

उल्लालनानन्तरं यदजायत ? तदाह–

तए णं तीसे मेघोघरसिअ-गम्भीर-महुरयरसद्दाए जोअणपरिमण्डलाए सुघोसाए घण्टाए तिक्खुत्तो उल्लालिआए समाणीए सोहम्मे कप्पे अण्णेहिं एगूणेहिं बत्तीसविमाणावाससयसहस्सेहिं अण्णाइं एगूणाइं बत्तीसं घण्टास-यसहस्साइं जमगसमगं कणकणारावं काउं पयत्ताइंपि हुत्था ॥ २४ ॥

"तए णं तीसे मेघोघरसिअ-गम्भीर-महुरयर" इत्यादि, **'ततः'** उल्लालनानन्तरं **तस्यां मेघौघरसित-गम्भीर-मधुरतरशब्दायां योजन-परिमण्डलायां सुघोषायां घण्टायां**

१. द्र. ३।८ ॥ २. ०महुरसद्दा-J2 अकखत्रिबस पुवृ. शावृ. । एवमग्रेऽपि ॥

त्रिकृत्व उल्लालितायां सत्यां सौधर्मे कल्पे अन्येषु एकोनेषु द्वात्रिंशत्विमानरूपा ये **'आवासा'** देववासस्थानानि तेषां **शतसहस्रेषु**, अत्र सप्तम्यर्थे तृतीया, **अन्यान्येकोनानि द्वात्रिंशद् घण्टाशतसहस्राणि 'यमकसमकं'** युगपत् **कणकणारावं कर्त्तुं प्रवृत्तान्यप्यभवन्**। अत्रापिशब्दो भिन्नक्रमत्वात् घण्टाशतसहस्राण्यपि इत्येवं योजनीयः ॥२४॥

अथ घण्टानादतो यत् प्रवृत्तं तदाह–

तए णं सोहम्मे कप्पे पासाय-विमाणनिक्खुडावडिअसद्द-समुट्ठिअ[1]-घण्टापडिंसुआसयसहस्ससंकुले जाए आवि होत्था ॥ २५ ॥

"**तए ण**"मित्यादि, **'ततः'** घण्टानां कणकणाराव-प्रवृत्तेरनन्तरं **सौधर्मः कल्पः प्रासादानां विमानानां** वा ये **'निष्कुटा'** गम्भीरप्रदेशास्तेषु ये **'आपतिताः'** सम्प्राप्ताः **'शब्दाः'** शब्दवर्गणापुद्गलास्तेभ्यः **समुत्थितानि** यानि **'घण्टा-प्रतिश्रुतां'** घण्टासम्बन्धिप्रतिशब्दानां **शतसहस्राणि तैः सङ्कुलो जातश्चाप्यभूत्**। किमुक्तं भवति ? घण्टायां महता प्रयत्नेन ताडितायां ये विनिर्गताः शब्दपुद्गलास्तत्प्रतिघातवशतः सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च दिव्यानुभावतः समुच्छलितैः प्रतिशब्दैः सकलोऽपि सौधर्मः कल्पो बधिर उपजायत इति । एतेन द्वादशयोजनेभ्यः समागतः शब्दः श्रोत्रग्राह्यो भवति, न परतः ततः कथमेकत्र ताडितायां घण्टायां सर्वत्र तच्छब्दश्रुतिरुपजायते ? इति यदुच्यते तदपाकृतमवसेयम् । सर्वत्र दिव्यानुभावतस्तथारूपप्रतिरूपशब्दोच्छलने यथोक्तदोषासम्भवात् ॥२५॥

एवं शब्दमये सौर्धम्मे कल्पे सञ्जाते पदातिपतिर्यदकरोत् तदाह–

तए णं तेसिं सोहम्मकप्पवासीणं बहूणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य एगन्तरइपसत्त-णिच्चपमत्त-विसयसुहमुच्छिआणं सूसरघण्टारसिअविउल-बोलतुरिअ-चवलपडिबोहणे कए समाणे घोसणकोऊहलदिण्णकण्ण-एगग्गचित्तउवउत्तमाणसाणं से पायत्ताणीआहिवई देवे तंसि घण्टारवंसि निसंत-पडिसंतंसि[2] समाणंसि तत्थ तत्थ तहिं २ देसे महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे २ एवं वयासीति-हन्त[3] ! सुणंतु भवंतो बहवे सोहम्मकप्पवासी वेमाणिअदेवा देवीओ अ सोहम्मकप्पवइणो इणमो वयणं हिअसुहत्थं-आणावइ णं भो ! सक्के तं चेव जाव[4] अंतिअं पाउब्भवह ॥ २६ ॥

---

१. ०समुट्ठिअ० V J12 नास्ति ॥ २. अब पुवृ. । निसंतपसंतंसि-V पुके शावृ. । राजप्र. सू. १५ । निसंतपडिसंतंसि-कत्रिस हीवृ. आव.चू. पृ. १४१ ॥ ३. खप पुवृ. शावृ. । हंदि-V J12 । हंद-कत्रि हीवृ. ॥ ४. द्र. ५।२२ ॥

''**तए ण**''मित्यादि, 'ततः' शब्दव्याप्त्यनन्तरं **तेषां सौधर्मकल्पवासिनां बहूनां वैमानिकानां देवानां देवीनां च एकान्तेन 'रतौ'** रमणे '**प्रसक्ताः**' आसक्ताः अत एव **नित्यप्रमत्ताः, विषयसुखेषु 'मूर्च्छिताः'** अध्युपपन्नास्ततः पदत्रयस्य पदद्वय २ मीलनेन कर्मधारयस्तेषाम् । **सुस्वरा** या पङ्क्तिरथ-न्यायेन सुघोषा **घण्टा** तस्याः **रसितं** तस्माद् '**विपुलः**' सकलसौधर्मदेवलोककुक्षिम्भरिर्यो '**बोलः**' कोलाहलस्तेन, अत्र तृतीयालोपः प्राकृतत्वात्, '**त्वरितं**' शीघ्रं '**चपले**' ससम्भ्रमे **प्रतिबोधने कृते सति** आगामिकालसम्भाव्यमाने **घोषणे 'कुतूहलेन'** किमिदानीमुद्घोषणं भविष्यतीत्यात्मकेन **दत्तौ कर्णौ** यैस्ते तथा, '**एकाग्रं**' घोषणश्रवणैकविषयं **चित्तं** येषां ते तथा । एकाग्रचित्तत्वेऽपि कदाचिन्नोपयोगः स्याच्छाद्मस्थ्यवशादत आह '**उपयुक्तमानसाः**' शुश्रूषितवस्तुग्रहणपटुमनसस्ततो विशेषणसमासस्तेषाम्। **स पदात्यनीकाधिपतिर्देवस्तस्मिन् घण्टारवे** नितरां '**शान्तः**' अत्यन्तमन्दभूतः, ततः 'प्रकर्षेण' सर्वात्मना शान्तः **प्रशान्तः**, ततश्छिन्नप्ररूढ इत्यादाविव विशेषणसमासस्तस्मिन् **सति, 'तत्र तत्र'** महति देशे 'तस्मिन् २' देशैकदेशे **महता महता 'शब्देन'** तारतारस्वरेण **उद्घोषयन् २ एवमवादीत्** । किमवादीद् ? इत्याह-''**हंत ! सुण**''मित्यादि, '**हन्त** !' इति हर्षे स च स्वस्वस्वामिनाऽऽदिष्टत्वात् जगद्गुरुजन्ममहकरणार्थकप्रस्थानसमारम्भाच्च, शृण्वन्तु **भवन्तो बहवः सौधर्मकल्पवासिनो वैमानिका देवा देव्यश्च सौधर्म्मकल्पपतेरिदं वचनं 'हितं'** जन्मान्तरकल्याणावहं '**सुखं**' तद्भवसम्बन्धि **तदर्थमाज्ञापयति, भो** देवाः ! **शक्रः 'तदेव'** ज्ञेयम्, यत्प्राक्सूत्रे शक्रेण हरिनैगमेषिपुर उद्घोषयितव्यमादिष्टं **यावत्प्रादुर्भवत** ॥२६॥

अथ शक्रादेशानन्तरं यद्देवविधेयं तदाह-

तए णं ते देवा यदेवीओ अ एअमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठ जाव[१] हिअआ अप्पेगइआ वन्दणवत्तिअं एवं पूअणवत्तिअं सक्कारवत्तिअं सम्माणपत्तिअं दंसणवत्तिअं कोऊहलवत्तियं जिणभत्तिरागेणं अप्पेगइआ सक्कस्स वयण-[२]मणुवट्टमाणा अप्पेगइआ अण्णमण्णमणुवट्टमाणा अप्पेगइआ जीअमेअं एवमादित्तिकट्टु जाव[३] पाउब्भवंति ॥ २७ ॥

''**तए णं**''मित्यादि, **ततस्ते देवा देव्यश्च 'एनम्'** अनन्तरोदित**मर्थं श्रुत्वा हृष्टतुष्टयावद्** हर्षवशविसर्पद्**हृदयाः 'अपिः'** सम्भावनायाम् '**एकका**:' केचन '**वन्दनम्**' अभिवादनं

१. द्र. ३।५ ॥ २. ०मणुयत्तमाणा-अब J12 ॥ ३. द्र. ५।२२ ॥

प्रशस्तकायवाङ्मनःप्रवृत्तिरूपं '**तत्प्रत्ययं**' तदस्मा-भिस्त्रिभुवनभट्टारकस्य कर्त्तव्यमित्येवं-निमित्तम्, एवं '**पूजनप्रत्ययं**' 'पूजनं' गन्धमाल्यादिभिः समभ्यर्चनम्, एवं '**सत्कारप्रत्ययं**' 'सत्कारः' स्तुत्यादिभिर्गुणोन्नतिकरणम्, '**सन्मानो**' मानसप्रीतिविशेषस्तत्**प्रत्ययम्**, '**दर्शनम्**' अदृष्टपूर्वस्य जिनस्य विलोकनं तत्**प्रत्ययम्**, '**कुतूहलं**' तत्र गतेनास्मत्प्रभुणा किं कर्त्तव्यम् ? इत्यात्मकं तत्**प्रत्ययम्**, **अप्येकका: शक्रस्य वचनमनुवर्त्तमाना:**, न हि प्रभुवचन-मुपेक्षणीयमिति भृत्यधर्ममनुश्रयन्तः, **अप्येकका अन्यमन्यं** मित्र**मनुवर्त्तमाना** मित्रगमनानुप्रवृत्ता इत्यर्थः, **अप्येकका जीतमेतद्** यत् सम्यग्दृष्टि-देवैर्जिनजन्ममहे यतनीयम्, '**एवमादी**'त्यादिकमागमननिमित्तम् ? '**इतिकृत्वा**' चित्तेऽवधार्य **यावच्छ**ब्दात् "अकाल-परिहीणं चेव सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो" इति ग्राह्यम्, **अन्तिकं प्रादुर्भवन्ति** ॥२७॥

अथ शक्रस्येतिकर्त्तव्यमाह-

तए णं से सक्के देविंदे देवराया ते बहवे विमाणिए[१] देवे देवीओ अ अकालपरिहीणं चेव अंतिअं पाउब्भवमाणे पासइ, २ त्ता हट्ठे० पालयं णामं आभिओगिअं देवं सद्दावेइ, २ त्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठं लीलट्ठियसालभंजिआकलिअं ईहामिअ-उसभ-तुरग-णर-मगर-विहग-वालग-किण्णर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलयभत्तिचित्तं खंभुग्गयवइरवेइआपरिगयाभिरामं विज्जाहरजमलजु-अलजंतजुत्तं पिव अच्चीसहस्समालिणीअं रूवगसहस्सकलिअं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुल्लोअणलेसं सुहफासं सस्सिरीअरूवं घण्टावलि-अमहुरमणहरसरं सुहं कन्तं दरिसणिज्जं णिउणोविअमिसिमिसिंतमणिरयण-घंटिआजालपरिक्खित्तं जोयणसयसहस्सवित्थिण्णं पञ्चजोअणसयमुव्विद्धं सिग्घं तुरिअं जइणणिव्वाहि दिव्वं जाणविमाणं विउव्वाहि, २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणाहि ॥ २८ ॥

"**तए ण**"मित्यादि, **ततः शक्रो देवेन्द्रो देवराजा** '**तान्**' **बहून् वैमानिकान् देवान् उपतिष्ठमानान् पश्यति, दृष्ट्वा च** '**हट्ठतुट्ठ**' इत्येकदेशेन सर्वोऽपि हर्षालापको ग्राह्यः, **पालकनाम**विमानविकुर्वणाधिकारिण**माभियोगिकं देवं शब्दयति, शब्दयित्वा च**

१. द्र. ३।५ ॥

एवमवादीत् । यदवादीत्तदाह-"**खिप्पामेव**"त्ति, इदं यानविमानवर्णकं प्राग्वत् । नवरं **योजनशतसहस्रविस्तीर्णमि**त्यत्र प्रमाणाङ्गुलनिष्पन्नं योजनलक्षं ज्ञेयम् । ननु वैक्रियप्रयोगजनितत्वेनोत्सेधाङ्गुलनिष्पन्नत्वमप्यस्य कुतो न ? इति चेन्न, "**नग-पुढवि-विमाणाई मिणसु पमाणंगुलेणं तु**" [ ] इति वचनात् अस्य प्रमाणाङ्गुलनिष्पन्नत्वं युक्तिमत् । न च '**नग-पुढवि-विमाणाई**'ति वचनं शाश्वतविमानापेक्षया, न यानविमानापेक्षयेति ज्ञेयम् । अस्योत्सेधाङ्गुलप्रमाणनिष्पन्नत्वे जम्बूद्वीपान्तः सुखप्रवेशनीयत्वेन नन्दीश्वरे विमानसङ्कोचनस्य वैयर्थ्यापत्तेः । तथा **श्रीस्थानाङ्गे चतुर्थाध्ययने "चत्तारि लोगे समा पण्णत्ता, तंजहा-अपइट्ठाणे णरए १ जम्बुद्दीवे दीवे २ पालए जाणविमाणे ३ सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे ४**"[४।३।३२८] इत्यत्रापि पालकविमानस्य जम्बूद्वीपादिभिः प्रमाणतः समत्वं प्रमाणाङ्गुलनिष्पन्नत्वेनैव सम्भवतीति दिक् । तथा **पञ्चशतयोजनोच्चं शीघ्रं त्वरितजवनं**, अतिशयेन वेगवदित्यर्थः, '**निर्वाहि**' प्रस्तुतकार्यनिर्वहणशीलं पश्चात् पूर्वपदेन कर्मधारयः, एवंविधं **दिव्यं यानविमानं विकुर्वस्व, विकुर्व्य च एतामाज्ञप्तिं प्रत्यर्प्पय**, कृतकृत्यो निवेदय इत्यर्थः ॥२८॥

तदनु यदनुतिष्ठति स्म पालकस्तदाह-

तए[1] णं से पालए देवे सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव वेउव्विअसमुग्घाएणं समोहणित्ता तहेव करेइ ॥ २९ ॥

"**तए णं से पालए देवे सक्केण**"मित्यादि, **ततः स पालको देवः शक्रेण देवेन्द्रेण देवराज्ञा एवमुक्तः सन् हृष्टतुष्ट यावद् वैक्रियसमुद्घातेन समवहत्य तथैव करोति**, पालकविमानं रचयतीत्यर्थः ॥२९॥

अथ विमानस्वरूपवर्णनायाह-

तस्स णं दिव्वस्स जाणविमाणस्स तिदिसिं तओ तिसोवाणपडिरूवगा वण्णओ[2] ॥ ३० ॥

तेसि णं पडिरूवगाणं पुरओ पत्तेअं २ तोरणा वण्णओ[3] जाव पडिरूवा १ ॥ ३१ ॥

तस्स णं जाणविमाणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे । से जहा नामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव[4] दीविअचम्मेइ वा अणेगसंकुकीलकसहस्स-

१. द्र. राजप्र. सू. १८ ॥ २. द्र. राजप्र. सू. १९ ॥ ३. द्र. राजप्र. सू. २०-२३ ॥ ४. द्र. राजप्र. सू. २४ ॥

वितते आवड-पच्चावड-सेढि-पसेढि[1]-सुत्थिअ-सोवत्थिअ-वद्धमाण-पूसमाणव-मच्छंडग-मगरंडग-जारमार-फुल्लावली-पउमपत्त-सागरतरंग-वसंतलय-पउमलयभत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं सप्पभेहिं समिरीइएहिं[2] सउज्जोएहिं णाणाविहपञ्चवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए २ । तेसि णं मणीणं वण्णे गन्धे फासे अ भाणिअव्वे जहा रायप्पसेणइज्जे[3] ॥ ३२ ॥

"**तस्स ण**"मित्यादि इति सूत्रद्वयी व्यक्ता । अथ तद्विभागं वर्णयन्नाह-"**तस्स णं**" इत्यादि, इदं प्राग्वद् ज्ञेयम् । नवरं मणीनां वर्णो गन्धः स्पर्शश्च भणितव्यो यथा **राजप्रश्नीये द्वितीयोपाङ्गे** । अत्रापि जगती-पद्मवरवेदिकावर्णने मणिवर्णादयो व्याख्यातास्ततोऽपि वा बोद्धव्याः ॥३०-३२॥

अत्र प्रेक्षागृहमण्डपवर्णनायाह-

तस्स णं भूमिभागस्स[4] बहुमज्झदेसभाए पिच्छाघरमण्डवे अणेगखम्भसय-सण्णिविट्ठे वण्णओ जाव पडिरूवे ॥ ३३ ॥

[5]तस्स उल्लोए पउमलयभत्तिचित्ते जाव सव्वतवणिज्जमए जाव[6] पडिरूवे ॥ ३४ ॥

"**तस्स ण**"मित्यादि, यावच्छब्दग्राह्यं व्याख्या च यमक-राजधानीगतसुधर्मासभाधिकारतो ज्ञेये । उपरिभागवर्णनायाह-"**तस्स उल्लोए**" इत्यादि, तस्य 'उल्लोकः' उपरिभागः **पद्मलताभक्तिचित्रः यावत्सर्वात्मना तपनीयमयः** प्रथमयावच्छब्देन अशोकलताभक्तिचित्र इत्यादिपरिग्रहः, द्वितीययावच्छब्दाद् "**अच्छे सण्हे**" इत्यादिविशेषण-ग्रहः । अत्र च **राजप्रश्नीये** सूर्याभयानविमानवर्णकेऽक्षपाटकसूत्रं दृश्यते, परं बहुष्वेतत्सूत्रा-दर्शेषु अदृष्टत्वान्न लिखितम् ॥३३-३४॥

अथात्र मणिपीठिकावर्णनायाह-

तस्स णं मण्डवस्स बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेस-भागंसि महेगा मणिपेढिआ-अट्ठ जोअणाइं आयाम-विक्खम्भेणं चत्तारि जोअणाइं बाहल्लेणं सव्वमणिमयी वण्णओ ॥ ३५ ॥

---

१. ०पडिसेढि०-J12 अकखब आव.चूर्णि पृ. १४२ । ०प्पसेढि० V ॥ २. J12 अबस पुवृ. आव.चू. पृ. १४२ । समरी० V मु. । सस्सिरी० कख ॥ ३. द्र. राजप्र. सू. २४-३१ ॥ ४. द्र. राजप्र. सू. ३२ ॥ ५. "अतः पूर्वं राजप्र. (३३) मध्ये प्रेक्षागृहमण्डपस्य भूमिभागसूत्रं विद्यते ।" इति V पृ. ५३६ टि. १८ ॥ ६. द्र. जीवा. ३।२०६ ॥

तीए उवरिं महेगे सीहासणे वण्णओ[1] ॥ ३६ ॥

तस्सुवरिं महेगे विजयदूसे सव्वरयणामए वण्णओ ॥ ३७ ॥

तस्स मज्झदेसभाए एगे वइरामए अंकुसे । एत्थ णं महेगे कुम्भिक्के मुत्तादामे । से णं अन्नेहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमित्तेहिं चउहिं अद्धकुम्भिक्केहिं मुत्तादामेहिं सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते । ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा सुवण्णपयरगमण्डिआ णाणामणि-रयण-विविहहारद्धहारउवसोभिआ समुदया ईसिं अण्णमण्णमसंपत्ता पुव्वाइएहिं वाएहिं मन्दं २ एइज्जमाणा २ जाव निव्वुइकरेणं सद्देणं ते पएसे आपूरेमाणा २ जाव अईव उवसोभेमाणा २ चिट्ठंति ॥ ३८ ॥

"**तस्स ण**"मित्यादि, व्यक्तम् । "**तीए उवरिं**" इत्यादि, एतद्व्याख्या विजयद्वारस्थ-प्रकण्ठकप्रासादगतसिंहासनसूत्रवदवसेया । "**ते ण**"मित्यादि, इदं सूत्रं प्राक् पद्मवरवेदिका-जालवर्णके व्याख्यातमिति ततो बोध्यम् । अत्र प्रथम**यावत्**पदात् "वेइज्जमाणा २ पलम्बमाणा २ पझंझमाणा २ ओरालेणं मणुण्णेणं मणहरेणं कण्णमण" इति सङ्ग्रहः, द्वितीययावत्पदात् "ससिरीए" इति ग्राह्यम् ॥३५-३८॥ सम्प्रति अत्रास्थाननिवेशनप्रक्रियामाह-

तस्स णं सीहासणस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं सक्कस्स चउरासीए सामाणिअसाहस्सीणं चउरासीइ भद्दासणसाहस्सीओ पुरत्थिमेणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं । एवं दाहिणपुरत्थिमेणं अब्भिंतरपरिसाए दुवालसण्हं देवसाहस्सीणं दाहिणेणं मज्झिमाए[2] चउदसण्हं देवसाहस्सीणं दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरपरिसाए सोलसण्हं देवसाहस्सीणं पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणिआहिवईणं ॥ ३९ ॥

"**तस्स ण**"मित्यादि, **तस्य सिंहासनस्य** पालकविमानमध्यभागवर्त्तिनः 'अऽपरोत्तरायां' वायव्यामुत्तरस्यां **'उत्तरपूर्वायाम्'**-ऐशान्याम् **अत्रान्तरे शक्रस्य चतुरशीतेः सामानिक-सहस्राणां चतुरशीतिभद्रासनसहस्राणि**, उक्तदिक्त्रये चतुरशीतिभद्रासनसहस्राणीत्यर्थः ।

१. द्र. राजप्र. सू. ३७ ॥ २. अकखत्रि पबस । मज्झिमपरिसाए-V ॥

पूर्वस्यां दिश्यष्टानामग्रमहिषीणामष्ट भद्रासनानि । **एवं 'दक्षिणपूर्वायाम्'** अग्निकोणेऽभ्यन्तरपर्षदः सम्बन्धिनां **द्वादशानां देवसहस्राणां** द्वादश भद्रासनसहस्राणि, **दक्षिणस्यां मध्यमायाः** पर्षदश्चतुर्दशानां **देवसहस्राणां** चतुर्दश भद्रासनसहस्राणि, **'दक्षिणपश्चिमायां'** नैर्ऋतकोणे **बाह्यपर्षदः षोडशानां देवसहस्राणां** षोडश भद्रासनसहस्राणि, **पश्चिमायां सप्तानामनीकाधिपतीनां** सप्त भद्रासनानीति ॥३९॥

तए णं तस्स सीहासणस्स चउद्दिसिं चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं एवमाई विभासिअव्वं सूरिआभगमेणं[१] जाव पच्चप्पिणन्तित्ति ॥ ४० ॥

"तए ण"मित्यादि, **'ततः'** प्रथमवलयस्थापनानन्तरं द्वितीये वलये **तस्य सिंहासनस्य चतुर्दिशि चतसृणां 'चतुरशीतानां'**-चतुर्गुणीकृतचतुरशीतिसङ्ख्याकानाम् **आत्मरक्षकदेवसहस्राणाम्**, षट्त्रिंशत्सहस्राधिकलक्षत्रयमितानामात्मरक्षकदेवानामित्यर्थः, तावन्ति भद्रासनानि विकुर्वितानीत्यर्थः । **एवमादि 'विभाषितव्यम्'** इत्यादि वक्तव्यं **सूर्याभगमेन** यावत्प्रत्यर्पयन्ति । यावत्पदसङ्ग्रहश्चायम्-"**तस्स णं दिव्वस्स जाणविमाणस्स इमे एआरूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहा णामए अइरुग्गयस्स हेमंतिअबालसूरिअस्स खाइलिंगालाण वा रत्तिं पज्जलिआणं जासुमणवणस्स वा केसुअवणस्स वा पालिजायवणस्स वा सव्वओ समन्ता संकुसुमिअस्स, भवे एआरूवे सिआ ?, णो इणट्ठे समट्ठे । तस्स णं दिव्वस्स जाणविमाणस्स इत्तो इट्ठतराए चेव ४ वण्णे पण्णत्ते, गन्धो फासो अ जहा मणीणं । तए णं से पालए देवे तं दिव्वं जाणविमाणं विउव्वइ, विउव्वित्ता जेणेव सक्के ३ तेणेव उवागच्छइ, २ त्ता सक्कं ३ करयलपरिग्गहिअं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, २ त्ता तमाणत्तिअ'** [तुला-राजप्र. ४५-४६] मिति ।

अत्र व्याख्या-तस्य दिव्यस्य यानविमानस्यायमेतद्रूपो वर्णव्यासः प्रज्ञप्तः । स यथानामकोऽचिरोद्गतस्य-तत्कालमुदितस्य हैमन्तिकस्य-शिशिरकालसम्बन्धिनो बालसूर्यस्य खादिराङ्गाराणां वा "रत्ति"मिति सप्तम्यर्थे द्वितीया रात्रौ प्रज्वालितानां जपावनस्य वा किंशुकवनस्य वा पारिजाताः-कल्पद्रुमास्तेषां वनस्य वा सर्वतः समन्तात् सम्यक् कुसुमितस्य । अत्र शिष्यः पृच्छति-भवेदेतद्रूपः स्यात्-कथञ्चित् ?, सूरिराह-नायमर्थः समर्थः । तस्य दिव्यस्य यानविमानस्य इत इष्टतरक एव कान्ततरक एवेत्यादि प्राग्वद्, गन्धः स्पर्शश्च यथा प्राग्मणीनामुक्तस्तथेति । ननु अत्रैव पालकविमानवर्णके प्राग्मणीनां वर्णादय उक्ताः, पुनर्विमानवर्णकादिकथनेन पुनरुक्तिरिति चेत्, मैवम्, पूर्वं हि अवयवभूतानां मणीनां वर्णादयः

१. द्र. राजप्रश्नीयसूत्र-४४-४६ ॥

प्रोक्ताः, सम्प्रति अवयविनो विमानस्येति नोक्तदोषः । "तओ णं से पालए देवे" इत्यादिकमाज्ञाप्रत्यर्पणसूत्रं स्वतोऽभ्यूह्यम् ॥४०॥

अथ शक्रकृत्यमाह-

तए णं से सक्के जाव हट्ठहिअए दिव्वं जिणिंदाभिगमणजुग्गं सव्वालंकारविभूसिअं उत्तरवेउव्विअं रूवं विउव्वइ, २ त्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं णट्टाणीएणं गन्धव्वाणीएण य सद्धिं तं विमाणं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे २ पुव्विल्लेणं तिसोवाणेणं[1] दुरूहइ, २ त्ता जाव सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ॥ ४१ ॥

"**तए ण**"मित्यादि, **ततः स शक्र** इत्यादि व्यक्तम्, '**दिव्यं**' प्रधानं '**जिनेन्द्रस्य**' भगवतः '**अभिगमनाय**' अभिमुखगमनाय **योग्यम्**-उचितं यादृशेन वपुषा सुरसमुदायसर्वातिशायिश्रीर्भवति तादृशेनेत्यर्थः । '**सर्वालङ्कारविभूषितं**' '**सर्वैः**' शिरःश्रवणाद्यलङ्कारैर्विभूषितम्, उत्तरवैक्रियशरीरत्वात्, स्वाभाविकवैक्रियशरीरस्य तु आगमने निरलङ्कारतयैवोत्पादश्रवणात्, '**उत्तरं**' भवधारणीयशरीरापेक्षया कार्योत्पत्तिकालापेक्षया चोत्तरकालभावि **वैक्रियरूपं विकुर्वति, विकुर्व्य चाष्टाभिरग्रमहिषीभिः** '**सपरिवाराभिः**' प्रत्येकं २ षोडशदेवीसहस्रपरिवारपरिवृताभि**र्नाट्यानीकेन गन्धर्वानीकेन च सार्द्धं तं विमानमनुप्रदक्षिणीकुर्वन्** २ **पूर्वदिक्स्थेन त्रिसोपानेनारोहति, आरुह्य च यावच्छब्दात्** 'जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता' इति ग्राह्यं, **सिंहासने पूर्वाभिमुखः सन्निषण्ण इति** ॥४१॥

अथास्थानं सामानिकादिभिः यथा पूर्यते तथाऽऽह-

एवं चेव सामाणिआ वि उत्तरेणं तिसोवाणेणं दुरूहित्ता पत्तेअं २ पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु णिसीअंति । अवसेसा य देवा देवीओ अ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणेणं दुरूहित्ता तहेव जाव णिसीअंति ॥ ४२ ॥

"**एवं चेव**" इत्यादि, व्यक्तम् । नवरं '**अवशेषाश्च**' आभ्यन्तरपार्षद्यादयः ॥४२॥ अथ प्रतिष्ठासोः शक्रस्य पुरः प्रस्थायिनां क्रममाह -

तए णं तस्स सक्कस्स तंसि दुरूढस्स इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ[2] । तयणंतरं च णं पुण्णकलसभिंगारं दिव्वा य

---

१. त्रिप । तिसोमाणेणं-अकखबस । तिसोमाणपडिरूवएणं-V राजप्र. सू. ४७ ॥ २. विस्तारार्थं द्र. औप. सू. ६४ ॥

छत्तपडागा सचामरा य दंसणरइअआलोअदरिसणिज्जा वाउद्धुअविजयवेजयन्ती अ समूसिआ गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ । तयणन्तरं छत्तभिंगारं । तयणंतरं च णं वइरामय-वट्ट-लट्ठ-संठिअ-सुसिलिट्ठ[1]-परिघट्ठ-मट्ठ-सुपइट्ठिए विसिट्ठे अणेगवरपञ्चवण्णकुडभीसहस्स-परिमण्डिअभिरामे वाउद्धुअविजयवेजयन्तीपडागाछत्ताइच्छत्तकलिए तुंगे गयणतलमणुलिहंतसिहरे[2] जोअणसहस्समूसिए महइमहालए महिंदज्झए पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिए । तयणन्तरं च णं सरूवनेवत्थपरि[3]-अच्छिअ-सुसज्जा सव्वालंकारविभूसिआ पञ्च अणिआ पञ्च अणिआहिवईणो जाव संपट्ठिआ । तयणन्तरं च णं बहवे आभिओगिआ देवा य देवीओ अ सएहिं सएहिं रूवेहिं जाव णिओगेहिं सक्कं देविंदं देवरायं पुरओ अ मग्गओ अ पासओ य अहा० । तयणन्तरं च णं बहवे सोहम्मकप्पवासी देवा य देवीओ अ सव्विड्ढीए जाव दुरूढा समाणा मग्गओ अ जाव संपट्ठिआ ॥ ४३ ॥

"**तए णं तस्स**" इत्यादि, एतद्व्याख्या भरतचक्रिणोऽयोध्याप्रवेशाधिकारतो ज्ञेया । "**तयणन्तर**"मित्यादि, तदनन्तरं **छत्रं च भृङ्गारं** च **छत्रभृङ्गारं** समाहारादेकवद्भावः । छत्रं च 'वेरुलिअभिसंतविमलदण्ड'मित्यादिवर्णकयुक्तं भरतस्यायोध्याप्रवेशाधिकारतो ज्ञेयम्, भृङ्गारश्च विशिष्टवर्णकचित्रोपेतः, पूर्वं च भृङ्गारस्य जलपूर्णत्वेन कथनात्, अयं च जलरिक्तत्वेन विवक्षित इति न पौनरुक्त्यम् । तदनन्तरं '**वज्रमयः**' रत्नमयः तथा '**वृत्तं**' वर्त्तुलं '**लष्टं**' मनोज्ञं '**संस्थितं**' संस्थानम् आकारो यस्य स तथा । तथा '**सुश्लिष्टः**' सुश्लेषापन्नावयवो मसृण इत्यर्थः, परिघृष्ट इव **परिघृष्टः** खरशाणया पाषाणप्रतिमावत्, मृष्ट इव **मृष्टः** सुकुमारशाणया पाषाणप्रतिमेव, **सुप्रतिष्ठितो** न तु तिर्यक्पतिततया वक्रस्तत एतेषां पदद्वय२मीलनेन कर्मधारयः । अत एव शेषध्वजेभ्यो '**विशिष्टः**' अतिशायी, तथाऽ**नेका**नि **वराणि पञ्चवर्णानि** '**कुडभीनां**' लघुपताकानां **सहस्राणि** तैः '**परिमण्डितः**' अलङ्कृतः स चासावभि**रामश्चे**ति, **वातोद्धूते**त्यादिविशेषणद्वयं व्यक्तम् । तथा '**गगनतलम्**' अम्बरतलम् '**अनुलिखत्**' संस्पृशत् '**शिखरम्**' अग्रभागो यस्य स तथा । **योजनसहस्रमुत्सृतो**ऽत एवाह-"**महइमहालए**" इति, अतिशयेन

१. ०लट्ठियसंठिय० अकखत्रिबस ॥ २. ०मभिकंखमाणसिहरे-अकखत्रिबस पुवृपा ॥ ३. ०वत्थहत्थपरि० J1 त्रिपुवृ ॥ अबकखस ॥

महान् **महेन्द्रध्वजः पुरतो यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थित इति** । "**तयणन्तर**"मित्यादि, तदनन्तरं '**स्वरूपं**' स्वकर्मानुसारि '**नेपथ्यं**' वेषः '**परिकच्छितः**' परिगृहीतो यैस्तानि तथा, '**सुसज्जानि**' पूर्णसामग्रीकतया प्रगुणानि **सर्वालङ्कारविभूषितानि पञ्चानीकानि पञ्चानीकाधिपतयश्च** पुरतो यथानुपूर्व्या **सम्प्रस्थितानि** । "**तयणन्तरं च ण**"मित्यादि, तदनन्तरं **बहव आभियोगिका देवाश्च देव्यश्च स्वकैः स्वकैः** '**रूपैः**' यथास्वकर्मोपस्थितैरुत्तरवैक्रिय-स्वरूपै**र्यावच्छ**ब्दात्स्वकैः स्वकैः विभवैः-यथास्वकर्मोपस्थितैर्विभवैः-सम्पत्तिभिः स्वकैः '**नियोगैः**' उपकरणैः **शक्रं देवेन्द्रं देवराजं पुरतश्च** '**मार्गतश्च**' पृष्ठतः '**पार्श्वतश्च**' उभयोः '**यथानुपूर्व्या**' यथावृद्धक्रमेण सम्प्रस्थिताः । "**तयणन्तरं च ण**"मित्यादि, तदनन्तरं **बहवः सौधर्मकल्पवासिनो देवाश्च देव्यश्च सर्वर्द्ध्या यावत्**करणादिन्द्रस्य हरिनिगमेषिणं पुरः स्वाज्ञप्तिविषयकः प्रागुक्त आलापको ग्राह्यः, तेन स्वानि २ यानविमानवाहनान्यारूढाः सन्तः, मार्गतश्च यावच्छब्दात् पुरतः पार्श्वतश्च शक्रस्य **सम्प्रस्थिताः** ॥४३॥

अथ यथा शक्रः सौधर्मकल्पान्निर्याति तथा चाह-

तए णं से सक्के तेणं पञ्चाणिअपरिक्खित्तेणं जाव[१] महिंदज्झएणं[२] पुरओ पकड्डिज्जमाणेणं चउरासीए सामाणिअ जाव परिवुडे सव्विड्डीए[३] जाव रवेणं सोहम्मस्स कप्पस्स मज्झंमज्झेणं तं दिव्वं देविड्ढिं[४] जाव उवदंसेमाणे २ जेणेव सोहम्मस्स कप्पस्स उत्तरिल्ले निज्जाणमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जोअणसयसाहस्सीएहिं विग्गहेहिं ओवयमाणे २ ताए उक्किट्ठाए जाव[५] देवगईए वीईवयमाणे २ तिरियमसंखिज्जाणं दीव-समुद्दाणं मज्झं-मज्झेणं जेणेव णन्दीसरवरे दीवे जेणेव दाहिणपुरत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए तेणेव उवागच्छइ, २ त्ता →एवं[६] जा चेव सूरिआभस्स वत्तव्वया, णवरं सक्काहिगारो वत्तव्वो← । जाव[७] तं दिव्वं देविड्ढिं जाव दिव्वं जाणविमाणं पडिसाहरमाणे २ जाव[८] जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणनगरे जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणे तेणेव उवागच्छति, २ त्ता भगवओ

१-२. द्र. राजप्र. सू. ५६ ॥ ३. द्र. ३।१२ ॥ ४. द्र. राजप्र. सू. ५६ ॥ ५. द्र. ३।२६ ॥ ६. →← चिह्नद्वयमध्यवर्तिपाठः अकखत्रिपसब पुवृ शावृ हीवृ वर्तते, V संस्करणे आव.चूर्णौ नास्ति । राजप्रश्नीयसूत्रे (५६) ऽपि उवागच्छित्ता इति पदानन्तरं 'तं दिव्वं देविड्ढिं' इति पाठो विद्यते । एष अन्तरवर्तिपाठो नास्ति कस्यापि पाठस्य अर्थस्य सूचकः । केनाऽपि कारणेन पाठविपर्यासो जातः इति सम्भाव्यते" इति V पृ. ५३९ टि.६ ॥ ७-८. द्र. राजप्र. सू. ५६ ॥

तित्थयरस्स जम्मणभवणं तेणं दिव्वेणं जाणविमाणेणं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, २ त्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे चतुरंगुलमसंपत्तं धरणियले तं दिव्वं जाणविमाणं ठवेइ, २ त्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं दोहिं अणीएहिं गन्धव्वाणीएण य णट्टाणीएण य सद्धिं ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहइ ॥ ४४ ॥

"**तए णं**"मित्यादि, **ततः स शक्रः 'तेन'** प्रागुक्तस्वरूपेण **पञ्चभिः** सङ्ग्रामिकै**रनीकैः 'परिक्षिप्तेन'** सर्वतः परिवृतेन **यावत्** पूर्वोक्तः सर्वो महेन्द्रध्वजवर्णको ग्राह्यः, **महेन्द्रध्वजेन पुरतः 'प्रकृष्यमाणेन'** निर्गम्यमानेन **चतुरशीत्या सामानिकसहस्रैर्यावत्क**रणात् "चउहिं चउरासीहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं" इत्यादि ग्राह्यम्, **परिवृतः सर्वर्द्ध्या यावद् रवेण** यावत्करणात् "सव्वज्जुईए" इत्यादि प्रागुक्तं ग्राह्यम् । **सौधर्मस्य कल्पस्य मध्यंमध्येन तां दिव्यां देवर्द्धिं यावच्छ**ब्दाद् "दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं" इति ग्रहः, सौधर्मकल्पवासिनं देवाना**मुपदर्शयन् २ यत्रैव सौधर्मकल्पस्योत्तराहो 'निर्याणमार्गः'** निर्गमनसम्बन्धी पन्था**स्तत्रैवोपागच्छति** । यथा वरयिता नागराणां विवाहोत्सवस्फातिदर्शनार्थं राजपथे याति, न तु नष्टरथ्यादौ तथाऽयमपि । एतेन समग्रदेवलोकाधारभूतपृथिवी-प्रतिष्ठितविमाननिरुद्धमार्गत्वेनेतस्ततः सञ्चरणाभावेन मध्यं-मध्येनेति उत्तरिल्ले णिज्जाणमग्गे इत्युक्तमिति ये आहुस्ते आगमसाम्मत्यं युक्तिसाङ्गत्यं च प्रष्टव्याः । **उपागत्य** च **'योजनशतसाहस्रिकैः'** योजनलक्षप्रमाणैः **'विग्रहैः'** क्रमैरिव गन्तव्यक्षेत्रातिक्रमरूपैः, एतेन स्थावरस्वरूपस्य विमानस्य पदन्यासरूपाः क्रमाः कथं भवेयुः ? इति शङ्का निरस्ता । **अवपतन् अवपतन् तयोत्कृष्टया यावत्क**रणात् "तुरिआए" इत्यादिग्रहः, **देवगत्या व्यतिव्रजन् २ तिर्यगसंख्येयानां द्वीप-समुद्राणां मध्यंमध्येन यत्रैव नन्दीश्वर-वरद्वीपो यत्रैव** तस्यैव पृथुत्वमध्यभागे **'दक्षिणपूर्वः'** आग्नेयकोणवर्त्ती **रतिकरपर्वत-स्तत्रैवोपागच्छति** ।

इदं च **स्थानाङ्गाद्याशयेनोक्तम्**, अन्यथा **प्रवचनसारोद्धारादिषु** पठ्यमानानां पूर्वाद्यञ्जनगिरिविदिग्व्यवस्थितवापीद्वयद्वयान्तराले बहिःकोणयोः प्रत्यासत्तौ प्रत्येकं द्वय२भावेन तिष्ठतामष्टानां रतिकरपर्वतानां मध्ये विनिगमनाविरहात् कतरो रतिकरपर्वतो दक्षिणपूर्वः स्यादिति । ननु सौधर्मादवतरतः शक्रस्य नन्दीश्वरद्वीप एवावतरणं युक्तिमत्, न पुनरसङ्ख्येय-

द्वीपसमुद्रातिक्रमेण तत्रागमनमिति, उच्यते, निर्याणमार्गस्यासङ्ख्याततमस्य द्वीपस्य वा समुद्रस्य वा उपरिस्थितत्वेन सम्भाव्यमानत्वात् तत्रावतरणम्, ततश्च नन्दीश्वराभिगमनेऽसङ्ख्यातद्वीपसमुद्रातिक्रमणं युक्तिमदेवेति । अत्र दृष्टान्ताय सूत्रं "**एवं जा चेव**"त्ति, एवमुक्तरीत्या यैव **सूर्याभस्य वक्तव्यता** यथा सूर्याभः सौधर्मकल्पादवतीर्णस्तथाऽयमपीत्यर्थः, **नवरम्** अयं भेदः-**शक्राधिकारो 'वक्तव्यः'** सौधर्मेन्द्रनाम्ना सर्वं वाच्यम् । "**जाव तं दिव्वं**" इत्यादि, प्रायो व्यक्तम् । नवरमत्र प्रथमयावच्छब्दो दृष्टान्तविषयीकृतसूर्याभाधिकारस्यावधिसूचनार्थः, स चावधिर्विमान-प्रतिसंहरणपर्यन्तो वाच्यः । द्वितीय**यावच्छब्दो** "दिव्वं देवजुइं दिव्वं दिव्वाणुभावं" इति पदद्वयग्राही । अस्य चायमर्थः-दिव्यां देवर्द्धि-परिवारसम्पदं स्वविमानवर्ज्जसौधर्मकल्प-वासिदेवविमानानां मेरौ प्रेषणात्, तथा दिव्यां देवद्युतिं-शरीराभरणादिह्रसेन, तथा दिव्यं देवानुभावं देवगतिह्रस्वताऽऽपादनेन, तथा **दिव्यं 'यानविमानं'** पालकनामकं जम्बूद्वीप-परिमाणन्यूनविस्तरा-ऽऽयामकरणेन **'प्रतिसंहरन् २'** सङ्क्षिपन् सङ्क्षिपन्निति । तृतीय**यावच्छब्दो** "जेणेव जम्बुद्दीवे दीवे जेणेव भरहे वासे" इति ग्राहकः ॥४४॥

ननु पूर्वत्रिसोपानप्रतिरूपकेणोत्तारः शक्रस्योक्तोऽपराभ्यां केषामुत्तारः ? इत्याह-

तए णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउरासीइ सामाणिअसाहस्सीओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति । अवसेसा देवा य देवीओ अ ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति ॥ ४५ ॥

"**तए णं सक्कस्स देविन्दस्स देवरण्णो**" इत्यादि व्यक्तम् ॥४५॥ अथ शक्रः किमकार्षीद् ? इत्याह -

तए णं से सक्के देविन्दे देवराया चउरासीए सामाणिअसाहस्सीहिं जाव[1] सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव[2] दुंदुभिणिग्घोसणाइयरवेणं जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छइ, २ त्ता आलोए चेव पणामं करेइ, २ त्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, २ त्ता करयल जाव[3] एवं वयासी-णमोत्थु ते रयणकुच्छिधारए एवं

१. द्र. २।९० ॥ २. द्र. ३।१२ ॥ ३. द्र. ३।५ ॥

जहा दिसाकुमारीओ जाव[१] धण्णासि पुण्णासि तं कयत्थाऽसि । अहण्णं देवाणुप्पिए ! सक्के णामं देविन्दे देवराया भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-महिमं करिस्सामि । तं णं तुब्भाहिं ण भाइयव्वंतिकट्टु ओसोवणिं दलयइ, २ त्ता तित्थयरपडिरूवगं विउव्वइ, २ त्ता तित्थयरमाउआए पासे ठवइ, २ त्ता पञ्च सक्के विउव्वइ, विउव्वित्ता एगे सक्के भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं गिण्हइ, एगे सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, दुवे सक्का उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेन्ति, एगे सक्के पुरओ वज्जपाणी पकड्ढइ[२] ॥ ४६ ॥

"**तए णं से सक्के देविन्दे देवराया चउरासीए**" इत्यादि, कण्ठ्यम् । **यावत्पद**-सङ्ग्राह्यं तु पूर्वसूत्रानुसारेण बोध्यम् । यदवादीत्तदाह-"**णमोत्थु ते**" इत्यादि, नमोऽस्तु तुभ्यं **रत्नकुक्षिधारिके ! एवंप्रकारं** सूत्रं **यथा दिक्कुमार्य** आहुस्तथाऽवादीदित्यर्थः । **यावच्छ**ब्दादिदं ग्राह्यम् "जगप्पईवदाईए चक्खुणो अ मुत्तस्स सव्वजगजीववच्छलस्स हिअकारगमग्गदेसिअवागिद्धिविभुप्पभुस्स जिणस्स णाणिस्स नायगस्स बुद्धस्स बोहगस्स सव्वलोगणाहस्स सव्वजगमङ्गलस्स णिम्ममस्स पवरकुलसमुप्पभवस्स जाईए खत्तियस्स जंसि लोगुत्तमस्स जणणी"ति । कियत्पर्यन्तम् ? इत्याह-**धन्याऽसि पुण्याऽसि त्वं कृतार्थाऽसि । अहं देवानुप्रिये ! शक्रो नाम देवेन्द्रो देवराजा भगवतस्तीर्थकरस्य जन्ममहिमां करिष्यामि । तेन युष्माभिर्न भेतव्यमितिकृत्वा अवस्वापिनीं 'ददाति'** सुते मेरुं नीते सुतविरहार्त्ता मा दुःखभागभूदिति दिव्यनिद्रया निद्राणां करोतीत्यर्थः । **दत्त्वा** च **तीर्थकर**स्य मेरुं नेतव्यस्य भगवतः '**प्रतिरूपकं**' जिनसदृशं रूपं **विकुर्वन्ति**, अस्मासु मेरुं गतेषु जन्ममहव्यापृतिव्यग्रेषु आसन्नदुष्टदेवतया कुतूहलादिनाऽपहृतनिद्रा सती मा इयं त्रस्ता भवत्विति भगवद्रूपान्निर्विशेषं रूपं विकुर्वतीत्यर्थः । **विकुर्व्य** च **तीर्थकरमातुः पार्श्वे स्थापयति, स्थापयित्वा** च **पञ्च शक्रान् विकुर्वति**, आत्मना पञ्चरूपो भवतीत्यर्थः । **विकुर्व्य** च तेषां पञ्चानां मध्ये **एकः शक्रो भगवन्तं तीर्थकरं** परमशुचिना सरसगोशीर्षचन्दनलिप्तेन धूप-वासितेनेति शेषः, '**करतलयोः**' ऊर्ध्वा-ऽधोव्यवस्थितयोः '**पुटं**' सम्पुटं शुक्तिकासम्पुट-मिवेत्यर्थः, तेन **गृह्णाति**, **एकः शक्रः पृष्ठत 'आतपत्रं'** छत्रं **धरति, द्वौ शक्रावुभयोः पार्श्वयोश्चामरोत्क्षेपं कुरुतः, एकः शक्रः पुरतो वज्रपाणिः** सन् '**प्रकर्षति**' निर्गमयति,

१. द्र. ५।५ ॥ २. पवड्ढति-त्रिहीवृ पुवृपा. ॥

आत्मानमिति शेषः, अग्रतः प्रवर्त्तत इत्यर्थः । अत्र च सत्यपि सामानिकादिदेवपरिवारे यदिन्द्रस्य स्वयमेव पञ्चरूपविकुर्वणम्, तत् त्रिजगद्गुरोः परिपूर्णसेवालिप्सुत्वेनेति ॥४६॥

अथ यथा शक्रो विवक्षितस्थानमाप्नोति तथा आह-

तए णं से सक्के देविन्दे देवराया अण्णेहिं बहूहिं भवणवइ-वाणमन्तर-जोइस-वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव[1] णाइएणं ताए उक्किट्ठाए जाव[2] वीईवयमाणे २ जेणेव मन्दरे पव्वए जेणेव पंडगवणे जेणेव अभिसेअसिला जेणेव अभिसेअसीहासणे तेणेव उवागच्छइ, २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ॥ ४७ ॥

"**तए णं से सक्के**" इत्यादि, **ततः स शक्रो देवेन्द्रो देवराजा अन्यैर्बहुभिर्भवनपति-वानमन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकैर्देवै-र्देवीभिश्च सार्द्धं सम्परिवृतः सर्वद्ध्या यावत्करणात्** "सव्वज्जुईए" इत्यादि पदसङ्ग्रहः पूर्वोक्तो ज्ञेयः, **तयोत्कृष्टया यावत्करणात्** "तुरिआए" इत्यादिग्रहः, **व्यतिव्रजन् २ यत्रैव मन्दरपर्वतो यत्रैव च पण्डकवनं यत्रैव चाभिषेकशिला यत्रैव चाभिषेकसिंहासनं तत्रैवोपागच्छति,** उपागत्य च **सिंहासनवरगतः पूर्वाभिमुखः सन्निषण्ण इति** । पालक-विमानं च गृहीतस्वामिकस्य स्वस्वामिनः पादचारित्वेन तमनुव्रजतां देवानामप्यनुपयोगित्वाद-भिषेकशिलायां यावदनुव्रजदभूदिति सम्भाव्यते ॥४७॥

अथेशानेन्द्रावसरः-

तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविन्दे देवराया सूलपाणी वसभवाहणे सुरिन्दे उत्तरड्ढलोगाहिवई अट्ठावीसविमाणावाससयसहस्साहिवई अरयंबरवत्थधरे एवं जहा[3] सक्के । इमं णाणत्तं-महाघोसा घण्टा, लहुपरक्कमो पायत्ताणियाहिवई पुप्फओ विमाणकारी, दक्खिणा निज्जाणभूमि उत्तरपुरत्थिमिल्लो रइकरपव्वओ मन्दरे समोसरिओ जाव पज्जुवासइ ॥ ४८ ॥

"**तेणं कालेण**"मित्यादि, **तस्मिन् 'काले'** सम्भवज्जिनजन्मके **तस्मिन् 'समये'** दिक्कुमारीकृत्यानन्तरीये, न तु शक्रागमनानन्तरीये, सर्वेषामिन्द्राणां जिनकल्याणकेषु युगपदेव

१. द्र. ३।१२ ॥ २. द्र. ३।२६ ॥ ३. द्र. ५।१८-४६ ॥

समागमनारम्भस्य जायमानत्वात् । यत्तु सूत्रे शक्रागमनानन्तरीयमीशानेन्द्रागमनमुक्तं तत्क्रमेणैव सूत्रबन्धस्य सम्भवात् । **ईशानो देवेन्द्रो देवराजा शूलपाणिर्वृषभवाहनः सुरेन्द्र उत्तरार्द्ध-लोकाधिपतिः**, मेरोरुत्तरतोऽस्यैवाधिपत्यात्, **अष्टाविंशतिविमानावाससशतसहस्राधिपतिः 'अरजांसि'** निर्मलानि **'अम्बरवस्त्राणि'** स्वच्छतयाऽऽकाशकल्पानि वसनानि धरति यः स तथा, **एवं यथा शक्रः** सौधर्मेन्द्रस्तथाऽयमपि । इदमत्र **'नानात्वं'** विशेषः **महाघोषा घण्टा लघुपराक्रमनामा पदात्यनीकाधिपतिः पुष्पकनामा विमानकारी दक्षिणा निर्याणभूमिः उत्तरपौरस्त्यो रतिकरपर्वतो मन्दरे 'समवसृतः'** समागतः, **यावत्पदात्** "भगवन्तं[1] तित्थयरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, २ त्ता वन्दइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता णच्चा-सण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे" इति, **पर्युपास्ते** ॥४८॥

अथातिदेशेनावशिष्टानां सनत्कुमारादीन्द्राणां वक्तव्यमाह–

एवं अवसिट्ठावि इंदा भाणिअव्वा जाव[2] अच्चुओ त्ति । इमं णाणत्तं–

चउरासीइ असीइ, बावत्तरि सत्तरी अ सट्ठी अ ।
पण्णा चत्तालीसा तीसा वीसा दस सहस्सा ॥१॥

एए सामाणिआणं,

बत्तीसट्ठावीसा बारसट्ठ चउरो सयसहस्सा ।
पण्णा चत्तालीसा छच्च सहस्सा सहस्सारे ॥१॥

आणय-पाणयकप्पे चत्तारि सयाऽऽरणच्चुए तिण्णि । एए विमाणाणं, इमे जाणविमाणकारी देवा, तंजहा–

पालय १ पुप्फय २, सोमणसे ३ सिरिवच्छे अ ४ णंदिआवत्ते ५ ।
कामगमे ६ पीइगमे[3] ७, मणोरमे ८ विमल ९ सव्वओभद्दे १०॥१॥A॥

"**एवं अवसिट्ठा वि**" इत्यादि, **'एवं'** सौधर्मेशानेन्द्ररीत्या **अवशिष्टा अपि इन्द्रा** वैमानिकानां **भणितव्याः, यावद् 'अच्युतेन्द्रः'** एकादश-द्वादशकल्पाधिपतिरिति । अत्र यो

---

१. तित्थयरं तित्थयरमायरं पुके ॥ २. द्र. स्थानाङ्गे १०।१४९ ॥ ३. स्थानाङ्गे ८।१०३, १०।१५० 'पीतिमणे' इति पाठो दृश्यते ॥

विशेषस्तमाह–**इदं 'नानात्वं'** भेदः–**चतुरशीतिः** सहस्राणि शक्रस्य, **अशीतिः** सहस्राणीशानेन्द्रस्य, **द्विसप्ततिः** सहस्राणि सनत्कुमारेन्द्रस्य, एवं **सप्ततिर्माहेन्द्रस्य 'चः'** समुच्चये, **षष्टिर्ब्रह्मेन्द्रस्य 'चः'** प्राग्वत्, **पञ्चाशल्लान्तकेन्द्रस्य, चत्वारिंशच्छुक्रेन्द्रस्य, त्रिंशत्सहस्रारेन्द्रस्य, विंशतिरानत**-प्राणतकल्पद्विकेन्द्रस्य, **दशारणा**-च्युतकल्पद्विकेन्द्रस्य, **'एते'** सङ्ख्याप्रकाराः **सामानिकानां** देवानां क्रमेण दशकल्पेन्द्र-सम्बन्धिनामिति । तेन "चउरासीए सामाणिअसाहस्सीण"मित्येतद्विशेषणस्थाने प्रतीन्द्रालापकं "असीइए सामाणिअसाहस्सीणमि"त्याद्यभिलापो ग्राह्यः । तथा सौधर्मेन्द्रकल्पे **द्वात्रिं-शल्ल**क्षाणि, ईशाने **अष्टाविंशतिर्ल**क्षाणि, एवं सनत्कुमारे **द्वादश**, माहेन्द्रे **अष्ट**, ब्रह्मलोके **चत्वारि**, तथा लान्तके **पञ्चाशत्स**हस्राणि, एवं शुक्रे **चत्वारिंशत्**सहस्राणि **'चः'** समुच्चये, **सहस्रारे षट् सहस्राणि आनतप्राणतकल्पयोर्द्वयोः** समुदितयो**श्चत्वारि शतानि आरणा-ऽच्युतयोस्त्रीणि** शतानि । **एते विमानानां** सङ्ख्याप्रकाराः । **यानविमानविकुर्वकाश्च देवा 'इमे'** वक्ष्यमाणाः शक्रादिक्रमेण, **तद्यथा–पालकः १ पुष्पकः २ सौमनसः ३ श्रीवत्सः** ४ 'चः' समुच्चये **नन्दावर्त्तः ५ कामगमः ६ प्रीतिगमः ७ मनोरमः ८ विमलः ९ सर्वतोभद्र** १० इति ॥४९-A॥

अथ दशसु कल्पेन्द्रेषु केनचित्प्रकारेण पञ्चानां २ साम्यमाह–

सोहम्मगाणं सणंकुमारगाणं बंभलोअगाणं महासुक्कयाणं पाणयगाणं इंदाणं सुघोसा घण्टा, हरिणेगमेसी पायत्ताणीआहिवई, उत्तरिल्ला णिज्जाणभूमी, दाहिणपुरत्थिमिल्ले रइकरगपव्वए । ईसाणगाणं माहिंद-लंतग-सहस्सार-अच्चुअगाण य इंदाण महाघोसा घण्टा लहुपरक्कमो पायत्ताणीआहिवई, दक्खिणिल्ले णिज्जाणमग्गे, उत्तरपुरत्थिमिल्ले रइकरग-पव्वए । परिसाओ णं जहा [1]जीवाभिगमे आयरक्खा सामाणिअचउग्गुणा सव्वेसिं, जाणविमाणा सव्वेसिं जोअणसयसहस्सवित्थिण्णा, उच्चत्तेणं सविमाणप्पमाणा महिंदज्झया सव्वेसिं जोअणसाहस्सिआ, सक्कवज्जा मन्दरे समोअरंति [2]जाव पज्जुवासंति ॥४९-B॥

'सौधर्मकानां' सौधर्मदेवलोकोत्पन्नानां एवमग्रेऽपि ज्ञेयम्, तथा **सनत्कुमारकाणां ब्रह्मलोककानां महाशुक्रकानां प्राणतकानामिन्द्राणाम्,** बहुवचनं सर्वकालवर्त्तीन्द्रापेक्षया,

१. द्र. जीवा. ३।१०४०-१०५५ ॥ २. द्र. ५।५८ ॥

सुघोषा घण्टा हरिनेगमेषी पदात्यनीकाधिपतिः औत्तराहा निर्याणभूमिः दक्षिणपौरस्त्यो रतिकरपर्वतः । तथा **ईशानकानां माहेन्द्र-लान्तक-सहस्त्रारा-ऽच्युतकानां च इन्द्राणां महाघोषा घण्टा लघुपराक्रमः पदात्यनीकाधिपतिः दक्षिणो निर्याणमार्गः उत्तरपौरस्त्यो रतिकरपर्वतः**[१]**, णमिति** वाक्यालङ्कारे । **'पर्षदः'** अभ्यन्तर-मध्य-बाह्यरूपा यस्य यावद्देव-देवीप्रमाणा भवन्ति, तस्य तावत्प्रमाणा **यथा जीवाभिगमे** तथा ज्ञेयाः । ताश्चैवम् शक्रस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि १२ सहस्राणि, देवानां मध्यमायां १४ सहस्राणि, बाह्यायां १६ सहस्राणि, ईशानेन्द्रस्याद्यायां १० सहस्राणि, द्वितीयायां १२ सहस्राणि, तृतीयायां १४ सहस्राणि, सनत्कुमारेन्द्रस्याद्यायां ८ सहस्राणि, द्वितीयस्यां १० सहस्राणि, तृतीयायां १२ सहस्राणि, एवं माहेन्द्रस्य क्रमेण ६ सहस्राणि, ८ सहस्राणि, १० सहस्राणि, ब्रह्मेन्द्रस्य ४-६-८ सहस्राणि, लान्तकेन्द्रस्य २-४-६ संहस्राणि, शुक्रेन्द्रस्य १-२-४ सहस्राणि, सहस्रारेन्द्रस्य ५ शतानि, १० शतानि, २० शतानि, आनत-प्राणतेन्द्रस्य २ शते सार्द्धे, ५ शतानि, १० शतानि, आरणा-ऽच्युतेन्द्रस्य १ शतं, २ शते सार्द्धे, ५ शतानि, इमाश्च तत्तदिन्द्रवर्णके 'तिण्हं परिसाण'मित्याद्यालापके यथासङ्ख्यं भाव्याः । शक्रेशानयोर्देवीपर्षत्त्रयं **जीवाभिगमादिषूक्त**मपि **श्रीमलयगिरिपादैः स्वावश्यकवृत्तौ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति**मध्यगतोऽयमितिलिख्यमानजिनजन्माभिषेकमहग्रन्थे नोक्त-मिति मया तदनुयायित्वेन नालेखि । **'आत्मरक्षाः'** अङ्गरक्षका देवाः सर्वेषामिन्द्राणां स्वस्व**सामानिकेभ्यश्चतुर्गुणाः** । एते चेत्थं वर्णके अभिलाप्याः "चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं, चउण्हं असीईणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं, चउण्हं बावत्तरीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं आहेवच्चं" इत्यादि । तथा **यानविमानानि सर्वेषां योजनशतसहस्रविस्तीर्णानि उच्चत्वेन 'स्वविमानप्रमाणानि'** इन्द्रस्य स्वस्वविमानं सौधर्मावतंसकादि तस्यैव प्रमाणं पञ्चशतयोजनादिकं येषां तानि तथा । अस्यायमर्थः- आद्यकल्पद्विकविमानानामुच्चत्वं पञ्चयोजनशतानि, द्वितीये द्विके षट् योजनशतानि, तथा तृतीये द्विके सप्त, तथा चतुर्थे द्विकेऽष्टौ, ततोऽग्रेतने कल्पचतुष्के विमानानामुच्चत्वं नव योजनशतानि । तथा **सर्वेषां महेन्द्रध्वजा 'योजनसाहस्रिकाः'** सहस्रयोजनविस्तीर्णाः, **शक्रवर्ज्जा मन्दरे समवसरन्ति यावत्पर्युपासते**, यावत्पदसंग्रहः प्राग्वत् ॥४९-B॥

---

१. रतिकरपर्वतो विमानह्रस्वीकरणस्थानम् - इति पुण्यवृत्तौ ॥

अथ भवनवासिनः-

तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिन्दे असुरराया चमरचञ्चाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि चउसट्ठीए सामाणि[१]असाहस्सीहिं तायत्तीसाए तायत्तीसेहिं, चउहिं लोगपालेहिं, पञ्चहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं, तिहिं परिसाहिं, सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं, चउहिं चउसट्ठीहिं आयरक्खसाहस्सीहिं अण्णेहि अ जहा[२] सक्के। णवरं इमं णाणत्तं-दुमो पायत्ताणीआहिवई, ओघस्सरा घण्टा, विमाणं पण्णासं जोअणसहस्साइं, महिन्दज्झओ पञ्चजोअणसयाइं, विमाणकारी आभिओगिओ देवो, अवसिट्ठं तं चेव जाव मन्दरे समोसरइ पज्जुवासइ ॥ ५० ॥

"**तेणं कालेणं तेणं समएण**"मित्यादि प्राग्वत्। **चमरोऽसुरेन्द्रोऽसुरराजा चमरचञ्चायां राजधान्यां सभायां सुधर्मायां चमरे सिंहासने चतुःषष्ट्या सामानिकसहस्रैः, त्रयस्त्रिंशता त्रायस्त्रिंशैः, चतुर्भिः लोकपालैः, पञ्चभिरग्रमहिषीभिः सपरिवाराभिः, तिसृभिः पर्षद्भिः, सप्तभिरनीकैः, सप्तभिरनीकाधिपतिभिः, चतसृभिः चतुःषष्टिभिरात्मरक्षकसहस्रैः अन्यैश्चे**त्यालापकांशेन सम्पूर्ण आलापकस्त्वयं बोध्यः-"चमरचञ्चारायहाणीवत्थव्वेहिं बहूहिं असुरकुमारेहिं देवेहि अ देवीहि अ"त्ति। **यथा शक्र**स्तथाऽयमप्यवगम्यः। **नवरमिदं 'नानात्वं'** भेदः, **द्रुमः पदात्यनीकाधिपतिः ओघस्वरा घण्टा** यान**विमानं पञ्चाशद् योजनसहस्राणि** विस्तारा-ऽऽयामं **महेन्द्रध्वजः पञ्चयोजनशतान्युच्चः विमानकृदाभियोगिको देवो**, न पुनर्वैमानिकेन्द्राणां पालकादिरिव नियतनामकः, **अवशिष्टं 'तदेव'** शक्राधिकारोक्तं वाच्यम्। नवरं दक्षिणपश्चिमो रतिकरपर्वतः। कियद्दूरम्? इत्याह-**यावन्मन्दरे समवसरति पर्युपास्त इति** ॥५०॥

---

१. "सामाणियसाहस्सीहिं इत्यादिपदेषु षष्ठीविभक्तेर्बहुवचनमपेक्षितमस्ति, यथा शक्रप्रकरणे (५।१९) सामाणियसाहस्सीणं इत्यादिपदानि दृश्यन्ते, अन्यथा 'जहा सक्के' इति समर्पणस्य सार्थकता न स्यात्। तृतीयान्तपदानि घण्टावादनान्तरं प्रयाणसमये निर्विष्टानि सन्ति, द्रष्टव्यं ५।४४ सूत्रम्।" इति V पृ. ५४९ टि. ११ ॥ २. द्र. ५।१९-४६ ॥

अथ बलीन्द्रः-

तेणं कालेणं तेणं समएणं बली असुरिन्दे असुरराया एवमेव । णवरं सट्ठी सामाणीअसाहस्सीओ, चउगुणा आयरक्खा, महादुमो पायत्ताणी-आहिवई, महाओहस्सरा घण्टा, सेसं तं चेव[1] परिसाओ जहा[2] जीवाभिगमे ॥ ५१ ॥

"**तेणं कालेण**"मित्यादि, **तस्मिन् काले तस्मिन् समये बलिरसुरेन्द्रो-ऽसुरराजा 'एवमेवेति'** चमर इव । **नवरं षष्टिः सामानिकसहस्राणि चतुर्गुणा आत्मरक्षाः, सामानिकसङ्ख्यातश्चतुर्गुणसङ्ख्याका** आत्मरक्षका इत्यर्थः, **महाद्रुमः पदात्यनीकाधि-पतिः महौघस्वरा घण्टा** "व्याख्यातोऽधिकं प्रतिपद्यत" [ ] इति चमरचञ्चास्थाने बलिचञ्चा दाक्षिणात्यो निर्याणमार्गः उत्तरपश्चिमो रतिकरपर्वत इति । '**शेषं**' यानविमान-विस्तारादिकं '**तदेव**' चमरचञ्चाधिकारोक्तमेव, **पर्षदो यथा जीवाभिगमे** ।

इदं च सूत्रं देहलीप्रदीपन्यायेन सम्बन्धनीयम्, यथा देहलीस्थो दीपोऽन्तःस्थ-देहलीस्थ-बाह्यस्थवस्तुप्रकाशनोपयोगी, तथेदमप्युक्ते चमराधिकारे उच्यमाने बलीन्द्राधिकारे वक्ष्य-माणेष्वष्टसु भवनपतिषूपयोगी भवति, त्रिष्वप्यधिकारेषु पर्षदो वाच्या इत्यर्थः । तथाहि-चमरस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि २४ सहस्राणि देवानां, मध्यमायां २८ सहस्राणि, बाह्यायां च ३२ सहस्राणि, तथा बलीन्द्रस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि २० सहस्राणि, मध्यमायां २४ सहस्राणि, बाह्यायां २८ सहस्राणि, तथा धरणेन्द्रस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि ६० सहस्राणि, मध्यमायां ७० सहस्राणि, बाह्यायां ८० सहस्राणि, भूतानन्दस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि ५० सहस्राणि, मध्यमायां ६० सहस्राणि, बाह्यायां ७० सहस्राणि, अवशिष्टानां भवनवासिषोडशेन्द्राणां मध्ये ये वेणुदेवादयो दक्षिणश्रेणिपतयस्तेषां पर्षत्त्रयं धरणेन्द्रस्येव उत्तरश्रेण्यधिपानां वेणुदालिप्रमुखाणां भूतानन्दस्येव ज्ञेयम् ॥५१॥

अथ धरणः-

तेणं कालेणं तेणं समएणं धरणे तहेव । णाणत्तं-छ सामाणिअसाहस्सीओ, छ अग्गमहिसीओ, चउग्गुणा आयरक्खा, मेघस्सरा घण्टा, भद्दसेणो पायत्ताणीयाहिवई, विमाणं पणवीसं जोअणसहस्साइं, महिंदज्झओ अड्ढाइज्जाइं जोअणसयाइं, एवमसुरिन्दवज्जिआणं भवणवासिइंदाणं ।

१. द्र. ५।५० ॥ २. द्र. जीवा. ३।२३५-२५० ॥

णवरं असुराणं ओघस्सरा घण्टा, णागाणं मेघस्सरा, सुवण्णाणं हंसस्सरा, विज्जूणं कोंचस्सरा, अग्गीणं मंजुस्सरा, दिसाणं मंजुघोसा, उदहीणं सुस्सरा, दीवाणं महुरस्सरा, वाऊणं णंदिस्सरा, थणिआणिं णंदिघोसा।

चउसट्ठी सट्ठी खलु छच्च सहस्सा उ असुरवज्जाणं ।
सामाणिआ उ एए चउग्गुणा आयरक्खा उ ॥१॥

दाहिणिल्लाणं पायत्ताणीआहिवई भद्दसेणो, उत्तरिल्लाणं दक्खो ॥ ५२ ॥

"**तेणं कालेण**"मित्यादि, **तस्मिन् काले तस्मिन् समये धरणः 'तथैव'** चमरवत् । नवरमिदं **'नानात्वं'** भेदः-**षट् सामानिकसहस्राणाम्, षडग्रमहिष्यः, चतुर्गुणा आत्मरक्षकाः, मेघस्वरा घण्टा, भद्रसेनः पदात्यनीकाधिपतिः, विमानं पञ्चविंशति-योजनसहस्राणि, महेन्द्रध्वजोऽर्द्धतृतीयानि योजनशतानि** । अथावशिष्टभवनवासीन्द्रवक्त-व्यतामस्यातिदेशेनाह-"**एवमसुरिन्द**" इत्यादि, **'एवं'** धरणेन्द्रन्यायेन **'असुरेन्द्रौ'** चमर-बलीन्द्रौ ताभ्यां **वर्जितानां 'भवनवासीन्द्राणां'** भूतानन्दादीनां वक्तव्यं बोध्यम् । **नवरम् 'असुराणाम्'** असुरकुमाराणाम् **ओघस्वरा घण्टा 'नागानां'** नागकुमाराणां **मेघस्वरा घण्टा, 'सुपर्णानां'** गरुडकुमाराणां **हंसस्वरा, विद्युत्कुमाराणां क्रौञ्चस्वरा, अग्निकुमाराणां मञ्जुस्वरा, दिक्कुमाराणां मञ्जुघोषा, उदधिकुमाराणां सुस्वरा, द्वीपकुमाराणां मधुर-स्वरा, वायुकुमाराणां नन्दिस्वरा, स्तनितकुमाराणां नन्दिघोषा** । एषामेवोक्तानुक्त-सामानिकसङ्ग्रहार्थं गाथामाह-**चतुष्षष्टिश्चमरेन्द्रस्य षष्टिर्बलीन्द्रस्य 'खलुः'** निश्चये **षट् च सहस्राणि 'असुरवर्जानां'** धरणेन्द्रादीनामष्टादशभवनवासीन्द्राणां **सामानिकाः 'चः'** समुच्चये तथा पुनरर्थे भिन्नक्रमे तेन **'एते'** सामानिका**श्चतुर्गुणाः पुनरात्मरक्षका भवन्ति** । 'दाक्षिणात्यानां' चमरेन्द्रवर्जितानां भवनपतीन्द्राणां **भद्रसेनः पदात्यनीकाधिपतिः, 'औत्तराहाणां'** बलिवर्जितानां **दक्षो** नाम्ना पदातिपतिः । यच्चात्र घण्टादिकं पूर्वं स्वस्वसूत्रे उक्तमप्युक्तं तत्समुदायवाक्ये सर्व-सङ्ग्रहार्थमिति ॥५२॥

अथ व्यन्तरेन्द्र-ज्योतिष्केन्द्राः-

वाणमन्तर-जोइसिआ णेअव्वा, एवं चेव । णवरं चत्तारि सामाणिअ-साहस्सीओ, चत्तारि अग्गमहिसीओ, सोलस आयरक्खसहस्सा, विमाणा सहस्सं, महिन्दज्झया पणवीसं जोअणसयं, घण्टा दाहिणाणं मंजुस्सरा,

उत्तराणं मंजुघोसा, पायत्ताणीआहिवई विमाणकारी अ आभिओगा देवा, जोइसिआणं सुस्सरा सुस्सरणिग्घोसा घण्टाओ, मन्दरे समोसरणं जाव पज्जुवासंति त्ति ॥ ५३ ॥

"**वाणमंतर**" इत्यादि, **व्यन्तरेन्द्रा ज्योतिष्केन्द्राश्च 'नेतव्याः'** शिष्यबुद्धिं प्रापणीयाः **एवमेव** यथा भवनवासिनस्तथैवेत्यर्थः । **नवरं चत्वारि सामानिकानां सहस्राणि चतस्रोऽग्रमहिष्यः षोडश आत्मरक्षकसहस्राणि विमानानि योजनसहस्रमायाम-**विष्कम्भाभ्यां **महेन्द्रध्वजः पञ्चविंशत्य**धिक**योजनशतं घण्टाश्च** **दाक्षिणात्यानां मञ्जुस्वरा, औत्तराहाणां मञ्जुघोषाः, पदात्यनीकाधिपतयो विमान-कारिणश्च आभियोगिका देवाः** । कोऽर्थः ? स्वाम्यादिष्टा हि आभियोगिका देवा घण्टा-वादनादिकर्मणि विमानविकुर्वणे च प्रवर्त्तन्ते, न पुनर्हरिनैगमेषिवत्पालकवच्च निर्दिष्टनामका इति । "**व्याख्या विशेषप्रतिपादिनी**" [ ] ति सूत्रेऽनुक्तमपीदं बोध्यम्-सर्वेषाम-भ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानां ८ सहस्राणि, मध्यमायां १० सहस्राणि, बाह्यायां १२ सहस्राणीति । एतेषामुल्लेख-स्त्वयम्-"तेणं कालेणं तेणं समएणं काले णामं पिसाइंदे पिसायराया चउहिं सामाणिअसाहस्सीहिं चउहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणीएहिं सत्तहिं अणीआहिवइहिं सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं" । "तं चेव, एवं सव्वेवी"ति, व्यन्तरा इव ज्योतिष्का अपि ज्ञेयाः, तेन सामानिकादिसङ्ख्यासु न विशेषः । घण्टासु चायं विशेषः-चन्द्राणां **सुस्वरा** सूर्याणां **सुस्वरनिर्घोषा**, सर्वेषां च **मन्दरे समवरणं** वाच्यं **यावत्पर्युपासते** । यावच्छब्दग्राह्यं तु प्राग्दर्शितं ततो ज्ञेयम्, एतदुल्लेखस्त्वयम्-"तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदा जोइसिंदा जोइसरायाणो पत्तेअं पत्तेअं चउहिं सामाणिअसाहस्सीहिं चउहिं अग्गमहिसीहिं तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणिआहिवइहिं सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं, एवं जहा वाणमंतरा एवं सूरा वि" । नन्वत्रोल्लेखे चन्द्राः सूर्या इत्यत्र बहुवचनं किमर्थम् ?, प्रस्तुतकर्मणि एकस्यैव सूर्यस्य चन्द्रस्य चाधिकृतत्वात्, अन्यथेन्द्राणां चतुःषष्टिसङ्ख्याकत्वव्याघातात् ?, उच्यते, जिनकल्याणकादिषु दश कल्पेन्द्रा विंशतिर्भवनवासीन्द्रा द्वात्रिंशद्व्यन्तरेन्द्रा एते व्यक्तितः, चन्द्र-सूर्यौ तु जात्यपेक्षया तेन चन्द्राः सूर्या असङ्ख्याता अपि समायान्ति । के नाम न कामयन्ते भुवनभट्टारकाणां दर्शनं स्वदर्शनं पुपूषवः ?, यदुक्तं **शान्तिचरित्रे श्रीमुनिदेवसूरिकृते** श्रीशान्तिदेवजन्ममहवर्णने-

"ज्योतिष्कनायकौ पुष्पदन्तौ सङ्ख्यातिगाविति ।
हेमाद्रिमाद्रियन्ते स्म, चतुःषष्टिः सुरेश्वराः ॥१॥" [ ] ॥५३॥

अथामीषां प्रस्तुतकर्मणीतिवक्तव्यतामाह-

तए णं से अच्चुए देविन्दे देवराया महं देवाहिवे आभिओगे देवे सद्दावेइ, २ त्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! महत्थं महग्घं महारिहं विउलं तित्थयराभिसेअं उवट्ठवेह ॥ ५४ ॥

"**तए ण**"मित्यादि, **ततः सः 'अच्युतः'** यः प्रागभिहितो **देवेन्द्रो देवराजा महान् 'देवाधिपः'** महेन्द्रः, चतुःषष्टावपि इन्द्रेषु लब्धप्रतिष्ठोऽत एवास्य प्रथमोऽभिषेक इति । **आभियोग्यान् देवान् शब्दयति, शब्दयित्वा च एवमवादीत्** । यदवादीत्तदाह-**क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! महार्थं [महार्घं] महार्हं विपुलं तीर्थकराभिषेकमुपस्थापयत** । अत्र महार्थादिपदानि प्राग्भरतराज्याधिकारे वर्णितानि, वाक्ययोजना तु सुलभा ॥५४॥

अथ यथा ते चक्रुस्तथाऽऽह-

तए णं ते आभिओगा देवा हट्ठतुट्ठ जाव[१] पडिसुणित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमन्ति, २ त्ता वेउव्विअसमुग्घाएणं[२] जाव समोहणित्ता अट्ठसहस्सं सोवण्णिअकलसाणं एवं रुप्पमयाणं मणिमयाणं सुवण्णरुप्पमयाणं सुवण्णमणिमयाणं रुप्पमणिमयाणं सुवण्णरुप्पमणिमयाणं अट्ठसहस्सं भोमिज्जाणं अट्ठसहस्सं वन्दणकलसाणं एवं भिंगाराणं आयंसाणं थालाणं पाईणं सुपईट्ठाणं चित्ताणं[३] रयणकरंडगाणं वायकरगाणं[४] पुप्फचंगेरीणं, एवं जहा[५] सूरिआभस्स सव्वचंगेरीओ सव्वपडलगाइं विसेसिअतराइं भाणिअव्वाइं । सीहासण-छत्त-चामर-तेल्लसमुग्गा जाव सरिसवसमुग्गा तालिअंटा जाव अट्ठसहस्सं कडुच्छुगाणं विउव्वंति, विउव्वित्ता साहाविए विउव्विए अ कलसे जाव कडुच्छुए अ गिण्हित्ता जेणेव खीरोदए समुद्दे तेणेव आगम्म खीरोदगं गिण्हन्ति, २ त्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं पउमाइं जाव सहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हंति । एवं पुक्खरोदाओ जाव भरहेरवयाणं मागहाइतित्थाणं उदगं मट्टिअं च गिण्हन्ति, २ त्ता एवं गंगाईणं

१. द्र. ५।५ ॥ २. द्र. ३।८ ॥ ३. चित्ताणं-J12 अकखत्रिबस आव.चू. पृ. १४७ नास्ति ॥
४. वायकरगाणं-अकखत्रिबस आव.चू. पृ. १४७ नास्ति ॥ ५. द्र. राजप्र. सू. २७९ ॥

महाणईणं जाव चुल्लहिमवन्ताओ सव्वतुअरे सव्वपुप्फे सव्वगन्धे सव्वमल्ले जाव सव्वोसहीओ सिद्धत्थए य गिण्हन्ति, २ त्ता पउमद्दहाओ दहोअगं उप्पलादीणि अ । एवं सव्वकुलपव्वएसु वट्टवेअड्ढेसु सव्वमहद्दहेसु सव्ववासेसु सव्वचक्कवट्टिविजएसु वक्खारपव्वएसु अंतरणईसु विभासिज्जा जाव उत्तरकुरुसु जाव सुदंसणभद्दसालवणे सव्वतुअरे जाव सिद्धत्थए अ गिण्हन्ति । एवं णन्दणवणाओ सव्वतुअरे जाव सिद्धत्थए अ सरसं च गोसीसचन्दणं दिव्वं च सुमणदामं गेण्हन्ति । एवं सोमणस-पंडगवणाओ अ सव्वतुअरे जाव सुमणदामं दद्दरमलयसुगन्धे य गिण्हन्ति, २ त्ता एगओ मिलाएंति[1], २ त्ता जेणेव सामी तेणेव उवागच्छन्ति, २ त्ता तं महत्थं जाव तित्थयराभिसेअं उवट्ठवेंति ॥ ५५ ॥

"तए ण"मित्यादि, **ततस्ते आभियोगिका देवा हृष्टतुष्ट-यावत् प्रतिश्रुत्य उत्तरपौरस्त्यं दिग्भागमपक्रामन्ति, अपक्रम्य च वैक्रियसमुद्घातेन यावत्पदात्** "**समोहणंति**"त्ति ग्राह्यम्, **समवहत्य च 'अष्टसहस्रम्'** अष्टोत्तरं सहस्रं **सौवर्णिककलशानां विकुर्वन्तीति** सम्बन्धः । **एवं अष्टसहस्रं रूप्यमयानाम् मणिमयानां सुवर्णरूप्यमयानां सुवर्णमणिमयानां रूप्यमणिमयानां सुवर्णरूप्यमणिमयानाम् अष्टसहस्रं 'भौमेयकानां'** मृन्मयानामित्यर्थः, **अष्टसहस्रं 'वन्दनकलशानां'** मङ्गल्यघटानाम्, **एवं भृङ्गाराणाम् आदर्शानां स्थालीनां पात्रीणां सुप्रतिष्ठकानां चित्राणां रत्नकरण्डकानां 'वातकरकाणां'** बहिश्चित्रितानां मध्ये जलशून्यानां करकाणां **पुष्पचङ्गेरीणामष्टसहस्रम्, 'एवम्'** उक्तन्यायेन **यथा सूर्याभस्य** राजप्रश्नीये इन्द्राभिषेकसमये **सर्वचङ्गेर्य**स्तथाऽत्र **वाच्याः** "अट्ठसहस्सं आभरणचङ्गेरीणं लोमहत्थचङ्गेरीण"मिति । तथा **सर्वपटलकानि** वाच्यानि । तथाहि-अष्टसहस्रं पुष्पपटलकानां यावल्लोमहस्तकपटलकानाम्[2] । इमानि वस्तूनि सूर्याभाभिषेकोपयोगवस्तुभिः सङ्ख्ययैव तुल्यानि, न तु गुणेनेत्याह-'**विशेषिततराणि**' अतिविशिष्टानि '**भणितव्यानि**' वाच्यानि, प्रथमकल्पीयदेवविकुर्वणातोऽच्युतकल्पदेवविकुर्वणाया अधिकतरत्वात् । तथा **सिंहासनच्छत्र-चामर-तिलसमुद्गकयावत्सर्षपसमुद्गकः**, अत्र यावत्पदात् कोष्ठसमुद्गकादयो वाच्याः, एषां च व्याख्या प्राग्वत् । **तालवृन्तानि यावत्**करणात् व्यजनानीति ग्रहः, तत्र व्यजनानीति

---

१. मिलंति-मु. ॥ २. पुके । यावल्लोमहस्तकपटलकानां मु. नास्ति ॥

सामान्यतो वातोपकरणानि तालवृन्तानि तद्विशेषरूपाणि, एषामष्टसहस्त्र**मष्ट-सहस्त्र**मिति। अष्टसहस्त्रं **धूपकडुच्छुकानामिति**। अथ विकुर्वणायाः सार्थकत्वमाह-"**विउव्वित्ता**" इत्यादि, **विकुर्वित्वा** च '**स्वाभाविकान्**' देवलोके दे[१]वलोकवत् स्वयंसिद्धान् शाश्वतान् '**वैक्रियांश्च**' अनन्तरोक्तान् सौवर्णादिकान् यावच्छब्दात् भृङ्गारादयो व्यजनान्ता ग्राह्याः, **धूपकडुच्छुकांश्च** सूत्रे साक्षादुपात्तान्, **गृहीत्वा च यत्रैव क्षीरोदः समुद्रस्तत्रैवागत्य '**क्षीरोदकं**'** क्षीररूपमुदकं **गृह्णन्ति**। ननु मेरुतोऽभिषेकाङ्गभूतवस्तुग्रहणाय चलन्तस्ते देवास्तद्ग्रहणोपयोगि वस्तुजातं कलश-भृङ्गारादिकं गृह्णन्तु, परं तदनुपयोगि यावच्छब्दोदर-प्रविष्टं सिंहासन-चामरादिकं तैलसमुद्गकादिकं च कथं गृह्णन्ति ? इति चेत्, उच्यते, विकुर्वणासूत्रस्यातिदेशेन ग्रहणसूत्रस्यातिदिष्टत्वादेतत्सूत्रपाठस्यान्तर्गतत्वेऽपि ये ग्रहणोचितास्ते एव गृहीता इति बोध्यम्, योग्यतावशादेवार्थप्रतिपत्तेः, यच्च धूपकडुच्छुकानां तत्र ग्रहणं तत्कलश-भृङ्गारादि-देवहस्तधूपनार्थमिति। अन्यथा सूत्रे साक्षादुपदर्शितस्य धूपकडुच्छुकानां ग्रहणस्य नैरर्थक्यापत्तेः। अथ प्रस्तुतसूत्रम्-**गृहीत्वा** च **यानि** '**तत्र**' क्षीरोदे **उत्पलानि पद्मानि यावत्सहस्त्रपत्राणि तानि गृह्णन्ति, यावत्**पदात् कुमुदादिग्रहः। '**एवम्**' अनया रीत्या '**पुष्करोदात्**' तृतीयसमुद्रात् उदकादिकं गृह्णन्ति, यत्तु क्षीरोदाद्विनिवृत्तैर्वारुणीवरमन्तरा मुक्त्वा पुष्करोदे जलं गृहीतम्, तद्वारुणीवरवारिणोऽग्राह्यत्वादिति सम्भाव्यते। **यावच्छब्दात्** समयखित्ते इति ग्राह्यम्, तेन समयक्षेत्रे-मनुष्यक्षेत्रे '**भरतैरावतयोः**' प्रस्तावात् पुष्करवरद्वी-पार्द्धसत्कयोः **मागधादीनां तीर्थानामुदकं मृत्तिकां च गृह्णन्ति**। '**एव**'मिति समयक्षेत्र-स्थपुष्करवरद्वीपार्द्धसत्कानां **गङ्गादीनां महानदीनाम्** आदिशब्दात् सर्वमहानदीग्रहः, **यावत्**-पदात् उदकमुभयतटमृत्तिकां गृह्णन्ति, **क्षुद्रहिमवतः सर्वान्** '**तुवरान्**' कषायद्रव्याणि आमलकादीनि '**सर्वाणि**' जातिभेदेन **पुष्पाणि सर्वान्** '**गन्धान्**' वासादीन् **सर्वाणि** '**माल्यानि**' ग्रथितादिभेदभिन्नानि **सर्वा** '**महौषधीः**' राजहंसीप्रमुखाः '**सिद्धार्थकांश्च**' सर्षपान् **गृह्णन्ति, २ त्वा** च **पद्मद्रहाद् द्रहोदकमुत्पलादीनि** च गृह्णन्ति। '**एवं**' क्षुद्रहिम-वन्न्यायेन सर्वक्षेत्रव्यवस्थाकारित्वेन कुलकल्पाः पर्वताः, मध्यपदलोपे '**कुलपर्वताः**' हिमाचलादयस्तेषु **वृत्तवैताढ्येषु** '**सर्वमहाद्रहेषु**' पद्मद्रहादिषु '**सर्ववर्षेषु**' भरतादिषु '**सर्वचक्रवर्त्तिविजयेषु**' कच्छादिषु '**वक्षस्कारपर्वतेषु**' गजदन्ताकृतिषु माल्यवदादिषु सरलाकृतिषु च चित्रकूटादिषु, तथा '**अन्तरनदीषु**' ग्राहावत्यादिषु '**विभाषेत**' वदेत्, पर्वतेषु तु तुवरादीनां द्रहेषु उत्पलादीनां कर्मक्षेत्रेषु मागधादितीर्थोदकमृदां नदीषूदकोभयतटमृदां ग्रहणं

१. देवलोकवत्-के नास्ति ॥

वक्तव्यमित्यर्थः । **यावत्पदात्** देवकुरुपरिग्रहस्तेन कुरुद्वये चित्र-विचित्रगिरि-यमकगिरि-काञ्चनगिरि-ह्रददशकेषु यथासम्भवं वस्तुजातं गृह्णन्ति, **यावत्पदात्** पुष्करवरद्वीपार्द्धस्य →[१]पूर्वा-ऽपरार्द्धयो-र्भरतादिस्थानेषु वस्तुग्रहो वाच्यः, ततो जम्बूद्वीपेऽपि तद्ग्रहस्तथैव वाच्यः । कियत्पर्यन्तम् ? इत्याह-'**सुदर्शने**'← पूर्वार्धमेरौ **भद्रशालवने** नन्दनवने सौमनसवने पण्डकवने च **सर्वतुवरान् गृह्णन्ति,** तथा तस्यैवापरार्धे अनेनैव क्रमेण वस्तुजातं गृह्णन्ति, ततो धातकीखण्ड-जम्बूद्वीपगतो मेरुस्तस्य भद्रशालवने सर्वतुवरान् यावत् सिद्धार्थकांश्च गृह्णन्ति । **एवमस्यैव नन्दनवनात् सर्वतुवरान् यावत्सिद्धार्थकांश्च सरसं च गोशीर्षचन्दनं दिव्यं च 'सुमनोदाम'** ग्रथितपुष्पाणि **गृह्णन्ति । एवं सौमनसवनात्** सूत्रपाठे पञ्चमीलोपः प्राकृतत्वात् **पण्डकवनाच्च सर्वतुबरान् यावत् सुमनोदामदर्दर-मलयसुगन्धिकान् गन्धान्,** [२]दर्दर-मलयौ चन्दनोत्पत्तिखानिभूतौ पर्वतौ तेन तदुद्भवं चन्दनमपि "**तात्स्थ्यात् तद्व्यपदेश**" इति न्यायेन दर्दर-मलयशब्दाभ्याममभिधीयते, ततो दर्दरमलयनामके चन्दने तयोः '**सुगन्धः**' परमगन्धो यत्र तान् दर्दरमलयसुगन्धिकान् '**गन्धान्**' वासान् **गृह्णन्ति, गृहीत्वा** च इतस्ततो विप्रकीर्णा आभियोग्यदेवा **एकत्र मिलन्ति, मिलित्वा** च **यत्रैव स्वामी तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य** च तं **महार्थं यावच्छ**ब्दात् महार्घं महार्हं विपुलमिति पदत्रयी **तीर्थकराभिषेकं** तीर्थकराभिषेकयोग्यं क्षीरोदकाद्युपस्करम् '**उपस्थापयन्ति**' उपनयन्ति, अच्युतेन्द्रस्य समीपस्थितं कुर्वन्तीत्यर्थः ॥५५॥

अथाच्युतेन्द्रो यदकरोत्तदाह-

तए णं से अच्चुए देविन्दे दसहिं सामाणिअसाहस्सीहिं, तायत्तीसाए तायत्तीसएहिं चउहिं लोगपालेहिं, तिहिं परिसाहिं, सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणिआहिवईहिं, चत्तालीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीहिं सद्धिं [३]संपरिवुडे तेहिं साभाविएहिं विउव्विएहि अ वरकमलपइट्ठाणेहिं सुरभिवरवारिपडिपुण्णेहिं चन्दणकयचच्चाएहिं आविद्धकण्ठेगुणेहिं पउमुप्पलपिहाणेहिं करयल-[४]सुकुमारपरिग्गहिएहिं अट्ठसहस्सेणं सोवण्णिआणं कलसाणं जाव अट्ठ-सहस्सेणं भोमेज्जाणं जाव सव्वोदएहिं सव्वमट्टिआहिं सव्वतुअरेहिं जाव

---

१. →← चिह्नद्वयमध्यवर्तिपाठः पुके मध्ये ततो धातकीखण्डपश्चात् वर्तते ॥ २. दर्दरः-चीवरावनद्धकुण्डिकादिभाजनमुखं तेन गालितं-पुण्यं वृत्तौ ॥ ३. संपरिवुडे जाव-अकखत्रिबस आव.चूर्णि पृ. १४८ ॥ ४. ०सूमाल० V । ०सुकुमाल० कखत्रिपस ॥

सव्वोसहि-सिद्धत्थएहिं सव्विड्ढीए जाव रवेणं महया २ तित्थयराभिसेएणं अभिसिंचंति[1] ॥ ५६ ॥

"**तए णं से अच्चुए**" इत्यादि, '**ततः**' उपस्थितायामभिषेकसामग्र्यां **सोऽच्युतो देवेन्द्रो दशभिः सामानिकसहस्रैः, त्रयस्त्रिंशता त्रायस्त्रिंशकैः, चतुर्भिर्लोकपालैः तिसृभिः पर्षद्भिः सप्तभिरनीकैः सप्तभिरनीकाधिपतिभिः चत्वारिंशता आत्मरक्षकदेवसहस्रैः सार्द्धं सम्परिवृतः** '**तैः**' तद्गतदेवजनप्रसिद्धैः **स्वाभाविकैर्वैक्रियैश्च वरकमलप्रतिष्ठानैरि**-त्यादि सर्वं प्राग्वत्, **सुकुमालकरतलपरिगृहीतै**रनेकसहस्रसङ्ख्याकैः कलशैरिति गम्यते । तानेव विभागतो दर्शयति–**अष्टसहस्रेण सौवर्णिकानां कलशानां यावत्पदादष्टसहस्रै** रौप्याणामष्टसहस्रेण मणिमयानामष्टसहस्रेण सुवर्णरूप्यमयानामष्टसहस्रेण सुवर्णमणिमयाना-मष्टसहस्रेण रूप्यमणिमयानामष्टसहस्रेण सुवर्णरूप्यमणिमयानामिति । **अष्टसहस्रेण भौमेयानां** सर्वसङ्ख्यया अष्टभिः सहस्रैः चतुःषष्ट्यधिकैर्यावच्छब्दात् भृङ्गारादिपरिग्रहः **सर्वोदकैः सर्वमृत्तिकाभिः सर्वतुवरैर्यावच्छब्दात्** पुष्पादिग्रहः, **सर्वौषधि-सिद्धार्थकैः सर्वर्द्ध्या यावद् रवेण,** यावच्छब्दात् "**सव्वजुईए**" इत्यारभ्य "दुंदुहिनिग्घोसनाइअ" इत्यन्तं ग्राह्यम् । **महता २ तीर्थकराभिषेकेण**, अत्र करणे तृतीया । कोऽर्थः ? येनाभिषेकेण तीर्थकरा अभिषिच्यन्ते तेनेत्यर्थः, अत्राभिषेकशब्देनाभिषेकोपयोगि क्षीरोदादिजलं ज्ञेयम्, '**अभिषिञ्चति**' अभिषेकं करोतीत्यर्थः ॥५६॥

सम्प्रत्यभिषेककारिण इन्द्रादपरे इन्द्रादयो यच्चक्रुस्तदाह–

तए णं सामिस्स महया २ अभिसेअंसि वट्टमाणंसि इंदाईआ देवा छत्त-चामर-धूवकडुच्छुअ-पुप्फ-गन्ध[2] जाव हत्थगया हट्ठतुट्ठ[3] जाव वज्ज-सूलपाणी पुरओ चिट्ठंति पंजलिउडा । एवं विजयाणुसारेण[4] जाव अप्पेगइआ देवा आसिअ-संमज्जि-ओवलित्त-सित्त-सुइ-सम्मट्ठरत्थंतरावण-वीहिअं करेन्ति जाव गन्धवट्टिभूअं ति, अप्पेग० हिरण्णवासं वासिंति, एवं सुवण्ण-रयण-वइर-आभरण-पत्त-पुप्फ-फल-बीअ-मल्ल-गन्ध-वण्ण जाव चुण्णवासं वासंति, अप्पेगइआ हिरण्णविहिं भाइंति एवं जाव चुण्णविधिं भाएंति, अप्पेगइआ चउव्विहं वज्जं वाएन्ति, तंजहा–ततं १ विततं २ घणं ३ झुसिरं[5] ४,

---

१. अकखत्रिपबस हीवृ. । अभिसिंचइ–V ॥ २. द्र. ५।५५, ३।१०, ११ ॥ ३. द्र. ५।२७ ॥ ४. द्र. जीवा. ३।४४७ ॥ ५. सुसिरं–अब ॥

अप्पेगइआ चउव्विहं गेअं गायन्ति, तंजहा-उक्खित्तं १ पायत्तं[1] २ मन्दायईयं[2] ३ रोइआवसाणं[3] ४, अप्पेगइआ चउव्विहं णट्टं णच्चन्ति, तं०-अंचिअं १ दुअं २ आरभडं ३ भसोलं ४, अप्पेगइआ चउव्विहं अभिणयं अभिणेंति, तं०-दिट्ठंतिअं १ पाडिस्सुइअं[4] २ सामण्णोवणिवाइअं[5] ३ लोगमज्झा-वसाणिअं[6] ४, अप्पेग० बत्तीसइविहं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेन्ति, अप्पेगइआ उप्पयनिवयं[7] निवयउप्पयं[8] संकुचिअ-पसारिअं जाव भन्तसंभन्तंणामं दिव्वं नट्टविहिं उवदंसेन्ती। अप्पेगइआ तंडवेंति अप्पेगइआ लासेन्ति अप्पेगइआ पीणेन्ति, एवं बुक्कारेन्ति अप्फोडेन्ति वग्गन्ति सीहणायं णदन्ति, अप्पे० सव्वाइं करेन्ति, अप्पे० हयहेसिअं एवं हत्थिगुलगुलाइअं रहघणघणाइअं अप्पे० तिण्णिवि, अप्पे० उच्छोलन्ति अप्पे० पच्छोलन्ति अप्पे० तिवइं छिंदन्ति[9] पायदद्दरयं करेन्ति भूमिचवेडे दलयन्ति, अप्पे० महया सद्देणं रावेंति, एवं संजोगा विभासिअव्वा, अप्पे० हक्कारेन्ति, एवं पुक्कारेन्ति[10] थक्कारेन्ति ओवयंति उप्पयंति परिवयंति जलन्ति तवंति पयवंति गज्जंति विज्जुआयंति[11] वासिंति, अप्पेगइआ देवुक्कलिअं करेंति एवं देवकहकहगं[12] करेंति, अप्पे० दुहुदुहुगं करेंति, अप्पे० विकिअभूयाइं रूवाइं विउव्वित्ता पणच्चंति, एवमाइ विभासेज्जा जहा[13] विजयस्स जाव सव्वओ समन्ता आहावेंति परिधावेंति ॥ ५७ ॥

---

१. पयत्तं-V। पत्तए-स्थानांगे ४।६३४। पायंतं-राजप्र. २८१ ॥ २. मंदं V J12। मंदायं-प, पुवृपा. राजप्र. सू. १७५, २८१। जीवा. ३।४४७ ॥ ३. त्रिप पुवृ राजप्र. सू. ११५, २८१, जीवा. ३।४४७। रोइयगं-J2 कस शावृपा.। रोइंदअंगं-ख। रोइंदगं-V। रोइयावसानं-त्रिप पुवृ. राजप्र. सू. ११५, २८१ जीवा. ३।४४७ ॥ ४. पडियंतियं-क। प्रातिश्रुतिकं-पुवृ शावृ। प्रतिश्रुतिकं-हीवृ.। द्र. स्थानाङ्गे ४।६३७ ॥ ५. सामंतोकतियं-अत्रिब। सामंतोवाइयं-कपस। सामंतोकंतियं-ख। सामण्णओविणिवाइयं-स्थानांगे ४।६३७, राजप्र. सू. ११७, २८१, जीवा. ३।४४७ ॥ सामंतोवातियं-J12 ॥ ६. राजप्र. सू. ११७, २८१। जीवा. ३।४४७ ॥ ७. उप्पयणिवयपवत्तं-अकखत्रिबस पुवृ हीवृ ॥ ८. निवयउप्पयं-अकखत्रिबस पुवृ हीवृ नास्ति। निवायउप्पाय-राजप्र. १११, जीवा. ३।४४४ ॥ ९. इतोऽग्रे V संस्करणे-अप्पेगइया तिण्णिवि-इति ॥ १०. बुक्कारेंति-स पुवृ ॥ ११. विज्जुतापयंती-अखब। विज्जुयंति आव.चू. पृ. १४८ ॥ १२. देवकुहुकुहगं-अब ॥ १३. द्र. जीवा. ३।४४७ ॥

"**तए ण**"मित्यादि, **ततः स्वामिनो**ऽतिशयेन **महत्यभिषेके वर्त्तमाने इन्द्रादिका देवाश्छत्र-चामर-कलश-धूप-कडुच्छुक-पुष्प-गन्धयावत्**पदात् माल्य-चूर्णादिपरिग्रहः, **हस्तगताः हृष्टतुष्टयावत्**पदादानन्दालापको ग्राह्यः । **वज्र-शूलपाणयः**, उपलक्षणादन्यशस्त्रपाणयोऽपि भाव्याः **पुरतस्तिष्ठन्ति** । अयमर्थः-केचन छत्रधारिणः केचन चामरोत्क्षेपकाः केचन कलशधारिण इत्यादि, सेवाधर्मसत्यापनार्थं न तु वैरिनिग्रहार्थं तत्र वैरिणामभावात्, केचन वज्रपाणयः, केचन शूलपाणय इति, केचन छत्राद्यव्यग्रपाणयः **प्राञ्जलिकृतास्तिष्ठन्ति** । अत्रातिदेशमाह-"**एवं विजया**" इत्यादि, '**एवम्**' उक्तप्रकारमभिषेकसूत्रं विजयदेवाभिषेकसूत्रानुसारेण ज्ञेयं, **यावत्**पदात् "**अप्पेगइआ पंडगवणं णच्चोअगं णाइमट्टिअं पविरलपफुसियं रय-रेणुविणासणं दिव्वं सुरहिगंधोदकवासं वासंति, अप्पेगइआ निहयरयं णट्ठरयं भट्ठरयं पसंतरयं उवसंतरयं करेंति**" [जीवा. ३।४४७] इति ग्राह्यम्, अत्र व्याख्या प्राग्वत् । वाक्ययोजना त्वेवं-अपिर्बाढार्थे, एकका:-केचन देवाः पण्डकवने नात्युदकं नातिमृत्तिकं यथा स्यात्तथा प्रविरलप्रस्पृष्टं रजो-रेणुविनाशनं दिव्यं सुरभिगन्धोदकवर्षं वर्षन्ति, अप्येकका: पण्डकवनं निहतरजो नष्टरजो भ्रष्टरजः प्रशान्तरज उपशान्तरजः कुर्वन्ति । अथ सूत्रम्-**अप्येकका** देवाः पण्डकवनम् **आसिक्त-सम्मार्जितोपलिप्तं** तथा **सिक्ता**नि जलेन अत एव **शुचीनि सम्मृष्टानि** कचवरापनयेन **रथ्यान्तराणिआपणवीथय** इवापणवीथयो रथ्याविशेषा यस्मिन् तत्तथा **कुर्वन्ति** । अयमर्थः-तत्र स्थानस्थानानीतचन्दनादिवस्तूनि मार्गान्तरेषु तथा राशीकृतानि सन्ति यथा हट्टश्रेणिप्रतिरूपं दधति । **यावत्**पदात्

"**पंडगवणं मंचाइमंचकलिअं करेंति, अप्पेगइआ णाणाविहरागऊसिअज्झय-पडागमंडिअं करेंति, अप्पेगइआ गोसीसचंदणदद्दरदिण्णपंचंगुलितलं करेंति, अप्पेगइआ उवचिअवंदणकलसं अप्पेगइआ वंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागं करेंति, अप्पेगइआ आसत्तोसत्त-विपुल-वट्ट-वग्घारिअमल्लदाम-कलावं करेंति, अप्पेगइआ पंचवण्णसरससुरहिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिअं करेंति, अप्पेगइआ कालागुरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्कड-ज्झंतधूवमघमघंतगंधुद्धुआभिरामं सुगंधवरगंधियं**" [जीवा. ३।४४७] इति ग्राह्यम् । पुनः प्रकारान्तरेण देवकृत्यमाह-"**अप्पेगइआ हिरण्ण**" इत्यादि, **अप्येकका:** '**हिरण्यस्य**' रूप्यस्य '**वर्षं**' वृष्टिं **वर्षन्ति** कुर्वन्तीत्यर्थः, **एवं** सर्वत्र योजना कार्या । नवरं '**सुवर्णं**' प्रतीतं, '**रत्नानि**' कर्केतनादीनि '**वज्राणि**' हीरकाः, '**आभरणानि**' हारादीनि '**पत्राणि**' दमनकादीनि **पुष्पाणि फलानि** च प्रतीतानि '**बीजानि**' सिद्धार्थादीनि '**माल्यानि**' ग्रथितपुष्पाणि '**गन्धाः**' वासाः '**वर्णः**' हिङ्गुलादिः, **यावच्छब्दाद्वस्त्र**मिति '**चूर्णानि**' सुगन्धद्रव्यक्षोदाः, तथा **अप्येकका** '**हिरण्यविधिं**' हिरण्यरूपं मङ्गलप्रकारं '**भाजयन्ति**' शेषदेवेभ्यो ददतीत्यर्थः,

एवं यावत्पदात् सुवर्णविधिं रत्नविधिम् इत्यादिपदानि ग्राह्याणि **चूर्णविधिं भाजयन्ति** । अथ सङ्गीतविधिरूपमुत्सवमाह-"**अप्पेगइआ चउव्विहं वज्जं**" इत्यादि, **अप्येककाश्चतुर्विधं वाद्यं वादयन्ति, तद्यथा 'ततं'** वीणादिकं **'विततं'** पटहादिकम्, **श्रीहेमचन्द्रसूरिपादास्तु** विततस्थाने आनद्धमाहुः, **'घनं'** तालप्रभृतिकं **'शुषिरं'** वंशादिकम्, **अप्येकका: चतुर्विधं गेयं गायन्ति, तद्यथा 'उत्क्षिप्तं'** प्रथमतः समारभ्यमाणं **'पादात्तं'** पादवृद्धं वृत्तादि-चतुर्भागरूपपादबद्धमिति भावः, **'मन्दायमि'**ति मध्यभागे मूर्च्छनादिगुणोपेततया मन्दं मन्दं घोलनात्मकम्, **'रोचितावसान'**मिति 'रोचितं' यथोचितलक्षणोपेततया भावितं सत्यापित-मितियावत् अवसानं यस्य तत्तथा, 'रोइअग'मिति **पाठे** रोचितकमित्यर्थः, स एव । **अप्येकका: चतुर्विधं नाट्यं नृत्यन्ति, तद्यथा-अञ्चितं द्रुतम् आरभटं भसोलमिति । अप्येककाश्चतुर्विधमभिनयमभिनयन्ति, तद्यथा-दार्ष्टान्तिकं प्रातिश्रुतिकं सामान्यतो विनिपातिकं लोकमध्यावसानिकमिति**, एते नाट्यविधयोऽभिनयविधयश्च **भरतादिसङ्गीत-शास्त्रज्ञेभ्योऽवसेया:** । **अप्येकका 'द्वात्रिंशद्विधम्'** अष्टमाङ्गलिक्यादिकं **दिव्यं नाट्यविधि-मुपदर्शयन्ति** । स च येन क्रमेण भगवतो वर्द्धमानस्वामिनः पुरतः **सूर्याभदेवेन** भावितः-**राजप्रश्नीयोपाङ्गे** दर्शितस्तेन क्रमेणोपदर्श्यते । तत्र प्रारिप्सितमहानाट्यरूपमङ्गल्यवस्तु-निर्विघ्नसिद्ध्यर्थमादौ मङ्गल्यनाट्यम् । तथाहि-स्वस्तिक-श्रीवत्स-नन्द्यावर्त्त-वर्द्धमानक-भद्रासन-कलश-मत्स्य-दर्पणरूपाष्टमाङ्गलिक्यभक्तिचित्रम्, अत्राष्टपदानां व्याख्या प्राग्वत् । नवरं तेषां भक्त्या-विच्छित्त्या चित्रम्-आलेखनं तत्तदाकाराविर्भावना यत्र तत्तथा तदुपदर्शयन्तीत्यर्थः । अयमर्थः-यथा हि चित्रकर्मणि सर्वे जगद्वर्त्तिनो भावाश्चित्रयित्वा दर्श्यन्ते, तथा तेऽभिनय-विषयीकृत्य नाट्येऽपि, अभिनयः-चतुर्भिराङ्गिकवाचिक-सात्त्विका-ऽऽहार्यभेदैः समुदितैर-समुदितैर्वाऽभिनेतव्यवस्तुभावप्रकटनम्, प्रस्तुते चाङ्गिकेन नाट्यकर्तॄणां तत्तन्मङ्गलाकारतया-ऽवस्थानं हस्तादिना तत्तदाकारदर्शनं वा, वाचिकेन प्रबन्धादौ तत्तन्मङ्गलशब्दोच्चारणं सभासदां मनसि रक्तिपूर्वकं तत्तन्मङ्गलस्वरूपाविर्भावनं मङ्गलनाट्यमिति १ ।

अथ द्वितीयं नाट्यम्, आवर्त्त-प्रत्यावर्त्त-श्रेणि-प्रश्रेणि-स्वस्तिक-पुष्यमाण-वर्द्धमानक-मत्स्याण्डक-मकराण्डक-जारमार-पुष्पावलि-पद्मपत्र-सागरतरङ्ग-वासन्तीलता-पद्मलताभक्तिचित्रम् । [१]तत्र सृष्टिक्रमेण भ्रमद्भ्रमरिकादानैर्नर्त्तनमावर्त्तः, तद्विपरीतक्रमेण भ्रमरिकादानैर्नर्त्तनं प्रत्यावर्त्तः, श्रेण्या-पङ्क्त्या स्वस्तिकाः श्रेणिस्वस्तिकाः, ते चैकपङ्क्तिगता अपि स्युरिति अनुवृत्ताः

१. तुला-राजप्रश्नीयनाट्यपदभञ्जिका पद्मसुन्दररचिता । द्र. राजप्र. पृ. ९६ टि. ४ ॥

श्रेणिस्वस्तिकाः प्रश्रेणिस्वस्तिकाः । अत्र प्रशब्दोऽनुवृत्तार्थे यथा-प्रशिष्यः प्रपुत्र इत्यादौ । अयमर्थः-मुख्यस्यैकस्य स्वस्तिकस्य प्रतिशाखं गता अन्ये स्वस्तिका इत्यर्थः, एतेन प्रथमनाट्यगतस्वस्तिकनाट्याद् भेदो दर्शितः, तदभिनयेन नर्त्तनम् । तथा पुष्यमाणः-पुष्टीभवन्, तदभिनयेन नृत्यम्, यथा हि पुष्टो गच्छन् जल्पन् श्वसिति बहु बहु प्रस्विद्यति दारुहस्तप्रायौ स्वहस्तावतिमेदस्विनौ चालयन् २ सभासदामुपहासपात्रं भवति, तथाऽभिनयो यत्र नाट्ये तत्पुष्यमाणनाट्यम् । एतदेवोत्तरसूत्रकारो 'अप्पेगइआ पीणेंती'ति सूत्रेण स्वयमेव वक्ष्यति । वर्द्धमानकः-स्कन्धाधिरूढः पुरुषस्तदभिनयगर्भितं नाट्यं वर्द्धमानकनाट्यम् । एतेन प्रथमनाट्यगतवर्द्धमाननाट्याद्भेदो दर्शितः ।

मत्स्यानामण्डकं मत्स्याण्डकम्, मत्स्या[१] हि अण्डाज्जायन्ते, तदाकारकरणेन यन्नर्त्तनं तन्मत्स्याण्डकनाट्यम्, एवं मकराण्डकमपि, न हि यथाकामविकुर्विणां देवानां किञ्चिदसाध्यं नाट्येन चानभिनेतव्यं येन तदभिनयो न सम्भवतीति । मत्स्यकाण्ड**पाठे** तु मत्स्यकाण्डं-मत्स्यवृन्दम्, तद्धि सजातीयैः सह मिलितमेव जलाशये चलति, सञ्चारित्वात् । तथा यत्र नटोऽन्यनटैः सह सङ्गतो रङ्गभूमौ प्रविशति ततो वा निर्याति तन्मत्स्यकाण्डनाट्यम् । एवं मकरकाण्डपाठे मकरवृन्दं वाच्यम्, तद्धि यथा विकृतरूपत्वेनातीव द्रष्टॄणां त्रासकृद् भवति तथा यन्नाट्यं तदाकारदर्शनेन भयानकं स्यात् तद्भयानकरसप्रधानं मकरकाण्डं नाम नाटकम् । तथा जारनाटकम्, जारः-उपपतिः, स च यथा स्त्रीभिः अतिरहस्येव रक्ष्यते, तद्वद्यत्र मूलवस्तुतिरोधानात्तत्तदिन्द्रजालाविर्भावनेन सभासदां मनस्यन्यदेवावतार्यते तज्जारनामकं नाट्यम् । तथा मारनाटकम्, मारः-कामस्तदुद्दीपकं नाटकं मारनाटकम्, शृङ्गाररसप्रधानमित्यर्थः । तथा पुष्पावलिनाट्यम्, यत्र कुसुमापूर्णसच्छिद्रवंशशलाकादिदर्शनेनाभिनयस्तत्पुष्पावलिनाटकम् । तथा पद्मपत्रनाट्यम्, यत्र पद्मपत्रेषु नृत्यन्नटस्तथाविधकरणप्रयत्नविशेषेण वायुरिव लघूभवन् न पद्मपत्रं क्लमयति नापि त्रोटयति न वक्रीकरोति तत्पद्मपत्रोपलक्षितं नाट्यं पद्मपत्रनाटकम् । तथा सागरतरङ्गाभिनयं नाम नाट्यं यत्र वर्णनीयवस्तुनो वचनचातुर्यवर्णनाद्यैः[२] सागरतरङ्गा अभिनीयन्ते, अथवा यत्र 'तक तक झें झें किटता किटता कु कु' इत्यादयस्तालोद्-घट्टनार्थकवर्णा बहवोऽस्खलद्गत्या प्रोच्यन्ते तत्सागरतरङ्गं नामनाटकम् । एवं वसन्तादिऋतु-वर्णने वासन्तीलता-पद्मलतावर्णनाभिनयं नाटकम् । नन्वेवं सत्यभिनेतव्यवस्तूनामानन्त्येन

१. **"मत्स्यानामण्डकमिव उत्पत्तिस्थानं पानीयम् । तत्र यथा मत्स्याः परिवर्तन-भ्रमण-विवर्त-खे[ल]नादीनि कुर्व्वन्ति तद् वद् मत्स्याण्डं नृत्यम्, तथैव मकराण्डकम् ।" इति नाट्यपदभञ्जिका ॥**
२. ०नादौ-पुके ॥

नाट्यानामप्यानन्त्य-प्रसङ्गः, तेन द्वात्रिंशत्सङ्ख्याकत्वविरोधः, उच्यते, एषा च सूत्रोक्ता सङ्ख्या, उपलक्षणाच्चान्येऽपि तत्तदभिनयकरणपूर्वकं नाट्यभेदा ज्ञेयाः, एवं सर्वनाट्येष्वपि ज्ञेयं २ ।

अथ तृतीयम्-ईहामृग-ऋषभ-तुरग-नर-मकर-विहग-व्याल-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुञ्जर-वनलता-पद्मलताभक्तिचित्रम् । तत्र ईहामृगाः-वृकाः, ऋषभादयः प्रतीताः । नवरं रुरवश्चमराश्च मृगविशेषाः, वनः-वृक्षविशेषस्तस्य लताः ३ । अथ चतुर्थम्-एकतोवक्र-द्विधातोवक्र-एकतश्चक्रवाल-द्विधातश्चक्रवाल-चक्रार्द्ध-चक्रवालाभिनयात्मकः, एकतोवक्रं नाम नटानां एकस्यां दिशि धनुराकारश्रेण्या नर्त्तनम्, अनेन श्रेणिनाट्याद्भेदो दर्शितः । एवं द्विधातोवक्रं द्वयोः परस्पराभिमुखदिशोः धनुराकारश्रेण्या नर्त्तनम् । तथा एकतश्चक्रवालम्-एकस्यां दिशि नटानां मण्डलाकारेण नर्त्तनम् । एवं द्विधातश्चक्रवालं-द्वयोः परस्पराभिमुखदिशोर्ज्ञेयम् । तथा 'चक्रार्द्धचक्रवालं' चक्रस्य-रथाङ्गस्यार्द्धं तद्रूपं यच्चक्रवालं-मण्डलं तदाकारेण नर्त्तनम् अर्द्धमण्डलाकारेणेत्यर्थः, तदभिनयं नाम नाटकम् । एकतोवक्रादीनां क्रमेण स्थापना यथा-

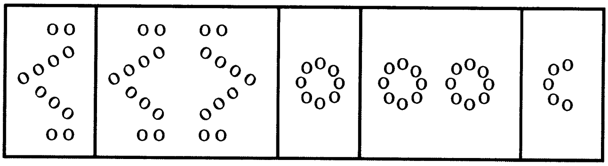

इदं च नटानां नर्त्तने संस्थानविशेषप्रधानं नाम नाटकम् ४ । अथ पञ्चमम्-चन्द्रावलिप्रविभक्ति-सूर्यावलिप्रविभक्ति-वलय-तारा-हंसैकमुक्ता-कनक-रत्नावलिप्रविभक्त्यभिनयात्मकमावलि-प्रविभक्तिनामकम् । तत्र चन्द्राणामावलिः-श्रेणिस्तस्याः प्रविभक्तिः-विच्छित्ती रचनाविशेष-स्तदभिनयात्मकम् । एवं सूर्यावलिप्रविभक्त्यभिनयात्मकम् । तथा वलयादिरत्नान्तेषु पदेषु आवलिशब्दो योज्यस्तेन वलयावलिप्रविभक्त्यादि । अयमर्थः-पङ्क्तिस्थितानां रजतस्थाल-हस्तानां भ्रमरीपरायणानां नटानां नाट्यम् । एवं वलयहस्तानां वलयनाट्यम्, एवं वर्त्तुलकहस्त-गतानां तारावलिनाट्यम्, अनयैव युक्त्या तत्सदृशवस्तुदर्शनेन अचिन्त्यत्वाद्वा वैक्रियशक्तेस्त-द्वस्तुदर्शनेन तत्तदभिनयकरणं तत्तन्नामकं नाट्यं ज्ञेयम्, एतच्चावलिकावद्धमित्यावलिकाप्र-विभक्तिनाम नाट्यम् ५ ।

अथ षष्ठम्-चन्द्र-सूर्योद्गमनप्रविभक्तिकृतमुद्गमनप्रविभक्ति चन्द्र-सूर्ययोरुद्गमनम्-उदयनं तत्प्रविभक्ति-रचना तदभिनयगर्भम् । यथा उदये सूर्य-चन्द्रयोर्मण्डलमरुणं प्राच्यां चारुणः प्रकाशस्तथा यत्राभिनीयते तदुद्गमनप्रविभक्ति ६ । अथ सप्तमम्-चन्द्र-सूर्यागमनप्रविभक्ति चन्द्रस्य सविमानस्यागमनम्-आकाशादवतरणं तस्य प्रविभक्तिर्यत्र नाट्येऽभिनयेन दर्शनम्, एवं सूर्यागमनप्रविभक्ति ७ । अथाष्टमम्-चन्द्र-सूर्यावरणप्रविभक्तियुक्तमावरणप्रविभक्ति, यथा

हि चन्द्रो घनपटलादिना आव्रियते, तथाऽभिनयदर्शनं चन्द्रावरणप्रविभक्ति, एवं सूर्यावरणप्रविभक्त्यपि ८ । अथ नवमम्–चन्द्र-सूर्यास्तमयनप्रविभक्तियुक्तमस्तमयनप्रविभक्ति, यत्र सर्वतः सन्ध्यारागप्रसरण-तमःप्रसरण-कुमुदसङ्कोचादिना चन्द्रास्तमयनमभिनीयते तच्चन्द्रास्तमयनप्रविभक्ति, एवं सूर्यास्तमयनप्रविभक्त्यपि । नवरं कमलसङ्कोचोऽत्र वक्तव्यः ९ । अथ दशमम्–चन्द्र-सूर्य-नाग-यक्ष-भूत-राक्षस-गन्धर्व-महोरग-मण्डलप्रविभक्तियुक्तं मण्डलप्रविभक्ति, तत्र बहूनां चन्द्राणां मण्डलाकारेण–चक्रवालरूपेण निदर्शनं चन्द्रमण्डलप्रविभक्ति, एवं बहूनां सूर्य-नाग-यक्ष-भूत-राक्षस-गन्धर्व-महोरगाणां मण्डलाकारेणाभिनयनं वाच्यम् । अनेन चन्द्रमण्डल-सूर्यमण्डलयोश्चन्द्रावलिसूर्यावलिनाट्यतो भेदो दर्शितस्तयोरावलिकाप्रविष्टत्वात् १० ।

अथैकादशम्–ऋषभ-सिंहललित-हय-गजविलसित-मत्तहय-गजविलसिताभिनयरूपं द्रुतविलम्बितं नाम नाट्यम्, तत्र ऋषभ-सिंहौ प्रतीतौ तयोर्ललितं–सलीलगतिः, तथा हय-गजयोर्विलसितं–मन्थरगतिः, एतेन विलम्बितगतिरुक्ता उत्तरत्र मत्तपदविशेषणेन द्रुतगतेर्वक्ष्यमाणत्वात्, तथा मत्तहय-गजयोर्विलसितं–द्रुतगतिः तदभिनयरूपं गतिप्रधानं द्रुत-विलम्बितं नाम नाट्यम् ११ । अथ द्वादशम्–शकटोर्द्धि-सागर-नागरप्रविभक्ति, शकटोर्द्धिः–प्रतीता तस्याः प्रविभक्तिः–तदाकारतया हस्तयोर्विधानं, एतत्तु नाट्ये प्रलम्बितभुजयोर्योजने प्रणामाद्यभिनये भवतीति । तथा सागरस्य–समुद्रस्य सर्वतः कल्लोलप्रसरण-वडवानलज्वालादर्शन-तिमिङ्गिलादिमत्स्यविवर्त्तन-गम्भीरगर्जिताद्यभिनयनं सागरप्रविभक्ति । तथा नागराणां–नगरवासिलोकानां सविवेकनेपथ्यकरणं क्रीडासञ्चरणं वचनचातुरीदर्शनमित्याद्यभिनयो नागरप्रविभक्ति तन्नामकं नाट्यम् १२ । अथ त्रयोदशम्–नन्दा-चम्पाप्रविभक्तिनाम नाट्यम्, नन्दा–नन्दाभिधानाः शाश्वत्यः पुष्करिण्यस्तासु देवानां जलक्रीडा-जलजकुसुमावचयनं सन्तरणमाप्लवनमित्याद्यभिनयनं नन्दाप्रविभक्ति । तथा **चम्पा**नाम महाराजधानी उपलक्षणं चैतत् तेन **कोशला-विशाला**दिराजधानीपरिग्रहः, तासां च परिखा-सौधप्रासादचतुष्पदाद्यभिनयनं चम्पाप्रविभक्ति १३ ।

अथ चतुर्दशम्–मत्स्याण्डक-मकराण्डक-जार-मारप्रविभक्तिनाम नाट्यम्, एतत्तु पूर्वं व्याख्यातमेव, अत्रैषां चतुर्णामभिनयनं पृथगुक्तं तत्र तु व्यामिश्रितमिति भेदः १४ । अथ पञ्चदशम्–क-ख-ग-घ-ङ इति कवर्गप्रविभक्तिकम्, तत्र ककाराकारेणाभिनयदर्शनं ककारप्रविभक्ति । कोऽर्थः ? तथा नाम ते नटा नृत्यन्ति यथा ककाराकारोऽभिव्यज्यते[१] । एवं खकार-गकार-घकार-ङ्कारप्रविभक्तयो वाच्याः, एतच्च कवर्गप्रविभक्तिकं नाट्यम् । यद्यपि लिपीनां

१. ककारोऽभि० पुके. ॥

वैचित्र्येण ककाराद्याकारवैचित्र्यात् प्रस्तुतनाट्यस्याप्यनैयत्यप्रसङ्गः, तथापि कवर्गीयजातीयत्वेन विशेषणान्नात्र दोषः । एवं [1]चकारप्रविभक्तिजातीयमित्यादि बोध्यम् । अथवा ककारशब्दोद्घट्टनेन चचपुट-चाचपुटादौ कंकांकिंकीं इत्यादिवाचिकाभिनयस्य प्रवृत्त्या नाट्यं ककारप्रविभक्ति, एवं कादिङान्तानां शब्दानामा[2]दातृत्वेन ककार-खकार-गकार-घकार-ङकारप्रविभक्तिकं नाट्यम्, एवं चवर्गप्रविभक्त्यादिष्वपि वाच्यम् १५ । अथ षोडशम्-च-छ-ज-झ-ञप्रविभक्तिकम् १६ । अथ सप्तदशम्-ट-ठ-ड-ढ-णप्रविभक्तिकम् १७ । अथाष्टादशम्-त-थ-द-ध-नप्रविभक्तिकम् १८ । अथैकोनविंशतितमम्-प-फ-ब-भ-मप्रविभक्तिकम् १९ ।

अथ विंशतितमम्-अशोका-ऽऽम्र-जम्बू-कोशम्ब-पल्लवप्रविभक्तिकम् अशोकादयः-वृक्षविशेषास्तेषां पल्लवाः-नवकिसलयानि, ततस्ते यथा मन्दमारुतेरिता नृत्यन्ति तदभिनयात्मकं पल्लवप्रविभक्तिकं नाम नाट्यम् २० । अथैकविंशतितमम्-पद्म-नागा-ऽशोक-चम्पक-चूतवन-वासन्ती-कुन्दा-ऽतिमुक्तकश्यामलताप्रविभक्तिकं लताप्रविभक्तिकं नाम नाट्यम्, इह येषां वनस्पतिकायिकानां स्कन्धप्रदेशविवक्षितोर्ध्वगतैकशाखाव्यतिरेकेणान्यत् शाखान्तरं परिस्थूरं न निर्गच्छति ते लता विज्ञेयास्ते च पद्मादय इति पद्मलतादिपदानामर्थः प्राग्वत्, एता यथा मारुतेरिता नृत्यन्ति तदभिनयात्मकं लताप्रविभक्तिकनाम नाट्यम् २१ । अथ द्वाविंशतितमम्-द्रुतनाम नाट्यम्, तत्र द्रुतमिति-शीघ्रं गीत-वाद्यशब्दयोर्यमकसमकप्रपातेन पाद-तलशब्दस्यापि समकालमेव निपातो यत्र तत् द्रुतं नाट्यम् २२ । अथ त्रयोविंशतितमम्-विलम्बितं नाम नाट्यम्, यत्र विलम्बिते-गीतशब्दे स्वरघोलनाप्रकारेण यतिभेदेन विश्रान्ते तथैव वाद्यशब्देऽपि यतितालरूपेण वाद्यमाने तदनुयायिना पादसञ्चारेण नर्त्तनं तद्विलम्बितं नाम नाट्यम् २३ । अथ चतुर्विंशतितमम्-द्रुतविलम्बितं नाम नाट्यं यथोक्तप्रकारद्वयेन नर्त्तनम् २४ ।

अथ पञ्चविंशतितमम्-अञ्चितं नाट्यम्, अञ्चितः-पुष्पाद्यलङ्कारैः पूजितस्तदीयं तदभिनयपूर्वकं नाट्यमप्यञ्चितमुच्यते, अनेन कौशिकीवृत्तिप्रधानाहार्य्याभिनयपूर्वकं नाट्यं सूचितम् २५ । अथ षड्विंशतितमं [3]रिम्भितं नाम नाट्यम्-तच्च मृदुपदसञ्चाररूपमिति वृद्धाः, अथवा "**रेभृङ्ग शब्दे**" [**हेमधा. १।१७५**] इत्यस्य धातोः क्तप्रत्यये रेभितं-कलस्वरेण गीतोद्गातृत्वम्, अनेन वाचिकाभिनययुक्तं भारतीवृत्तिप्रधानं नाट्यमभाणि २६ । अथ सप्तविंशतितमम् अञ्चितरिभितं नाम नाट्यम्-यत्रानन्तरोक्तमभिनयद्वयमवतरति तत् २७ । अथाष्टाविंशतितममारभटं नाम नाट्यम्, आरभटाः-सोत्साहाः सुभटास्तेषामिदमारभटम्, अयमर्थः-महाभटानां स्कन्धा-

१. च खकार० पुके. ॥ २. ०भाद्रातृत्वेन-पु. ॥ ३. रिभितं-के ॥

स्फालन-हृदयोल्वणनादिका या उद्धतवृत्तिस्तदभिनयमिति, अनेनारभटीवृत्तिप्रधानमाङ्गिकाभिनयपूर्वकं नाट्यमुक्तम् २८ । अथैकोनत्रिंशं भसोलं नाम नाट्यम्, "**भस भर्त्सन-दीप्त्यो**" [हे.धा. १५२१]रित्यस्य ह्वादिगणस्थस्य धातोर्बभस्ति-दीप्यते इति अचि प्रत्यये भसः-शृङ्गारः पङ्क्तिरथन्यायेन शृङ्गाररस इत्यर्थः तम् अवतीति भसोस्तं रतिभावाभिनयनेन लाति-गृह्णातीति भसोलः-नटस्ततो धर्म-धर्मिणोरभेदोपचारात् भसोलं नाम नाट्यम्, एतेन शृङ्गाररससात्त्विकभावः सूचितः । इदं च सर्वं व्याख्यानमुपलक्षणपरं ज्ञेयम्, तेनात्र सर्वे सात्त्विका भावा अभिनयविषयीकार्याः, एतेन सात्त्विकीवृत्तिप्रधानं सात्त्विकाभिनयगर्भितं भसोलं नाम नाट्यम् २९ ।

अथ त्रिंशत्तममारभटभसोलं नाम नाट्यम्, इदं चानन्तरोक्ताभिनयद्वयप्रधानं ज्ञेयम् ३० । अथैकत्रिंशत्तमम् उत्पात-निपातप्रवृत्तं सङ्कुचित-प्रसारितं रेचकरेचितं भ्रान्त-संभ्रान्तं नाम नाट्यम्, उत्पातः-हस्त-पादादीनामभिनयगत्योर्ध्वक्षेपणं तेषामेवाधःक्षेपणं निपातस्ताभ्यां यत्प्रवृत्तं प्रवृत्तिमज्जातमित्यर्थः, एवं हस्त-पादयोरङ्गहारार्थं[1] सङ्कोचनेन सङ्कुचितं प्रसारणेन च प्रसारितम्, तथा रेचकैः-भ्रमरिकाभिः रेचितं-निष्पन्नम्, भ्रान्तः-भ्रमप्राप्तः स इव यत्राद्भुतचरित्रदर्शनेन पर्षज्जनः सम्भ्रान्तः-साश्चर्यो भवति तत् भ्रान्त-सम्भ्रान्तं तदुपचारान्नाट्यमपि भ्रान्त-सम्भ्रान्तम् ३१ । अथ द्वात्रिंशत्तमं चरमचरमनामनिबद्धनामकम्, तच्च सूर्याभदेवेन भगवतो वर्द्धमानस्वामिनः पुरतो भगवतश्चरमपूर्वमनुष्यभव-चरमदेवलोकभव-चरमच्यवन-चरमगर्भसंहरण-चरमभरतक्षेत्रावसर्पिणीतीर्थकरजन्माभिषेक-चरमबालभाव-चरमयौवन-चरमकामभोग-चरमनिष्क्रमण-चरमतपश्चरण-चरम-ज्ञानोत्पाद-चरमतीर्थप्रवर्त्तन-चरमपरिनिर्वाणाभिनयात्मकं भावितम्, इह तु यस्य तीर्थकृतो जन्ममहं कुर्वन्ति तच्चरिताभिनयात्मकमुपदर्शयन्ति, यद्यप्यत्राञ्चित-रिभिता-ऽऽरभट-भसोलेषु चतुर्षु मूलभेदेषु गृहीतेषु साभिनयनाट्यमात्रसङ्ग्रहः स्यात्, तथापि क्वचिदेकैकेनाभिनयेन क्वचिदभिनयसमुदायेन क्वचिच्चाभिनयविशेषेणान्तरकरणात् सर्वप्रसिद्धद्वात्रिंशन्नाटकसङ्ख्याव्यवहार-संरक्षणार्थं द्वात्रिंशद्भेदा दर्शिताः ।

अथाभिनयशून्यमपि नाटकं भवतीति तत् दर्शयितुमाह-"**अप्पेगइआ उप्पय**" इत्यादि, **अप्येकका 'उत्पातः'** आकाशे उल्ललनं **'निपातः'** तस्मादवपतनम् उत्पातपूर्वो निपातो यस्मिन् **तदुत्पातनिपातम्**, एवं **निपातोत्पातम्, सङ्कुचितप्रसारितं** प्राग्वत्, **यावत्**पदात् "रिआ-ऽऽरिअ" मिति ग्राह्यम्, तत्र रिअं-गमनं रङ्गभूमेर्निष्क्रमणम् आरिअं-पुनस्तत्रागमनम्,

---

१. ०रङ्ग० पु. ॥

भ्रान्त-सम्भ्रान्तं तु अनन्तरोक्तैकत्रिंशत्तमनाटके व्याख्यातमिति ततो ग्राह्यम् । इदं च पूर्वोक्तचतुर्विधद्वात्रिंशद्विधनाट्येभ्यो विलक्षणं सर्वाभिनयशून्यं गात्रविक्षेपमात्रं विवाहाभ्युदयादावुपयोगि सामान्यतो नर्त्तनं **भरता**दिसङ्गीतेषु नृत्तमित्युक्तम् । अथोक्तमेव नाट्यं प्रकारद्वयेन सङ्ग्रहीतुमाह-"**अप्पेगइआ तंडवेंति अप्पेगइआ लासेंति**"त्ति, अप्येककास्ताण्डवं नाम नाटकं कुर्वन्ति, तच्चोद्धतैः करणैरङ्गहारैरभिनयैश्च निर्वर्त्त्यम्, अत एवारभटीवृत्तिप्रधानं नाट्यम् । अथ यथा बालस्वामिपादानां देवाः कुतूहलमुपदर्शयन्ति तथाऽऽह-"**अप्पेगइआ पीणेंति**" इत्यादि, अप्येकका देवाः 'पीनयन्ति' स्वं स्थूलीकुर्वन्ति, "**एव**"मित्यप्येकका '**बूत्कारयन्ति**' बूत्कारं कुर्वन्ति '**आस्फोटयन्ति**' उपविशन्तः पुताभ्यां भूम्यादिकमाघ्नन्ति '**वल्गन्ति**' मल्लवद्बाहुभ्यां परस्परं सम्प्रलगन्ति **सिंहनादं** '**नदन्ति**' कुर्वन्ति, **अप्येककाः** '**सर्वाणि**' पीनत्वादीनि क्रमेण **कुर्वन्ति, अप्येकका** '**हयहेषितं**' हेषारवं कुर्वन्ति, '**एव**'मित्यप्येकका: '**हस्तिगुलुगुलायितं**' गजवद् गर्जि विदधाति '**रथघनघनायितं**' रथवत् चीत्कुर्वन्ति, गुलुगुलुघनघन इत्यनुकरणशब्दौ, **अप्येकका:** हयहेषितादीनि **त्रीण्यपि** कुर्वन्ति, **अप्येकका:** '**उच्छोलन्ति**'[1] अग्रतोमुखा चपेटां ददति, **अप्येकका:** '**पच्छोलंति**'[2] पृष्ठतोमुखां चपेटां ददति, **अप्येकका: त्रिपदीं** मल्ल इव रङ्गभूमौ त्रिपदीं **छिन्दन्ति**, '**पाददर्दरकं**' पादेन भूम्यास्फोटनरूपं **कुर्वन्ति**, '**भूमिचपेटां ददति**' करेण भूमिमाघ्नन्ति, **अप्येकका: महता २ शब्देन** '**रावयन्ति**' शब्दं कुर्वन्ति, '**एवम्**' उक्तप्रकारेण '**संयोगा अपि**' द्वित्रिपदमेलका अपि '**विभाषितव्या:**' भणितव्याः । कोऽर्थः ? केचित् उच्छोलनादि-द्विकमपि कुर्वन्ति, तथा केचित् त्रिकं चतुष्कं पञ्चकं षट्कं च कुर्वन्ति । **अप्येकका:** '**हक्कारयन्ति**' हक्कां ददति, **एवं पूत्कुर्वन्ति** '**थक्कारयन्ति**' थक्कथक्कमित्येवं शब्दं कुर्वन्ति '**अवपतन्ति**' नीचैः पतन्ति '**उत्पतन्ति**' ऊर्ध्वीभवन्ति, तथा '**परिपतन्ति**' तिर्यग्निपतन्ति '**ज्वलन्ति**' ज्वालारूपा भवन्ति भास्वराग्नितां प्रतिपद्यन्त इत्यर्थः, '**तपन्ति**' मन्दाङ्गाररूपतां प्रतिपद्यन्ते, '**प्रतपन्ति**' दीप्ताङ्गारतां प्रतिपद्यन्ते '**गर्जन्ति**' गर्जारवं कुर्वन्ति **विद्युतं कुर्वन्ति वर्षन्ति च**, अत्रापि संयोगा भणितव्याः, **अप्पे० देवानां** वातस्येव '**उत्कलिका**' भ्रम-विशेषस्तां **कुर्वन्ति, एवं देवानां** '**कहकहकं**' प्रमोदभरजनितकोलाहलं **कुर्वन्ति, अप्पे० दुहुदुहुगं कुर्वन्ति** अनुकरणमेतत्, **अप्पे०** अधरलम्बन-मुखव्यादान-नेत्रस्फाटनादिना **विकृतानि**-भयानकानि **भूतादिरूपाणि विकुर्वित्वा प्रनृत्यन्ति, एवमादि विभाषेत यथा विजयदेवस्य** ।

१-२. ०लेंति-पुके. ॥

कियत्पर्यन्तम् ? इत्याह-**यावत् सर्वतः समन्तात् 'आधावेन्ति'** ईषद्धावन्ति **'परिधावन्ति'**[1] प्रकर्षेण धावन्ति । यावत्करणात् "**अप्पेगइआ चेलुक्खेवं करेंति, अप्पेगइआ वंदणकलसहत्थगया अप्पेगइआ, भिंगारहत्थगया एवं एएणं अभिलावेणं आयंस-थाल-पाई-वायकरग-रयणकरंडग-पुप्फचंगेरी जाव लोमहत्थचंगेरी-पुप्फपडलग जाव लोमहत्थपडलग-सीहासण-छत्त-चामर-तिल्लसमुग्गय जाव अंजणसमुग्गयहत्थगया, अप्पेगइया देवा धूवकडुच्छुअहत्थगया हट्ठतुट्ठ जाव हियया**" [ ] इति ग्राह्यम् । अत्र व्याख्या-अप्येककाश्चेलोत्क्षेपं-ध्वजोच्छ्रायं कुर्वन्ति, अप्येकका *वन्दनकलशहस्तगता-मङ्गल्यघटपाणयः, अप्येकका भृङ्गारहस्तगताः, एवमनन्त-रोक्तस्वरूपेण* एतेनानन्तरवर्त्तित्वात् प्रत्यक्षेणाभिलापेन सूत्रपाठेन अप्येकका आदर्शहस्तगताः स्थालहस्तगता यावद्धूपकडुच्छुकहस्तगता आधावन्ति परिधावन्तीत्यन्वयः । शेषं निगदसिद्धं प्रागुक्ताभिषेकाधिकारगतेन्द्रसूत्रसमानगमत्वात् ॥५७॥

अथाभिषेकनिगमनपूर्वकमाशीर्वादसूत्रमाह-

तए णं से अच्चुइंदे सपरिवारे सामिं तेणं महया महया अभिसेएणं अभिसिंचइ, २ त्ता करयलपरिग्गहिअं जाव[2] मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, २ त्ता ताहिं इट्ठाहिं जाव[3] जयजयसद्दं पउंजति, पउंजित्ता जाव पम्हलसुकुमालाए सुरभीए गन्धकासाईए गायाइं लूहेइ, २ त्ता एवं जाव कप्परुक्खगं पिव अलंकियविभूसिअं करेइ, २ त्ता जाव णट्टविहिं उवदंसेइ, २ त्ता अच्छेहिं सण्हेहिं[4] रययामएहिं अच्छरसातण्डुलेहिं भगवओ सामिस्स पुरओ अट्ठट्ठमंगलगे आलिहइ, तंजहा-

'दप्पण १ भद्दासणं २ वद्धमाण ३ वरकलस ४ मच्छ ५ सिरिवच्छ ६ ।
सोत्थिअ ७ णन्दावत्ता ८ लिहिआ अट्ठट्ठमंगलगा ॥१॥"

[5]लिहिऊण करेइ उवयारं, किंते ?, पाडल-मल्लिअ-चंपग-ऽसोग-पुन्नाग-चूअ-मंजरि-णवमालिअ-बउल-तिलय-कणवीर-कुंद-कोज्जग-कोरंटपत्तदमणग-वरसुरभिगन्धगन्धिअस्स[6] कयग्गाहगहिअ-करयलपब्भट्ठविप्पमुक्कस्स दसद्ध-

१. प्रधा० पु. ॥ २. द्र. ३।५ ॥ ३. द्र. ३।१८५ ॥ ४. सण्हेहिं सेतेहिं-३।१२ ॥ ५. काऊण-V J12 । आलिहित्ता काऊणं-३।१२ ॥ ६. ०सुगंध० कख पुवृ. । ०सुगंधिकस्स-त्रि हीवृ. ॥

वण्णस्स कुसुमणिअरस्स[1] तत्थ चित्तं जण्णुस्सेहप्पमाणमित्तं ओहिनिकरं[2] करेत्ता चन्दप्पभ-रयण-वइर-वेरुलिअविलदण्डं कंचण-मणिरयणभत्तिचित्तं[3] कालागुरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्कधूवगंधुत्तमाणुविद्धं च धूमवट्टिं विणिम्मुअंतं वेरुलिअमयं कडुच्छुअं पग्गहित्तु पयएणं धूवं दाऊण जिणवरिंदस्स सत्तट्ठ पयाइं ओसरित्ता दसंगुलिअं अंजलिं करिअ मत्थयंमि[4] पयओ अट्ठसय-विसुद्धगन्थजुत्तेहिं महावित्तेहिं अपुणरुत्तेहिं अत्थजुत्तेहिं संथुणइ, २ त्ता वामं जाणुं अंचेइ, २ त्ता जाव करयलपरिग्गहिअं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी-णमोऽत्थु ते सिद्ध-बुद्ध-णीरय-समण-सामाहिअ-समत्त-समजोगि-सल्लगत्तण-णिब्भय-णीराग-दोसणिम्मम-णिस्संग-णीसल्ल-माणमूरण-गुणरयण-सील-सागरमणंतमप्पमेय भविअ-धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी, णमोऽत्थु ते अरहओ[5] त्तिकट्टु एवं वन्दइ णमंसइ, २ त्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे जाव[6] पज्जुवासइ ॥ ५८ ॥

"**तए ण**"मित्यादि, **ततः सोऽच्युतेन्द्रः सपरिवारः स्वामिनं 'तेन'** अनन्तरोक्त-स्वरूपेण '**महता २**' अतिशयेन महताऽ**भिषेकेणाभिषिञ्चति**, निगमनसूत्रत्वान्न पौनरुक्त्यम्, **अभिषिच्य** च **करतलपरिगृहीतं यावत्पदसङ्ग्राह्यं** प्रागवत्, **मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा 'जयेन विजयेन च'** प्रागुक्तस्वरूपेन '**वर्द्धयति**' आशिषं प्रयुङ्क्ते, **वर्धयित्वा** च '**ताभिः**' विशिष्टगुणोपेताभिः '**इष्टाभिः**' श्रोतृणां वल्लभाभि**र्यावत्**करणात् 'कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं वग्गूहिं' इति ग्राह्यम्, अत्र व्याख्या च प्रागवत् । वाग्भि**र्जय२शब्दं प्रयुङ्क्ते**, सम्भ्रमे द्विर्वचनं जयशब्दस्य । अत्र जयेन विजयेन वर्द्धयित्वा पुनर्जय२शब्दप्रयोगो मङ्गल-वचने पुनरुक्तिर्न दोषायेत्यभिहितः । अथाभिषेकोत्तरकालीनं कर्त्तव्यमाह-"**पउंजित्ता**" इत्यादि, **प्रयुज्य** च **यावच्छब्दात्** 'तप्पढमयाए' इति ग्राह्यम्, अत्र व्याख्यातेष्वभिषेकोत्तर-कालीनकर्त्तव्येषु प्रथमतया-आद्यत्वेन **पक्ष्मलसुकुमारया सुरभ्या 'गन्धकाषायिक्या'** गन्धकषायद्रव्यपरिकर्मितया लघुशाटिकयेति गम्यम्, **गात्राणि रूक्षयति** । **'एवम्'** उक्तप्रकारेण

१. कुसुमसंचतस्स-आव. चूर्णि. पृ. १४९ ॥ २. ओह० कख पुके पस पुवृ. ॥ ३. णाणामणि० त्रिहीवृ. ॥ ४. कखस । मत्थगंमि-अब । मत्थयंसि-V ॥ ५. अरहओ णमोत्थु ते भगवओत्तिकट्टु-अब J12 पुवृ. ॥ ६. द्र. १।६ ॥

यावत्कल्पवृक्षमिव 'अलङ्कृतं' वस्त्रालङ्कारेण **'विभूषितं'** आभरणालङ्कारेण **करोति, यावत्**करणात् 'लूहित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपइ, २ त्ता नासानीसासवायवोज्झं चक्खुहरं वण्णफरिसजुत्तं हयलालापेलवाइरेगधवलं कणगखचिअंतकम्मं देवदूसजुअलं निअंसावेइ, २ त्ता' इति ग्राह्यम्, अत्र व्याख्या प्राग्वत्। नवरं देवदूष्ययुगलं परिधानोत्तरीयरूपं निवासयति-परिधापयतीति। **कृत्वा** च **यावत्**करणात् 'सुमिणदामं पिणद्धावेइ' इति ग्राह्यम्, **नाट्यविधिमुपदर्शयति, उपदर्श्य** च **अच्छैः श्लक्ष्णैः रजतमयैः अच्छरसतण्डुलैः भगवतः स्वामिनः पुरतोऽष्ट अष्टमङ्गलकानि आलिखति, तद्यथा-दप्पणे**ति पद्यं सुगमम्।

मङ्गलालेखनोत्तरकृत्यमाह-"**लिहिऊण**"त्ति, अनन्तरोक्तान्यष्टमङ्गलानि लिखित्वा **करोति-उपचारमि**त्याद्यारभ्य कडुच्छुकग्रहणपर्यन्तं सूत्रं चक्ररत्नपूजाधिकारलिखितव्याख्यातो व्याख्येयम्। ततः प्रयतः सन् यथा बालभट्टारकस्य धूपधूमाकुले अक्षिणी न भवतस्तथा प्रयत्नवान् **धूपं दत्त्वा जिनवरेन्द्राय**, सूत्रे षष्ठी आर्षत्वात्, अङ्गपूजार्थं प्रत्यासेदुषा मया निरुद्धो भगवद्दर्शनमार्गोऽतोऽहं मा परेषां दर्शनामृतपानविघ्नकारी स्यामिति **सप्ताष्टानि पदान्यपसृत्य दशाङ्गुलिकं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा प्रयतः**-यथास्थानमुदात्तादिस्वरोच्चारेषु प्रयत्नवान् '**अष्टशतैः**' अष्टोत्तरशतप्रमाणै**र्विशुद्धेन 'ग्रन्थेन'** पाठेन '**युक्तैः**' '**महावृत्तैः**' महाकाव्यैर्यद्वा महाचरित्रैरपुनरुक्तैः '**अर्थयुक्तैः**' चमत्कारिव्यङ्ग्ययुक्तैः **संस्तौति, संस्तुत्य** च **वामं जानुम्** '**अञ्चति**' उत्पाटयति, **अञ्चित्वा** च **यावत्**पदात् 'दाहिणं जाणुं धरणिअलंसि निवाडेइ' इति ग्राह्यम्, अत्र व्याख्या प्राग्वत्। **करतलपरिगृहीतं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा** '**एवं**' वक्ष्यमाण**मवादीत्**। यदवादीत्तदाह-"**णमोऽत्थु ते सिद्ध-बुद्ध**" इत्यादि, **नमोऽस्तु** '**ते**' तुभ्यं **हे सिद्ध**! एवं **बुद्ध** इत्यादिपदानि सम्बन्धनीयानि। तत्र हे '**बुद्ध**' ज्ञाततत्त्व! हे '**नीरजाः**' कर्मरजोरहित! हे '**श्रमण**' तपस्विन्! हे '**समाहित**' अनाकुलचित्त! हे '**समाप्त**!' कृतकृत्यत्वात्, अथवा सम्यक् प्रकारेणाप्त! अविसंवादिवचनत्वात् हे '**समयोगिन्**!' कुशलमनोवाक्काययोगित्वात् **शल्यकर्त्तन निर्भय नीराग-द्वेष निर्मम** '**निस्सङ्ग**' निर्लेप **निःशल्य** '**मानमूरण**' मानमर्द्दन **गुणेषु** '**रत्नम्**' उत्कृष्टं यद् '**शीलं**' ब्रह्मचर्यं तस्य **सागर अनन्त** अनन्तज्ञानात्मकत्वात् मकारोऽलाक्षणिकः एवमग्रेऽपि। '**अप्रमेय**' प्राकृतज्ञानापरिच्छेद्य अशरीरजीवस्वरूपस्य छद्मस्थैः परिच्छेत्तुमशक्यत्वादिति। अथवाऽप्रमेय भगवद्गुणानामनन्तत्वेन सङ्ख्यातुमशक्यत्वात् '**भव्य**' मुक्तिगमनयोग्य अत्यासन्नभवसिद्धित्वात् '**धर्मेण**' धर्मरूपेण '**वरेण**' प्रधानेन भावचक्रत्वात् '**चतुरन्तेन**'

चतुर्गत्यन्तकारिणा चक्रेण वर्त्तत इत्येवंशीलस्तस्य सम्बोधनं हे **धर्मवरचतुरन्तचक्रवर्त्तिन्** ! **नमोऽस्तु तुभ्यम्** '**अर्हते**' जगत्पूज्याय '**इति कृत्वा**' इति संस्तुत्य **वन्दते नमस्यतीत्यादि** सूत्रं प्राग्वत्, यच्चात्र विशेषणवर्णकस्यादौ नमोऽस्तु ते इत्युक्त्वा पुनरपि नमोऽस्तु ते इत्युक्तं तन्न पुनरुक्तये प्रत्युत लाघवाय यतो जगत्त्रयप्रतिस्त्रोतश्चारिणो जगत्त्रयपतेस्तत्तदसाधारणैकैक-विशेषणविभावनात् समुद्भूतप्रणामपरिणामेन हरिणा प्रतिविशेषणं नमोऽस्तु ते इति न प्रयुक्तमिति, इमानि च सर्वाणि विशेषणानि भव्यपदवर्जानि भाविनि भूतवदुपचारादन्यथा-ऽभिषेकसमये जिनानामेतादृशविशेषणानामसम्भवादिति ॥५८॥

अथावशिष्टानामिन्द्राणां वक्तव्यं लाघवादाह-

एवं जहा अच्चुअस्स तहा जाव ईसाणस्स भाणिअव्वं । [१]एवं भवण-वइवाणमन्तर जोइसिआ य सूरपज्जवसाणा सएणं सएणं परिवारेणं पत्तेअं २ अभिसिंचंति ॥ ५९ ॥

"**एवं जहा**" इत्यादि, '**एवम्**' उक्तविधिना **यथाऽच्युतेन्द्रस्याभिषेककृत्यम्**, **तथा** प्राणतेन्द्रस्य **यावदीशानेन्द्रस्यापि भणितव्यम्**, शक्राभिषेकस्य सर्वतश्चरमत्वात् । **एवं भवनपति-व्यन्तर-ज्योतिष्काश्चन्द्राः सूर्यपर्यवसानाः स्वकेन स्वकेन परिवारेण** सह **प्रत्येकं २ अभिषिञ्चन्ति** ॥५९॥

अथावशिष्टशक्रस्याभिषेकावसरः-

तए णं से ईसाणे देविन्दे देवराया पञ्च ईसाणे विउव्वइ, २ त्ता एगे ईसाणे भगवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिण्हइ, २ त्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे, एगे ईसाणे पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, दुवे ईसाणा उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेन्ति, एगे ईसाणे पुरओ सूलपाणी चिट्ठइ ॥ ६० ॥

"**तए ण**"मित्यादि, '**ततः**' त्रिषष्टीन्द्राभिषेकानन्तर-**मीशानो देवेन्द्रो देवराजा पञ्चेशानान्** '**विकुर्वति**' एक ईशानः पञ्चधा भवति । एतदेव विभजति-तत्र **एक ईशानो भगवन्तं तीर्थंकरं करतलसम्पुटेन गृह्णाति, गृहीत्वा च सिंहासनवरगतः पूर्वाभिमुखः सन्निषण्णः एक ईशानः पृष्ठतः आतपत्रं धरति द्वावी-शानावुभयोः पार्श्वयोः चामरोत्क्षेपं कुरुतः एक ईशानः पुरतः शूलपाणिः** '**तिष्ठति**' ऊर्ध्वस्थो भवति ॥६०॥

---

१. एवं-अकखत्रिबस पुवृ. हीवृ. नास्ति ॥

सम्प्रत्यव्यग्रपाणिः शक्रो यदकरोत्तदाह-

[१] तए णं से सक्के देविन्दे देवराया आभिओगे देवे सद्दावेइ, २ त्ता एसोवि [२] तह चेव अभिसेआणत्तिं देइ तेऽवि तह चेव उवणेन्ति ॥ ६१ ॥

"तए ण"मित्यादि, 'ततः' ईशानेन्द्रेण भगवतः करसम्पुटे ग्रहणानन्तरं **स शक्रो देवेन्द्रो देवराजा आभियोग्यान् देवान् शब्दयति, शब्दयित्वा** च **एषोऽपि 'तथैव'** अच्युतेन्द्रव**दभिषेकविषयकामाज्ञप्तिं ददाति, तेऽप्याभि-योग्याः 'तथैव'** अच्युतेन्द्रा-भियोग्यदेवा इवाभिषेकवस्**तूपनयन्ति** ॥६१॥

अथ शक्रः किं चकारेत्याह-

तए णं से सक्के देविन्दे देवराया भगवओ तित्थयरस्स चउद्दिसिं चत्तारि धवलवसभे विउव्वेइ सेए [३] संखदलविमलनिम्मलदधिघण-गोखीर-फेण-रयणिगरप्पगासे पासाईए दरसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ॥ ६२ ॥

"तए ण"मित्यादि, 'ततः' अभिषेकसामग्र्युपनयनानन्तरं **स शक्रो देवेन्द्रो देवराजा भगवतस्तीर्थकरस्य चतुर्दिशि चतुरो धवलवृषभान् विकुर्वन्ति श्वेतान्** । श्वेतत्वमेव द्रढयति-**शङ्खस्य 'दलं'** चूर्णं **'विमलनिर्मलः'** अत्यन्तनिर्मलो यो **'दधिघनः'** दधिपिण्डो बद्धं दधीत्यर्थः, **'गोक्षीरफेनः'** प्रतीतः **रजतनिकरो**ऽपि एतेषामिव **प्रकाशो** येषां ते तथा तान् **'पासाईए'**त्यादि प्राग्वत् ॥६२॥

तदनन्तरं किम् ? इत्याह-

तए णं तेसिं चउण्हं धवलवसभाणं [४] अट्ठहिं सिंगेहिंतो अट्ठ तोअधाराओ णिग्गच्छन्ति ॥ ६३ ॥

तए णं ताओ अट्ठ तोअधाराओ उड्ढं वेहासं उप्पयन्ति, २ त्ता एगओ मिलायन्ति, २ त्ता भगवओ तित्थयरस्स मुद्धाणंसि निवयंति ॥ ६४ ॥

"तए ण"मिति, ततः **'तेषां' चतुर्णां धवलवृषभानामष्टभ्यः शृङ्गेभ्योऽष्टौ तोयधारा** निर्गच्छन्ति, ततस्ता अष्टौ तोयधारा **ऊर्ध्वं विहायसि 'उत्पतन्ति'** ऊर्ध्वं चलन्ति, **उत्पत्य** च **एकतो मिलन्ति, मिलित्वा** च **भगवतस्तीर्थकरस्य मूर्ध्नि निपतन्ति** ॥६३-६४॥

---

१. सूत्र ६१ अब J12 नास्ति ॥ २. द्र. ५।५४-५५ ॥ ३. संखतल V J12 ॥ संखदलसन्निगासे-आव. चूर्णि. पृ. १५० ॥ ४. अट्ठसु-अकखत्रिबस । 'अट्ठसु'त्ति प्राकृतत्वात् सप्तमी पंचम्यर्थे-हीवृ. ॥

अथ शक्रः किं कृतवान् ? इत्याह–

तए णं से सक्के देविन्दे देवराया चउरासीईए सामाणिअसाहस्सीहिं, एअस्स वि तहेव अभिसेओ भाणिअव्वो जाव[1] णमोऽत्थु ते अरहओ त्तिकट्टु वन्दइ णमंसइ, [२ त्ता] जाव पज्जुवासइ ॥ ६५ ॥

"**तए ण**"मित्यादि, **ततः स शक्रो देवेन्द्रो देवराजा चतुरशीत्या सामानिकसहस्रै**-स्त्रयस्त्रिंशता त्रायस्त्रिंशकैर्यावत् सम्परिवृतस्तैः । स्वाभाविक-वैकुर्विक-कलशैर्महता तीर्थकराभिषेकेणाभिषिञ्चति इत्यादिसूत्रोक्तोऽभिषेकविधिः शक्रस्या-च्युतेन्द्रवदस्तीति लाघवमाह-**एतस्यापि तथैवाभिषेको भणितव्यः** । कियदन्तः ? इत्याह-**यावन्नमोऽस्तु तेऽर्हते इति कृत्वा वन्दते नमस्यति** २ त्वा **यावत्पर्युपास्ते** इति ॥६५॥

अथ कृतकृत्यः शक्रो भगवतो जन्मपुरप्रापणायोपक्रमते–

तए णं से सक्के देविंदे देवराया पंच सक्के विउव्वइ, २ त्ता एगे सक्के भयवं तित्थयरं करयलपुडेणं गिण्हइ, एगे सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ दुवे सक्का उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेंति एगे सक्के वज्जपाणी पुरओ पगड्ढइ ॥ ६६ ॥

"**तए ण**"मित्यादि, प्राग्वत् ॥६६॥

अथ जन्मनगरप्रापणाय सूत्रम्–

तए णं से सक्के चउरासीईए सामाणिअसाहस्सीहिं जाव[2] अण्णेहि अ भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि अ सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव[3] णाइअरवेणं ताए उक्किट्ठाए० जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरे जेणेव जम्मणभवणे जेणेव तित्थयरमाया तेणेव उवागच्छइ, २ त्ता भगवं तित्थयरं माऊए पासे ठवेइ, २ त्ता तित्थयरपडिरूवगं पडिसाहरइ, २ त्ता ओसोवणिं पडिसाहरइ, २ त्ता एगं महं खोमजुअलं कुंडलजुअलं च भगवओ तित्थयरस्स उस्सीसगमूले ठवेइ, २ त्ता एगं महं सिरिदामगंडं तवणिज्जलंबूसगं सुवण्णपयरगमंडिअं णाणामणिरयणविविहहार-

---

१. द्र. ५।५६-५८ ॥ २. द्र. २।९० ॥ ३. द्र. ३।१२ ॥

द्धहारउवसोहिअसमुदयं भगवओ तित्थयरस्स उल्लोअंसि निक्खिवइ । तण्णं भगवं तित्थयरे अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणे, २ सुहंसुहेणं अभिरममाणे चिट्ठइ ॥ ६७ ॥

"**तए ण**"मित्यादि, **ततः स शक्रः** पञ्चरूपविकुर्वणानन्तरं **चतुरशीत्या सामानिकसहस्त्रैर्यावत् सम्परिवृतः सर्वद्धर्या यावन्नादितरवेन तयोत्कृष्टया** दिव्यया देवगत्या व्यतिव्रजन् २ **यत्रैव भगवतस्तीर्थकरस्य जन्मनगरं यत्रैव** च **जन्मभवनं यत्रैव** च **तीर्थकरमाता तत्रैवोपागच्छतीति** । **उपागत्य** च **भगवन्तं तीर्थकरं मातुः पार्श्वे स्थापयति, स्थापयित्वा** च **तीर्थकरप्रतिबिम्बं प्रतिसाहरति, प्रतिसंहृत्य चावस्वापिनीं प्रतिसंहरति, प्रतिसंहृत्य चैकं महत्** '**क्षोमयोः**' दुकूलयोर्युगलं **कुण्डलयुगलं (च) भगवतस्तीर्थकरस्योच्छीर्षकमूले स्थापयति, स्थापयित्वा** च **एकं महान्तं** श्रीदाम्नां-शोभावद्विचित्ररत्नमालानां 'गण्डं' गोलं वृत्ताकारत्वात् काण्डं वा-समूहः **श्रीदामगण्डं** श्रीदामकाण्डं वा **भगवतस्तीर्थकरस्योल्लोचे** '**निक्षिपति**' अवलम्बयतीति क्रियायोगः, "**तपनीये**"त्यादि पदत्रयं प्राग्वत् । **नानामणिरत्नानां** ये **विविधहारा-ऽर्द्धहारास्तैरुप-शोभितः** '**समुदायः**' परिकरो येषां ते तथा । अयमर्थः-श्रीमत्यो रत्नमालास्तथा ग्रथयित्वा गोलाकारेण कृता, यथा चन्द्रगोपके मध्यझुम्बनकतां प्रापिताः हारार्द्धहाराश्च परिकरझुम्बन-कताम् । उक्तस्वरूपझुम्बनकविधाने प्रयोजनमाह-"**तण्ण**"मिति प्राग्वत्, भगवांस्तीर्थकरो '**अनिमिषया**' निर्निमिषया **दृष्ट्या** अत्यादरेण **प्रेक्षमाणः २ सुखंसुखेन** '**अभिरममाणः**' रतिं कुर्व**स्तिष्ठति** ॥६७॥

अथ वैश्रमणद्वारा शक्रस्य कृत्यमाह-

तए णं से सक्के देविंदे देवराया वेसमणं देवं सद्दावेइ, २ त्ता एवं वदासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! बत्तीसं हिरण्णकोडीओ बत्तीसं सुवण्णकोडीओ बत्तीसं णंदाइं बत्तीसं भद्दाइं सुभगे[१] सुभगरूव-जुव्वण-गुणलावण्णे अ भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहराहि, २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणाहि ॥ ६८ ॥

"**तए ण**"मित्यादि, **ततः स शक्रो देवेन्द्रो देवराजा** '**वैश्रमणम्**' उत्तरदिक्पालं **देवं शब्दयति, शब्दयित्वा चैवमवादीत्-क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिय ! द्वात्रिंशतं हिरण्यकोटीः द्वात्रिंशतं सुवर्णकोटीः द्वात्रिंशतं** '**नन्दानि**' वृत्तलोहासनानि **द्वात्रिंशतं** '**भद्राणि**'

१. सोभग्ग-V । सुभग्ग-अकखत्रिबस ॥

भद्रासनानि '**सुभगानि**' शोभनानि **सुभग-यौवन-लावण्यानि रूपाणि**-रूपकाणि यत्र तानि तथा, सूत्रे पदव्यत्यय आर्षत्वात्, '**चः**' समुच्चये, **भगवतस्तीर्थकरस्य जन्मभवने संहर** आनयेत्यर्थः, **संहृत्य च एनामाज्ञप्तिं प्रत्यर्पय**॥६८॥

तए णं से वेसमणे देवे सक्केणं जाव[1] विणएणं वयणं पडिसुणेइ, २ त्ता जंभए देवे सद्दावेइ, २ त्ता एवं वदासि-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जाव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहरह, साहरित्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणह ॥ ६९ ॥

तए णं ते जंभगा देवा वेसमणेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव[2] खिप्पामेव बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जाव य भगवओ तित्थगरस्स जम्मण-भवणंसि साहरंति, २ त्ता जेणेव वेसमणे देवे तेणेव जाव[3] पच्चप्पिणंति ॥ ७० ॥

तए णं से वेसमणे देवे जेणेव सक्के देविंदे देवराया जाव[4] पच्चप्पिणइ ॥ ७१ ॥

ततः स वैश्रमणो देवः शक्रेण यावत्पदात् 'देविंदेणं देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए एवं देवो तहत्ति आणाए' इति ग्राह्यम्, **विनयेन वचनं प्रतिश्रृणोति, प्रतिश्रुत्य** च '**जृम्भकान् देवान्**' तिर्यग्लोके वैताढ्यद्वितीयश्रेणिवासित्वेन तिर्यग्लोकगत-निधानादिवेदिनः **शब्दयति, शब्दयित्वा चैवमवादीत्**, शेषमनुवादसूत्रत्वात् सुबोधम् ॥६९-७१॥ अथास्मासु स्वस्थानं प्राप्तेषु निःसौन्दर्याः सौन्दर्याधिके भगवति मा दुष्टा दुष्टदृष्टिं निक्षिपन्त्विति तदुपायार्थमाह-

तए णं से सक्के देविंदे देवराया ३ अभिओगे देवे सद्दावेइ, २ त्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिआ ! भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरंसि सिंघाडग जाव महापहपहेसु महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वदह-हंदि[5] सुणंतु भवंतो बहवे भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया देवा य देवीओ अ जे णं देवाणुप्पिआ ! तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए वा असुभं मणं

१. द्र. ५।२३ ॥ २. द्र. ३।८ ॥ ३. द्र. ३।१३ ॥ ४. द्र. ३।१३ ॥ ५. हंद-कखत्रिपस पुके ॥

पधारेइ, तस्स णं अज्जगमंजरिआ इव सयधा मुद्धाणं फुट्टउ त्तिकट्टु घोसणं घोसेह, २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणहति ॥ ७२ ॥

"**तए ण**"मित्यादि, '**ततः**' वैश्रमणेनाज्ञाप्रत्यर्प्पणानन्तरं **स शक्रः ३ अभियोगान् देवान् शब्दयति, शब्दयित्वा चैवमवादीत्-क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया ! भगवतस्तीर्थकरस्य जन्मनगरे शृङ्गाटकयावन्महापथपथेषु महता २ शब्देन उद्घोषयन्तः २ एवं वदत 'हन्त !'** इति प्राग्वत् **शृण्वन्तु भवन्तो बहवो भवनपति-व्यन्तरज्योतिष्क-वैमानिका देवाश्च देव्यश्च 'यः'** निर्द्दिष्टनामा '**देवानांप्रिया !**' इति सम्बोधनं भवतां मध्ये **तीर्थकरस्य तीर्थकर-मातुर्वोपर्यशुभं मनः 'प्रधारयति'** दुष्टं सङ्कल्पयति **तस्य 'आर्यकमञ्जरिकेव'** आर्यकः-वनस्पतिविशेषो यो लोके 'आजओ' इति प्रसिद्धस्तस्य मञ्जरिका इव **मूर्द्धा शतधा स्फुटतु 'इतिकृत्वा'** इत्युक्त्वा **घोषणं घोषयत, घोषयित्वा चैतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयत** इति ॥७२॥

अथ ते यच्चक्रुस्तदाह-

तए णं ते आभिओगा देवा जाव[1] एवं देवो त्ति आणाए पडिसुणंति, २ त्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतिआओ पडिणिक्खमंति, २ [त्ता] खिप्पामेव भगवओ तित्थगरस्स जम्मणणगरंसि सिंघाडग जाव[2] एवं वयासी-हंदि सुणंतु भवंतो बहवे भवणवइ जाव[3] जे णं देवाणुप्पिआ ! तित्थयरस्स जाव फुट्टिहीति त्तिकट्टु घोसणगं घोसंति, २ त्ता एअमाणत्तिअं पच्चप्पिणंति ॥ ७३ ॥

"**तए ण**"मित्यादि, व्यक्तम् अनुवादसूत्रत्वात् ॥७३॥

अथ निगमनसूत्रमाह-

तए णं ते बहवे भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिआ देवा भगवओ तित्थगरस्स जम्मणमहिमं करेंति, २ त्ता जेणेव णंदीसरदीवे तेणेव उवागच्छंति, २ त्ता अट्ठाहियाओ महामहिमाओ करेंति, २ [त्ता] जामेव दिसिं पाउब्भूआ तामेव दिसिं पडिगया ॥ ७४ ॥

"**तए ण**"मिति, ततस्ते **बहवो भवनपत्यादयो देवा भगवत-स्तीर्थकरस्य जन्ममहिमानं कुर्वन्ति, कृत्वा** च सिद्धसमीहितकार्याः मङ्गलार्थं **यत्रैव नन्दीश्वरवरद्वीप-**

१. द्र. ५।२३ ॥ २-३. द्र. ५।७२ ॥

स्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य 'अष्टाह्निकामहामहिमाः'[1] अष्टदिननिवर्त्तनी-योत्सवविशेषान् **कुर्वन्ति**, बहुवचनं चात्र सौधर्म्मेन्द्रादिभिः प्रत्येकं क्रियमाणत्वात् । अत्र यस्येन्द्रस्य यस्मिन् अञ्जनगिरौ येषु च दधिमुखगिरिषु तल्लोकपालानाम् अष्टाह्निकाधिकारः[2] स प्राक् ऋषभदेवनिर्वाणाधिकारे उक्त इति नात्र लिख्यते ॥७४॥

इति सातिशयधर्मदेशनारससमुल्लासविस्मयमानऐदंयुगीननराधिपतिचक्रवर्त्तिसमान-श्रीअकब्बरसुरत्राणप्रदत्तषाण्मासिकसर्वजगज्जन्तुजाताभयप्रदान-शत्रुञ्जयादिकरमोचन-स्फुरन्मानप्रदानप्रभृतिबहुमान-युगप्रधानोपमान-साम्प्रतविजयमानश्रीमत्तपागच्छाधिराजश्रीहीरविजयसूरीश्वर-पदपद्मोपासनाप्रवणमहोपाध्यायश्रीसकलचन्द्रगणिशिष्योपाध्यायश्रीशान्तिचन्द्रगणिविरचितायां जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्तौ प्रमेयरत्नमञ्जूषानाम्न्यां तीर्थकृज्जन्माभिषेकाधिकारवर्णनो नाम पञ्चमो वक्षस्कारः ॥५॥

●●●

१. ०ष्टाहिका० पु ॥ २. अष्टाहिका० पु ॥

अथ षष्ठो वक्षस्कारः ॥६॥

पृष्टं जम्बूद्वीपान्तर्वर्त्ति स्वरूपम्, सम्प्रति तस्यैव चरमप्रदेशस्वरूपप्रश्नायाह–

जंबुद्दीवस्स णं भंते ! दीवस्स पदेसा लवणसमुद्दं पुट्ठा ?, हंता पुट्ठा ॥ १ ॥

"**जंबुद्दीवस्स ण**"मित्यादि, **जम्बूद्वीपस्य 'णम्'** इति पूर्ववत् **द्वीपस्य प्रदेशा** लवणसमुद्रशब्द–सहचाराच्चरमप्रदेशा इति व्याख्येयम्, अन्यथा जम्बूद्वीपमध्यवर्त्तिप्रदेशानां लवणसमुद्रस्य संस्पर्शसम्भावनाया अभावात् **लवणसमुद्रं 'स्पृष्टाः'** स्पृष्टवन्तः, कर्त्तरि क्तप्रत्ययः, अत्र काकुपाठात् प्रश्नसूत्रावगतिः । भगवानाह–'**हन्ता !**' इति प्रत्यवधारणे । अथ सम्प्रदायादिना द्वीपानन्तरीयाः समुद्राः समुद्रानन्तरीया द्वीपाः, तेन ये यदनन्तरीयास्ते तत्संस्पर्शिन इति सुज्ञानेऽप्यस्मिन् प्रष्टव्येऽर्थे यत् प्रश्नविधानं तदुत्तरसूत्रे प्रश्नबीजाधानायेति तदाह ॥१॥

ते णं भंते ! किं जंबुद्दीवे दीवे ? लवणसमुद्दे ?, गोअमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे णो खलु लवणसमुद्दे ॥ २ ॥

'ते' जम्बूद्वीपचरमप्रदेशा **भदन्त ! किं जम्बूद्वीपो द्वीपः** उत इति गम्यस्तेन **लवणसमुद्रो** वा इत्यर्थः । पृच्छतोऽयमाशयः–यद्येन स्पृष्टं तत्किञ्चित्तद्व्यपदेशं लभते किञ्चित् पुनर्न तथा, यथा तर्जन्या संस्पृष्टा ज्येष्ठाङ्गुलिर्ज्येष्ठैवेति, तेन जम्बूद्वीपचरमप्रदेशाः लवणसमुद्रं स्पृष्टाः कथं व्यपदेश्याः ? अत्रोत्तरम्–**गौतम !** निपातस्यावधारणार्थत्वात् ते चरमप्रदेशाः **जम्बूद्वीप** एव **द्वीपः** जम्बूद्वीपसीमावर्त्तित्वात् **न खलु** ते **लवणसमुद्रः**, जम्बूद्वीपसीमानमतिक्रम्य लवणसमुद्रसीमानमप्राप्तत्वात् किन्तु स्वसीमागता एव लवणसमुद्रं स्पृष्टास्तेन तटस्थतया संस्पर्शभवनात् तर्जन्या संस्पृष्टा ज्येष्ठाङ्गुलिरिव स्वव्यपदेशं लभते ॥२॥

एवं लवणसमुद्दस्सवि पदेसा जंबुद्दीवे पुट्ठा भाणिअव्वा[१] **॥ ३ ॥**

'एवम्' उक्तरीत्या **लवणसमुद्रस्यापि** चरम**प्रदेशा जम्बूद्वीपं स्पृष्टा** न जम्बूद्वीपः, किन्तु लवणसमुद्रो लवणसमुद्रसीमावर्त्तित्वादित्यादि **भणितव्यम्** ॥३॥

---

१. द्र. जीवा. ३।५७३-५७४ ॥

अनन्तरसूत्रे जम्बूद्वीप-लवणोदयोः परस्परमव्यपदेश्यता उक्ता, सम्प्रति तयोरेव जीवानां परस्परमुत्पत्त्याधारता पृच्छ्यते इत्याह-

जंबुद्दीवे णं भंते ! [दीवे] जीवा उद्दाइत्ता २ लवणसमुद्दे पच्चायंति ?, गोअमा ! अत्थेगइआ पच्चायंति अत्थेगइआ नो पच्चायंति ॥ ४ ॥

एवं लवणसमुद्दस्सवि जंबुद्दीवे दीवे णेअव्वं[1] ॥ ५ ॥

"**जंबुद्दीवे**" इत्यादि, **जम्बूद्वीपे भदन्त** ! द्वीपे **जीवा 'अवद्राय २'** मृत्वा २ **लवणसमुद्रे 'प्रत्यायान्ति'** आगच्छन्ति, अत्रापि काकुपाठात् प्रश्नावगतिः । भगवानाह-गौतम ! **अस्तीति** निपातोऽत्र बह्वर्थः, सन्ति **'एकका'** जीवा येऽवद्राय २ लवणसमुद्रे **प्रत्यायान्ति, सन्त्येकका** ये **न प्रत्यायान्ति**, जीवानां तथा तथा स्वकर्मवशतया गतिवैचित्र्यसम्भवात्, **एवं लवणसमुद्रसूत्रमपि** भावनीयम् ॥४-५॥

सम्प्रति प्रागुक्तानां जम्बूद्वीपमध्यवर्त्तिपदार्थानां सङ्ग्रहगाथामाह-

"खंडा १ जोअण २ वासा ३ पव्वय ४ कूडा ५ य तित्थ ६ सेढीओ ७ ।
विजय ८द्दह९सलिलाओ १० पिंडए[2] होइ संगहणी ॥१॥" ॥ ६ ॥

"**खंडा जोअण**" इत्यादिसङ्ग्रहवाक्यस्य सङ्क्षिप्तत्वेन दुर्बोधत्वात् सूत्रकृदेव प्रश्नोत्तररीत्या विवृणोति ॥६॥

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे भरहप्पमाणमेत्तेहिं खंडेहिं केवइअं खंडगणिएणं पं० ?, गो० ! णउअं खंडसयं खंडगणिएणं पण्णत्ते ॥ ७ ॥

तत्र सूत्रम्-"**जंबुद्दीवे**" इत्यादि, **जम्बूद्वीपो भदन्त ! द्वीपो 'भरतप्रमाणं'** षट्कलाधिकषड्विंशतियोजनाधिकपञ्चशतयोजनानि तदेव **मात्रा**परिमाणं येषां तानि तथा, एवंविधैः **'खण्डैः'** शकलैः इत्येवंरूपेण **'खण्डगणितेन'** खण्डसङ्ख्यया **कियान् प्रज्ञप्तः** ?। भगवानाह-**गौतम ! नवत्यधिकं खण्डशतं खण्डगणितेन प्रज्ञप्तः** । कोऽर्थः ? भरतप्रमाणैः खण्डैर्नवत्यधिकशतसङ्ख्याकैर्मिलितैर्जम्बूद्वीपः सम्पूर्णलक्षप्रमाणो भवति । तत्र दक्षिणोत्तरतः खण्डमीलना प्राक् भरताधिकारवृत्तौ चिन्तितेति न पुनरुच्यते, पूर्वपश्चिमतस्तु यद्यपि खण्डगणितविचारणा सूत्रे न कृता वनमुखादिभिरेव लक्षपूर्तेरभिधानात्, तथापि खण्डगणित-विचारे क्रियमाणे भरतप्रमाणानि तावन्त्येव खण्डानि भवन्ति ॥७॥ अथ "**योजने**"तिद्वारसूत्रम् -

१. द्र. जीवा. ३।५७६ ॥ २. पिंडेसिं-लघुसङ्ग्रहणी ॥

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइअं जोअणगणिएणं[1] पण्णत्ते ?, गोअमा !
"सत्तेव य कोडिसया णउआ[2] छप्पण्ण सयसहस्साइं ।
चउणवइं च सहस्सा सयं दिवड्ढं च गणिअपयं ॥१॥" ॥ ८ ॥

"**जंबुद्दीवे ण**"मित्यादि, **जम्बूद्वीपो भदन्त ! द्वीपः कियान् 'योजनगणितेन'** समचतुरस्रयोजनप्रमाणखण्डसर्वसङ्ख्यया **प्रज्ञप्तः** ?, भगवानाह-**गौतम ! सप्त कोटिशतानि 'एवः'** अवधारणे **'चः'** उत्तरत्र सङ्ख्यासमुच्चयार्थः **'नवतानि'** नवतिकोट्यधिकानीति व्याख्येयं प्रस्तावात्, अन्यथा कोटिशततो द्वितीयस्थाने सत्सु लक्षादिस्थानेषु नवदशकरूपा नवतिर्न युज्यते गणितशास्त्रविरोधात् । तथा **षट्पञ्चाशच्छतसहस्राणि** लक्षाणीत्यर्थः, **चतुर्नवतिश्च सहस्राणि शतं च 'द्व्यर्द्धं'** सार्द्धं पञ्चाशदधिकं योजनानामित्येतावत्प्रमाणं जम्बूद्वीपस्य **'गणितपदं'** क्षेत्रमित्यर्थः । सूत्रे च योजनसङ्ख्यायाः प्रकान्तत्वात् योजनावधिरेव सङ्ख्या निर्दिष्टा, अन्यत्र तु **भगवतीवृत्त्यादौ** साधिकत्वं विवक्षितम् । तच्चेदम्-

"गाउअमेगं पण्णरस, धणुस्सया तह य धणूणि पण्णरस ।
सट्ठिं च अंगुलाइं, जंबुद्दीवस्स गणिअपयं ॥१॥" [१ गा० १५१५ ध. ६० अं०] इति,

इयं च व्यक्तैव करणं चात्र-"**विक्खंभपायगुणिओ अ परिरओ तस्स गणिअपयं**" [**लघुक्षेत्र १८८ लघुसं. ७**] इति वचनात् जम्बूद्वीपपरिधिस्त्रिलक्षषोडशसहस्रद्विशतसप्तविंशति [३,१६,२२७] योजनादिको जम्बूद्वीपविष्कम्भस्य लक्षरूपस्य पादेन-चतुर्थांशेन पञ्चविंशतिसहस्ररूपेण गुणितो जम्बूद्वीपगणितपदमिति । तथाहि-जम्बूद्वीपपरिधिस्तिस्रो लक्षाः षोडश सहस्राणि द्वे शते सप्तविंशत्यधिके योजनानां तथा गव्यूतत्रयम् अष्टाविंशत्यधिकं शतं धनुषां त्रयोदशाङ्गुलानि एकं चार्द्धाङ्गुलम्, यवादयस्तु **श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणप्रणीत-क्षेत्रविचारसूत्रवृत्त्यादौ** न विवक्षिता अतो न तद्विवक्षा क्रियते, तत्र योजनराशौ पञ्चविंशति-सहस्रैर्गुणिते सप्तकोटिशतानि नवतिकोटयः षट्पञ्चाशल्लक्षाः पञ्चसप्ततिः सहस्राणि भवन्ति । तथा क्रोशत्रये [७,९०,५६,७५,०००] पञ्चविंशतिसहस्रगुणिते जातं पञ्चसप्ततिसहस्राणि गव्यूतानाम्, एषां च योजनानयनार्थं चतुर्भिर्भागे हृते लब्धान्यष्टादश सहस्राणि सप्त शतानि पञ्चाशदधिकानि योजनानाम्, अस्मिंश्च सहस्रादिके पूर्वराशौ प्रक्षिप्ते जातानि ९३ सहस्राणि ७ शतानि ५० अधिकानि कोट्यादिका सङ्ख्या तु सर्वत्र तथैव । तथा धनुषामष्टाविंशं शतं

---

१. **जोयणभाइएणं-अब** J2 ॥ २. **०णउतिं-अकखत्रिबस**-J12 ॥

पञ्चविंशतिसहस्रैर्गुण्यते जाता द्वात्रिंशल्लक्षा धनुषां ३२०००००० अष्टाभिश्च धनुःसहस्रैर्योजनं भवति, ततो योजनानयनार्थमष्टाभिः सहस्रैर्भागे लब्धानि चत्वारि योजनशतानि, अस्मिंश्च पूर्वराशौ प्रक्षिप्ते जातानि ९४ सहस्राणि शतं पञ्चाशदधिकम्, अङ्गुलान्यपि त्रयोदश पञ्चविंशतिसहस्रैर्गुण्यन्ते जातानि त्रीणि लक्षाणि पञ्चविंशतिसहस्राधिकानि अर्द्धाङ्गुलमपि पञ्चविंशतिसहस्रैरभ्यस्यते जातान्यर्द्धाङ्गुलानां पञ्चविंशतिसहस्राणि तेषामर्द्धे लब्धान्यङ्गुलानां द्वादश सहस्राणि पञ्चशताधिकानि । तेषु पूर्वोक्ताङ्गुलराशौ प्रक्षिप्तेषु जातोऽङ्गुलराशिस्त्रीणि लक्षाणि सप्तत्रिंशत्सहस्राणि पञ्चशताधिकानि । एषां धनुरानयनाय षण्णवत्या भागे हृते लब्धानि धनुषां पञ्चत्रिंशच्छतानि पञ्चदशाधिकानि शेषं षष्टिरङ्गुलानि । अस्य धनूराशेर्गव्यूतानयनाय सहस्रद्वयेन भागे हृते लब्धमेकं गव्यूतं शेषं धनुषां पञ्चदश शतानि पञ्चदशाधिकानि । सर्वाग्रेण जातमिदं-योजनानां सप्त कोटिशतानि नवतिकोट्यधिकानि षट्पञ्चाशल्लक्षाश्चतुर्णवतिसहस्राणि शतमेकं पञ्चाशदधिकं तथा गव्यूतमेकं धनुषां पञ्चदशशतानि पञ्चदशाधिकानि अङ्गुलानां षष्टिरिति [७,९०,५६,९४,१५० यो. १ ग. १५५ ध. ६० अं.] ॥८॥ गतं योजनद्वारम्, अथ वर्षाणि-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे कति वासा पण्णत्ता ?, गोअमा ! सत्त वासा पण्णत्ता, तंजहा-भरहे एरवए हेमवए हिरण्णवए हरिवासे रम्मगवासे महाविदेहे ॥ ९ ॥

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ वासहरा पण्णत्ता ? केवइआ मंदरा पव्वया ? केवइआ चित्तकूडा ? केवइआ विचित्तकूडा ? केवइआ जमगपव्वया[१] ? केवइआ कंचणगपव्वया ? केवइआ वक्खारा ? केवइआ दीहवेअड्ढा ? केवइआ वट्टवेअड्ढा पण्णत्ता ?, गोअमा ! जंबुद्दीवे दीवे छ वासहरपव्वया, एगे मंदरे पव्वए, एगे चित्तकूडे, एगे विचित्तकूडे, दो जमगपव्वया, दो कंचणगपव्वयसया, वीसं वक्खारपव्वया, चोत्तीसं दीहवेअड्ढा, चत्तारि वट्टवेअड्ढा, एवामेव सपुव्वा-ऽवरेणं जंबुद्दीवे दीवे दुण्णि अउणत्तरा पव्वयसया भवंतीतिमक्खायं ॥ १० ॥

---

१. जवग० अब J12 । एवमग्रेऽपि ॥

"**जंबुद्दीवे ण**"मित्यादि, व्यक्तम् । अथ पर्वतद्वारम्-"**जंबुद्दीवे ण**"मित्यादि, प्रश्नसूत्रं व्यक्तम्, उत्तरसूत्रे सङ्ख्यामीलनाय किञ्चिदुच्यते-**षट् 'वर्षधराः'** क्षुल्लहिमवदादयः, **एको 'मन्दरः'** मेरुः **एकश्चित्रकूटः एकश्च विचित्रकूटः**, एतौ च यमलजातकाविव द्वौ गिरी देवकुरुवर्त्तिनौ, **द्वौ यमकपर्वतौ** तथैवोत्तरकुरुवर्त्तिनौ, **द्वे काञ्चनकपर्वतशते** देवकुरूत्तर-कुरुवर्त्तिह्रददशकोभयकूलयोः प्रत्येकं दश२काञ्चनकसद्भावात् । तथा **विंशतिर्वक्षस्कार-पर्वताः**, तत्र गजदन्ताकारा गन्धमादनादयश्चत्वारः तथा चतुःप्रकारमहाविदेहे प्रत्येकं चतुष्क २ सद्भावात् षोडश चित्रकूटादयः सरला द्वयेऽपि मिलिता यथोक्तसङ्ख्याकाः । तथा **चतुस्त्रिं-शद्दीर्घवैताढ्या** द्वात्रिंशद्विजयेषु भरतैरावतयोश्च प्रत्येकमेकैकभावात्, **चत्वारो वृत्तवैताढ्याः** हैमवतादिषु चतुर्षु वर्षेषु एकैकभावात्, "**एवामेव सपुव्वावरेणं**"ति प्राग्वत्, **जम्बूद्वीपे द्वीपे एकोनसप्तत्यधिके द्वे पर्वतशते भवतः 'इत्याख्यातं'** मयाऽन्यैश्च तीर्थकृद्भिः ॥९-१०॥

अथ कूटानि, तत्र सूत्रम्-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ वासहरकूडा ? केवइआ वक्खारकूडा ? केवइआ वेअड्ढकूडा ? केवइआ मंदरकूडा पं० ?, गो० ! छप्पण्णं वासहर-कूडा, छण्णउइं वक्खारकूडा, तिण्णि छलुत्तरा वेअड्ढकूडसया, नव मंदर-कूडा पण्णत्ता, एवामेव सपुव्वा-ऽवरेणं जंबुद्दीवे दीवे चत्तारि सत्तट्ठा कूडसया भवन्ती तिमक्खायं ॥ ११ ॥

"**जंबुद्दीवे ण**"मित्यादि, **जम्बूद्वीपे द्वीपे कियन्ति वर्षधरकूटानि** ? इत्यादिप्रश्नसूत्रं व्यक्तम् । उत्तरसूत्रे **षट्पञ्चाशद्वर्षधरकूटानि**, तथाहि-क्षुद्रहिमवच्छिखरिणोः[१] प्रत्येकमेकादश [२२], महाहिमवद्रुक्मिणोः प्रत्येकमष्टौ [१६], निषध-नीलवतोः प्रत्येकं नव [१८], सर्व-सङ्ख्यया ५६ । **वक्षस्कारकूटानि षण्णवतिः**, तद्यथा-सरलवक्षस्कारेषु षोडशसु १६ प्रत्येकं चतुष्टयभावात् ६४, गजदन्ताकृतिवक्षस्कारेषु गन्धमादन-सौमनसयोः सप्त [१४], माल्यवद्विद्युत्प्रभयोः नव [१८] इति उभयमीलने यथोक्तसङ्ख्या । **त्रीणि षडुत्तराणि वैताढ्यकूटशतानि**, तत्र भरतैरावतयोर्विजयानां च वैताढ्येषु चतुस्त्रिंशति प्रत्येकं नवसम्भवादुक्त-सङ्ख्यानयनम्, वृत्तवैताढ्येषु च कूटाभावः, अत एव वैताढ्यसूत्रे न दीर्घपदोपादानं विशेषणस्य व्यवच्छेदकत्वात् अत्र च व्यवच्छेद्यस्याभावादिति । **मेरौ नव**, तानि च

१. क्षुल्लहि० पु ॥

नन्दनवनगतानि ग्राह्याणि, न भद्रशालवनगतानि दिग्हस्तिकूटानि, तेषां भूमिप्रतिष्ठितत्वेन स्वतन्त्रकूटत्वादिति । **सङ्ग्रहणिगाथायां "पव्वयकूडा ये"**त्यत्र चोऽनुक्तसमुच्चये तेन चतुस्त्रिंशद् ऋषभकूटानि तथा अष्टौ जम्बूवनगतानि तावन्त्येव शाल्मलीवनगतानि भद्रशालवनगतानि च सर्वसङ्ख्यया‌ऽष्टपञ्चाशत्सङ्ख्याकानि ग्राह्याणि । ननु तर्हि एतद्गाथाविवरणसूत्रे **"चत्तारि सत्तसट्ठा कूडसया"** इत्येवंरूपे सङ्ख्याविरोधः, उच्यते, एषां[1] गिर्यनाधारकत्वेन स्वतन्त्रगिरित्वान्न कूटेषु गणना, अयमेवाशय ऋषभकूटसङ्ख्या-सूत्रपृथक्करणेन सूत्रकृता स्वयमेव दर्शयिष्यते, यच्च प्राक् ऋषभकूटाधिकारे "कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे उसभकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते" इति सूत्रम्, तच्छिलोच्चयमात्रतापरं व्याख्येयमिति सर्वं सम्यक् ॥११॥

अथ तीर्थानि-

जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे कति तित्था पं० ?, गो० ! तओ तित्था पं०, तं०-मागहे वरदामे पभासे ॥ १२ ॥

"जंबुद्दीवे" २ इत्यादि, प्रश्नसूत्रे तीर्थानि चक्रिणां स्वस्वक्षेत्रसीमासुर-साधनार्थं महाजलावतारणस्थानानि । उत्तरसूत्रे भरते **त्रीणि तीर्थानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-मागधं** पूर्वस्यां गङ्गासङ्गमे समुद्रस्य **वरदाम** दक्षिणस्यां **प्रभासं** पश्चिमायां सिन्धुसङ्गमे समुद्रस्य ॥१२॥

जंबुद्दीवे २ एरवए वासे कति तित्था पं० ?, गो० ! तओ तित्था पं० तं०-मागहे वरदामे पभासे ॥ १३ ॥

एवमैरावतसूत्रमपि भावनीयम् । नवरं नद्यौ चात्र रक्ता-रक्तवत्यौ तयोः समुद्रसङ्गमे मागध-प्रभासे वरदामाख्यं च तत्रत्यापेक्षया तथैव ॥१३॥

जंबुद्दी० महाविदेहे वासे एगमेगे चक्कवट्टिविजए कति तित्था पं० ?, गो० तओ तित्था पं०, तं०-मागहे वरदामे पभासे, एवामेव सपुव्वा-ऽवरेणं जंबुद्दीवे २ एगे बिउत्तरे तित्थसए[2] भवतीतिमक्खायं ॥ १४ ॥

विजयसूत्रे चायं विशेषः-विजयसत्कगङ्गादि४महानदीनां यथार्हं शीता-शीतोदयोः सङ्गमे मागध-प्रभासाख्यानि भावनीयानि वरदामाख्यानि तेषां मध्यगतानि भाव्यानि । **एवमेव पूर्वा-ऽपरमीलनेन एकं द्व्युत्तरं[3] तीर्थशतं भवतीत्याख्यातमिति** ॥१४॥

---

१. एतां-पुके ॥ २. तित्थ० J12 नास्ति ॥ ३. पुके । त्र्युत्तरं-मु. ॥

अथ श्रेणयः-

जंबुद्दीवे दीवे केवइआ विज्जाहरसेढीओ ? केवइआ आभिओगसेढीओ पं० ?, गो० ! जंबुद्दीवे दीवे अट्ठसट्ठी विज्जाहरसेढीओ अट्ठसट्ठी आभिओगसेढीओ पण्णत्ताओ, एवामेव सपुव्वा-ऽवरेणं जंबुद्दीवे दीवे छत्तीसे सेढिसए भवतीतिमक्खायं ॥ १५ ॥

"**जंबुद्दीवे**" इत्यादि, प्रश्नसूत्रं व्यक्तम् । उत्तरसूत्रे **गौतम ! जम्बूद्वीपे द्वीपे 'अष्टषष्टिविद्याधरश्रेणयः'** विद्याधरावासभूता वैताढ्यानां पूर्वा-ऽपरोदध्यादिपरिच्छिन्ना आयतमेखला भवन्ति, चतुस्त्रिंशत्यपि वैताढ्येषु दक्षिणत उत्तरतश्च एकैकश्रेणिभावात्, तथैवा**ष्टषष्टिराभियोग्यश्रेणयः, एवमेव पूर्वा-ऽपर**मीलनेन **जम्बूद्वीपे द्वीपे 'षट्त्रिंशं'** षट्त्रिंशदधिकं **श्रेणिशतं भवतीत्याख्यातम्** ॥१५॥

अथ विजयाः-

जंबुद्दीवे दीवे केवइआ चक्कवट्टिविजया ? केवइआओ रायहाणीओ ? केवइआओ तिमिसगुहाओ ? केवइआओ खंडप्पवायगुहाओ ? केवइआ कयमालया देवा ? केवइया णट्टमालया देवा ? केवइआ उसभकूडा पं० ?, गो० ! जंबुद्दीवे दीवे चोत्तीसं चक्कवट्टिविजया, चोत्तीसं रायहाणीओ, चोत्तीसं तिमिसगुहाओ, चोत्तीसं खंडप्पवायगुहाओ, चोत्तीसं कयमालया देवा, चोत्तीसं णट्टमालया देवा, चोत्तीसं उसभकूडा पव्वया पं० ॥ १६ ॥

"**जंबुद्दीवे**"त्ति, प्रश्नसूत्रं व्यक्तम् । उत्तरसूत्रे **जम्बूद्वीपे द्वीपे चतुस्त्रिंश-च्चक्रवर्त्तिविजयाः**, तत्र द्वात्रिंशन्महाविदेहविजया द्वे च भरतैरावते [1]उभयोरपि चक्रवर्ति-विजेतव्यक्षेत्रखण्डरूपस्य चक्रवर्त्तिविजयशब्दवाच्यस्य सत्त्वात्, एवं **चतुस्त्रिंशद्राजधान्य-श्चतुस्त्रिंशत्तमिस्रागुहाः**, प्रतिवैताढ्यमेकैकसम्भवात्, एवं **चतुस्त्रिंशत् खण्डप्रपातगुहाः, चतुस्त्रिंशत्कृतमालका देवाः, चतुस्त्रिंश[2]न्नृत्तमालका देवाश्चतुस्त्रिंशत् ऋषभकूट**नामकाः **पर्वताः प्रज्ञप्ताः**, प्रतिक्षेत्रं सम्भवतश्चक्रवर्त्तिनो दिग्विजयसूचकनामन्यासार्थमेकैकसद्भावात्, यच्चात्र विजयद्वारे प्रक्रान्ते राजधान्यादिप्रश्नोत्तरसूत्रे तद् विजयान्तर्गतत्वेनेति ॥१६॥

अथ ह्रदाः-

१. अनयो० पुके ॥ २. ०न्नक्तमालका-मु. ॥

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ महद्दहा पं० ?, गो० ! सोलस महद्दहा पण्णत्ता ॥ १७ ॥

"**जंबुद्दीवे २**" इत्यादि प्रश्नसूत्रं व्यक्तम् । उत्तरसूत्रे-**षोडश महाह्रदाः**, षड् वर्षधराणां शीता-शीतोदयोश्च प्रत्येकं पञ्च पञ्च ॥१७॥

अथ सलिलाः-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइयाओ महाणईओ वासहरपवहाओ ? केवइआओ महाणईओ कुंडप्पवहाओ पण्णत्ता ?, गोयमा ! जंबुद्दीवे २ चोद्दस महाणईओ वासहरपव्वहाओ, छावत्तरिं महाणईओ कुंडप्पवहाओ, एवामेव सपुव्वा-ऽवरेणं जंबुद्दीवे दीवे णउतिं महाणईओ भवंतीतिमक्खायं ॥ १८ ॥

"**जंबुद्दीवे**" इत्यादि, **जम्बूद्वीपे द्वीपे कियत्यो महानद्यो** 'वर्षधरेभ्यः' "तात्स्थ्यात् तद्व्यपदेश" [ ] इति वर्षधरह्रदेभ्यः 'प्रवहन्ति' निर्गच्छन्तीति **वर्षधरप्रवहाः**, अन्यथा कुण्डप्रभवाणामपि वर्षधरनितम्बस्थकुण्डप्रभवत्वेन वर्षधरप्रभवा इति वाच्यं स्यात्, **कियत्यः 'कुण्डप्रभवा'** वर्षधरनितम्बवर्त्तिकुण्डनिर्गताः प्रज्ञप्ताः ?, **गौतम ! जम्बूद्वीपे द्वीपे चतुर्दश महानद्यो वर्षधरह्रदप्रभवाः**, भरतगङ्गादयः प्रतिक्षेत्रं द्विद्विभावात् । **कुण्डप्रभवाः षट्सप्ततिर्महानद्यः**, तत्र शीताया उदीच्येष्वष्टसु विजयेषु शीतोदाया याम्येष्वष्टसु विजयेषु च एकैकभावेन षोडश गङ्गाः षोडश सिन्धवश्च, तथा शीताया याम्येष्वष्टसु विजयेषु शीतोदाया उदीच्येष्वष्टसु विजयेषु चैकैकभावेन षोडश रक्ता रक्तवत्यश्च, एवं चतुःषष्टिः द्वादश च प्रागुक्ता अन्तर्नद्यः, सर्वमीलने षट्सप्ततिरिति । कुण्डप्रभवानां तु शीता-शीतोदापरिवारभूतत्वेनासम्भवदपि महानदीत्वं स्वस्वविजयगतचतुर्दशसहस्रनदीपरिवारसम्पदुपेतत्वेन भाव्यम् । **एवमेव 'सपूर्वा-ऽपरेण'** चतुर्दश-षट्सप्ततिरूपसङ्ख्यामीलनेन **जम्बूद्वीपे [२] नवतिर्महानद्यो भवन्तीत्याख्यातमिति** ॥१८॥

अथैतासां चतुर्द्दशमहानदीणां नदीपरिवारसङ्ख्यां समुद्रप्रवेशदिशं चाह-

जंबुद्दीवे २ भरहेरवएसु वासेसु कइ महाणईओ पं० ?, गोअमा ! चत्तारि महाणईओ पण्णत्ताओ, तं०-गंगा सिंधू रत्ता रत्तवई । तत्थ णं एगमेगा महाणई चउद्दसहिं सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ, एवामेव सपुव्वा-ऽवरेणं जंबुद्दीवे दीवे भरह-एरवएसु वासेसु छप्पण्णं सलिलासहस्सा भवंतीतिमक्खायं ॥ १९ ॥

"**जंबुद्दीवे**" इत्यादि व्यक्तम् । नवरं यद् भरतैरावतयोर्युगपद्ग्रहणं तत्समानक्षेत्रत्वात्, भरते गङ्गा पूर्वलवण-समुद्रं सिन्धुः पश्चिमलवणसमुद्रं प्रविशति, ऐरावते च रक्ता पूर्वसमुद्रं रक्तवत्यपरसमुद्रं च ॥१९॥

जंबुद्दीवे णं भंते ! हेमवय-हेरण्णवएसु वासेसु कति महाणईओ पण्णत्ताओ ?, गो० ! चत्तारि महाणईओ पण्णत्ताओ, तंजहा-रोहिता रोहिअंसा सुवण्णकूला रुप्पकूला[1] । तत्थ णं एगमेगा महाणई अट्ठावीसाए अट्ठावीसाए सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ, एवामेव सपुव्वा-ऽवरेणं जंबुद्दीवे २ हेमवय-हेरण्णवएसु वासेसु बारसुत्तरे सलिलासयसहस्से भवतीतिमक्खायं ॥ २० ॥

तथा "**जंबुद्दीवे**"त्ति, निगदसिद्धम् । नवरं हैमवत-हैरण्यवतयोः समानयुग्मिक्षेत्रत्वेन सहोक्तिः, हैमवते रोहिता पूर्वं लवणं रोहितांशा पश्चिमम्, हैरण्यवते[2] सुवर्णकूला पूर्वं लवणं रूप्यकूला पश्चिमम् । **एवमेव पूर्वा-ऽपरमीलनेन जम्बूद्वीपे [२] हैमवत-हैरण्यवतयोः क्षेत्रयोर्द्वादशसहस्रोत्तरं नदीशतसहस्रं भव[ती]त्येवमाख्यातम्** । अत्र शतसहस्रशब्दसाहचर्यादग्रसङ्ख्यायां द्वादशोत्तराणीत्यत्र सहस्राणि प्रतीयन्ते, अन्यथा (द्वादशाधिकत्वे अर्ध-) षट्पञ्चाशत्सहस्राणां चतुर्गुणने सङ्ख्याशास्त्रबाधः स्यात्, दृश्यते च शब्दसाहचर्यादर्थ-प्रतिपत्तिर्यथा-'रामलक्ष्मणौ' इत्यत्र रामशब्देन दाशरथिर्लक्ष्मणशब्दसाहचर्यात् प्रतीयते, न तु रेणुकासुत इति ॥२०॥

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे हरिवास-रम्मगवासेसु कइ महाणईओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा ! चत्तारि महाणईओ पण्णत्ताओ, तंजहा-हरी हरिकंता नरकंता णारिकंता । तत्थ णं एगमेगा महाणई छप्पण्णाए २ सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ, एवामेव सपुव्वा-ऽवरेणं जंबुद्दीवे २ हरिवास-रम्मगवासेसु दो चउवीसा सलिलासयसहस्सा भवंतीतिमक्खायं ॥ २१ ॥

तथा "**जंबुद्दीवे**" इत्यादि, सुबोधम् । द्वयोर्वर्षयोः सहोक्तौ हेतुः प्राग्वदेव । '**हरीति**' हरिसलिला पूर्वार्णवगा हरिवर्षे **हरिकान्ता** चापरार्णवगा, रम्यके **नरकान्ता** पूर्वार्णवगा **नारीकान्ता** चापरार्णवगा । सर्वसङ्ख्यया **जम्बूद्वीपे द्वीपे हरिवर्ष-रम्यकवर्षयोर्द्वे**

---

१. रुप्पीकूला-त्रि । रुक्मीकूला-हीवृ. ॥ २. पु । हिरण्य० मु. ॥

चतुर्विंशतिसहस्राधिके **सलिलाशतसहस्रे भवत इति** । षट्पञ्चाशत्सहस्राणां चतुर्गुणने एतावत एव लाभात्, अत्रापि सहस्रपरतया व्याख्यानं प्राग्वत् ॥२१॥

जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे कइ महाणईओ पण्णत्ताओ ?, गोयमा ! दो महाणईओ पण्णत्ताओ, तंजहा-सीआ य सीओआ य । तत्थ णं एगमेगा महाणई पंचहिं २ सलिलासयसहस्सेहिं बत्तीसाए अ सलिलासहस्सेहिं समग्गा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं समप्पेइ, एवामेव सपुव्वा-ऽवरेणं जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे दस सलिलासयसहस्सा चउसट्ठिं च सलिलासहस्सा भवन्तीतिमक्खायं ॥ २२ ॥

तथा "**जंबुद्दीवे**" इत्यादि व्यक्तम् । नवरं **शीता शीतोदा चे**त्यत्र **च**कारौ द्वयोस्तुल्य-कक्षताद्योतनार्थौ तेन समपरिवारत्वादिकं ग्राह्यम् । समुद्रप्रवेशः शीतायाः पूर्वस्यां शीतो-दायास्त्वपरस्यामिति । "**व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति**" [ ]रित्यत्र द्वादशान्तरनद्योऽधिका ग्राह्याः, महाविदेहनदीत्वाविशेषात्, शेषाः कुण्डप्रभवनद्यश्च शीता-शीतोदापरिवारनदीष्वन्तर्गता इति न सूत्रकृता सूत्रे पृथग् विवृताः ॥२२॥

अथ मेरुतो दक्षिणस्यां कियत्यो नद्यः ? इत्याह-

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं केवइया सलिलासय-सहस्सा पुरत्थिम-पच्चत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?, गो० ! एगे छण्णउए सलिलासयसहस्से पुरत्थिम-पच्चत्थिमाभिमुहे लवणसमुद्दं समप्पेंति ॥ २३ ॥

"**जंबुद्दीवे दीवे मंदरपव्वय**" इत्यादि व्यक्तम् । नवरम् उत्तरसूत्रे **एकं षण्णवति**सहस्राधिकं **सलिलाशतसहस्रम्** । तथाहि-भरते गङ्गायाः सिन्धोश्च चतुर्दश २ सहस्राणि, हैमवते रोहिताया रोहितांशायाश्चाष्टाविंशतिरष्टाविंशतिः सहस्राणि हरिवर्षे हरिसलिलाया हरिकान्तायाश्च षट्पञ्चाशत् २ सहस्राणि सर्वमीलने यथोक्तसङ्ख्या ॥२३॥

अथ मेरुत उत्तरवर्त्तिनीनां सङ्ख्यां प्रश्नयितुमाह-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं केवइया सलिलासय-सहस्सा पुरत्थिमपच्चत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?, गो० ! एगे छण्णउए सलिलासयसहस्से पुरत्थिम-पच्चत्थिमाभिमुहे जाव समप्पेइ ॥ २४ ॥

"**जंबुद्दीवे**" इत्यादि व्यक्तम् । नवरं उत्तरसूत्रे सर्वसङ्ख्या दक्षिणसूत्रवद् भावनीया, वर्षाणां नदीनां च नामसु विशेषः स्वयं बोध्यः । ननु मेरुतो दक्षिणोत्तरनदीसङ्ख्यामीलने सपरिवारे उत्तर-दक्षिणप्रवहे शीता-शीतोदे कथं न मीलिते ?, उच्यते, प्रश्नसूत्रं हि मेरुतो दक्षिणोत्तरदिग्भागवर्तिपूर्वा-ऽपरसमुद्रप्रवेशरूप-विशिष्टार्थविषयकम्, तेन न मेरुतः शुद्धपूर्वा-ऽपरसमुद्रप्रवेशिन्योरनयोर्निर्वचनसूत्रेऽन्तर्भावः, यथाप्रश्नं निर्वचनदानस्य शिष्टव्यवहारात् ॥२४॥

अथ पूर्वाभिमुखाः कियत्यो लवणोदं प्रविशन्ति ? इत्याह-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ सलिलासयसहस्सा पुरत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?, गो० ! सत्त सलिलासयसहस्सा अट्ठावीसं च सहस्सा जाव समप्पेंति ॥ २५ ॥

"**जंबुद्दीवे दीवे**" इत्यादि, जम्बूद्वीपे द्वीपे **कियत्यो नद्यः पूर्वाभिमुखा**[१] **लवणोदं 'प्रविशन्ति'** कियत्यः पूर्वसमुद्र-प्रवेशिन्य इत्यर्थः । इदं च प्रश्नसूत्रं केवलं नदीनां पूर्वदिग्गामित्वरूपप्रष्टव्यविषयकम्, तेन पूर्वस्मात् प्रश्नसूत्राद्विभिद्यते । उत्तरसूत्रे **सप्त नदीलक्षाणि अष्टाविंशतिश्च सहस्राणि यावत् समुपसर्पन्ति** । तद्यथा-पूर्वसूत्रे मेरुतो दक्षिणदिग्वर्त्तिनीनामेकं षण्णवतिसहस्राधिकं लक्षमुक्तम्, तदर्द्धं पूर्वाब्धिगामीत्यागतान्यष्टानवतिः सहस्राणि, एवमुदीच्यनदीनामप्यष्टानवतिः सहस्राणि, शीतापरिकरनद्यश्च ५ लक्षाणि द्वात्रिंशत्सहस्राणि च सर्वपिण्डे यथोक्तं मानम् ॥२५॥

अथ पश्चिमाब्धिगामिनीनां सङ्ख्याप्रश्नार्थमाह-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ सलिलासयसहस्सा पच्चत्थिमाभिमुहा लवणसमुद्दं समप्पेंति ?, गोअमा ! सत्त सलिलासयसहस्सा अट्ठावीसं च सहस्सा जाव समप्पेंति, एवामेव सपुव्वा-ऽवरेणं जंबुद्दीवे दीवे चोद्दस सलिलासयसहस्सा छप्पण्णं च सहस्सा भवंतीतिमक्खायं इति ॥ २६ ॥

"**जंबुद्दीवे दीवे**" इत्यादि, इदं चानन्तर-सूत्रवद्वाच्यम्, सङ्ख्यायोजनायाः परस्परं निर्विशेषत्वात् । सम्प्रति सर्वसरित्सङ्कलनामाह-"**एवामेव सपुव्वा-ऽवरेण**"मित्यादि व्यक्तम्। नवरं **जम्बूद्वीपे द्वीपे** पूर्वाब्धिगामिनीनाम-पराब्धिगामिनीनां च नदीनां संयोजने **चतुर्दश लक्षाणि षट्पञ्चाशत्सहस्राणि [१४,५६,०००]भवन्ति इत्याख्यातम्** ।

१. के । ०मुखं-मु. ॥

ननु इयं सर्वसरित्सङ्ख्या केवलपरिकरनदीनां महानदीसहितानां वा तासाम् ?, उच्यते, महानदीसहितानामिति सम्भाव्यते, सम्भावनाबीजं तु कच्छविजयगतसिन्धुनदीवर्णनाधिकारे प्रवेशे च "**सर्वसङ्ख्यया आत्मना सह चतुर्दशभिर्नदीसहस्रैः समन्विता भवती**" [ ]ति **श्रीमलयगिरिकृतबृहत्क्षेत्रविचारवृत्त्यादि**वचनमिति, **श्रीरत्नशेखरसूरयस्तु स्वक्षेत्रसमासे**-

"**अडसयरि महणईओ, बारस अंतरणईउ सेसाओ ।**

परिअरणईओ चउदस, लक्खा छप्पण्णसहस्सा य ॥१॥" [गा. ६४]त्ति

महानदीनां पृथग्गणनं चक्रुरिति तत्त्वं तु बहुश्रुतगम्यम् । नन्वत्र प्रत्येकमष्टाविंशति-सहस्रनदीपरिवारा द्वादशान्तरनद्यः सर्वनदीसङ्कलनायां कथं न गणिताः ?, उच्यते, इयं सर्वसरित्सङ्ख्या चतुर्दशलक्षादिलक्षणा **श्रीरत्नशेखरसूरिभिः स्वोपज्ञक्षेत्रसमासवृत्तौ** तथा प्रतिमहानदीपरिवारमीलने **स्वस्वक्षेत्रविचारसूत्रे श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणादिसूत्रकारैः श्रीमलयगिर्य्यादिभिर्वृत्तिकारै**श्चान्तरनदीपरिवारासङ्ग्रहेणैवोक्ता । **श्रीहरिभद्रसूरिभिस्तु** "**खण्डा जोअणे**" त्यादिगाथायाः **सङ्ग्रहण्यां** चतुरशीतिप्रमाणा कुरुनदीरनन्तर्भाव्य तत्स्थाने इमा एव द्वादश नदीः चतुर्दशभिः २ नदीसहस्रैः सह निक्षिप्य यथोक्तसङ्ख्या पूरिता, तद्यथा-

"**चउदससहस्सगुणिआ अडतीस, णईओ विजयमज्झिल्ला ।**

सीआणईइ णिवडंति, सीओआएवि एमेव ॥१॥" [**क्षेत्रसमास गा. २४**]

कैश्चित्तु य एव विजयगतयोर्गङ्गासिन्ध्वोः रक्तारक्तवत्योर्वा अष्टाविंशतिसहस्रनदीलक्षणः परिवारः, स एवासन्नतयोपचारेणान्तरनदीनां परिवारतयोक्त इत्यतोऽवसीयते यदन्तरनदी-परिवारमाश्रित्य मतवैचित्र्यदर्शनादिना केनापि हेतुना प्रस्तुतसूत्रकारेणापि सर्वनदीसङ्कलनायां ता न गणिता इति, अत्रापि तत्त्वं बहुश्रुतगम्यमेव । यदि चान्तरनदीपरिवारनदीसङ्कलनाऽपि क्रियते, तदा जम्बूद्वीपे द्विनवतिसहस्राधिकाः सप्तदश लक्षा १७,९२,००० नदीनां भवन्ति । यदुक्तम्-

"**सुत्ते चउदसलक्खा, छप्पण्णसहस्स जंबुदीवम्मि ।**

हुंति उ सत्तर[१] लक्खा, बाणवइसहस्स सलिलाओ ॥१॥" [ ] इति ।

एतेषां जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्युक्तार्थानां पिण्डके-मीलके विषयभूते इयं **सङ्ग्रहणीगाथा** भवतीति । अथ जम्बूद्वीपव्यासस्य लक्षप्रमाणताप्रतीत्यर्थं दक्षिणोत्तराभ्यां क्षेत्रयोजनसर्वाग्र-मीलनं जिज्ञासूनामुपकाराय दर्श्यते, यथा-

१. **सत्तरस लक्खा**-पुके ॥

१	भरतक्षेत्रप्रमाणं	५२६ योजन कला ६
२	क्षुल्लहिमाचलपर्वतप्रमाणं	१०५२ योजन कला १२
३	हैमवतक्षेत्रप्रमाणं	२१०५ योजन कला ५
४	वृद्धहिमाचलपर्वतप्रमाणं	४२१० योजन कला १०
५	हरिवर्षक्षेत्रप्रमाणं	८४२१ योजन कला १
६	निषधपर्वतप्रमाणं	१६८४२ योजन कला २
७	महाविदेहक्षेत्रप्रमाणं	३३६८४ योजन कला ४
८	नीलवत्पर्वतप्रमाणं	१६८४२ योजन कला २
९	रम्यक्क्षेत्रप्रमाणं	८४२१ योजन कला १
१०	रुक्मिपर्वतप्रमाणं	४२१० योजन कला १०
११	हैरण्यवतक्षेत्रप्रमाणं	२१०५ योजन कला ५
१२	शिखरिपर्वतप्रमाणं	१०५२ योजन कला १२
१३	ऐरवतक्षेत्रप्रमाणं	५२६ योजन कला ६

९९९९६ योजन कला ७६ दक्षिणोत्तरतः सर्वमीलने १००००० लक्षयोजनसर्वाग्रम् । अत्र दक्षिणजगतीमूलविष्कम्भो भरतप्रमाणे उत्तरजगतीसत्कश्च ऐरावतेऽन्तर्भावनीय इति । पूर्वतः पश्चिमतश्चैवं सर्वाग्रमीलनम्-

औत्तराहं शीतावनमुखं २९२२ योजन, विजयषोडशकं ३५४०६ योजन, अन्तरनदीषट्कं ७५० योजन, वक्षस्काराष्टकं ४००० योजन, मेरु-भद्रशालवनं ५४००० योजन, औत्तराहं शीता(तोदा) मुखवनं २९२२ योजन, १००००० अत्र सर्वाग्रं लक्षयोजनप्रमाणम् । अत्रापि जगतीसत्कमूलविष्कम्भः स्वस्वदिग्गतमुखवनेऽन्तर्भावनीय इति ॥२६॥

इति सातिशयधर्मदेशनारससमुल्लासविस्मयमानऐंदीयुगीननराधिपतिचक्रवर्त्ति-समानश्रीअकब्बरसुरत्राणप्रदत्तषाणमासिकसर्वजन्तुजाताभयदान-शत्रुञ्जयादिकर-मोचनस्फुरन्मानप्रदानप्रभृतिबहुमान-युगप्रधानोपमान-सम्प्रति[1]विजयमानश्रीमत्तपागच्छाधिराज-श्रीहीरविजयसूरीश्वरपदपद्मोपासनाप्रवणमहोपाध्यायश्रीसकलचन्द्रगणिशिष्योपाध्याय-श्रीशान्तिचन्द्रगणिविरचितायां जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्तौ प्रमेयरत्नमञ्जूषा[2]नाम्न्यां जम्बूद्वीपगतपदार्थसङ्ग्रहवर्णनो नाम षष्ठो वक्षस्कारः ॥६॥

● ● ●

१. ०साम्प्रत० पुके ॥ २. इतोऽग्रे पु. आदर्शे ग्रंथाग्रंथ १७९३५ ॥श्री॥ इति ॥

अथ सप्तमवक्षस्कारः ॥७॥

जम्बूद्वीपे च ज्योतिष्काश्चरन्तीति तदधिकारः सम्प्रति प्रतिपाद्यते, तत्र प्रस्तावनार्थमिदं चन्द्रादिसङ्ख्याप्रश्नसूत्रम्-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे कइ चंदा पभासिंसु पभासंति पभासिस्संति ? कइ सूरिआ तवइंसु तवेंति तविस्संति ? केवइया णक्खत्ता जोगं जोएंसु जोएंति जोएस्संति ? केवइआ महग्गहा चारं चरिंसु चरंति चरिस्संति ? केवइआओ तारागणकोडाकोडीओ सोभं[१] सोभिंसु[२] सोभंति सोभिस्संति ?, गोअमा ! दो चंदा पभासिंसु ३, दो सूरिआ तवइंसु ३, छप्पण्णं णक्खत्ता जोगं जोइंसु ३, छावत्तरं महग्गहसयं चारं चरिंसु ३,

'एगं च सयसहस्सं तेत्तीसं खलु भवे सहस्साइं ।
णव य सया पण्णासा तारागणकोडिकोडीणं ॥१॥'

''**जंबुद्दीवे ण**''मित्यादि, **जम्बूद्वीपे भगवन् ! द्वीपे कति चन्द्राः 'प्रभासितवन्तः'** प्रकाशनीयं वस्तु उद्द्योतितवन्तः **'प्रभासयन्ति'** उद्द्योतयन्ति **'प्रभासयिष्यन्ति'** उद्द्योतयिष्यन्ति ?, उद्द्योतनामकर्मोदयाच्चन्द्रमण्डलानाम्, अनुष्णप्रकाशो हि जने 'उद्द्योत' इति व्यवह्रियते तेन तथा प्रश्नः । अनादिनिधनेयं जगत्स्थितिरिति जानतः शिष्यस्य कालत्रयनिर्देशेन प्रश्नः, प्रष्टव्यं तु चन्द्रादिसङ्ख्या । तथा **कति सूर्याः 'तापितवन्तः'** आत्मव्यतिरिक्तवस्तुनि तापं जनितवन्तः, एवं **तापयन्ति तापयिष्यन्ति** ? आतपनामकर्मोदयाद्रविमण्डलानाम्, उष्णः प्रकाशः 'ताप' इति लोके व्यवह्रियते तेन तथा प्रश्नोक्तिः तथा **कियन्ति नक्षत्राणि 'योगं'** स्वयं नियतमण्डल-चारित्वेऽप्यनियतानेकमण्डलचारिभिर्निजमण्डलक्षेत्रमागतैर्ग्रहैः सह सम्बन्धं **'युक्तवन्ति'** प्राप्तवन्ति **'युञ्जन्ति'** प्राप्नुवन्ति **'योक्ष्यन्ति'** प्राप्स्यन्ति ? तथा **कियन्तो 'महाग्रहाः'** अङ्गारकादयश्चारं-मण्डलक्षेत्रपरिभ्रमिं **'चरितवन्तः'** अनुभूतवन्तः **'चरन्ति'** अनुभवन्ति **'चरिष्यन्ति'** अनुभविष्यन्ति, यद्यपि समयक्षेत्रवर्तिनां सर्वेषामपि

१. VJ12 ॥ २. सोमिंति-पुके ॥

ज्योतिष्काणां गतिश्चार इत्यभिधीयते, तथाप्यन्यव्यपदेशविशेषाभावेन वक्रातिचारादिभिर्गतिविशेषैर्गतिमत्त्वेन चैषां सामान्यगतिशब्देन प्रश्नः । तथा **कियत्यस्तारागणकोटाकोट्यः 'शोभितवन्तः' शोभां** धृतवत्यः[1] **शोभन्ते शोभिष्यन्ते** ? एषां च चन्द्रादिसूत्रोक्तकारणाभावेन बहुलपक्षादौ भास्वरत्वमात्रेण शोभमानत्वादित्थं प्रश्नाभिलापः, अत्र सूत्रेऽनुक्तोऽपि वाशब्दो विकल्पद्योतनार्थं प्रतिप्रश्नं बोध्यः । भगवानाह-**गौतम ! द्वौ चन्द्रौ प्रभासितवन्तौ प्रभासेते प्रभासिष्येते च**, जम्बूद्वीपे क्षेत्रे सूर्याक्रान्ताभ्यां दिग्भ्यामन्यत्र शेषयोर्दिशोश्चन्द्राभ्यां प्रकाश्यमानत्वात् । प्रश्नसूत्रे च प्रभासितवन्त इत्यादौ यो बहुवचनेन निर्देशः, स प्रश्नरीतिर्बहुवचनेनैव भवतीति ज्ञापनार्थः, एकाद्यन्यतरनिर्णयस्य तु सिद्धान्तोत्तरकाले सम्भवः । एवं सूर्यसूत्रेऽपि भावनीयम्, तथा **द्वौ सूर्यौ तापितवन्तौ ३**, जम्बूद्वीपक्षेत्रमिति शेषः, अस्मिन्नेव क्षेत्रे चन्द्राक्रान्ताभ्यां दिग्भ्यामन्यत्र शेषयोर्दिशोः सूर्याभ्यां ताप्यमानत्वात् । तथा **षट्पञ्चाशन्नक्षत्राणि** एकैकस्य चन्द्रस्य प्रत्येकमष्टाविंशतिनक्षत्रपरिवारात् **योगं युक्तवन्ती**त्यादि प्राग्वत् । तथा **'षट्सप्ततं'** षट्सप्तत्युत्तरं **महाग्रहशतम्** एकैकस्य चन्द्रस्य प्रत्येकमष्टाशीतेर्ग्रहाणां परिवारभावात् **चारं चरितवदि**त्यादि । तथा पद्येन तारामानमाह-**तारागणकोटाकोटीनामेकं लक्षं त्रयस्त्रिंशच्च सहस्राणि नव च शतानि 'पञ्चाशानि'** पञ्चाशदधिकानि [१,३३,९५०] भवन्ति, प्रतिचन्द्रं तारागणकोटाकोटीनां षट्षष्टिसहस्रनवशताधिकपञ्चसप्ततेर्लभ्यमानत्वादिति ॥१॥

अथ प्रथमोद्दिष्टमपि चन्द्रमुपेक्ष्य बहुवक्तव्यत्वात् प्रथमं सूर्यप्ररूपणामाह तत्रेमानि पञ्चदशानुयोगद्वाराणि-मण्डलसङ्ख्या १, मण्डलक्षेत्रं २, मण्डलान्तरं ३, बिम्बायाम-विष्कम्भादि ४, मेरु-मण्डलक्षेत्रयोरबाधा ५, मण्डलायामादिवृद्धि-हानी ६, मुहूर्त्तगतिः ७, दिन-रात्रिवृद्धि-हानी ८, तापक्षेत्रसंस्थानादि ९, दूरा-ऽऽसन्नादिदर्शने लोकप्रतीत्युपपत्तिः १०, चारक्षेत्रेऽतीतादिप्रश्नः ११, तत्रैव क्रियाप्रश्नः १२, ऊर्ध्वादिदिक्षु प्रकाशयोजनसङ्ख्या १३, मनुष्यक्षेत्रवर्त्तिज्योतिष्कस्वरूपम् १४, इन्द्राद्यभावे स्थितिप्रकल्पः १५ ।

तत्र मण्डलसङ्ख्यायामादिसूत्रम्-

कइ णं भंते ! सूरमंडला पण्णत्ता ?, गोअमा ! एगे चउरासीए मंडलसए पण्णत्ते ॥ २ ॥

---

१. पुके । धृतवन्त्यः-मु. ॥

"**कइ ण**"मित्यादि, **कति भदन्त** ! '**सूर्ययोः**' दक्षिणोत्तरायणे कुर्वतोर्निजबिम्बप्रमाण-चक्रवालविष्कम्भानि प्रतिदिनभ्रमिक्षेत्रलक्षणानि **मण्डलानि प्रज्ञप्तानि** ?। मण्डलत्वं चैषां मण्डलसदृशत्वात् न तु तात्त्विकम्, मण्डलप्रथमक्षणे यद् व्याप्तं क्षेत्रं तत्समश्रेण्येव यदि पुरःक्षेत्रं व्याप्नुयात्, तदा तात्त्विकी मण्डलता स्यात् । तथा च सति पूर्वमण्डलादुत्तरमण्डलस्य योजनद्वयमन्तरं न स्यादिति । भगवानाह-**गौतम ! एकं** '**चतुरशीतं**' चतुरशीत्यधिकं **मण्डलशतं प्रज्ञप्तम्**, यथा चैभिश्चारक्षेत्रपूरणं तथा अनन्तरद्वारे प्ररूपयिष्यते ॥२॥

अथैतान्येव क्षेत्रविभागेन द्विधा विभज्योक्तसङ्ख्यां पुनः प्रश्नयति-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइअं ओगाहित्ता केवइआ सूरमंडला पण्णत्ता ?, गोअमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे असीअं जोअणसयं ओगाहित्ता एत्थ णं पण्णट्ठी सूरमंडला पण्णत्ता ॥ ३ ॥

"**जंबुद्दीवे**"त्ति, **जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे कियत्क्षेत्रमवगाह्य कियन्ति सूर्यमण्डलानि प्रज्ञप्तानि** ?, **गौतम ! जम्बूद्वीपे २** '**अशीतम्**' अशीत्यधिकं **योजनशतमवगाह्यात्रान्तरे पञ्चषष्टिः सूर्यमण्डलानि प्रज्ञप्तानि** ॥३॥

लवणे णं भंते ! समुद्दे केवइअं ओगाहित्ता केवइआ सूरमंडला पण्णत्ता ?, गोअमा ! लवणे णं समुद्दे तिण्णि तीसे जोअणसए ओगाहित्ता एत्थ णं एगूणवीसे सूरमंडलसए पण्णत्ते, एवामेव सपुव्वा-ऽवरेणं जंबुद्दीवे दीवे लवणे अ समुद्दे एगे चुलसीए सूरमंडलसए भवतीतिमक्खायं १ ॥ ४ ॥

तथा **लवणे भदन्त ! समुद्रे कियदवगाह्य कियन्ति सूर्यमण्डलानि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम ! लवणे समुद्रे त्रिंशद**धिकानि **त्रीणि योजनशतानि** सूत्रेऽल्पत्वादविवक्षितानप्यष्ट-चत्वारिंशदेकषष्टिभागान् **अवगाह्यात्रान्तरे एकोनविंशत्यधिकं सूर्यमण्डलशतं प्रज्ञप्तम्** । अत्र पञ्चषष्ट्या मण्डलैरेकोनाशीत्यधिकं योजनशतं नव चैकषष्टिभागा योजनस्य पूर्यन्ते, जम्बूद्वीपेऽवगाहक्षेत्रं चाशीत्यधिकं योजनशतम्, तेन शेषा द्वापञ्चाशद्भागाः षट्षष्टितमस्य मण्डलस्य बोध्याः, अल्पत्वाच्चात्र न विवक्षिताः । अत्र च पञ्चषष्टिमण्डलानां विषयविभाग-व्यवस्थायां **सङ्ग्रहणीवृत्त्याद्युक्तोऽयं वृद्धसम्प्रदायः**-मेरोरेकतो निषधमूर्द्धनि त्रिषष्टिर्मण्डलानि हरिवर्षजीवाकोट्यां च द्वे, द्वितीयपार्श्वे नीलवन्मूर्ध्नि त्रिषष्टिः रम्यकजीवाकोट्यां च द्वे इति ।

एवमेव 'सपूर्वा-ऽवरेण' पञ्चषष्ट्येकोनविंशत्यधिकशतमण्डलमीलनेन **जम्बूद्वीपे लवणे च समुद्रे एकं चतुरशीतं सूर्यमण्डलशतं भवतीत्याख्यातं** मया चान्यैस्तीर्थकृद्भिः १ ॥४॥

गतं मण्डलसङ्ख्याद्वारम्, अथ मण्डलक्षेत्रद्वारम्, तत्र सूत्रम्-

सव्वब्भंतराओ णं भंते ! सूरमंडलाओ [1]केवइयं अबाहाए सव्वबाहिरए सूरमंडले पं० ?, गोयमा ! पंचदसुत्तरे जोअणसए अबाहाए सव्वबाहिरए सूरमंडले पण्णत्ते २॥ ॥ ५ ॥

'सव्वब्भंतराओ ण'-मित्यादि, **'सर्वाभ्यन्तरात्'** प्रथमात् **सूर्यमण्डलात् भदन्त ! कियत्या 'अबाधया'** कियता अन्तरेण **'सर्वबाह्यं'** सर्वेभ्यः परं यतोऽनन्तरं नैकमपीत्यर्थः, **सूर्यमण्डलं प्रज्ञप्तम्? गौतम ! दशोत्तराणि पञ्च योजनशतानि 'अबाधया'** अन्तरालत्वा-प्रतिघातरूपया **सर्वबाह्यं सूर्यमण्डलं प्रज्ञप्तम्**। अत्रानुक्ता अपि अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः **"ससि-रविणो लवणंमि अ जोअण सय तिण्णि तीस अहिआइं"** [ ] इति वचनादधिका ग्राह्याः, अन्यथोक्तसङ्ख्याकानां मण्डलानामनवकाशात् । कथमेतदवसीयते ?, उच्यते, सर्वसङ्ख्यया चतुरशीत्यधिकं मण्डलशतम्, एकैकस्य च मण्डलस्य विष्कम्भोऽष्टचत्वारिंशदे-कषष्टिभागा योजनस्य, ततश्चतुरशीत्यधिकं शतमष्टाचत्वारिंशता गुण्यते, जातान्यष्टाशीतिः शतानि द्वात्रिं-शदधिकानि ८८३२ । एतेषां योजनानयनार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते, हृते च लब्धं चतु-श्चत्वारिंशदधिकं योजनशतं १४४, शेषमवतिष्ठतेऽष्टचत्वारिंशत् । चतुरशीत्यधिकशत-सङ्ख्यानां च मण्डलानामपान्तरालानि त्र्यशीत्यधिकशतसङ्ख्यानि, सर्वत्रापि ह्यपान्तरालानि रूपोनानि भवन्ति, तथा च प्रतीतमेतत् चतसृणामङ्गुलीनामपान्तरालानि त्रीणीति । एकैकं मण्डलान्तरालं च द्वियोजनप्रमाणं, ततस्त्र्यशीत्यधिकं शतं द्विकेन गुण्यते, जातानि त्रीणि शतानि षट्षष्ट्यधिकानि ३६६, पूर्वोक्तं च चतुश्चत्वारिंशं शतमत्र प्रक्षिप्यते, ततो जातानि पञ्चशतानि दशोत्तराणि योजनानि अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य [५१० $\frac{४८}{६१}$], अनेन च मण्डलक्षेत्रस्य प्रमाणमभिहितम् । मण्डलक्षेत्रं नाम सूर्यमण्डलैः सर्वाभ्यन्तरादिभिः सर्वबाह्यपर्यवसानैर्व्याप्तमाकाशम्, तच्चक्रवालविष्कम्भतोऽवसेयम् ॥५॥

उक्तं मण्डलक्षेत्रद्वारम्, अथ मण्डलान्तरद्वारम्-

सूरमंडलस्स णं भंते ! सूरमंडलस्स य केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?, गोअमा ! [2]दो दो जोअणाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ३॥ ॥ ६ ॥

---

१. J12 V । केवइआए-मु. ॥ २. J12 V । दो जो० मु. चन्द्रप्रज्ञप्तिवृत्तौ प्राभृत १० । प्राभृतप्राभृत११ ॥

"**सूरमंडल**" इत्यादि, **भगवन् ! सूर्य-मण्डलस्य सूर्यमण्डलस्य च कियद्** '**अबाधया**' अव्यवधानेनान्तरं **प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! द्वे योजने अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्** । अन्तरशब्देन च विशेषोऽप्युच्यते इति तन्निवृत्त्यर्थम-बाधयेत्युक्तम् । कोऽर्थः ? पूर्वस्मादपरं मण्डलं कियद्दूरे इत्यर्थः, अत्र यथा योजनद्वयमुपपद्यते, तथाऽनन्तरमेव मण्डलसङ्ख्याद्वारे दर्शितम् ॥६॥

गतं मण्डलान्तरद्वारम्, अथ बिम्बायामविष्कम्भादिद्वारम्-

सूरमंडले[1] णं भंते ! केवइअं आयाम-विक्खंभेणं, केवइअं परिक्खेवेणं, केवइअं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?, गोअमा ! अडयालीसं एगसट्ठिभाए जोअणस्स आयाम-विक्खंभेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, चउवीसं एगसट्ठिभाए जोअणस्स बाहल्लेणं पण्णत्ते ४॥ ॥ ७ ॥

"**सूरमंडले ण**"मित्यादि, **सूर्यमण्डलं** 'णमिति' प्राग्वत् **भगवन् ! कियदायाम-विष्कम्भाभ्यां कियत्परिक्षेपेण कियद्** '**बाहल्येन**' उच्चत्वेन प्रज्ञप्तम् ? **गौतम ! अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागान्[2] योजन-स्यायाम-विष्कम्भाभ्यां** प्रज्ञप्तम् । अयमर्थः- एकयोजनस्यैकषष्टिभागाः कल्प्यन्ते, तद्रूपा येऽष्टचत्वारिंशद्भागास्तावत्प्रमाणावस्यायाम-विष्कम्भावित्यर्थः । **तत्त्रिगुणं** '**सविशेषं**' साधिकं **परिक्षेपेण**, अष्टचत्वारिंशत्त्रिगुणिता द्वे योजने द्वाविंशतिरेकषष्टिभागा अधिका योजनस्येत्यर्थः । **चतुर्विंशतिरेकषष्टिभागान् योजनस्य बाहल्येन**, विमानविष्कम्भस्यार्द्ध-भागेनोच्चत्वात् ॥७॥

गतं बिम्बायाम-विष्कम्भादिद्वारम्, अथ मेरुमण्डलयोरबाधाद्वारम्, तत्रादिसूत्रम्-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयं अबाहाए सव्वब्भंतरे सूरमंडले पण्णत्ते ?, गोअमा ! चोआलीसं जोअणसहस्साइं अट्ठ य वीसे जोअणसए अबाहाए सव्वब्भंतरे सूरमंडले पण्णत्ते ॥ ८ ॥

"**जंबुद्दीवे ण**"मित्यादि, **जम्बूद्वीपे द्वीपे भगवन् ! मन्दरस्य पर्वतस्य कियत्या अबाधया सर्वाभ्यन्तरं सूर्यमण्डलं प्रज्ञप्तम् ?। गौतम ! चतुश्चत्वारिंशद्योजनसहस्राणि अष्ट च विंशत्यधिकानि योजनशतानि [४४,८२०] अबाधया सर्वाभ्यन्तरं सूर्यमण्डलं प्रज्ञप्तम्** । अत्रोपपत्तिः-मन्दरात् जम्बूद्वीपविष्कम्भः पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि, इदं हि मण्डलं जगतीतो द्वीपदिशि अशीत्यधिकयोजनशतोपसङ्क्रमे भवति, तेन ४५००० योजनरूपाद्

१. सूरमंडलस्सणं-J12 ॥ २. पु । ०शद्भागान्-मु. ॥

द्वीपविष्कम्भादियति १८० योजनरूपे शोधिते जातं यथोक्तं मानम् । एतच्च चक्रवाल-विष्कम्भेन भवति, तेनापरसूर्यसर्वाभ्यन्तरमण्डलस्याप्यनेनैव करणेनैतावत्येवाबाधा बोद्धव्या, एतेन यदन्यत्र **क्षेत्रसमासटीकादौ** मेरुमवधीकृत्य सामान्यतो मण्डलक्षेत्राबाधापरिमाणद्वारं पृथक् प्ररूपितम्, तदनेनैव गतार्थम्, अस्यैवाभ्यन्तरतो मण्डलक्षेत्रस्य सीमाकारित्वात् ॥८॥

अथ प्रतिमण्डलं सूर्यस्य दूरदूरगमनादबाधापरिमाणमनियतमित्याह-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयं अबाहाए [1]अब्भंतराणंतरे सूरमंडले पण्णत्ते ?, गो० ! चोआलीसं जोअणसहस्साइं अट्ठ य बावीसे जोअणसए अडयालीसं च [2]एगसट्ठिभागे जोअणस्स अबाहाए अब्भंतराणंतरे सूरमंडले पं० ॥ ९ ॥

"**जंबुद्दीवे ण**"-मित्यादि, **जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य कियत्या अबाधया सर्वाभ्यन्तराद् 'अनन्तरं'** निरन्तरतया जायमानत्वात् द्वितीयं **सूर्यमण्डलं प्रज्ञप्तम् ? गौतम ! चतुश्चत्वारिंशद्योजनसहस्राणि अष्ट च योजनशतानि द्वाविंशत्यधिकानि अष्टचत्वारिंशतं चैकषष्टिभागान् [४४८२२ $\frac{४८}{६१}$] योजनस्याबाधया सर्वाभ्यन्तरानन्तरं सूर्यमण्डलं प्रज्ञप्तम्,** पूर्वस्माद्यदत्राधिकं तद्बिम्बविष्कम्भादन्तरमानाच्च समाधेयम् ॥९॥

अथ तृतीयमण्डलं पृच्छन्नाह-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयं अबाहाए अब्भंतरतच्चे सूरमंडले पण्णत्ते, ? गो० ! चोआलीसं जोअणसहस्साइं अट्ठ य पणवीसे जोअणसए पणतीसं च एगसट्ठिभागे जोअणस्स अबाहाए अब्भंतरतच्चे सूरमंडले पण्णत्ते । एवं खलु एतेणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयणंतराओ मंडलाओ तयणंतरं मंडलं संकममाणे २, दो दो जोअणाइं अडयालीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगे मंडले अबाहावुड्ढिं अभिवड्ढेमाणे २, सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ॥ १० ॥

"**जंबुद्दीवे ण**"मित्यादि, व्यक्तम् । नवरम् "**अब्भंतरं तच्च**"मिति अभ्यन्तरतृतीयम्, अनेन बाह्यतृतीयमण्डलस्य व्यवच्छेदः । उत्तरसूत्रे **चतु-श्चत्वारिंशद्योजनसहस्राणि अष्ट**

---

१. J2 V । **सव्वब्भंतरा०** मु. ॥ २. **एगट्ठि० अकखबस** J2 ॥

[च योजन] शतानि पञ्चविंशत्यधिकानि पञ्चत्रिंशतं चैकषष्टिभागान् [४४८२५ $\frac{३५}{६१}$] योजनस्याबाधया अभ्यन्तरतृतीयं सूर्यमण्डलं प्रज्ञप्तम्, उपपत्तिस्तु द्वितीयमण्डलाबाधा-परिमाणे ४४८२२ योजन ४८/६१ इत्येवंरूपे प्रस्तुतमण्डलसत्के सान्तर-बिम्बविष्कम्भे प्रक्षिप्ते जातं यथोक्तं मानम् । एवं प्रतिमण्डलम-बाधावृद्धावानीयमानायां मा भूद् ग्रन्थगौरवं तेन तज्जिज्ञासूनां बोधकमतिदेशमाह-"**एवं खलु**" इत्यादि, '**एवम्**' उक्तरीत्या मण्डलत्रय-दर्शितयेत्यर्थः, **एतेन** '**उपायेन**' प्रत्यहोरात्रमेकैक-मण्डलमोचनरूपेण '**निष्क्रामन्**' लवणाभिमुखं मण्डलानि कुर्वन् **सूर्यः** '**तदनन्तरात्**' विवक्षितात् पूर्वस्मात् **मण्डलात्** '**तदनन्तरं**' विवक्षितमुत्तरमण्डलं **सङ्क्रामन् २ द्वे द्वे योजने अष्टचत्वारिंशतं चैकषष्टि-भागान् योजनस्य एकैकस्मिन् मण्डले अबाधाया वृद्धिमभिवर्द्धयन् २, सर्वबाह्य-मण्डलमुपक्रम्य चारं चरति** । यच्चात्रातिदेशरुचिरपि सूत्रकृन्मण्डलत्रयाभिव्यक्तिमदर्शयत्, तत्प्रथमं ध्रुवाङ्कदर्शनार्थम् द्वितीयं मण्डलाभिवृद्धिदर्शनार्थम् तृतीयं पुनस्तदभ्यासार्थमिति ॥१०॥

अथ पश्चानुपूर्व्यपि व्याख्यानाङ्गमित्यन्त्यमण्डलादारभ्य मेरुमण्डलयोरबाधां पृच्छन्नाह-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयं अबाहाए सव्वबाहिरे सूरमंडले पं० ?, गो० ! पणयालीसं जोअणसहस्साइं तिण्णि अ तीसे जोअणसए अबाहाए सव्वबाहिरे सूरमंडले पं० ॥ ११ ॥

"**जंबुद्दीवे**"त्ति, **जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य कियत्या अबाधया सर्वबाह्यं सूर्यमण्डलं प्रज्ञप्तम् ? गौतम ! पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि त्रीणि च योजनशतानि त्रिंशदधिकानि अबाधया सर्वबाह्यं सूर्यमण्डलं प्रज्ञप्तम्**, तत्र मन्दरात् पञ्चचत्वारिंशद्योजन-सहस्राणि जगती ततो लवणे त्रीणि शतानि त्रिंशदधिकानि ॥११॥

तथा द्वितीयमण्डलपृच्छा-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए बाहिराणंतरे[१] सूरमंडले पण्णत्ते ?, गोअमा ! पणयालीसं जोअणसहस्साइं तिण्णि अ सत्तावीसे जोअणसए तेरस य एगसट्ठिभाए जोअणस्स अबाहाए बाहिराणंतरे सूरमंडले पण्णत्ते ॥ १२ ॥

१. J2 V । **सव्वबाहि० मु.** ॥

"**जंबुद्दीवे**"त्ति, प्रश्नसूत्रे '**बाह्यानन्तरं**' पश्चानुपूर्व्या द्वितीय-मित्यर्थः । उत्तरसूत्रे **पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि** तथैव जगती ततस्त्रिशदधिकत्रिशत-योजनातिक्रमे यत्सूर-मण्डलमुक्तम् । तस्मादन्तरमाने बिम्बविष्कम्भमाने च शोधिते जातं यथोक्तं मानमिति ॥१२॥

अथ तृतीयम्-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयं अबाहाए बाहिरतच्चे सूरमंडले पण्णत्ते ?, गो० ! पणयालीसं जोअणसहस्साइं तिण्णि अ चउवीसे जोअणसए छव्वीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स अबाहाए बाहिरतच्चे सूरमंडले पण्णत्ते । एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तदणंतराओ मंडलाओ तदणंतरं मंडलं संकममाणे संकममाणे, दो दो जोअणाइं अडयालीसं च एगसट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगे मंडले अबाहावुड्ढि णिवड्ढेमाणे २, सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ५ ॥ १३ ॥

"**जंबुद्दीवे**"त्ति, व्यक्तम् । नवरम् उत्तरसूत्रे **पञ्चचत्वारिंशद्योजन-सहस्राणि त्रीणि च शतानि चतुर्विंशत्यधिकानि षड्विंशतिं च एकषष्टिभागान् योजनस्येति**, अत्र पूर्वमण्डलाङ्कात् सान्तरमण्डलविष्कम्भयोजने २-४८/६१ शोधिते जातं यथोक्तं मानमं । पूर्वमण्डलाङ्को ध्रुवाङ्कस्तत्र सबिम्बविष्कम्भोऽन्तरविष्कम्भः शोध्यस्तत उपपद्यते यथोक्तं मानम् । उक्तावशिष्टेषु मण्डलेष्वतिदेशमाह-"**एवं खलु**" इत्यादि, 'एवम्' उक्तरीत्या मण्डलत्रयदर्शितयेत्यर्थः, **एतेन 'उपायेन'** प्रत्यहोरात्रमेकैकमण्डलमोचनरूपेण **प्रविशन्** जम्बूद्वीपमिति गम्यम्, **सूर्यस्तदनन्तरान्मण्डलात्तदनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामन् २, द्वे द्वे योजने अष्टचत्वारिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकैकस्मिन् मण्डले अबाधा-वृद्धिं निवर्द्धयन् २**, इदं **समवायाङ्गवृत्त्यनुसारेणोक्तम्** यथा वृद्धेरभावो निवृद्धिः निशब्दस्या-भावार्थत्वात् निवरा कन्येत्यादिवत् तां कुर्वन्, निवृद्धयन् २ इदं **स्थानाङ्गवृत्त्यनुसारि, सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्त्यादौ** तु निवेष्टयन् २ इत्युक्तमस्ति । अत्र सर्वत्रापि हापयन् २ इत्यर्थः, **सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरतीति**, गतमबाधाद्वारम् ॥१३॥

अथ मण्डलायामादिवृद्धि-हानिद्वारम्-

जंबुद्दीवे दीवे सव्वब्भंतरे णं भंते ! सूरमंडले केवइयं आयाम-विक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?, गो० ! णवणउइं जोअणसहस्साइं छच्च चत्ताले जोअणसए आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि य जोअणसयसहस्साइं

पण्णरस य जोअणसहस्साइं एगूणणउइं च जोअणाइं किंचिविसेसाहिआइं परिक्खेवेणं ॥ १४ ॥

"**जंबुद्दीवे**" इत्यादि, **जम्बूद्वीपे द्वीपे भदन्त ! सर्वाभ्यन्तरं सूर्यमण्डलं कियदायाम-विष्कम्भाभ्यां कियच्च परिक्षेपेण प्रज्ञप्तम् ? गौतम ! नवनवतिं योजनसहस्राणि षट् च योजनशतानि चत्वारिंशद**धिकानि [९९,६४०] **आयाम-विष्कम्भाभ्याम्, त्रीणि योजन-शतसहस्राणि पञ्चदश च योजनसहस्राण्येकोननवतिं [३,१५,०८९] च योजनानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण** । तत्रायाम-विष्कभयोरुत्पत्तिरेवम्–जम्बूद्वीपविष्कम्भादु-भयोः पार्श्वयोः प्रत्येकमशीत्यधिकयोजनशतशोधने यथोक्तं मानम्, तद्यथा–जम्बूद्वीपमानं १००००० अस्मादशीत्यधिकयोजनशते १८० द्विगुणिते ३६० शोधिते सति जातं ९९६४० इति । परिक्षेपस्त्वस्यैव राशेः "**विक्खम्भवग्गदहगुणे**" [लघुक्षेत्र. १८८] त्यादि-करणवशादानेतव्यः, ग्रन्थविस्तरभयान्नात्रोपन्यस्यते । यदिवा यदेकतो जम्बूद्वीपविष्कम्भादशीत्यधिकं योजनशतं यच्चापरतोऽपि तेषां त्रयाणां शतानां षष्ट्यधिकानां ३६० परिरयः एकादश शतान्यष्टत्रिंशदधिकानि ११३८, एतानि जम्बूद्वीपपरिरयात् शोध्यन्ते, ततो यथोक्तं परिक्षेपमानं भवति ॥१४॥

अथ द्वितीयमण्डले तत्पृच्छा–

अब्भंतराणंतरे णं भंते ! सूरमंडले केवइअं आयाम-विक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?, गोअमा ! णवणउइं जोअणसहस्साइं छच्च पणयाले जोअणसए पणतीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि जोअणसयसहस्साइं पण्णरस्स य जोअणसहस्साइं एगं सत्तुत्तरं जोअणसयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ॥ १५ ॥

"**अब्भंतराण**"मित्यादि, अन्वययोजना सुगमा । तात्पर्यार्थ-स्त्वयम्–सर्वाभ्यन्तरानन्तरं च द्वितीयं सूर्यमण्डल**मायाम-विष्कम्भाभ्यां नवनवतिं योजन-सहस्राणि षट् च योजनशतानि पञ्चचत्वारिंशद**धिकानि **पञ्चत्रिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य** ९९६४५-३५/६१ । तथाहि–एकतोऽपि सर्वाभ्यन्तरानन्तरं मण्डलं सर्वाभ्यन्तर-मण्डलगतानष्टचत्वारिंश-त्सङ्ख्यानेकषष्टिभागान् द्वे च योजने अपान्तराले विमुच्य स्थितम-परतोऽपि, ततः पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य पूर्वमण्डल-विष्कम्भादस्य मण्डलस्य विष्कम्भे वर्द्धन्ते ।

अस्य च सर्वाभ्यन्तरानन्तरमण्डलस्य **परिक्षेपस्त्रीणि शतसहस्राणि पञ्चदश सहस्राण्येकं च शतं सप्तोत्तरं[1] योजनानां** ३१५१०७। तथाहि-पूर्वमण्डलादस्य विष्कम्भे पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य वर्द्धन्ते, पञ्चानां च योजनानां पञ्चत्रिंशत्सङ्ख्यैकभागाधिकानां परिरयः सप्तदश योजनानि अष्टत्रिंशच्चैकषष्टिभागाः [१७ $\frac{३८}{६१}$] समधिकाः योजनस्य, परं व्यवहारतो विवक्ष्यन्ते परिपूर्णानि अष्टादश योजनानि, तानि पूर्वमण्डलपरिक्षेपे यदाऽधिकानि प्रक्षिप्यन्ते, तदा यथोक्तं द्वितीयमण्डलपरिमाणं स्यात् ॥१५॥

अथ तृतीयमण्डले तत्पृच्छा-

अब्भंतरतच्चे णं भंते ! सूरमंडले केवइअं आयाम-विक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं प० ?, गो० ! णवणउइं जोअणसहस्साइं छच्च एकावण्णे जोअणसए णव य एगसट्ठिभाए जोअणस्स आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं पण्णरस जोअणसहस्साइं एगं च पणवीसं जोअणसयं परिक्खेवेणं । एवं खलु एतेणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए [2]तयणंतराओ मंडलाओ तयणंतरं मंडलं [3]संकममाणे २, पंच २ जोअणाइं पणतीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगे मंडले विक्खंभवुड्ढिं अभिवड्ढेमाणे २, अट्ठारस २ जोअणाइं परिरयवुड्ढिं अभिवड्ढेमाणे २, सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ॥ १६ ॥

"**अब्भंतरतच्चे ण**"मित्यादि व्यक्तम्। नवरमुत्तरसूत्रे **नवनवतिं योजनसहस्राणि षट् च एकपञ्चाशानि योजनशतानि नव चैकषष्टिभागान्** [९९,६५१ $\frac{९}{६१}$] योजनस्याभ्यन्तर-तृतीयाख्यं मण्डल**मायाम-विष्कम्भेण**। अत्रोपपत्तिः-पूर्वमण्डलायाम-विष्कम्भे ९९६४५ योजन ३५/६१ इत्येवंरूपे एतन्मण्डलवृद्धौ ५ योजन ३५/६१ प्रक्षिप्तायां यथोक्तं मानं भवति। **परिक्षेपेण च त्रीणि योजनलक्षाणि पञ्चदश योजनसहस्राणि एकं च पञ्चविंशत्यधिकं योजनशतम्**। तत्रोपपत्तिः-पूर्वमण्डलपरिक्षेप ३१५१०७ योजनरूपे

---

१. "जोयणसयं परिक्षेपे सप्तोत्तरं योजनशतं किञ्चिदूनं वक्तव्यम्। यदागमः 'एगं सत्तुत्तरं जोयणसयं किंचिविसेसूणं परिक्खेवेणं पण्णत्ते'त्ति सूर्यप्रज्ञप्तौ यद्वाऽत्र सूत्रे व्यवहारनयमवलम्ब्य किञ्चिन्न्यूनत्वस्याऽविवक्षणम्" हीवृ.। इति V पृ. ५५४ टि. २ ॥ २. तदाणंतराओ तदाणंतरं मंडलाओ मंडलं-J1 एवमन्यत्राऽपि ॥ ३. VJ12। उवसंक० मु. ॥

प्रागुक्तयुक्त्याऽऽनीते अष्टादश १८ योजनरूपायां वृद्धौ प्रक्षिप्तायां यथोक्तं मानं भवति । अत्रोक्तातिरिक्तमण्डलायामादिपरिज्ञानाय लाघवार्थमतिदेशमाह-"**एवं खलु एतेण**"मित्यादि, '**एवम्**' उक्तरीत्या मण्डलत्रयदर्शितयेत्यर्थः, एतेनोक्तप्रकारेण **निष्क्रामयन् २ सूर्यस्तदनन्तरात्तदनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामन् २, पञ्च पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्यैकैकस्मिन् मण्डले विष्कम्भवृद्धिमभिवर्द्धयन् २**, तथा उक्तरीत्यैवा**ष्टादश योजनानि परिरयवृद्धिमभिवर्द्धयन् २, सर्वबाह्यमण्डलमुप-सङ्क्रम्य चारं चरति** ॥१६॥

अथ प्रकारान्तरेण प्रस्तुतविचारपरिज्ञानाय पश्चानुपूर्व्या पृच्छन्नाह-

सव्वबाहिरए णं भंते ! सूरमंडले केवइअं आयाम-विक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?, गो० ! एगं जोयणसयसहस्सं छच्च सट्ठे जोअणसए आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस य सहस्साइं तिण्णि अ पण्णरसुत्तरे जोअणसए परिक्खेवेणं ॥ १७ ॥

"**सव्वबाहिरए**" इत्यादि, प्रश्नसूत्रं व्यक्तम् । उत्तरसूत्रे **एकं योजनलक्षं षट्षष्ट्य**धिकानि १,००,६६० **योजन-शतान्यायाम-विष्कम्भाभ्याम्** । उपपत्तिस्तु जम्बूद्वीपो लक्षम् उभयोः पार्श्वयोश्च प्रत्येकं त्रिंशदधिकानि त्रीणि योजनशतानि लवणान्तरमतिक्रम्य परतो वर्त्तमानत्वादस्य इदमेव मानम् । **त्रीणि योजनलक्षाण्यष्टादश च सहस्राणि त्रीणि च पञ्चदशोत्तरा**णि [३,१८,३१५] **योजनशतानि "व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति"** [ ] रिति किञ्चिदूनानि परिक्षेपेण भवन्ति । किञ्चिदूनत्वं चात्र परिक्षेपकरणेन स्वयं बोध्यम्, संवादश्चात्र विष्कम्भा-ऽऽयाममाने लक्षोपरि यानि षष्ट्यधिकानि षट् योजनशतान्युक्तानि तस्य परिरयमानीय तस्य च जम्बूद्वीपपरिरये प्रक्षेपणाद् भवति ॥१७॥

अथ द्वितीयमण्डले तत्पृच्छा-

बाहिराणंतरे णं भंते ! सूरमंडले केवइअं आयाम-विक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?, गोअमा ! एगं जोअणसयसहस्सं छच्च चउपण्णे जोअणसए छव्वीसं च एगसट्ठिभागे जोअणस्स आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस य सहस्साइं दोण्णि य सत्ताणउए जोअणसए परिक्खेवेणं ॥ १८ ॥

"**बाहिराणंतरे णं भंते ! सूरमंडले**" इत्यादि प्रश्नः प्राग्वत् । उत्तरसूत्रे **गौतम ! एकं योजनलक्षं षट् चतुःपञ्चाशानि योजनशतानि षड्विंशतिं चैकषष्टिभागान्**

[१,००,६५४ $\frac{२६}{६१}$] **योजनस्यायाम-विष्कम्भाभ्याम्**, संवदति चेदं सर्वबाह्यमण्डल-विष्कम्भात् पञ्चत्रिंशदेकषष्टिभागाधिकपञ्चयोजनेषु शोधितेष्विति । **त्रीणि योजनलक्षाण्यष्टादश च सहस्राणि द्वे च सप्तनवतियोजनशते** [३,१८,२९७] **परिक्षेपेण**, कथमुपपद्यते ? चेदिति वदामः, पूर्वमण्डलपरिरयादष्टादशयोजनशोधने सुस्थमिति ॥१८॥

अथ तृतीयमण्डले तत्पृच्छा-

बाहिरतच्चे णं भंते ! सूरमंडले केवइअं आयाम-विक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?, गो० ! एगं जोअणसयसहस्सं छच्च अडयाले जोअणसए बावण्णं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस य सहस्साइं दोण्णि अ अउणासीए जोअणसए परिक्खेवेणं । एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे २, पंच पंच जोअणाइं पणतीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगे मंडले विक्खंभवुड्ढिं णिव्वुड्ढेमाणे २, अट्ठारस २ जोअणाइं परिरयवुड्ढिं णिव्वुड्ढेमाणे २, सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ६ ॥ १९ ॥

"**बाहिरतच्चे ण**"मित्यादि प्रश्नः पूर्ववत् । उत्तरसूत्रे बाह्यतृतीयम् **एकं योजनलक्षं षट् चाष्टचत्वारिंशानि योजनशतानि द्वापञ्चाशतं चैकषष्टिभागान्** [१,००,६४८ $\frac{५२}{६१}$] **योजनस्यायाम-विष्कम्भाभ्याम्** । युक्तिश्चात्र–अनन्तरपूर्वमण्डलात् पञ्चत्रिंशदेकषष्टिभागाधिक-पञ्चयोजनवियोजने साधु भवति । **त्रीणि योजनलक्षाण्यष्टादश च सहस्राणि द्वे चैकोनाशीते योजनशते ३,१८,२७९ परिक्षेपेण**, पूर्वमण्डलपरिधेरष्टादशयोजनशोधने यथोक्तं प्रस्तुतमण्डलस्य परिधिमानम् । अत्रातिदेशमाह-"**एवं खलु एएण**"मित्यादि, प्राग्वद्वाच्यम्, व्याख्यातार्थत्वात् । गतमायाम-विष्कम्भादिवृद्धि-हानिद्वारम्, अनेनैव क्रमेण द्वयोः सूर्ययोः परस्परमबाधाद्वारमप्यभ्यन्तर–बाह्यमण्डलादि-ष्ववसेयम् ॥१९॥

सम्प्रति मुहूर्त्तगतिद्वारम्-

जया णं भंते ! सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तदा णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?, गो० ! पंच पञ्च

जोअणसहस्साइं दोण्णि अ एगावण्णे जोअणसए एगूणतीसं च सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, तया णं इहगयस्स मणूसस्स सीआलीसाए जोअणसहस्सेहिं दोहि अ तेवट्ठेहिं जोअणसएहिं एगवीसाए अ जोअणस्स सट्ठिभाएहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ । से णिक्खममाणे सूरिए नवं संवच्छरं अयमीणे पढमंसि अहोरत्तंसि सव्वब्भंतराणंतरं[1] मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ॥ २० ॥

"जया णं भंते ! सूरिए सव्वब्भंतरं" इत्यादि, **यदा भगवन् ! सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति** इति **तदा एकैकेन मुहूर्त्तेन कियत् क्षेत्रं गच्छति ?। गौतम ! पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि द्वे चैकपञ्चाशे योजनशते एकोनत्रिंशतं च षष्टिभागान्** [५,२५१ $\frac{२९}{६०}$] **योजनस्यैकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति**, कथमिदमुपपद्यते ? चेत्, उच्यते, इह सर्वमपि मण्डलमेकेनाहोरात्रेण द्वाभ्यां सूर्याभ्यां परिसमाप्यते, प्रतिसूर्यं चाहोरात्रगणने परमार्थतो द्वावहोरात्रौ भवतः, द्वयोश्चाहोरात्रयोः षष्टिर्मुहूर्त्ताः, ततो मण्डलपरिरयस्य षष्ट्या भागे हृते यल्लभ्यते तन्मुहूर्त्तगतिप्रमाणम् । तथाहि–सर्वाभ्यन्तरमण्डलपरिरयस्त्रीणि लक्षाणि पञ्चदश सहस्राण्येकोननवत्यधिकानि योजनानां ३१५०८९, एतेषां षष्ट्या भागे हृते लब्धं यथोक्तं मुहूर्त्तगतिप्रमाणं ५२५१–२९/६० । अथ विनयावर्जितमनस्केन प्रज्ञापकेनापृच्छतोऽपि विनेयस्य किञ्चिदधिकं प्रज्ञापनीयमित्याह– यत्तदोर्नित्याभिसम्बन्धादनुक्तमपि यच्छब्दगर्भित-वाक्यमत्रावतारणीयम्, तेन यदा सूर्यः एकेन मुहूर्त्तेन इयत् ५२५१–२९/६० प्रमाणं गच्छति, **'तदा'** सर्वाभ्यन्तरमण्डलसङ्क्रमणकाले **इहगतस्य मनुष्यस्य** अत्र जातावेकवचनम्, ततोऽयमर्थः–इहगतानां भरतक्षेत्रगतानां मनुष्याणां **सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैर्द्वाभ्यां च 'त्रिषष्टाभ्यां'** त्रिषष्ट्यधिकाभ्यां **योजनशताभ्यामेकविंशत्या च योजनस्य षष्टिभागैरु**-दयमानः [४७,२६३ $\frac{२१}{६०}$] **सूर्यः 'चक्षुःस्पर्शं'** चक्षुर्विषयं **'हव्वं'** शीघ्र**मागच्छति** । अत्र च स्पर्शशब्दो नेन्द्रियार्थसन्निकर्षपरश्चक्षुषोऽप्राप्यकारित्वेन तदसम्भावादिति । काऽत्रोपपत्तिः ? इति चेत्, उच्यते, इह दिवसस्यार्द्धेन यावन्मात्रं क्षेत्रं व्याप्यते, तावति व्यवस्थितः सूर्य उपलभ्यते । स एव लोके उदयमान इति व्यवह्रियते । सर्वाभ्यन्तरमण्डले दिवसप्रमाणमष्टादश मुहूर्त्ताः, तेषामर्द्धे नव मुहूर्त्ताः, एकैकस्मिंश्च मुहूर्त्ते सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चारं चरन् पञ्च

१. अब्भंतराणंतरं–V ॥

योजनसहस्राणि द्वे च योजनशते एकपञ्चाशदधिके एकोनत्रिंशतं च षष्टिभागान् [५,२५१ $\frac{२९}{६०}$] योजनस्य गच्छति । एतावन्मुहूर्त्तगतिपरिमाणं नवभिर्मुहूर्तैर्गुण्यते, ततो भवति यथोक्तं दृष्टिपथ-प्राप्तता-विषयपरिमाणमिति । एवं सर्वेष्वपि मण्डलेषु स्वस्वमुहूर्त्तगतौ स्वस्वदिवसार्द्ध-गतमुहूर्त्तराशिना गुणितायां दृष्टिपथप्राप्तता भवति । दृष्टिपथप्राप्तता चक्षुःस्पर्शः पुरुषच्छाया इत्येकार्थाः, सा च पूर्वतोऽपरतश्च समप्रमाणैव भवतीति द्विगुणिता तापक्षेत्रमुदया-ऽस्तान्तर-मित्यादिपर्यायाः । इदं च सर्वबाह्यानन्तरमण्डलात् पश्चानुपूर्व्या गण्यमानं त्र्यशीत्यधिकशततमं, प्रतिमण्डलं चाहोरात्रगणनादहोरात्रोऽपि त्र्यशीत्यधिकशततमस्तेनायमुत्तरायणस्य चरमो दिवसोऽयमेव च सूर्यसंवत्सरस्य पर्यन्तदिवस उत्तरायणपर्यवसानकत्वात् संवत्सरस्येति । अथ नवसंवत्सर-प्रारम्भप्रकारप्रज्ञापनाय सूत्रं प्रारभ्यते-"**से णिक्खममाणे**" इत्यादि, अथाभ्यन्तरान्मण्डलाद् 'निष्क्रामन्' जम्बूद्वीपान्तः प्रवेशेऽशीत्यधिकयोजनशतप्रमाणे क्षेत्रे चरमाकाशप्रदेशस्पर्शनानन्तरं द्वितीयसमये द्वितीयमण्डलाभिमुखं प्रसर्पन्नित्यर्थः, **सूर्यो 'नवम्'** आगामिकालभाविनं **संवत्सरम् 'अयमानः २'** आददानः **प्रथमेऽहोरात्रे सर्वाभ्यन्तरानन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति**, एष चाहोरात्रो दक्षिणायनस्याद्यः संवत्सरस्यापि च, दक्षिणायनादिकत्वात् संवत्सरस्य । अत्र चाधिकारे **समवायाङ्ग-सूर्यप्रज्ञप्ति-चन्द्रप्रज्ञप्ति-सूत्रादर्शे प्रस्तुतसूत्रादर्शेषु** च '**अयमाणे २**' इत्यस्य स्थाने '**अयमीणे**' इति पाठो दृश्यते, तेन यदि स समूलस्तदा आर्षत्वादिहेतुना साधुरेव, '**अयमाणे**' इति तु लक्षणसिद्धः, अर्थस्तूभयत्रापि स एवेति ॥२०॥

अथात्र गतिप्रश्नाय सूत्रम्-

जया णं भंते ! सूरिए अब्भंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?, गोअमा ! पंच पंच जोअणसहस्साइं दोण्णि अ एगावण्णे जोअणसए सीआलीसं च सट्ठिभागे जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, तया णं इहगयस्स मणूसस्स सीआ-लीसाए जोअणसहस्सेहिं एगूणासीए जोअणसए सत्तावण्णाए[१] अ सट्ठिभाएहिं जोअणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिधा छेत्ता एगूणवीसाए चुण्णिआभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ । से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भंतरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ॥ २१ ॥

१. ०वण्णं-J12 अखत्रिबस ॥

"**जया ण**"मित्यादि, **यदा भगवन् ! 'सर्वाभ्यन्तरानन्तरं'** द्वितीयं दक्षिणायनापेक्षया आद्यं **मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा एकैकेन मुहूर्त्तेन कियत्क्षेत्रं गच्छति ?, गौतम ! पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि द्वे चैकपञ्चाशे योजनशते सप्तचत्वारिंशतं च षष्टिभागान्** [५,२५१ $\frac{४७}{६०}$] **योजनस्यैकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति** । कथम् ? इति चेत्, उच्यते अस्मिंश्च मण्डले परिरयपरिमाणं त्रीणि योजनलक्षाणि पञ्चदश सहस्राणि शतमेकं सप्तोत्तरं व्यवहारतः परिपूर्णं निश्चयमतेन तु किञ्चिदूनं ३१५१०७, ततोऽस्य प्रागुक्तयुक्तिवशात् षष्ट्या भागे लब्धं यथोक्तमत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिप्रमाणं ५२५१-४७/६० । अथवा पूर्वमण्डल-परिरयपरिमाणादस्य परिरयपरिमाणे व्यवहारतः पूर्णान्यष्टादशयोजनानि वर्द्धन्ते निश्चयमतेन तु किञ्चिदूनानि, अष्टादशानां योजनानां षष्ट्या भागे लब्धा अष्टादश षष्टिभागा [$\frac{१८}{६०}$] योजनस्य, ते प्राक्तनमण्डलगतमुहूर्त्तगतिपरिमाणेऽधिकत्वेन प्रक्षिप्यन्ते, ततो भवति यथोक्तं तत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिप्रमाणमिति । अत्रापि दृष्टिपथप्राप्ततविषयं परिमाणमाह-यदा अभ्यन्तरद्वितीये मण्डले सूर्यश्चरति, **तदा इहगतस्य 'मनुष्यस्य'** जातावेकवचनमित्यत्र गतानां मनुष्याणां **सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैरेकोनाशीत्य**धिकेन **योजनशतेन**, सूत्रे तृतीयार्थे सप्तमी प्राकृतत्वात्, **सप्तपञ्चाशता च षष्टिभागैर्योजनस्य षष्टिभागं च एकषष्टिधा 'छित्त्वा'** एकषष्टिखण्डान् कृत्वा एकषष्टिधा गुणयित्वेत्यर्थः, तस्य सत्कैरे**कोन-विंशत्या 'चूर्णिकाभागैः'** भागभागैः [४७,१७९ $\frac{५७}{६०}$ $\frac{१९}{६१}$] **सूर्यश्चक्षुःस्पर्शमागच्छति** । तथाहि-सर्वाभ्यन्तरानन्तरे द्वितीये मण्डले दिवसप्रमाणं द्वाभ्यामेकषष्टिभागाभ्यां हीना अष्टादश मुहूर्त्ताः, तेषामर्द्धे नव मुहूर्त्ता एकेनैकषष्टिभागेन हीनाः, ततः सामस्त्येनैकषष्टिभागकरणार्थं नवापि मुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते, तेभ्य एकषष्टिभागोऽपनीयते, ततः शेषा जाता एकषष्टिभागाः पञ्च शतान्यष्टचत्वारिंशदधिकानि ५४८ । प्रस्तुतमण्डले मुहूर्त्तगतिः ५२५१ योजन ४७/६०, अयं च राशिः षष्टिच्छेद इति योजनराशिं षष्ट्या गुणयित्वा सवर्ण्यते जातं ३१५१०७, अयमेव राशिः करणविभावनायां **मलयगिरीयक्षेत्रसमासवृत्तौ** च परिधिराशिरिति कृत्वा दर्शितो लाघवात् भाज्यराशिलब्धस्य भाजकराशिना गुणने मूलराशेरेव लाभात्, एष राशिः पञ्चभिः शतैरष्टचत्वारिंशदधिकैर्गुण्यते जाताः सप्तदश कोट्यः षड्विंशतिर्लक्षाः अष्टसप्ततिः सहस्राणि षट् शतानि षड्त्रिंशदधिकानि १७,२६,७८,६३६, अयं च राशिर्भागभागात्मकत्वान्न योजनानि प्रयच्छतीति एकषष्टेः षष्ट्या गुणिताया यावान् राशिर्भवति तेन भागो ह्रियते । इयं च गणितप्रक्रिया लाघवार्थिका, अन्यथाऽस्य राशेरेकषष्ट्या भागे हृते षष्टिभागा लभ्यन्ते तेषां च

षष्ट्या भागे हृते योजनानि भवन्तीति गौरवं स्यात्, एकषष्ट्यां च षष्ट्या गुणितायां षड्त्रिंशच्छतानि षष्ट्यधिकानि ३६६०, तैर्भागे हृते आगतं सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि शतमेकमेकोनाशीत्यधिकं योजनानां ४७१७९, शेषं ३४९६, छेदराशेः षष्ट्याऽपवर्त्तना क्रियते जाता एकषष्टिः ६१ तया शेषराशेर्भागो ह्रियते लब्धाः सप्तपञ्चाशत् षष्टिभागाः ५७/६०, एकोनविंशतिश्चैकस्य षष्टिभागस्य सत्काः एकषष्टिभागाः १९/६१ । अथाभ्यन्तरतृतीयमण्डलस्य चारं पिपृच्छिषुराद्यसूत्रं सूत्रयति-"**से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि**" इत्यादि ॥२१॥

जया णं भंते ! सूरिए अब्भंतरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?, गोअमा ! पंच पंच जोअणसहस्साइं दोण्णि अ बावण्णे जोअणसए पंच य सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, तया णं इहगयस्स मणुसस्स सीआलीसाए जोअणसहस्सेहिं छण्णउइए जोअणेहिं तेत्तीसाए सट्ठिभागेहिं जोअणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिधा छेत्ता दोहिं चुण्णिआभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छति । एवं खलु एतेणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे संकममाणे, अट्ठारस २ सट्ठिभागे जोअणस्स एगमेगे मंडले मुहुत्तगइं अभिवड्ढेमाणे अभिवुड्ढेमाणे, चुलसीइं २ स[1]आइं जोअणाइं पुरिसच्छायं णिव्वुड्ढेमाणे २, सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ॥ २२ ॥

अथ निष्क्रामन् **सूर्यो** द्वितीयेऽहोरात्रे प्रस्तुतायनापेक्षया द्वितीयमण्डल इत्यर्थः, **अभ्यन्तरं तृतीयमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, तदा एकैकेन मुहूर्त्तेन कियत् क्षेत्रं गच्छति ?**, भगवानाह-**गौतम ! पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि द्वे च द्विपञ्चाशद्योजनशते प[2]ञ्च षष्टिभागान्** [५,२५२ $\frac{5}{60}$] **योजनस्यैकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति**, इदं च प्रस्तुतमण्डलपरिरयस्य षष्ट्या भजने संवादमादत्ते । **तदा च इहगतस्य मनुष्यस्य सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैः षण्णवत्या च योजनैस्त्रयस्त्रिंशता च षष्टिभागैर्योजनस्य षष्टिभागं चैकम् एकषष्टिधा छित्त्वा द्वाभ्यां चूर्णिकाभागाभ्यां** [४७०९६ $\frac{33}{60}$ $\frac{2}{61}$] **सूर्यश्चक्षुःस्पर्शं 'हव्वं' शीघ्रमागच्छति** । तथाहि-अत्र मण्डले दिनप्रमाणमष्टादश मुहूर्त्ताश्चतुर्भिरेकषष्टिभागैर्हीनाः,

१. सत्ताइं-अ । सताइं-ब । सीयाइं-V । सीताइं-सूर्यप्रज्ञप्तौ २।३ ॥ २. सूत्रे-पंच य सट्ठिभाए-इति पाठः । मुद्रिते पञ्चदश-इति पाठः ॥

तेषामर्द्धे च नव द्वाभ्यामेकषष्टिभागाभ्यां हीना:, तत: सामस्त्येनैकषष्टिभागकरणार्थं नवापि मुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते, तेभ्यश्च द्वावेकषष्टिभागावप[1]नीयेते शेषा: पञ्च शतानि सप्तचत्वारिंशदधिकानि ५४७ । प्रस्तुतमण्डले मुहूर्त्तगति: ५२५२-५[2]/६० इत्येवंरूपां योजनराशिं षष्ट्या गुणयित्वा सवर्ण्यते जातं ३१५१२५, अयमेव राशिरन्यै: परिधिराशित्वेन निरूपित:, अस्य च सप्तचत्वारिंशदधिकपञ्चशतैर्गुणने जाता: सप्तदश कोट्यस्त्रयोविंशति: शतसहस्राणि त्रिसप्तति: सहस्राणि त्रीणि शतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि १७,२३,७३,३७५, एतेषां षष्टिगुणितया एकषष्ट्या ३६६० भागे हृते आगतानि सप्तचत्वारिंशत् सहस्राणि षण्णवत्यधिकानि ४७०९६, शेषं विंशतिशतानि पञ्चदशोत्तराणि २०१५, छेदराशे: षष्ट्याऽपवर्त्तनायां जाता एकषष्टि:, तया शेषराशेर्भजने लब्धास्त्रयस्त्रिंशत् षष्टिभागा: ३३/६०, शेषौ च द्वावेकस्य षष्टिभागस्य सत्कावेकषष्टिभागौ २/६१ इति । सम्प्रति चतुर्थ-मण्डलादिष्वतिदेशमाह-"**एवं खलु एतेणं उवाएण**"मित्यादि, '**एवं**' मण्डलत्रयदर्शितरीत्या '**खलु**' निश्चितम् 'एतेन' अनन्तरोदितेन 'उपायेन' शनै: शनैस्तत्तद्बहिर्मण्डलाभिमुखगमनरूपेण **निष्क्रामन् सूर्यस्तदनन्तरान्मण्डलात्तदनन्तरं मण्डलं प्रागुक्तप्रकारेण सङ्क्रामन् २, एकैकस्मिन् मण्डले 'मुहूर्त्तगतिम्'** इत्यत्र प्राकृतत्वात् सप्तम्यर्थे द्वितीया तेन मुहूर्त्तगतौ **अष्टादश २ षष्टिभागान् योजनस्य** व्यवहारत: परिपूर्णान् निश्चयत: किञ्चिदूनान् **अभिवर्द्धयमान: [२], चतुरशीतिं २ योजनानि '[3]शीतानि'** किञ्चिन्न्यूनानि '**पुरिसच्छायमि**'ति पुरुषस्य छाया यतो भवति सा पुरुषच्छाया, सा चेह प्रस्तावात् प्रथमत: सूर्यस्योदयमानस्य दृष्टिपथप्राप्तता, अत्रापि सप्तम्यर्थे द्वितीया, ततोऽयमर्थ:-तस्यां '**निवर्द्धयन् २**' हापयन् २ । कोऽर्थ: ? पूर्वं २ मण्डलसत्कपुरुषच्छायातो बाह्यबाह्यमण्डलपुरुषच्छाया किञ्चिन्न्यूनैश्चतुरशीत्या योजनैर्हीना इत्यर्थ:, **सर्वबाह्यमण्डल-मुपसङ्क्रम्य चारं चरति** । यच्चात्रोक्तं ८४ योजनानि किञ्चिन्न्यूनानि उत्तरोत्तरमण्डल-सत्कपुरुषच्छायायां हीयन्ते इति तत्स्थूलत उक्तम्, परमार्थत: पुनरिदं द्रष्टव्यम्-त्र्यशीतिर्योजनानि त्रयोविंशतिश्च षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य एकषष्टिधाच्छिन्नस्य सत्का द्विचत्वारिंशद् भागाश्चेति [८३ २३/६० ४२/६१] दृष्टिपथप्राप्तताविषये हानौ ध्रुवम् । तत: सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात् तृतीयं यन्मण्डलं तत आरभ्य यस्मिन् मण्डले दृष्टिपथप्राप्तता ज्ञातुमिष्यते, तत्तन्मण्डलसङ्ख्यया षट्त्रिंशद् गुण्यते, तद्यथा-सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्तृतीये

१. ०नीयते-पुके ॥ २. पु । १५।६०० ॥ ३. शतानि-क ॥

मण्डले एकेन चतुर्थे द्वाभ्यां पञ्चमे त्रिभिर्यावत् सर्वबाह्यमण्डले द्व्यशीताधिकशतेन गुणयित्वा ध्रुवराशिमध्ये प्रक्षिप्यते, प्रक्षिप्ते सति यद्भवति, तेन हीना पूर्वमण्डलसत्कदृष्टिपथप्राप्तता तस्मिन् विवक्षिते मण्डले दृष्टिपथप्राप्तता ज्ञातव्या । अथ त्र्यशीतियोजनादिकस्य ध्रुवराशेः कथमुपपत्तिः ?, उच्यते, सर्वाभ्यन्तरमण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणे सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि द्वे शते त्रिषष्ट्यधिके योजनानामेकविंशतिश्च षष्टिभागा योजनस्य ४७२६३-२१/६०, एतच्च नवमुहूर्त्तगम्यम्, तत एकस्मिन् मुहूर्त्तैकषष्टिभागे किमागच्छतीति चिन्तायां नव मुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि पञ्च शतान्येकोनपञ्चाशदधिकानि ५४९, तैर्भागे हृते लब्धानि षडशीति-र्योजनानि पञ्च षष्टिभागा योजनस्य एकस्य च षष्टिभागस्यैकषष्टिधाच्छिन्नस्य चतुर्विंशतिर्भागाः ८६-५/६० २४/६१ । इदं च सर्वाभ्यन्तरे मण्डले एकस्य मुहूर्त्तैकषष्टिभागस्य गम्यम् । अथ द्वितीयमण्डलपरिरयवृद्ध्यङ्कभजनाद्यल्लभ्यते मुहूर्त्तैकषष्टिभागेन तच्छोधनार्थमुपक्रम्यते- पूर्वपूर्वमण्डलादनन्तरानन्तरे मण्डले परिरयपरिमाणचिन्तायामष्टादशाष्टादश योजनानि व्यवहारतः परिपूर्णानि वर्धन्ते, ततः पूर्वपूर्वमण्डलगतमुहूर्त्तगतिपरिमाणादनन्तरानन्तरे मण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणचिन्तायां प्रतिमुहूर्त्तमष्टादश २ षष्टिभागा [$\frac{१८}{६०}$] योजनस्य वर्द्धन्ते, प्रति-मुहूर्त्तैकषष्टिभागं चाष्टादशैकस्य षष्टिभागस्य सत्का एकषष्टिभागाः $\frac{१}{६०}$ $\frac{१८}{६१}$, सर्वाभ्यन्तरानन्तरे च द्वितीयमण्डले नवमुहूर्त्तैरेकेन मुहूर्त्तैकषष्टिभागेनोनैर्यावत् क्षेत्रं व्याप्यते, तावति स्थितः सूर्यो दृष्टिपथप्राप्तो भवति । ततो नव मुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते[१], जातान्यष्टानवतिशतानि चतुःषष्ट्यधिकानि ९८६४, तेषां षष्टिभागानयनार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धमेकषष्ट्यधिकं शतं षष्टिभागानां त्रिचत्वारिंशत् षष्टिभागस्य सत्का एकषष्टिभागाः १६१- ४३/६१, तत्र विंशत्यधिकेन षष्टिभागशतेन लब्धे द्वे योजने अवशेषा एकचत्वारिंशत् षष्टिभागाः, एकस्य च षष्टिभागस्य सत्कास्त्रिचत्वारिंशदेक-षष्टिभागाः [२ $\frac{४१}{६०}$ $\frac{४३}{६१}$], एतच्च द्वे योजने एकचत्वा-रिंशत्षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्कास्त्रिचत्वारिंशदेकषष्टिभागा [२ $\frac{४१}{६०}$ $\frac{४३}{६१}$] इत्येवंरूपं प्रागुक्तात् षडशीतिर्योजनानि पञ्च षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काश्चतुर्विंशतिरेकषष्टिभागा इत्येतस्माच्छोध्यन्ते, शोधिते च [८६ $\frac{५}{६०}$ $\frac{२४}{६१}$] तस्मिन् स्थितानि त्र्यशीतिर्योजनानि त्रयोविंशतिः षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्का द्विचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः ८३-२३/६० ४२/६१ । एतावच्च सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतदृष्टिपथ-प्राप्ततापरिमाणाद् द्वितीयमण्डलगतदृक्पथप्राप्ततापरिमाणे हीनं स्यात्, एतच्चोत्तरोत्तरमण्डल-दृष्टिपथप्राप्तताचिन्तायां हानौ ध्रुवम्, अत एव ध्रुवराशिरित्युच्यते । ततो द्वितीयस्मान्मण्डलाद-

१. अत्र ६१ x ९ = ५८९-१ (एकषष्टिभागा) x १८ = ३८६४ ॥

नन्तरे तृतीये मण्डले एष एव ध्रुवराशिरेकस्य षष्टिभागस्य सत्कैः षट्त्रिंशता भागभागैः सहितो यावान् राशिः स्यात्, तथाहि-त्र्यशीतिर्योजनानि चतुर्विंशतिः षष्टिभागा योजनस्य सप्तदश च षष्टिभागस्य सत्का एकषष्टिभागा [८३ २४/६० १७/६१] इति तावान् द्वितीयमण्डलगताद् दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणाच्छोध्यते, ततो भवति यथोक्तमत्र मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणम् । चतुर्थमण्डले स एव ध्रुवराशिर्द्वासप्तत्या सहितः क्रियते, चतुर्थं हि मण्डलं तृतीयमण्डलापेक्षया द्वितीयम्, ततः षट्त्रिंशद् द्वाभ्यां गुणिता द्विसप्ततिः स्यात्, तया सहितस्त्र्यशीत्यादिको राशिः ८३-२४/६० ५३/६१ इत्येवंस्वरूपो जातः । अयं च तृतीयमण्डलगतात् दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणाच्छोध्यते, ततो यथावस्थितं तुर्यमण्डले दृक्पथप्राप्तिमानम् । तच्चेदम्-सप्तचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि त्रयोदशोत्तराणि अष्टौ च षष्टिभागा योजनस्य एकस्य च षष्टिभागस्य सत्का दशैकषष्टिभागाः ४७,०१३ ८/६० १०/६१, सर्वान्तिमे तु मण्डले तृतीयमण्डलापेक्षया द्व्यशीत्यधिकशततमे यदा दृष्टिपथप्राप्तिजिज्ञासा, तदा षट्त्रिंशत् द्व्यशीत्यधिकशतेन गुण्यते, जातानि पञ्चषष्टिशतानि द्विपञ्चाशदधिकानि ६५५२ । ततः षष्टिभागानयनार्थमेकषष्ट्या भागे लब्धं सप्तोत्तरं शतं षष्टिभागानां पञ्चविंशतिरवशिष्टाः १०७ २५/६१ । एतद् ध्रुवराशौ प्रक्षिप्यते, जातं पञ्चाशीतिर्योजनानि एकादश षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षडेकषष्टिभागाः ८५-११/६० ६/६१ । इह षट्त्रिंशत एवमुत्पत्तिः-पूर्वस्मात् २ मण्डलादनन्तरेऽनन्तरे मण्डले दिवसो द्वाभ्यां २ मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यां हीनः स्यात्, प्रतिमुहूर्त्तैकषष्टिभागं चाष्टादश एकस्य षष्टिभागस्य सत्का एकषष्टिभागा हीयन्ते, ततः उभयमीलने षट्त्रिंशत् स्युः । ते चाष्टादश भागाः कलया न्यूना लभ्यन्ते, न परिपूर्णाः । परं व्यवहारतः पूर्वं परिपूर्णा विवक्षिताः, तच्च कलया न्यूनत्वं प्रतिमण्डलं भवत् यदा द्व्यशीत्यधिकशततममण्डले एकत्र पिण्डितं सत् चिन्त्यते, तदा अष्टषष्टिरेकषष्टिभागास्त्रुट्यन्ति, एतदपि व्यवहारत उक्तम्, परमार्थतः पुनः किञ्चिदधिकमपि त्रुट्यदवसेयम् । ततोऽमी अष्टषष्टिरेकषष्टिभागा अपसार्यन्ते, तदपसारणे पञ्चाशीतिर्योजनानि नव षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः ८५-९/६० ६०/६१ इति जातम् । सर्वबाह्यमण्डलानन्तरार्वाक्तनद्वितीयमण्डलगतदृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणादेकत्रिंशत्सहस्राणि नव शतानि षोडशोत्तराणि योजनानाम् एकोनचत्वारिंशत्षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः ३१९१६-३९/६० ६०/६१ इत्येवंरूपाच्छोध्यते, ततो यथोक्तं सर्वबाह्यमण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं भवति, तच्चाग्रे स्वयमेव वक्ष्यति । तत एवं पुरुषच्छायायां दृष्टिपथप्राप्ततारूपायां द्वितीयादिषु

केषुचिन्मण्डलेषु चतुरशीतिं किञ्चिन्न्यूनानि, उपरितनेषु मण्डलेष्वधिकान्यधिकतराणि उक्त-प्रकारेणाभिवर्द्धयन् २, तावदवसेयो यावत्सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, तत्र तु पञ्चाशीतिं योजनानि साधिकानि हापयतीत्यर्थः । साधिकत्र्यशीतिचतुरशीतिपञ्चाशीतियो[1]जनहानि सम्भवेऽपि सूत्रे यच्चतुरशीतिग्रहणम्, तद् **देहलीप्रदीप**न्यायेनोभयपार्श्ववर्त्तिन्योस्त्र्यशीति-पञ्चाशीत्योर्ग्रहणार्थमिति ॥२२॥

अथोक्ते एव मण्डलक्षेत्रे पश्चानुपूर्व्या सूर्यस्य मुहूर्त्तगत्याद्याह–

जया णं भंते ! सूरिए सव्वबाहिरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?, गोअमा ! पंच पंच जोअण-सहस्साइं तिण्णि अ पंचुत्तरे जोअणसए पण्णरस य सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, तया णं इहगयस्स मणुसस्स एगतीसाए जोअणसहस्सेहिं अट्ठहि अ एगत्तीसेहिं जोअणसएहिं तीसाए अ सट्ठिभाएहिं जोअणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ । एस णं पढमे छम्मासे,[2] एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे । से सूरिए दोच्चे छम्मासे अयमीणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ॥ २३ ॥

''जया ण''मित्यादि, **यदा भगवन् ! सूर्यः सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा एकैकेन मुहूर्त्तेन कियत् क्षेत्रं गच्छति ? गौतम ! पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि त्रीणि पञ्चोत्तराणि योजनशतानि पञ्चदश षष्टिभागान् योजनस्य** ५३०५-१५/६० **एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति** । कथम् ? इति चेत्, उच्यते, अस्मिन् मण्डले परिरयपरिमाणं तिस्रो लक्षा अष्टादश सहस्राणि त्रीणि शतानि पञ्चदशोत्तराणि ३१८३१५, ततोऽस्य प्रागुक्त-युक्तिवशात् षष्ट्या भक्ते लब्धं यथोक्तमत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणमिति । अत्र दृष्टिपथ-प्राप्ततापरिमाणमाह–''**तदा**'' सर्वबाह्यमण्डलचारचरण-काले '**इहगतस्य मनुष्यस्ये**'ति प्रागवत् **एकत्रिंशता योजनसहस्रैरष्टभिश्चैकत्रिंशदधिकै-र्योजनशतैस्त्रिंशता** च **षष्टिभागैर्योजनस्य** ३१८३१-३०/६० **सूर्यः शीघ्रं चक्षुःस्पर्श-मागच्छति** । तथाहि–अस्मिन् मण्डले सूर्ये चारं चरति दिवसो द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणः । दिवसस्यार्द्धेन यावन्मात्रं क्षेत्रं व्याप्यते, तावति स्थित उदयमानः सूर्य उपलभ्यते, द्वादशानां च मुहूर्त्तानामर्द्धे षट् मुहूर्त्ताः, ततो यदत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणं पञ्चयोजनसहस्राणि त्रीणि शतानि पञ्चोत्तराणि पञ्चदश च षष्टिभागा

१. पुके । ०जनानां सम्भवऽपि-मु. ॥ २. अकब J12 । अयमाणे-मु. ॥

योजनस्य ५३०५-१५/६० तत् षड्भिर्गुण्यते, दिवसार्द्धगुणिताया एव मुहूर्त्तगतेर्दृष्टिपथ-प्राप्तताकरणत्वात्, ततो यथोक्तमत्र मण्डले दृष्टिपथ-प्राप्ततापरिमाणं भवति । यद्यप्युपा-न्त्यमण्डलदृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणात् पञ्चाशीतिर्योजनानि नव षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः [$८५\frac{९}{६०}\ \frac{६०}{६१}$] इत्येवंराशौ शोधिते इदमुपपद्यते, एतच्च प्राग् भावितम्, तथापि प्रस्तुतमण्डलस्योत्तरायणगतमण्डला-नामवधिभूतत्वेनान्य-मण्डलकरणनिरपेक्षतया करणान्तरमकारि । इदं च सर्वाभ्यन्तरानन्तर-मण्डलात् पूर्वानुपूर्व्या गण्यमानं त्र्यशीत्यधिकशततमम्, प्रतिमण्डलं चाहोरात्रगणनादहोरात्रो-ऽपि त्र्यशीत्यधिकशत-तमः, तेनायं दक्षिणायनस्य चरमो दिवस इत्याद्यभिधातुमाह-"**एस णं पढमे छम्मासे एस ण**"मित्यादि, '**एष**' च दक्षिणायनसत्कत्र्यशीत्यधिकशतदिनरूपो राशिः **प्रथमः** '**षण्मासः**' अयनरूपः कालविशेषः, [१]षट्सङ्ख्याङ्काः मासाः पिण्डीभूता यत्रेति व्युत्पत्तेरिदं समाधेयम्, अन्यथा प्रथमः षण्मास इत्येकवचनानुपपत्तिरिति । अथवा पात्र्यादिगणान्तःपाठात् स्त्रीत्वाभावे अदन्तद्विगुत्वेऽपि न ङीप्रत्ययस्तेनैव तत्प्रथमं षण्मासम् आर्षत्वात् पुंस्त्वम्, एतच्च प्रथमस्य 'षण्मासस्य' दक्षिणायनरूपस्य **पर्यवसानम्** । अथ सर्वबाह्यमण्डल-चारानन्तरं **सूर्यो द्वितीयं षण्मासं** '**प्राप्नुवन्**' गृह्णन् इत्यर्थः, प्रथमे अहोरात्रे उत्तरायणस्येति गम्यम्, '**बाह्यानन्तरं**' पश्चानुपूर्व्या द्वितीयं **मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति** ॥२३॥

अथात्र गत्यादिप्रश्नार्थं सूत्रमाह-

जया णं भंते ! सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?, गोअमा ! पंच पंच जोअण-सहस्साइं तिण्णि अ चउरुत्तरे जोअणसए सत्तावण्णं च सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ । तया णं इहगयस्स मणुस्स[२] एगत्तीसाए जोअणसहस्सेहिं णवहि अ सोलसुत्तरेहिं जोअणसएहिं इगुणालीसाए अ सट्ठिभाएहिं जोअणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिधा छेत्ता सट्ठीए चुण्णिआभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ । से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ॥ २४ ॥

"**जया ण**"मित्यादि, **यदा भगवन् ! सूर्यः** '**बाह्यानन्तरम्**' अर्वाक्तनं द्वितीयं **मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा** भगवन् ! **एकैकेन मुहूर्त्तेन कियत् क्षेत्रं गच्छति ?** ।

---

१. पुके । षट्संख्याङ्काः-मु. ॥ २. ऊणालीसाए-अब J2 । ऊगुताली० कख । उगुणताली० त्रिस ॥

भगवानाह-**गौतम ! पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि त्रीणि च चतुरुत्तराणि योजनशतानि सप्तपञ्चाशतं च षष्टिभागान् ५३०४-५७/६० योजन-स्यैकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति ।** तथाहि-अस्मिन् मण्डले परिरयपरिमाणं त्रीणि लक्षाणि अष्टादश सहस्राणि द्वे शते सप्तनवत्यधिके योजनानां ३१८२९७, ततोऽस्य षष्ट्या भागे हृते लब्धं यथोक्तमत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिप्रमाणम् । अत्रापि दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणमाह-**तदा 'इहगतस्य मनुष्यस्ये'**ति प्राग्वत् **एकत्रिंशता योजनसहस्रैः षोडशाधिकैः नवभिश्च योजनशतैरेकोनचत्वारिंशता च षष्टिभागैर्योजनस्य एकं च षष्टिभागमेकषष्टिधा छित्त्वा** तस्य सत्कैः **षष्ट्या चूर्णिकाभागैः** ३१९१६-३९/६० ६०/६१ **सूर्यश्चक्षुःस्पर्शमागच्छति ।** तथाहि-अस्मिन् मण्डले सूर्ये चारं चरति दिवसो द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणो द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागा-भ्यामधिकः, तेषां चार्द्धे षड् मुहूर्त्ताः एकेन मुहूर्त्तैकषष्टिभागेनाभ्यधिकाः, ततः सवर्णनार्थं षडपि मुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते, तत एकः षष्टिभागस्तत्राधिकः प्रक्षिप्यते, ततो जातानि त्रीणि शतानि सप्तषष्ट्यधिकानि एकषष्टिभागानां ३६७ । ततः प्रस्तुतमण्डले यत्परिमाणं त्रीणि लक्षाणि अष्टादशसहस्राणि द्वे शते सप्तनवत्यधिके ३१८२९७, इदं च योजनराशिं षष्ट्या गुणयित्वा सवर्णिता मुहूर्त्तगतिरिति यथा व्यवह्रियते तथा प्रागुक्तम्, एतदेभिस्त्रिभिः शतैः सप्तषष्ट्याऽधिकैर्गुण्यते जाता एकादश कोट्योऽष्टषष्टिर्लक्षाश्चतुर्दश सहस्राणि नव शतानि नवनवत्यधिकानि ११,६८,१४,९९९ । एतस्य एकषष्ट्या गुणितया षष्ट्या ३६६० भागो ह्रियते, लब्धान्येकत्रिंशत्सहस्राणि नव शतानि षोडशोत्तराणि ३१९१६, शेषमुद्धरति चतुर्विंशतिशतानि एकोनचत्वारिंशदधिकानि २४३९, न चातो योजनान्यायान्ति, ततः षष्टिभागानयनार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धा एकोनचत्वारिंशत् षष्टिभागाः ३९/६० एकस्य च षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेक-षष्टिभागाः ६०/६१ । अथ तृतीयं मण्डलम्-"**से पविसमाणे**" इत्यादि, **अथ 'प्रविशन्'** जम्बूद्वीपाभिमुखं चरन् **सूर्यः 'द्वितीयेऽहोरात्रे'** उत्तरायणसत्के इत्यर्थः, **बाह्यतृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति** ॥२४॥

तदा किम् ? इत्याह-

जया णं भंते ! सूरिए बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?, गोयमा ! पंच पंच जोअणसहस्साइं तिण्णि अ चउरुत्तरे जोअणसए इगुणालीसं च सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, तया णं इहगयस्स मणूसस्स

[1]एगाहिएहिं बत्तीसाए जोअणसहस्सेहिं एगूणपण्णाए अ सट्ठिभाएहिं जोअणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिधा छेत्ता तेवीसाए चुण्णिआभाएहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ । एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे २, अट्ठारस २ सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगे मंडले मुहुत्तगइं निवड्ढेमाणे २, सातिरेगाइं पंचासीतिं २ जोअणाइं पुरिसच्छायं अभिवड्ढेमाणे २, सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । एस णं दोच्चे छम्मासे, एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे । एस णं आइच्चे संवच्छरे, एस णं आइच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे पण्णत्ते ॥ २५ ॥

"जया ण"मित्यादि, **यदा भगवन् ! सूर्यः बाह्यतृतीयं मण्डल-मुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा एकैकेन मुहूर्त्तेन कियत् क्षेत्रं गच्छति ?।** भगवानाह-**गौतम ! पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि त्रीणि चतुरुत्तराणि योजनशतानि एकोन-चत्वारिंशतं च षष्टिभागान् योजनस्य** ५३०४-३९/६० **एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति** । तथाहि-अस्मिन् मण्डले परिरयपरिमाणं तिस्रो लक्षा अष्टादश सहस्राणि द्वे शते एकोनाशीत्यधिके ३१८२७९, अस्य च षष्ट्या भागे हृते लब्धं यथोक्तमत्र मण्डले मुहूर्त्तगतिप्रमाणम् । अथात्र दृष्टिपथप्राप्तता-**तदा इहगतस्य मनुष्यस्य एकाधिकैर्द्वात्रिंशता सहस्रैरेकोनपञ्चाशता च षष्टिभागैः[योजनस्ये]** एकं च **षष्टिभागमेकषष्टिधा छित्त्वा** तस्य सत्कैस्त्रयो**विंशत्या चूर्णिकाभागैः** ३२००१-४९/६० २३/६१ **सूर्यः चक्षुःस्पर्शमागच्छति** । तथाहि-अस्मिन् मण्डले दिवसो द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणश्चतुर्भिर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरधिकः, तस्यार्द्धं षट् मुहूर्त्ता द्वाभ्यामेक-षष्टिभागाभ्यामधिकाः, ततः सामस्त्येनैकषष्टिभागकरणार्थं षडपि मुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते, गुणयित्वा च तत्र द्वावेकषष्टिभागौ प्रक्षिप्येते, ततो जातानि त्रीणि शतानि अष्टषष्ट्यधिकानि एकषष्टिभागानां ३६८। ततोऽस्मिन् मण्डले यत्परिरयप्रमाणं त्रीणि लक्षाणि अष्टादश सहस्राणि द्वे शते एकोनाशीत्यधिके ३१८२७९ एतत् त्रिभिः शतैः अष्टषष्ट्यधिकैर्गुण्यते, जाता एकादश कोटयः एकसप्ततिः शतसहस्राणि षड्विंशतिः सहस्राणि षट् शतानि द्विसप्तत्यधिकानि ११,७१,२६,६७२, अस्य एकषष्ट्या गुणितया षष्ट्या ३६६० भागे लब्धानि द्वात्रिंशत्सहस्राणि

---

१. एक्काहिएहिं-अकखब ॥

एकोत्तराणि ३२००१ । शेषं त्रीणि सहस्राणि द्वादशोत्तराणि ३०१२, तेषां षष्टिभागानयनार्थमेकषष्ट्या भागे हृते लब्धा एकोनपञ्चाशत् षष्टिभागाः ४९/६० एकस्य षष्टिभागस्य सत्कास्त्रयोविंशतिश्चूर्णिकाभागाः २३/६१ इति । **समवायाङ्गे** तु त्रयस्त्रिंशत्समवाये "**जया णं सूरिए बाहिराणंतरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं इहगयस्स पुरिसस्स तेत्तीसाए जोअणसहस्सेहिं किंचिविसेसूणेहिं चक्खुफासं हव्वमागच्छइ**"[ ]त्ति, **एतद्वृत्तौ** च इह तु यदुक्तं त्रयस्त्रिंशत् किञ्चिन्न्यूनास्तत्र सातिरेकयोजनस्यापि न्यूनसहस्रता विवक्षितेति सम्भाव्यते इति । अथात्रापि चतुर्थमण्डलादिष्वतिदेशमाह-"**एवं खलु**" इत्यादि, '**एवम्**' उक्तेन प्रकारेण '**खलु**' निश्चितमेतेन '**उपायेन**' शनैः २ तत्तदनन्तराभ्यन्तरमण्डलाभिमुखगमनरूपेणाभ्यन्तरं **प्रविशन् सूर्यस्तदनन्तरान्मण्डलात् तदनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामन् २**, एकैकस्मिन् मण्डले '**मुहूर्त्तगति**'मित्यत्र द्वितीया पूर्ववत् मुहूर्त्तगतिपरिमाणे **अष्टादश २ षष्टिभागान् योजनस्य** व्यवहारतः परिपूर्णान् निश्चयतः किञ्चिदूनान् **निवर्द्धयन् २** हापयन्नित्यर्थः, पूर्वमण्डलात्[1] अभ्यन्तराभ्यन्तरमण्डलस्य परिरयमधिकृत्याष्टादशयोजनैर्हीनत्वात् । '**पुरुषच्छायामि**'त्यत्रापि द्वितीया पूर्ववत्, ततोऽयमर्थः-पुरुषच्छायायां दृष्टिपथप्राप्ततारूपायां नवभिः षष्टिभागैः षष्ट्या च चूर्णिकाभागैः [९/६० ६०/६१] '**सातिरेकाणि**' समधिकानि **पञ्चाशीतिं २ योजनान्यभिवर्द्धयन् २**, प्रथम-द्वितीयादिषु कतिपयेषु मण्डलेषु इयं वृद्धिर्ज्ञेया, सर्वमण्डलापेक्षया तु येनैव क्रमेण सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्परतो दृष्टिपथप्राप्ततां हापयन्निर्गतः तेनैव क्रमेण सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तनेषु दृष्टिपथप्राप्ततामभिवर्द्धयन् प्रविशति । तत्र सर्वबाह्यमण्डलादर्वाक्तनद्वितीयमण्डलगतात् दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणात् सर्वबाह्ये मण्डले पञ्चाशीतिं योजनानि नव षष्टिभागान् योजनस्य एकं च षष्टिभागमेकषष्टिधा छित्त्वा[2] तस्य सत्कान् षष्टिभागान् ८५ ९/६० ६०/६१ हापयति, एतच्च प्रागेव भावितम्, तस्मात् सर्वबाह्यादर्वाक्तने द्वितीये मण्डले प्रविशन् तावद्भूयोऽपि दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणेऽभिवर्द्धयति तच्च ध्रुवम् । ततोऽर्वाक्तनेषु मण्डलेषु यस्मिन् मण्डले दृष्टिपथप्राप्तता ज्ञातुमिष्यते तृतीयमण्डलादारभ्य तत्तन्मण्डलसङ्ख्यया षट्त्रिंशद् गुण्यते । तद्यथा-तृतीयमण्डलचिन्तायामेकेन चतुर्थमण्डलचिन्तायां द्वाभ्याम्, एवं यावत् सर्वाभ्यन्तरमण्डलचिन्तायां द्व्यशीत्यधिकेन शतेन । इत्थं च गुणयित्वा यल्लभ्यते, तद् ध्रुवराशेरपनीय शेषेण ध्रुवराशिना सहितं पूर्व२मण्डलगतं दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं तत्र मण्डले द्रष्टव्यम् । यथा तृतीये मण्डले षट्त्रिंशदेकेन गुण्यते, "**एकेन च गुणितं तदेव**

१. ०लापेक्षया अभ्य० पुके ॥ २. पुके । भित्त्वा-मु. ॥

भवती'[ ]ति जाता षट्त्रिंशदेव, सा ध्रुवराशेरपनीयते, जातं शेषमिदम्-पञ्चाशीतिर्योजनानि नव षष्टिभागा योजनस्य एकस्य च षष्टिभागस्य सत्काश्चतुर्विंशतिरेकषष्टिभागाः ८५-९/६० २४/६१ । एतेन पूर्वमण्डलगतं दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणम् एकत्रिंशत् सहस्राणि नव शतानि षोडशोत्तराणि योजना-नामेकोनचत्वारिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः ३१९१६ [$\frac{३९}{९६०}$ $\frac{६०}{६१}$] इत्येवंरूपसहितं क्रियते कृते च तृतीये मण्डले यथोक्तं दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं भवति, तच्च प्रागेव प्रदर्शितम् । चतुर्थे मण्डले षट्त्रिंशद् द्वाभ्यां गुण्यते, गुणयित्वा ध्रुवराशेरपनीय शेषेण ध्रुवराशिना तृतीयमण्डलगतं दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं सहितं क्रियते । तत इदं तत्र मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं भवति-द्वात्रिंशत्सहस्राणि षडशीत्यधिकानि योजनानामष्टपञ्चाशत् षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्का एकादशैकषष्टिभागाः ३२०८६-५८/६० ११/६१ । एवं शेषेष्वपि मण्डलेषु भावनीयम्, यदा तु सर्वाभ्यन्तरे मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं ज्ञातुमिष्यते, तदा षट्त्रिंशद् द्व्यशीत्यधिकेन शतेन गुण्यते, तृतीयमण्डलादारभ्य सर्वाभ्यन्तरस्य मण्डलस्य द्व्यशीत्यधिकशततमत्वात् । ततो जातानि पञ्चषष्टिः शतानि द्विपञ्चाशदधिकानि ६५५२, तेषामेकषष्ट्या भागे हृते लब्धं सप्तोत्तरं शतं षष्टिभागानां शेषाः पञ्चविंशतिः १०७/६० २५/६१ । एतत्पञ्चाशीतिर्योजनानि नव षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः ८५-९/६० ६०/६१ इत्येवंरूपाद् ध्रुवराशेः शोध्यते, जातानि पश्चात् त्र्यशीतिर्योजनानि द्वाविंशतिः षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः पञ्चत्रिंशदेकषष्टिभागाः [८३ $\frac{३२}{६०}$ $\frac{३५}{६१}$] । इह षट्त्रिंशदेकषष्टिभागाः कलया न्यूनाः परमार्थतो लभ्यन्ते, एतच्च प्रागेवोपदर्शितम्, तच्च कलाया न्यूनत्वं प्रतिमण्डलं भवत् यदा द्व्यशीत्यधिकशततममण्डले एकत्र पिण्डितं सत् चिन्त्यते, तदा अष्टषष्टिरेकषष्टिभागा लभ्यन्ते । ततस्ते भूयः प्रक्षिप्यन्ते, ततो जातमिदं त्र्यशीतिर्योजनानि त्रयोविंशतिः षष्टिभागाः योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्का द्विचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः ८३-२३/६० ४२/६१, एतेन सर्वाभ्यन्तरानन्तरद्वितीयमण्डलगतं दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि शतमेकोनाशीत्यधिकं योजनानां सप्तपञ्चाशत् षष्टिभागा योजनस्य एकस्य षष्टिभागस्य सत्का एकोनविंशतिरेकषष्टिभागाः ४७१७९-५७/६० १९/६१ इत्येवंरूपसहितं क्रियते । ततो यथोक्तं सर्वाभ्यन्तरे मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं भवति, तच्च सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि द्वे शते त्रिषष्ट्यधिके योजनानामेकविंशतिश्च षष्टिभागा योजनस्य ४७२६३-२१/६० । एवं दृष्टिपथप्राप्ततायां कतिपयेषु मण्डलेषु सातिरेकाणि

पञ्चाशीतिं २ योजनानि, अग्रेतनेषु चतुरशीतिं २, पर्यन्ते यथोक्ताधिकसहितानि त्र्यशीतिं योजनानि अभिवर्द्धयन् २ तावद् वक्तव्यो यावत् **सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति** । इदं च सर्वाभ्यन्तरमण्डलं सर्वबाह्यानन्तरात् मण्डलात् पश्चानुपूर्व्या गण्यमानं त्र्यशीत्यधिकशततमम्, प्रतिमण्डलं चाहोरात्रगणनादहोरात्रोऽपि त्र्यशीत्यधिकशततमः, तेनायमुत्तरायणस्य चरमो दिवस इत्याद्यभिधातुमाह–"**एस णं दोच्चे छम्मासे**" इत्यादि, **एष द्वितीयः 'षण्मासः'** प्रागुक्तयुक्त्या अयनविशेषो ज्ञातव्यः, **एतत् द्वितीयस्य षण्मासस्य 'पर्यवसानं'** त्र्यशीत्यधिकशततममहोरात्रत्वात्, **एष आदित्यः 'संवत्सरः'** आदित्यचारोपलक्षितः संवत्सर इति, इत्यनेन नक्षत्रादिसंवत्सरव्युदासः । **एतच्चादित्यस्य संवत्सरस्य 'पर्यवसानं'** चरमायनचरमदिवसत्वात् इति समाप्तं मुहूर्तगतिद्वारम्, तत्सम्बद्धाच्च दृष्टिपथवक्तव्यताऽपि ॥२५॥

अथाष्टमं दिनरात्रिवृद्धिहानिद्वारं निरूप्यते–

जया णं भंते ! सूरिए[१] सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं केमहालए दिवसे केमहालया राई भवइ ?, गोयमा ! तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिआ दुवालसमुहुत्ता राई भवइ । से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमीणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ॥ २६ ॥

"**जया ण**"मित्यादि, **यदा भगवन् ! सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा** को महान् **'आलयः'** व्याप्यक्षेत्ररूपः आश्रयो यस्यासौ **किंमहालयः** कियानित्यर्थः, **दिवसो भवति, 'किंमहालया'** कियती **रात्रिर्भवति** ? भगवानाह–**गौतम ! तदा 'उत्तमकाष्ठां प्राप्तः'** उत्तमावस्थां प्राप्तः आदित्यसंवत्सरसत्कषट्षष्ट्यधिकत्रिशतदिवसमध्ये यतो नापरः कश्चिदधिक इत्यर्थः, अत एव **'उत्कर्षकः'** उत्कृष्ट इत्यर्थः, **अष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसो भवति** । यत्र मण्डले यावत्प्रमाणो दिवसस्तत्र तदपेक्षया [शेष] अहोरात्रप्रमाणा रात्रिरिति **जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः**, सर्वस्मिन् क्षेत्रे काले वाऽहोरात्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तसङ्ख्याकत्वस्य नैयत्यात् । ननु यदा भरतेऽष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसस्तदा विदेहेषु जघन्या द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणा रात्रिः, तर्हि द्वादशमुहूर्त्तेभ्यः परं रात्रेरतिक्रान्तत्वेन षट् मुहूर्त्तान्

---

१. V पुके । ०महल्लिया–अखत्रिबस । ०मल्लिया–J2 । **महालिहया–मु. एवमग्रेऽपि** ॥

यावत्केन कालेन भाव्यम् ?, एवं भरतेऽपि वाच्यम्, उच्यते, अत्र षड्मुहूर्त्तगम्ये क्षेत्रेऽवशिष्टे सति तत्र सूर्यस्योदयमानत्वेन दिवसेनेति, तच्च सूर्योदया-ऽस्तान्तरविचारणेन तन्मण्डलगत-दृष्टिपथप्राप्ततताविचारणेन च सूपपन्नम् । आह-एवं सति सूर्योदया-ऽस्तमयने अनियते आपन्ने, भवतु नाम, न चैतदनार्षम्, यदुक्तम्-

"[१]जह जह समए समए, पुरओ संचरइ भक्खरो गयणे ।
तह तह इओ वि नियमा, जायइ रयणीइ भावत्थो ॥१॥

एवं च सइ नराणं, उदयत्थमणाइँ होंतऽनिययाइं ।
[२]सइ देसकालभेए, कस्सइ किंची य दिस्सए नियमा ॥२॥

सइ चेव य निद्दिट्ठो, रुद्दमुहुत्तो कमेण [३]सव्वेसिं ।
केसिंचीदाणिं पि अ, विसयपमाणो रवी जेसिं ॥३॥" [ ] ति

यत्तु **सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तौ**[४। सू.२५] सूर्यमण्डलसंस्थित्यधिकारे समचतुरस्रसंस्थितिवर्णनायां युगादौ एकः सूर्यो दक्षिणपूर्वस्यां एकश्चन्द्रो दक्षिणापरस्याम् द्वितीयः सूर्यः पश्चिमोत्तरस्यां द्वितीयः चन्द्रः उत्तरपूर्वस्यामित्युक्तम्, तत्तु दक्षिणादिभागेषु मूलोदयापेक्षया इति बोध्यम् । अयं च सर्वोत्कृष्टो दिवसः पूर्वसंवत्सरस्य चरमो दिवस इति वक्तुमाह-"**से णिक्खममाणे**" इत्यादि, अथ **निष्क्रामन् सूर्यः नवं संवत्सरम् 'अयमानः'** प्राप्नुवन्नाददान इत्यर्थः, **प्रथमे अहोरात्रे 'अभ्यन्तरानन्तरं'** द्वितीयमण्डल**मुपसङ्क्रम्य चारं चरति** इति ॥२६॥

अथ दिन-रात्रिवृद्ध्यपवृद्ध्यर्थमाह-

जया णं भंते ! सूरिए अब्भंतराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं केमहालए दिवसे केमहालया राई भवइ ?, गो० ! तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ दोहि अ एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया । से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि जाव चारं चरइ तया णं केमहालए दिवसे केमहालिया

---

१. यथा यथा समये समये, पुरतः सञ्चरति भास्करो गगने ।
तथा तथेतोऽपि नियमात्, जायते रजनीति भावार्थः ॥१॥
एवं च सति नराणामुदया-ऽस्तमयने अनियते भवतः ।
सति देशकालभेदे, कस्यापि किञ्चिद् व्यवहार्यते नियमात् ॥२॥
सकृदेव च निर्दिष्टः, रुद्रमुहूर्तः क्रमेण सर्वेषाम् ।
केषाञ्चिदिदानीमपि च, विषयप्रमाणो रविर्येषां ॥३॥

२. भगवतीसूत्रवृत्तौ ५/१ 'सइ देसभेएँ कस्सइ, किंची ववदिस्सए नियमा' इति पाठः । किं वा वदिस्सए-के ॥ ३. सव्वंसि-के ॥

राई भवइ ?, गोयमा ! तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया ॥२७-A॥

"**जया ण**"मित्यादि, **यदा भगवन् ! सूर्यः** '**अभ्यन्तरानन्तरं**' द्वितीयं **मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा** भगवन् ! '**किंमहालयः**' किंप्रमाणो **दिवसः** '**किंमहालया**' किंप्रमाणा **रात्रिः [भवति]** ?। भगवानाह-**गौतम ! तदा अष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणो द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामूनो दिवसो भवति**, अत्र सूत्रे प्राकृतत्वात् पदव्यत्ययः, **द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणा द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामधिका रात्रिर्भवति** । अत्रोपपत्तिर्यथा-अष्टादशमुहूर्त्ते दिवसे द्वादश ध्रुवमुहूर्त्ताः षट् चरमुहूर्त्ताः । ते च मण्डलानां त्र्यशीत्यधिकशतेन वर्द्धन्ते चापवर्द्धन्ते, ततोऽत्र त्रैराशिकावतारः-यदि मण्डलानां त्र्यशीत्यधिकशतेन षट् मुहूर्त्ता वर्द्धन्ते चापवर्द्धन्ते तदा एकेन मण्डलेन किं वर्द्धते चापवर्द्धते ?, स्थापना यथा-१८३ । ६ । १ । अत्रान्त्यराशिना एककलक्षणेन मध्यराशिः षट्कलक्षणो गुण्यते, गुणिते च "**एकेन गुणितं तदेव भवती**" [ ] ति षडेव स्थिताः, ते चादिराशिना भज्यन्ते, अल्पत्वाद् भागं न प्रयच्छन्तीति भाज्य-भाजकराश्योस्त्रिकेणापवर्त्तना कार्या, जात उपरितनो राशिर्द्विकरूपः अधस्तन एकषष्टिरूपः २/६१ । आगतं द्वावेकषष्टिभागौ मुहूर्त्तस्य, अतो दिवसेऽपवर्द्धेते रात्रौ च वर्द्धेते इति, एवमग्रेऽपि करणभावना कार्या । अथाग्रेतनमण्डलगते दिनरात्रिवृद्धि-हानी पृच्छन्नाह-"**से णिक्खममाणे**" इत्यादि, अथ **निष्क्रामन् सूर्यो** दक्षिणायनसत्के **द्वितीये अहोरात्रे** अत्र **यावच्छब्दाद्** "**अब्भंतरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता**" इति ज्ञेयम्, सर्वाभ्यन्तरमण्डलापेक्षया तृतीयं मण्डलमुपसङ्क्रम्य **चारं चरति तदा किंप्रमाणो दिवसः किंप्रमाणा रात्रिर्भवति** ?। **गौतम ! तदा अष्टादशमुहूर्त्त**प्रमाणो द्वाभ्यां पूर्वमण्डलसत्काभ्यां द्वाभ्यां च प्रस्तुतमण्डलसत्काभ्यामित्येवं **चतुर्भिर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरूनो दिवसो भवति, द्वादशमुहूर्त्ता** उक्तप्रकारेणैव **चतुर्भिर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरधिका रात्रिर्भवति** ॥२७-A॥

उक्तातिरिक्त-मण्डलेष्वतिदेशमाह-

एवं खलु एएणं उवाएणं निक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे [२] दो दो एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं मंडले दिवसखित्तस्स निव्वड्ढेमाणे २, रयणिखित्तस्स अभिवड्ढेमाणे २, सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । जया णं सूरिए सव्वब्भंतराओ मंडलाओ

सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं सव्वब्भंतरमंडलं पणिहाय एगेणं तेसीएणं राइंदिअसएणं तिण्णि छावट्ठे एगसट्ठिभागमुहुत्तसए दिवसखेत्तस्स निव्वड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिवड्ढेत्ता चारं चरइ ॥२७-B॥

"**एवं खलु एएण**"मित्यादि, '**एवं**' मण्डलत्रयदर्शिततरीत्या '**खलु**' निश्चितम् '**एतेन**' अनन्तरोक्तेन '**उपायेन**' प्रतिमण्डलं दिवसरात्रिसत्कमुहूर्तैकषष्टिभागद्वयवृद्धिहानिरूपेण '**निष्क्रामन्**' दक्षिणाभिमुखं गच्छन् **सूर्यस्तदनन्तरान्मण्डलात्तदनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामन् द्वौ द्वौ मुहूर्तैकषष्टिभागावे**कैकस्मिन् **मण्डले दिवसक्षेत्रस्य '**निवर्द्धयन् २**'** हापयन् २, **रजनिक्षेत्रस्य** तावेवा**भिवर्द्धयन् २** । कोऽर्थः ? मुहूर्तैकषष्टिभागद्वयगम्यं क्षेत्रं दिवसक्षेत्रे हापयन्, तावदेव रजनिक्षेत्रे अभिवर्द्धयन्निति **सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति** ।

प्रतिमण्डलं भागद्वयहानि-वृद्धी उक्ते, असर्वमण्डलेषु भागानां हानि-वृद्धिसर्वाग्रं वक्तुमाह- "**जया ण**"मित्यादि, **यदा सूर्यः** सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलादित्यत्र यब्लोपे पञ्चमी वक्तव्या, तेन सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमारभ्य **सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं** '**प्रणिधाय**' मर्यादीकृत्य ततः परस्माद् द्वितीयान्मण्डलादारभ्येत्यर्थः, **एकेन** '**त्र्यशीतेन**' त्र्यशीत्यधिकेन '**रात्रिन्दिवानाम्**' अहोरात्राणां शतेन त्रीणि षट्षष्टानि-षट्षष्ट्यधिकानि मुहूर्तैकषष्टिभागशतानि [$\frac{३६६}{६१}$] दिवसक्षेत्रस्याभिवर्द्ध्य कोऽर्थः ? षट्षष्ट्यधिकत्रिशतमुहूर्तैकषष्टिभागैर्यावन्मात्रं क्षेत्रं गम्यते, तावन्मात्रं क्षेत्रं हापयित्वा इत्यर्थः, तावदेव क्षेत्रं **रजनिक्षेत्रस्याभिवर्द्ध्य चारं चरति** । अयमर्थः-दक्षिणायनसत्कत्र्यशीत्यधिक[१]शतमण्डलेषु प्रत्येकं हीयमानभागद्वयस्य त्र्यशीत्यधिकशतगुणनेन षट्षष्ट्यधिकत्रिशतराशिरुपपद्यत इति तावदेव रजनिक्षेत्रे वर्द्धते इत्यर्थः ॥२७-B॥

एतदेव पश्चानुपूर्व्या पृच्छति-

जया णं भंते ! सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं केमहालए दिवसे केमहालिया राई भवइ ?, गोअमा ! तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिआ अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णाए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ । एस णं पढमे छम्मासे एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे । से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमीणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ॥ २८ ॥

---

१. पुके । ०शत० मु. नास्ति ॥

"**जया ण**"मित्यादि, प्रश्नसूत्रं प्राग्वत् । उत्तरसूत्रे **गौतम ! तदा 'उत्तमकाष्ठाप्राप्ता'** प्रकृष्टावस्थां प्राप्ता, अत एव '**उत्कर्षिका**' उत्कृष्टा, यतो नान्या प्रकर्षवती रात्रिरित्यर्थः, **अष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणा रात्रिर्भवति**, तदा त्रिंशन्मुहूर्त्तसङ्ख्यापूरणाय **जघन्यको द्वादशमुहूर्त्त-**प्रमाणो **दिवसो भवति**, त्रिंशन्मुहूर्त्तत्वादहोरात्रस्य । 'एष चाहोरात्रो दक्षिणायनस्य चरम' इत्यादि प्रज्ञापनार्थमाह-"**एस ण**"मित्यादि, एतच्च प्रागुक्तार्थम् ॥२८॥

अथात्र द्वितीयं मण्डलं पृच्छन्नाह-

जया णं भंते ! सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं केमहालए दिवसे भवइ केमहालिया राई भवइ ?, गो० ! अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए । से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ॥ २९ ॥

"**जया ण**"मित्यादि, यदा **भगवन् ! सूर्यः** 'सर्वबाह्यानन्तरं' द्वितीयं **मण्डल-मुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा किम्प्रमाणो दिवसो भवति, किम्प्रमाणा रात्रिर्भवति ? गौतम ! अष्टादशमुहूर्त्ता द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामूना रात्रिर्भवति, द्वादशमुहूर्त्तो द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामधिको दिवसो भवति**, भागयो-र्न्यूनाऽधिकत्वकरणयुक्तिः प्राग्वत् । अथ तृतीयमण्डलप्रश्नायाह-"**से पविसमाणे**"त्ति प्राग्वत् ॥२९॥

जया णं भंते ! सूरिए बाहिरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं केमहालए दिवसे भवइ केमहालिया राई भवइ ?, गो० ! तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए । एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे, संकममाणे दो दो एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं एगमेगे मंडले रयणिखेत्तस्स निवड्ढेमाणे २, दिवसखेत्तस्स अभिवड्ढेमाणे २, सव्वब्भंतरं मंडलं उव-संकमित्ता चारं चरइ । जया णं भंते ! सूरिए सव्वबाहिराओ मंडलाओ

सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं सव्वबाहिरं[१] मंडलं पणिहाय एगेणं तेसीएणं राइंदिअसएणं तिण्णि छावट्ठे एगसट्ठिभागमुहुत्तसए रयणिखेत्तस्स णिवड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिवड्ढेत्ता चारं चरइ । एस णं दोच्चे छम्मासे, एस णं दुच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे । एस णं आइच्चे संवच्छरे, एस णं आइच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे पण्णत्ते ८ ॥ ३० ॥

प्रश्नसूत्रमपि तथैव । उत्तरसूत्रे **गौतम ! तदा अष्टादशमुहूर्त्ता** द्वाभ्यां पूर्वमण्डलसत्काभ्यां द्वाभ्यां च प्रस्तुतमण्डलसत्काभ्यां इत्येवं **'चतुर्भिः'** चतुःसङ्ख्याङ्कै-**र्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरूना रात्रिर्भवति, द्वादशमुहूर्त्तश्च** तथैव **चतुर्भिर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागैरधिको दिवसो भवति** । उक्तातिरिक्तेषु मण्डलेष्वतिदेशमाह-**"एवं खलु"** इत्यादि, **'एवं'** मण्डलत्रयदर्शितरीत्या **'एतेन'** अनन्तरोक्तेन **'उपायेन'** प्रतिमण्डलं दिवस-रात्रिसत्कमुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयवृद्धि-हानिरूपेण **प्रविशन्** जम्बूद्वीपे मण्डलानि कुर्वन् **सूर्यस्तदनन्तरान्मण्डलात् तदनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामन् २, द्वौ द्वौ मुहूर्त्तैकषष्टिभागौ एकैकस्मिन् मण्डले रजनिक्षेत्रस्य निवर्द्धयन् २, दिवसक्षेत्रस्य** तावेवा**भिवर्द्धयन् २, सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति** । अत्रापि सर्वमण्डलेषु भागानां हानि-वृद्धिसर्वाग्रं निर्दिशन्नाह-**"जया ण"**मित्यादि, यदा **भगवन् ! सूर्यः सर्वबाह्यात् सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा सर्वबाह्यं मण्डलं 'प्रणिधाय'** मर्यादीकृत्य तदर्वाक्तनाद् द्वितीयान्मण्डलादारभ्येत्यर्थः, **एकेन त्र्यशीत्यधिकेन रात्रिन्दिवशतेन त्रीणि षट्षष्ट्यधिकानि मुहूर्त्तैकषष्टिभागशतानि रजनिक्षेत्रस्य निवर्द्ध्य २ दिवसक्षेत्रस्य** तान्येवा**भिवर्द्ध्य २, चारं चरति** । एष चाहोरात्र उत्तरायणस्य चरम इत्यादि निगमयन्नाह-**"एस ण"**मित्यादि प्राग्वत् ॥३०॥

अथ नवमं तापक्षेत्रद्वारम्-

जया णं भंते ! सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं किंसंठिआ तावखित्तसंठिई पण्णत्ता ?, गो ! उद्धीमुहकलंबुआपुप्फ[२]-संठाणसंठिआ तावखेत्तसंठिई पण्णत्ता, अंतो संकुआ बाहिं वित्थडा, अंतो

१. सव्वब्भंतरं-अकबस J12 । सव्वब्भंतरं बाहिरं-ख ॥ २. ऊड्ढं मुह० अब J12 । ऊद्धीमुह० कखपमु. ॥

वट्टा बाहिं पिहुला, अंतो अंकमुहसंठिआ बाहिं सगडुद्धीमुहसंठिआ[1] । उभओपासे णं तीसे दो बाहाओ अवट्ठिआओ हवंति पणयालीसं २ जोअणसहस्साइं आयामेणं ॥३१-A॥

"**जया ण**"मित्यादि, **यदा भगवन् ! सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा** '**किंसंस्थिता**' किंसंस्थाना '**तापक्षेत्रस्य**' सूर्यातपव्याप्ताकाशखण्डस्य '**संस्थितिः**' व्यवस्था **प्रज्ञप्ता** ?, सूर्यातपस्य किं संस्थानमितियावत् । भगवानाह-**गौतम** ! '**ऊर्ध्वमुखम्**' अधोमुखत्वे तस्य वक्ष्यमाणाकारासम्भवात्, यत् '**कलम्बुकापुष्पं**' नालिकापुष्पं तत्**संस्थान-संस्थिता प्रज्ञप्ता** मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः । इदमेव संस्थानं विशिनष्टि '**अन्तः**' मेरुदिशि **सङ्कुचिता** '**बहिः**' लवणदिशि **विस्तृता**, तथा '**अन्तः**' मेरुदिशि '**वृत्ता**' अर्द्धवलयाकारा सर्वतो वृत्तमेरुगतान् त्रीन् द्वौ वा दशभागान् अभिव्याप्यास्या व्यवस्थिततत्वात्, '**बहिः**' लवणदिशि '**पृथुला**' मुत्कलभावेन विस्तारमुपगता । एतदेव संस्थानकथनेन स्पष्टयति '**अन्तः**' मेरुदिशि '**अङ्कः**' पद्मासनोपविष्टस्योत्सङ्गरूप आसनबन्धस्तस्य '**मुखम्**' अग्रभागोऽर्द्धवलया-कारस्तस्येव '**संस्थितं**' संस्थानं यस्याः सा तथा, '**बहिः**' लवणदिशि '**शकटस्योर्द्धिः**' प्रतीता तस्याः '**मुखं**' यतः प्रभृति निश्रेणिकायां[2] फलकानि बध्यन्ते तच्चातिविस्तृतं भवति तत्**संस्थाना**, अन्तर्बहिर्भागौ प्रतीत्य यथाक्रमं सङ्कुचिता विस्तृता इति भावः । **आदर्शान्तरे**[3] तु "बाहिं सोत्थिअमुहसंठिआ" पाठः, तत्र स्वस्तिकः प्रतीतस्तस्य मुखम्-अग्रभागस्तस्ये-वातिविस्तीर्णतया संस्थितं-संस्थानं यस्याः सा तथा । अथास्याः आयाममाह-"**उभओपासे ण**"मित्यादि, 'उभयपार्श्वेन' मन्दरस्योभयोः पार्श्वयोः '**तस्याः**' तापक्षेत्रसंस्थितेः सूर्यभेदेन द्विधाव्यवस्थितायाः प्रत्येकमेकैकभावेन '**द्वे बाहे**' द्वे द्वे पार्श्वे '**अवस्थिते**' अवृद्धि-हानिस्वभावे सर्वमण्डलेष्वपि नियतपरिमाणे भवतः । अयमर्थः-एका भरतस्थसूर्यकृता दक्षिणपार्श्वे, द्वितीया ऐरवतस्थसूर्यकृता उत्तरपार्श्वे इति द्विप्रकारा, सा च **पञ्चचत्वारिंशतं २ योजनसहस्राणि**

---

१. सत्थीमुह० अबस J12 । सूर्यप्रज्ञप्तौ चन्द्रप्रज्ञप्तौ च ४।४ च सत्थीमुह० इति पाठो विद्यते । तद्वृत्त्योश्च 'स्वस्तिकः' इति पदं व्याख्यातमस्ति । किन्तु प्रस्तुतसूत्रस्य ३२ सूत्रेऽपि 'सगडुद्धी' इत्येव पाठो दृश्यते तेनात्र एतदेवपदं स्वीकृतम् । इति V पृ. ५५८ टि. ४ ॥ २. पुके । ०काया-मु. ॥ ३. "बाहिं सत्थीमुहसंठिया ति बहिर्लवणदिशि स्वस्तिकमुखसंस्थिता स्वस्तिकः प्रतीतस्तस्य मुखमग्रभागः तस्येवातिविस्तीर्णतया संस्थितं, संस्थानं यस्याः सा० तथा"-पुवृ. । "जीर्णादर्शेषु तु क्वचित् सत्थीमुहसंठिअत्ति पाठस्तत्र स्वस्तिकः प्रतीतस्तस्य मुखमग्रभागस्तस्येवाति-विस्तीर्णतया संस्थितं संस्थानं यस्याः सा तथा अयं च पाठः सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रसंवादी व्याख्याप्युक्त-रूपैवेत्यवसेयम् ।" हीवृ. ॥

४५००० आयामेन । मध्यवर्त्तिनो मेरोरारभ्य द्वयोर्दक्षिणोत्तरभागयोः पञ्चचत्वारिंशता योजनसहस्रैर्व्यवहिते जम्बूद्वीपपर्यन्ते व्यवस्थितत्वात्, एवं पूर्वा-ऽपरभागयोरपि । यदा तत्र सूर्यौ तदाऽयमायामो बोध्यः । एतच्च सूत्रं जम्बूद्वीपगतायाममपेक्ष्य बोध्यम्, लवणसमुद्रे तु त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रीणि शतानि त्रयस्त्रिंशदधिकानि एकश्च त्रिभागो [३३,३३३ $\frac{१}{३}$] योजनस्येति, एतच्च एकत्र पिण्डितम् अष्टासप्ततिः सहस्राणि योजनानां त्रीणि शतानि इत्यादिकं सूत्रकृदग्रे वक्ष्यति, तत्र सोपपत्तिकं निगदिष्यते, तेनात्र पुनरुक्तभिया नोक्तम् ॥३१-A॥

सम्प्रत्यनवस्थितबाहास्वरूपमाह-

दुवे अ णं तीसे बाहाओ अणवट्ठिआओ हवंति, तंजहा-सव्वब्भंतरिआ चेव बाहा सव्वबाहिरिआ चेव बाहा । तीसे णं सव्वब्भंतरिआ बाहा मंदरपव्वयंतेणं णव जोअणसहस्साइं चत्तारि छलसीए जोअणसए णव य दसभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं । एस णं भंते ! परिक्खेवविसेसे कओ आहिए ति वएज्जा ?, गोअमा ! जे णं मंदरस्स परिक्खेवे तं परिक्खेवं तिहिं गुणेत्ता दसहिं छेत्ता दसहिं भागे हीरमाणे एस परिक्खेवविसेसे आहिए ति वदेज्जा । तीसे णं सव्वबाहिरिआ बाहा लवणसमुद्दंतेणं चउणवई जोअणसहस्साइं अट्ठ य अट्ठसट्ठे जोअणसए चत्तारि अ दसभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं । से णं भंते ! परिक्खेवविसेसे कओ आहिए ति वएज्जा ?, गो० ! जे णं जंबुद्दीवस्स परिक्खेवे तं परिक्खेवं तिहिं गुणेत्ता दसहिं छेत्ता [१]दसभागे हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे आहिए त्ति वएज्जा ॥३१-B॥

"**दुवे अ ण**"मित्यादि, '**तस्याः**' एकैकस्यास्तापक्षेत्रसंस्थितेः द्वे च **बाहे** '**अनवस्थिते**' अनियतपरिमाणे **भवतः**, प्रतिमण्डलं यथायोगं हीयमानवर्द्धमानपरिमाणत्वात् । **तद्यथा- सर्वाभ्यन्तरा सर्वबाह्या चैव**शब्दौ प्रत्येकमनवस्थितस्वभावद्योतनार्थौ । तत्र या मेरुपार्श्वे विष्कम्भमधिकृत्य बाहा सा सर्वाभ्यन्तरा, या तु लवणदिशि जम्बूद्वीपपर्यन्तमधिकृत्य बाहा सा सर्वबाह्या, आयामश्च दक्षिणोत्तरायततया प्रतिपत्तव्यो विष्कम्भः पूर्वाऽपरायततयेति । साम्प्रतं सर्वाभ्यन्तरापरिमाणं निर्दिशति-"**तीसे ण**"मित्यादि, '**तस्याः**' एकैकस्याः तापक्षेत्रसंस्थितेः **सर्वाभ्यन्तरा बाहा मेरुगिरिसमीपे नव योजनसहस्राणि चत्वारि षडशीत्यधिकानि**

१. अकखपबस मु । दसहिं भागे-V ॥

योजनशतानि नव च दशभागान् [९४८६ $\frac{९}{१०}$] योजनस्य परिक्षेपेण । अत्रोपपत्त्यर्थं प्रश्नमाह–"**एस ण**"मित्यादि, '**एषः**' अनन्तरोक्तप्रमाणः '**परिक्षेपविशेषः**' मन्दरपरिरय-परिक्षेपविशेषः '**कुतः**' कस्मात् एवम्प्रमाण **आख्यातो** नोनोऽधिको वा **इति वदेत्** ?। भगवानाह–**गौतम ! यो मन्दरस्य परिक्षेपस्तं [परिक्षेपं] त्रिभिर्गुणयित्वा 'दशभिश्छित्त्वा'** दशभिर्विभज्य । एतदेव पर्यायेण व्याचष्टे–**दशभिर्भागे ह्रियमाणे** सति **एष परिक्षेपविशेष आख्यात इति वदेत्** स्वशिष्येभ्यः । अयमर्थः–मेरुणा प्रतिहन्यमानः सूर्यातपो मेरुपरिधिं परिक्षिप्य स्थित इति मेरुसमीपेऽभ्यन्तरतापक्षेत्रविष्कम्भचिन्ता । अथैवं सति स त्रयोविंशतिषट्शताधिकैकत्रिंशत्सहस्रयोजनमानः [३१,६२३] सर्वोऽपि मेरुपरिधिरस्य तापक्षेत्रस्य विष्कम्भतामापद्येत इति चेत्, न, सर्वाभ्यन्तरे मण्डले वर्त्तमानः सूर्यो दीप्तलेश्याकत्वाज्जम्बूद्वीपचक्रवालस्य यत्र तत्र प्रदेशे तत्तच्चक्रवालक्षेत्रानुसारेण त्रीन् दशभागान् प्रकाशयति, दशभागानां त्रयाणां मीलने यावत् प्रमाणं क्षेत्रं तावत्तापयतीत्यर्थः । ननु तर्हि मेरुपरिधेस्त्रिगुणीकरणं किमर्थं ? दशभागानां त्रिधागुणनेनैव चरितार्थत्वात्, सत्यम्, विनेयानां सुखावबोधाय, **भगवतीवृत्तौ** तु **श्रीअभयदेवसूरिपादा** दशभागलब्धं त्रिगुणं चक्रुरिति । अथ दशभिर्भागे को हेतुः? इति चेत्, उच्यते, जम्बूद्वीपचक्रवालक्षेत्रस्य त्रयो भागा मेरुदक्षिणपार्श्वे त्रयस्तस्यैवोत्तरपार्श्वे द्वौ भागौ पूर्वतो द्वौ चापरतः सर्वमीलने दश । तत्र भरतगतः सूर्यः सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चरन् त्रीन् भागान् दाक्षिणात्यान् प्रकाशयति, तदानीं च त्रीनौत्तराहान् ऐरवतगतः, तदा द्वौ भागौ पूर्वतो रजनी द्वौ चापरतोऽपि । यथा यथा क्रमेण दाक्षिणात्य औत्तराहो वा सूर्यः सञ्चरति, तथा तथा तयोः प्रत्येकं तापक्षेत्रमग्रतो वर्द्धते पृष्ठतश्च हीयते । एवं क्रमेण सञ्चरणशीले तापक्षेत्रे यदैकः सूर्यः पूर्वस्यां परोऽपरस्यां वर्त्तते, तदा पूर्वपश्चिमदिशोः प्रत्येकं त्रीन् भागांस्तापक्षेत्रं द्वौ भागौ दक्षिणोत्तरयोः प्रत्येकं रजनीति । अथ गणितकर्मविधानम्, तत्र मेरुव्यासः १००००, एषां च वर्गो दश कोट्यः १००००००००, ततो दशभिर्गुणने जातं कोटिशतं १०००००००००, अस्य वर्गमूलानयने लब्धान्येकत्रिंशद्योजन-सहस्राणि षट् शतानि त्रयोविंशत्यधिकानि ३१६२३ । एष राशिस्त्रिभिर्गुण्यते जातानि चतुर्नवतिसहस्राणि अष्टौ शतान्येकोनसप्तत्यधिकानि ९४८६९, एषां दशभिर्भागे लब्धानि नव योजनसहस्राणि चत्वारि शतानि षडशीत्यधिकानि नव च दशभागा [९४८६ $\frac{९}{१०}$] योजनस्य । अथ सर्वबाह्यबाहापरिमाणमाह–"**तीसे ण**"मित्यादि, '**तस्याः**' तापक्षेत्रसंस्थितेः **सर्वबाह्या [बाहा] लवणसमुद्रस्य 'अन्ते'** समीपे **चतुर्नवतिं योजनसहस्राणि अष्टौ** च

[अष्ट]**षष्ट्य**धिकानि **योजनशतानि चतुरश्च दशभागान्** [९४८६८ $\frac{४}{१०}$] **योजनस्य परिक्षेपेण** । अत्रोपपादकसूत्रमाह-"**से णं भंते ! परिक्खेवे**" इत्यादि, **स भदन्त ! परिक्षेपविशेषो**ऽनन्तरोक्तो य इति गम्यं **कुत आख्यात इति** गौतमो '**वदेद्**' वदति । भगवानाह-**गौतम ! यो जम्बूद्वीपपरिक्षेपस्तं परिक्षेपं त्रिभिर्गुणयित्वा 'दशभिश्छित्त्वा'** दशभिर्विभज्य । इदमेव पर्यायेणाह-**दशभिर्भागे ह्रियमाणे एष परिक्षेपविशेष आख्यातो** मयाऽन्यैश्चाप्तै**रिति वदेत्** स्वशिष्येभ्यः । इदमुक्तं भवति-तापक्षेत्रस्य परमविष्कम्भः प्रतिपिपादयिषितव्यः, स च जम्बूद्वीपपर्यन्त इति तत्परिधिः स्थाप्यः योजन ३१६२२७ क्रोश ३ धनूंषि १२८ अंश १३ अर्द्धाङ्गुलम् १, एतावता च योजनमेकं किञ्चिदूनमिति व्यवहारतः पूर्णं विवक्ष्यते-सांशराशितो निरंशराशेर्गणितस्य सुकरत्वात् । ततो जातं ३१६२२८, एतत् त्रिगुणं क्रियते, जातानि नव लक्षाणि अष्टचत्वारिंशत्सहस्राणि षट् शतानि चतुरशीत्यधिकानि ९४८६८४, एषां दशभिर्भजने लब्धानि चतुर्नवतिर्योजनसहस्राणि अष्टौ शतानि अष्टषष्ट्यधिकानि चत्वारश्च दशभागा [९४८६८ $\frac{४}{१०}$] योजनस्य, अत्रापि त्रिगुणकरणादौ युक्तिः प्राग्वत् । **नन्वन्यत्र**

"**रविणो उदयत्थंतर, चउणवइसहस्स पणसय छवीसा ।**
बायाल सट्ठिभागा, कक्कडसंकंतिदिअहंमि ॥१॥" [ ]

इत्युक्तम्, अत्रोदयास्तान्तरं प्रकाशक्षेत्रं तापक्षेत्रमित्येकार्थाः तत्र भेदे किं निबन्धनमिति चेत्, उच्यते, सर्वाभ्यन्तरमण्डलवर्त्ती सूर्यो मन्दरदिशि जम्बूद्वीपस्य पूर्वतोऽपरतश्चाशीत्यधिकं शतं योजनानामवगाह्य चारं चरति । तेनाशीत्यधिकशतयोजनानि द्विगुणानि ३६०, अस्य वर्गदशगुणवर्गमूलानयने जातानि ११३८, एतच्च द्वीपपरिधितः ३१६२२७ रूपात् शोध्यते, ततः स्थितं ३१५०८९ । अस्य दशभिर्भागे आगतं ३१५०८, अवशिष्टभागाः ९/१०, अनयोरंशच्छेदयोः षड्भिर्गुणने जातं ५४/६०, अथास्य राशेस्त्रिगुणने सम्पद्यते यथोक्तराशिः, तथाहि-९४५२६- ४२/६० । इदं च सूक्ष्मेक्षिकया दर्शितम्, न चैतत् स्वमत्युत्प्रेक्षितमिति भाव्यम्, **श्रीमुनिचन्द्रसूरिकृतसूर्यमण्डलविचारे**ऽस्य सुविचारितत्वात्, प्रस्तुते च स्थूलनयाश्रयणेन द्वीपपर्यन्तमात्रविवक्षणेन सूत्रोक्तं प्रमाणं सम्पद्यते, द्वीपोदधिपरिधेरेव सर्वत्राप्यागमे दशांशकल्पनादिश्रवणात् । अनेन परिधितः परतो लवणोदषड्भागं यावत् प्राप्यमाणे तापक्षेत्रे तच्चक्रवालक्षेत्रानुसारेण तत्र विष्कम्भसम्भवात् परमविष्कम्भस्तत्र कथनीय इति निरस्तम्, अयमेव चतुर्नवतिसहस्रपञ्चशतादियोजनादिको राशि**र्बहुबहुश्रुतैः** प्रमाणीकृतः करणसंवादित्वात् । तथाहि-स्वस्वमण्डलपरिधिः षष्ट्या भक्तो मुहूर्त्तगतिं प्रयच्छति, सा च दिवसार्द्धगतमुहूर्त्तराशिना

गुणिता चक्षुःस्पर्शम्, सा चोदयतः सूर्यस्याग्रतो यावानस्तमयतश्च पृष्ठतोऽपि तावानिति द्विगुणितः सन् तापक्षेत्रं भवति, एतच्च चक्षुःस्पर्शद्वारे सुव्यक्तं निरूपितमस्ति । इदं च तापक्षेत्रकरणं सर्वबाह्यमण्डलसत्कतापक्षेत्रबाह्यबाहानिरूपणे विभावयिष्यत इति नात्रोदाह्रियते, यदुक्तं [1]त्रीन् दशभागान् प्रकाशयति इति, तत्र भागः षण्मुहूर्त्ताक्रमणीयक्षेत्रप्रमाणः । कथं ?, सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चरति सूर्ये दिवसोऽष्टादशमुहूर्त्तमानः नवमुहूर्त्ताक्रमणीये च क्षेत्रे स्थितः सूर्यो दृश्यो भवति । तत एतावत्प्रमाणं सूर्यात् प्राक् तापक्षेत्रं तावच्च अपरतोऽपि, इत्थं चाष्टादशमुहूर्त्ता-क्रमणीयक्षेत्रप्रमाणमेकस्य सूर्यस्य तापक्षेत्रम्, तच्च किल दशभागत्रयात्मकं ततो भवत्येकस्मिन् दशभागे षण्मुहूर्त्ताक्रमणीयक्षेत्रप्रमाणतेति ॥३१-B॥

सम्प्रति सामस्त्येनायामतस्तापक्षेत्रपरिमाणं पिपृच्छिषुराह-

तया णं भंते ! तावखित्ते केवइअं आयामेणं पं० ?, गो० ! अट्ठहत्तरिं जोअणसहस्साइं तिण्णि अ तेत्तीसे जोअणसए [2]जोअणस्स तिभागं च आयामेणं पण्णत्ते ।

→'[3]मेरुस्स मज्झयारे, जाव य लवणस्स रुंदछब्भागो ।
तावायामो एसो, सगडुद्धीसंठिओ नियमा ॥१॥'← ॥ ३२ ॥

"**तया ण**"मित्यादि, यदा भगवन् ! एतावांस्तापक्षेत्रपरमविष्कम्भ इति गम्यं **तदा भगवंस्तापक्षेत्रं** सामस्त्येन दक्षिणो-त्तरायततया **कियदायामेन प्रज्ञप्तम्** ?। भगवानाह- **गौतम ! अष्टसप्ततिं योजनसहस्राणि त्रीणि च त्रयस्त्रिंशद**धिकानि **योजनशतानि योजनस्यैक**स्य **त्रिभागं च** [७८,३३३ $\frac{१}{३}$] याव**दायामेन प्रज्ञप्तम्** । पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि द्वीपगतानि, त्रयस्त्रिंशद्योजनसहस्राणि त्रीणि च योजनशतानि त्रयस्त्रिंशदधिकानि उपरि च योजनत्रिभागयुक्तानि लवणगतानि, द्वयोः सङ्कलने यथोक्तं मानम्, इदं च दक्षिणोत्तरत आयामपरिमाणमवस्थितम्, न क्वापि मण्डलचारे विपरिवर्त्तेतेति । एनमेवार्थं सामस्त्येन दृढयति-"**मेरुस्स मज्झयारे**" इत्यादि, इह मेरुणा सूर्यप्रकाशः प्रतिहन्यत इत्ये**केषां** मतम्, नेत्य**परेषाम्** । तत्राद्यानां मते इयं सम्मतिरूपा गाथा, तस्मिन् पक्षे एवं व्याख्येया-करणं कारो मध्ये कारो '**मध्यकारः**' मध्ये करणं **मेरो**स्तस्मिन् सति । कोऽर्थः ? चक्रवालक्षेत्रत्वात्तापक्षेत्रस्य मेरुं मध्ये कृत्वा **यावल्लवणस्य 'रुन्दस्य'** निर्देशस्य

---

१. पुके । चेद् दश मु. ॥ २. कखत्रिपस । जोयणतिभागं-V ॥ ३. →← चिह्नद्वयमध्यवर्तिपाठः अब J12 नास्ति ॥

भावप्रधानत्वाद्रुन्दतायाः-विस्तारस्य '**षड्भागः**' षष्ठो भागः, एतावत्प्रमाणः '**तापस्य**' तापक्षेत्रस्**यायामः**, तत्र मेरोरारभ्य जम्बूद्वीपपर्यन्तं यावत्पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि, तथा लवणविस्तारो द्वे योजनलक्षे, तयोः षष्ठो भागस्त्रयस्त्रिंशद्योजनसहस्राणि त्रीणि योजनशतानि त्रयस्त्रिंशद्योजनानि एको योजनत्रिभाग इति रूपः, तत उभयमीलने यथोक्तप्रमाणः, एष च **नियमात् शकटोद्धिसंस्थितः**, शकटोद्धिसंस्थानोऽन्तः सङ्कुचितो बहिर्विस्तृत इति ।

अथ येषां मेरुणा न सूर्यप्रकाशः प्रतिहन्यते इति मतं तेषामर्थान्तरसूचनायेयं गाथा तत्पक्षे चैवं व्याख्येया-मेरोर्मध्यभागः-मन्दरार्धं यावच्च लवणरुन्दताषड्भागः, एतेन मन्दरार्द्धसत्कपञ्चयोजनसहस्राणि पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जायते च त्र्यशीतिसहस्रयोजनानि त्रीणि योजनशतानि त्रयस्त्रिंशदधिकानि एकश्च योजनत्रिभागः ८३३३३-१/३, अनेन च मन्दरगतकन्दरादीनामप्यन्तः प्रकाशः स्यादिति लभ्यते, यत्त्वस्मिन् व्याख्याने श्रीमलयगिरिपादैः सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तौ "**युक्तं चैतत् सम्भावनया तापक्षेत्रायामपरिमाणम्, अन्यथा जम्बूद्वीपमध्ये तापक्षेत्रस्य पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्र-परिमाणाभ्युपगमे यथा सूर्यो बहिर्निष्क्रामति, तथा तत्प्रतिबद्धं तापक्षेत्रमपि । ततो यदा सूर्यः सर्वबाह्यं मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, तदा सर्वथा मन्दरसमीपे प्रकाशो न प्राप्नोति, अथ च तदापि तत्र मन्दरपरिरयपरिक्षेपेणाविशेषपरिमाणमग्रे वक्ष्यते, तस्मात्पादलिप्तसूरिव्याख्यानमप्युपगन्तव्यमि**" [प्रा.४ । सू. २५] त्युक्तम् । तत्र तत्रभवत्पादानां गम्भीरमाशयं न विद्मः, बाह्यमण्डलस्थेऽपि सूर्ये इयत्प्रमाणस्य तापक्षेत्रायामस्यावस्थिततत्वेन प्रतिपादनात्, उक्ता सर्वाभ्यन्तरे मण्डले तापक्षेत्रसंस्थितिः ॥३२॥

सम्प्रति प्रकाशपृष्ठलग्नत्वेन तद्विपर्ययभूतत्वेन च सर्वाभ्यन्तरमण्डलेऽन्धकारसंस्थितिं पृच्छति-

तया णं भंते ! किंसंठिआ अंधकारसंठिई पण्णत्ता ?, गोयमा ! उद्धीमुहकलंबुआपुप्फसंठाणसंठिआ अंधकारसंठिई पण्णत्ता, अंतो संकुआ बाहिं वित्थडा तं चेव जाव तीसे णं सव्वब्भंतरिआ बाहा मंदरपव्वयंतेणं छज्जोअणसहस्साइं तिण्णि अ चउवीसे जोअणसए छच्च दसभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं ।

से णं भंते ! परिक्खेवविसेसे कओ आहिए ति वएज्जा ?, गो० ! जे णं मंदरस्स पव्वयस्स परिक्खेवे, तं परिक्खेवं दोहिं गुणेत्ता दसहिं छेत्ता दसहिं

१. मात्रपरि० पुके ॥

भागे हीरमाणे, एस णं परिक्खेवविसेसे आहिए ति वएज्जा । तीसे णं सव्वबाहिरिआ बाहा लवणसमुद्दंतेणं [1] तेसट्ठी जोअणसहस्साइं दोण्णि य पणयाले जोअणसए छच्च दसभाए जोअणस्स परिक्खेवेणं ।

से णं भंते ! परिक्खेवविसेसे कओ आहिएति वएज्जा ?, गो० ! जे णं जंबुद्दीवस्स परिक्खेवे तं परिक्खेवं दोहिं गुणेत्ता जाव तं चेव ॥ ३३ ॥

"**तया णं भन्ते !**" इत्यादि, '**तदा**' सर्वाभ्यन्तरमण्डलचरणकाले कर्कसङ्क्रान्तिदिने [भदन्त!] **किंसंस्थाना अन्धकारसंस्थितिः प्रज्ञप्ता** ?। यद्यपि प्रकाश-तमसोः सहावस्थायित्व-विरोधात् समानकालीनत्वासम्भवः, तथापि अवशिष्टेषु चतुर्षु जम्बूद्वीपचक्रवालदशभागेषु सम्भावनया पृच्छत आशयान्नोक्तविरोधः । ननु आलोकाभावरूपस्य तमसः संस्थानासम्भवेन कुतस्तत्पृच्छौचितीमञ्चति ?, उच्यते, नीलं शीतं बहलं तम इत्यादिपुद्गलधर्माणामभ्रान्त-सार्वजनीनव्यवहारसिद्धत्वेनास्य पौद्गलिकत्वे सिद्धे संस्थानस्यापि सिद्धेः, यथा चास्य पौद्गलिकत्वम्, तथाऽन्यत्र **पूर्वाचार्यैः** सुचर्चितत्वान्नात्र विस्तरभिया चर्च्यते इति । **ऊर्ध्वमुख-कलम्बुकापुष्पसंस्थानसंस्थिता अन्धकारसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, अन्तः सङ्कुचिता बहिर्विस्तृतेत्यादि** '**तदेव**' तापक्षेत्रसंस्थित्यधिकारोक्तमेव ग्राह्यम् । कियत्पर्यन्तम् ? इत्याह– **यावत्** '**तस्याः**' अन्धकारसंस्थितेः **सर्वाभ्यन्तरिका बाहा मन्दरपर्वतान्ते षड् योजन-सहस्राणि त्रीणि चतुर्विंशत्यधिकानि योजनशतानि षट् च दशभागान्** [६,३२४ $\frac{६}{१०}$] **योजनस्य परिक्षेपेण** । अत्रोपपत्तिं सूत्रकृदेवाह–

"**से ण**"मिति, प्रश्नसूत्रं प्राग्वत् । उत्तरसूत्रे **यो मेरुपरिक्षेपः** स त्रयोविंशति-षट्शताधिकैकत्रिंशद्योजनसहस्रमानस्तं **परिक्षेपं द्वाभ्यां गुणयित्वा**, सर्वाभ्यन्तरमण्डलस्थे सूर्ये तापक्षेत्रसत्कानां त्रयाणां भागानामपान्तराले रजनिक्षेत्रस्य [2] दशभागसत्कभागद्वय२मानत्वात् [**'दशभिर्छित्त्वा'**]**दशभिर्विभज्यदशभिर्भागे ह्रियमाणे एष परिक्षेपविशेष आख्यात इति वदेदेत**द्भगवन् ! गौतमः स्वशिष्येभ्यः । तथाहि–३१६२३ एतद् द्वाभ्यां गुण्यते, जातानि त्रिषष्टिसहस्राणि द्वे शते षट्चत्वारिंशदधिके ६३२४६, एषां दशभिर्भागे लब्धं यथोक्तं मानम् । अथ [3] बाह्यबाहामाह–"**तीसे ण**"मित्यादि, '**तस्याः**' अन्धकारसंस्थितेः '**सर्वबाह्यबाहा**' पूर्वतोऽपरतश्च परमविष्कम्भो **लवणसमुद्रान्ते त्रिषष्टिं योजनसहस्राणि द्वे च पञ्चचत्वा-**

१. तेवड्डी-अकखबस । तेवड्डिं-त्रि ॥ २. पु. । दशभागद्वय२ मानत्वात्-मु. ॥ ३. पु । बाहामाह-मु. ॥

रिंशदधिके योजनशते षट् च दशभागान् योजनस्य [६,३२४५ $\frac{६}{१०}$] **परिक्षेपेणे**ति । अत्रोपपत्तिं सूत्रकृदेवाह–"**से ण**"मित्यादि, व्यक्तम् । नवरं **जम्बूद्वीपपरिक्षेपः** ३१६२२८, **तं परिक्षेपं** प्रागुक्तहेतुना **द्वाभ्यां गुणयित्वा** दशभिर्भागे ह्रियमाणे एष परिक्षेपविशेष आख्यात इति वदेत् ॥३३॥

अथास्या अवस्थितबाहामाह–

तया णं भंते ! अंधयारे केवइए आयामेणं पं० ?, गो० ! अट्ठहत्तरिं[१] जोअणसहस्साइं तिण्णि अ तेत्तीसे जोअणसए जोयणतिभागं च आयामेणं पं० ॥ ३४ ॥

"**तया ण**"मित्यादि, '**तदा**' सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारकाले [भदन्त !] **अन्धकारं कियदायामेन प्रज्ञप्तम्** ?। **गौतम ! अष्टसप्ततिं योजनसहस्राणि त्रीणि च त्रयस्त्रिंशद**-धिकानि **योजनशतानि योजनत्रिभागं चैकम्** [७८,३३३ $\frac{१}{३}$], अवस्थितततापक्षेत्रसंस्थित्यायाम इवायमपि बोध्यः । तेन मन्दरार्द्धसत्कपञ्चसहस्रयोजनान्यधिकानि मन्तव्यानि सूर्यप्रकाशाभाववति क्षेत्रे स्वत एवान्धकारप्रसरणात्, कन्दरादौ तथा प्रत्यक्षदर्शनात्, सूत्रेऽविवक्षितान्यपि **व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्तिरि**ति दर्शितानि ॥३४॥

अथ पश्चानुपूर्व्या तापक्षेत्रसंस्थितिं पृच्छति–

जया णं भंते ! सूरिए सव्वबाहिरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं किंसंठिआ तावक्खित्तसंठिई पं० ?, गो० ! उद्धीमुहकलंबुआपुप्फसंठाण-संठिआ पण्णत्ता, तं चेव सव्वं णेअव्वं । णवरं णाणत्तं–जं अंधयारसंठिईए पुव्ववण्णिअं पमाणं, तं तावखित्तसंठिईए णेअव्वं, जं तावखित्तसंठिईए पुव्ववण्णिअं पमाणं तं अंधयारसंठिईए णेअव्वं[२] ॥ ३५ ॥

"**जया ण**"मित्यादि, **यदा भगवन् ! सूर्यः सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा किंसंस्थानसंस्थिता तापक्षेत्रसंस्थितिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! ऊर्ध्वमुख-कलम्बुकापुष्पसंस्थानसंस्थिता प्रज्ञप्ता, 'तदेव'** अभ्यन्तर-मण्डलगतततापक्षेत्रसंस्थिति-सत्कमेव '**सर्वम्**' अवस्थिता-ऽनवस्थितबाहादिकं **नेतव्यम्** । **नवरमिदं 'नानात्वम्'** विशेषः **यदन्धकारसंस्थितेः 'पूर्वं'** सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतततापक्षेत्र-संस्थितिप्रकरणे **वर्णितं** ६३२४५–

१. अट्ठत्तरिं–अबस ॥ २. अंधकारस्स णेयव्वं–J12 ॥

६/१० इत्येवंरूपं **प्रमाणं तत्तापक्षेत्रसंस्थितेः** प्रमाणं **नेतव्यम्**, द्वीपपरिधिदशभागसत्कभाग-द्वयप्रमाणत्वात् । **यत्तापक्षेत्रसंस्थितेः पूर्ववर्णितं** ९४८६८-४/१० इत्येवंरूपं **प्रमाणं तदन्धकारसंस्थितेर्नेतव्यम्**, द्वीपपरिधिदशभागसत्क-भागत्रयप्रमाणत्वात् । यदत्र तापक्षेत्र-स्याल्पत्वं तमसश्चानल्पत्वं तत्र मन्दलेश्याकत्वं हेतुरिति । एवं सर्वाभ्यन्तरमण्डले-ऽभ्यन्तरबाहा-विष्कम्भे यत्तापक्षेत्रपरिमाणं ९४८६-९/१० इत्येवंरूपं तदत्रान्धकारसंस्थिते-र्ज्ञेयम्, यच्च तत्रैव विष्कम्भेऽन्धकारसंस्थितेः ६३२४-६/१० इत्येवं तापक्षेत्रस्यात्र मन्तव्यम् । ननु इदं सर्वबाह्यमण्डलसत्कतापक्षेत्रप्ररूपणम्, यदि तन्मण्डल-परिधौ ३१८३१५ रूपे षष्टिभक्ते लब्धा ५३०५ रूपा मुहूर्त्तगतिः, तदा च सर्वजघन्यो दिवसो द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणः, अतो द्वादशभिः सा गुण्यते, तथा च कृते ६३६६३ इत्येवंरूपो राशिः स्यात्, यदिवोक्तपरिधिर्द्विगुणितो दशभिर्भज्यते तदाप्ययमेव राशिर्द्विधाकरणरीतिलब्धस्तत्कि-मेतस्मात् सूत्रोक्तराशिर्विभिद्यते ?, उच्यते, सूत्रकारेण द्वीपपरिध्यपेक्षयैव करणरीतेर्दर्श्यमान-त्वान्नात्र दोषः । अभ्यन्तरमण्डले परिधिर्यथा न न्यूनीक्रियते, तथा बाह्यमण्डले नाधिकीक्रियते तत्र विवक्षैव हेतुरिति ॥३५॥

सम्प्रति सूर्याधिकारादेतत्सम्बन्धिनं दूरा-ऽऽसन्नादिदर्शनरूपं विचारं वक्तुं दशमं द्वारमाह-

जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे सूरिआ उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति ? मज्झंतिअमुहुत्तंसि मूले अ दूरे अ दीसंति ? अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति ?, हंता गो० ! तं चेव जाव दीसंति ॥ ३६ ॥

"**जम्बुद्दीवे णं**" इत्यादि, **जम्बूद्वीपे द्वीपे** भदन्त ! **सूर्यौ 'उद्गमनमुहूर्त्ते'** उदयोपलक्षिते मुहूर्त्ते, एवमस्तमनमुहूर्त्ते, सूत्रे यकारलोप आर्षत्वात्, **'दूरे च'** द्रष्टृस्थानापेक्षया विप्रकृष्टे **'मूले च'** द्रष्टृप्रतीत्यपेक्षया आसन्ने **दृश्यते** ? द्रष्टारो हि स्वरूपतः सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैः समधिकैर्व्यवहितमुद्गमना-ऽस्तमनयोः सूर्यं पश्यन्ति, आसन्नं पुनर्मन्यन्ते, विप्रकृष्टं सन्तमपि न प्रतिपद्यन्ते । "**मध्यान्तिकमुहूर्त्त**" इति, **'मध्यः'** मध्यमः 'अन्तः' विभागो गमनस्य दिवसस्य वा मध्यान्तः, स यस्य मुहूर्त्तस्यास्ति स मध्यान्तिकः, स चासौ मुहूर्त्तश्चेति 'मध्यान्तिकः' मध्याह्नमुहूर्त्त इत्यर्थः, तत्र **'मूले च'** आसन्ने देशे द्रष्टृस्थानापेक्षया **'दूरे च'** विप्रकृष्टे देशे द्रष्टृप्रतीत्यपेक्षया सूर्यौ **दृश्येते**, द्रष्टा हि मध्याह्ने उदया-ऽस्तमयनदर्शनापेक्षया आसन्नं रविं पश्यति, योजनशताष्टकेनैव तदाऽस्य व्यवहितत्वात्, मन्यते पुनरुदया-ऽस्तमयनप्रतीत्यपेक्षया व्यवहितमिति, अत्र सर्वत्र काक्वा प्रश्नोऽवसेयः । अत्र भगवानाह-**'तदेव'** यद्भवता-ऽनन्तरमेव प्रश्नविषयीकृतं तत्तथैवेत्यर्थः, **यावद् दृश्यते** इति ॥३६॥

अत्र चर्मदृशां जायमाना प्रतीतिर्मा ज्ञानदृशां प्रतीत्या सह विसंवदत्विति संवादाय पुनर्गौतमः पृच्छति–

जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! सूरिआ उग्गमणमुहुत्तंसि या मज्झंतिअमुहुत्तंसि या अत्थमणमुहुत्तंसि या सव्वत्थ समा उच्चत्तेणं ?, हंता तं चेव जाव उच्चत्तेणं ॥ ३७ ॥

"**जम्बुद्दीवे ण**"मित्यादि, **जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे उद्गमनमुहूर्त्ते च मध्यान्तिकमुहूर्त्ते च अस्तमयनमुहूर्त्ते च** अत्र चशब्दा वाशब्दार्थाः, **सूर्यौ 'सर्वत्र'** उक्तकालेषु **समौ उच्चत्वेन**, अत्रापि काकुपाठात् प्रश्नावगतिः । भगवानाह **'तदेव'** यद्भवता मां प्रति पृष्टं **यावदुच्चत्वेनेति** । सर्वत्र-उद्गमनमुहूर्त्तादिषु समौ समव्यवधानावुच्चत्वेन समभूतलापेक्षयाऽष्टौ योजनशतानीतिकृत्वा ॥३७॥

न हि सतीं जनप्रतीतिं वयमपलपामः, इति भगवदुक्तमेवानुवदन्नत्र विप्रतिपत्तिबीजं प्रष्टुमाह–

जइ णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे सूरिआ उग्गमणमुहुत्तंसि या मज्झं० अत्थ० सव्वत्थ समा उच्चत्तेणं, कम्हा णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि[१] दूरे अ मूले अ दीसंति०, गोयमा ! लेसापडिघाएणं उग्गमण-मुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति इति लेसाहितावेणं[२] मज्झंतिअमुहुत्तंसि मूले अ दूरे अ दीसंति, लेसापडिघाएणं अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे अ मूले अ दीसंति, एवं खलु गोयमा ! तं चेव जाव दीसंति १० ॥ ३८ ॥

"**जइ ण**"मित्यादि, प्रश्नसूत्रं स्पष्टम् । उत्तरसूत्रे **गौतम ! 'लेश्यायाः'** सूर्यमण्डल-गततेजसः **'प्रतिघातेन'** दूरतरत्वादुद्गमनदेशस्य तदप्रसरणेनेत्यर्थः, **उद्गमनमुहूर्त्ते दूरे च मूले च दृश्यते** । लेश्याप्रतिघाते हि सुखदृश्यत्वेन स्वभावेन दूरस्थोऽपि सूर्य आसन्नप्रतीतिं जनयति, एवम**स्तमयनमुहूर्त्ते**ऽपि व्याख्येयम्, द्वयोः समगमकत्वात् । **मध्यान्तिकमुहूर्त्ते** तु **लेश्याया 'अभितापेन'** प्रतापेन[३] सर्वतस्तेजःप्रतापेनेत्यर्थः, **मूले च दूरे च दृश्येते**, मध्याह्ने ह्यासन्नोऽपि सूर्यस्तीव्रतेजसा दुर्दर्शत्वेन दूरप्रतीतिं जनयति । एवमेवासन्नत्वेन दीप्तलेश्याकत्वं दिनवृद्धि-घर्मादयो भावाः, दूरतरत्वेन मन्दलेश्याकत्वं दिनहानि-शीतादयश्च वाच्याः ॥३८॥

---

१. ०मुहुत्तंसि जाव अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे-पुके J12 ॥ २. लेसाहियावेणं-अब । लेसाभितावेणं-क । लेसाभियावेणं-ख ॥ ३. प्रतपनेन-पुके ॥

उद्गमनास्तमयनादीनि च ज्योतिष्काणां गतिप्रवृत्ततया जायन्ते इति तेषां गमनप्रश्नायैकादशं द्वारमाह-

जम्बुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे सूरिआ किं तीअं खेत्तं गच्छंति ? पडुप्पण्णं खेत्तं गच्छन्ति ? अणागयं खेत्तं गच्छन्ति ?, गो० ! णो तीअं खेत्तं गच्छन्ति, पडुप्पण्णं खेत्तं गच्छन्ति, णो अणागयं खेत्तं गच्छन्ति ॥ ३९ ॥

"**जम्बुद्दीवे ण**"मित्यादि, **जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे सूर्यौ किम्** '**अतीतं**' गतिविषयीकृतं **क्षेत्रं** '**गच्छतः**' अतिक्रामतः उत '**प्रत्युत्पन्नं**' वर्त्तमानं गतिविषयीक्रियमाणम् उत '**अनागतं**' गतिविषयीकरिष्यमाणम्, एतेन इह च यदाकाशखण्डं सूर्यः स्वतेजसा व्याप्नोति तत्क्षेत्रमुच्यते, तेनास्यातीतेत्यादिव्यवहारविषयत्वं नोपपद्यते अनादिनिधनत्वादिति शङ्का निरस्ता । भगवानाह-**गौतम** ! नोशब्दस्य निषेधार्थत्वा**न्नातीतं क्षेत्रं गच्छतः**, अतीतक्रियाविषयीकृते वर्त्तमानक्रियाया एवासम्भवात्, **प्रत्युत्पन्नं गच्छतः**, वर्त्तमानक्रियाविषये वर्त्तमानक्रियायाः सम्भवात्, **नो अनागतम्**, अनागतक्रियाविषयेऽपि तदसम्भवात् ॥३९॥

अत्र प्रस्तावाद् गतिविषयं क्षेत्रं कीदृक् स्यादिति प्रष्टुमाह-

तं भन्ते ! किं पुट्ठं गच्छन्ति जाव नियमा छद्दिसिं ॥ ४०-४८ ॥

"**तं भन्ते ! किं पुट्ठे**" इत्यादि, अत्र यावत्पदसङ्ग्रहोऽयम्-

"**पुट्ठं गच्छंति ? गोअमा ! पुट्ठं गच्छंति, णो अपुट्ठं गच्छन्ति । तं भन्ते ! किं ओगाढं गच्छन्ति अणोगाढं गच्छन्ति ?, गोअमा ! ओगाढं गच्छन्ति, णो अणोगाढं गच्छन्ति । तं भन्ते ! किं अणंतरोगाढं गच्छन्ति, परंपरोगाढं गच्छन्ति ?, गोअमा ! अणंतरोगाढं गच्छन्ति णो परंपरोगाढं गच्छन्ति । तं भन्ते ! किं अणुं गच्छंति बायरं गच्छंति ?, गोअमा ! अणुं पि गच्छंति बायरं पि गच्छंति । तं भन्ते ! किं उड्ढं गच्छंति अहे गच्छंति तिरियं गच्छन्ति ?, गोअमा ! उड्ढं पि गच्छन्ति तिरिअं पि गच्छन्ति अहे वि गच्छन्ति । तं भन्ते ! किं आइं गच्छंति मज्झे गच्छंति पज्जवसाणे गच्छंति ?, गोअमा ! आइं पि गच्छंति मज्झे वि गच्छंति पज्जवसाणे वि गच्छंति । तं भन्ते ! किं सविसयं गच्छंति, अविसयं गच्छंति ?, गोअमा ! सविसयं गच्छंति, णो अविसयं गच्छंति । तं भन्ते ! किं आणुपुव्विं गच्छंति अणाणुपुव्विं गच्छंति ?, गो० ! आणुपुव्विं गच्छंति णो अणाणुपुव्विं गच्छंति । तं भन्ते ! किं एगदिसिं गच्छंति छद्दिसिं गच्छंति ?, गो० ! नियमा छद्दिसिं गच्छंति**" [**प्रज्ञापना ११। सू. ७७७ [१६-२३]**] त्ति ।

अत्र व्याख्या-**तद् भदन्त** ! क्षेत्रं **किं स्पृष्टं**-सूर्यबिम्बेन सह स्पर्शमागतं **गच्छतः**-अतिक्रामतः उतास्पृष्टम् । अत्र पृच्छकस्यायमाशयः-गम्यमानं हि क्षेत्रं किञ्चित्स्पृष्टमतिक्रम्यते यथाऽपवरकक्षेत्रं किञ्चिच्चास्पृष्टं यथा देहलीक्षेत्रम्, अतोऽत्र कः प्रकारः ? इति । भगवानाह-[गौतम !]स्पृष्टं गच्छतः नास्पृष्टम्, अत्र सूर्यबिम्बेन सह स्पर्शनं सूर्यबिम्बावगाहक्षेत्राद्बहिरपि

सम्भवति, स्पर्शनाया अवगाहनातोऽधिकविषयत्वात्, ततः प्रश्नयति–तद्भदन्त ! स्पृष्टं क्षेत्रम् अवगाढं–सूर्यबिम्बेनाश्रयीकृतम् अधिष्ठितमित्यर्थः, उतानवगाढं तेनानाश्रयीकृतं नाधिष्ठित-मित्यर्थः? । भगवानाह–गौतम ! अवगाढं क्षेत्रं गच्छतः नानवगाढम्, आश्रितस्यैव त्यजन-योगात् । अथ यद्भदन्त ! अवगाढं तदनन्तरावगाढं–अव्यवधानेनाश्रयीकृतं उत परम्परावगाढं–व्यवधानेनाश्रयीकृतम् ?, भगवानाह–गौतम ! अनन्तरावगाढम्, न पुनः परम्परावगाढम् । किमुक्तं भवति ? यस्मिन्नाकाशखण्डे यो मण्डलावयवोऽव्यवधानेनावगाढः, स मण्डला-वयवस्त-मेवाकाशखण्डं गच्छति न पुनरपरमण्डलावयवावगाढं तस्य व्यवहितत्वेन परम्परावगाढत्वात् । तच्चाल्पमनल्पमपि स्यादित्याह–तद्भदन्त ! अणुं गच्छतः बादरं वा ?, गौतम ! अण्वपि सर्वाभ्यन्तरमण्डलक्षेत्रापेक्षया बादरमपि सर्वबाह्यमण्डलक्षेत्रापेक्षया, तत्तच्चक्रवालक्षेत्रानुसारेण गमनसम्भवात् । गमनं च ऊर्ध्वा-ऽधस्तिर्यग्गतित्रयेऽपि सम्भवेदिति प्रश्नयति–तद्भदन्त ! क्षेत्रमूर्ध्वमधस्तिर्यग्वा गच्छतः ?, गौतम ! ऊर्ध्वमपि तिर्यगप्यधोऽपि, ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्त्वं च योजनैकषष्टिभागरूपचतुर्विंशतिभागप्रमाणोत्सेधापेक्षया द्रष्टव्यम्, अन्यथा "**जाव नियमा छद्दिसिं**" इति चरमसूत्रेण सह विरोधः स्यात्, इदं च व्याख्यानं **प्रज्ञापनोपाङ्ग**गतैकादश-भाषापदाष्टाविंशतितमाहार-पदगतोर्ध्वा-ऽधस्तिर्यग्विषयकनिर्वचनसूत्रव्याख्यानुसारेण कृतमिति बोध्यम् । गमनं च क्रिया सा च बहुसामयिकत्वात्त्रिकालनिर्वर्त्तनीया स्यादित्यादि-मध्यादिप्रश्नः–तद्भदन्त ! किमादौ गच्छतः किं मध्ये उत पर्यवसाने वा ?, भगवानाह–गौतम ! षष्टिमुहूर्त्तप्रमाणस्य मण्डलसङ्क्रम-कालस्यादावपि मध्येऽपि पर्यवसानेऽपि वा गच्छतः, उक्तप्रकारत्रयेण मण्डलकालसमापनात् । अथ तद्भदन्त ! स्वविषयं–स्वोचितं क्षेत्रं गच्छतः उत अविषयं वा स्वानुचितमित्यर्थः ?, गौतम ! स्वविषयं स्पृष्टावगाढनिरन्तरावगाढस्वरूपं गच्छतः, न अविषयम्–अस्पृष्टा-ऽनवगाढ-परम्परावगाढक्षेत्राणां गमनायोग्यत्वात् । तद्भदन्त ! आनुपूर्व्या–क्रमेण यथासन्नं गच्छतः उत अनानुपूर्व्या–क्रमेणानासन्नमित्यर्थः ? सूत्रे द्वितीया तृतीयार्थे गौतम ! आनुपूर्व्या गच्छतः, नानानुपूर्व्या व्यवस्थाहानेः । प्रागुक्तमेव दिक्प्रश्नं व्यक्त्या आह–तद्भदन्त ! किमेकदिग्विषयकं क्षेत्रं गच्छतः यावत् षड्दिग्विषयकम् ?, गौतम ! नियमात् षड्दिशि, तत्र पूर्वादिषु तिर्यग्दिक्षु उदितः सन् स्फुटमेव गच्छन् दृश्यते, ऊर्ध्वाधोदिग्गमनं च यथोपपद्यते तथा प्राग्दर्शितम् ॥४०-४८॥

सम्प्रत्येतदतिदेशेनावभासनादिसूत्राण्याह–

एवं ओभासेंति ॥ ४९ ॥

"**एवं ओभासेंति**" इत्यादि, "**एव**"मिति गमनसूत्रप्रकारेण '**अवभासयतः**' ईषदुद्योतयतः ॥४९॥

तं भंते ! किं पुट्ठं ओभासेंति ? एवं आहारपयाइं णेअव्वाइं पुट्ठोगाढमणंतर-अणु-महआदिविसया-ऽऽणुपुव्वी अ जाव णिअमा छद्दिसिं ॥ ५० ॥

यथा स्थूरतरमेव दृश्यते, तमेव प्रकारमीषद्दर्शयति-**तद्भदन्त** ! क्षेत्रं '**स्पृष्टं**' सूर्यतेजसा[1] व्याप्तम् **अवभासयतः**, उतास्पृष्टम् ?, भगवानाह-स्पृष्टं नास्पृष्टम्, दीपादिभास्वरद्रव्याणां प्रभाया गृहादिस्पर्शपूर्वकमेवावभासकत्वदर्शनात् । '**एवं**' स्पृष्टपदरीत्या '**आहारपदानि**' **चतुर्थोपाङ्गगताष्टाविंशतितमपदे** आहारग्रहणविषयकानि '**पदानि**' द्वाराणि **नेतव्यानि** । तद्यथा-"**पुट्ठो**" इत्यादि, प्रथमतः **स्पृष्ट**विषयं सूत्रम्, ततोऽ**वगाढ**सूत्रम्, ततोऽणु-बादरसूत्रम्, तत ऊर्ध्वाऽधःप्रभृतिसूत्रम्, तत "**आइं**" इति उपलक्षणमेतत् आदिमध्यावसानसूत्रम्, ततो **विषय**सूत्रम् तदनन्तरमा**नुपूर्वी**सूत्रम्, ततो **यावत् नियमात् षड्दिशी**ति सूत्रम्, अत्र यथासम्भवं विपक्षसूत्राण्युपलक्षणाद् ज्ञेयानि, अत्र चोर्ध्वादिदिग्भावनां सूत्रकृत् स्वयमेव वक्ष्यति ॥५०॥

एवं उज्जोवेंति तवेंति पभासेंति ११ ॥ ५१ ॥

एवम् '**उद्द्योतयतः**' भृशं प्रकाशयतः, यथा स्थूलमेव दृश्यते, '**तापयतः**' अपनीतशीतं कुरुतः, यथा सूक्ष्मं पिपीलिकादि दृश्यते तथा कुरुतः, '**प्रभासयतः**' अतितापयोगाद्[2] विशेषतोऽपनीतशीतं कुरुतः, यथा सूक्ष्मतरं दृश्यते ॥५१॥

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिआणं किं तीते खित्ते किरिआ कज्जइ पडुप्पण्णे० अणागए० ?, गो० ! णो तीए खित्ते किरिआ कज्जइ, पडुप्पण्णे० कज्जइ, णो अणागए० ॥ ५२ ॥

उक्तमेवार्थं शिष्यहिताय प्रकारान्तरेण प्रश्नयितुं द्वादशद्वारमाह-"**जम्बुद्दीवे ण**"मित्यादि, **जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे** द्वयोः, **सूर्ययोः किमतीते** '**क्षेत्रे**' पूर्वोक्तस्वरूपे '**क्रिया**' अवभासनादिका **क्रियते**, कर्मकर्त्तरिप्रयोगोऽयम्, तेन भवतीत्यर्थः, **प्रत्युत्पन्ने अनागते** वा ? भगवानाह-**गौतम ! नोऽतीते क्षेत्रे क्रिया क्रियते, प्रत्युत्पन्ने क्रियते, नो अनागते**, व्याख्यानं प्राग्वत् ॥५२॥

सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ ?, गोअमा ! पुट्ठा णो अणापुट्ठा कज्जइ जाव णिअमा छद्दिसिं ॥ ५३ ॥

---

१. पुके । सूर्यस्ते० मु. ॥ २. पुके । ०गाद० मु. ॥

सा क्रिया भगवन् ! किं स्पृष्टा क्रियते उतास्पृष्टा क्रियते ? **गौतम ! 'स्पृष्टा'** तेजसा स्पर्शनं स्पृष्टम्, भावे क्तप्रत्ययविधानात्, तद्योगाद्या सा स्पृष्टा उच्यते । कोऽर्थः ? सूर्यतेजसा क्षेत्रस्पर्शनेऽवभासनमुद्योतनं तापनं प्रभासनं चेत्यादिका क्रिया स्यादिति । अथवा स्पृष्टात्-स्पर्शनादिति पञ्चमीपरतया व्याख्येयं **न अस्पृष्टात् क्रियते** । अत्र **यावत्**पदात् आहारपदानि ग्राह्याणि, तत्रेयं सूत्रपद्धतिः-"से णं भन्ते ! किं ओगाढा अणोगाढा ?, गोअमा ! ओगाढा णो अणोगाढा" अत्रापि भावे क्तप्रत्ययविधानादवगाढम् अवगाहनं क्षेत्रे तेजःपुद्गलानामवस्थानं तद्योगाद्या साऽवगाढा क्रिया, एवमनन्तरावगाढ-परम्परावगाढसूत्रम् । "सा णं भन्ते ! अणू किज्जइ बायरा किज्जइ ?, गोअमा ! अणू वि बायरा वि" त्ति, सा क्रिया अवभासनादिका किमणुर्वा बादरा वा क्रियते ?। गौतम ! अणुरपि-सर्वाभ्यन्तरमण्डलक्षेत्रावभासनापेक्षया बादराऽपि-सर्वबाह्यमण्डलक्षेत्रावभासनापेक्षया, ऊर्ध्वाध-ऽस्तिर्यक्सूत्रविभावनां सूत्रकृदनन्तरमेव करिष्यति । 'सा णं भंते ! किं आइं किज्जइ, मज्झे किज्जइ, पज्जवसाणे किज्जइ ?, गोअमा ! आइं पि किज्जइ, मज्झे वि किज्जइ, पज्जवसाणे वि किज्जइ'त्ति, गमनसूत्र इवात्रापि भावना, एवं विषयसूत्रमानुपूर्वीसूत्रं **षड्दिक्**सूत्रं च ज्ञेयमिति ॥५३॥

अथ त्रयोदशद्वारमाह-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिआ केवइअं खेत्तं उड्ढं तवयंति अहे तिरिअं च ?, गोअमा ! एगं जोअणसयं उड्ढं तवयंति, अट्ठारससयजोअणाइं अहे तवयंति, सीआलीसं जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तेवट्ठे जोअणसए एगवीसं च सट्ठिभाए जोअणस्स तिरिअं तवयंति १३ ॥ ५४ ॥

"**जंबुद्दीवे ण**"मित्यादि, प्रश्नसूत्रं व्यक्तम् । उत्तरसूत्रे **गौतम ! ऊर्ध्वमेकं योजनशतं तापयतः**, स्वविमानस्योपरि योजनशतप्रमाणस्यैव तापक्षेत्रस्य भावात्, **अष्टादशशतयोजनान्यधस्तापयतः** । कथम् ?, सूर्याभ्यामष्टासु योजनशतेष्वधोगतेषु भूतलम्, तस्माच्च योजनसहस्रे अधोग्रामाः स्युस्तांश्च यावत्तापनात् । '**सप्तचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि**' इत्यादि प्रमाणं क्षेत्रं तिर्यक् तापयतः, एतच्च सर्वोत्कृष्टदिवसचक्षुःस्पर्शापेक्षया बोध्यम्, तिर्यग्दिक्कथनेन पूर्व-पश्चिमयोरेवेदं ग्राह्यम् । उत्तरतस्तु १८० न्यून ४५ योजनसहस्राणि, याम्यतः पुनर्द्वीपे १८० योजनानि, लवणे तु योजनानि ३३ सहस्राणि ३ शतानि त्रयस्त्रिंशदधिकानि योजनत्रिभागयुतानीति ॥५४॥

अथ मनुष्यक्षेत्रवर्त्तिज्योतिष्कस्वरूपं प्रष्टुं चतुर्दशद्वारमाह-

अंतो णं भंते ! माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स जे चंदिम-सूरिअ-गहगण-णक्खत्त-तारारूवा, [ते] णं भंते ! देवा किं उड्ढोववण्णगा कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा चारट्ठिईआ गइरइआ गइसमावण्णगा ?, गोअमा ! अंतो णं माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स जे चंदिमसूरिअ जाव तारारूवे, ते णं देवा णो उड्ढोववण्णगा, णो कप्पोववण्णगा, विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा, णो चारट्ठिईआ, गइरइआ गइसमावण्णगा, उड्ढीमुहकलंबु-आपुप्फसंठाणसंठिएहिं जोअणसाहस्सिएहिं तावखेत्तेहिं साहस्सिआहिं वेउव्विआहिं[१] बाहिराहिं परिसाहिं महयाहयणट्ट-गीअ-वाइअ-तंती-तल-ताल-तुडिअ-घण-मुइंगपडुप्पवाइअरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा महया उक्किट्ठिसीहणाय-बोलकलकलरवेणं अच्छं पव्वयरायं पयाहिणावत्त-मण्डलचारं मेरुं अणुपरिअट्टंति १४ ॥ ५५ ॥

"**अंतो णं भंते !**" इत्यादि, 'अन्तः'मध्ये **भदन्त ! 'मानुषोत्तरस्य'** मनुष्येभ्य 'उत्तरः' अग्रवर्ती, एनमवधीकृत्य मनुष्या-णामुत्पत्ति-विपत्तिसिद्धि-सम्पत्तिप्रभृतिभावात्, अथवा मनुष्याणाम् 'उत्तरः' विद्यादिशक्त्यभावे-ऽनुल्लङ्घनीयो मानुषोत्तरस्तस्य **पर्वतस्य ये चन्द्र-सूर्य-ग्रहगण-नक्षत्र-तारारूप**ज्योतिष्काः, **ते भदन्त** !, अत्रैकस्मिन्नेव प्रश्ने यद्भदन्तेति भगवत्सम्बोधनं पुनश्चक्रे तत्पृच्छकस्य भगवन्नामोच्चारेऽतिप्रीतिमत्त्वात्, **देवाः किम् 'ऊर्ध्वोपपन्नाः'** सौधर्मादिभ्यो द्वादशभ्यः कल्पेभ्य 'ऊर्ध्वं' ग्रैवेयकानुत्तरविमानेषु 'उपपन्नाः' उत्पन्नाः कल्पातीता इत्यर्थः, **'कल्पोपपन्नाः'** सौधर्मादिदेवलोकोत्पन्नाः **'विमानेषु'** ज्योतिःसम्बन्धिषु **उपपन्नाः 'चारः'** मण्डलगत्या परिभ्रमणं तम् **'उपपन्नाः'** आश्रितवन्तः उत 'चारस्य' यथोक्तस्वरूपस्य 'स्थितिः' अभावो येषां ते **चारस्थितिका** अपगतचारा इत्यर्थः, गतौ 'रतिः' आसक्तिः प्रीतिर्येषां ते **गति-रतिकाः**, अनेन गतौ रतिमात्रमुक्तम् । सम्प्रति साक्षाद् गतिं प्रश्नयति-**'गतिसमापन्नाः'** गतियुक्ताः ?, भगवानाह-**गौतम ! अन्तर्मानुषोत्त-रस्य पर्वतस्य ये चन्द्र-सूर्य-ग्रहगण-नक्षत्र-तारारूप**ज्योतिष्काः, **ते देवा नोर्ध्वोपपन्नाः, नो कल्पोपपन्नाः विमानोपपन्नाः चारोपपन्नाः, नो चारस्थितिकाः**, अत एव **गतिरतिकाः गतिसमायुक्ताः**, **'ऊर्ध्वमुखकलम्बुका-पुष्पसंस्थानसंस्थितै'**रिति प्राग्वत्, **'योजन-**

---

१. बाहिरियाहिं वेउव्वियाहिं - जीवा. ३।८४२ ॥

साहस्त्रिकैः' अनेकयोजनसहस्र-प्रमाणै**स्ताप-क्षेत्रैः**, अत्रेत्थम्भावे तृतीया, तेनेत्थम्भूतैस्तै**र्मेरुं परिवर्त्तन्त** इति क्रियायोगः । कोऽर्थः ? उक्तस्वरूपाणि तापक्षेत्राणि कुर्वन्तो जम्बूद्वीपगतं मेरुं परितो भ्रमन्ति, तापक्षेत्रविशेषणं चन्द्र-सूर्याणामेव, न तु नक्षत्रादीनाम्, यथासम्भवं विशेषणानां नियोज्यत्वात् । अथैतान् साधारण्येन विशेषयन्नाह-'**साहस्त्रिकाभिः**' अनेकसहस्र-सङ्ख्याकाभिः '**वैकुर्विकाभिः**' विकुर्वितनानारूप-धारिणीभिः 'बाह्याभिः' आभियोगिक-कर्मकारिणीभिः, नाट्य-गान-वादनादिकर्मप्रवणत्वात्, न तु तृतीयपर्षद्रूपाभिः, 'पर्षद्भिः' देवसमूहरूपाभिः कर्तृभूताभिः, बहुवचनं चात्र नाट्यादि-गणापेक्षया, **महता** प्रकारेण '**आहतानि**' भृशं ताडितानि **नाट्ये गीते** '**वादिते**[1] च' वादित्रवादनरूपे त्रिविधेऽपि सङ्गीते इत्यर्थः, **तन्त्री-तल-तालरूपत्रुटितानि** शेषं प्राग्वत्, तथा स्वभावतो गतिरतिकैः-बाह्यपर्षदन्तर्गतैर्देवैर्वेगेन गच्छत्सु विमाने**षूत्कृष्टो** यः **सिंहनादो** मुच्यते यौ च **बोलकलकलौ** क्रियेते । तत्र बोलो नाम मुखे हस्तं दत्त्वा महता शब्देन पूत्करणम्, कलकलश्च व्याकुलशब्दसमूहस्तद्रवेण **महता** २ समुद्ररवभूतमिव कुर्वाणा **मेरु**मिति योगः । किंविशिष्टम् ? इत्याह '**अच्छम्**' अतीवनिर्मलम्, जाम्बूनदमयत्वात् रत्नबहुलत्वाच्च, '**पर्वतराजं**' पर्वतेन्द्रं '**प्रदक्षिणावर्त्तमण्डलचार**'मिति प्रकर्षेण सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च परिभ्रमतां चन्द्रादीनां दक्षिण एव मेरुर्भवति यस्मिन् 'आवर्त्तने' मण्डलपरिभ्रमणरूपे स प्रदक्षिणः, प्रदक्षिणः आवर्त्तो येषां मण्डलानां तानि तथा, तेषु यथा चारो भवति तथा क्रियाविशेषणम् तेन प्रदक्षिणावर्त्तमण्डलं चारं यथा स्यात्तथा मेरुं परिवर्त्तन्ते इति योज्यम् । अयमर्थः-चन्द्रादयः सर्वेऽपि समयक्षेत्रवर्त्तिनो मेरुं परितः प्रदक्षिणावर्त्तमण्डलचारेण भ्रमन्तीति ॥५५॥

अथ पञ्चदशमं द्वारमाह-

तेसि[2] णं भंते ! देवाणं जाहे इंदे चुए भवइ से कहमियाणिं पकरेंति ?, गो० ! ताहे चत्तारि पंच वा सामाणिआ देवा तं ठाणं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति जाव तत्थ[3] अण्णे इंदे उववण्णे भवइ ॥ ५६ ॥

"**तेसि ण**"मित्यादि, **तेषां भदन्त** ! ज्योतिष्क**देवानां यदा इन्द्र**श्च्य**वते** तदा '**ते**' देवा '**इदानीं**' इन्द्रविरहकाले **कथं प्रकुर्वन्ति** ?, भगवानाह-**गौतम ! तदा चत्वारः पञ्च वा**

---

१. पुके । वादित्रे च वादनरूपे-मु. ॥ २. जाव-अकखत्रिबस पुवृ J12 ॥ ३. तत्थण्णे-V । तत्थ णं-त्रि हीवृ ॥

सामानिका देवाः सम्भूय एकबुद्धितया भूत्वेत्यर्थः, **'तत्स्थानम्'** इन्द्रस्थान**मुपसम्पद्य** **'विहरन्ति'** तदिन्द्रस्थानं परिपालयन्ति । कियन्तं कालम् ? इति चेदत आह-**यावदन्यस्तत्र** **इन्द्र 'उपपन्नः'** उत्पन्नो भवति ॥५६॥

इदानीमिन्द्रविरहकालं प्रश्नयन्नाह-

इंदट्ठाणे णं भंते ! केवइअं कालं उववाएणं विरहिए ?, गो० ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं छम्मासे उववाएणं[1] विरहिए ॥ ५७ ॥

"इंदट्ठाणे ण"मित्यादि, **इन्द्रस्थानं भदन्त ! कियन्तं कालम् 'उपपातेन'** इन्द्रोत्पादेन **विरहितं** प्रज्ञप्तम् ?, भगवानाह-**गौतम ! जघन्येनैकं समयं** यावत् **उत्कर्षेण षण्मासान्** यावत्, ततः परमवश्यमन्यस्येन्द्रस्योत्पादसम्भवादिति ॥५७॥

सम्प्रति समयक्षेत्रबहिर्वर्त्तिज्योतिष्काणां स्वरूपं पृच्छति-

बहिआ णं भन्ते ! माणुसुत्तरस्स पव्वयस्स जे चंदिम जाव तारारूवा तं चेव णेअव्वं, णाणत्तं विमाणोववण्णगा, णो चारोववण्णगा, चारठिईआ, णो गइरइआ णो गइसमावण्णगा, पक्किट्टगसंठाणसंठिएहिं[2] जोअणसयसाहस्सिएहिं तावखित्तेहिं, सयसाहस्सिआहिं वेउव्विआहिं, बाहिराहिं परिसाहिं महयाहय-णट्ट गीयवाइय जाव भुंजमाणा सुहलेसा मंदलेसा मंदातवलेसा चित्तंतर-लेसा अण्णोण्णसमोगाढाहिं लेसाहिं कूडाविव ठाणठिआ सव्वओ समन्ता ते पएसे ओभासंति उज्जोवेंति पभासेंति ॥ ५८ ॥

"बहिआ ण"मित्यादि, **बहिस्ताद् भगवन् ! मानुषोत्तरस्य पर्वतस्य ये चन्द्रादयो** देवास्ते किमूर्ध्वोपपन्ना इत्यादि प्रश्नसूत्रं प्राग्वत् । निर्वचनसूत्रे तु नोर्ध्वोपपन्नाः, नापि कल्पोपपन्नाः, किन्तु **विमानोपपन्नाः**, तथा **'नो चारोपपन्नाः'** नो चारयुक्ताः, किन्तु **चारस्थितिकाः**, अत एव **नो गतिरतयो नापि गतिसमापन्नकाः, पक्वेष्टकासंस्थानसंस्थितैर्योजनशतसाहस्रिकैस्तापक्षेत्रैस्तान्** प्रदेशान् अवभासयन्तीत्यादिक्रियायोगः । पक्वेष्टकासंस्थानं चात्र यथा पक्वेष्टका आयामतो दीर्घा भवति, विस्तरतस्तु स्तोका चतुरस्रा च, तेषामपि मनुष्यक्षेत्राद्बहिर्वर्त्तिनां चन्द्रसूर्याणामातपक्षेत्राणि आयामतोऽनेकयोजनलक्ष-

१. विरहिए उववाएणं-अकखत्रिबस V ॥ २. वंकिट्टग० अकखत्रिबस हीवृ ॥

प्रमाणानि विष्कम्भत एकलक्षयोजनप्रमाणानि । इयमत्र भावना–मानुषोत्तरपर्वतात् योजनलक्षार्द्धातिक्रमे करणविभावनोक्तकरणानुसारेण प्रथमा चन्द्र-सूर्यपङ्क्तिः, ततो योजनलक्षातिक्रमे द्वितीया पङ्क्तिस्तेन प्रथमपङ्क्तिगतचन्द्र-सूर्याणामेतावांस्तापक्षेत्रस्यायामः विस्तारश्च, एकसूर्यादपरः सूर्यो लक्षयोजनातिक्रमे तेन लक्षयोजनप्रमाणः, इयं च भावना प्रथमपङ्क्त्यपेक्षया बोद्धव्या । एवमग्रेऽपि भाव्यम् । "**सयसाहस्सिएहिं**" इत्यादि प्राग्वत् । कथम्भूताः ? इत्याह–**सुखलेश्याः**, एतच्च विशेषणं चन्द्रान् प्रति, तेन ते नातिशीततेजसः, मनुष्यलोके इव शीतकालादौ न एकान्ततः शीतरश्मय इत्यर्थः । **मन्दलेश्या,** एतच्च सूर्यान् प्रति, तेन ते नात्युष्णतेजसः, मनुष्यलोके इव निदाघसमये न एकान्तत उष्णरश्मय इत्यर्थः । एतदेव व्याचष्टे–'**मन्दातपलेश्या**' 'मन्दा' नात्युष्णस्वभावा आतपरूपा '**लेश्या**' रश्मिसङ्घातो येषां ते तथा । तथा च '**चित्रान्तर-लेश्याः**' चित्रमन्तरं लेश्या च येषां ते तथा, भावार्थश्चास्य चित्रमन्तरं सूर्याणां चन्द्रान्त-रितत्वात्, चित्रलेश्या चन्द्रमसां शीतरश्मित्वात् सूर्याणामुष्णरश्मित्वात् । काभिरवभासयन्ति ? इत्याह–'**अन्योऽन्यसमवगाढाभिः**' परस्परं संश्लिष्टाभिर्**लेश्याभिः** । तथाहि–चन्द्रमसां सूर्याणां च प्रत्येकं लेश्या योजनशतसहस्रप्रमाणविस्ताराश्चन्द्रसूर्याणां च सूचीपङ्क्त्या व्यवस्थितानां परस्परमन्तरं पञ्चाशद्योजनसहस्राणि, ततश्चन्द्रप्रभामिश्राः सूर्यप्रभाः, सूर्यप्रभामिश्राश्चन्द्रप्रभाः, इत्थं चन्द्रसूर्यप्रभाणां मिश्रीभावः । एषां स्थिरत्वदृष्टान्तेन द्योतयति–'**कूटानीव**' पर्वतोपरिव्यवस्थितशिखराणीव '**स्थानस्थिताः**' सदैवैकत्र स्थाने स्थिताः, **सर्वतः समन्तात्** तान् '**प्रदेशान्**' स्वस्वप्रत्यासन्नान् **अवभासयन्ति उद्योतयन्ति** तापयन्ति **प्रभासयन्ती**त्यादि प्राग्वत् ॥५८॥

एषामपीन्द्राभावे व्यवस्थां प्रश्नयन्नाह–

तेसि णं भंते ! देवाणं जाहे इंदे चुए भवइ से कहमियाणिं पकरेन्ति जाव जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासा १५ ॥ ५९-६० ॥

"**तेसि णं भंते ! देवाण**"मित्यादि प्राग्वत् । इति कृता पञ्चदशानुयोगद्वारैः सूर्यप्ररूपणा ॥५९-६०॥

अथ चन्द्रवक्तव्यमाह–तत्र सप्तानुयोगद्वाराणि मण्डलसङ्ख्याप्ररूपणा १ मण्डलक्षेत्रप्ररूपणा २, प्रतिमण्डलमन्तरप्ररूपणा ३, मण्डलायामादिमानम् ४, मन्दरमधिकृत्य प्रथमादिमण्डलाबाधा ५, सर्वाभ्यन्तरादिमण्डलायामादि ६, मुहूर्त्तगतिः ७ ॥ तत्रादौ मण्डलसङ्ख्याप्ररूपणां पृच्छति–

कइ णं भंते ! चंदमण्डला पं० ?, गो० ! पण्णरस चंदमंडला पण्णत्ता ॥ ६१ ॥

'**कति णं भंते**' इत्यादि, **कति भदन्त ! चन्द्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि** ?; भगवानाह- **गौतम ! पञ्चदश चन्द्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि** ॥६१॥

अथैषां मध्ये कति द्वीपे ? कति लवणे ? इति व्यक्त्यर्थं पृच्छति-

जंबुद्दीवे णं भन्ते ! दीवे केवइअं ओगाहित्ता केवइआ चंदमंडला पं० ?, गो० ! जम्बुद्दीवे २ असीयं जोअणसयं ओगाहित्ता पंच चंदमंडला पण्णत्ता ॥ ६२ ॥

जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे कियदवगाह्य कियन्ति चन्द्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम ! जम्बूद्वीपे २ अशीत्यधिकं योजनशतमवगाह्य पञ्च चन्द्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि ॥६२॥

लवणे णं भंते ! पुच्छा, गो० ! लवणे णं समुद्दे तिण्णि तीसे जोअणसए ओगाहित्ता एत्थ णं दस चंदमंडला पण्णत्ता । एवामेव सपुव्वा-ऽवरेणं जंबुद्दीवे दीवे लवणे य समुद्दे पण्णरस चंदमंडला भवन्तीति मक्खायं १ ॥ ६३ ॥

अथ **लवणसमुद्रे भदन्त ! प्रश्नः, गौतम ! लवणसमुद्रे त्रिंशदधिकानि त्रीणि योजनशतानि अवगाह्य अत्रान्तरे दश चन्द्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि । एवमेव सपूर्वा-ऽपरेण जम्बूद्वीपे द्वीपे लवणसमुद्रे[च] पञ्चदश चन्द्रमण्डलानि भवन्तीति आख्यातमिति** ॥६३॥

अथ मण्डलक्षेत्रप्ररूपणां प्रश्नयन्नाह-

सव्वब्भंतराओ णं भन्ते ! चंदमंडलाओ णं केवइयं अबाहाए सव्व-बाहिरए चंदमंडले पं० ?, गोअमा ! पंचदसुत्तरे जोअणसए अबाहाए सव्वबाहिरए चंदमंडले पण्णत्ते २ ॥ ६४ ॥

"**सव्वब्भंतराओ ण**"मित्यादि, **सर्वाभ्यन्तराद् भदन्त ! चन्द्रमण्डलात् कियत्या अबाधया सर्वबाह्यं चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तम्** ? किमुक्तं भवति ? चन्द्रमण्डलैः सर्वाभ्यन्तरादिभिः सर्वबाह्यान्तैर्यद्व्याप्तमाकाशं तन्मण्डलक्षेत्रम् । तत्र च चक्रवालतया विष्कम्भः **पञ्च योजनशतानि दशोत्तराणि** अष्टचत्वारिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य ५१०-

४८/६१ । इदं च व्याख्यातोऽधिकं बोध्यम्, तथाहि-चन्द्रस्य मण्डलानि पञ्चदश, चन्द्रबिम्बस्य च विष्कम्भ एकषष्टिभागात्मकयोजनस्य षट्पञ्चाशद्भागाः, तेन ते ५६ पञ्चदशभिर्गुण्यन्ते जातं ८४०, तत एतेषां योजनानयनार्थम् एकषष्ट्या भागे हृते लब्धानि त्रयोदश योजनानि शेषाः सप्तचत्वारिंशत् । तथा पञ्चदशानां मण्डलानामन्तराणि चतुर्दश, एकैकस्यान्तरस्य प्रमाणं पञ्चत्रिंशद्योजनानि त्रिंशच्च एकषष्टिभागा योजनस्य एकस्य च एकषष्टिभागस्य सप्तधाच्छिन्नस्य सत्काश्चत्वारो भागाः [३५ $\frac{३०}{६१}$ $\frac{४}{७}$] । ततः पञ्चत्रिंशच्चतुर्दशभिर्गुण्यन्ते जातानि चत्वारि योजनशतानि नवत्यधिकानि [४९०], येऽपि च त्रिंशदेकषष्टिभागास्तेऽपि चतुर्दशभिर्गुण्यन्ते जातानि चत्वारि शतानि विंशत्यधिकानि [४२०], अयं च राशिरेकषष्टिभागात्मकः, तेन एकषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धानि षट् योजनानि, एषु पूर्वराशौ प्रक्षिप्तेषु जातानि ४९६ योजनानि । शेषाश्चतुःपञ्चाशदेकषष्टिभागास्तिष्ठन्ति [$\frac{५४}{६१}$], ये च एकस्यैकषष्टिभागस्य[१] सत्काश्चत्वारः सप्तभागास्तेऽपि चतुर्दशभिर्गुण्यन्ते, जाताः षट्पञ्चाशत् तेषां सप्तभिर्भागे हृते लब्धा अष्टावेकषष्टिभागाः तेऽनन्तरोक्तचतुःपञ्चाशति [$\frac{८}{६१}$] प्रक्षिप्यन्ते, जाता द्वाषष्टिः ६२ । तत्रैकषष्टिभागैर्योजनं लब्धम् तच्च योजनराशौ प्रक्षिप्यते, एकश्चैकषष्टिभागः शेषः ४९७ योजन १/६१ इदं च मण्डलान्तरक्षेत्रम् । योऽपि च बिम्बक्षेत्रराशिस्त्रयोदशयोजनसप्तचत्वारिंशदेकषष्टिभागात्मकः, [१३ $\frac{४७}{६१}$] सोऽपि मण्डलान्तरराशौ प्रक्षिप्यते जातं योजनानि ५१०, यश्च पूर्वोद्धरितः एकः एकषष्टिभागः, [$\frac{१}{६१}$] स सप्तचत्वारिंशति प्रक्षिप्यते, जातं ४८ एकषष्टिभागाः । ननु पञ्चदशसु मण्डलेषु चतुर्दशान्तरालसम्भवाच्चतुर्दशभिर्भजनं युक्तिमत्, सप्तचत्वारो [$\frac{४}{७}$] भागा इति कथं सङ्गच्छते ?, उच्यते, मण्डलान्तरक्षेत्रराशेः ४९७-१/६१ मण्डलान्तरैश्चतुर्दशभिर्भजने लब्धानि ३५ योजनानि, उद्धरितस्य योजनराशेरेकषष्ट्या गुणने मूलराशिसत्कैकषष्टिभागप्रक्षेपे च जातं ४२८, एषां चतुर्दशभिर्भजने आगतोऽशराशिः ३०, शेषा अष्टौ तेषां चतुर्दशभिर्भागाप्राप्तौ, लाघवार्थं द्वाभ्यामपवर्त्तने जातं भाज्य-भाजकराश्योः ४/७ इति सुस्थम् ॥६४॥

सम्प्रति मण्डलान्तरप्ररूपणाप्रश्नमाह-

चंदमंडलस्स णं भंते ! चंदमंडलस्स[२] य एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पं० ?, गो० ! पणतीसं २ जोअणाइं तीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स [एगं] एगसट्ठिभागं[३] च सत्तहा छेत्ता चत्तारि चुण्णिआभाए चंदमंडलस्स चंदमंडलस्स अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ३ ॥ ६५ ॥

---

१. एकस्य षष्टि० पु. ॥ १. VJ 12 । चंदमंडलस्स केवइयाए अबाहाए-मु. ॥ ३. एगं च एग० चन्द्र प्र.वृत्तौ प्रा.१० । प्रा.प्रा. ११ ॥

"**चंदमंडलस्स ण**"मित्यादि, **चन्द्रमण्डलस्य भदन्त ! चन्द्रमण्डलस्य कियत्या अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! पञ्चत्रि-शत्पञ्चत्रिंशद्योजनानि त्रिंशच्चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकं च एकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा चतुरश्चूर्णिकाभागान्** [३५ $\frac{३०}{६१}$ $\frac{४}{७}$], एतच्च **चन्द्रमण्डलस्य २ अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्,** अत्र सप्त चत्वारश्चूर्णिका यथा समायान्ति, तथाऽनन्तरं व्याख्यातम् ॥६५॥

सम्प्रति मण्डलायामादिमानद्वारम्-

चंदमंडले णं भंते ! केवइअं आयाम-विक्खंभेणं, केवइअं परिक्खेवेणं, केवइअं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?, गोअमा ! छप्पण्णं एगसट्ठिभाए जोअणस्स आयाम-विक्खंभेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, अट्ठावीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स बाहल्लेणं ४ ॥ ६६ ॥

"**चंदमंडले णं भन्ते ! केवइयं आयाम**" इत्यादि, **चन्द्रमण्डलं भगवन् ! कियदायाम-विष्कम्भाभ्यां कियत्परिक्षेपेण कियद् 'बाहल्येन'** उच्चैस्त्वेन **प्रज्ञप्तम्** ?, **गौतम ! षट्पञ्चाशतमेकषष्टिभागान्** [$\frac{५६}{६१}$] **योजन-स्यायामविष्कम्भाभ्याम्,** एकस्य योजनस्य एकषष्टिभागीकृतस्य यावत्प्रमाणा भागास्तावत्प्रमाणषट्पञ्चाशद्भागप्रमाणमित्यर्थः, **तत्त्रिगुणं 'सविशेषं'** साधिकं **परिक्षेपेण,** करणरीत्या द्वे योजने पञ्चपञ्चाशद्भागाः [$\frac{५५}{६१}$] साधिका इत्यर्थः, **अष्टाविंशतिमेकषष्टिभागान्** [$\frac{२८}{६१}$] **योजनस्य बाहल्येन** ॥६६॥

अथ मन्दरमधिकृत्य प्रथमादिमण्डलाबाधाप्रश्नमाह-

जंबुद्दीवे[१] दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स केवइयं अबाहाए सव्वब्भंतरए चंदमंडले पण्णत्ते ?, गोअमा ! चोआलीसं जोअणसहस्साइं अट्ठ य वीसे जोअणसए अबाहाए सव्वब्भन्तरे चंदमंडले पण्णत्ते ॥ ६७ ॥

"**जंबुद्दीवे २**" इत्यादि, **जम्बूद्वीपे २** भगवन् ! **मन्दरस्य पर्वतस्य कियत्या अबाधया सर्वाभ्यन्तरं चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! चतुश्चत्वारिंशद्योजनसहस्राणि अष्ट च विंशत्यधिकानि** **योजनशतान्यबाधया [४४८२०] सर्वाभ्यन्तरं चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तमिति,** उपपत्तिस्तु प्राक् सूर्यवक्तव्यतायां दर्शिता ॥६७॥

द्वितीयमण्डलाबाधां प्रश्नयन्नाह-

१. जंबुद्दीवे णं भंते दीवे-V । एवमग्रेऽपि ॥

जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स केवइयं अबाहाए [1]अब्भंतराणन्तरे चन्दमंडले पण्णत्ते ?, गो० ! चोआलीसं जोअणसहस्साइं अट्ठ य छप्पण्णे जोअणसए पणवीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स [एगं च] एग[स]ट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता चत्तारि चुण्णिआभाए अबाहाए अब्भंतराणंतरे चंदमंडले पण्णत्ते ॥ ६८ ॥

"जंबुद्दीवे २" इत्यादि, **जम्बूद्वीपे** २ भगवन् ! **मन्दरस्य पर्वतस्य कियत्या अबाधया 'अभ्यन्तरानन्तरं'** द्वितीयं **चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तम्** ?, **गौतम ! चतुश्चत्वारिंशद्योजनसहस्राणि अष्टौ च षट्पञ्चाशद**धिकानि **योजनशतानि पञ्चविंशतिं चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकं च एकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा चतुर-श्चूर्णिकाभागान्** [४४८५६ $\frac{२५}{६१}$ $\frac{४}{७}$] **अबाधया 'सर्वाभ्यन्तरानन्तरं'** द्वितीयं **चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तम्** । अत्रोपपत्तिः प्रागुक्तेऽभ्यन्तरमण्डलगतराशौ मण्डलान्तरक्षेत्रमण्डलविष्कम्भराश्योः प्रक्षेपे जायते । तथाहि-४४८२० रूपः पूर्वमण्डलयोजनराशिः, अस्मिन् मण्डलान्तरक्षेत्र-योजनानि ३५, तथाऽन्तरसत्कत्रिंशदेकषष्टिभागानां [$\frac{३०}{६१}$] मण्डलविष्कम्भसत्कषट्पञ्चाशदेकषष्टिभागानां [$\frac{५६}{६१}$] च परस्परमीलने जातं ८६ एकषष्ट्या भागे चागतं योजनमेकम्, तच्च पूर्वोक्तायां पञ्चत्रिंशति प्रक्षिप्यते, जाता षट्त्रिंशद्योजनानां शेषाः पञ्चविंशतिरेकषष्टिभागाश्चत्वारश्चूर्णिकाभागा [$\frac{२५}{६१}$ $\frac{४}{७}$] इति ॥६८॥

अथ तृतीयम्-

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइआए अबाहाए अब्भंतरतच्चे चंदमंडले पं० ?, गो० ! चोआलीसं जोअणसहस्साइं अट्ठ य बाणउए जोअणसए एगावण्णं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं चुण्णिआभागं अबाहाए अब्भंतरतच्चे चंदमंडले पण्णत्ते । एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे चंदे तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे २, छत्तीसं छत्तीसं जोअणाइं पणवीसं च एग[स]ट्ठिभाए जोअणस्स एग[स]ट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता चत्तारि चुण्णिआभाए एगमेगे मंडले अबाहाए वुड्ढिं अभिवड्ढेमाणे २, सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ॥ ६९ ॥

१. अब्भंतरे-J1 ॥

"**जम्बुद्दीवे २**" इत्यादि, प्रश्नसूत्रं प्राग्वत् । उत्तरसूत्रे द्वितीयमण्डल-सत्कराशौ ३६ योजनानि २५ एकषष्टिभागाश्चत्वारश्चूर्णिकाभागा $\frac{४}{७}$ इत्यस्य प्रक्षेपे जातं यथोक्तम् । अथ चतुर्थादिमण्डलेष्वतिदेशमाह–"**एवं खलु**" इत्यादि, एवम् 'उक्तरीत्या' मण्डलत्रयदर्शित-येत्यर्थः, एतेन '**उपायेन**' प्रत्यहोरात्रमेकैकमण्डलमोचनरूपेण '**निष्क्रामन्**' लवणाभिमुखं मण्डलानि कुर्वन् **चन्द्रः 'तदनन्तराद्'** विवक्षितात्पूर्वस्मान्मण्डलाद्विवक्षितमुत्तर**मण्डलं सङ्क्रामन् २, षट्त्रिंशद्योजनानि**, अत्र योजनसङ्ख्यागतवीप्सा भाग-सङ्ख्यापदेष्वपि ग्राह्या, तेन **पञ्चविंशतिम् २ एकषष्टिभागान् योजनस्य** एकं **चैक-षष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा चतुरश्चूर्णिकाभागान् एकैकस्मिन् मण्डले अबाधाया वृद्धिम् अभिवर्द्धयन् २, सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति** ॥६९॥

अथ 'पश्चानुपूर्व्यपि व्याख्यानाङ्गमि'त्यन्त्यमण्डलान्मण्डलाबाधां पृच्छन्नाह–

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयं अबाहाए सव्वबाहिरे चंदमंडले पं० ?, गोअमा ! पणयालीसं जोअणसहस्साइं तिण्णि अ तीसे जोअणसए अबाहाए सव्वबाहिरए चंदमंडले पं० ॥ ७० ॥

"**जंबुद्दीवे**"-त्ति, **जम्बूद्वीपे द्वीपे** भगवन् ! **मन्दरस्य पर्वतस्य कियत्या अबाधया सर्वबाह्यं चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि त्रीणि च** त्रिंशदधिकानि **योजनशतान्यबाधया ४५,३३० सर्वबाह्यं चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तम्**, उपपत्तिस्तु प्राग्वत् ॥७०॥

अथ द्वितीयमण्डलं पृच्छन्नाह–

जंबुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स केवइयं अबाहाए [1]सव्वबाहिराणंतरे चंदमंडले पण्णत्ते ?, गो० ! पणयालीसं जोअणसहस्साइं दोण्णि अ तेणउए जोअणसए पणतीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एग[स]ट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता तिण्णि चुण्णिआभाए अबाहाए बाहिराणन्तरे चंदमंडले पण्णत्ते ॥७१॥

"**जंबुद्दीवे**" इत्यादि, **जम्बूद्वीपे [द्वीपे]** भगवन् ! **मन्दरस्य पर्वतस्य कियत्या अबाधया 'सर्वबाह्यानन्तरं'** द्वितीयं **चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! पञ्चचत्वारिंश-द्योजनसहस्राणि द्वे च त्रिनवत्यधिके योजनशते पञ्चत्रिंशच्चैक-षष्टिभागान् योजनस्य एकं चैकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा त्रींश्चूर्णिकाभागानबाधया** ४५,२९३ $\frac{३५}{६१}$ $\frac{३}{७}$

१. सख शावृ । सव्व-मु. L नास्ति ॥

'सर्व**बाह्यानन्तरं**' द्वितीयं **चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तम्**, सर्वबाह्यमण्डलराशेः षट्त्रिंशद्योजनानि पञ्चविंशतिश्च योजनैकषष्टिभागा एकस्यैकषष्टिभागस्य सत्काश्चत्वारः सप्तभागाः [३६ $\frac{२५}{६१}$ $\frac{३}{७}$] पात्यन्ते, जायते यथोक्तराशिः ॥७१॥

अथ तृतीयमण्डलपृच्छा-

जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयं अबाहाए बाहिरतच्चे चंदमंडले पं० ?, गो० ! पणयालीसं जोअणसहस्साइं दोण्णि अ सत्तावण्णे जोअणसए णव य एग[स]ट्ठिभाए जोअणस्स एग[स]ट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता छ चुण्णिआभाए अबाहाए बाहिरतच्चे चंदमंडले पं० । एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे चंदे तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे २, छत्तीसं २ जोअणाइं पणवीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगसट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता चत्तारि चुण्णिआभाए एगमेगे मंडले अबाहाए वुड्ढिं णिव्वुड्ढेमाणे २, सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ५ ॥ ७२ ॥

"**जम्बुद्दीवे २**" इत्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमम् । उत्तरसूत्रे **पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि द्वे च सप्तपञ्चाशदधिके योजनशते नव च एकषष्टिभागान् योजनस्य एकं च एकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा षट् चूर्णिकाभागान् ४५२५७$\frac{९}{६१}$ $\frac{६}{७}$ अबाधया बाह्यतृतीयं चन्द्रमण्डलं प्रज्ञप्तम्** । उपपत्तिस्तु बाह्यद्वितीयमण्डलराशेस्तमेव षट्त्रिंशद्योजनादिकं राशिं पातयित्वा यथोक्तं मानमानेतव्यम् । अथ चतुर्थादिमण्डलेष्वतिदेशमाह-"**एवं खलु**" इत्यादि व्यक्तम् । नवरम् **अबाधायाः वृद्धिं 'निवर्द्धयन् २'** हापयन् २ इत्यर्थः ॥७२॥

अथ सर्वाभ्यन्तरादिमण्डलायामाद्याह-

सव्वब्भंतरे णं भंते ! चंदमंडले केवइअं आयाम-विक्खम्भेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?, गो० ! णवणउइं जोअणसहस्साइं छच्च चत्ताले जोअणसए आयाम-विक्खम्भेणं तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं पण्णरस जोअणसहस्साइं अउणाणउतिं च जोअणाइं किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पं० ॥ ७३ ॥

"सव्वब्भंतरे ण" मित्यादि **सर्वाभ्यन्तरं भदन्त ! चन्द्रमण्डलं कियदायाम-विष्कम्भाभ्यां कियत्परिक्षेपेण प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! नवनवतिं योजनसहस्राणि षट् च**

चत्वारिंशदधिकानि योजनशतान्यायामविष्कम्भाभ्यां [९९,६४०] त्रीणि च योजनलक्षाणि पञ्चदश योजनसहस्त्राण्येकोननवतिं च योजनानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि [३,१५,०८९] परिक्षेपेण प्रज्ञप्तम्, उपपत्तिस्तूभयत्रापि सूर्यमण्डलाधिकारे दर्शिता ॥७३॥

अथ द्वितीयं-

अब्भन्तराणंतरे सा चेव पुच्छा । गो० ! णवणउइं जोअणसहस्साइं सत्त य बारसुत्तरे जोअणसए एगावण्णं च एग[स]ट्ठिभागे जोअणस्स एग[स]ट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं चुण्णिआभागं आयाम-विक्खम्भेणं तिण्णि अ जोयणसयसहस्साइं पन्नर सहस्साइं तिण्णि अ एगूणवीसे[1] जोअणसए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं ॥ ७४ ॥

"**अब्भंतराणन्तरे**" इत्यादि, अभ्यन्तरानन्तरे **सैव पृच्छा** या सर्वाभ्यन्तरे मण्डले । उत्तरसूत्रे-**गौतम ! नवनवतिं योजनसहस्त्राणि सप्त च द्वादशोत्तराणि योजन-शतानि एकपञ्चाशतं च एकषष्टिभागान् योजनस्य** एकं **चैकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा एकं चूर्णिकाभागमायाम-विष्कम्भाभ्याम्** [९९,७१२ $\frac{५१}{६१}$ $\frac{१}{७}$] । तथाहि-एकतश्चन्द्रमा द्वितीये मण्डले सङ्क्रामन् षट्त्रिंशद्योजनानि पञ्चविंशतिं चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकस्य चैकषष्टिभागस्य सप्तधा छिन्नस्य सत्कान् चतुरो भागान् [३६ $\frac{२५}{६१}$ $\frac{४}{७}$] विमुच्य सङ्क्रामति, अपरतोऽपि तावन्त्येव योजनानि विमुच्य सङ्क्रामति, उभयमीलने जातं द्वासप्ततिर्योजनानि एकपञ्चाशदेकषष्टिभागा योजनस्य एकस्य एकषष्टिभागस्य सप्तधा छिन्नस्य सत्क एको भागो [७२ $\frac{५१}{६१}$ $\frac{१}{७}$] द्वितीयमण्डले विष्कम्भायामचिंतायामधिकत्वेन प्राप्यत इति, तच्च पूर्व-मण्डलराशौ प्रक्षिप्यते, जायते यथोक्तं द्वितीयमण्डलायामविष्कम्भमानम् । **त्रीणि योजन-शतसहस्त्राणि [पञ्चदश योजनसहस्त्राणि] त्रीणि चैकोनविंशत्यधिकानि योजन-शतानि [३,१५,३१९] किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण** द्वितीयं मण्डलं प्रज्ञप्तम् । उपपत्तिस्तु प्रथममण्डलपरिरये द्वासप्ततियोजनादीनां परिरये त्रिंशदधिकद्वियोजनशतरूपे [२३०] प्रक्षिप्ते सति यथोक्तं मानम् ॥७४॥

अथ तृतीयम्-

अब्भन्तरतच्चे णं जाव[2] पं० ?, गो० ! णवणउइं जोअणसहस्साइं सत्त य पंचासीए जोअणसए इगतालीसं व एगट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च

---

१. अउणवीसे-अब J12 । अउणावीसे-कखत्रिस ॥ २. द्र. ७।७३ ॥

सत्तहा छेत्ता दोण्णि अ चुण्णिआभाए आयाम-विक्खंभेणं तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं पण्णरस जोअणसहस्साइं पंच य इगुणापण्णे जोअण-सए किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं ति । एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खम-माणे चंदे जाव संकममाणे २, बावत्तरिं २ जोअणाइं एगावण्णं च एग[स]ट्ठि भाए जोअणस्स एग[स]ट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं च चुण्णिआभागं एगमेगे मंडले विक्खंभवुड्ढिं अभिवड्ढेमाणे २, दो दो तीसाइं जोअणसयाइं परिरयवुड्ढिं अभिवड्ढेमाणे २, सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ॥७५॥

"**अब्भंतरतच्चे ण**"मित्यादि, **अभ्यन्तरतृतीये** चन्द्रमण्डले **यावत्पदात्** "**चंदमण्डले केवइअं आयाम-विक्खम्भेणं केवइअं परिक्खेवेण**" [सू. ७।७३] मिति ग्राह्यम् । **उत्तरसूत्रे- गौतम ! नवनवतिं योजनसहस्राणि सप्त च पञ्चाशीत्य**धिकानि **योजनशतानि एकचत्वारिंशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य** एकं **च एकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा द्वौ च चूर्णिकाभागावायाम-विष्कम्भाभ्याम्** [९९,१८५ $\frac{४१}{६१}$ $\frac{२}{७}$] । अथ द्वितीयमण्डल-गतराशौ द्वासप्ततिं योजनान्येकपञ्चाशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकं च चूर्णिकाभागं [७२ $\frac{५१}{६१}$ $\frac{१}{७}$] प्रक्षिप्य यथोक्तं मानमानेतव्यम् । **त्रीणि योजनलक्षाणि पञ्चदश योजनसहस्राणि पञ्च चैकोनपञ्चाशद**धिकानि **योजनशतानि [३,१५,५४९] किञ्चि-द्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण**, इह पूर्वमण्डलपरिरयराशौ द्वे योजनशते त्रिंशदधिके [२३०] प्रक्षिप्योपपत्तिः कार्या । अथ चतुर्थादिमण्डलेष्वतिदेशमाह-"**एवं खलु**" इत्यादि, पूर्ववत् । **निष्क्रामंश्चन्द्रो यावत्पदात्** "तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मण्डल"मितिग्राह्यम्, **सङ्क्रामन् २ द्वासप्ततिं २ योजनानि** योजनसङ्ख्यापदगता वीप्सा भागसङ्ख्यापदेष्वपि ग्राह्या, तेनै**कपञ्चाशतम्** एकपञ्चाशतं **चैकषष्टिभागान् योजनस्य** एकं च **एकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा एकमेकं चूर्णिकाभागमेकैकस्मिन्** [७२ $\frac{५१}{६१}$ $\frac{१}{७}$] **मण्डले विष्कम्भवृद्धिमभिवर्द्धयन्** २, **द्वे द्वे त्रिंशद**धिके [२३०] **योजनशते परिरयवृद्धिम-भिवर्द्धयन् २, सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चर**तीति ॥७५॥

सम्प्रति पश्चानुपूर्व्या पृच्छति-

सव्वबाहिरए णं भंते ! चंदमंडले केवइअं आयाम-विक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?, गो० ! एगं जोयणसयसहस्सं छच्च सट्ठे

जोअणसए आयाम-विक्खम्भेणं, तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस सहस्साइं तिण्णि अ पण्णरसुत्तरे जोअणसए परिक्खेवेणं ॥ ७६ ॥

"**सव्वबाहिरए ण**"मित्यादि, **सर्वबाह्यं भदन्त ! चन्द्र-मण्डलं कियदायाम-विष्कम्भाभ्यां कियत् परिक्षेपेण प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! एकं योजनलक्षं षट् 'षष्ठानि'** षष्ट्यधिकानि **योजनशतान्यायाम-विष्कम्भाभ्याम्** [१,००, ६६०] । उपपत्तिस्तु जम्बूद्वीपो लक्षम्, [१,००,०००]उभयोः प्रत्येकं त्रीणि योजनशतानि त्रिंशदधिकानि, उभयमीलने योजनानां षट् शतानि षष्ट्यधिकानीति [६६०] । **त्रीणि च योजनलक्षाणि अष्टादश सहस्राणि त्रीणि च पञ्चदशोत्तराणि योजनशतानि** [३,१८,३१५] **परिक्षेपेण**, अत्रोपपत्तिः जम्बूद्वीपपरिधौ षष्ट्यधिकषट्शतपरिधौ प्रक्षिप्ते भवति यथोक्तं मानम् ॥७६॥

अथ द्वितीयम् -

बाहिराणंतरे णं पुच्छा । गो० ! एगं जोअणसयसहस्सं पञ्च सत्तासीए जोअणसए णव य एगट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता छ चुण्णिआभाए आयाम-विक्खंभेणं तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस सहस्साइं पंचासीइं च जोअणाइं परिक्खेवेणं ॥ ७७ ॥

"**बाहिराणन्तर**"मित्यादि, '**बाह्यानन्तरं**' द्वितीयं मण्डलमित्यर्थः, **पृच्छेति**[1] प्रश्नालापकस्तथैव । उत्तरसूत्रे- **गौतम ! एकं योजनलक्षं पञ्च सप्ताशीत्यधिकानि योजनशतानि नव चैकषष्टिभागान् योजनस्य** एकं च **एकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा षट् चूर्णिकाभागान्** [१,००,५८७ $\frac{९}{६१}$ $\frac{६}{७}$] **आयामविष्कम्भाभ्याम्** । अत्रोपपत्तिः- पूर्वराशेर्द्वासप्ततिं योजनान्येकपञ्चाशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य एकस्य च एकषष्टिभागस्य सप्तधा छिन्नस्य एकं भागमपनीय [७२ $\frac{५१}{६१}$ $\frac{१}{७}$] कर्त्तव्या । **त्रीणि योजनलक्षाणि अष्टादश सहस्राणि पञ्चाशीतिं योजनानि** [३,१८,०८५] **परिक्षेपेण**, सर्वबाह्यमण्डलपरिधेर्द्वे शते त्रिंशदधिके योजनानामपनयने यथोक्तमानम् ॥७७॥

अथ तृतीयम् -

बाहिरतच्चे णं भंते ! चंदमंडले० जाव[2] पं० ?, गो० ! एगं जोअणसयसहस्सं पंच य चउदसुत्तरे जोअणसए एगूणवीसं च एगसट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता पंच चुण्णिआभाए आयाम-

१. बावु पुके । पृच्छति-मु. ॥ २. द्र. ७।७३ ॥

विक्खंभेणं तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं सत्तरस सहस्साइं अट्ठ[1] य पणपण्णे जोअणसए परिक्खेवेणं । एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे चन्दे जाव संकममाणे २, बावत्तरिं २ जोअणाइं एगावण्णं च एग[स]ट्ठिभाए जोअणस्स एगट्ठिभागं च सत्तहा छेत्ता एगं चुण्णिआभागं एगमेगे मण्डले विक्खंभवुड्ढिं णिव्वुड्ढेमाणे २, दो दो तीसाइं जोअणसयाइं परिरयवुड्ढिं णिवुड्ढेमाणे २, सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ६ ॥ ७८ ॥

"**बाहिरतच्चे ण**"मित्यादि, **बाह्यतृतीयं भदन्त ! चन्द्रमण्डलं यावच्छब्दात्** सर्वं प्रश्नसूत्रं ज्ञेयम् । उत्तरसूत्रे-**गौतम ! एकं योजनलक्षं पञ्च चतुर्दशोत्तराणि योजनशतानि एकोनविंशतिं चैकषष्टिभागान् योजनस्य** एकं **चैकषष्टिभागं सप्तधा छित्त्वा पञ्च चूर्णिकाभागान्** [१,००,५१४ $\frac{१९}{६१}$ $\frac{५}{७}$] **आयाम-विष्कम्भाभ्याम्** । अत्र सङ्गतिस्तु द्वितीयमण्डलराशेः द्वासप्ततियोजनादिकं राशिमपनीय कार्या । **त्रीणि योजन-लक्षाणि सप्तदश सहस्राणि अष्ट च पञ्चपञ्चाशद**धिकानि [३,१७,८५५] **योजनशतानि परिक्षेपेण** । उपपत्तिस्तु पूर्वराशेर्द्वे शते त्रिंशदधिके [२३०] अपनीय कार्या । अथ चतुर्थादि-मण्डलेष्वतिदेशमाह-"**एवं खलु**" इत्यादि, पूर्ववत् । **प्रविशंश्चन्द्रो यावत्पदात्** "तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडल"मिति ग्राह्यम्, **सङ्क्रामन् २, द्वासप्ततिं २ योजनानि एकपञ्चाशतमेकपञ्चाशतं चैकषष्टिभागान् योजनस्य** एकं **एकषष्टिभागं च सप्तधा छित्त्वा एकमेकं चूर्णिकाभागमेकैकस्मिन्** [७२ $\frac{५१}{६१}$ $\frac{१}{७}$] **मण्डले विष्कम्भवृद्धिं 'निवर्द्धयन् २'** हापयन् २, इत्यर्थः, **द्वे द्वे त्रिंशदधिके योजनशते** [२३०] **परिरयवृद्धिं 'निवर्द्धयन् २'** हापयन् हापयन्नित्यर्थः, **सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति** ॥७८॥

अथ मुहूर्त्तगतिप्ररूपणा-

जया णं भंते ! चंदे सव्वब्भंतरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?, गोअमा ! पंच जोअण-सहस्साइं तेवत्तरिं च जोअणाइं सत्तत्तरिं च चोआले भागसए गच्छइ मंडलं तेरसहिं सहस्सेहिं सत्तहि अ पणवीसेहिं सएहिं छेत्ता । तया णं इहगयस्स मणूसस्स सीआलीसाए जोअणसहस्सेहिं दोहि अ तेवट्ठेहिं जोअणसएहिं एगवीसाए अ सट्ठिभाएहिं जोअणस्स चंदे चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ ॥ ७९ ॥

१. सत्त-अकखब J12 ॥ २. असीयाइं-अब J12 ॥

"**जया ण**"मित्यादि, पूर्ववत् । **भदन्त ! चन्द्रः सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा एकैकेन मुहूर्त्तेन कियत् क्षेत्रं गच्छति** ?। भगवानाह-**गौतम ! पञ्च योजनसहस्राणि त्रिसप्ततिं च योजनानि सप्तसप्ततिं च चतुश्चत्वारिंशदधिक**ानि **भागशतानि [५०७३ $\frac{७७४४}{१३७२५}$] गच्छति** । कस्य सत्का भागा ? [१३७२५] इत्याह- **'मण्डलं'** प्रक्रमात् सर्वाभ्यन्तरं **त्रयोदशभिः सहस्रैः सप्तभिश्च शतैः पञ्चविंशत्यधि-कैर्भागैः 'छित्वा'** विभज्यैतत् पञ्चसहस्रयोजनादिकं गतिपरिमाणमानेतव्यम् । तथाहि- प्रथमतः सर्वाभ्यन्तरमण्डलपरिधिः योजन ३१५०८९ रूपो द्वाभ्यामेकविंशत्यधिकाभ्यां शताभ्यां गुण्यते जातं ६९६३४६६९ । अस्य राशेः त्रयोदशभिः सहस्रैः सप्तभिः शतैः पञ्च-विंशत्यधिकैर्भागे [१३७२५] हृते लब्धानि पञ्च योजनसहस्राणि त्रिसप्तत्यधिकानि अंशाश्च सप्तसप्ततिशतानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि ५०७३-७७४४/१३७२५ ।

ननु यदि मण्डलपरिधिस्त्रयोदशसहस्रादिकेन भाजकेन राशिना भाज्यस्तर्हि किमित्येक-विंशत्यधिकाभ्यां द्वाभ्यां शताभ्यां मण्डलपरिधिर्गुण्यते ?, उच्यते, चन्द्रस्य मण्डलपूरणकालो द्वाषष्टिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य सत्कास्त्रयोविंशतिरेकविंशत्यधिकशतद्वयभागाः [६२ $\frac{२३}{२२१}$], अस्य च भावना चन्द्रस्य मुहूर्त्तभागगत्यवसरे विधास्यते । मुहूर्त्तानां सवर्णनार्थमेकविंशत्य-धिकशतद्वयेन २२१ गुणने त्रयोविंशत्यंशप्रक्षेपे च जातं १३७२५, अतः समभागानयनार्थं मण्डलस्याप्येकविंशत्यधिक-शतद्वयेन २२१ गुणनं सङ्गतमेवेति । अयं भावः-यथा सूर्यः षष्ट्या मुहूर्त्तैर्मण्डलं समापयति शीघ्रगतित्वात् लघुविमानगामित्वाच्च, तथा चन्द्रो द्वाषष्ट्या मुहूर्त्तैस्त्रयोविंशत्येक-विंशत्यधिकशतद्वयभागैर्मण्डलं [६२ $\frac{२३}{२२१}$] पूरयति मन्दगतित्वाद् गुरुविमानगामित्वाच्च, तेन मण्डलपूर्त्तिकालेन मण्डलपरिधिर्भक्तः सन् मुहूर्त्तगतिं प्रयच्छतीति सर्वसम्मतम् । आह-एकविंशत्यधिकशतद्वयभागकरणे किं बीजम् ? इति चेद्, उच्यते, मण्डलकालानयने अस्यैव छेदकराशेः समानयनात्, मण्डलकालनिरूपणार्थमिदं त्रैराशिकम्- यदि सप्तदशभिः शतैः अष्टषष्ट्यधिकैः [१७६८] सकलयुगवर्त्तिभिः अर्द्धमण्डलैरष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि [१८३०] रात्रिन्दिवानां लभ्यन्ते, ततो द्वाभ्यामर्द्धमण्डलाभ्यामेकेन मण्डलेनेति भावः, कति रात्रिन्दिवानि लभ्यन्ते ?, राशित्रयस्थापना-१७६८ ।१८३० ।२ । अत्रान्त्येन राशिना द्विकलक्षणेन मध्यस्य राशेः १८३० रूपस्य गुणने जातानि षट्त्रिंशच्छतानि षष्ट्यधिकानि ३६६०, तेषामाद्येन राशिना १७६८ रूपेण भागे हृते लब्धे द्वे रात्रिन्दिवे, शेषं तिष्ठति चतुर्विंशत्यधिकं शतं १२४, तत एकस्मिन् रात्रिन्दिवे त्रिंशन्मुहूर्त्ता ३० इति तस्य त्रिंशता गुणने जातानि सप्तत्रिंशच्छतानि विंशत्यधिकानि ३७२० । तेषां सप्तदशभिः शतैः

अष्टषष्ट्यधिकैर्भागे [१७६८] हृते लब्धौ द्वौ मुहूर्त्तौ, शेषाः १८४ । अथ छेद्य-च्छेदकराश्योरष्टकेनापवर्त्तने जातः छेद्यो राशिस्त्रयोविंशतिः [२३] छेदकराशिरेकविंशत्यधिकशतद्वयरूप [२२१] इति । अथास्य दृष्टिपथप्राप्ततामाह-"**तया णं इहगयस्स**" इत्यादि, **तदा इहगतानां मनुष्याणां सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैर्द्वाभ्यां च त्रिषष्ट्यधिकाभ्यां योजनशताभ्यामेकविंशत्या च षष्टिभागैर्योजनस्य [४७,२६३ $\frac{२१}{६०}$] चन्द्रः चक्षुःस्पर्शं शीघ्रमागच्छति** । अत्रोपपत्तिः सूर्याधिकारे दर्शिताऽपि किञ्चिद्विशेषाधानाय दर्श्यते- यथा सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डले जम्बूद्वीपचक्रवालपरिधेर्दशभागीकृतस्य दश त्रिभागान् [$\frac{३}{१०}$] यावत्तापक्षेत्रम् तथाऽस्यापि प्रकाशक्षेत्रं तावदेव पूर्वतोऽपरतश्च तस्यार्द्धे चक्षुःपथप्राप्ततापरिमाणमायाति । यत्तु षष्टिभागीकृतयोजनसत्कैकविंशतिभागाधिकत्वम् [$\frac{२१}{६०}$], तत्तु सम्प्रदायगम्यम्, अन्यथा चन्द्राधिकारे साधिकद्वाषष्टिमुहूर्त्तप्रमाणमण्डलपूर्त्तिकालस्य छेदराशित्वेन भणनात् सूर्याधिकारे वाच्यस्य षष्टिमुहूर्त्तप्रमाणमण्डलपूर्त्तिकालरूपस्य छेदराशेरनुपपद्यमानत्वात् ॥७९॥

अथ द्वितीयमण्डले मुहूर्त्तगतिमाह-

जया णं भन्ते ! चन्दे अब्भन्तराणन्तरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ जाव केवइअं खेत्तं गच्छइ ?, गो० ! पंच जोअणसहस्साइं सत्तत्तरिं च जोअणाइं छत्तीसं च चोअत्तरे भागसए गच्छइ, मण्डलं तेरसहिं सहस्सेहिं जाव छेत्ता ॥ ८० ॥

"**जया ण**"मित्यादि, **यदा भदन्त ! चन्द्रः 'अभ्यन्तरानन्तरं'** द्वितीयं **मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति यावत्पदात्** "तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेण"मिति गम्यते, **कियत् क्षेत्रं गच्छति ?, गौतम ! पञ्च योजनसहस्राणि सप्तसप्ततिं च योजनानि षट्त्रिंशतं च** चतुःसप्तत्यधिकानि **भागशतानि [५०७७ $\frac{३६७४}{१३७२५}$] गच्छति, मण्डलं त्रयोदशभिः सहस्रैः यावत्पदात्** "सत्तहि अ पणवीसेहिं सएहि"मिति ग्राह्यम्, **'छित्त्वा'** विभज्य, एतत् सूत्रं प्राग्भावितार्थमिति नेह पुनरुच्यते । अत्रोपपत्तिः-द्वितीयचन्द्र-मण्डले परिरयपरिमाणं ३१५३१९, एतत् द्वाभ्यामेकविंशत्यधिकाभ्यां शताभ्यां [२२१] गुण्यते, जातं ६९६८५४९९ । एषां त्रयोदशभिः सहस्रैः सप्तभिः शतैः पञ्चविंशत्यधिकैर्भागे [१३,७२५] लब्धानि पञ्च योजनसहस्राणि सप्तसप्तत्यधिकानि ५०७७, शेषं षट्त्रिंशच्छतानि चतुःसप्तत्यधिकानि [१]भागानां ३६७४/१३७२५ ॥८०॥

१. पुके । भागानां १३७२५ ३६७४/१३७२५-मु. ॥

अथ तृतीयम्

जया णं भंते ! चंदे अब्भंतरतच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?, गो० ! पंच जोअण-सहस्साइं असीइं च जोअणाइं तेरस य भागसहस्साइं तिण्णि अ एगूणतीसे भागसए गच्छइ मंडलं तेरसहिं जाव छेत्ता । एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे चंदे तयाणन्तराओ जाव संकममाणे २, तिण्णि २ जोअणाइं छण्णउइं च पंचावण्णे भागसए एगमेगे मंडले मुहुत्तगइं अभिवड्ढेमाणे २, सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ॥ ८१ ॥

''**जया ण**''मित्यादि, **यदा भदन्त ! चन्द्रः अभ्यन्तरतृतीयमण्डलमुप-सङ्क्रम्य चारं चरति तदा एकैकेन मुहूर्त्तेन कियत् क्षेत्रं गच्छति ?, गौतम ! पञ्च योजनसहस्राणि अशीतिं च योजनानि त्रयोदश च भागसहस्राणि त्रीणि च एकोनत्रिंशद**धिकानि **भागशतानि [५०८० $\frac{१३३२९}{१३७२५}$] गच्छति, मण्डलं त्रयोदशभिः सहस्रै**रित्यादि पूर्ववत् । अत्रोपपत्तिर्यथा-अत्र मण्डले परिरयः ३१५५४९, एतद् द्वाभ्यामेक-विंशत्यधिकाभ्यां शताभ्यां [२२१] गुण्यते, जातं ६९७३६३२९ । एषां त्रयोदशभिः सहस्रैः सप्तभिः शतैः पञ्चविंशत्यधिकैर्भागे [१३,७२५] हृते लब्धानि पञ्च सहस्राण्यशीत्यधिकानि ५०८०, शेषं त्रयोदश सहस्राणि त्रीणि शतान्येकोनत्रिंशदधिकानि भागानां १३३२९/१३७२५ । अथ चतुर्थादिमण्डलेष्वतिदेशमाह-''**एवं खलु एएण**''मित्यादि । पूर्ववत्, **निष्क्रामन् चन्द्रस्तदनन्तरात् यावच्छब्दात्** मण्डलात्तदनन्तरं मण्डलं सङ्क्रामन् २, **त्रीणि २ योजनानि षण्णवतिं च पञ्चपञ्चाशद**धिकानि **भागशतान्येकैकस्मिन् [३ $\frac{९६५५}{१३७२५}$] मण्डले मुहूर्त्तगतिमभिवर्द्धयन् २, सर्वबाह्यमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति** । कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, उच्यते, प्रतिचन्द्रमण्डलं परिरयवृद्धिर्द्वे शते त्रिंशदधिके २३०, अस्य च त्रयोदश-सहस्रादिकेन राशिना भागे हृते लब्धानि त्रीणि योजनानि, शेषं षण्णवतिः पञ्चपञ्चाशदधिकानि भागशतानि ३-९६५५/१३७२५ ॥८१॥

अथ पश्चानुपूर्व्या पृच्छति-

जया णं भंते ! चंदे सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?, गो० ! पंच जोअणसहस्साइं

एगं च पणवीसं जोअणसयं अउणत्तरिं च णउए भागसए गच्छइ मंडलं तेरसहिं भागसहस्सेहिं सत्तहि अ जाव छेत्ता ॥८२-A॥

"**जया ण**"मित्यादि, **यदा भदन्त ! चन्द्रः सर्वबाह्यमण्डल-मुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा एकैकेन मुहूर्त्तेन कियत् क्षेत्रं गच्छति ?, गौतम ! पञ्च योजनसहस्राणि एकं च पञ्चविंशत्यधिकं योजनशतमेकोनसप्ततिं च नवत्यधिकानि भागशतानि** [५,१२५ $\frac{६९९०}{१३७२५}$] **गच्छति, मण्डलं त्रयोदशभिर्भागसहस्त्रैः सप्तभिश्च यावच्छब्दात्** पञ्चविंशत्यधिकैः शतैर्विभज्य । अत्रोपपत्तिः-अत्र मण्डले परिरयपरिमाणं ३१८३१५, एतद् द्वाभ्यामेकविंशत्यधिकाभ्यां शताभ्यां [२२१] गुण्यते, जातं ७०३४७६१५ । एषां त्रयोदशभिः सहस्त्रैः सप्तभिः शतैः पञ्चविंशत्यधिकैर्भागे हृते लब्धानि ५१२५, शेषं भागा ६९९०/१३७२५ ॥८२-A॥

अथात्र मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततामाह-

तया णं इहगयस्स मणूसस्स एक्कतीसाए जोअणसहस्सेहिं अट्ठहि अ एगत्तीसेहिं जोअणसएहिं चन्दे चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ ॥८२-B॥

"**तया ण**"मिति, '**तदा**' सर्वबाह्यमण्डलचरणकाले **इहगतानां मनुष्याणामेकत्रिंशता योजनसहस्त्रैः अष्टभिश्चैकत्रिंशदधिकैः** [३१,८३१] **योजनशतैश्चन्द्रश्चक्षुःस्पर्शं शीघ्रमा-गच्छति**, अत्र सूर्याधिकारोक्तं 'तीसाए सट्ठिभाए' इत्यधिकं मन्तव्यम्, उपपत्तिस्तु प्राग्वत् ॥८२-B॥

अथ द्वितीयं मण्डलम्-

जया णं भन्ते ! बाहिराणन्तरं पुच्छा । गोअमा ! पंच जोअणसहस्साइं एक्कं च एक्कवीसुत्तरं जोअणसयं एक्कारस य सट्ठे भागसहस्से गच्छइ मण्डलं तेरसहिं जाव छेत्ता ॥ ८३ ॥

"**जया ण**"मित्यादि, **यदा भदन्त ! 'सर्वबाह्यानन्तरं'** द्वितीय-मित्यादि **प्रश्नः** प्राग्वत् । **गौतम ! पञ्च योजनसहस्त्राणि एकं चैकविंशत्यधिकं योजनशतम् एकादश च षष्ट्यधिकानि भागसहस्राणि** [**५,१२१** $\frac{११०६०}{१३७२५}$] **गच्छति, मण्डलं त्रयो-दशभिर्यावत्पदात्** 'सहस्त्रैः सप्तभिः शतैः पञ्चविंशत्यधिकैः' **छित्त्वा** । अत्रोपपत्तिः-अत्र मण्डले परिरयः ३१८०८५, एतद् द्वाभ्यामेकविंशत्यधिकाभ्यां शताभ्यां [२२१] गुण्यते, जातं ७०२९६७८५ । एषां १३७२५ एभिर्भागे हृते लब्धं ५१२१ शेषं ११०६०/१३७२५ ॥८३॥

अथ तृतीयम्-

जया णं भंते ! बाहिरतच्चं पुच्छा । गोअमा ! पंच जोअणसहस्साइं एगं च अट्ठारसुत्तरं जोअणसयं चोद्दस य पंचुत्तरे भागसए गच्छइ मंडलं तेरसहिं सहस्सेहिं सत्तहिं पणवीसेहिं सएहिं छेत्ता । एवं खलु एएणं उवाएणं जाव संकममाणे २, तिण्णि २ जोअणाइं छण्णउतिं च पंचावण्णे भागसए एगमेगे मंडले मुहुत्तगइं णिवड्ढेमाणे २, सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ॥ ८४ ॥

"**जया ण**"मित्यादि, प्रश्नः प्राग्वत् । **गौतम ! पञ्च योजनसहस्राण्येकं चाष्टादशाधिकं योजनशतं चतुर्दश च पञ्चाधिकानि भागशतानि** [५,११८ $\frac{१४०५}{१३७२५}$] **गच्छति, मण्डलं त्रयोदशभिः सहस्रैः सप्तभिः शतैः पञ्चविंशत्यधिकैः** छित्वा । अत्रोपपत्तिः-अत्र मण्डले परिरयप्रमाणं ३१७८५५, एतद् द्वाभ्यामेकविंशत्यधिकाभ्यां शताभ्यां [२२१] गुण्यते, जातं ७०२४५९५५ । एषां १३७२५ एभिर्भागे हृते लब्धं ५११८ शेषं भागा १४०५/१३७२५ । अथ चतुर्थादिमण्डलेष्वतिदेशमाह-"**एवं खलु**" इत्यादि, **एतेनोपायेन यावच्छब्दात्** "पविसमाणे चंदे तयाणंतराओ मंडलाओ तयणंतरं मंडल"मिति ग्राह्यम्, **सङ्क्रामन् २, त्रीणि योजनानि षण्णवतिं च पञ्चपञ्चाशद**धिकानि **भागशतानि एकैकस्मिन् मण्डले मुहूर्त्तगतिं निवर्द्धयन् २, सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति**, उपपत्तिः पूर्ववत् । अत्र सर्वाभ्यन्तर-सर्वबाह्यचन्द्रमण्डलयोर्दृष्टिपथप्राप्तता दर्शिता, शेषमण्डलेषु तु सा **अंग्रग्रन्थे चन्द्रप्रज्ञप्ति-बृहत्क्षेत्रसमासवृत्त्यादिषु** च पूर्वैः क्वापि न दर्शिता, तेनात्र न दर्श्यत इति ॥८४॥

अथ नक्षत्राधिकारः, तत्राष्टौ द्वाराणि यथा-मण्डलसङ्ख्याप्ररूपणा १, मण्डलचारक्षेत्रप्ररूपणा २, अभ्यन्तरादिमण्डलास्थायिनामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां परस्परमन्तरनिरूपणा ३, नक्षत्रविमानानामायामादिनिरूपणं ४, नक्षत्रमण्डलानां मेरुतोऽबाधानिरूपणं ५, तेषामेवायामादिनिरूपणं ६, मुहूर्त्तगतिप्रमाणनिरूपणं ७, नक्षत्रमण्डलानां चन्द्रमण्डलैः समवतारनिरूपणं ८ तत्रादौ मण्डलसङ्ख्याप्ररूपणाप्रश्नमाह-

कइ णं भंते ! णक्खत्तमंडला पं० ?, गोअमा ! अट्ठ णक्खत्तमंडला पण्णत्ता १ ॥ ८५ ॥

---

१. बाबु पुके । अत्र-मु. ॥

"**कइ णं भंते !**" इत्यादि, **कति भदन्त ! नक्षत्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम ! अष्ट नक्षत्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि,** अष्टाविंशतेरपि नक्षत्राणां प्रतिनियतस्वस्वमण्डलेष्वेतावत्स्वेव सञ्चरणात्, यथा चैतेषु सञ्चरणं तथा निरूपयिष्यति ॥८५॥

जंबुद्दीवे दीवे केवइअं ओगाहित्ता केवइआ णक्खत्तमंडला पण्णत्ता ?, गोअमा ! जंबुद्दीवे दीवे असीअं जोअणसयं ओगाहेत्ता एत्थ णं दो णक्खत्तमंडला पण्णत्ता ॥ ८६ ॥

"**जम्बूद्वीपे**" इत्यादि, एतदेव क्षेत्रविभागेन प्रश्नयति-**जम्बूद्वीपे द्वीपे कियत्क्षेत्रमवगाह्य कियन्ति नक्षत्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम ! जम्बूद्वीपे द्वीपे 'अशीतम्'** अशीत्यधिकं **योजनशतमवगाह्यात्रान्तरे द्वे नक्षत्रमण्डले प्रज्ञप्ते** ॥८६॥

लवणे णं समुद्दे केवइअं ओगाहेत्ता केवइआ णक्खत्तमंडला पण्णत्ता ?, गो० ! लवणे णं समुद्दे तिण्णि तीसे जोअणसए ओगाहित्ता एत्थ णं छ णक्खत्तमंडला पण्णत्ता । एवामेव सपुव्वा-ऽवरेणं जम्बुद्दीवे दीवे लवणसमुद्दे अट्ठ णक्खत्तमंडला भवंतीतिमक्खायं २ ॥ ८७ ॥

लवणसमुद्रे कियदवगाह्य कियन्ति नक्षत्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम ! लवणसमुद्रे त्रीणि त्रिंशदधिकानि योजनशतान्यवगाह्यात्रान्तरे षट् नक्षत्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि । अत्रोपसंहारवाक्येनोक्तसङ्ख्यां मीलयति-**एवमेव सपूर्वापरेण जम्बूद्वीपे द्वीपे लवणसमुद्रे चाष्टौ नक्षत्रमण्डलानि भवन्ति इत्याख्यातम्,** मकारोऽत्रागमिकः ॥८७॥

अथ मण्डलचारक्षेत्रप्ररूपणा-

सव्वब्भंतराओ णं भंते ! णक्खत्तमंडलाओ केवइयं अबाहाए सव्वबाहिरए णक्खत्तमंडले पण्णत्ते ?, गोअमा ! पंचदसुत्तरे जोअणसए अबाहाए सव्वबाहिरए णक्खत्तमंडले पण्णत्ते ॥ ८८ ॥

"**सव्वब्भंतरा**" इत्यादि, **सर्वाभ्यन्तराद् भदन्त ! नक्षत्र-मण्डलात् कियत्या अबाधया सर्वबाह्यं नक्षत्रमण्डलं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! पञ्चदशोत्तराणि योजनशतान्यबाधया ५१० सर्वबाह्यं नक्षत्रमण्डलं प्रज्ञप्तम्,** इदं च सूत्रं नक्षत्रजात्यपेक्षया बोद्धव्यम्, अन्यथा सर्वाभ्यन्तरमण्डलस्थायिनामभिजिदादिद्वादशनक्षत्राणाम-

वस्थितमण्डलकत्वेन सर्वबाह्यमण्डलस्यैवाभावात् । तेनायमर्थः सम्पन्नः-सर्वाभ्यन्तरनक्षत्रमण्डलजातीयात् सर्वबाह्यं नक्षत्रमण्डलजातीयम् इयत्या अबाधया प्रज्ञप्तमिति बोध्यम् ॥८८॥

अथाभ्यन्तरादिमण्डलस्थायिनामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां परस्परमन्तरनिरूपणा-

णक्खत्तमंडलस्स णं भन्ते ! णक्खत्तमंडलस्स य एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?, गोअमा ! दो जोअणाइं णक्खत्तमंडलस्स य णक्खत्तमंडलस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ३ ॥ ८९ ॥

"**णक्खत्त**" इत्यादि, '**नक्षत्रमण्डलस्य**' नक्षत्रविमानस्य **नक्षत्रविमानस्य च भदन्त ! कियत्या अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! द्वे योजने नक्षत्रविमानस्य[च] नक्षत्रविमानस्य चाबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम्** । अयमर्थः-अष्टास्वपि मण्डलेषु यत्र २ मण्डले यावन्ति नक्षत्राणां विमानानि तेषामन्तरबोधकमिदं सूत्रम्, यथा अभिजिन्नक्षत्रविमानस्य श्रवणनक्षत्रविमानस्य च परस्परमन्तरं द्वे योजने, न तु नक्षत्रसत्कसर्वाभ्यन्तरादिमण्डलानामन्तरसूचकम्, अन्यथा नक्षत्रमण्डलानां वक्ष्यमाणचन्द्रमण्डलसमवतारसूत्रेण सह विरोधात् ॥८९॥

अथ नक्षत्रविमानानामायामादिप्ररूपणा-

णक्खत्तमंडले णं भंते ! केवइअं आयाम-विक्खंभेणं, केवइअं परिक्खेवेणं, केवइअं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?, गो० ! गाउअं आयाम-विक्खम्भेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं, अद्धगाउअं बाहल्लेणं पण्णत्ते ४ ॥ ९० ॥

"**णक्खत्त**" इत्यादि, **नक्षत्रमण्डलं भदन्त ! कियदायाम-विष्कम्भाभ्यां कियत् परिक्षेपेण कियद्** '**बाहल्येन**' उच्चैस्त्वेन **प्रज्ञप्तम्** ?, **गौतम ! गव्यूतमायाम-विष्कम्भाभ्यां तत्त्रिगुणं सविशेषं परिक्षेपेण अर्द्धक्रोशं बाहल्येन प्रज्ञप्तमिति** ॥९०॥

सम्प्रत्येषामेव मेरुमधिकृत्याबाधाप्ररूपणा-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयं अबाहाए सव्वब्भंतरे णक्खत्तमंडले पण्णत्ते ?, गोअमा ! चोयालीसं जोअणसहस्साइं अट्ठ य वीसे जोअणसए अबाहाए सव्वब्भंतरे णक्खत्तमंडले पण्णत्ते ॥ सू० ९१ ॥

"**जंबुद्दीवे**"त्ति, **जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य कियत्या अबाधया सर्वाभ्यन्तरं नक्षत्रमण्डलं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! चतुश्चत्वारिंशद्योजनसहस्राणि अष्ट च विंशत्यधिकानि** योजनशतान्यबाधया [४४, ८२०] **सर्वाभ्यन्तरं नक्षत्रमण्डलं प्रज्ञप्तम्**, उपपत्तिस्तु सूर्याधिकारे निरूपिता ॥९१॥

अथ बाह्यमण्डलाबाधां पृच्छति-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स केवइयं अबाहाए सव्वबाहिरए णक्खत्तमंडले पण्णत्ते ?, गोअमा ! पणयालीसं जोअणसहस्साइं तिण्णि अ तीसे जोअणसए अबाहाए सव्वबाहिरए णक्खत्तमंडले पण्णत्ते ५ ॥ ९२ ॥

"**जंबुद्दीवे**"त्ति, जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य कियत्या अबाधया सर्वबाह्यं नक्षत्रमण्डलं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि त्रीणि च त्रिंशदधिकानि योजनशतान्यबाधया [४५,३३०] सर्वबाह्यं नक्षत्रमण्डलं प्रज्ञप्तम्, उपपत्तिस्तु प्राग्वत् ॥९२॥

अथ एतेषामेवायामादिनिरूपणम्-

सव्वब्भंतरे णक्खत्तमंडले केवइअं आयाम-विक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पं० ?, गो० ! णवणउतिं जोअणसहस्साइं छच्च चत्ताले जोअणसए आयाम-विक्खंभेणं तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं पण्णरस सहस्साइं एगूणणवतिं च जोअणाइं किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते ॥ सू० ९३ ॥

सव्वबाहिरए णं भंते ! णक्खत्तमंडले केवइअं आयाम-विक्खंभेणं केवइअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ?, गोअमा ! एगं जोअणसयसहस्सं छच्च सट्ठे जोअणसए आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि अ जोअणसयसहस्साइं अट्ठारस य सहस्साइं तिण्णि अ पण्णरसुत्तरे जोअणसए परिक्खेवेणं ॥ सू० ९४ ॥

"**सव्वब्भंतरे ण**"मित्यादि, प्राग्वत् । अथ सर्वबाह्य-मण्डलं पृच्छति-"**सव्वबाहिरए**" इत्यादि, प्राग्वत् । मध्यमेषु षट्सु मण्डलेषु तु चन्द्र-मण्डलानुसारेणायाम-विष्कम्भ-परिक्षेपाः परिभाव्याः, अष्टावपि नक्षत्रमण्डलानि चन्द्रमण्डले समवतरन्तीति भणिष्यमाणत्वात् ॥९३-९४॥

अथ मुहूर्त्तगतिद्वारम्-

जया णं भंते ! णक्खत्ते सव्वब्भंतरमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?, गोअमा ! पंच जोअणसहस्साइं दोण्णि य पण्णट्ठे जोअणसए अट्ठारस य भागसहस्से दोण्णि अ तेवट्ठे भागसए गच्छइ मंडलं एक्कवीसाए भागसहस्सेहिं णवहि अ सट्ठेहिं सएहिं छेत्ता ॥ ९५ ॥

"**जया ण**"मित्यादि, **यदा भदन्त ! नक्षत्रं सर्वाभ्यन्तरमण्डल-मुपसङ्क्रम्य चारं चरति तदैकैकेन मुहूर्त्तेन कियत्क्षेत्रं गच्छति ?**, नक्षत्रमित्यत्र जात्यपेक्षयैकवचनम्, अन्यथाऽभ्यन्तरण्डलगतिचिन्तायां द्वादशानामपि नक्षत्राणां सङ्ग्रहाय बहुवचनस्यौचित्यात् । **गौतम ! पञ्च योजनसहस्राणि द्वे च पञ्चषष्ट्यधिके योजनशते अष्टादश च भागसहस्राणि द्वे च त्रिषष्ट्यधिकभागशते [५,२६५ $\frac{१८२६३}{२१९६०}$] गच्छति, मण्डलमेकविंशत्या भागसहस्रैर्नवभिश्च षष्ट्यधिकैः शतैः [२१,९६०] छित्त्वा** इति । अत्रोपपत्तिः-इह नक्षत्रमण्डलकाल एकोनषष्टिर्मुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तषष्ट्यधिकत्रिशतभागानां त्रीणि शतानि सप्तोत्तराणीति ५९-३०७/३६७, अयं च नक्षत्राणां मुहूर्त्तभागो गत्यवसरे भावयिष्यते । इदानीमेतदनुसारेण मुहूर्त्तगतिश्चिन्त्यते-तत्र रात्रिन्दिवे त्रिंशन्मुहूर्त्ताः३०, तेषु उपरितना एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ताः [२९] प्रक्षिप्यन्ते, जाता एकोनषष्टिर्मुहूर्त्तानाम् ५९ ततः सवर्णनार्थं त्रिभिः शतैः सप्तषष्ट्याऽधिकैः [३६७] गुणयित्वा उपरितनानि त्रीणि शतानि सप्तोत्तराणि [३०७] प्रक्षिप्यन्ते, जातान्येकविंशतिसहस्राणि नव शतानि षष्ट्यधिकानि २१९६० । अयं च प्रतिमण्डलं परिधेः छेदकराशिः, तत्र सर्वाभ्यन्तरमण्डलपरिधिः ३१५०८९, अयं च योजनात्मको राशिर्भागात्मकेन राशिना भजनार्थं त्रिभिः सप्तषष्ट्यधिकैः शतैः ३६७ गुण्यते, जातं ११५६३७६६३, अस्य राशेरेकविंशत्या सहस्रैः नवभिः शतैः षष्ट्यधिकैर्भागे [२१,९६०] हृते लब्धानि ५२६५ शेषं १८२६३/२१९६० भागाः, एतावती सर्वाभ्यन्तर-मण्डलेऽभिजिदादीनां द्वादशनक्षत्राणां मुहूर्त्तगतिः ॥९५॥

अथ बाह्ये नक्षत्रमण्डले मुहूर्त्तगतिं पृच्छति-

जया णं भंते ! णक्खत्ते सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं[१] केवइअं खेत्तं गच्छइ ?, गोयमा ! पंच जोअणसहस्साइं तिण्णि अ एगूणवीसे जोअणसए सोलस य भागसहस्सेहिं तिण्णि अ पण्णट्ठे भागसए गच्छइ, मंडलं एगवीसाए भागसहस्सेहिं णवहि अ सट्ठेहिं सएहिं छेत्ता ॥ ९६ ॥

"**जया ण**"मित्यादि, **यदा भदन्त ! नक्षत्रं सर्वबाह्यं मण्डलं उपसङ्क्रम्य चारं चरति तदा एकैकेन मुहूर्तेन कियत् क्षेत्रं गच्छति ?**, अत्राप्येकवचनं प्राग्वत् । **गौतम ! पञ्च योजनसहस्राणि त्रीणि चैकोनविंशत्यधिकानि योजनशतानि षोडश च**

१. अउणापण्णे-अकखत्रिब J12 ॥

भागसहस्राणि त्रीणि च पञ्चषष्ट्यधिकानि **भागशतानि** [५,३१९ $\frac{१६३६३}{२१९६०}$] **गच्छति, मण्डलमेकविंशत्या भागसहस्रैर्नवभिश्च षष्ट्य**धिकैः **शतैः २१९६० छित्त्वा** इति । अत्रोपपत्तिः-अत्र मण्डले परिधिः ३१८३१५, अयं त्रिभिः सप्त-षष्ट्यधिकैः शतैः ३६७ गुण्यते, जातं ११६८२१६०५, अस्य राशेरेकविंशत्या सहस्रैर्नवभिः शतैः षष्ट्यधिकैः [२१९६०] भागे लब्धानि ५३१९ योजनानि शेषं १६३६५/२१९६० भागाः, एतावती सर्वबाह्ये नक्षत्रमण्डले मृगशीर्षप्रभृतीनामष्टानां नक्षत्राणां मुहूर्त्तगतिः ॥९६॥

उक्ता तावत् सर्वाभ्यन्तर-सर्वबाह्यमण्डलवर्त्तिनां नक्षत्राणां मुहूर्त्तगतिः, अथ नक्षत्र-तारकाणामवस्थितमण्डलकत्वेन प्रतिनियतगतिकत्वेन चावशिष्टेषु षट्सु मण्डलेषु मुहूर्त्तगति-परिज्ञानं दुष्करमिति तत्कारणभूतं मण्डलपरिज्ञानं कर्त्तुं नक्षत्रमण्डलानां चन्द्रमण्डलेषु समवतारप्रश्नमाह-

एते णं भंते ! अट्ठ णक्खत्तमंडला कतिहिं चंदमंडलेहिं समोअरंति ?, गोअमा ! अट्ठहिं चंदमंडलेहिं समोअरंति, तंजहा-पढमे चंदमंडले ततिए छट्ठे सत्तमे अट्ठमे दसमे इक्कारसमे पण्णरसमे चंदमंडले ॥ ९७ ॥

"**एते ण**"मित्यादि, **एतानि भदन्त ! अष्टौ नक्षत्रमण्डलानि कतिषु चन्द्रमण्डलेषु 'समवतरन्ति'** अन्तर्भवन्ति, चन्द्र-नक्षत्राणां साधारणमण्डलानि कानीत्यर्थः । भगवानाह-**गौतमाष्टासु चन्द्रमण्डलेषु समवतरन्ति, तद्यथा-प्रथमे चन्द्रमण्डले** प्रथमं नक्षत्रमण्डलम्, चारक्षेत्रसञ्चारिणामनवस्थितचारिणां च सर्वेषां ज्योतिष्काणां जम्बूद्वीपे-ऽशीत्यधिकयोजनशतमव-गाह्यैव मण्डलप्रवर्त्तनात् । **तृतीये** चन्द्रमण्डले द्वितीयम्, एते च द्वे जम्बूद्वीपे । **षष्ठे** लवणे भाविनि चन्द्रमण्डले तृतीयम्, तत्रैव भाविनि **सप्तमे** चतुर्थम्, **अष्टमे** पञ्चमम्, **दशमे** षष्ठम्, **एकादशे** सप्तमम्, पञ्चदशेऽष्टमम्, शेषाणि तु द्वितीयादीनि सप्त चन्द्रमण्डलानि नक्षत्रैर्विर-हितानि । तत्र प्रथमे चन्द्र-(नक्षत्र)मण्डले द्वादश नक्षत्राणि, तद्यथा- १-२ अभिजिच्छ्रवणो ३ धनिष्ठा ४ शतभिषक् ५ पूर्वभाद्रपदा ६ उत्तरभाद्रपदा ७ रेवती ८ अश्विनी ९ भरणी १० पूर्वाफाल्गुनी ११ उत्तराफाल्गुनी १२ स्वातिश्च, द्वितीये १ पुनर्वसु २ मघा च, तृतीये १ कृत्तिका, चतुर्थे १ रोहिणी २ चित्रा च, पञ्चमे १ विशाखा, षष्ठे १ अनुराधा, सप्तमे १ ज्येष्ठा, अष्टमे १ मृगशिरः २ आर्द्रा ३ पुष्यः ४ अश्लेषा ५ मूलो ६ हस्तश्च, ७ पूर्वाषाढोत्तराषाढयोर्द्वे द्वे तारे अभ्यन्तरतो द्वे द्वे बाह्यत इति । एवं स्वस्वमण्डलावतार-सत्कचन्द्रमण्डलपरिध्यनुसारेण प्रागुक्तरीत्या द्वितीयादीनामपि नक्षत्रमण्डलानां मुहूर्त्तगतिः परिभावनीया ॥९७॥

उक्ता प्रतिमण्डलं चन्द्रादीनां योजनात्मिका मुहूर्त्तगतिः, अथ तेषामेव प्रतिमण्डलं भागात्मिकां मुहूर्त्तगतिं प्रश्नयति-

एगमेगेणं भंते ! मुहुत्तेणं चंदे केवइआइं भागसयाइं गच्छइ ?, गो० ! जं जं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तस्स २ मंडलपरिक्खेवस्स सत्तरस[1] अट्ठे भागसए गच्छइ, मंडलं सयसहस्सेणं अट्ठाणउइए अ सएहिं छेत्ता ॥ ९८ ॥

"एगमेगे ण"मित्यादि, **एकैकेन भगवन् ! मुहूर्त्तेन चन्द्रः कियन्ति भागशतानि गच्छति ?, गौतम ! यद्यन्मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, तस्य तस्य मण्डलस्य** सम्बन्धिनः **परिक्षेपस्य सप्तदश शतान्यष्टषष्टिभागै**रधिकानि [१७६८] **गच्छति**, **'मण्डलं'**[2] मण्डलपरिक्षेप**मेकेन लक्षेणाष्टनवत्या च शतैः 'छित्त्वा'** विभज्य । इयमत्र भावना-इह प्रथमतश्चन्द्रस्य मण्डलकालो निरूपणीयः, तदनन्तरं तदनुसारेण मुहूर्त्तगतिपरिमाणं भावनीयम् । तत्र मण्डलकालनिरूपणार्थमिदं त्रैराशिकम्-यदि सप्तदशभिः शतैरष्टषष्ट्यधिकैः [१७६८] सकलयुगवर्त्तिभिरर्द्धमण्डलैश्चन्द्रद्वयापेक्षया तु पूर्णमण्डलैरष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि रात्रिन्दिवानां लभ्यन्ते, ततो द्वाभ्यामर्द्धमण्डलाभ्यामेकेन मण्डलेनेति भावः, कति रात्रिन्दिवानि लभ्यन्ते ?, राशित्रयस्थापना-१७६८ । १८३० । २ । अत्रान्त्येन राशिना द्विकलक्षणेन [२] मध्यराशेर्गुणनं जातानि षट्त्रिंशच्छतानि षष्ट्यधिकानि ३६६०, तेषामादिराशिना भागहरणं लब्धे द्वे [२] रात्रिन्दिवे, शेषं तिष्ठति चतुर्विंशत्यधिकं शतं १२४ । तत्रैकस्मिन् रात्रिन्दिवे त्रिंशन्मुहूर्त्ता [३०] इति तस्य त्रिंशता गुणने जातानि सप्तत्रिंशच्छतानि विंशत्यधिकानि ३७२० । तेषां सप्तदशभिः शतैः अष्टषष्ट्यधिकैर्भागे [१७६८] हृते लब्धौ द्वौ मुहूर्त्तौ, ततः छेद्य-च्छेदकराश्योरष्टकेनापवर्त्तना, जातः छेद्यो राशिस्त्रयोविंशतिः [२३] छेदकराशिर्द्वे शते एकविंशत्यधिके २२१, आगतं मुहूर्त्तस्यैकविंशत्यधिकशतद्वयभागास्त्रयोविंशतिः २-२३/२२१, एतावता कालेन द्वे अर्द्धे मण्डले परिपूर्णे चरति । किमुक्तं भवति ? एतावता कालेन परिपूर्णमेकं मण्डलं चन्द्रश्चरति ।

तदेवं चन्द्रमण्डलकालप्ररूपणा, अथैतदनुसारेण मुहूर्त्तगतिः । तत्र ये द्वे रात्रिन्दिवे ते मुहूर्त्तकरणार्थं त्रिंशता गुण्येते, जाताः षष्टिर्मुहूर्त्ताः ६०, उपरितनयोर्द्वयोः क्षेपे जाता द्वाषष्टिः, एषां सवर्णनार्थं द्वाभ्यां शताभ्यामेकविंशत्यधिकाभ्यां [२२१] गुण्यते, गुणयित्वा चोपरितनांशत्रयोविंशतिः प्रक्षिप्यते, जातानि त्रयोदश सहस्राणि सप्त शतानि पञ्चविंशत्यधिकानीति [१३,७२५] । एतदेकमण्डलकालगतमुहूर्त्तसत्कैकविंशत्यधिकशतद्वयभागानां परिमाणम्, तत-

१. मु. V । सत्तरसट्ठे-अब । सत्तरट्ठसट्ठे-स ॥ १. पु । मण्डलं-मु. नास्ति ॥

स्त्रैराशिककरणम्, यदि त्रयोदशभिः सहस्रैः सप्तभिः शतैः पञ्चविंशत्यधिकैरेकविंशत्यधिकशतद्वयभागानां [२२१] मण्डलभागा एकं शतसहस्रमष्टानवतिशतानि [१,०९,८००] लभ्यन्ते तत एकेन मुहूर्त्तेन किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना-१३७२५ । १०९८०० ।१ । इहाद्यो राशिर्मुहूर्त्तगतैकविंशत्यधिकशतद्वयभागस्वरूपः, ततः सवर्णनार्थमन्त्यो राशिरेकलक्षणो [१] द्वाभ्यां शताभ्यामेकविंशत्यधिकाभ्यां, गुण्यते, जात द्वे शते एकविंशत्यधिके २२१ । ताभ्यां मध्यो राशिर्गुण्यते, जाते द्वे कोट्यौ द्विचत्वारिंशल्लक्षाः पञ्चषष्टिः सहस्राण्यष्टौ शतानि २,४२,६५, ८०० । तेषां त्रयोदशभिः सहस्रैः सप्तभिः शतैः पञ्चविंशत्यधिकैर्भागो [१३,७२५] ह्रियते, लब्धानि सप्तदश शतान्यष्टषष्ट्यधिकानि १७६८, एतावतो भागान् यत्र तत्र वा मण्डले चन्द्रो मुहूर्त्तेन गच्छति ।

अयमर्थः-इहाष्टाविंशत्या नक्षत्रैः स्वगत्या स्वस्वकालपरिमाणेन क्रमशो यावत् क्षेत्रं बुद्ध्या व्याप्यमानं सम्भाव्यते तावदेकमर्द्धमण्डलमुपकल्प्यते, एतावत्प्रमाणमेव द्वितीयमर्द्धमण्डलं द्वितीयाष्टाविंशतिनक्षत्रसत्कतत्तद्भागजनितमित्येवम्प्र[१]माणबुद्धिपरिकल्पितमेकमण्डलश्छेदो ज्ञातव्यः एकं लक्षं परिपूर्णानि चाष्टानवतिशतानि । कथमेतस्योत्पत्तिः ? इति चेत्, उच्यते, इह त्रिविधानि नक्षत्राणि, तद्यथा-समक्षेत्राण्यर्द्धक्षेत्राणि द्व्यर्धक्षेत्राणि च । इह यावत्प्रमाणं क्षेत्रमहोरात्रेण गम्यते सूर्येण, तावत्प्रमाणं चन्द्रेण सह योगं यानि नक्षत्राणि गच्छन्ति तानि समक्षेत्राणि, समम्-अहोरात्रप्रमितं क्षेत्रं येषां तानि समक्षेत्राणीति व्युत्पत्तेः । तानि च पञ्चदश, तद्यथा-श्रवणं धनिष्ठा पूर्वभाद्रपदा रेवती अश्विनी कृत्तिका मृगशिरः पुष्यो मघा पूर्वाफाल्गुनी हस्तः चित्रा अनुराधा मूलः पूर्वाषाढा इति । तथा यानि अर्द्धमहोरात्रप्रमितस्य क्षेत्रस्य चन्द्रेण सह योगमश्नुवते तान्यर्द्धक्षेत्राणि, अर्धम्-अर्द्धप्रमाणं क्षेत्रं येषां तान्यर्द्धक्षेत्राणीति व्युत्पत्तिभावात् । तानि च षट्, तद्यथा-शतभिषक् भरणी आर्द्रा अश्लेषा स्वातिर्ज्येष्ठेति । तथा द्वितीयमर्द्धं यस्य तद् द्व्यर्द्धं सार्द्धमित्यर्थः, द्व्यर्द्धम्-अर्द्धेनाधिकं क्षेत्रमहोरात्रप्रमितं चन्द्रयोग्यं येषां तानि द्व्यर्द्धक्षेत्राणि । तान्यपि षट्, तद्यथा-उत्तरभाद्रपदोत्तरफल्गुनी उत्तराषाढा रोहिणी पुनर्वसु विशाखा चेति । तत्रेह सीमापरिमाणचिन्तायामहोरात्रः सप्तषष्टिभागीकृतः परिकल्प्यते इति समक्षेत्राणां प्रत्येकं सप्तषष्टिभागाः [६७] परिकल्प्यन्ते, अर्द्धक्षेत्राणां त्रयस्त्रिंशदर्द्धं [३३ $\frac{१}{२}$] च, द्व्यर्द्धक्षेत्राणां शतमेकमर्द्धं [१०० $\frac{१}{२}$] च, अभिजिन्नक्षत्रस्यैकविंशतिः सप्तषष्टिभागाः $\frac{२१}{६७}$ । समक्षेत्राणि नक्षत्राणि पञ्चदशेति सप्तषष्टिः पञ्चदशभिर्गुण्यते, जातं सहस्रपञ्चोत्तरम् १००५ । अर्द्धक्षेत्राणि षडिति सार्द्धास्त्रयस्त्रिंशत् षड्भिर्गुण्यते जाते द्वे शते एकोत्तरे २०१ । द्व्यर्द्धक्षेत्राण्यपि षट्, ततः शतमेकमर्द्धं च षड्भिर्गुणितं जातानि षट् शतानि त्र्युत्तराणि ६०३ । अभिजिन्नक्षत्रैकविंशतिः, सर्वसङ्ख्यया जातान्यष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३० ।

१. प्रमाणं बुद्धिकल्पितमेकं मण्डलं-पुके ॥

एतावद्भागपरिमाणमेकमर्द्धमण्डलमेतावदेव द्वितीयमपीति त्रिंशदधिकान्यष्टादश शतानि द्वाभ्यां गुण्यन्ते जातानि षट्त्रिंशच्छतानि षष्ट्यधिकानि ३६६० । एकैकस्मिन्नहोरात्रे किल त्रिंशन्मुहूर्त्ता इति प्रत्येकमेतेषु षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतसङ्ख्येषु [३,६६०] भागेषु त्रिंशद्भागकल्पनायां त्रिंशता गुण्यन्ते, जातमेकशतसहस्रमष्टानवतिः[1] शतानि १०९८००, तदेवं मण्डलच्छेदपरिमाणमभिहितम् । ननु यानि नक्षत्राणि यन्मण्डलस्थायीनि तेषां तन्मण्डलेषु चन्द्रादियोगयोग्यमण्डलभागस्थापनं युक्तिमत्, न तु सर्वेष्वपि मण्डलेषु सर्वेषां भागकल्पनमिति चेत्, उच्यते, न हि नक्षत्राणां चन्द्रादिभिर्योगो नियते दिने नियते देशे नियतवेलायामेव भवति, किन्त्वनियतदिनादौ तेन तत्तन्मण्डलेषु तत्तन्नक्षत्रसम्बन्धिसीमाविष्कम्भे चन्द्रादिप्राप्तौ सत्यां योगः सम्पद्यत इति, मण्डलच्छेदश्च सीमाविष्कम्भादौ सप्तयोजनः ॥९८॥

अथ सूर्यस्य भागात्मिकां गतिं प्रश्नयन्नाह-

एगमेगेणं भंते ! मुहुत्तेणं सूरिए केवइआइं भागसयाइं गच्छइ ?, गोअमा ! जं जं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तस्स २ मंडलपरिक्खेवस्स अट्ठारसतीसे भागसए गच्छइ, मंडलं सयसहस्सेहिं अट्ठाणउतीए अ सएहिं छेत्ता ॥ ९९ ॥

"**एगमेगे णं भन्ते !**" इत्यादि, **एकैकेन भगवन् ! मुहूर्त्तेन सूर्यः कियन्ति भागशतानि गच्छति ?, गौतम ! यद्यन्मण्डल-मुपसङ्क्रम्य चारं चरति, तस्य तस्य मण्डलसम्बन्धिनः परिक्षेपस्याष्टादश भागशतानि त्रिंशदधिकानि [१८३०] गच्छति, मण्डलं शतसहस्रेणाष्टानवत्या च शतैः [१,०९, ८००] छित्त्वा** । कथमेतदवसीयत इति चेत् ?, उच्यते, त्रैराशिककरणात् । तथाहि-षष्ट्या मुहूर्त्तैरेकं शतसहस्रमष्टानवतिः शतानि मण्डलभागानां लभ्यन्ते, ततः एकेन मुहूर्त्तेन कति भागान् लभामहे ? राशित्रयस्थापना-६० । १०९८०० । १ अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन १ मध्यस्य राशेर्गुणनम्, जातः स तावानेव, 'एकेन गुणितं तदेव भवतीति' वचनात् । ततस्तस्याद्येन राशिना षष्टिलक्षणेन भागो ह्रियते, लब्धान्यष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि १८३०, एतावतो भागान् मण्डलस्य सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति ॥९९॥

अथ नक्षत्राणां भागात्मिकां गतिं प्रश्नयन्नाह-

एगमेगेणं भंते ! मुहुत्तेणं णक्खत्ते केवइआइं भागसयाइं गच्छइ ?, गो० ! जं जं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तस्स तस्स मंडलपरिक्खेवस्स

१. ०ति-पुके । एवमन्यत्र ॥

अट्ठारस पणतीसे भागसए गच्छइ, मंडलं सयसहस्सेणं अट्ठाणउईए अ सएहिं छेत्ता ॥ १०० ॥

"**एगमेगे ण**"मित्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमम् । उत्तरसूत्रे तु **गौतम ! यद्यदा**त्मीयमात्मीयं प्रतिनियतं **मण्डलमुपसङ्क्रम्य चारं चरति, तस्य तस्या**त्मीयस्य **मण्डलस्य** सम्बन्धिनः '**परिक्षेपस्य**' परिधे**रष्टादशभागशतानि पञ्चत्रिंश-दधि**कानि १८३५ **गच्छति, मण्डलं शतसहस्रेणाष्टनवत्य च शतैः १,०९,८०० छित्त्वा** । इहापि प्रथमतो मण्डलकालो निरूपणीयः, ततस्तदनुसारेणैव मुहूर्त्तगतिपरिमाणभावना । तत्र मण्डलकालप्रमाणचिन्तायाम् इदं त्रैराशिकम्–यद्यष्टादशभिः शतैः पञ्चत्रिंशदधिकैः १८३५ सकलयुगवर्त्तिभिरर्द्धमण्डलैर्द्वितीयाष्टाविंशतिनक्षत्रापेक्षया तु पूर्णमण्डलैरित्यर्थः, अष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि रात्रिन्दिवानां लभ्यन्ते, ततो द्वाभ्यामर्द्धमण्डलाभ्यामेकेन परिपूर्णेन मण्डलेनेति भावः, किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना–१८३५ । १८३० । २ । अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशे-र्गुणनं जातानि षट्त्रिंशच्छतानि षष्ट्यधिकानि ३६६०, तत आद्येन राशिना १८३५ लक्षणेन भागहरणं लब्धमेकं रात्रिन्दिवं १, शेषाणि तिष्ठन्त्यष्टादश शतानि पञ्चविंशत्यधिकानि १८२५ । ततो मुहूर्त्तानयनार्थमेतानि त्रिंशता [३०] गुण्यन्ते, जातानि चतुःपञ्चाशत्सहस्राणि सप्त शतानि पञ्चाशदधिकानि ५४७५०, तेषामष्टादशभिः शतैः पञ्चत्रिंशदधिकैर्भागे [१८३५] हृते लब्धा एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ताः २९, ततः शेषच्छेद्य-च्छेदकराश्योः पञ्चकेनापवर्त्तना जात उपरितनो राशिस्त्रीणि शतानि सप्तोत्तराणि ३०७, छेदकराशिस्त्रीणि शतानि सप्तषष्ट्यधिकानि ३६७, तत आगतमेकं रात्रिन्दिवमेकस्य च रात्रिन्दिवस्यैकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तषष्ट्यधिकत्रिशतभागानां त्रीणि शतानि सप्तोत्तराणि १–२९–३०७/३६७ ।

इदानीमेतदनुसारेण मुहूर्त्तगतिपरिमाणं चिन्त्यते । तत्र रात्रिन्दिवे त्रिंशन्मुहूर्त्ताः ३०, तेषु उपरितना एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ताः प्रक्षिप्यन्ते, जाता एकोनषष्टिर्मुहूर्त्तानाम् ततः सा सवर्णनार्थं त्रिभिः शतैः षष्ट्यधिकैर्गुण्यते, गुणयित्वा चोपरितनानि त्रीणि शतानि सप्तोत्तराणि ३०७ प्रक्षिप्यन्ते, जातान्येकविंशतिः सहस्राणि नव शतानि षष्ट्यधिकानि २१९६० । ततस्त्रैराशिकम्–यदि मुहूर्त्तगतसप्तषष्ट्यधिकत्रिशतभागानामेकविंशत्या सहस्रैः नवभिः शतैः षष्ट्यधिकैरेकं शतसहस्रमष्टानवतिः शतानि १,०९,८०० मण्डलभागानां लभ्यन्ते, तत एकेन मुहूर्त्तेन किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना–२१९६० । १०९८०० । १ । अत्राद्यो राशिर्मुहूर्त्तगतसप्तषष्ट्यधिकत्रिशतभागरूपः, ततोऽन्त्योऽपि राशिस्त्रिभिः शतैः सप्तषष्ट्यधिकैर्गुण्यते ३६७, जातानि त्रीण्येव

शतानि सप्तषष्ट्यधिकानि ३६७। तैर्मध्यो राशिर्गुण्यते, जाताश्चतस्रः कोटयो द्वे लक्षे षण्णवतिः सहस्राणि षट् शतानि ४०२९६६००, तेषामाद्येन राशिना एकविंशतिसहस्राणि नव शतानि षष्ट्यधिकानि इत्येवंरूपेण भागो ह्रियते, लब्धान्यष्टादश शतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि १८३५, एतावतो भागान्नक्षत्रं प्रतिमुहूर्तं गच्छति । इदं च भागात्मकं गतिविचारणं चन्द्रादित्रयस्य यथोत्तरं गतिशीघ्रत्वे सप्रयोजनम् । तथाहि-सर्वेभ्यो नक्षत्राणि शीघ्रगतीनि, मण्डलस्योक्तभागीकृतस्य पञ्चत्रिंशदधिकाष्टादशशतभागानामेकैकस्मिन् मुहूर्ते आक्रमणात् । तेभ्यो मन्दगतयः सूर्याः, एकैकस्मिन् मुहूर्ते त्रिंशदधिकाष्टादशभागानामाक्रमणात् । तेभ्यश्चन्द्रा मन्दगतयः, एकैकस्मिन् मुहूर्ते अष्टषष्ट्यधिकस[१]प्तदशभागानामाक्रमणात् । ग्रहास्तु वक्राऽनुवक्रादिगतिभावतोऽनियतगतिकाः, तेन न तेषां मण्डलादिचिन्ता, नापि गतिप्ररूपणा । तारकाणामप्यवस्थितमण्डलकत्वाच्चन्द्रादिभिः सह योगाभावचिन्तनाच्च न मण्डलादिप्ररूपणा कृता ॥१००॥

सम्प्रति सूर्यस्योद्गमना-ऽस्तमयने अधिकृत्य बहवो मिथ्याभिनिविष्टबुद्धयो विप्रतिपन्नाः, तेन तद्विप्रतिपत्तिमपाकर्तुं प्रश्नमाह-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिआ [२]उदीणपाईणमुग्गच्छ पाईणदाहिणमागच्छंति १, पाईणदाहिणमुग्गच्छ दाहिणपडीणमागच्छंति २, दाहिणपडीणमुग्गच्छ पडीणउदीणमागच्छंति ३, पडीणउदीणमुग्गच्छ उदीणपाईणमागच्छंति ४ ?, हंता गोअमा ! जहा पंचमसए पढमे उद्देसे [३]जाव णेवऽत्थि उस्सप्पिणी, अवट्ठिए णं तत्थ काले पं० समणाउसो !, इच्चेसा जंबुद्दीवपण्णत्ती सूरपण्णत्ती वत्थुसमासेणं [४]सम्मत्ता भवइ ॥ १०१ ॥

"**जंबुद्दीवे ण**"मित्यादि, **जंबूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे द्वौ सूर्यौ** जम्बूद्वीपे द्वयोरेव भावात्, '**उदीचीनप्राचीनम्**' उदगेव उदीचीनं च तदुदीच्या आसन्नत्वात्, प्राचीनं च प्राच्याः प्रत्यासन्नत्वादुदीचीनप्राचीनम्, अत्र स्वार्थे इन् प्रत्ययः, दिगन्तरं क्षेत्रदिगपेक्षयोत्तर-पूर्वस्यामीशानकोण इत्यर्थः, अत्र प्राकृतत्वात् सप्तम्यर्थे द्वितीया । '**उद्गत्य**' पूर्वविदेहापेक्षयोदयं प्राप्य **प्राचीनदक्षिणे** दिगन्तरे प्राग्दक्षिणस्यामाग्नेयकोणे इत्यर्थः, '**आगच्छतः**' क्रमेणैवास्तं यात इत्यर्थः । इह चोद्गमनमस्तमयनं च द्रष्टृलोकविवक्षयाऽवसेयम्, तथाहि-येषामदृश्यौ सन्तौ दृश्यौ तौ

१. पुके । सप्तशतभा० मु. ॥ २. उदीयिपादीण० अब । एवमग्रेऽपि ॥ ३. द्र. भगवती सू. ५।३-२० ॥ ४. पण्णत्ता-त्रि हीवृ ॥

स्याताम्, ते तयोरुदयं व्यवहरन्ति, येषां तु दृश्यौ सन्तावदृश्यौ तौ स्तस्ते तयोरस्तमयं व्यवहरन्तीत्यनियतावुदया-ऽस्तमयाविति । अत्र काकुपाठात् प्रश्नोऽवगन्तव्यः, ततो भरतादि-क्षेत्रापेक्षया प्राग्दक्षिणस्यामुद्गत्य दक्षिणप्रतीच्यामागच्छतः, तत्रापि दक्षिणप्रतीच्यामपरविदेहा-पेक्षयोद्गत्य प्रतीचीनोदीचीने–वायव्यकोणे आगच्छतः, तत्रापि च वायव्यामैरावतादिक्षेत्रापेक्ष-योद्गत्योदीचीनप्रतीचीने–ईशानकोणे आगच्छतः, एवं सामान्यतः सूर्ययोरुदयविधिः । विशेषतः पुनरेवम्–यदैकः सूर्य आग्नेयकोणे उद्गच्छति तत्रोद्गतश्च भरतादीनि मेरुदक्षिणदिग्वर्त्तीनि क्षेत्राणि प्रकाशयति, तदा परोऽपि वायव्यकोणे उद्गतो मेरूत्तरदिग्भावीन्यैरावतादीनि क्षेत्राणि प्रकाशयति । भारतश्च सूर्यो मण्डलभ्राम्या भ्रमन् नैर्ऋतकोणे उद्गतः सन्नपरमहाविदेहान् प्रकाशयति, ऐरावतस्तु ऐशान्यामुद्गतः पूर्वविदेहान् प्रकाशयति । ततः एष पूर्वविदेहप्रकाशको दक्षिणपूर्वस्यां भरतादिक्षेत्रापेक्षयोदयमासादयति, अपरविदेहप्रकाशकस्त्वपरोत्तरस्यामैरवतादि-क्षेत्रापेक्षयोदयमासादयति । अत्रैशान्यादिदिग्व्यवहारो मेरुतो बोध्यः, अन्यथा भरतादिजनानां स्वस्वसूर्योदयदिशि पूर्वदिक्त्वे आग्नेयादिकोणव्यवहारानुपपत्तेरिति । एवं प्रश्ने कृते भगवानाह–'**हन्ते**'त्यव्ययमभ्युपगमार्थे तेन हे **गौतम** ! इत्थमेव यथा त्वं प्रश्नयसि तथैवेत्यर्थः । अनेन च सूर्यस्य तिर्यग्दिक्षु गतिरुक्ता, न तु "**तत्थ रवी दसजोअण**" [ ] इत्यादिगाथोक्तस्वस्थानादूर्ध्वं नाप्यधः, तेन ये मन्यन्ते "**सूर्यः पश्चिमसमुद्रं प्रविश्य पातालेन गत्वा पुनः पूर्वसमुद्रे उदेती**" [ ] त्यादि, तन्मतं निषिद्धमिति । अथ सूत्रकृद् ग्रन्थगौरव-भयादतिदेशवाक्यमाह–**यथा पञ्चमशते प्रथमे उद्देशके** तथा भणितव्यम् । कियत्पर्यन्तम् ? इत्याह–**यावत् 'णेवऽत्थि उस्सप्पिणी** नेवऽत्थि ओसप्पिणी **अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते**' इति सूत्रम् ।

तद्यथा–"**जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढेवि दिवसे भवइ, जया णं उत्तरड्ढे दिवसे भवइ, तया णं जंबुद्दीवे २ मन्दरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं राई भवइ ?, हंता गोअमा ! जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे जाव राई भवइ । जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं दिवसे भवइ, तया णं पच्चत्थिमेणवि दिवसे भवइ, जया णं पच्चत्थिमे णं दिवसे भवइ, तया णं जंबुद्दीवे २ मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं राई भवइ ?, हंता ! गोअमा ! जया णं जंबुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं दिवसे जाव राई भवइ । जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढे वि उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जया णं उत्तरड्ढे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ?, हंता गोअमा ! जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे जाव दुवालसमुहुत्ता राई भवइ । जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं उक्कोसए**

अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ जाव तया णं जंबुद्दीवे २ [उत्तर] दाहिणेणं जाव राई भवइ । जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं उत्त० अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, जया णं उत्तरड्ढे अट्ठार० भवइ, तया णं जंबुद्दीवे २ मंदर० पुरत्थिमेणं सातिरेगा दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ?, हंता ! गोअमा ! जया णं जंबुद्दीवे २ जाव राई भवइ । जया णं भंते ! जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पुरत्थिमेणं अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं पच्चत्थि०, जया णं पच्चत्थिमेणं, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स० उत्तर-दाहिणेणं साइरेगा दुवालसमुहुत्ता राई भवइ । एवं एतेणं कमेणं ऊसारेअव्वं । सत्तरसमुहुत्ते दिवसे तेरसमुहुत्ता राई सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे सातिरेगतेरसमुहुत्ता राई, सोलसमुहुत्ते दिवसे चोद्दसमुहुत्ता राई सोलसमुहुत्ताणंतरे दिवसे सातिरेगा चोद्दसमुहुत्ता राई, पण्णरसमुहुत्ते दिवसे पण्णरसमुहुत्ता राई पण्णरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगपण्णरसमुहुत्ता राई, चोद्दसमुहुत्ते दिवसे सोलसमुहुत्ता राई चोद्दसमुहुत्ताणंतरे दिवसे सातिरेगसोलसमुहुत्ता राई भवइ, तेरसमुहुत्ते दिवसे सत्तरसमुहुत्ता राई तेरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे सातिरेगसत्तरसमुहुत्ता राई । जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तया णं उत्तरड्ढे वि, जया णं उत्तरड्ढे०, तया णं जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं उक्कोसिआ अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ ?, हंता ! गोअमा ! एवं चेव उच्चारेअव्वं जाव राई भवइ । जया णं भंते ! जम्बुद्दीवे २ मंदरपुरत्थिमेणं जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं पच्चत्थिमेण वि०, जया णं पच्चत्थिमेण वि०, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स उत्तर-दाहिणेणं उक्कोसिआ अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ ?, हंता गोअमा ! जाव राई भवइ । जया णं भंते ! जंबुद्दीवे २ दाहिणड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ, तया णं उत्तरड्ढे वि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ, जया णं उत्तरड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ, तया णं जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं अणंतरपुरेक्खडसमयंसि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ ?, हंता गोअमा ! जया णं भंते ! जम्बुद्दीवे २ दाहिणद्धे वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ तहेव जाव पडिवज्जइ । जया णं भंते ! जम्बुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ, तया णं पच्चत्थिमेणऽवि वासाणं पढमे समए, जया णं पच्चत्थिमेणं वासाणं पढमे समए, तया णं जाव मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं अणंतरपच्छाकडसमयंसि वासाणं पढमे समए पडिवण्णे भवइ ?, हंता ! गोअमा ! जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पुरत्थिमेणं एअं चेव सव्वं उच्चारेअव्वं जाव पडिवण्णे भवइ । एवं जहा समएणं अभिलावो भणिओ वासाणं तहा आवलिआए वि भणिअव्वो, आणापाणू वि थोवेण वि लवेण वि मुहुत्तेण वि अहो-रत्तेण वि पक्खेण वि मासेण वि उऊण वि, एएसिं सव्वेसिं जहा समयस्स अभिलावो तहा भाणिअव्वो । जया णं भंते ! जंबुद्दीवे २ हेमंताणं पढमे समए पडिवज्जइ, जहेव वासाणं अभिलावो तहेव हेमंताण वि गिम्हाण वि भाणिअव्वो, जाव उत्तर०, एवं एए तिण्णि वि, एतेसिं तीसं आलावगा भाणिअव्वा । जया णं भंते ! जंबुद्दीवे २ मंदरस्स दाहिणड्ढे पढमे अयणे पडिवज्जइ, तया णं उत्तरड्ढे वि पढमे अयणे पडिवज्जइ जहा समएणं अभिलावो तहेव अयणेण वि भाणिअव्वो जाव अणंतरपच्छाकडसमयंसि पढमे अयणे पडिवण्णे भवइ । जहा अयणेणं अभिलावो तहा संवच्छरेण वि भाणिअव्वो जुएण वि वाससएण वि वाससहस्सेण वि वाससयसहस्सेण वि पुव्वंगेण वि पुव्वेण वि तुडिअंगेण वि तुडिएण वि, एवं पुव्वे २ तुडिए २ अडडे २ अववे २ हूहूए २ उप्पले २ पउमे २ णलिणे २ अत्थणिउरे २ अउए २ णउए अ २ पउए अ २ चूलिए अ २ सीसपहेलिए अ २ पलिओवमेण वि

सागरोवमेण वि भाणिअव्वो । जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ, तया णं उत्तरड्ढे वि पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ । जया णं उत्तरड्ढे पढमा, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं-णेवत्थि ओसप्पिणी णेवत्थि उस्सप्पिणी अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो ?, हंता गोअमा ! तं चेव उच्चारेअव्वं जाव समणाउसो !।, जहा ओसप्पिणीए आलावओ भणिओ एवं उस्सप्पिणीए वि भाणिअव्वो'त्ति । [ ]

अत्र व्याख्या–अथोक्तक्षेत्र-विभागानुसारेण दिवस-रात्रिविभागमाह–यदा भगवन् ! जम्बूद्वीपे द्वीपे मेरुतो 'दक्षिणार्द्धे' दक्षिणभागे दिवसो भवति, तदोत्तरार्द्धेऽपि दिवसो भवति, एकस्य सूर्यस्यैकदिशि मण्डलचारेऽपरस्य सूर्यस्य तत्सम्मुखीनायामेवापरस्यां दिशि मण्डलचारसम्भवात् । इह यद्यपि यथा दक्षिणार्द्धे तथोत्तरार्द्धे इत्युक्तं तथाऽपि दक्षिणभागे उत्तरभागे चेति बोध्यम्, अर्द्धशब्दस्य भागमात्रार्थत्वात्, यतो यदि दक्षिणार्द्धे उत्तरार्द्धे च समग्र एव दिवसः स्यात्, तदा कथं पूर्वेणा-ऽपरेण च रात्रिः स्यादिति वक्तुं युज्येत ?, अर्द्धद्वयग्रहणेन सर्वक्षेत्रस्य गृहीतत्वात् । इतश्च दक्षिणार्द्धादिशब्देन दक्षिणादिग्भागमात्रमवसेयम्, नत्वर्द्धम् । तदा च जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वस्यामपरस्यां च रात्रिर्भवति, तत्रैकस्यापि सूर्यस्याभावात् । इत्येवं काक्वा प्रश्ने कृते भगवानाह–'हंता ! गोअमे'त्यादि, यदा जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्द्धे दिवसो यावद् रात्रिर्भवतीत्यन्तं प्रत्युच्चारणीयम् । क्षेत्रपरावृत्त्या दिवस-रात्रिविभागं पृच्छन्नाह–यदा भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वेण दिवसो भवति, तदा पश्चिमायामपि दिवसो भवति, प्रागुक्तयुक्तेरेव, यदा च पश्चिमायां दिवसस्तदा मेरोर्दक्षिणोत्तरयो रात्रिः, प्रश्नसूत्रं चैतत् । 'हंता ! गोअमे'त्यादि उत्तरसूत्रं तथैव । उक्तः सामान्यतो दिवस-रात्रिविभागः, सम्प्रति तमेव विशेषत आह–यदा भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्द्धे उत्कर्षतोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवतीत्यादिकं सूत्रं प्रायो निगदसिद्धम्, तथाऽपि किञ्चिदेतद्वृत्त्यादिगतं लिख्यते–

इह किल सूर्यस्य चतुरशीत्यधिकं मण्डलशतं [१८४] भवति । तत्र किल जम्बूद्वीपमध्ये पञ्चषष्टिर्मण्डलानि [६५] भवन्ति, एकोनविंशत्यधिकं च शतं [११९] तेषां लवणसमुद्रमध्ये भवति । तत्र सर्वाभ्यन्तरे मण्डले यदा सूर्यो भवति, तदाऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, [कथम् !] यदा सर्वबाह्ये मण्डले सूर्यो भवति, तदा सर्वजघन्यो द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति । ततश्च द्वितीयमण्डलादारभ्य प्रतिमण्डलं द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यां दिनस्य वृद्धौ त्र्यशीत्यधिकशततममण्डले षट् मुहूर्त्ता वर्द्धन्त इत्येवमष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, अत एव द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, त्रिंशन्मुहूर्त्तत्वादहोरात्रस्य । 'अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे'त्ति यदा सर्वाभ्यन्तरमण्डलानन्तरे मण्डले सूर्यो भवति, तदा मुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयहीनोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, स चाष्टादश-

मुहूर्त्ताद्दिवसादनन्तरोऽष्टादशमुहूर्त्तानन्तर इति व्यपदिष्टः । 'सातिरेगा दुवालसमुहुत्ता राइ'त्ति, तदा द्वाभ्यां मुहूर्तैकषष्टिभागाभ्यामधिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, यावता भागेन दिनं हीयते तावता रात्रिर्वर्द्धते, त्रिंशन्मुहूर्त्तत्वादहोरात्रस्येति । 'एवं एएणं कमेणं'ति, एवमित्युपसंहारे एतेनानन्तरोक्तेनोपायेन 'जया णं भंते ! जम्बुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे' इत्येतेनेत्यर्थः, 'ऊसारे-अव्वं'ति, दिनमानं ह्रस्वीकार्यम् । तदेव दर्शयति-'सत्तरसे'त्यादि, तत्र सर्वाभ्यन्तरमण्डला-नन्तरमण्डलादारभ्यैकत्रिंशत्तममण्डलार्द्धे यदा सूर्यस्तदा सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, पूर्वोक्तहानिक्रमेण त्रयोदशमुहूर्त्ता च रात्रिरिति । 'सत्तरसमुहुत्ताणंतरे'त्ति, मुहूर्तैकषष्टिभाग-द्वयहीनसप्तदशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसोऽयं च द्वितीयादारभ्य द्वात्रिंशत्तममण्डलार्द्धे ३१ $\frac{१}{२}$ भवति, एवमनन्तरत्वमन्यत्राप्यूह्यम् । 'सातिरेगतेरसमुहुत्ता राइ'त्ति, मुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयेन सातिरे-कत्वम्, एवं सर्वत्र । 'सोलसमुहुत्ते दिवसे'त्ति, द्वितीयादारभ्यैकषष्टितममण्डले ६१ षोडश-मुहूर्त्तो दिवसो भवति, 'पण्णरसमुहुत्ते दिवसे'त्ति, द्विनवतितममण्डलार्द्धे ९१ $\frac{१}{२}$ वर्त्तमाने सूर्ये 'चोद्दसमुहुत्ते दिवसे'त्ति, द्वाविंशत्युत्तरशततमे १३२ मण्डले 'तेरसमुहुत्ते दिवसे'त्ति, सार्द्धद्विपञ्चाशदुत्तरशततमे १५२ $\frac{१}{२}$ मण्डले 'बारसमुहुत्ते दिवसे'त्ति, त्र्यशीत्यधिकशततमे १८३ मण्डले सर्वबाह्ये इत्यर्थः ।

कालाधिकारादिदमाह-'जया णं भंते ! जंबुद्दीवे २ दाहिणड्ढे वासाण'मित्यादि, 'वासाण'मिति चतुर्मासप्रमाणवर्षाकालस्य सम्बन्धी प्रथमः-आद्यः समयः-क्षणः प्रतिपद्यते, सम्पद्यते भवतीत्यर्थः, तदोत्तरादर्द्धेऽपि वर्षाणां प्रथमः समयो भवति, समकालनैयत्येन दक्षिणार्द्धे उत्तरार्द्धे च सूर्ययोश्चारभावात् । यदा चोत्तरार्द्धे वर्षाकालस्य प्रथमः समयः, तदा जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पूर्वा-ऽपरयोर्दिशोरनन्तरपुरस्कृते समये अनन्तरः-निर्व्यवधानः दक्षिणार्द्धे वर्षा-प्रथमतापेक्षया स चातीतोऽपि स्यादत आह-पुरस्कृतः-पुरोवर्त्ती भविष्यन्नित्यर्थः, समयः प्रतीतः, ततः पदत्रयस्य कर्मधारयोऽतस्तत्र । तथा 'अनन्तरं पश्चात्कृते समये' पूर्वाऽपरविदेह-वर्षाप्रथमसमयापेक्षया योऽनन्तरः पश्चात्कृतः-अतीतः समयस्तत्र दक्षिणोत्तरयोर्वर्षाकाल-प्रथमसमयो भवतीति । इह यस्मिन् समये दक्षिणार्द्धे उत्तरार्द्धे च वर्षाकालस्य प्रथमः समयः तदनन्तरे अग्रेतने द्वितीये समये पूर्व-पश्चिमयोर्वर्षाणां प्रथमः समयो भवतीत्येतावन्मात्रोक्तावपि यस्मिन् समये पूर्व-पश्चिमयोः वर्षाकालस्य प्रथमः समयो भवति, ततोऽनन्तरे पश्चाद्भाविनि समये दक्षिणोत्तरार्द्धयोर्वर्षाकालस्य प्रथमः समयो भवतीति गम्यते तत्किमर्थमस्योपादानम् ?, उच्यते, इह क्रमोत्क्रमाभ्याम् अभिहितोऽर्थः प्रपञ्चितज्ञानां शिष्याणामतिसुनिश्चितो भवति, ततस्तेषामनुग्रहायैतदुक्तमित्यदोषः । 'एवं जहा समएण' मित्यादि, एवं यथा समयेन

वर्षाणामभिलापो भणितः, तथा आवलिकाया अपि भणितव्यः । स चैवम्-"**जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणद्धे वासाणं पढमा आवलिआ पडिवज्जइ, तया णं उत्तरद्धे वि वासाणं पढमा आवलिआ पडिवज्जइ, जया णं उत्तरद्धे वासाणं पढमा आवलिआ पडिवज्जइ, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं अणंतरपुरेक्खडसमयंसि वासाणं पढमा आवलिआ पडिवज्जइ, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं अणंतरपुरेक्खडसमयंसि वासाणं पढमा आवलिआ पडिवज्जइ ?, हंता गोअमा ! जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे वासाणं पढमा आवलिआ पडिवज्जइ तहेव जाव पडिवज्जइ । जया णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे मन्दरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं वासाणं पढमा आवलिआ पडिवज्जइ, जया णं पच्चत्थिमेणं पढमा आवलिआ पडिवज्जइ, तया णं जंबुद्दीवे २ मन्दरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणेणं अणंतरपच्छाकडसमयंसि वासाणं पढमा आवलिआ पडिवण्णा भवइ ?, हंता ! गोअमे**" [ ] त्यादि, तदेवोच्चारणीयमित्यर्थः, एवं आन-प्राणादिपदेष्वपि, आवलिका-द्यर्थस्तु प्राग्वत् । 'हेमंताणं'ति शीतकालचतुर्मासानाम्, 'गिम्हाणं'ति ग्रीष्माणां चतुर्मासानाम्, 'पढमे अयणे'ति दक्षिणायनं श्रावणादित्वात् संवत्सरस्य, 'जुएण वि'त्ति युगं पञ्चसंवत्सरमानम् । अत्र च युगेन सहेत्यतिदेशकरणात् युगस्यापि दक्षिणोत्तरयोः पूर्वसमये प्रतिपत्तिः, प्रागपरयोस्तु तदनन्तरे पुरोवर्तिनि समये प्रतिपत्तिः । **ज्योतिष्करण्डे** तु-

> "**सावणबहुलपडिवए, बालवकरणे अभीइणक्खत्ते ।**
> **सव्वत्थ पढमसमए, जुगस्स आइं विआणाहि ॥१॥**" **[ज्यो. क. गा. ५५]**

इत्यस्या गाथाया व्याख्याने सर्वत्र भरते ऐरवते महाविदेहेषु च श्रावणमासे बहुलपक्षे-कृष्णपक्षे प्रतिपदि तिथौ बालवकरणे अभिजिन्नक्षत्रे प्रथमसमये युगस्यादिं विजानीहीतीदं वाचनान्तरं ज्ञेयम् । यतो **ज्योतिष्करण्डसूत्रकर्ता** आचार्यो **वालभ्यः**, एष **भगवत्यादि-सूत्रादर्शस्तु माथुरवाचनाऽनुगत** इति न किञ्चिदनुचितम् । युक्त्यानुकूल्यं तु न युगपत्प्रतिपत्तिसमये सम्भावयामः । तथाहि-"**सव्वे कालविसेसा सूरपमाणेण हुंति नायव्वा**" **[ज्यो. क. गा. ६०]** इति वचनाद् यदि सूर्यचारविशेषेण कालविशेषप्रतिपत्तिर्दक्षिणोत्तरयोराद्यसमये प्रागपरयोरुत्तरसमये, तर्हि दक्षिणोत्तरप्रतिपत्तिसमये पूर्वकालस्यापर्यवसानं वाच्यम् । पूर्वाऽपरविदेहापेक्षयाऽस्त्येव तदिति चेत्, सूर्ययोश्चीर्णचरणम् अपरं वा सूर्यद्वयं वाच्यम्, ययोश्चारविशेषाद्दक्षिणोत्तरप्रतिपत्तिसमयापेक्षयोत्तरसमये पूर्वा-ऽपरयोः कालविशेषप्रतिपत्तिरित्यादिको भूयान् परवचनावकाश इत्यलं प्रसङ्गेन । 'पुव्वंगेण वि'त्ति, पूर्वाङ्गं-चतुरशीतिवर्षलक्षप्रमाणम् 'पुव्वेण वि'त्ति, पूर्वं-पूर्वाङ्गमेव चतुरशीतिवर्षलक्षगुणितम्, एवं चतुरशीतिवर्षलक्षगुणितमुत्तरोत्तरं स्थानं भवति, चतुर्णवत्यधिकं चाङ्कशतमन्तिमे १९४ स्थाने भवतीति । 'पढमा ओस्सप्पिणी'ति, अवसर्पिण्याः प्रथमो विभागः प्रथमाऽवसर्प्पिणी । 'जया णं भंते ! दाहिणड्ढे

पढमा ओसप्पिणी पडिवज्जइ, तया णं उत्तरद्धे वि' इत्यादि व्यक्तम्। नवरं नैवास्त्यवसर्पिणी नैवास्त्युत्सर्पिणी। कुतः ? इत्याह-अवस्थितः-सर्वथा एकस्वरूपस्तत्र कालः प्रज्ञप्तः हे श्रमण ! हे आयुष्मन् ! इति।

अथ प्रस्तुताधिकारमुपसंहरन्नाह-"**इच्चेसा जम्बुद्दीवे**" इत्यादि, '**इत्येषा**' अनन्तरोक्तस्वरूपा '**जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः**' आद्यद्वीपस्य यथावस्थितस्वरूपनिरूपिका ग्रन्थपद्धतिस्तस्यामस्मिन्नुपाङ्गे इत्यर्थः, सूत्रे च विभक्तिव्यत्ययः प्राकृतत्वात्। '**सूर्यप्रज्ञप्तिः**' सूर्याधिकारप्रतिबद्धा पदपद्धतिः '**वस्तूनां**' मण्डलसङ्ख्यादीनां '**समासः**' सूर्यप्रज्ञप्त्यादिमहाग्रन्थापेक्षया सङ्क्षेपस्तेन **समाप्ता भवति** ॥१०१॥

अथ चन्द्रवक्तव्यप्रश्नमाह-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे चंदिमा उदीणपाईणमुग्गच्छ पाईणदाहिणमागच्छंति, जहा सूरवत्तव्वया जहा पंचमसयस्स दसमे उद्देसे[1] जाव अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो !, इच्चेसा जम्बुद्दीवपण्णत्ती [चंदपण्णत्ती] वत्थुसमासेणं सम्मत्ता भवइ ॥ १०२ ॥

"**जंबुद्दीवे ण**"मित्यादि, **जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे चन्द्रावुदीचीनप्राचीन**दिग्भागे **उद्गत्य प्राचीनदक्षिण**दिग्भागे **आगच्छत** इत्यादि **यथा सूरवक्तव्यता** तथा चन्द्रवक्तव्यता, **यथा** वाशब्दोऽत्र गम्यः **पञ्चमशतस्य दशमे उद्देशके** चन्द्रनाम्नि। कियत्पर्यन्तं सूत्रं ग्राह्यम् ? इत्याह-**यावद् अवस्थितस्त कालः प्रज्ञप्तः** हे **श्रमण** ! हे **आयुष्मन्** ! इति। अत्राप्युपसंज्जिहीर्षुराह-"**इच्चेसा**" इत्यादि, व्याख्यानं पूर्ववत्। परं **सूर्यप्रज्ञप्तिस्थाने चन्द्रप्रज्ञप्ति**र्वाच्या ॥१०२॥

एतेषां ज्योतिष्काणां चारविशेषात् संवत्सरविशेषाः प्रवर्त्तन्त इति तद्भेदप्रश्नमाह-

कति णं भंते ! संवच्छरा पण्णत्ता ?, गो० ! पंच संवच्छरा पं०, तं०-णक्खत्तसंवच्छरे जुगसंवच्छरे पमाणसंवच्छरे लक्खणसंवच्छरे सणिच्छरसंवच्छरे ॥ १०३ ॥

"**कति णं भंते !**" इत्यादि, तत्र नक्षत्रेषु भवो नाक्षत्रः। किमुक्तं भवति ? चन्द्रश्चारं चरन् यावता कालेनाभिजित आरभ्योत्तराषाढानक्षत्रपर्यन्तं गच्छति, तत्प्रमाणो नाक्षत्रो मासः।

---

१. द्र. भगवती सू. ५।२६० ॥

यदिवा चन्द्रस्य नक्षत्रमण्डले परिवर्त्तनतानिष्पन्न इत्युपचारतो मासोऽपि नक्षत्रम्, स च द्वादशगुणो **नक्षत्रसंवत्सरः**। तथा '**युगसंवत्सरः**' पञ्चसंवत्सरात्मकं युगं तदेकदेशभूतो वक्ष्यमाण-लक्षणश्चन्द्रादिर्युगपूरकत्वाद्युगसंवत्सरः। 'प्रमाणं' परिमाणं दिवसादीनां तेनोपलक्षितो वक्ष्यमाण एव नक्षत्रसंवत्सरादिः **प्रमाणसंवत्सरः**। स एव 'लक्षणानां' वक्ष्यमाणस्वरूपाणां प्रधानतया **लक्षणसंवत्सरः**। यावता कालेन शनैश्चरो नक्षत्रमेकमथवा द्वादशापि राशीन् भुङ्क्ते स **शनैश्चरसंवत्सर** इति ॥१०३॥

नामनिरुक्तमुक्त्वाऽथैतेषां भेदानाह-

णक्खत्तसंवच्छरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?, गोअमा ! दुवालसविहे पं०, तं०-सावणे भद्दवए आसोए जाव आसाढे, जं वा विहप्फई[१] महग्गहे दुवालसेहिं संवच्छरेहिं सव्वणक्खत्तमंडलं समाणेइ, से त्तं णक्खत्तसंवच्छरे ॥ १०४ ॥

"**णक्खत्त**" इत्यादि, **नक्षत्रसंवत्सरो भगवन् ! कतिविधः प्रज्ञप्त ?, गौतम ! द्वादशविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-श्रावणः भाद्रपदः आश्विनः यावत्पदात्** कार्त्तिकादिसङ्ग्रहः, द्वादश **आषाढः**। अयं भावः-इह एकः समस्तनक्षत्रयोग-पर्यायो द्वादशभिर्गुणितो नक्षत्रसंवत्सरः, ततो ये नक्षत्रसंवत्सरस्य पूरका द्वादशसमस्त-नक्षत्रयोगपर्यायाः श्रावण-भाद्रपदादिनामानस्तेऽप्यवयवे समुदायोपचारात् नक्षत्रसंवत्सरः, ततः श्रावणादिद्वादशविधो नक्षत्रसंवत्सरः। '**वा**' इति पक्षान्तरसूचने, अथवा **बृहस्पतिर्महाग्रहो द्वादशभिः संवत्सरैर्योगमधिकृत्य यत्सर्वं नक्षत्रमण्डलम**भिजिदादीन्यष्टाविंशतिनक्षत्राणि **परिसमापयति** तावान् कालविशेषो द्वादशवर्षप्रमाणो **नक्षत्रसंवत्सरः** ॥१०४॥

अथ द्वितीयः-

जुगसंवच्छरे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?, गोअमा ! पंचविहे पं०, तंजहा-चंदे चंदे अभिवड्डिए चंदे अभिवड्डिए चेव ॥ १०५ ॥

"**जुगसंवच्छरे**" इत्यादि, प्रश्नः प्रतीतः। उत्तरसूत्रे-**गौतम** ! युगसंवत्सरः **पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तथाहि-चन्द्रश्चन्द्रोऽभिवर्धितश्चन्द्रोऽभिवर्द्धितश्च**। चन्द्रे भवश्चान्द्रः, युगादौ श्रावणमासे बहुलपक्षप्रतिपद आरभ्य यावत्पौर्णमासीपरिसमाप्तिस्तावत्कालप्रमाण-श्चान्द्रो मासः, एकपौर्णिमासीपरावर्तश्चान्द्रो मास इतियावत्। अथवा चन्द्रनिष्पन्नत्वादुपचारतो

१. **बहस्सई-अकखबस** J12 ॥

मासोऽपि चन्द्रः, स च द्वादशगुणश्चन्द्रसंवत्सरः, चन्द्रमासनिष्पन्नत्वादिति । द्वितीय-तुर्यावप्येवं व्युत्पत्तितोऽवगन्तव्यौ, तृतीयस्तु युगसंवत्सरोऽभिवर्द्धितो नाम मुख्यतस्त्रयोदशचन्द्रमासप्रमाणः संवत्सरो द्वादशचन्द्रमासप्रमाणः संवत्सर उपजायते । कियता कालेन सम्भवति ? इत्युच्यते– इह युगं चन्द्र-चन्द्रा-ऽभिवर्द्धित-चन्द्रा-ऽभिवर्द्धितरूपपञ्चसंवत्सरात्मकं सूर्यसंवत्सरापेक्षया परिभाव्यमानमन्यूनातिरिक्तानि पञ्च वर्षाणि भवन्ति । सूर्यमासश्च सार्द्धत्रिंशदहोरात्र-प्रमाणश्चन्द्रमासश्चैकोनत्रिंशद्दिनानि द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिर्भागा दिनस्य, ततो गणितसम्भावनया सूर्यसंवत्सरसत्कत्रिंशन्मासातिक्रमे एकश्चान्द्रमासोऽधिको लभ्यते । स च यथा लभ्यते तथा पूर्वाचार्यप्रदर्शितेयं करणगाथा–

"चंदस्स जो विसेसो, आइच्चस्स य हविज्ज मासस्स ।
तीसइगुणिओ संतो, हवइ हु अहिमासगो इक्को ॥१॥" [ज्योतिष्क. क. गा. ९२]

अस्या अक्षरगमनिका–आदित्यसम्बन्धिनो मासस्य मध्यात् चन्द्रस्य–चन्द्रमासस्य यो भवति विश्लेषः । इह विश्लेषे कृते सति यदवशिष्यते तदप्युपचाराद्विश्लेषः, स त्रिंशता गुणितः सन् भवत्येकोऽधिकमासः । तत्र सूर्यमासपरिमाणात् सार्द्धत्रिंशदहोरात्ररूपाच्चन्द्रमास-परिमाणमेकोनत्रिंशद्दिनानि द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा दिनस्येत्येवंरूपं शोध्यते, ततः स्थितं पश्चाद्दिनमेकमेकेन द्वाषष्टिभागेन न्यूनं, तच्च दिनं त्रिंशता गुण्यते, जातानि त्रिंशद्दिनानि एकश्च द्वाषष्टिभागः, त्रिंशता गुणितो जाताः त्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः, ते त्रिंशद्दिनेभ्यः शोध्यन्ते, ततः स्थितानि शेषाणि एकोनत्रिंशद्दिनानि द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा दिनस्य, एतावत्परिमाणश्चन्द्रमास इति भवति सूर्यसंवत्सरसत्कत्रिंशन्मासातिक्रमे एकोऽधिकमासः । युगे च सूर्यमासाः षष्टिः, ततो भूयोऽपि सूर्यसंवत्सरसत्कत्रिंशन्मासातिक्रमे द्वितीयोऽधिकमासो भवति । उक्तं च–

"सट्ठीए अइआए हवइ, हु अहिमासगो जुगद्धंमि ।
बावीसे पव्वसए हवइ, अ बीओ जुगंतंमि ॥१॥" [ज्योतिष्क. क. गा. ९३]

अस्याप्यक्षरगमनिका–एकस्मिन् युगे–अनन्तरोदितस्वरूपे पर्वणां–पक्षाणां षष्ठौ अतीतायां–षष्ठिसङ्ख्येषु पक्षेष्वतिक्रान्तेषु इत्यर्थः, एतस्मिन् अवसरे युगार्द्धे–युगार्द्धप्रमाणे एकोऽधिक-मासो भवति । द्वितीयस्त्वधिकमासो द्वाविंशे–द्वाविंशत्यधिके पर्वशते–पक्षशते–ऽतिक्रान्ते युगस्यान्ते–युगस्य पर्यवसाने भवति । तेन युगमध्ये तृतीये संवत्सरेऽधिकमासः पञ्चमे वेति द्वौ युगेऽभिवर्द्धितसंवत्सरौ । यद्यपि सूर्यवर्षपञ्चकात्मके युगे चन्द्रमासद्वयवन्नक्षत्रमासाधिक्य-सम्भवः, तथापि नक्षत्रमासस्य लोके व्यवहाराविषयत्वात् । कोऽर्थः ? यथा चन्द्रमासो लोके विशेषतो यवनादिभिश्च व्यवह्रियते, तथा न नक्षत्रमास इति । एतेषां च नक्षत्रादिसंवत्सराणां

मासदिनमानानयनादि प्रमाणसंवत्सराधिकारे वक्ष्यते । एते च चन्द्रादयः पञ्च युगसंवत्सराः पर्वभिः पूर्यन्ते, इति तानि कति प्रतिवर्षं भवन्ति ? इति पृच्छन्नाह- ॥१०५॥

पढमस्स णं भंते ! चंदसंवच्छरस्स कइ पव्वा पण्णत्ता ?, गो० चोव्वीसं पव्वा पण्णत्ता ॥ १०६ ॥

"**पढमस्स ण**"मित्यादि, '**प्रथमस्य**' युगादौ प्रवृत्तस्य **भगवन्** ! **चन्द्रसंवत्सरस्य कति** '**पर्वाणि**' पक्षरूपाणि **प्रज्ञप्तानि ?, गौतम ! चतुर्विंशतिः पर्वाणि**, द्वादशमासात्मके-(कत्वे)नास्य प्रतिमासं पर्वद्वयसम्भवात् ॥१०६॥

बितिअस्स णं भंते ! चन्दसंवच्छरस्स कइ पव्वा पण्णत्ता ?, गो० ! चउवीसं पव्वा पण्णत्ता ॥ १०७ ॥

एवं पुच्छा ततिअस्स, गो० ! छव्वीसं पव्वा प० ॥ १०८ ॥

चउत्थस्स चंदसंवच्छरस्स चोव्वीसं पव्वा प० ॥ १०९ ॥

पंचमस्स णं अभिवड्ढिअस्स छव्वीसं पव्वा पण्णत्ता । एवामेव सपुव्वाऽवरेणं पंचसंवच्छरिए जुए एगे चउव्वीसे पव्वसए पण्णत्ते, से त्तं जुगसंवच्छरे ॥ ११० ॥

द्वितीयस्य चतुर्थस्य च प्रश्नसूत्रे एवमेव । अभिवर्धितसंवत्सरसूत्रे **षड्विंशतिः पर्वाणि**, तस्य त्रयोदश चन्द्रमासात्मके(कत्वे)न प्रतिमासं पर्वद्वयसम्भवात्, एवमन्योऽभिवर्द्धितोऽपि । सर्वाग्रमाह-**एवमेव पूर्वा-ऽपरमीलनेन चतुर्विंशं पर्वशतं** भवतीत्याख्यातम् ॥१०७-११०॥

अथ तृतीयः-

पमाणसंवच्छरे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?, गोअमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा-णक्खत्ते चंदे उऊ आइच्चे अभिवड्ढिए, से त्तं पमाणसंवच्छरे ॥ १११ ॥

"**पमाणसंवच्छरे**" इत्यादि, **प्रमाणसंवत्सरः कतिविधः प्रज्ञप्तः ?, गौतम ! पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-नाक्षत्रं चान्द्रः ऋतुसंवत्सर आदित्योऽभिवर्धितश्च** । अत्र नक्षत्र-चन्द्रा-ऽभिवर्द्धिताख्याः स्वरूपतः प्रागभिहिताः, 'ऋतवः' लोकप्रसिद्धा वसन्तादयः, तद्व्यवहारहेतुः संवत्सरः ऋतुसंवत्सरः, ग्रन्थान्तरे चास्य नाम सावनसंवत्सरः कर्मसंवत्सर

इ(श्चे)ति, आदित्यचारेण दक्षिणोत्तरायणाभ्यां निष्पन्न आदित्यसंवत्सरः। प्रमाणप्रधानत्वादस्य संवत्सरस्य प्रमाणमेवाभिधीयते, तस्य च मासप्रमाणाधीनत्वादादौ मासप्रमाणम्। तथाहि-इह किल चन्द्र-चन्द्रा-ऽभिवर्द्धित-चन्द्रा-ऽभिवर्द्धितनामकसंवत्सरपञ्चकप्रमाणे युगे अहोरात्रराशिस्त्रिशदधिकाष्टादशशतप्रमाणो भवति। कथमेतदवसीयते ? इति चेत्, उच्यते, इह सूर्यस्य दक्षिणमुत्तरं वाऽयनं त्र्यशीत्यधिकदिनशतात्मकं युगे च पञ्च दक्षिणायनानि पञ्च चोत्तरायणानि इति सर्वसङ्ख्यया दशायनानि। ततस्त्र्यशीत्यधिकं दिनशतं दशकेन गुण्यते इत्यागच्छति यथोक्तो दिनराशिः। एवंप्रमाणं दिनराशिं स्थापयित्वा नक्षत्र-चन्द्र-ऋत्वादिमासानां दिनानयनार्थं यथाक्रमं सप्तषष्ट्येकषष्टिषष्टि-द्वाषष्टिलक्षणैर्भागहारैर्भागं हरेत्। ततो यथोक्तं नक्षत्रादिमासचतुष्कगतदिनपरिमाणमागच्छति। तथाहि-युगदिनराशि १८३० रूपः, अस्य सप्तषष्टिर्युगे [६७] मासा इति सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, यल्लब्धं तन्नक्षत्रमासमानम्। तथाऽस्यैव युगदिनराशेः १८३० रूपस्य एकषष्टिर्युगे [६१] ऋतुमासा इति एकषष्ट्या भागहरणे लब्धं ऋतुमासमानम्। तथा युगे सूर्यमासाः षष्टिरिति ध्रुवराशेः १८३० रूपस्य षष्ट्या भागहारे यल्लब्धं तत्सूर्यमासमानम्। तथाऽभिवर्द्धिते वर्षे तृतीये पञ्चमे वा त्रयोदश चन्द्रमासा भवन्ति, तद्वर्षं द्वादशभागीक्रियते, तत एकैको भागोऽभिवर्द्धितमास इत्युच्यते। इह किलाभिवर्द्धितसंवत्सरस्य त्रयोदशचन्द्रमासमानस्य दिनप्रमाणं त्र्यशीत्यधिकानि त्रीणि शतानि चतुश्चत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागाः। कथम् ? इति चेत्, उच्यते, चन्द्रमासमानं दिन[1] २९- ३२/६२, एतद्रूपं त्रयोदशभिर्गुण्यते जातानि सप्तसप्तत्युत्तराणि त्रीणि शतानि दिनानां [३७७], षोडशोत्तराणि चत्वारि शतानि चांशानां [४१६], ते च दिनस्य द्वाषष्टिभागाः, ततो दिनानयनार्थं द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धानि षड् दिनानि। तानि च पूर्वोक्तदिनेषु मील्यन्ते, जातानि त्रीणि शतानि त्र्यशीत्यधिकानि दिनानां चतुश्चत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागाः ३८३ $\frac{४४}{६२}$। ततो वर्षे द्वादश मासा (इति मासा)नयनाय द्वादशभिर्भागो ह्रियते लब्धा एकत्रिंशदहोरात्राः। शेषास्तिष्ठन्त्यहोरात्रा एकादश, ते च द्वादशानां भागं न प्रयच्छन्ति, तेन यदि एकादश चतुश्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागमीलनार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, तदा पूर्णो राशिर्न त्रुट्यति शेषस्य विद्यमानत्वात्, तेन सूक्ष्मेक्षिकार्थं द्विगुणीकृतया द्वाषष्ट्या चतुर्विंशत्यधिकशतरूपया एकादश गुण्यन्ते, जातं १३६४। चतुश्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागा अपि सवर्णनार्थं द्विगुणीक्रियन्ते, कृत्वा च मूलराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जातं १४५२, एषां द्वादशभिर्भागे हृते लब्धमेकविंशत्युत्तरं शतं चतुर्विंशत्युत्तरशतभागानां, एतावदभिवर्द्धितमासप्रमाणम्। एतेषां क्रमेणाङ्कस्थापना यथा-इदं च नाक्षत्रादिमासमानं, वर्षे द्वादश मासा इति द्वादशगुणं स्वस्ववर्षमानं जनयन्ति, स्थापना यथा-

१. दिन दिनभाग-के ॥

(मासमानम्)					
०	नक्षत्रः	चन्द्रः	ऋतुः	सूर्यः	अभिव०
दिन.	२७	२९	३०	३०	३१
भाग.	२१	३२	०	३०	१२१
०	६२	६२	०	६०	१२४

(संवत्सरमानम्)					
०	नक्षत्रः	चन्द्रः	ऋतुः	सूर्यः	अभिव०
दिन	३२७	३५४	३६०	३६६	३८३
भाग	५१	१२	०	०	४४
०	६७	६७	०	०	६२

नाक्षत्रादिसंवत्सरमानं, स एष प्रमाणसंवत्सर इति निगमनवाक्यम् । एषां च मध्ये ऋतुमास-ऋतुसंवत्सरावेव लोकैः पुत्रवृद्धि-कलान्तरवृद्ध्यादिषु व्यवह्रियेते, निरंशकत्वेन सुबोधत्वात्, यदाह-

"कम्मो निरंसयाए, मासो ववहारकारगो लोए ।
सेसाउ संसयाए, ववहारे दुक्करा घेत्तुं ॥१॥" [ज्योतिष्क क. गा. ९५]

अत्र व्याख्या-आदित्यादिसंवत्सरमासानां मध्ये कर्मसंवत्सरसम्बन्धी मासो निरंशतया-पूर्णत्रिंशदहोरात्रप्रमाणतया लोकव्यवहारकारकः स्यात्, शेषास्तु सूर्यादयो व्यवहारे ग्रहीतुं दुष्कराः सांशतया न व्यवहारपथमवतरन्तीति । निरंशता चैवं-षष्टिः पलानि घटिका, ते च द्वे मुहूर्त्तः, ते च त्रिंशदहोरात्रः, ते च पञ्चदश पक्षः, तौ द्वौ मासः, ते च द्वादश संवत्सर इति, शास्त्रवेदिभिस्तु सर्वेऽपि मासाः स्वस्वकार्येषु नियोजिताः । तथाहि-अत्र नक्षत्रमासप्रयोजनं सम्प्रदायगम्यम् ।

"वैशाखे श्रावणे मार्गे, पौषे फाल्गुन एव हि ।
कुर्वीत वास्तुप्रारम्भं, न तु शेषेषु सप्तसु ॥१॥" [आरम्भसिद्धिवि. ४ । श्लो. ७५]

इत्यादौ चन्द्रमासस्य प्रयोजनम् । ऋतुमासस्य तु पूर्वमुक्तम् । **"जीवे सिंहस्थे धन्विमीन-स्थितेऽर्के, विष्णौ निद्राणे चाधिमासे न लग्नं"** [ ] इत्यादौ तु सूर्यमासाऽभिवर्द्धित-मासयोरिति । पूर्वं नक्षत्रसंवत्सरादयः स्वरूपतो निरूपिताः अत्र तु दिनमानानयनादि-प्रमाणकरणेन विशेषेण निरूपिता इति न पौनरुक्त्यं विभाव्यम् । **निशीथभाष्यकाराशयेन** "नक्षत्र-चन्द्रर्तु-सूर्या-ऽभिवर्द्धितरूपकं मासपञ्चकं, तद्द्वादशगुणः संवत्सर' इति संवत्सर-पञ्चकमेव युक्तिमत्, अन्यथा उद्देशाधिकारे नक्षत्रसंवत्सरोद्देशकरणं युगसंवत्सराधिकारे चन्द्राऽभिवर्द्धित-योरुद्देशकरणं पुनः प्रमाणसंवत्सराधिकारे तेषामेव प्रमाणकरणमित्यादिकं गुरवे गौरवाय भवति, यत्तु **स्थानाङ्गचन्द्रप्रज्ञप्त्यादावत्र** चोपाङ्गे इत्थं संवत्सरपञ्चकवर्णनं तद् बहुश्रुतगम्यम् ॥१११॥

अथ लक्षणसंवत्सरप्रश्नमाह-

लक्खणसंवच्छरे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?, गोअमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा-

"समयं नक्खत्ता जोगं, जोअंति[१] समयं उऊ परिणमंति ।
णच्चुण्ह णाइसीओ, बहूदओ होइ णक्खत्ते ॥१॥
ससि [२]समग पुण्णमासिं, जोएंती विसमचारिणक्खत्ता ।
कडुओ बहूदओ या[३], तमाहु संवच्छरं चंदं ॥२॥
विसमं पवालिणो परिणमन्ति, अणुदूसु दिंति पुप्फ-फलं ।
वासं न सम्म वासइ, तमाहु संवच्छरं कम्मं ॥३॥
पुढवि-दगाणं तु रसं, पुप्फ-फलाणं च देइ[४] आइच्चो ।
अप्पेण वि वासेणं, सम्मं निप्फज्जए सासं ॥४॥
आइच्चतेजतविआ, खणलवदिवसा उऊ परिणमन्ति ।
[५]पूरेइ अ णिण्णथले, तमाहु अभिवड्ढिअं जाण ॥५॥" ॥ ११२ ॥

"**लक्खणसंवच्छरे णं भंते !**" इत्यादि, **लक्षणसंवत्सरो भदन्त ! कतिविधः प्रज्ञप्तः ?, गौतम ! पञ्चविधः प्रज्ञप्तः**, नक्षत्रादिभेदात् । **तद्यथा 'समकं'** समतया **'नक्षत्राणि'** कृत्तिकादीनि **'योगं'** कार्त्तिकीपौर्णिमास्यादितिथिभिः सह सम्बन्धं **'योजयन्ति'** कुर्वन्तीत्यर्थः । इदमुक्तं भवति-यानि नक्षत्राणि यासु तिथिषूत्सर्गतो भवन्ति-यथा कार्तिक्यां कृत्तिकास्तानि तास्वेव यत्र भवन्ति, यथोक्तम्-

"जेट्ठो वच्चइ मूलेण, सावणो धणिट्ठाहिं ।
अद्दासु अ मग्गसिरो, सेसा नक्खत्तनामिआ मास ॥१॥" [ ] त्ति,

तथा यत्र [**समकं**] समतयैव **ऋतवः परिणमन्ति** न विषमतया, कार्त्तिक्या अनन्तरं हेमन्तर्तुः पौष्या अनन्तरं शिशिरर्तुरित्येवमवतरन्तीति भावः । यश्च संवत्सरो **नात्युष्णः**

१. अकब J12 । जोएनि-मु. ॥ २. बाबु खत्रिपमु. । समयं-अब J12 । समय-कस । सगल० स्थानाङ्गे ५।२१३।२ ॥ ३. अखब । आ-पमु. ॥ ४. V J12 । सस्स-कखत्रि पमु. ॥ ५. पुरेंति य णिण्णतले-अब J12 । "स्थानाङ्गे (५।२१३।५) पूरेति रेणु थलयाइं इति पाठो लभ्यते, किन्तु सूर्यप्रज्ञप्ति-चन्द्रप्रज्ञप्त्योः (१०।१२९) 'पूरेति णिण्णथलए' इति पाठो दृश्यते । वृत्तिकृता मलयगिरिणाऽपि (जीवा. वृत्तौ) निम्नस्थानानि स्थलानि च जलेन पूरयति-इति व्याख्यातमस्ति ।" इति V पृ. ५६८ टि. ११ ॥

नातिशीत:, तथा च **बहूदक:**, स च **भवति** लक्षणतो निष्पन्न इति नक्षत्रचारलक्षणलक्षितत्वात् **नक्षत्र**संवत्सर इति । अत्र गाथाच्छन्दसि प्रथमार्द्धे मात्राया आधिक्यमप्यार्षत्वादस्य न दुष्टं, न ह्यार्षाणि छन्दांसि सर्वाणि व्यक्त्या वक्तुं शक्यानि, किञ्च यथादर्शनमनुसर्त्तव्यानि, एवमन्यत्रापि ज्ञेयमिति । अथ चन्द्र:-"**ससि समग**" इत्यादि, विभक्तिलोपात् शशिना समकं योगमुपगतानि '**विषमचारीणि**' मासविसदृशनामकानि **नक्षत्राणि** तां तां '**पौर्णमासीं**' मासान्ततिथिं '**योजयन्ति**' परिसमापयन्ति यस्मिन्निति गम्यम् । यश्च '**कटुक:**' शीता-ऽऽतप-रोगादिदोषबहुलतया परिणामदारुणो **बहूदक:**, **च**स्य दीर्घत्वं प्राकृतत्वात्, **तमाहुर्महर्षय:** '**चान्द्रं**' चन्द्रसम्बन्धिनं चन्द्रानुरोधात् तत्र मासानां परिसमाप्ते:, न माससदृशनामकनक्षत्रानुरोधत: ।

अथ कर्माख्य:-"**विसम**"मित्यादि, यस्मिन् संवत्सरे वनस्पतयो '**विषमं**' विषमकालं **प्रवालिन:** '**परिणमन्ति**' प्रवाला:-पल्लवाङ्कुरास्तद्युक्ततया परिणमन्ति, तथा '**अनृतुष्वपि**' स्वस्वऋत्वभावेऽपि **पुष्पं** च **फलं** च **ददति**, अकाले पल्लवान् अकाले पुष्प-फलानि दधते इत्यर्थ: । तथा '**वर्षं**' वृष्टिं न **सम्यग्** '**वर्षति**' करोति मेघ इति **तमाहु: संवत्सरं कर्माख्यम्** ।

अथ सौर:-"**पुढवि**" इत्यादि, **पृथिव्या उदकस्य** च तथा **पुष्पाणां फलानां च रसम्** '**आदित्य:**' आदित्यसंवत्सरो **ददाति** । तथा '**अल्पेनापि**' स्तोकेनापि '**वर्षेण**' वृष्ट्या **शस्यं** '**निष्पद्यते**' अन्तर्भूतण्यर्थत्वात् शस्यं निष्पादयति । किमुक्तं भवति ? यस्मिन् संवत्सरे पृथिवी तथाविधोदकसम्पर्कादतीव सरसा भवति, उदकमपि परिणामसुन्दररसोपेतं परिणमति, पुष्पानां च-मधूकादिसम्बन्धिनां फलानां च-आम्रफलादीनां रस: प्रचुरो भवति, स्तोकेनापि वर्षेण धान्यं सर्वत्र सम्यक् निष्पद्यते तमादित्यसंवत्सरं पूर्वर्षय उपदिशन्ति ।

अथाभिवर्द्धित:-"**आइच्च**" इत्यादि, यस्मिन् संवत्सरे **क्षण-लव-दिवसा ऋतव आदित्यतेजसा** कृत्वा अतीव**तप्ता: परिणमन्ति**, यश्च सर्वाण्यपि **निम्नस्थानानि** स्थलानि च जलेन **पूरयति** तं संवत्सरं **जानीहि** यथा '**तं**' संवत्सरम**भिवर्द्धितमाहु:** पूर्वर्षय इति ॥११२॥

सम्प्रति शनैश्चरसंवत्सरप्रश्नमाह-

सणिच्छरसंवच्छरे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?, गोअमा ! अट्ठाविसइविहे पण्णत्ते, तंजहा-

अभिई सवणे धणिट्ठा, सयभिसया दो अ होंति भद्दवया ।
रेवइ अस्सिणि भरणी, कत्तिअ तह रोहिणी चेव ॥१॥

[1]जाव उत्तराओ आसाढाओ जं वा सणिच्चरे महग्गहे तीसाए संवच्छरेहिं सव्वं णक्खत्तमण्डलं समाणेइ, से त्तं सणिच्चरसंवच्छरे ॥ ११३ ॥

"**सणिच्छर**" इत्यादि, शनैश्चरसंवत्सरो **भदन्त ! कतिविधः प्रज्ञप्तः ?, गौतम ! अष्टाविंशतिविधः प्रज्ञप्तः । तद्यथा-अभिजिच्छ**नैश्चर-संवत्सरः **श्रवण**शनैश्चरसंवत्सरः **धनिष्ठा**शनैश्चरसंवत्सरः **शतभिषक्श**नैश्चरसंवत्सरः पूर्व-**भाद्रपदा**श० सं० उत्तर**भाद्रपदा**शनैश्चर-संवत्सरः **रेवती**शनैश्चरसं० **अश्विनी**शनैश्चरसंवत्सरः **भरणी**शनैश्चरसंवत्सरः **कृत्तिका**-शनैश्चरसंवत्सरः **रोहिणी**श०सं० **यावत्**पदात् मृगशिरः-शनैश्चरसंवत्सर इत्यादि ग्राह्यम्, अन्ते **चोत्तराषाढाशनैश्चर**संवत्सरः । तत्र यस्मिन् संवत्सरे अभिजिता नक्षत्रेण सह शनैश्चरो योगमुपादत्ते सोऽभिजिच्छनैश्चरसंवत्सरः, श्रवणेन सह यस्मिन् संवत्सरे योगमुपादत्ते स श्रवणशनैश्चरसंवत्सरः, एवं सर्वत्र भावनीयम् । **अथवा शनैश्चरो महाग्रहस्त्रिंशता संवत्सरैः सर्वनक्षत्रमण्डलम**भिजिदादिकं समापयति, एतावान् काल-विशेषः त्रिंशद्वर्षप्रमाणः **शनैश्चरसंवत्सर** इति ॥११३॥

उक्ताः संवत्सराः, अथैतेषु कति मासा भवन्तीति पृच्छन्नाह-

एगमेगस्स णं भंते ! संवच्छरस्स कइ मासा पण्णत्ता ?, गोअमा ! दुवालस मासा पण्णत्ता । तेसि णं दुविहा णामधेज्जा पं० तं०-लोइआ[2] लोउत्तरिआ य । तत्थ लोइआ णामा इमे, तं०-सावणे भद्दवए जाव आसाढे । लोउत्तरिआ [3]णामा इमे, तंजहा-

[4]अभिणंदिए पइट्ठे अ, विजए पीइवद्धणे ।
सेअंसे य सिवे चेव, सिसिरे अ सहेमवं ॥१॥

णवमे वसंतमासे, दसमे कुसुमसंभवे ।
एक्कारसे निदाहे अ, [5]वणविरोहे अ बारसमे ॥२॥ ११४ ॥

"**एगमेगस्स ण**" मित्यादि, **एकैकस्य भदन्त ! संवत्सरस्य कति मासाः प्रज्ञप्ताः ?, गौतम ! द्वादश मासाः प्रज्ञप्ताः । तेषां द्विविधानि नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-**

१. द्र. ७।१२८ ॥ २. द्र. ७।१०४ ॥ ३. णामा-अकखित्रिबस नास्ति ॥ ४. अभिणादिए-अकखत्रिबस पुवृ हीवृ । क्वचिदभिनन्दन इति पठ्यते-पुवृ. ॥ चन्द्रप्रज्ञप्त्यादौ तु 'अहिणंदिए'त्ति पाठस्तत्राभिनन्दित इति हीवृ. ॥ ५. वणवरोधे-कख । वणविरोहि-त्रि हीवृ. । वणविरोधे-स ॥

लौकिकानि लोकोत्तराणि च, तत्र 'लोकः' प्रवचनबाह्यो जनस्तेषु प्रसिद्धत्वेन तत्सम्बन्धीनि लौकिकानि, 'लोकः' प्रागुक्त एव तस्मात्सम्यग्ज्ञानादिगुणयुक्तत्वेन 'उत्तराः' प्रधानाः 'लोकोत्तराः' जैनास्तेषु प्रसिद्धत्वेन तत्सम्बन्धीनि लोकोत्तराणि, अत्र वृद्धिविधानस्य वैकल्पिकत्वेन यथाश्रुतरूपसिद्धिः । **तत्र लौकिकानि नामान्यमूनि, तद्यथा-श्रावणो भाद्रपदो यावत्** करणात् आश्वयुजः कार्त्तिको मार्गशीर्षः पौषो माघः फाल्गुनश्चैत्रः वैशाखो ज्येष्ठ **आषाढ** इति । **लोकोत्तराणि नामान्यमूनि, तद्यथा**-प्रथमः श्रावणोऽ**भिनन्दितो** द्वितीयः **प्रतिष्ठित**स्तृतीयो **विजय**श्चतुर्थः **प्रीतिवर्द्धनः** पञ्चमः **श्रेयान्** षष्ठः **शिवः** सप्तमः **शिशिरः** अष्टमः **हिमवान्**, सूत्रे च पदपूरणाय सहशब्देन समासः तेन हिमवता सह शिशरि इत्यागतं शिशिरः हिमवांश्चेति **नवमो वसन्तमासो दशमः कुसुमसम्भवः एकादशो निदाघो द्वादशो वनविरोह** इति, अत्र **सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तौ** अभिनन्दितस्थाने अभिनन्दः वनविरोहस्थाने तु वनविरोधी इति ॥११४॥

अथ प्रतिमासं कति पक्षा इति प्रश्नयन्नाह-

एगमेगस्स णं भंते ! मासस्स कति पक्खा पण्णत्ता ?, गोअमा ! दो पक्खा पण्णत्ता, तं०-बहुलपक्खे अ सुक्कपक्खे अ ॥ ११५ ॥

"**एगमेगस्स**" इत्यादि, **एकैकस्य भदन्त ! मासस्य कति पक्षाः प्रज्ञप्ताः ?, गौतम ! द्वौ पक्षौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा**-कृष्णपक्षो यत्र ध्रुवराहुः स्वविमानेन चन्द्रविमानमावृणोति तेन योऽन्धकारबहुलः पक्षः स **बहुलपक्षः**, शुक्लपक्षो यत्र स एव चन्द्रविमानमावृत्तं मुञ्चति तेन ज्योत्स्नाधवलिततया शुक्लः पक्षः स **शुक्लपक्षः**, द्वौ चकारौ तुल्यताद्योतनार्थं, तेन द्वावपि पक्षौ सदृशतिथिनामकौ सदृशसङ्ख्याकौ भवत इति ॥११५॥

अथानयोर्दिवससङ्ख्यां पृच्छन्नाचष्टे-

एगमेगस्स णं भंते ! पक्खस्स कइ दिवसा पण्णत्ता ?, गोअमा ! पण्णरस दिवसा पण्णत्ता, तं०-पडिवादिवसे बितिआदिवसे जाव पण्णरसीदिवसे ॥ ११६ ॥

"**एगमेगस्स ण**"मित्यादि, **एकैकस्य 'पक्षस्य'** कृष्ण-शुक्लान्यतरस्य **भदन्त ! कति दिवसाः प्रज्ञप्ताः ?**, यद्यपि दिवसशब्दोऽहोरात्रे रूढस्तथाऽपि सूर्यप्रकाशवतः कालविशेषस्यात्र ग्रहणं, रात्रिविभागप्रश्नसूत्रस्याग्रे विधास्यमानत्वात् । **गौतम ! पञ्चदश दिवसाः प्रज्ञप्ताः**, एतच्च कर्ममासापेक्षया द्रष्टव्यं, तत्रैव पूर्णानां पञ्चदशानामहोरात्राणां सम्भवात् । **तद्यथा 'प्रतिपद्दिवसः'** प्रतिपद्यते पक्षस्याऽऽद्यतया इति प्रतिपत् प्रथमो दिवस

इत्यर्थः, तथा '**द्वितीया**' द्वितीयो **दिवसो यावत्करणात्** '**तृतीया**' तृतीयो दिवस इत्यादिग्रहः, अन्ते '**पञ्चदशी**' पञ्चदशो **दिवसः** ॥११६॥

सम्प्रत्येषां दिवसानां पञ्चदश तिथीः पिपृच्छिषुराह –

एतेसि णं भंते ! पण्णरसण्हं दिवसाणं कइ णामधेज्जा पण्णत्ता ?, गोअमा ! पण्णरस नामधेज्जा पण्णत्ता, तं०-

पुव्वंगे सिद्धमणोरमे, अ तत्तो मणोरहे चेव ।
जसभद्दे अ जसधरे, छट्ठे सव्वकामसमिद्धे अ ॥१॥

इंदमुद्धाभिसित्ते अ, सोमणस धणंजए अ बोद्धव्वे ।
अत्थसिद्धे अभिजाए, अच्चसणे सयंजए चेव ॥२॥

अग्गिवेसे उवसमे दिवसाणं होंति णामधेज्जा ॥ ११७ ॥

एतेषां भदन्त ! पञ्चदशानां दिवसानां कति नामधेयानि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम ! पञ्चदश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–प्रथमः **पूर्वाङ्गो**, द्वितीयः **सिद्धमनोरमस्**तृतीयो **मनोहरः**, चतुर्थो **यशोभद्रः**, पञ्चमो **यशोधरः**, **षष्ठः सर्वकामसमृद्धः**, सप्तम **इन्द्रमूर्द्धाभिषिक्तो**ऽष्टमः **सौमनसः**, नवमो **धनञ्जयः**, दशमो**ऽर्थसिद्ध** एकादशो**ऽभिजातो** द्वादशो**ऽत्यशनः**, त्रयोदशः **शतञ्जयः**, चतुर्दशो**ऽग्निवेश्म**, पञ्चदश **उपशम** इति **दिवसानां भवन्ति नामधेयानि** इति

एतेसि णं भंते ! पण्णरसण्हं दिवसाणं कति तिही पण्णत्ता ?, गो० ! पण्णरस तिही पण्णत्ता, तं०-नंदे भद्दे जए तुच्छे पुण्णे पक्खस्स पंचमी ।

पुणरवि णंदे भद्दे जए तुच्छे, पुण्णे पक्खस्स दसमी ।
पुणरवि णंदे भद्दे जए तुच्छे पुण्णे पक्खस्स पण्णरसी ।
एवं तिगुणा तिहीओ सव्वेसिं दिवसाणं ॥ ११८ ॥

"**एतेसि ण**"मित्यादि, '**एतेषाम्**' अनन्तरोक्तानां **पञ्चदशानां दिवसानां भदन्त ! कति तिथयः प्रज्ञप्ताः ?, गौतम ! पञ्चदश तिथयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा**–**नन्दो भद्रो जयस्तुच्छो**ऽन्यत्र रिक्तः **पूर्णः** । अत्र तिथिशब्दस्य पुंसि निर्दिष्टतया नन्दादिशब्दानामपि पुंसि निर्देशः, ज्योतिष्करण्डक-सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्त्यादौ तु नन्दा भद्रा जया इत्यादिस्त्रीलिङ्गनिर्देशेन संस्कारो

दृश्यते । स च पूर्णः पञ्चदश तिथ्यात्मकस्य **पक्षस्य पञ्चमी** इति रूढः, एतेन पञ्चमीतः परेषां षष्ठ्यादितिथीनां नन्दादिक्रमेणैव पुनरावृत्तिर्दर्शिता, तथैव सूत्रे आह-**पुनरपि नन्दो भद्रो जयस्तुच्छः पूर्णः**, स च **पक्षस्य दशमी**, अनेन द्वितीया आवृत्तिः पर्यवसिता, **पुनरपि नन्दो भद्रो जयस्तुच्छः पूर्णः**, स च **पक्षस्य पञ्चदशी** । उक्तमर्थं निगमयति-'**एवम्**', उक्तरीत्या आवृत्तित्रयरूपया '**एते**' अनन्तरोक्ता नन्दाद्याः पञ्च **त्रिगुणाः** पञ्चदशसङ्ख्याका-**स्तिथयः** '**सर्वेषां**' पञ्चदशानामपि **दिवसानां** भवन्ति, एताश्च दिवसतिथय उच्यन्ते ।

आह-दिवस-तिथ्योः कः प्रतिविशेषो येन तिथिप्रश्नसूत्रस्य पृथग्विधानम् ?, उच्यते, सूर्यचारकृतो दिवसः स च प्रत्यक्षसिद्ध एव, चन्द्रचारकृता तिथिः । कथम् ? इति चेत्, उच्यते, पूर्वपूर्णिमापर्यवसानं प्रारभ्य द्वाषष्टिभागीकृतस्य चन्द्रमण्डलस्य सदानावरणीयौ द्वौ भागौ वर्जयित्वा शेषस्य षष्टिभागात्मकस्य चतुर्भागात्मकः पञ्चदशो भागो यावता कालेन ध्रुवराहुविमानेन आवृतो भवति, अमावास्यान्ते च स एव प्रकटितो भवति तावान् कालविशेषस्तिथिः ॥११८॥

अथ रात्रिवक्तव्यप्रश्नमाह-

एगमेगस्स णं भंते ! पक्खस्स कइ राईओ पण्णत्ताओ ?, गोअमा ! पण्णरस्स राईओ पण्णत्ताओ, तं०-पडिवाराई जाव पण्णरसीराई ॥ ११९ ॥

"**एगमेगस्स**" इत्यादि, **एकैकस्य भदन्त ! पक्षस्य कति** '**रात्रयः**' अनन्तरोक्त-दिवसानामेव चरमांशरूपाः **प्रज्ञप्ताः ?, गौतम ! पञ्चदश रात्रयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-प्रतिपद्रात्रिः यावत्**करणाद् द्वितीयादिरात्रिपरिग्रहः, एवं **पञ्चदशीरात्रि**रिति ॥११९॥

एआसि णं भंते ! पण्णरसण्हं राईणं कइ णामधेज्जा पण्णत्ता ?, गो० ! पण्णरस नामधेज्जा पण्णत्ता, तंजहा-

उत्तमा य सुणक्खत्ता, एलावच्चा जसोहरा ।
सोमणसा चेव तहा, सिरिसंभूआ य बोद्धव्वा ॥१॥
विजया य वेजयंति, जयंति अपराजिआ य इच्छा य ।
समाहारा चेव तहा, तेआ य तहेव अईतेआ[१] ॥२॥
देवाणंदा णिरई[२] रयणीणं णामधिज्जाइं ॥ १२० ॥

१. अभितेया-अब-J12 ॥ २. निरतीति-पंचदश्या एव द्वितीयं नाम-हीवृ. ॥

"**एआसि ण**"मित्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमम् । उत्तरसूत्रे-**गौतम ! पञ्चदश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-उत्तमा** प्रतिपद्रात्रिः **सुनक्षत्रा** द्वितीयारात्रिः **एलापत्या** तृतीया **यशोधरा** चतुर्थी **सौमनसा** पञ्चमी **श्रीसम्भूता** षष्ठी **विजया** सप्तमी **वैजयन्ती** अष्टमी **जयन्ती** नवमी **अपराजिता** दशमी **इच्छा** एकादशी **समाहारा** द्वादशी **तेजास्त्रयोदशी अतितेजाश्चतुर्दशी देवानन्दा** पञ्चदशी **निरतिरित्यपि** पञ्चदश्या नामान्तरं, इमानि **रजनीनां नामधेयानि** ॥१२०॥

यथा अहोरात्राणां दिवस-रात्रिविभागेन संज्ञान्तराणि कथितानि तथा दिवसतिथिसंज्ञान्तराणि प्रागुक्तानि, अथ रात्रितिथिसंज्ञान्तराणि प्रश्नयन्नाह-

एयासि णं भंते ! पण्णरसण्हं राईणं कइ तिही पं० ?, गो० ! पण्णरस तिही पं०, तं०-उग्गवई भोगवई जसवई सव्वसिद्धा[1] सुहणामा ।

पुणरवि उग्गवई भोगवई जसवई सव्वसिद्धा सुहणामा ।

पुणरवि उग्गवई भोगवई जसवई सव्वसिद्धा सुहणामा । एवं तिगुणा एते तिहीओ सव्वेसिं राईणं ॥ १२१ ॥

"**एतासि णं**" इत्यादि, **एतासां भदन्त ! पञ्चदशानां रात्रीणां कति तिथयः प्रज्ञप्ताः ? गौतम ! पञ्च[दश] तिथयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा**-प्रथमा **उग्रवती** नन्दातिथिरात्रिः, द्वितीया **भोगवती** भद्रातिथिरात्रिः तृतीया **यशोमती** जयातिथिरात्रिः चतुर्थी **सर्वसिद्धा** तुच्छातिथि-रात्रिः पञ्चमी **शुभनामा** पूर्णतिथिरात्रिः, **पुनरपि** षष्ठी **उग्रवती** नन्दातिथिरात्रिः **भोगवती** भद्रातिथिः सप्तमी रात्रिः **यशोमती** जयातिथिरष्टमी रात्रिः **सर्वसिद्धा** तुच्छातिथिर्नवमी रात्रिः **शुभ**नामा पूर्णातिथिर्दशमी रात्रिः, **पुनरपि उग्रवती** नन्दातिथिरेकादशी रात्रिः **भोगवती** भद्रा-तिथिर्द्वादशी रात्रिः **यशोमती** जयातिथिस्त्रयोदशी रात्रिः **सर्वसिद्धा** तुच्छा तिथिश्चतुर्दशी रात्रिः **शुभ**नामा पूर्णातिथिः पञ्चदशी रात्रिरिति, यथा नन्दादिपञ्चतिथीनां त्रिरावृत्त्या पञ्चदश [दिन] तिथयो भवन्ति, तथोग्रवतीप्रभृतीनां त्रिरावृत्त्या पञ्चदश रात्रितिथयो भवन्तीति ॥१२१॥

अथैकस्याहोरात्रस्य मुहूर्त्तानि गणयितुं पृच्छति-

एगमेगस्स णं भंते ! अहोरत्तस्स कइ मुहुत्ता[2] पण्णत्ता ?, गोअमा ! तीसं मुहुत्ता पं०, तं०-

---

१. सव्वट्ठसिद्धा-अकखत्रिबस पुवृ. । एवमग्रेऽपि । सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तौ तु सर्वार्थसिद्धस्थाने सर्वसिद्धेति दृश्यते-पुवृ. ॥ २. मुहुत्ता मुहुत्तग्गेणं-समवायांगे-३०।३ ॥

रुद्दे सेए[2] मित्ते,[3] वाउ सुपीए तहेव अभिचंदे[1] ।
माहिंद बलव बंभे, बहुसच्चे चेव ईसाणे ॥१॥
[4]तट्ठे अ भाविअप्पा, वेसमणे वारुणे[5] अ आणंदे ।
विजए अ वीससेणे,[6] पायावच्चे उवसमे अ ॥२॥
[7]गंधव्व अग्गिवेसे, सयवसहे आयवं[8] च अममे अ ।
अणवं भोमे[9] च रिसहे,[10] सव्वट्ठे[11] रक्खसे चेव ॥३॥ १२२ ॥

"**एगमेगस्स ण**"मित्यादि, **एकैकस्य भदन्त ! अहोरात्रस्य कति मुहूर्त्ताः प्रज्ञप्ताः ?, गौतम ! त्रिंशन्मुहूर्त्ताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा**-प्रथमो **रुद्रो** द्वितीयः **श्रेयान्** तृतीयो **मित्रः**, चतुर्थो **वायुः** पञ्चमः **सुपीतः** षष्ठोऽ**भिचन्द्रः**, सप्तमो **माहेन्द्रः** अष्टमो **बलवान्** नवमो **ब्रह्मा**, दशमो **बहुसत्य** एकादश **ऐशानः**, द्वादशस्**त्वष्टा** त्रयोदशो **भावितात्मा**, चतुर्दशो **वैश्रमणः** पञ्चदशो **वारुणः** षोडश **आनन्दः**, सप्तदशो **विजयः** अष्टादशो **विश्वसेन**, एकोनविंशतितमः **प्राजापत्यो** विंशतितम **उपशमः**, एकविंशतितमो **गन्धर्वो** द्वाविंशतितमोऽ**ग्निवेश्यः**, त्रयोविंशतितमः **शतवृषभ**श्चतुर्विंशतितम **आतपवान्** पञ्चविंशतितमोऽ**ममः**, षड्विंशतितम **ऋणवान्** सप्तविंशतितमो **भौमः** अष्टाविंशतितमो **वृषभः**, एकोनत्रिंशत्तमः **सर्वार्थः** त्रिंशत्तमो **राक्षसः** ॥१२२॥

अथ तिथिप्रतिबद्धत्वात्करणानां तत्स्वरूपप्रश्नमाह-

कति णं भंते ! करणा पण्णत्ता ?, गोअमा ! एक्कारस करणा पण्णत्ता, तंजहा-बवं बालवं कोलवं थीविलोअणं[12] गराइ[13] वणिजं[14] विट्ठी सउणी चउप्पयं नागं किंत्थुग्घं[15] ॥ १२३ ॥

---

१. अभिणंदे-J12 । अकखब ॥ २. बलवं-अकत्रिबस J2 । पलंवे-समवायांगे ३०।३ ॥ ३. पण्ह-अब J12 । क्वचिद् ब्रह्मेति दृश्यते पुवृ. । पक्ष्मः-चन्द्रप्रज्ञप्तिवृत्तिः १०।८४ । अतः परं समवायाङ्गे (३०।३) नाम्नां व्यत्ययो भेदश्च दृश्यते-सच्चे आणंदे विजए वीससेणे वायावच्चे उवसमे ईसाणे तिट्ठे भावियप्पा वेसमणे वरुणे सतरिसमे गंधव्वे अग्गिवेसायणे आतवं आवधं तट्ठेव भूमहे रिसमे सबट्ठसिद्धे रक्खसे ॥ ४. तत्थे-कख । सट्ठे-त्रि, त्वष्टा हीवृ. चन्द्रप्रज्ञप्तिवृत्तिः १०।१३ ॥ ५. अपरः-चन्द्रप्रज्ञप्तिवृत्तिः १०।८४ ॥ ६. विजयसेनः-चन्द्रप्रज्ञप्तिवृत्तिः १०।८४ ॥ ७. गंधव्वे-अब J12 । गंधव्वे य-कखस ॥ ८. आयवे-मु. ॥ ९. भोमे वसहे-खत्रिपमु. ॥ १०. सत्यवान्-चन्द्रप्रज्ञप्तिवृत्ति १०।८४ ॥ ११. तिय-अब J12 । ईय-क । इय-खस । इया-त्रि ॥ १२. थीविलोवणं-अ । थीवलोवणं-ब । थीलोयणं-स ॥ १३. गराइं-त्रि । गरादि-J12 । ज्योतिःशास्त्रेषु गरादिस्थाने गरं स्त्रीविलोचनस्थाने तैतिलम्-हीवृ. ॥ इति पृ. ५७१ टि. १२ ॥ १४. वाणिज्जं-त्रि । वणिज्जं-मु. । वाणिज्यं-पुवृ. ॥ १५. किंथुग्घं-V एवमग्रेऽपि ॥

"**कति णं भंते !**" इत्यादि **कति भदन्त ! करणानि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम ! एकादश करणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-बवं बालवं कौलवं स्त्रीविलोचनम्,** अन्यत्रास्य स्थाने तैतिलमिति, गरादि अन्यत्र गरं, **वणिजं विष्टिः शकुनिः चतुष्पदं नागं किंस्तुघ्नमिति** ॥१२३॥

एतेषां च चरस्थिरत्वादिव्यक्तिप्रश्नमाह-

एतेसि णं भंते ! एक्कारसण्हं करणाणं कति करणा चरा, कति करणा थिरा पण्णत्ता ?, गो० ! सत्त करणा चरा, चत्तारि करणा थिरा पण्णत्ता, तंजहा-बवं बालवं कोलवं थिविलोअणं गरादि वणिजं[1] विट्ठी, एते णं सत्त करणा चरा । चत्तारि करणा थिरा पं०, तं०-सउणी चउप्पयं णागं किंत्थुग्घं, एते णं चत्तारि करणा थिरा पण्णत्ता ॥ १२४ ॥

"**एतेसि णं**" इत्यादि, **एतेषां भदन्त ! एकादशानां करणानां** मध्ये **कति करणानि चराणि कति करणानि स्थिराणि प्रज्ञप्तानि** ?, चकारोऽत्र गम्यः । भगवानाह-**गौतम ! सप्त करणानि चराणि** अनियततिथिभावित्वात्, **चत्वारि करणानि स्थिराणि** नियततिथिभावित्वात्, **तद्यथा**-बवादीनि सूत्रोक्तानि ज्ञेयानि, **एतानि सप्त करणानि चराणि** इत्येतन्निगमनवाक्यम् । **चत्वारि करणानि स्थिराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा**-शकुन्यादीनि सूत्रोक्तानि, **एतानि चत्वारि करणानि स्थिराणि प्रज्ञप्तानि** इति तु निगमनवाक्यं, प्रारम्भक-निगमनवाक्यद्वयभेदेन नात्र पुनरुक्तिः ॥१२४॥

एतेषां स्थाननियमं प्रष्टुमाह-

एते णं भंते ! चरा थिरा वा कया भवन्ति ?, गोअमा ! सुक्कपक्खस्स पडिवाए[2] राओ बवे करणे भवइ । बितियाए दिवा बालवे करणे भवइ, राओ कोलवे करणे भवइ, ततिआए दिवा थीविलोअणं करणं भवइ, राओ गराइ करणं भवइ, चउत्थीए दिवा वणिजं राओ विट्ठी, पंचमीए दिवा बवं राओ बालवं, छट्ठीए दिवा कोलवं राओ थीविलोअणं, सत्तमीए दिवा गराइ राओ वणिजं, अट्ठमीए दिवा विट्ठी राओ बवं, नवमीए दिवा बालवं राओ कोलवं, दसमीए दिवा थीविलोअणं राओ गराइ, एक्कारसीए दिवा वणिजं राओ विट्ठी बारसीए दिवा बवं राओ बालवं, तेरसीए दिवा कोलवं राओ

---

१. वणिज्जं-J12 । एवमग्रेऽपि ॥ २. पडिवए-कखस । पडिवदे अब J12 । एवमग्रेऽपि ॥

थीविलोअणं, चउद्दसीए दिवा गराइ करणं राओ वणिजं पुण्णिमाए दिवा विट्ठीकरणं राओ बवं करणं भवइ ।

बहुलपक्खस्स पडिवाए दिवा बालवं राओ कोलवं, बितिआए दिवा थीविलोअणं राओ गराइ, ततिआए दिवा वणिजं राओ विट्ठी, चउत्थीए दिवा बवं राओ बालवं, पंचमीए दिवा कोलवं राओ थीविलोअणं, छट्ठीए दिवा गराइ, राओ वणिजं, सत्तमीए दिवा विट्ठी राओ बवं, अट्ठमीए दिवा बालवं राओ कोलवं, णवमीए दिवा थीविलोअणं राओ गराइ, दसमीए दिवा वणिज्जं राओ विट्ठी, एक्कारसीए दिवा बवं राओ बालवं, बारसीए दिवा कोलवं राओ थीविलोअणं, तेरसीए दिवा गराइ राओ वणिज्जं, चउद्दसीए दिवा विट्ठी राओ सउणी, अमावासाए दिवा चउप्पयं राओ णागं, सुक्कपक्खस्स पाडिवए दिवा किंत्थुग्घं करणं भवइ ॥ १२५ ॥

"**एतेसि ण**"मित्यादि, सर्वं चैतन्निगदसिद्धम् । नवरं दिन-रात्रिविभागेन यत्पृथक्कथनं तत्करणानां तिथ्यर्द्धप्रमाणत्वात्, कृष्ण**चतुदर्श्यां रात्रौ शकुनिः अमावास्यायां दिवा चतुष्पदं रात्रौ नागं शुक्लपक्षप्रतिपदि दिवा किंस्तुघ्नं** चेति चत्वारि स्थिराणि, आस्वेव तिथिषु भवन्तीत्यर्थः ॥१२५॥

अथ यद्यपि सर्वस्यापि कालस्य सदा परिवर्त्तनस्वभावत्वेनाद्यन्ताभावाद्वक्ष्यमाणसूत्रारम्भोऽनुपपन्नः, तथाप्यस्त्येव कालविशेषस्याद्यन्तविचारः, अतीतः पूर्वः संवत्सरः सम्प्रतिपन्नश्चोत्तरः संवत्सर इत्यादिव्यवहारस्याध्यक्षसिद्धत्वात्, तेन कालविशेषाणामादिं पृच्छति-

किमाइआ णं भंते ! संवच्छरा, किमाइआ अयणा, किमाइआ उऊ, किमाइआ मासा, किमाइआ पक्खा, किमाइआ अहोरत्ता, किमाइआ मुहुत्ता, किमाइआ करणा, किमाइआ णक्खत्ता पण्णत्ता ?, गोअमा ! चंदाइआ संवच्छरा, दक्खिणाइया अयणा, पाउसाइआ उऊ, सावणाइआ मासा, बहुलाइआ पक्खा, दिवसाइआ अहोरत्ता, रोद्दाइआ मुहुत्ता, बालवाइआ[1] करणा, अभिजिदाइआ णक्खत्ता पण्णत्ता समणाउसो ! ॥ १२६ ॥

"**किमाइआ ण**"मित्यादि, कश्चन्द्रादिपञ्चकान्तर्वर्त्ती '**आदिः**' प्रथमो येषां ते **किमादिकाः संवत्सराः**, इदं च प्रश्नसूत्रं चन्द्रादिसंवत्सरापेक्षया ज्ञेयम्, अन्यथा

१. बवातिया - अब J12 । बवादिया-कखस । बवादीनि-पुवृ. ॥

परिपूर्णसूर्यसंवत्सरपञ्चकात्मकस्य युगस्य कः आदिः कश्चरम इति प्रश्नावकाशोऽपि न स्यात् । किं-दक्षिणोत्तरायणयोरन्यतरदादिर्ययोस्ते **किमादिके अयने**, बहुवचनं च सूत्रे प्राकृतत्वात् । कः प्रावृडादीनामन्यतर आदौ येषां ते **किमादिका ऋतवः**, कः श्रावणादिमध्यवर्त्ती आदिर्येषां ते **किमादिका मासाः**, एवं **किमादिकौ पक्षौ किमादिका अहोरात्राः [किमादिका मुहुर्त्ताः] किमादिकानि करणानि किमादिकानि नक्षत्राणि प्रज्ञप्तानी**ति प्रश्नसूत्रम् । भगवानाह-**गौतम !** चन्द्र आदिर्येषां ते **चन्द्रादिकाः संवत्सराः**, चन्द्र-चन्द्रा-ऽभिवर्द्धित-चन्द्रा-ऽभिवर्द्धितनामकसंवत्सरपञ्चकात्मकस्य युगस्य प्रवृत्तौ प्रथमतोऽस्यैव प्रवर्त्तनात्, न त्वभिवर्द्धितस्य, तस्य युगे त्रिं(चतुर्वी)शत्मासातिक्रमे सद्भावादिति । ननु युगस्यादौ वर्त्तमानत्वात् चन्द्रसंवत्सरः संवत्सराणामादिरुक्तस्तर्हि युगस्यादित्वं कथम् ?, उच्यते, युगे प्रतिपद्यमाने सर्वे कालविशेषाः सुषमसुषमादयः प्रतिपद्यन्ते युगे पर्यवस्यति ते पर्यवस्यन्ति, अन्यच्च सकलज्योतिश्चारमूलस्य सूर्यदक्षिणायनस्य चन्द्रोत्तरायणस्य च युगपत् प्रवृत्तिर्युगस्या-[1]दावेव । सोऽपि चन्द्रायणस्याभिजिद्योगप्रथमसमय एव, सूरायणस्य तु पुष्यस्य त्रयोविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु [$\frac{२३}{६७}$] व्यतीतेषु, तेन सिद्धं युगस्यादित्वमिति । तथा '**दक्षिणायनं**' संवत्सरस्य प्रथमे षण्मासास्त**दादिर्**ययोस्ते तथा, आदित्वं चास्य युगप्रारम्भे प्रथमतः प्रवृत्तत्वात्, एतच्च सूर्यायनापेक्षं वचनं, चन्द्रायनापेक्षया तु उत्तरायणस्यादिता वक्तव्या स्यात्, युगारम्भे चन्द्रस्योत्तरायणप्रवृत्तत्वात् । 'प्रावृड्ऋतुः' आषाढ-श्रावणरूपमासद्वयात्मक आदिर्येषां ते **प्रावृडादिका ऋतवः**, युगादौ ऋत्वेकदेशस्य श्रावणमासस्य प्रवर्त्तमानत्वात् । एवं **श्रावणादिका मासाः** प्रागुक्तहेतोरेव, **बहुलपक्षादिकौ पक्षौ** श्रावणबहुलपक्ष एव युगादिप्रवृत्तेः, **दिवसादिका अहोरात्राः**, मेरुतो दक्षिणोत्तरयोः सूर्योदय एव युगप्रतिपत्तेः, भरतैरवतापेक्षया इदं वचनं, विदेहापेक्षया तु रात्रौ तत्प्रवृत्तेः । तथा '**रुद्र**' त्रिंशतां मुहूर्त्तानां मध्ये प्रथमः स **आदिर्**येषां ते तथा प्रातस्तस्यैव प्रवृत्तेः । तथा **बालवादिकानि करणानि**, बहुलप्रतिपद्दिवसे तस्यैव सम्भवात् । तथा**ऽभिजिदादिकानि नक्षत्राणि**, तत एवारभ्य नक्षत्राणां क्रमेण युगे प्रवर्त्तमानत्वात्, तथाहि-उत्तराषाढानक्षत्रचरमसमयपाश्चात्ये युगस्यान्तः, ततोऽभिनवयुगस्यादिनक्षत्रमभिजिदेवेति । 'हे **श्रमण** ! हे **आयुष्मन्** !' अन्ते च सम्बोधनं शिष्यस्य पुनः प्रश्नविषयकोद्यमविधापनार्थम् ॥१२६॥

अत एवोल्लसन्मना युगेऽयनादिप्रमाणं पृच्छति-

पंचसंवच्छरिए णं भंते ! जुगे केवइआ अयणा, केवइआ उऊ, एवं मासा पक्खा अहोरत्ता, केवइआ मुहुत्ता पण्णत्ता ?, गो० ! पंचसंवच्छरिए

---

१. ०गादावेव-पुके ॥

णं जुगे दस अयणा, तीसं उऊ, सट्ठी मासा, एगे वीसुत्तरे पक्खसए, अट्ठारसतीसा अहोरत्तसया, चउप्पण्णं मुहुत्तसहस्सा णवय सया पण्णत्ता ॥ १२७ ॥

"**पंचसंवच्छरिए णं भंते ! जुगे**" इत्यादि, पञ्च संवत्सरा सौरा मानमस्येति **पञ्चसंवत्सरिकं युगम्**, अनेन नोत्तरसूत्रेण दश अयना इत्यादिकेन विरोधः, चन्द्रसंवत्सरोपयोगिनां चन्द्रायणानां तु चतुस्त्रिंशदधिकशतस्य १३४ सम्भवात्। तत्र **भदन्त ! कत्ययनानि** प्रज्ञप्तानि ?, **कियन्त ऋतवः**, **'एवम्'** इति सौत्रं पदम् एवं सर्वत्र योजना कार्येत्यर्थाभिव्यञ्जकं, तेन कियन्तो **मासाः पक्षा अहोरात्राः कियन्तो मुहूर्त्ताः प्रज्ञप्ताः** ?, भगवानाह-**गौतम ! पञ्चसंवत्सरिके युगे दश अयनानि**, प्रतिवर्ष-मयनद्वयसम्भवात्, एवं **त्रिंशदृतवः ३०**, प्रत्ययनं ऋतुत्रयसम्भवात्, अत्र सूर्यसंवत्सरषष्ठांश एकषष्टिदिनमानः सूर्यऋतुरेव, न तु ऋतुसंवत्सरषष्ठांशः षष्टिदिनप्रमाणो लौकिकर्तुः, तथा च सति षष्टिर्मासा इत्युत्तरसूत्रं विरुणद्धि। तथा **षष्टिर्मासाः** ६० सौराः, प्रतिऋतु मासद्वय-सम्भवात्, **एकविंशत्युत्तरं १२० पक्षशतं**, प्रतिमासं पक्षद्वयसम्भवात्, **अष्टादश शतानि त्रिंशदधिकान्यहोरात्राणां** प्रत्ययनं १८३ अहोरात्रास्ते च दशगुणाः १८३०, **मुहूर्त्ताश्च चतुष्पञ्चाशत्सहस्राणि नव च शतानि [५४९००]** प्रत्यहोरात्रं त्रिंशन्मुहूर्त्ता, इति युगाहोरात्राणां १८३० सङ्ख्याङ्कानां त्रिंशता गुणने उक्तसङ्ख्यासम्भवात् ॥१२७॥

उक्तं चन्द्र-सूर्यादीनां गत्यादिस्वरूपम्, अथ योगादीन् दशार्थान् विवक्षुर्द्वारगाथामाह-

जोगो १ देवय २ तारग्ग ३, गोत्त ४ संठाण ५ चंद-रवि[1]जोगा ६ ।
कुल ७ पुण्णिम अवमंसा य ८, सण्णिवाए ९ अ णेता य १०॥१॥

कति णं भंते ! णक्खत्ता पं० ?, गो० ! अट्ठावीसं णक्खत्ता पं०, तं०- अभिई १ सवणो २ धणिट्ठा ३ सयभिसया ४ पुव्वभद्दवया ५ उत्तरभद्दवया ६ रेवई ७ अस्सिणी ८ भरणी ९ कत्तिआ १० रोहिणी ११ [2]मिअसिर १२ अद्दा १३ पुणव्वसू १४ पूसो १५ अस्सेसा १६ मघा १७ पुव्वफग्गुणि १८ उत्तरफग्गुणि १९ हत्थो २० चित्ता २१ साई २२ विसाहा २३ अणुराहा २४ जिट्ठा २५ मूलं २६ पुव्वासाढा २७ उत्तरासाढा २८ इति ॥ १२८ ॥

---

१. जोगो-V। जोगे-J12 ॥ २. मियसिरं-V। मगसिरं-ब J2 ॥

"**जोगो १ देवय**" इत्यादि, '**योगः**' अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां किं नक्षत्रं चन्द्रेण सह दक्षिणयोगि किं नक्षत्रमुत्तरयोगि ? इत्यादिको दिग्योगः १ '**देवताः**' नक्षत्रदेवताः २ '**ताराग्रः**' नक्षत्राणां तारापरिमाणं ३ **गोत्राणि** नक्षत्राणां ४ **संस्थानानि** नक्षत्राणां ५ '**चन्द्र-रवियोगः**' नक्षत्राणां चन्द्रेण रविणा च सह योगः ६, '**कुलानि**' कुलसंज्ञकानि नक्षत्राणि, उपलक्षणादुपकुलानि कुलोपकुलानि च ७ कति **पूर्णिमाः** कति **अमावास्याश्च** ८ '**सन्निपातः**' एतासामेव पूर्णिमा-ऽमावास्यानां परस्परापेक्षया नक्षत्राणां सम्बन्धः ९, '**चः**' समुच्चये, '**नेता**' मासस्य परिसमापकस्त्रि-चतुरादिनक्षत्रगणः १०, '**चः**' समुच्चये, छायाद्वारं तु नेतृद्वारानुयायित्वेन न पृथक्कृतमिति ।

अथ चन्द्रस्य नक्षत्रैः सह दक्षिणादिदिग्योगो भवति तेन प्रथमतो नक्षत्रपरिपाटीमाह- "**कति णं भंते !**" इत्यादि, अत्र शब्दसंस्कारा इमे-**अभिजित् १ श्रवणः २ धनिष्ठा ३ शतभिषक् ४ पूर्वभाद्रपदा ५ उत्तरभाद्रपदा ६ रेवती ७ अश्विनी ८ भरणी ९ कृत्तिका १० रोहिणी ११ मृगशिरः १२ आर्द्रा १३ पुनर्वसु १४ पुष्यः १५ अश्लेषा १६ मघा १७ पूर्वफाल्गुनी १८ उत्तरफाल्गुनी १९ हस्तः २० चित्रा २१ स्वातिः २२ विशाखा २३ अनुराधा २४ ज्येष्ठा २५ मूलं २६ पूर्वाषाढा २७ उत्तराषाढा २८**, अयं च नक्षत्रावलिकाक्रमोऽश्विन्यादिकं कृत्तिकादिकं वा लौकिकं क्रममुल्लङ्घ्य यज्जिनप्रवचने दर्शितः, स युगादौ चन्द्रेण सहाभिजिद्योगस्य प्रथमं प्रवृत्तत्वात् । न चात्र "**बहि मूलोऽभंतरे अभिई**" [ ] इति वचनादभिजितः सर्वतोऽभ्यन्तरस्थायित्वेन नक्षत्रावलिकाक्रमेण पूर्वमुपन्यास इति वाच्यं, नक्षत्रक्रमनियमे चन्द्रयोगक्रमस्यैव कारणत्वात्, न तु सर्वा-भ्यन्तरादिमण्डलस्थायित्वस्य, अन्यथा षष्ठादिमण्डलस्थायिनां कृत्तिकादीनां भरण्यनन्तर-मुपन्यासो न स्यात् । अथ यद्यभिजितः प्रारभ्य नक्षत्रावलिकाक्रमः क्रियते तर्हि सप्तविंशति-नक्षत्राणामिव कथमस्य व्यवहारासिद्धत्वम् ?, उच्यते, अस्य चन्द्रेण सह योगकालस्याल्पीय-स्त्वेन नक्षत्रान्तरानुप्रविष्टतया विवक्षणात्, यदुक्तं **समवायाङ्गे सप्तविंशतितमे समवाये**- "**जंबुद्दीवे दीवे अभिईवज्जेहिं सत्तावीसाए णक्खत्तहिं संववहारे वट्टइ**" [सू. २७, १-२] **एतद्वृत्तिर्यथा**- "**जंबूद्वीपे न धातकीखण्डादौ अभिजिद्वर्जैः सप्तविंशत्या नक्षत्रैर्व्यवहारः प्रवर्त्तते, अभिजिन्नक्षत्र-स्योत्तराषाढाचतुर्थपादानुप्रवेशनादिति**" [ ] ॥१२८॥

अथ प्रथमोद्दिष्टं योगद्वारमाह-

एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं कयरे णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स दाहिणेणं जोअं जोएंति ? कयरे णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स

उत्तरेणं जोअं जोएंति ? कयरे णक्खत्ता जे णं चंदस्स दाहिणेण वि उत्तरेण वि पमद्दं पि जोगं जोएंति ? कयरे णक्खत्ता जे णं चंदस्स दाहिणेण वि पमद्दं पि जोअं जोएंति ? कयरे णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स पमद्दं जोअं जोएंति ?, गो० ! एतेसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं [१]तत्थ जे ते णक्खत्ता [२]जे णं सया चंदस्स दाहिणेणं जोअं जोएंति ते णं छ, तंजहा-

संठाण १ अद्द २ [३]पुस्सो ३, ऽसिलेस ४ हत्थो ५ तहेव मूलो य ६ ।
बाहिरओ बाहिरमंडलस्स, छप्पेते णक्खत्ता ॥१॥

तत्थ णं जे ते णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स उत्तरेणं जोगं जोएंति ते णं बारस, तं०-अभिई [४]सवणो धणिट्ठा सयभिसया पुव्वभद्दवया उत्तरभद्दवया रेवई अस्सिणी भरणी पुव्वाफग्गुणी [५]उत्तरफग्गुणी साई । तत्थ णं जे ते नक्खत्ता जे णं सया चंदस्स [६]दाहिणओ वि उत्तरओ वि पमद्दं पि जोगं जोएंति ते णं सत्त, तंजहा-कत्तिआ रोहिणी पुणव्वसू मघा चित्ता विसाहा अणुराहा । तत्थ णं जे ते णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स दाहिणओ वि पमद्दं पि जोगं जोएंति ताओ णं दुवे आसाढाओ, सव्वबाहिरए मंडले जोगं जोएंसु वा ३ । तत्थ णं जे से णक्खत्ते जे णं सया चंदस्स पमद्दं जोगं जोएइ सा णं एगा जेट्ठा ॥ १२९ ॥

"**एतेसि ण**"मित्यादि, **एतेषां भदन्त ! अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये कतराणि नक्षत्राणि यानि सदा चन्द्रस्य 'दक्षिणेन'** दक्षिणस्यां दिशि व्यवस्थितानि **योगं योजयन्ति** ? सम्बन्धं कुर्वन्ति १ । तथा **कतराणि नक्षत्राणि यानि सदा चन्द्रस्यो[७]त्तरेण-** उत्तरस्यां दिशि व्यवस्थितानि **योगं योजयन्ति** ? २, तथा **कतराणि नक्षत्राणि यानि चन्द्रस्य दक्षिणस्यामप्युत्तरस्यामपि 'प्रमर्दमपि'** नक्षत्रविमानानि विभिद्य मध्ये गमनरूपं **योगं योजयन्ति** ? केषां नक्षत्रविमानानां मध्येन चन्द्रो गच्छतीत्यर्थः ३ । तथा **कतराणि**

---

१. तत्थ णं जेते-V । २. जे णं-अबखत्रिपस J12 नास्ति ॥ ३. पुसो-V । ४. समणो-अब J2 ॥ ५. पु. V । उत्तरा० समु. ॥ ६. दाहिणेणवि च उत्तरेणवि पमद्दंपि-V ॥ ७. पु । ०त्तरस्यां-मु. । ०त्तराणि-के ॥

नक्षत्राणि यानि चन्द्रस्य दक्षिणस्यामपि प्रमर्द्दमपि योगं योजयन्ति ? ४, तथा **कतरन्नक्षत्रं यत् सदा चन्द्रस्य प्रमर्द्दं योगं योजयति ? ५,** भगवानाह–**गौतम ! एतेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां** दिग्विचारं ब्रूम इति शेषः, **तत्र यानि 'तानि'** इति भाषामात्रे **नक्षत्राणि यानि सदा चन्द्रस्य दक्षिणस्यां योगं योजयन्ति तानि षट्, तद्यथा 'संस्थानं'** मृगशिरः १ **आर्द्रा २ पुष्यः ३ अश्लेषा ४ हस्तः ५ तथैव मूलश्च ६ बहिस्तात् 'बाह्यमण्डलस्य'** चन्द्रसत्कपञ्चदशमण्डलस्य भवन्ति । कोऽर्थः ? समग्रचारक्षेत्रप्रान्तवर्तित्वादिमानि दक्षिणदिग्व्यवस्थायीनि चन्द्रश्च द्वीपतो मण्डलेषु चरन् २ तेषामुत्तरस्थायीति दक्षिणदिग्योगः । ननु "**बहि मूलोऽब्भंतरे अभिई**" [ ] इति वचनात् मूलस्यैव बहिश्चरत्वं, तथाऽभिजित एवाभ्यन्तरचरत्वं तर्हि कथमत्र षडित्युक्तानि, वक्ष्यमाणेऽनन्तरसूत्रे च द्वादशाभ्यन्तरत इति वक्ष्यते ?, उच्यते, मृगशिरआदीनां षण्णां समानेऽपि बहिश्चारित्वे मूलस्यैव सर्वतो बहिश्चरत्वं, तेन "**बहि ! मूलो**" [ ] इत्युक्तम् । तथा अनन्तरोत्तरसूत्रे वक्ष्यमाणानां द्वादशानामप्यभ्यन्तरमण्डलचारित्वे समानेऽपि अभिजित एव सर्वतोऽभ्यन्तरवर्तित्वात् "**अब्भंतरे अभिई**" [ ] इति । **तत्र यानि 'तानी'ति** प्राग्वत् **नक्षत्राणि यानि सदा चन्द्रस्योत्तरस्यां योगं योजयन्ति तानि द्वादश, तद्यथा–अभिजित् श्रवणो धनिष्ठा शतभिषक् पूर्वभाद्रपदा उत्तरभाद्रपदा रेवती अश्विनी भरणी पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी स्वातिः** । यदा चैतैः सह चन्द्रस्य योगस्तदा स्वभावाच्चन्द्रः शेषेष्वेव मण्डलेषु स्यात्, यथा च भिन्नमण्डलस्थायिना चन्द्रेण सह भिन्नमण्डलस्थायिनक्षत्राणां योगस्तथा मण्डलविभागकरणाधिकारे प्रतिपादितं, यतः सदैवैतान्युत्तरदिगवस्थितान्येव चन्द्रेण सह योगमायान्तीति । यत्तु **समवायाङ्गे "अभिजिआइआ णं णव णक्खत्ता चंदस्स उत्तरेणं जोगं जोएंति, अभिई सवणो जाव भरणी"** [सू. ९-२-२] इत्युक्तं तन्नवमसमवायानुरोधेनाभिजिन्नक्षत्रमादौ कृत्वा निरन्तरयोगित्वेन नवानामेव विवक्षितत्वात्, उत्तरयोगिनामपि पूर्वफाल्गुन्युत्तरफाल्गुनीस्वातीनां कृत्तिका-रोहिणीमृगशिरःप्रमुखनक्षत्रयोगानन्तरमेव योगसम्भवात् । **तत्र यानि तानि नक्षत्राणि यानि सदा चन्द्रस्य दक्षिणेनापि उत्तरेणापि प्रमर्द्दमपि योगं योजयन्ति** 'अपिः' सर्वत्र परस्परसमुच्चया **तानि सप्त, तद्यथा–कृत्तिका रोहिणी पुनर्वसु मघा चित्रा विशाखा अनुराधा,** एतेषां च त्रिधापि योग इत्यर्थः । यत्तु **स्थानाङ्गे**ऽष्टमाध्ययने **समवायाङ्गे**ऽष्टमसमवाये च–"**अट्ठ णक्खत्ता चंदेण सद्धिं पमद्दं जोगं जोएंति–कत्तिआ रोहिणी पुणव्वसु महा चित्ता विसाहा अणुराहा जेट्ठा**" [सू. ८-२] इति, तत्राष्टसङ्ख्यानुरोधेनैकस्यैव प्रमर्दयोगस्य

विवक्षिततत्वेन ज्येष्ठापि सङ्गृहीता । यत्तु **लोकश्रीटीकाकृता** उभययोगीतिपदं व्याख्यानयता एतानि नक्षत्राण्युभययोगीनि चन्द्रस्योत्तरेण दक्षिणेन च युज्यन्ते कदाचिद्भेदमपि उपयान्तीति, तच्च वक्ष्यमाणज्येष्ठासूत्रेण सह विरोधीति न प्रमाणम् । तथा **तत्र ये ते नक्षत्रे सदा चन्द्रस्य दक्षिणतोऽपि प्रमर्दमपि च योगं योजयतस्ते 'द्वे आषाढे'** पूर्वाषाढो-त्तराषाढारूपे, ते हि प्रत्येकं चतुस्तारे, तत्र द्वे द्वे तारे सर्वबाह्यस्य पञ्चदशस्य मण्डलस्या-भ्यन्तरतो द्वे द्वे बहिः, ततो ये द्वे द्वे तारे अभ्यन्तरतस्तयोर्मध्येन चन्द्रो गच्छति इति तदपेक्षया प्रमर्दं योगं युङ्क्त इत्युच्यते, ये तु द्वे द्वे तारे बहिस्ते चन्द्रस्य पञ्चदशेऽपि मण्डले चारं चरतः सदा दक्षिणदिग्व्यवस्थिते, ततस्तदपेक्षया दक्षिणेन योगं युङ्क्त इत्युक्तम् । अनेन चाषाढाद्वयमपि प्रमर्दयोगिनक्षत्रगणमध्ये कथं नोक्तमिति वदतो निरासः, अनयोर्दक्षिण-दिग्योगविशिष्टप्रमर्दयोगस्य सम्भवादिति । सम्प्रत्येतयोरेव प्रमर्दयोगभावनार्थं किञ्चिदाह–ते च नक्षत्रे सदा **सर्वबाह्ये मण्डले** व्यवस्थिते चन्द्रेण सह **योगमयुङ्क्तां युङ्क्तो योक्ष्यत** इति– तथा **यत्तन्नक्षत्रं यत् सदा चन्द्रस्य 'प्रमर्दं'** प्रमर्दरूपं **योगं युनक्ति एका सा ज्येष्ठा** ॥१२९॥

अथ देवताद्वारमाह–

एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिई णक्खत्ते किंदेवयाए पण्णत्ते ?, गो० ! बम्हदेवयाए पण्णत्ते । सवणे णक्खत्ते विण्हुदेवयाए पण्णत्ते, [1]धणिट्ठा वसुदेवयाए पण्णत्ते । एएणं कमेणं णेअव्वा अणु-प[2]रिवाडीए इमाओ देवयाओ–बम्हा विण्हू वसू वरुणे [3]अय [4]अभिवड्ढी पूसे आसे जमे अग्गी पयावई सोमे रुद्दे अदिती वहस्सई सप्पे पिऊ भगे अज्जम सविआ तट्ठा वाऊ इंदग्गी मित्तो इंदे निरई आऊ विस्सा य, एवं णक्खत्ताणं एआए परिवाडीए णेअव्वा जाव उत्तरासाढा किंदेवया पण्णत्ता ?, गोअमा ! विस्सदेवया पण्णत्ता ॥ १३० ॥

"**एतेसि ण**"मित्यादि, **एतेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये भदन्त ! अभिजिन्नक्षत्रं** को देवताऽस्येति **किंदेवताकं प्रज्ञप्तम्** ?, अत्र बहुव्रीहौ कः प्रत्ययः, देवता चात्र स्वामी अधिप इतियावत् यत् तुष्ट्या नक्षत्रं तुष्टं भवति, अतुष्ट्या चाऽतुष्टं, एवमग्रेऽपि ज्ञेयम् । ननु नक्षत्राण्येव

---

१. धणिट्ठा णक्खत्ते वसु० V ॥ २. V । ०वाडीय-अकखबस J12 । ०वाडी-पमु. ॥ ३. अए-V ॥ ४. विवड्ढी-अकखब । अभिवड्ढी-त्रि J12 । अहिविड्ढी-स । अभिवृद्धिः क्वचिद् विवृद्धिर्ग्रंथांतरे अहिर्बुध्नः-पुवृ. । अभिवृद्धिः ज्योतिःशास्त्रे तु अस्याहिर्बुध्ननामेति-हीवृ. ॥

देवरूपाणि तर्हि किं तेषु देवानामाधिपत्यम् ?, उच्यते, पूर्वभवार्जिततपस्तारतम्येन तत्फलस्यापि तारतम्यदर्शनात्, मनुष्येष्विव देवेष्वपि सेव्य-सेवकभावस्य स्पष्टमुपलभ्यमानत्वात् । यदाह-"**सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो इमे देवा आणा-उववाय-वयणणिद्देसे चिट्ठंति, तंजहा-सोमकाइआ सोमदेवकाइआ विज्जुकुमारा विज्जुकुमारीओ अग्गिकुमारा अग्गिकुमारीओ वाउकुमारा वाउकुमारीओ चंदा सूरा गहा णक्खत्ता तारारूवा जे आवण्णे तहप्पगारा सव्वे ते तब्भत्तिआ तब्भारिआ सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो आणा-वयणणिद्देसे चिट्ठंती**" [ ] ति । भगवानाह-**गौतम ! ब्रह्मदेवताकं प्रज्ञप्तम्** । अत्राशयज्ञो गुरुः सूत्रेऽदृश्यमानत्वात् गूढान्यपि शिष्यप्रश्नानि निर्वचनसूत्रेणैव समाधत्ते, **श्रवणं नक्षत्रं विष्णुदेवताकं प्रज्ञप्तं, धनिष्ठा वसुदेवता प्रज्ञप्ता, 'एतेन'** उक्त-वक्ष्यमाणेन **क्रमेण 'नेतव्या'** पाठं प्रापणीया भणितव्या इत्यर्थः **'अनुपरिपाटिः'** अभिजिदादिनक्षत्रपरिपाट्यनुसारेण देवतानाम्नामावलिका । **इमाश्च देवतास्ताः-ब्रह्मा १ विष्णुः २ वसुः ३ वरुणः ४ अजः ५ अभिवृद्धिः ६** अन्यत्राहिर्बुध्न इति, **'पूषा'** पूषनामको देवः, न तु सूर्यपर्यायस्तेन रेवत्येव पौष्णमिति प्रसिद्धम् ७, **अश्व**नामको देवविशेषः **८ यमः ९ अग्निः १० प्रजापति**रिति ब्रह्मनामको देवः, अयं च ब्रह्मणः पर्यायान् सहते, तेन ब्राह्म्यमित्यादि प्रसिद्धं ११ **'सोमः'** चन्द्रस्तेन सौम्यं चान्द्रमसमित्यादि प्रसिद्धम् १२ **'रुद्रः'** शिवस्तेन रौद्री कालिनीति प्रसिद्धम् १३, **'अदितिः'** देवविशेषः १४ **'बृहस्पतिः'** प्रसिद्धः १५ सर्पः १६ **पितृ**नामा १७ **भग**नामा देवविशेषः १८ **'अर्यमा'** अर्यमनामको देवविशेषः १९ **'सविता'** सूर्यः २० **'त्वष्टा'** त्वष्टृनामको देवस्तेन त्वाष्ट्री चित्रा इति प्रसिद्धं २१, **वायुः** २२ **इन्द्राग्नी** तेन विशाखा द्विदैवतमिति प्रसिद्धं २३, **'मित्रः'** मित्रनामको देवः २४ **इन्द्रः २५ 'नैर्ऋतः'** राक्षसस्तेन मूल आस्रप इति प्रसिद्धम् २६ **'आपः'** जलनामा देवस्तेन पूर्वाषाढा तोयमिति प्रसिद्धं २७, **'विश्वे'** देवास्त्रयोदश २८, सूत्रालापकान्तस्थितश्चकारः समुच्चये, **'एवम्'** अभिजित्सूत्रदर्शितप्रश्नोत्तररीत्या **नक्षत्राणां** देवा इत्यधिकारतो गम्यम् । **'एतया'** ब्रह्म-विष्णुवरुणादिरूपया **परिपाट्या,** न तु परतीर्थिकप्रयुक्ताश्व-यम-दहन-कमलजादिरूपया **'नेतव्या'** परिसमाप्ति प्रापणीया **यावदुत्तराषाढा किंदेवता प्रज्ञप्ता ?, गौतम ! विश्वदेवता प्रज्ञप्ते**ति ॥१३०॥

अथ तारासङ्ख्याद्वारमाह-

एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिईणक्खत्ते कतितारे पण्णत्ते ?, गोअमा ! तितारे पं०, एवं णेअव्वा जस्स जत्तिआओ ताराओ । इमं च तं तारग्गं-

तिग-तिग-पंचेग[1]-सयं दुग-दुग-बत्तीसग[2] तिगं तिगं च ।
छ-प्पंचग-तिग-एक्कग-पंचग[3]-तिग-छक्कगं चेव ॥१॥
सत्तग-दुग-दुग-पंचग एक्केक्कग पंच-चउ-तिगं चेव ।
एक्कारसग-चउक्कं चउक्कगं चेव तारग्गं ॥२॥ १३१ ॥

"**एतेसि ण**"मित्यादि, **एतेषां भदन्त ! अष्टाविंशते-र्नक्षत्राणां** मध्येऽ**भजिन्नक्षत्रं** कति तारा अस्येति **कतितारं प्रज्ञप्तम्** ?, भगवानाह-**गौतम** ! तिस्रस्तारा अस्येति **त्रितारं प्रज्ञप्तम्**, ताराश्चात्र ज्योतिष्कविमानानि, अधिकारान्नक्षत्र-जातीयज्योतिष्कानां विमानानीत्यर्थः, न तु पञ्चमजातीयज्योतिष्कास्तारकाः । न हि तासां द्वि-त्रादिविमानैरेकं नक्षत्रमिति व्यवहारः सम्यक्, अन्यजातीयेन समुदायेनान्यजातीयः समुदायीति विरोधात्, विरोधश्चात्र नक्षत्राणां विमानानि महान्ति तारकाणां च विमानानि लघूनि, तथा जम्बूद्वीपे एकशशिनस्तारकाणां कोटाकोटीनां षट्षष्टिः सहस्राणि नव शतानि पञ्चसप्ततिश्चेति या सङ्ख्या साऽप्यतिशयीत नक्षत्रसङ्ख्या चाष्टाविंशतिरूपा मूलत एव समुच्छिद्येत । ननु तर्हि एतेषां विमानानां केऽधिपाः ?, उच्यते, अभिजिदादिर्नक्षत्र एव, यथा कश्चित् महर्द्धिको गृहद्वयादिपतिर्भवति, **'एवं'** अभिजिन्नक्षत्रन्यायेन **नेतव्या 'यस्य'** नक्षत्रस्य **यावत्यस्ताराः** ।

इदं च 'तत्ताराग्रं' तारासङ्ख्यापरिमाणं, यथा-**त्रिकम**भिजितः १ **त्रिकं** श्रवणस्य २ **पञ्चकं** धनिष्ठायाः ३ **शतं** शतभिषजः ४ **द्विकं** पूर्वभाद्रपदायाः ५ **द्विकमु**त्तरभाद्रपदायाः ६ **द्वात्रिंशद्रे**वत्याः ७ **त्रिकम**श्विन्याः ८ तथा **त्रिकं** भरण्याः ९, **'चः'** समुच्चये, **षट्** कृत्तिकायाः १० **पञ्चकं** रोहिण्याः ११ **त्रिकं** मृगशिरसः १२ **एककम्** आर्द्रायाः १३ **पञ्चकं** पुनर्वस्वोः, यदन्यत्र चतुष्कमाहुस्तन्मतान्तरं १४ **त्रिकं** पुष्यस्य १५ **षट्कम् अश्ले**षायाः १६ **'चैवे'**ति समुच्चये **सप्तकं** मघायाः १७ **द्विकं** पूर्वफाल्गुन्याः १८ **द्विकमु**त्तरफाल्गुन्याः १९ **पञ्चकं** हस्तस्य २० **एकश्चि**त्रायाः २१ **एककः** स्वातेः २२ **पञ्च** विशाखायाः २३ **चत्वारो**ऽनुराधायाः २४ **त्रिकं** ज्येष्ठायाः २५ **'चैव'**शब्दः पूर्ववत् **एकादशकं** मूलस्य २६ **चतुष्कं** पूर्वाषाढायाः २७ **चतुष्कमु**त्तराषाढायाः २८ **'चैवे'**ति तथैव **ताराग्रमिति** । तारासङ्ख्याकथनप्रयोजनं च यन्नक्षत्रं यावत्तारासङ्ख्यापरिमाणकं भवति, तत्सङ्ख्याकां तिथिं शुभकार्ये वर्जयेत्,

१. V पंचेय सयं J1 । पंचगसय० पमु. । पंचग दस-चंद्रप्रज्ञप्तिवृत्तौ प्राभृत ९ अन्ते ॥ २. V J12 । बत्तीसगतिगं तह तिगं च पमु. ॥ ३. पंच-तिग-अकखत्रिब ॥

शतभिषग्रेवत्योस्तु क्रमेण शतस्य द्वात्रिंशतश्च तिथिभिर्भागे हृते यदवशिष्टं तत्प्रमाणा तिथिर्वर्जनीयेति ॥१३१॥

अथ गोत्रद्वारम्-इह नक्षत्राणां स्वरूपतो न गोत्रसम्भवः, यत इदं गोत्रस्य स्वरूपं लोके प्रसिद्धिमुपागमत्-प्रकाशकाद्यपुरुषाभिधानस्तदपत्यसन्तानो गोत्रं, यथा गर्गस्यापत्यसन्तानो गर्गाभिधानो गोत्रमिति । न चैवंस्वरूपं नक्षत्राणां गोत्रं सम्भवति, तेषामौपपातिकत्वात्, तत इत्थं गोत्रसम्भवो द्रष्टव्यः-यस्मिन्नक्षत्रे शुभैरशुभैर्वा ग्रहैः समानं यस्य गोत्रस्य यथाक्रमं शुभमशुभं वा भवति तत्तस्य गोत्रम् । ततः प्रश्नोपपत्तिः, तत्सूत्रम्-

एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं [1]अभिई णक्खत्ते किंगोत्ते पं० ?, गो० ! मोग्गलायणसगोत्ते, गाहा-

मोग्गलायण १ संखायणे २ अ, तह [2]अग्गभाव ३ कण्णिल्ले ४ ।
तत्तो अ [3]जाउकण्णे ५, [4]धणंजए ६ चेव बोद्धव्वे ॥१॥
पुस्सायणे ७ अ [5]अस्सायणे अ, ८ [6]भग्गवेसे ९ अ [7]अग्गिवेसे १० अ ।
गोअम ११ भारद्दाए १२, लोहिच्चे १३ चेव वासिट्ठे १४॥२॥
ओमज्जायण १५ [8]मंडव्वायणे १६ अ, पिंगायणे १७ अ [9]गोवल्ले १८ ।
कासव १९ कोसिय २० दब्भा २१ य, चामरच्छाय २२ सुंगा य २३॥३॥
गोलव्वायण २४ तेगिच्छायणे २५ अ, कच्चायणे २६ हवइ मूले ।
तत्तो अ वज्झिआयण २७, वग्घावच्चे अ गोत्ताइं २८॥४॥ १३२ ॥

"**एतेसि ण**"मित्यादि, **एतेषामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां** मध्ये **भदन्त ! अभिजिन्नक्षत्रं किंगोत्रं प्रज्ञप्तम् ?, गौतम ! 'मौद्गल्यायनैः'** मौद्गल्यगोत्रीयैः **'सगोत्रं'** समानगोत्रं मौद्गल्यायनगोत्रमित्यर्थः, एवमग्रेऽपि ज्ञेयम् । अथाऽभिजितः प्रारभ्य लाघवार्थमत्र गाथा इति,

---

१. अभियाई-अब J12 । अभिई आदि-कख ॥ २. अत्तभाव-अखबस J12 । अत्त-क । अग्गताव-त्रि हीवृ. । "सूर्यप्रज्ञप्तेश्चन्द्रप्रज्ञप्तेश्च हस्तलिखितादर्शेषु उद्धृतासु जम्बूद्विपगाथासु 'अग्गभाव' इति पदं दृश्यते ।" इति V पृ. ५७४ टि. ७ ॥ ३. जातुकण्णी-अब J12 । जानुकण्णं-क । गजाउकण्णी-ख ॥ ४. धणंजया-अखब J12 । धणंधया-क । ५. अस्सासयणी-अखब J2 । अस्सायणी-स ॥ ६. भग्गवेसी-J12 अकब । भग्गाविसी-ख ॥ ७. अग्गवेसी-अकखव J12 ॥ ८. मणुव्वायणे-अकखब J12 ॥ ९. गोवल्ला-अकखब J12 ॥

ताश्चेमाः-"**मोग्गलायण**"मित्यादि, मौद्गल्यायनं १ **साङ्ख्यायनं** २ **तथा अग्रभावं** ३ "**कण्णिल्ल**"मित्यत्र पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् कण्णिलायनमिति ग्राह्यं ४ **ततश्च जातुकर्णं** ५ **धनञ्जयं** ६ '**चैव**' शब्दः समुच्चये **बोद्धव्यम्** । **पुष्यायनं** ७ '**चः**' समुच्चये **आश्वायनं च** ८ **भार्गवेशं च** ९ **अग्निवेश्यं च** १० **गौतमं** ११ **भारद्वाजं** १२ **लौहित्यं** '**चैवे**'ति अत्रापि पूर्ववदुपचारे लौहित्यायनं १३ **वासिष्ठम्** । १४ **अवमज्जायनं** १५ **माण्डव्यायनं च** १६ **पिङ्गायनं च** १७ '**गोवल्लमि**'त्यत्रापि पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् गोवल्लायनं १८, **काश्यपं** १९ **कौशिकं** २० **दार्भायनं** २१ **चामरच्छायनं** २२ **शुङ्गायनं** २३ त्रिष्वेषु णकारलोपः प्राकृतशैलीप्रभवो गाथाबन्धानुलोम्याय । **गोलव्यायनं** २४ **चिकित्सायनं** २५ **कात्यायनं भवति मूले** २६, **ततश्च वज्झियायण**नामकं बाभ्रव्यायनं २७ **व्याघ्रापत्यं** २८ **चेति गोत्राणि** ॥१३२॥

अथ संस्थानद्वारम्-

एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिईणक्खत्ते किंसंठिए पण्णत्ते ?, गोअमा ! गोसीसावलिसंठिए पं०, गाहा-

गोसीसावलि १ [1]काहार २, सउणि ३ पुप्फोवयार ४ वावी य ५-६ ।
णावा ७ आसक्खंधग ८, भग ९ [2]छुरघरए १० अ सगडुद्धी ११॥१॥
मिगसीसावलि १२ रुहिरबिंदु, १३ तुल १४ वद्धमाणग १५ [3]पडागा १६ ।
पागारे १७ पलिअंके, १८-१९ हत्थे २० मुहफुल्लए २१ चेव ॥२॥
खीलग २२ दामणि २३, एगावली २४ अ गयदंत २५ [4]विच्छुअअले [5]य २६ ।
गयविक्कमे २७ अ तत्तो, [6]सीहनिसाई य २८ संठाणा ॥३॥ १३३ ॥

"**एतेसि ण**"मित्यादि, **एतेषां भदन्त ! अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणाम् अभिजिन्नक्षत्रं** कस्येव '**संस्थितं**' संस्थानं यस्य तत्तथा, **प्रज्ञप्तम्** ?, **गौतम ! गोशीर्षं** तस्य '**आवली**' तत्पुद्गलानां दीर्घरूपा श्रेणिस्तत्समसंस्थानं **प्रज्ञप्तम्** । एवं शेषनक्षत्रसंस्थानानि ज्ञेयानि, तानीमानि-

---

१. कासार-त्रि ॥ २. छुरधारा-इति ज्योतिष्करण्डकवृत्तौ ॥ ३. पडाला-J12 अब ॥ ४. विच्छलंगूल-त्रि । "चन्द्रप्रज्ञप्ति-सूर्यप्रज्ञप्त्योरादर्शेषु विच्छयनंगोलसंठिते, विच्छुयलंगोल० इति पाठद्वयं लभ्यते, प्रस्तुतसूत्रस्य एकस्मिन्नादर्शे 'विच्छुलंगुल० इति पाठो दृश्यते किन्तु ताडपत्रीयादिप्राचीनादर्शेषु 'विच्छअयले' इति पाठो विद्यते तेनासौ मूले स्वीकृतः 'अल' शब्दस्यार्थावबोधाय द्रष्टव्यः पाइअसद्दमहण्णवो ।" इति V पृ. ५७५ टि. ३ ॥ ५. या-अकखत्रिस । वा-ब J2 ॥ ६. V J2 । सीहनिसीही-मु. ॥

अभिजितो **गोशीर्षावलिसंस्थानं** १, श्रवणस्य **कासारसंस्थानं** २, धनिष्ठायाः **शकुनि**पञ्जरसंस्थानं ३, शतभिषजः **पुष्पोपचार**संस्थानं ४, पूर्वभाद्रपदायाः अर्द्धवापीसंस्थानम् ५, उत्तरभाद्रपदाया अप्यर्द्धवापीसंस्थानम् ६, एतदर्द्धवापीद्वयमीलनेन परिपूर्णा वापी भवति तेन सूत्रे **वापी**त्युक्तम्, अतः संस्थानानां न सङ्ख्यान्यूनता विचारणीया, रेवत्या **नौ**संस्थानम् ७, अश्विन्या **अश्वस्कन्ध**संस्थानं ८, भरण्या **भग**संस्थानं ९, कृत्तिकायाः **क्षुराधार**-संस्थानं १०, रोहिण्याः **शकटोद्धि**संस्थानम् ११ । मृगशिरसो **मृगशीर्ष**संस्थानम् १२, आर्द्राया **रुधिरबिन्दु**संस्थानं १३, पुनर्वस्वोः **तुला**संस्थानं १४, पुष्यस्य सुप्रतिष्ठित**वर्द्धमानक**संस्थानम् १५, अश्लेषायाः **पताका**संस्थानं १६, मघायाः **प्राकार**संस्थानं १७, पूर्वफल्गुन्या अर्द्धपल्यङ्क-संस्थानम् १८, उत्तरफल्गुन्या अप्यर्द्धपल्यङ्कसंस्थानम् १९, अत्रापि अर्द्धपल्यङ्कद्वयमीलनेन परिपूर्णः **पल्यङ्को** भवति तेन सङ्ख्यान्यूनता न, हस्तस्य **हस्त**संस्थानं २०, चित्रायाः **मुख**मण्डनसुवर्ण**पुष्प**संस्थानम् २१ । स्वातेः **कीलक**संस्थानं २२, विशाखायाः **'दामनिः'** पशुरज्जुसंस्थानम् २३, अनुराधाया **एकावलि**संस्थानं २४, ज्येष्ठाया **गजदन्त**संस्थानं २५, मूलस्य **वृश्चिकलाङ्गूल**संस्थानं २६, पूर्वाषाढाया **गजविक्रम**संस्थानं २७, उत्तराषाढायाः **सिंहनिषीदन**संस्थानं ['चः'] २८ इति **संस्थानानि** ॥१३३॥

अथ चन्द्र-रवियोगद्वारम्-

एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिईणक्खत्ते कति मुहुत्ते[1] चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ ?, गोअमा ! णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभाए मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं जोगं जोएइ, एवं इमाहिं[2] गाहाहिं अणुगंतव्वं-

अभिइस्स चंदजोगो, सत्तट्ठिखंडिओ[3] अहोरत्तो ।
ते हुंति णव मुहुत्ता, सत्तावीसं कलाओ अ ॥१॥
सयभिसया भरणीओ, अद्दा अस्सेस साइ जेट्ठा य ।
एते छण्णक्खत्ता, पण्णरसमुहुत्तसंजोगा ॥२॥
तिण्णेव उत्तराइं, पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य ।
एए छण्णक्खत्ता, पणयालमुहुत्तसंजोगा ॥३॥

---

१. मुहुत्तेणं-J1 ॥ २. इमा गाहाहिं णेयव्वा-J12 ॥ ३. सत्तहिं खंडिओ-J12 ॥

अवसेसा णक्खत्ता, पण्णरस वि हुंति तीसइमुहुत्ता ।
चंदम्मि एस जोगो, णक्खत्ताणं मुणेअव्वो ॥४॥ १३४ ॥

"**एतेसि ण**"मित्यादि, **एतेषां** च **भदन्त ! अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां** मध्ये **अभिजिन्नक्षत्रं कति मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्द्धं योगं योजयति** ?, सम्बन्धं करोतीत्यर्थः । **गौतम ! नव मुहूर्त्तान्** एकस्य च मुहूर्त्तस्य **सप्तविंशतिं सप्तषष्टिभागान्** [९ $\frac{२७}{६७}$] **चन्द्रेण सार्द्धं योगं योजयति** । कथमेतदवसीयते ?, उच्यते, इहाभिजिन्नक्षत्रं सप्तषष्टिखण्डीकृतस्याहोरात्रस्यैकविंशतिभागान् [$\frac{२१}{६७}$] चन्द्रेण सह योगमुपैति, ते च एकविंशतिरपि भागा मुहूर्त्तगतभागकरणार्थम् अहोरात्रे त्रिंशन्मुहूर्त्ता इति त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि षट् शतानि त्रिंशदधिकानि ६३०, एषां सप्तषष्ट्या ६७ भागे हृते लब्धा नव मुहूर्त्ता एकस्य मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागा ९-२७/६७, अयं च सर्वजघन्यश्चन्द्रस्य नक्षत्रयोगकालः । यत्तु **श्रीअभयदेवसूरिपादैः समवायाङ्गे नवमसमवायवृत्तौ** नव मुहूर्त्तान् चतुर्विंशतिं च द्वाषष्टिभागानेकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिधा छिन्नस्य षट्षष्टिभागान् [९ $\frac{२४}{६२}$ $\frac{६६}{६७}$] यावदस्य चन्द्रयोग उक्तः, तत्तु पूर्णिमा-ऽमावास्यापरिसमाप्तिकालभाविनक्षत्रपरिज्ञानोपाये उक्तात् षट्षष्टिर्मुहूर्त्ताः पञ्च च द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिच्छिन्नस्यैकः सप्तषष्टिभाग [६६ $\frac{५}{६२}$ $\frac{१}{६७}$] इत्येवंरूपाद् ध्रुवराशेर्नक्षत्रशोधनाधिकारे सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागा [$\frac{२१}{६७}$] दुःशोधा इति सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागाः सवर्णनार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, जातं १६७४, एषां सप्तषष्ट्या भागे हृते आगतं २४/६२ ६६/६७ ।

"**एव**"मिति यथाऽभिजित एकविंशतिभागेभ्यः समधिकनवमुहूर्त्तरूपो योगकाल आनीतस्तथाप्रकारेणेत्यर्थः, '**इमाभिः**' वक्ष्यमाणाभि**र्गाथाभिरवगन्तव्यं**, चन्द्रयोगकालमानमिति गम्यम् । तद्यथा-**अभिजितश्चन्द्रयोगः सप्तषष्टिखण्डी**कृतोऽ**होरात्रः** कल्प्यते, **ते** पूर्वोक्ता एकविंशतिभागाः पूर्वोक्तेन करणेन **नव मुहूर्त्ताः सप्तविंशतिश्च कला** भवन्ति । तथा **शतभिषक् भरणी आर्द्रा अश्लेषा स्वातिः ज्येष्ठा, 'चः'** समुच्चये, **एतानि षट् नक्षत्राणि पञ्चदश मुहूर्त्तान्** । यावत् चन्द्रेण सह '**संयोगः**' सम्बन्धो येषां तानि तथा । तद्यथा-एतेषां षण्णामपि नक्षत्राणां प्रत्येकं सप्तषष्टिखण्डीकृतस्याहोरात्रस्य सत्कान् सार्द्धान् त्रयस्त्रिंशद्भागान् $\frac{३३ १/२}{६७}$ यावच्चन्द्रेण सह योगो भवति, ततो मुहूर्त्तगतसप्तषष्टिभागकरणार्थं त्रयस्त्रिंशत् त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि नव शतानि नवतानि-नवत्यधिकानि ९९०, यदपि चार्द्धं तदपि त्रिंशता गुणयित्वा द्विकेन भज्यते, लब्धाः पञ्चदश मुहूर्त्तस्य सप्तषष्टिभागाः [$\frac{१५}{६७}$] ते

पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जातः पूर्वराशिः सहस्रं पञ्चोत्तरं १००५, अस्य सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धाः पञ्चदश मुहूर्त्ता इति । तथा **तिस्र 'उत्तराः'** उत्तरफल्गुनी उत्तराषाढा उत्तरभाद्रपदा इत्येवंरूपाः, **पुनर्वसू रोहिणी विशाखा, 'चः'** समुच्चये, **एतानि** एवकारस्य भिन्नक्रमत्वादेतान्येवेति योज्यं, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, **षट् नक्षत्राणि पञ्चचत्वारिंशतं ४५ मुहूर्त्तान्** यावच्चन्द्रेण सह **संयोगो** येषां तानि तथा । तद्यथा-अत्रापि षण्णां नक्षत्राणां प्रत्येकं सप्तषष्टिखण्डी-कृतस्याहोरात्रस्य सत्कानां भागानां शतमेकमेकस्य च भागस्यार्द्धं १०० $\frac{१}{२}$ चन्द्रेण सह योगः, तत्रैषां भागानां मुहूर्त्तगतभागकरणार्थं शतं प्रथमतस्त्रिंशता गुण्यते जातानि त्रीणि सहस्राणि पञ्चदशोत्तराणि ३०१५, एतेषां सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धाः पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्ता इति । तथा **'अवशेषाणि'** उक्तातिरिक्तानि **'नक्षत्राणि'** श्रवणो धनिष्ठा पूर्वभाद्रपदा रेवती अश्विनी कृत्तिका मृगशिरः पुष्यो मघा पूर्वाफाल्गुनी हस्तश्चित्राऽनुराधा मूलः पूर्वाषाढा इति **पञ्चदशापि भवन्ति 'त्रिंशन्मुहूर्त्तानी'**ति त्रिंशन्मुहूर्त्तान् यावच्चन्द्रेण सह योगमश्नुवते । तद्यथा-एषां पञ्चदशानां नक्षत्राणां चन्द्रेण सह सम्पूर्णमहोरात्रं यावद्योगः, ततो मुहूर्त्तगतभागकरणार्थं सप्तषष्टिः त्रिंशता गुण्यते, जाते द्वे सहस्रे दशोत्तरे २०१०, एषां च सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धास्त्रिंशन्मुहूर्त्ता इति । **'चन्द्रे'** चन्द्रविषये **'एषः'** अनन्तरोक्तो **योगो नक्षत्राणां ज्ञातव्य** इति । **"एतानि चाभिजिद्वर्जानि क्रमेणार्द्धक्षेत्र-द्व्यर्द्धक्षेत्र-समक्षेत्रसंज्ञकानि सिद्धान्ते रूढानि, एषां किल चिरन्तनज्योतिःशास्त्रेष्वेवं भुक्तिरासीत्, न तु यथाऽधुना सर्वाण्यप्येकदिनभोगानी" [ ]** ति **श्रीमदावश्यकबृहद्वृत्तिटिप्पनके,** एषां चोपयोगः

"दुन्नि उ दिवड्ढखित्ते, दब्भमया पुत्तला उ कायव्वा ।
समखित्तंमि अ इक्को, अवड्ढखित्ते न कायव्वो ।१॥" [ ] इत्यादि ॥१३४॥

उक्तश्चन्द्रयोगः । अथ रवियोगः-

एतेसि णं भंते ! अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिईणक्खत्ते कति अहोरत्ते सूरेण सद्धिं जोगं जोएइ ?, गो० ! चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरेण सद्धिं जोगं जोएइ, एवं इमाहिं गाहाहिं णेअव्वं-

अभिई छच्च मुहुत्ते, चत्तारि अ केवले अहोरत्ते ।
सूरेण समं गच्छइ, एत्तो सेसाण वोच्छामि ॥१॥
सयभिसया भरणीओ, अद्दा अस्सेस[१] साइ जेट्ठा य ।
वच्चंति मुहुत्ते, इक्कवीस[२] छच्चेवऽहोरत्ते ॥२॥

---

१. असेस-V ॥ २. इक्कवीसाइं छच्च अहोरत्ते-अब-J12 । एक्कवीसतिं छच्च अहोरत्ते-कख ॥

तिण्णेव उत्तराइं, पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य ।
वच्चंति मुहुत्ते तिण्णि, चेव वीसं अहोरत्ते ॥३॥
अवसेसा णक्खत्ता, पण्णरस वि सूरसहगया जंति ।
बारस चेव मुहुत्ते, तेरस य समे अहोरत्ते ॥४॥ १३५ ॥

"एतेसि णं भंते !" इत्यादि, **एतेषां भदन्त ! अष्टा-विंशतेर्नक्षत्राणां** मध्ये **अभिजिन्नक्षत्रं कति अहोरात्रान् सूर्येण सार्द्धं योगं योजयति ?, गौतम ! चतुरोऽहोरात्रान् षट् च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्द्धं योगं योजयति** । कथम् ? इति चेत्, उच्यते, यन्नक्षत्रमहोरात्रस्य यावतः सप्तषष्टिभागान् चन्द्रेण सह समवतिष्ठते, तन्नक्षत्रं तावत एकविंशत्यादीनित्यर्थः, पञ्चभागान्-रात्रिन्दिवस्य पञ्चमांशरूपान्, तैः पञ्चभिरेकं रात्रिन्दिवं भवतीत्यर्थः, सूर्येण समं व्रजति । इदमत्र हृदयं-यस्य नक्षत्रस्य यावन्तः सप्तषष्टिभागाश्चन्द्रयोगयोग्यास्ते पञ्चभिर्भज्यन्ते, लब्धं तत्पञ्चमभागात्मकमहोरात्रं, शेषं त्रिशता गुणयित्वा पञ्चभिर्भज्यते लब्धं मुहूर्त्ताः, उक्तं च-

"जं रिक्खं जावइए, वच्चइ चंदेण भागसत्तट्ठी ।
तं पणभागे राइंदिअस्स, सूरेण तावइए ॥१॥" [ज्यो. क. गा. १६२] त्ति ।

तद्यथा-अभिजिन्नक्षत्रमेकविंशतिं सप्तषष्टिभागान् चन्द्रेण समं वर्तते, तत एतावतः पञ्चभागान् अहोरात्रस्य सूर्येण समं वर्तनमवसेयम्, एकविंशतेश्च पञ्चभिर्भागे हृते लब्धाश्चत्वारोऽहोरात्राः । एकः पञ्चमभागोऽवतिष्ठते, स मुहूर्तानयनाय त्रिशता गुण्यते, जातास्त्रिशत्, तस्याः पञ्चभिर्भागे हृते लब्धाः षट् मुहूर्ता इति । **'एवम्'** अभिजिन्न्यायेन शेषनक्षत्राणां सूर्ययोगकालप्ररूपणम् **'इमाभिः'** वक्ष्यमाणाभि**र्गाथाभिर्नेतव्यम्** ।

तत्रा**भिजिन्नक्षत्रं षण्मुहूर्तान् चतुरश्च 'केवलान्'** परिपूर्णान् **अहोरात्रान् सूर्येण समं गच्छति**, अत्रोपपत्तिः प्रथमत एव कृता । **अथ** ऊर्ध्वं **'शेषाणां'** नक्षत्राणां सूर्येण समं योगान् कालपरिमाणमधिकृत्येति गम्यं **वक्ष्यामि** । तथाहि-**शतभिषक् भरणी आर्द्रा अश्लेषा स्वातिः ज्येष्ठा** चेत्येतानि षट् नक्षत्राणि प्रत्येकं सूर्येण समं **व्रजन्ति मुहूर्तानेकविंशतिं षट् चाहोरात्रानिति** । तद्यथा-एतानि नक्षत्राणि चन्द्रेण समं सार्द्धान् त्रयस्त्रिंशत्संख्यान् सप्तषष्टिभागान् व्रजन्ति, तत एतावतः पञ्चभागान् अहोरात्रस्य सूर्येण समं व्रजन्तीति प्रत्येकं प्रागुक्तकरणप्रामाण्यात् त्रयस्त्रिंशतश्च पञ्चभिर्भागे लब्धाः षट् अहोरात्राः, शेषाः सार्द्धास्त्रयः

पञ्चभागास्ते सवर्णनायां जाताः सप्त, ते मुहूर्तानयनाय त्रिंशता गुण्यन्ते, जाते द्वे शते दशोत्तरे २१०, तेषां परिपूर्णमुहूर्तानयनाय दशभिर्भागो ह्रियते लब्धा एकविंशतिर्मुहूर्ता इति ।

तथा **तिस्र 'उत्तराः'** उत्तरभाद्रपदा उत्तरफाल्गुनी उत्तराषाढा इत्येवंरूपाः, **पुनर्वसू रोहिणी विशाखा** च एतानि षट् नक्षत्राणि सूर्येण समं **व्रजन्ति मुहूर्त्तान् त्रीण्येव विंशतिं चाहोरात्रानिति** । तद्यथा–एतानि षट् नक्षत्राणि चन्द्रेण समं सप्तषष्टिभागानां शतमेकमेकस्य च भागस्यार्द्धमेकं प्रत्येकं व्रजन्ति, तत एतावतः पञ्चभागानहोरात्रस्य सूर्येण समं व्रजनमवगन्तव्यम्, तेन शतस्य पञ्चभिर्भागे हृते लब्धा विंशतिरहोरात्राः, यदर्द्धं तत् त्रिंशता गुण्यते, जाता**स्त्रिंशत् ['पञ्चदश']**, तस्या **दशभि[पञ्चभि ?]**र्भागे हृते लब्धास्त्रयो मुहूर्ता इति । तथा **'अवशेषाणि'** श्रवण-धनिष्ठा-पूर्वभाद्रपदा-रेवत्यश्विनी-कृत्तिका-मृगशिरः-पुष्य-मघा-पूर्वफल्गुनी-हस्त-चित्रा-ऽनुराधा-मूल-पूर्वाषाढारूपाणि **नक्षत्राणि पञ्चदशापि सूर्येण सहगतानि यान्ति द्वादशैव मुहूर्तान् त्रयोदश** च **'समान्'** परिपूर्णा**नहोरात्रानिति** । तद्यथा–एतानि परिपूर्णान् सप्तषष्टिभागान् चन्द्रेण समं व्रजन्ति, ततः सूर्येण सह तानि पञ्चभागान् अहोरात्रस्य सप्तषष्टिसङ्ख्यान् गच्छन्ति, सप्तषष्टेश्च पञ्चभिर्भागे हृते लब्धास्त्रयोदश अहोरात्राः, शेषौ द्वौ भागौ, तौ त्रिंशता गुण्येते, जाता षष्टिः, तस्याः पञ्चभिर्भागे हृते लब्धा द्वादश मुहूर्ता इति । अत्र च प्रसङ्गसङ्गत्या सूर्ययोगदर्शनतश्चन्द्रयोगपरिमाणं यथा जायते, तथा दर्श्यते **ज्योतिष्करण्डोक्तम्**–

"णक्खत्तसूरजोगो, मुहुत्तरासीकओ अ पंचगुणा ।
सत्तट्ठीएँ विभत्तो, लद्धो चंदस्स सो जोगो ॥१॥" [ज्यो. क. गा. १७२]

नक्षत्राणाम्–अर्द्धक्षेत्रादीनां यः सूर्येण सह योगः, स मुहूर्तराशीक्रियते, कृत्वा च पञ्चभिर्गुण्यते, ततः सप्तषष्ट्या भागे हृते सति यल्लब्धं स चन्द्रस्य योगः । इयमत्र भावना– कोऽपि शिष्यः पृच्छति, यत्र सूर्यः षट् दिवसान् एकविंशतिं च मुहूर्तान् अवतिष्ठते तत्र चन्द्रः कियन्तं कालं तिष्ठतीति, तत्र मुहूर्तराशिकरणार्थं षट् दिवसास्त्रिंशता गुण्यन्ते, गुणयित्वा चोपरितना एकविंशतिर्मुहूर्ताः प्रक्षिप्यन्ते, जाते द्वे शते एकोत्तरे २०१, ते पञ्चभिर्गुण्यन्ते, जातं पञ्चोत्तरं सहस्रं १००५, तस्य सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धाः पञ्चदश मुहूर्ताः, एतावानर्द्धक्षेत्राणां प्रत्येकं चन्द्रेण समं योगः, एवं समक्षेत्राणां द्व्यर्द्धक्षेत्राणामभिजितश्च चन्द्रेण समं योगो ज्ञेय इति ॥१३५॥

अथ कुलद्वारम्-

कति णं भंते ! कुला कति उवकुला[१] कति कुलोवकुला पण्णत्ता ?, गो० ! बारस कुला, बारस उवकुला, चत्तारि कुलोवकुला पण्णत्ता । बारस कुला, तंजहा-धणिट्ठा कुलं १ उत्तरभद्दवया कुलं २ अस्सिणी कुलं ३ कत्तिया कुलं ४ मिगसिर कुलं ५ पुस्सो[२] कुलं ६ मघाकुलं ७ उत्तरफग्गुणी[३] कुलं ८ चित्ता कुलं ९ विसाहा कुलं १० मूलो कुलं ११ उत्तरासाढा कुलं १२ ।

मासाणं परिणामा, होंति कुला उवकुला उ हेट्ठिमगा ।
होंति पुण कुलोवकुला, अभीइ सय अद्द अणुराहा ॥१॥

बारस उवकुला तं०-सवणो उवकुलं १ पुव्वभद्दवया[४] उवकुलं २ रेवई[५] उवकुलं ३ भरणी उवकुलं ४ रोहिणी उवकुलं ५ पुणव्वसू उवकुलं ६ अस्सेसा उवकुलं ७ पुव्वफग्गुणी उवकुलं ८ हत्थो उवकुलं ९ साई उवकुलं १० जेट्ठा उवकुलं ११ पुव्वासाढा उवकुलं १२ । चत्तारि कुलोवकुला, तंजहा-अभिई कुलोवकुला १ सयभिसया कुलोवकुला २ अद्दा कुलोवकुला ३ अणुराहा कुलोवकुला ४ ॥ १३६ ॥

"**कति णं भंते ! कुला**" इत्यादि, **कति भदन्त** ! '**कुलानि**' कुलसंज्ञकानि नक्षत्राणि तथा **कति उपकुलानि** तथा **कति कुलोपकुलानि प्रज्ञप्तानि** ?, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात् । भगवानाह-**गौतम** ! **द्वादश कुलानि, द्वादश उपकुलानि, चत्वारि कुलोपकुलानि प्रज्ञप्तानि** । तत्र **द्वादश कुलानि, तद्यथा-धनिष्ठा कुलम् १ उत्तरभाद्रपदा कुलम् २ अश्विनी कुलं ३ कृत्तिका कुलं ४ मृगशिरः कुलं ५ पुष्यः कुलं ६ मघा कुलम् ७ उत्तरफल्गुनी कुलं ८ चित्रा कुलं ९ विशाखा कुलं १० मूलः कुलम् ११ उत्तराषाढा कुलम् १२** । अथ किं कुलादीनां लक्षणम् ?, उच्यते **मासानां** '**परिणामानि**' परिसमापकानि **भवन्ति कुलानि** । कोऽर्थः ? इह यैर्नक्षत्रैः प्रायो मासानां परिसमाप्तय उपजायन्ते माससदृशनामानि च तानि नक्षत्राणि कुलानीति प्रसिद्धानि, तद्यथा-श्राविष्ठो मासः प्रायः

१. अवकुला-अखब J12 । एवमग्रेऽपि ॥ २. पूसो कुलं-अब J12 । पुस्सकुलं-कखत्रिस ॥ ३. उत्तरा० अब J12 ॥ ४. पुव्वा० अब J2 ॥ ५. रेवती भरणी य रोहिणी य, पुणव्वसू य अस्सेसा । पुव्वाफग्गुणी य हत्थो य, साती य जेट्ठा य पुव्वा० अखबस J12 ॥

श्रविष्ठया धनिष्ठाऽपरपर्यायया परिसमाप्तिमुपैति, भाद्रपद उत्तरभाद्रपदया, अश्वयुक् अश्विन्या इति । श्रविष्ठादीनि प्रायो मासपरिसमापकानि माससदृशनामानि, प्रायोग्रहणादुपकुलादिभिरपि नक्षत्रैर्मासपरिसमाप्तिर्जायते इत्यसूचि । कुलाना**मधस्तनानि** नक्षत्राणि श्रवणादीनि '**उपकुलानि**' कुलानां समीपमुपकुलं तत्र वर्त्तन्ते यानि नक्षत्राणि तान्युपचारादुपकुलानीति व्युत्पत्तेः, यानि कुलानामुपकुलानां **चाधस्तनानि** तानि **कुलोपकुलानि अभिजिदादीनि । द्वादशोपकुलानि, तद्यथा-श्रवण उपकुलं १ पूर्वभाद्रपदा उपकुलं २ रेवती उपकुलं ३ भरणी उपकुलं ४ रोहिणी उपकुलं ५ पुनर्वसू उपकुलम् ६ अश्लेषा उपकुलं ७ पूर्वाफाल्गुनी उपकुलं ८ हस्त उपकुलं ९ स्वातिः उपकुलं १० ज्येष्ठा उपकुलं ११ पूर्वाषाढा उपकुलम् । चत्वारि कुलोपकुलानि, तद्यथा-अभिजित् कुलोपकुलं १ शतभिषक् कुलोपकुलम् २ आर्द्रा कुलोपकुलम् ३ अनुराधा कुलोपकुलम् ४**
कुलादिसंज्ञाप्रयोजनं तु-

"**पूर्वेषु जाता दातारः, सङ्ग्रामे स्थायिनां जयः ।**
अन्येषु त्वन्यसेवार्त्ता, यायिनां च सदा जयः ॥१॥" [ ] इत्यादि ॥१३६॥

अथ पूर्णिमा-ऽमावास्याद्वारम्-

कति णं भंते ! पुण्णिमाओ कति अमावासाओ पण्णत्ताओ ?, गोअमा ! बारस पुण्णिमाओ बारस अमावासाओ पं०, तं०-साविट्ठी पोट्ठवई[1] आसोई कत्तिगी मग्गसिरी पोसी माही फग्गुणी चेत्ती वइसाही जेट्ठामूली आसाढी ॥ १३७ ॥

"**कति णं भंते !**" इत्यादि, **कति भदन्त ! 'पूर्णिमाः'** परिस्फुटषोडशकलाकचन्द्रोपेतकालविशेषरूपाः, पूर्णेन चन्द्रेण निर्वृत्ता इति व्युत्पत्तेः "**भावादिमः**" [**श्रीसिद्ध० ६-४-२१**] इतीमप्रत्यये रूपसिद्धिः । तथा **कति 'अमावास्याः'** एककालावच्छेदेनैकस्मिन्नक्षत्रे चन्द्र-सूर्यावस्थानाधारकालविशेषरूपाः, अमा-सह 'चन्द्र-सूर्यौ वसतोऽस्यामि'ति व्युत्पत्तेः, औणादिकेऽप्रत्यये स्त्रीलिङ्गे डीप्रत्यये च रूपसिद्धिः, **प्रज्ञप्ताः । गौतम !** जातिभेदमधिकृत्य **द्वादश पूर्णिमा द्वादश अमावास्याः प्रज्ञप्ताः** । तद्यथा-श्रविष्ठा-धनिष्ठा तस्यां भवा **श्राविष्ठी**-श्रावणमासभाविनी, '**प्रौष्ठपदा**' उत्तरभाद्रपदा तस्यां भवा '**प्रौष्ठपदी**' भाद्रपदभाविनी, '**अश्वयुग्**' अश्विनी तस्यां भवा '**आश्वयुजी**' आश्विनेयमास-भाविनी, एवं **कार्तिकी**

१. **पोट्ठवदा-अब** J12 ॥

मार्गशीर्षी पौषी माघी फाल्गुनी चैत्री वैशाखी ज्येष्ठामूली आषाढी इति । प्रश्नसूत्रे पूर्णिमा-ऽमावास्ययोर्भेदेन निर्देशेऽपि उत्तरसूत्रे यदभेदेन निर्देश-स्तन्नामैक्यदर्शनार्थम्, तेनामावास्या अपि श्राविष्ठी प्रौष्ठपदी आश्वयुजी इत्यादिभिर्व्यपदेश्याः । ननु श्राविष्ठी पूर्णिमा श्रविष्ठायोगाद्भवति, अमावास्या तु श्राविष्ठी न तथा, अस्या अश्लेषा-मघायोगस्य भणिष्यमाणत्वात्, उच्यते, श्राविष्ठी पूर्णिमा अस्येति श्राविष्ठः-श्रावणमासः, तस्येयं श्राविष्ठः श्रावणमासभाविनीत्यर्थः, एवं प्रौष्ठपद्यादिष्वमावास्यासु वाच्यम् ॥१३७॥

सम्प्रति यैर्नक्षत्रैरेकैका पौर्णमासी परिसमाप्यते तानि पिपृच्छिषुराह-

साविट्ठिण्णं भंते ! पुण्णिमासिं कति णक्खत्ता जोगं जोएंति ?, गो० ! तिण्णि णक्खत्ता जोगं जोएंति, तं०-अभिई सवणो धणिट्ठा ३ ॥ १३८ ॥

"**सावट्ठिण्णं भंते !**" इत्यादि, **श्राविष्ठीं पौर्णमासीं भदन्त ! कति नक्षत्राणि 'योगं योजयन्ति'** योगं कुर्वन्ति ?, कति नक्षत्राणि चन्द्रेण सह संयुज्य परिसमापयन्तीत्यर्थः । भगवानाह-**गौतम ! त्रीणि नक्षत्राणि योगं योजयन्ति**, त्रीणि नक्षत्राणि चन्द्रेण सह संयुज्य परिसमापयन्ति । **तद्यथा-अभिजित् श्रवणो धनिष्ठा** । इह श्रवण-धनिष्ठारूपे द्वे एव नक्षत्रे श्राविष्ठीं पौर्णमासीं परिसमापयतः, पञ्चस्वपि युगभाविनीषु पूर्णिमासु क्वाप्यभिजितः परिसमापकादर्शनात्, केवलमभिजिन्नक्षत्रं श्रवणेन सह सम्बद्धमिति तदपि परिसमापयतीत्युक्तम् । किञ्च-सामान्यत इदं श्राविष्ठीसमापकनक्षत्रदर्शनं ज्ञेयं, पञ्चस्वपि श्राविष्ठीषु पूर्णिमासु कां पूर्णिमां किं नक्षत्रं कियत्सु मुहूर्त्तेषु कियत्सु भागेषु कियत्सु प्रतिभागेषु च गतेषु गम्येषु च परिसमापयतीति सूक्ष्मेक्षिकादर्शनार्थं त्विदं प्रवचनप्रसिद्धं करणं भावनीयम्-

"नाउमिह अमावासं जइ, इच्छसि कंमि होइ रिक्खंमि ? ।
अवहारं ठावेज्जा, तत्तिअरूवेहिं संगुणिए ॥१॥" [ज्यो. क. गा. ३१४]

याममावास्यामिह युगे ज्ञातुमिच्छसि यथा कस्मिन्नक्षत्रे वर्त्तमाना परिसमाप्ता भवतीति, यावद्रूपैर्यावत्योऽमावस्या अतिक्रान्तास्तावत्या सङ्ख्यया इत्यर्थः, वक्ष्यमाणस्वरूपमवधार्यते-प्रथमतया स्थाप्यत इत्यवधार्यः-ध्रुवराशिः, तमवधार्यराशिं पट्टिकादौ स्थापयित्वा सङ्गुणयेत् । अथ किम्प्रमाणोऽसाववधार्यराशिरिति तत्प्रमाणनिरूपणार्थमाह-

"छावट्ठी य मुहुत्ता, बिसट्ठिभागा य पंच पडिपुण्णा ।
बासट्ठिभागसत्तट्ठिगो, अ एक्को हवइ भागो ॥२॥" [ज्यो. क. गा. ३१५]

षट्षष्टिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च परिपूर्णा द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टितमो भाग [६६ $\frac{५}{६२}$ $\frac{१}{६७}$] इत्येतावत्प्रमाणोऽवधार्यराशिः । कथमेतावत्प्रमाणस्योत्पत्तिः ? इति चेत्, उच्यते, इह यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन पञ्च सूर्यनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते, ततो द्वाभ्यां पर्वभ्यां किं लभामहे ?, राशित्रयस्थापना–१२४।५।२ । अत्रान्त्येन राशिना द्विकलक्षणेन मध्यो राशिः पञ्चकलक्षणो गुण्यते, जाता दश, तेषां च चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागहरणम् । तत्र छेद्य-च्छेदकराश्योर्द्विकेनापवर्त्तना, जात उपरितनश्छेद्यो राशिः पञ्चकरूपोऽधस्तनो द्वाषष्टिरूपः, लब्धाः पञ्च द्वाषष्टिभागाः [$\frac{५}{६२}$] । एतेन नक्षत्राणि कर्त्तव्यानीति नक्षत्रकरणार्थमष्टादशभिस्त्रिशदधिकैः शतैः सप्तषष्टिभागरूपैः [$\frac{१८३०}{६७}$] गुण्यन्ते, जातानि एकनवतिः[१] शतानि पञ्चाशदधिकानि ९१५०, छेदराशिरपि द्वाषष्टिप्रमाणः सप्तषष्ट्या गुण्यते, जातान्येकचत्वारिंशच्छतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि ४१५४ । उपरितनराशिर्मुहूर्त्तानयनाय भूयस्त्रिशता गुण्यते, जाते द्वे लक्षे चतुःसप्ततिसहस्राणि पञ्च शतानि २७४५००, तेषां चतुष्पञ्चाशदधिकैकचत्वारिंशच्छतैर्भागहरणं [४१५४] लब्धाः षट्षष्टिर्मुहूर्त्ताः ६६, शेषा अंशास्तिष्ठन्ति त्रीणि शतानि षट्त्रिंशदधिकानि ३३६, ततो द्वाषष्टिभागानयनार्थं तानि [द्वा] षष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि विंशतिसहस्राणि अष्टौ शतानि द्वात्रिंशदधिकानि २०८३२, तेषामनन्तरोक्तच्छेदराशिना ४१५४ भागो ह्रियते, लब्धाः पञ्च द्वाषष्टिभागाः ५, शेषास्तिष्ठन्ति द्वाषष्टिः, ततश्चास्या द्वाषष्ट्या अपवर्त्तना क्रियते, जात एकः, छेदराशेरपि द्वाषष्ट्याऽपवर्त्तनायां जाता सप्तषष्टिः, तत आगतं षट्षष्टिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च परिपूर्णा द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टिभाग [६६ $\frac{५}{६२}$ $\frac{१}{६७}$] इति । तदेवमुक्तमवधार्यराशिप्रमाणं । सम्प्रति शेषविधिमाह–

"एअमवहाररासिं, इच्छअमावाससंगुणं कुज्जा ।

णक्खत्ताणं इत्तो, सोहणगविहिं निसामेह ॥३॥" [ज्यो. क. गा. ३१६]

एनं–अनन्तरोदितस्वरूपमवधार्यराशिमिच्छामावास्यासङ्गुणं–याममावास्यां ज्ञातुमिच्छति तत्सङ्गुणितं कुर्यात्, अत ऊर्ध्वं च नक्षत्राणि शोधनीयानि, ततोऽत ऊर्ध्वं नक्षत्राणां शोधनकविधिं–शोधनप्रकारं वक्ष्यमाणं निशामयत–आकर्णयत । तत्र प्रथमतः पुनर्वसुशोधनकमाह–

"बावीसं च मुहुत्ता, छयालीसं बिसट्ठिभागा य ।

एअं पुणव्वसुस्स य, सोहेअव्वं हवइ पुण्णं ॥४॥" [ज्यो. क. गा. ३१७]

---

१. ०ति-पुके । एवमन्यत्राऽपि ॥

द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागा २२ $\frac{४६}{६२}$ एतत्-एतावत्प्रमाणं पुनर्वसुनक्षत्रस्य परिपूर्णं भवति शोद्धव्यम् । कथमेवंप्रमाणस्य शोधनकस्योत्पत्तिः ? इति चेत् ?, उच्यते, यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन पञ्च सूर्यनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते, तत एकं पर्वातिक्रम्य कति पर्यायास्तेनैकेन पर्वणा लभ्यन्ते ?, राशित्रयस्थापना १२४/५।१ । अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यराशिः पञ्चकरूपो गुण्यते जाताः पञ्चैव, "**एकेन गुणितं तदेव भवती**" [ ]ति वचनात् । तेषां चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागो ह्रियते, लब्धाः पञ्च चतुर्विंशत्यधिकशतभागाः, ततो नक्षत्रानयनाय एतेऽष्टादशभिः शतैस्त्रिंशदधिकैः सप्तषष्टिभाग-रूपैर्गुणयितव्या [$\frac{१८३०}{६७}$] इति गुणकारराशि-च्छेदराश्योर्द्विकेनापवर्त्तना, जातो गुणकारराशिः नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि ९१५ छेदराशिर्द्वाषष्टिः । तत्र पञ्च नवभिः शतैः पञ्चदशोत्तरैर्गुण्यन्ते, जातानि पञ्चचत्वारिंशच्छतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि ४५७५, छेदराशिर्द्वाषष्टिलक्षणः सप्तषष्ट्या गुण्यते, जातान्येकचत्वारिंशच्छतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि ४१५४ । तथा पुष्यस्य त्रयोविंशतिभागाः, प्राक्तनयुगचरमपर्वणि सूर्येण सह योगमायान्ति, ते द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि चतुर्दश शतानि षड्विंशत्यधिकानि १४२६, तानि प्राक्तनात् पञ्चसप्तत्यधिकपञ्च-चत्वारिंशत्प्रमाणात् [४५७५] शोध्यन्ते, शेषं तिष्ठति एकत्रिंशच्छतानि एकोनपञ्चाशदधिकानि ३१४९ । एतानि मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि चतुर्नवतिसहस्राणि चत्वारि शतानि सप्तत्यधिकानि ९४४७०, तेषां छेदराशिना चतुष्पञ्चाशदधिकैकचत्वारिंशच्छतरूपेण [४१५४] भागो ह्रियते, लब्धा द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः [२२] शेषं तिष्ठति त्रीणि सहस्राणि द्वयशीत्यधिकानि ३०८२, एतानि द्वाषष्टिभागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, जातमेकं लक्षं एकनवतिसहस्राणि चतुरशीत्यधिकानि १९१०८४, तेषां छेदराशिना ४१५४ भागो ह्रियते, लब्धाः षट्चत्वारिंशत् मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागाः, $\frac{४६}{६२}$ एषा पुनर्वसुनक्षत्रशोधनकनिष्पत्तिः। अथ शेषनक्षत्राणां शोधनकान्याह-

"बावत्तरं[१] सयं फग्गुणीण, बाणउअ बे विसाहासु ।
चत्तारि अ बायाला, सोज्झा तह उत्तरासाढा ॥५॥" [ज्यो. क. गा. ३१८]

द्वासप्ततं-द्वासप्तत्यधिकं शतं [१७२] फल्गुनीनाम्-उत्तरफल्गुनीनां शोध्यम् । किमुक्तं भवति ? द्विसप्तत्यधिकेन शतेन पुनर्वसुप्रभृतीनि उत्तरफल्गुनीपर्यन्तानि नक्षत्राणि शोध्यन्ते, एवमुत्तरत्रापि भावार्थो भावनीयः । तथा विशाखासु-विशाखापर्यन्तेषु नक्षत्रेषु शोधनकं द्वे शते द्विनवत्यधिके २९२ । अथानन्तरमुत्तराषाढापर्यन्तानि नक्षत्राण्यधिकृत्य शोध्यानि चत्वारि शतानि द्विचत्वारिंशदधिकानि ४४२ ।

---

१. बावत्तरिं-के ॥

"एअं पुणव्वसुस्स य, बिसट्ठिभागसहिअं तु सोहणगं ।
एत्तो अभिईआइं बीअं, वोच्छामि सोहणगं ॥६॥" [ज्यो. क. गा. ३१९]

एतद्–अनन्तरोक्तं शोधनकं सकलमपि पुनर्वसुसत्कद्वाषष्टिभागसहितमवसेयम् । एतदुक्तं भवति–ये पुनर्वसुसत्का द्वाविंशतिर्मुहूर्त्तास्ते सर्वेऽपि उत्तरस्मिन् २ शोधनके अन्तःप्रविष्टा वर्त्तन्ते, न तु द्वाषष्टिभागाः, ततो यत् यत् शोधनकं शोध्यते, तत्र तत्र पुनर्वसुसत्काः षट्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागा उपरितनाः शोधनीया इति, एतच्च पुनर्वसुप्रभृति उत्तराषाढापर्यन्तं प्रथमं शोधनकम् । अत ऊर्ध्वमभिजितमादिं कृत्वा द्वितीयं शोधनकं वक्ष्यामि, तत्र प्रतिज्ञातमेव निर्वाहयति–

"अभिइस्स नव मुहुत्ता, बिसट्ठिभागा य होंति चउवीसं ।
छावट्ठी य समत्ता, भागा सत्तट्ठिछेअकया ॥७॥

इगुणट्ठं पोट्ठवया तिसु, चेव नवोत्तरेसु रोहिणिआ ।
तिसु णवणवएसु भवे, पुणव्वसू फग्गुणीओ अ ॥८॥

पंचेव इगुणवन्नं सयाइं, इगुणत्तराइं छच्चेव ।
सोज्झाणि विसाहासु, मूले सत्तेव चोआला ॥९॥

अट्ठसय इगूणवीसा, सोहणगं उत्तराण साढाणं ।
चउवीसं खलु भागा, छावट्ठी चुण्णिआओ अ ॥१०॥" [ज्यो. क. गा. ३२०-३२३]

अभिजितो नक्षत्रस्य शोधनकं नव मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य सत्काश्चतुर्विंशति-र्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिच्छेदकृताः परिपूर्णाः षट्षष्टिभागाः [९ $\frac{२४}{६२}$ $\frac{६६}{६७}$], तथा एकोनषष्टं–एकोनषष्ट्यधिकं शतं [१५९] प्रोष्ठपदानाम्–उत्तरभाद्रपदानां शोधनकम् । किमुक्तं भवति ? एकोनषष्ट्यधिकेन शतेनोत्तरभाद्रपदापर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्ध्यन्ति, एवमुत्तरत्रापि भावनीयम् । तथा त्रिषु नवोत्तरेषु [३०९] रोहिणीपर्यन्तानि शुद्ध्यन्ति, तथा त्रिषु नवनवतेषु–नवनवत्यधिकेषु शतेषु [३९९] शोधितेषु पुनर्वसुपर्यन्तं नक्षत्रजातं शुद्ध्यति, तथा एकोनपञ्चाशदधिकानि पञ्च शतानि [५४९] प्राच्यफाल्गुन्युत्तरफल्गुनी-पर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्ध्यन्ति, तथा विशाखासु–विशाखापर्यन्तेषु नक्षत्रेषु एकोनसप्त-त्यधिकानि षट् शतानि ६६९ शोध्यानि, मूलपर्यन्ते नक्षत्रजाते सप्त शतानि चतुश्चत्वारिंश-दधिकानि ७४४ शोध्यानि, उत्तराषाढानाम्–उत्तराषाढापर्यन्तानां नक्षत्राणां शोधनकम् अष्टौ शतान्येकोनविंशत्यधिकानि ८१९ । सर्वेष्वपि च शोधनकेषु उपरि अभिजितो नक्षत्रस्य सम्बन्धिनो मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागाश्चतुर्विंशतिः षट्षष्टिश्च चूर्णिकाभागा एकस्य द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिभागाः [$\frac{२४}{६२}$ $\frac{६६}{६७}$] शोधनीयाः,

"एआइं सोहइत्ता, जं सेसं तं हवइ णक्खत्तं ।

इत्थं करेइ उडुवइ, सूरेण समं अमावासं ॥११॥" [ज्यो. क. गा. ३२४]

एतानि-अनन्तरोदितानि शोधनकानि यथायोगं शोधयित्वा यच्छेषमवतिष्ठते तद्भवति नक्षत्रम्, एतस्मिंश्च नक्षत्रे करोति सूर्येण समम् उडुपतिरमावास्यामिति करणगाथासमूहाक्षरार्थः। भावना त्वियम्-केनापि पृच्छ्यते-युगस्यादौ प्रथमा अमावास्या केन नक्षत्रेणोपेता समाप्तिमुपैतीति ?, तत्र पूर्वोदितस्वरूपोऽवधार्यराशिः षट्षष्टिर्मुहूर्त्ताः पञ्च द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टिभाग [६६ $\frac{५}{६२}$ $\frac{१}{६७}$] इत्येवंरूपो ध्रियते, धृत्वा चैकेन गुण्यते, प्रथमाया अमावास्यायाः पृष्टत्वात्, "**एकेन गुणितं तदेव भवती**"[ ]ति जातस्तावानेव राशिः । ततस्तस्माद् द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागा [२२ $\frac{४६}{६२}$] इत्येवंरूपं पुनर्वसु शोध्यते, तत्र षट्षष्टिमुहूर्त्तेभ्यो द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः शुद्धाः स्थिताः पश्चात् चतुश्चत्वारिंशत् ४४, तेभ्य एकं मुहूर्त्तमपकृष्य तस्य द्वाषष्टिभागाः क्रियन्ते, कृत्वा च ते द्वाषष्टिभागराशिमध्ये प्रक्षिप्यन्ते, जाताः सप्तषष्टिः [६७], तेभ्यः षट्चत्वारिंशच्छुद्धाः शेषास्तिष्ठन्त्येकविंशतिः [२१] । त्रिचत्वारिंशतो [४३] मुहूर्त्तेभ्यस्त्रिंशता [३०] मुहूर्त्तैः पुष्यः शुद्धः, पश्चात् त्रयोदश [१३] मुहूर्त्ताः, अश्लेषानक्षत्रं चार्द्धक्षेत्रमिति पञ्चदशमुहूर्त्तप्रमाणम् । तत इदमागतम्-अश्लेषानक्षत्रस्यैकस्मिन् मुहूर्त्ते एकस्य च मुहूर्त्तस्य चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिधाच्छिन्नस्य षट्षष्टिभागेषु १ $\frac{४०}{६२}$ $\frac{६६}{६७}$ शेषेषु प्रथमामावास्यासमाप्तिमुपगच्छतीति, एवं सर्वास्वप्यमावास्यासु करणं भावनीयम् । अत्र पूर्णिमाप्रक्रमे यदमावास्याकरणमुक्तं, तत्करणगाथानुरोधेन युगादावमावस्यायाः प्राथम्येन क्रमप्राप्तत्वेन च । अथ प्रस्तुतं पूर्णिमाकरणम्–

"इच्छापुण्णिमगुणिओ, अवहारो सोऽत्थ होइ कायव्वो ।
तं चेव य सोहणगं, अभिईआइं तु कायव्वं ॥१॥

सुद्धंमि अ सोहणगे, जं सेसं तं हवेज्ज णक्खत्तं ।
तत्थ य करेइ उडुवइ, पडिपुण्णं पुण्णिमं विमलं ॥२॥" [ज्यो. क. गा. ३२५-३२६]

यथा पूर्वममावास्याचन्द्रनक्षत्रपरिज्ञानार्थमवधार्यराशिरुक्तः, स एवात्रापि-पौर्णमासी-चन्द्रनक्षत्रपरिज्ञानविधौ ईप्सितपूर्णिमासीगुणितः-यां पूर्णमासीं ज्ञातुमिच्छसि तत्सङ्ख्यया गुणितः कर्तव्यः, गुणिते च सति तदेव-पूर्वोक्तं शोधनकं कर्तव्यं, केवलमभिजिदादिकं न तु पुनर्वसुप्रभृतिकम् । शुद्धे च शोधनके यच्छेषमवतिष्ठते, तद्भवेन्नक्षत्रं पौर्णमासीयुक्तं, तस्मिंश्च

नक्षत्रे करोति उडुपतिः-चन्द्रमाः परिपूर्णां पौर्णमासीं विमलामिति करणगाथाद्वयाक्षरार्थः । भावना त्वियं-कोऽपि पृच्छति-युगस्यादौ प्रथमा पौर्णमासी कस्मिन् चन्द्रनक्षत्रयोगे समाप्तिमुपगच्छति ? इति, तत्र षट्षष्टिर्मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च द्वाषष्टिभागा एकस्य द्वाषष्टिभागस्यैकः सप्तषष्टिभाग [$६६ \frac{५}{६२} \frac{१}{६७}$] इत्येवंरूपोऽवधार्यराशिर्ध्रियते, स प्रथमायां पौर्णमास्यां किल पृष्टमित्येकेन गुण्यते, "**एकेन च गुणितं तदेव भवति**" [ ] ततस्तस्मादभिजितो नव मुहूर्त्ता एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागा [$९ \frac{२४}{६२} \frac{६६}{६७}$] इत्येवंप्रमाणं शोधनकं शोधनीयम् । तत्र च षट्षष्टेर्नव मुहूर्त्ताः शुद्धाः स्थिताः पश्चात् सप्तपञ्चाशत् ५७, तेभ्य एको मुहूर्त्तो गृहीत्वा द्वाषष्टिभागीकृतः, ते च द्वाषष्टिरपि[1] द्वाषष्टिभागराशौ पञ्चकरूपे प्रक्षिप्यन्ते, जाताः सप्तषष्टिभागाः, तेभ्यश्चतुर्विंशतिः [२४] शुद्धाः, स्थिताः पश्चात् त्रिचत्वारिंशत् । [४३] तेभ्यः एकं रूपमादाय सप्तषष्टिभागीक्रियते, ते च सप्तषष्टिरपि भागाः सप्तषष्टिभागैकमध्ये प्रक्षिप्यन्ते, जाता अष्टषष्टिभागाः, [६८] तेभ्यः षट्षष्टिः [६६] शुद्धाः, स्थितौ पश्चाद् द्वौ सप्तषष्टिभागौ [$\frac{२}{६७}$], ततस्त्रिंशता मुहूर्त्तैः श्रवणः शुद्धः स्थिताः पश्चान्मुहूर्त्ताः षड्विंशतिः, तत इदमागतम्-धनिष्ठानक्षत्रस्य त्रिषु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनविंशतिसङ्ख्येषु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चषष्टिसङ्ख्येषु सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु प्रथमा पौर्णमासी समाप्तिमियर्त्ति । एवं पञ्चानां युगभाविनीनां श्राविष्ठीनां पूर्णिमानां क्वचित् श्रवणेन क्वचिद् धनिष्ठया च परिसमाप्तिर्भावनीया ॥१३८॥

पोट्ठवईण्णं भंते ! पुण्णिमं कइ णक्खत्ता जोगं जोएंति ?, गोअमा[2] ! तिण्णि णक्खत्ता[जोगं] जोएंति, तं०-सयभिसया पुव्वभद्दवया उत्तरभद्दवया ॥ १३९ ॥

तथा '**प्रौष्ठपदीमि**'ति भाद्रपदां **भदन्त ! पौर्णमासीं कति नक्षत्राणि योगं योजयन्ति ?**, भगवानाह-**गौतम ! त्रीणि नक्षत्राणि योजयन्ति, तद्यथा-शतभिषक् पूर्वभाद्रपदा उत्तरभाद्रपदा**, आसां पञ्चानामपि युगभाविनीनामुक्तनक्षत्राणां मध्ये अन्यतरेण परिसमापनात् ॥१३९॥

अस्सोइण्णं भंते ! पुण्णिमं कति णक्खत्ता जोगं जोएंति ?, गोअमा ! दो जोएंति तं०-रेवई अस्सिणी अ । कत्तिइण्णं दो-भरणी कत्तिआ य,

१. पुके । द्वाषष्टिरपि मु. नास्ति ॥ २. उत्तरा० अब J2 ॥

मग्गसिरिण्णं दो-रोहिणी मग्गसिरं च, पोसिण्णं तिण्णि-अद्दा पुणव्वसू पुस्सो, माघिण्णं दो-अस्सेसा मघा य, फग्गुणिण्णं दो-पुव्वाफग्गुणी य उत्तराफग्गुणी य, चेत्तिण्णं दो-हत्थो चित्ता य, विसाहिण्णं दो-साई विसाहा य, जेट्ठामूलिण्णं तिण्णि-अणुराहा जेट्ठा मूलो, आसाढिण्णं दो-पुव्वासाढा उत्तरासाढा ॥ १४० ॥

आश्वयुजीं भदन्त ! पौर्णमासीं कति नक्षत्राणि [योगं] योजयन्ति ?, गौतम ! द्वे 'योजयतः' रेवती अश्विनी च, इहोत्तरभाद्रपदानक्षत्रमपि काञ्चिदाश्वयुजीं पौर्णमासीं परिसमापयति परं तत्प्रौष्ठपदीमपि, लोके च प्रौष्ठपद्यामेव तस्य प्राधान्यं, तन्नाम्ना तस्या अभिधानाद्, अतस्तदिह न विवक्षितमित्यदोषः, अतो द्वे समापयत इत्युक्तम् । आसां बह्वीनां युगभाविनीनामुक्तनक्षत्रयोर्मध्येऽन्यतरेण परिसमापनात् । तथा **कार्त्तिकीं** पौर्णमासीं **द्वे** नक्षत्रे, तद्यथा-**भरणी कृत्तिका च**, इहाप्यश्विनीनक्षत्रं काञ्चित् कार्त्तिकीं पौर्णमासीं परिसमायति, परं तदाश्वयुज्यां पौर्णमास्यां प्रधानमितीह न विवक्षितमित्यदोषः, अतोऽत्रापि द्वे इत्युक्तम्, आसां बह्वीनां युगभाविनीनाम् उक्तनक्षत्रयोर्मध्येऽन्यतरेण परिसमापनात् । तथा **मार्गशीर्षीं** पौर्णमासीं **द्वे** नक्षत्रे, तद्यथा-**रोहिणी मृगशिरश्च**, आसां पञ्चानामपि युगभाविनीनाम् उक्तनक्षत्रयोर्मध्येऽन्यतरेण परिसमापनात् । तथा **पौषीं** पौर्णमासीं **त्रीणि** नक्षत्राणि, तद्यथा-**आर्द्रा पुनर्वसुः पुष्यश्च**, आसां युगमध्येऽधिकमाससम्भवेन षण्णामपि युगभाविनीनाम् उक्तनक्षत्राणां मध्येऽन्यतरेण परिसमापनात् । तथा **माघीं** पौर्णमासीं **द्वे** नक्षत्रे, तद्यथा-**अश्लेषा मघा, 'च'** शब्दात् पूर्वफल्गुनी-पुष्यौ ग्राह्यौ, तेनासां युगभाविनीनां पञ्चानामपि मध्ये काञ्चिदश्लेषा काञ्चिन्मघा काञ्चित् पूर्वफल्गुनी काञ्चित्पुष्यश्च परिसमापयति । तथा **फाल्गुनीं**[1] पौर्णमासीं **द्वे** नक्षत्रे, तद्यथा-**पूर्वफल्गुनी उत्तरफल्गुनी च**, आसां पञ्चानामपि युगभाविनीनाम् उक्तयोर्नक्षत्रयोर्मध्येऽन्यतरेण समापनात् । तथा **चैत्रीं** पौर्णमासीं **द्वे** नक्षत्रे, तद्यथा-**हस्तश्चित्रा** च, आसां पञ्चानामपि युगभाविनीनामुक्तयोर्नक्षत्रयोर्मध्येऽन्यतरेण समापनात् । तथा **वैशाखीं द्वे**, तद्यथा-**स्वातिर्विशाखा 'च'** शब्दादनुराधा, इदं हि अनुराधानक्षत्रं विशाखातः परं, विशाखा चास्यां पूर्णिमास्यां प्रधाना, ततः परस्यामेव पौर्णमास्यां तत्साक्षादुपात्तं नेहेति अतो द्वे इत्युक्तम्, आसां बह्वीना युगभाविनीनाम् उक्तनक्षत्रयोर्मध्येऽन्यतरेण समापनात् । तथा **ज्येष्ठमूलीं** पौर्णमासीं **त्रीणि**, तद्यथा-**अनुराधा ज्येष्ठा मूलं** च, आसां पञ्चानामपि

१. फल्गुनीं-पुके ॥

युगभाविनीनाम् उक्तनक्षत्राणां मध्येऽन्यतरेण समापनात् । तथा **आषाढीं** पौर्णमासीं **द्वे**, तद्यथा-**पूर्वाषाढा उत्तराषाढा** च, आसां युगान्ते अधिकमाससम्भवेन षण्णामपि युगभाविनीनाम् उक्तनक्षत्रयोर्मध्येऽन्यतरेण समापनात् ॥१४०॥

सम्प्रति कुलद्वारप्रतिपादनेन स्वतः सिद्धामपि कुलादियोजनां मन्दमतिशिष्यबोधनाय प्रश्नयन्नाह-

साविट्ठिण्णं भंते ! पुण्णिमं किं कुलं जोएइ ? उवकुलं जोएइ ? कुलोवकुलं जोएइ ?, गो० ! कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ । कुलं जोएमाणे धणिट्ठा णक्खत्ते जोएइ, उवकुलं जोएमाणे सवणे णक्खत्ते जोएइ, कुलोवकुलं जोएमाणे अभिई णक्खत्ते जोएइ । साविट्ठीण्णं पुण्णिमासिं णं कुलं वा जोएइ जाव कुलोवकुलं वा जोएइ । कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता कुलोवकुलेण वा जुत्ता साविट्ठी पुण्णिमा जुत्त त्ति वत्तव्वं सिआ ॥ १४१ ॥

"**साविट्ठिण्ण**"मित्यादि, **श्राविष्ठीं [पौ०मासी] भदन्त ! किं कुलं युनक्ति उपकुलं युनक्ति कुलोपकुलं युनक्ति ?**, भगवानाह-**गौतम ! कुलं वा युनक्ति** वाशब्दः समुच्चये, ततः कुलमपि युनक्तीत्यर्थः, एव**मुपकुलमपि कुलोपकुलमपि**, तत्र **कुलं युञ्जत् धनिष्ठानक्षत्रं युनक्ति**, तस्यैव कुल(तया) प्रसिद्धस्य सतः श्राविष्ठ्यां पौर्णमास्यां भावात्, **उपकुलं युञ्जत् श्रवणनक्षत्रं युनक्ति, कुलोपकुलं युञ्जत् अभिजिन्नक्षत्रं युनक्ति** । तद्धि तृतीयायां श्राविष्ठ्यां पूर्णिमास्यां द्वादशमुहूर्त्तेषु किञ्चित्समधिकेषु शेषेषु चन्द्रेण सह योगमुपैति, ततः श्रवणसहचरत्वात् स्वयमपि तस्याः पौर्णमास्याः पर्यन्तवर्तित्वात् तदपि तां परिसमापयति इति विवक्षितत्वाद्युनक्तीत्युक्तम् । सम्प्रत्युपसंहारमाह-यत एवं त्रिभिरपि कुलादिभिः श्राविष्ठ्याः पौर्णमास्या योजनाऽस्ति, ततः **श्राविष्ठीं पौर्णमासीं कुलं वा युनक्ति** उपकुलं वा युनक्ति **कुलोपकुलं वा युनक्ती**ति वक्तव्यं स्यात्-इति स्वशिष्येभ्यः प्रतिपादनं कुर्यात्, यदिवा **कुलेन वा युक्ता** सती श्राविष्ठी पौर्णमासी **उपकुलेन वा युक्ता कुलोपकुलेन वा युक्ता युक्तेति वक्तव्यं स्यात्** ॥१४१॥

पोट्ठवदिण्णं भंते ! पुण्णिमं किं कुलं जोएइ ३ पुच्छा, गो० ! कुलं वा उवकुलं वा कुलोवकुलं वा जोएइ । कुलं जोएमाणे उत्तरभद्दवया णक्खत्ते जोएइ, उ० पुव्वभद्दवया० कुलोव० सयभिसया० णक्खत्ते जोएइ,

पोट्ठवइण्णं पुण्णिमं कुलं वा जोएइ जाव कुलोवकुलं वा जोएइ । कुलेण वा जुत्ता जाव कुलोवकुलेण वा जुत्ता पोट्ठवई पुण्णमासी जुत्त त्ति वत्तव्वं सिया ॥ १४२ ॥

तथा "**पोट्ठवदिण्णं भंते !**" इत्यादि, **प्रौष्ठपदीं पौर्णमासीं** भदन्त ! **किं कुलं वा युनक्तीत्यादि पृच्छा, गौतम ! कुलं वा उपकुलं वा कुलोपकुलं वा युनक्ति**, तत्र **कुलं युञ्जत् उत्तरभाद्रपदानक्षत्रं युनक्ति, उपकुलं युञ्जत् पूर्वभाद्रपदानक्षत्रं युनक्ति, कुलोपकुलं युञ्जत् शतभिषक् नक्षत्रं युनक्ति** । उपसंहारमाह-यत एवं त्रिभिरपि कुलादिभिः प्रौष्ठपद्याः पौर्णमास्या योजनाऽस्ति, ततः **प्रौष्ठपदीं पौर्णमासीं कुलं वा युनक्ति** उपकुलं वा युनक्ति **कुलोपकुलं वा युनक्ती**ति वक्तव्यं स्यात्-इति स्वशिष्येभ्यः प्रतिपादनं कुर्यात्, यदिवा **कुलेन वा युक्ता** सती प्रौष्ठपदी पौर्णमासी उपकुलेन वा युक्ता **कुलोपकुलेन वा युक्ता युक्तेति वक्तव्यं स्यात्** इति ॥१४२॥

अस्सोइण्णं[१] भंते ! पुच्छा, गो० ! कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, णो लब्भइ कुलोवकुलं । कुलं जोएमाणे अस्सिणी णक्खत्ते जोएइ उवकुलं जोएमाणे रेवईणक्खत्ते जोएइ । अस्सोइण्णं पुण्णिमं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ । कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता अस्सोई पुण्णिमा जुत्त त्ति वत्तव्वं सिआ ॥ १४३ ॥

तथा "**अस्सोइण्ण**"मिति, **आश्वयुञ्जीं भदन्तेति पृच्छा, गौतम ! कुलं वा युनक्ति उपकुलं वा युनक्ति नो लभते कुलोपकुलं**, तत्र **कुलं युञ्जत् अश्विनीनक्षत्रं युनक्ति, उपकुलं युञ्जत् रेवतीनक्षत्रं युनक्ति**। उपसंहारमाह-यत एवं द्वाभ्यां कुलादिभ्याम् आश्वयुज्याः पौर्णमास्या योजनास्ति, तत **आश्वयुजीं पौर्णमासीं कुलं वा युनक्ति उपकुलं वा युनक्ती**ति वक्तव्यं स्यात्-इति स्वशिष्येभ्यः प्रतिपादनं कुर्यात्, यदिवा **कुलेन वा [युक्ता] उपकुलेन वा युक्ता** सती **आश्वयुजी पौर्णमासी युक्तेति[२] वक्तव्यं स्यात्** इति ॥१४३॥

कत्तिइण्णं भंते ! पुण्णिमं किं कुलं ३ पुच्छा, गो० ! कुलं वा जोएइ उवकुलं वा जोएइ णो कुलोवकुलं जोएइ । कुलं जोएमाणे कत्तिआ णक्खत्ते जोएइ उव० भरणी कत्तिइण्णं जाव वत्तव्वं ॥ १४४ ॥

---

१. आसाईणं-J12 ॥ २. कुलेन युक्ता युक्तेति-पुके ॥

तथा **कार्त्तिकीं भदन्त ! पौर्णमासीं किं कुल**मित्यादि **पृच्छा, गौतम ! कुलं वा युनक्ति उपकुलं वा युनक्ति न कुलोपकुलं युनक्ति,** तत्र **कुलं युञ्जत् कृत्तिकानक्षत्रं युनक्ति उपकुलं युञ्जत् भरणीनक्षत्रं** युनक्ति **कार्त्तिकी**मित्याद्युपसंहारवाक्यं प्राग्वत् इति ॥१४४॥

मग्गसिरिण्णं भंते ! पुण्णिमं किं कुलं तं चेव दो जोएइ, णो भवइ कुलोवकुलं । कुलं जोएमाणे मग्गसिर णक्खत्ते जोएइ उ० रोहिणी मग्गसिरिण्णं पुण्णिमं जाव वत्तव्वं सिआ ॥ १४५ ॥

मार्गशीर्षीं भदन्त ! पौर्णमासीं किं कुलं तदेवेति द्वे युङ्क्तः । कोऽर्थः ? कुलमुपकुलं वा युनक्ति **न भवति कुलोपकुलं**, तत्र **कुलं युञ्जत् मृगशिरो नक्षत्रं युनक्ति, उपकुलं** युञ्जत् **रोहिणी, मार्गशीर्षी पौर्णमासी**मित्याद्युपसंहारवाक्यं प्राग्वत् ॥१४५॥

अथ लाघवार्थमतिदेशमाह-

एवं सेसिआओ ऽवि जाव आसाढिं पोसिं जेट्ठामूलिं च कुलं वा उ० कुलोवकुलं वा, सेसिआणं कुलं वा उवकुलं वा कुलोवकुलं ण भण्णइ ॥ १४६॥

"**एवं सेसिआओ**" इत्यादि, **एवं 'शेषिका अपि'** पौष्याद्यास्तावद्वक्तव्याः **यावदाषाढीपूर्णिमा** इत्यर्थः, **पौषीं ज्येष्ठामूलीं च** पूर्णिमां **कुलं वा** युनक्ति **उपकुलं** वा युनक्ति **कुलोपकुलं वा** युनक्ति, **'शेषिकायां'** माघ्यादीनां **कुलं वा** युनक्ति **उपकुलं वा** युनक्ति, **कुलोपकुलं न भण्यते**, तदभावादिति ॥१४६॥

अथामावास्याः-

साविट्ठिण्णं भंते ! अमावासं[१] कति णक्खत्ता जोएंति ?, गो० ! दो णक्खत्ता जोएंति, तं०-अस्सेसा य महा य ॥ १४७ ॥

"**साविट्ठिण्णं**" इत्यादि, '**श्राविष्ठीं**' श्रावणमासभाविनीं **अमावास्यां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ?** यथायोगं चन्द्रेण सह संयुज्य श्राविष्ठीम् अमावास्यां परिसमापयन्ति ? [इत्यर्थः] । भगवानाह-**गौतम ! द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः, तद्यथा-अश्लेषा मघा** । इह व्यवहारनयमतेन यस्मिन्नक्षत्रे पौर्णमासी भवति, तत आरभ्यार्वाक्तने पञ्चदशे चतुर्दशे वा नक्षत्रे अमावास्या

१. अकखबत्रि । अमावसं-V । एवंमग्रेऽपि ॥

भवति, यस्मिंश्च नक्षत्रे अमावास्या तत आरभ्य परतः पञ्चदशे चतुर्दशे वा नक्षत्रे पौर्णमासी, तत्र श्राविष्ठी पौर्णमासी किल श्रवणे धनिष्ठायां चोक्ता, ततोऽमावास्यायामप्यस्याम् अश्लेषा मघा चोक्ता । लोके च तिथिगणितानुसारतो गतायामप्यमावास्यायां वर्त्तमानायामपि प्रतिपदि यस्मिन्नहोरात्रे प्रथमतोऽमावास्याऽभूत्, ततः सकलो-ऽप्यहोरात्रोऽमावास्येति व्यवह्रियते, ततो मघानक्षत्रमप्येवं व्यवहारतोऽमावास्यायां प्राप्यत इति न कश्चिद्विरोधः । परमार्थतः पुनरिमाममावास्याम् इमानि त्रीणि नक्षत्राणि परिसमापयन्ति, तद्यथा-पुनर्वसू पुष्योऽश्लेषा च, अस्यां पञ्चानामपि युगभाविनीनां नक्षत्रत्रयाणां मध्येऽन्यतरेण समापनात्, करणं चात्र प्रागुक्तम् ॥१४७॥

पोट्ठवइण्णं भंते ! अमावासं[१] कति णक्खत्ता जोएंति ?, गोअमा ! दो पुव्वाफग्गुणी उत्तराफग्गुणी[२] अ ॥ १४८ ॥

तथा **प्रौष्ठपदीं भदन्त ! अमावास्यां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ?, गौतम ! द्वे** नक्षत्रे युङ्क्तः, तद्यथा-**पूर्वफल्गुनी उत्तरफल्गुनी च**शब्दान्मघा ग्राह्या, अस्यास्तु भाद्रपदपूर्णिमा-वर्त्तिशतभिषक्तो व्यवहारतोऽपि करणरीत्या निश्चयतश्चार्वाग्गणने पञ्चदशत्वात्, आसां पञ्चा-नामपि युगभाविनीनां नक्षत्रत्रयाणां मध्येऽन्यतरेण समापनाच्च, करणं च पूर्ववत् ॥१४८॥

अस्सोइण्णं भंते ! दो-हत्थे चित्ता य । कत्तिइण्णं दो-साई विसाहा य, मग्गसिरिण्णं तिण्णि-अणुराहा जेट्ठा मूलो अ । पोसिण्णं दो-पुव्वासाढा उत्तरासाढा । माहिण्णं तिण्णि-अभिई सवणो धणिट्ठा । फग्गुणिण्णं तिण्णि-सयभिसया पुव्वाभद्दवया उत्तराभद्दवया । चेत्तिण्णं दो-रेवई अस्सिणी अ । वइसाहिण्णं दो-भरणी कत्तिआ य । जेट्ठामूलिण्णं दो-रोहिणी मग्गसिरं च । आसाढिण्णं तिण्णि-अद्दा पुणव्वसू पुस्सो ॥ १४९ ॥

तथा **आश्वयुजीम**मावास्यां [भदन्त !] कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ?, गौतम ! **द्वे** नक्षत्रे युङ्क्तः, तद्यथा-**हस्तश्चित्रा च**, इदमपि व्यवहारतः, निश्चयतस्तु आश्वयुजीममावास्यां त्रीणि नक्षत्राणि समापयन्ति, तद्यथा-उत्तरफल्गुनी हस्तश्चित्रा च । यच्च पूर्वमाश्वयुज्यां पूर्णिमा-

१. अवामंसं-अब J12 । अमावसं-V ॥ २. उत्तरभद्दवया-अJ1 । उत्तराफग्गुणी उत्तरामद्दवया-बJ2 । "वृत्तित्रयेऽपि परमार्थतः पुनस्त्रीणि नक्षत्राणि मघादीनि इति तात्पर्यं स्वीकृतमस्ति, किन्तु उत्तराभद्दवया इति पाठो नास्ति तत्रोल्लिखितः एष वाचनाभेदो सम्भाव्यते लिपिदोषो वा ।" इति V पृ. ५७७ टि. ४ ॥

यामुत्तरभाद्रपदा प्रागुक्तहेतोर्न विवक्षिता परं निश्चयतः सा आयातीति तस्याः पञ्चदशत्वादुत्तरफल्गुन्यत्र गृहीता, आसां च पञ्चानां युगभाविनीनां नक्षत्रत्रयाणां मध्येऽन्यतरेण समापनात् भावना प्राग्वत् । तथा **कार्त्तिकीं** अमावास्यां **द्वे** नक्षत्रे युङ्क्तः, तद्यथा-**स्वातिर्विशाखा च**, एतदपि व्यवहारतः, निश्चयतस्तु त्रीणि स्वातिर्विशाखा चित्रा च, अस्यामपि पूर्णिमायां अश्विन्यनुरोधेन चित्रोक्ता[1], आसां पञ्चानामपि युगभाविनीनां नक्षत्रत्रयाणां मध्येऽन्यतरेण समापनादिति । तथा **मार्गशीर्षीं त्रीणि** नक्षत्राणि युञ्जन्ति, तद्यथा-**अनुराधा ज्येष्ठा मूलश्च**, एतदपि व्यवहारतः, निश्चयतः पुनरिमानि त्रीणि नक्षत्राणि इमामवास्यां[2] परिसमापयन्ति, तद्यथा-विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा च, आसां पञ्चानां युगभाविनीनां नक्षत्रत्रयाणां मध्येऽन्यतरेण समापनात् । तथा **पौषीममावास्यां द्वे** नक्षत्रे युङ्क्तः-**पूर्वाषाढा उत्तराषाढा** च, एतदपि व्यवहारत उक्तं, निश्चयतः पुनस्त्रीणि नक्षत्राणि परिसमापयन्ति, तद्यथा-मूलं पूर्वाषाढा उत्तराषाढा च, आसां युगमध्येऽधिकमाससम्भवेन षण्णामपीत्यादि पूर्ववत् । तथा **माघीममावास्यां त्रीणि-अभिजित् श्रवणो धनिष्ठा**, एतत्पूर्णिमावर्त्तिभ्यामश्लेषा-मघाभ्यामभिजितः षोडशत्वेन व्यवहारातीतत्वेऽपि श्रवणसम्बद्धत्वात् पञ्चदशत्वं समाधेयम् । एतदपि व्यवहारतः, निश्चयतः पुनस्त्रीणि-उत्तराषाढा अभिजित् श्रवणश्च, आसां पञ्चानामपीत्यादि पूर्ववत् । तथा **फल्गुनीं त्रीणि** तद्यथा-**शतभिषक् पूर्वभाद्रपदा उत्तरभाद्रपदा**, एतदपि व्यवहारतः, निश्चयतस्त्रीणि तद्यथा-धनिष्ठा शतभिषक् पूर्वभाद्रपदा च, आसां पञ्चानामपीत्यादि तथैव । तथा **चैत्रीं द्वे** नक्षत्रे-**रेवती आश्विनी च**, एतदपि व्यवहारतः, निश्चयतस्तु त्रीणि तद्यथा-पूर्वभाद्रपदा उत्तरभाद्रपदा रेवती च, आसामपीत्यादि तथैव । तथा (**वैशाखी द्वे** नक्षत्रे-**भरणी कृत्तिका च**, एतदपि व्यवहारतः, निश्चयतस्तु त्रीणि तद्यथा-रेवती अश्विनी भरणी च, आसामपीत्यादि तथैव) । **ज्येष्ठामूलीं द्वे-रोहिणी मृगशिरश्च**, एतदपि व्यवहारतः, निश्चयतस्तु इमे द्वे नक्षत्रे-रोहिणी कृत्तिका च, आसामपीत्यादि पूर्ववत् । तथा **आषाढीं त्रीणि** नक्षत्राणि-**आर्द्रा पुनर्वसू पुष्यः**, एतदपि व्यवहारतः, परमार्थतस्तु इमानि त्रीणि नक्षत्राणि-मृगशिरः आर्द्रा पुनर्वसू च, आसां युगान्तेऽधिकमाससम्भवेन षण्णामपि (पञ्चानां) तथैवेति । अत्र सर्वत्र नक्षत्रगणनामध्ये यत्राभिजिदन्तर्भवति तत्र न गण्यं, स्तोककालत्वात् । यत उक्तं **समवायाङ्गे-"जंबुद्दीवे २ अभिईवज्जेहिं सत्तावीसाए णक्खत्तेहिं संववहारो वट्टइ"**[२७।१।२]त्ति ॥१४९॥

---

१. चित्रा युक्ता-पुके ॥ २. पुके । इमाम्-मु. नास्ति ॥

अथामावास्यासु कुलादियोजनाप्रश्नमाह–

साविट्ठिण्णं भंते ! अमावासं किं कुलं जोएइ ? उवकुलं जोएइ ? कुलोवकुलं जोएइ ?, गो० ! कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ णो लब्भइ कुलोवकुलं । कुलं जोएमाणे महा णक्खत्ते जोएइ, उवकुलं जोएमाणे अस्सेसा णक्खत्ते जोएइ । साविट्ठिण्णं अमावासं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ । कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता साविट्ठी अमावासा जुत्त त्ति वत्तव्वं सिआ ॥ १५० ॥

"**साविट्ठिण्ण**"मित्यादि, **श्राविष्ठीं भदन्त ! अमावास्यां किं कुलं युनक्ति उपकुलं युनक्ति कुलोपकुलं युनक्ति** ?, भगवानाह–**गौतम ! कुलं वा युनक्ति उपकुलं वा युनक्ति** वाशब्दः समुच्चये, **नो लभते कुलोपकुलं**, तत्र **कुलं युञ्जत्** श्राविष्ठीममावास्यां **मघानक्षत्रं युनक्ति**, एतच्च प्रागुक्तयुक्त्या व्यवहारत उक्तं, परमार्थतः पुनः कुलं युञ्जत् पुष्यनक्षत्रं युनक्तीति, एतच्च प्रागेवोक्तम्, एवमुत्तरसूत्रमपि व्यवहारमधिकृत्य यथायोगं परिभावनीयमिति । **उपकुलं युञ्जत् अश्लेषानक्षत्रं युनक्ति** । अथोपसंहारमाह–यत उक्तप्रकारेण द्वाभ्यां [१]कुलोपकुलाभ्यां श्राविष्ठ्या अमावास्यायाश्चन्द्रयोगः समस्ति, न तु कुलोपकुलेन, ततः **श्राविष्ठीममावास्यां कुलमपि युनक्ति उपकुलमपि युनक्ति** इति वक्तव्यं स्यात्, यदिवा **कुलेन वा युक्ता उपकुलेन वा युक्ता** सती **श्राविष्ठी अमावास्या युक्तेति वक्तव्यं स्यात्** ॥१५०॥

पोट्ठवइण्णं भंते ! अमावासं तं चेव दो जोएइ णो लब्भइ कुलोवकुलं, कुलं जोएमाणे उत्तराफग्गुणीणक्खत्ते जोएइ उव० पुव्वाफग्गुणी, पोट्ठवइण्णं अमावासं जाव वत्तव्वं सिआ ॥ १५१ ॥

तथा **प्रौष्ठपदीं भदन्त ! अमावास्यामित्यादि तदेव प्रश्नसूत्रम्** । उत्तरसूत्रे **द्वे** कुलोपकुले युंक्तः **नो युनक्ति कुलोपकुलं**, तत्र **कुलं** युञ्जत् **उत्तरफल्गुनीनक्षत्रं युनक्ति उपकुलं** युञ्जत् **पूर्वफल्गुनी**नक्षत्रं युनक्ति, उपसंहारसूत्रं तथैव ॥१५१॥

मग्गसिरिण्णं तं चेव, कुलं मूले णक्खत्ते जोएइ, उ० जेट्ठा, कुलोवकु० अणुराहा जाव जुत्त त्ति वत्तव्वं सिआ ॥ १५२ ॥

१. पुके । कुलाभ्यां-मु. ॥

एवं माहीए फग्गुणीए आसाढीए कुलं वा उवकुलं वा कुलोवकुलं वा, अवसेसिआणं कुलं वा उवकुलं वा जोएइ ॥ १५३ ॥

मार्गशीर्षी तदेव प्रश्नसूत्रं 'किं कुलं जोएइ' इत्यादि, तत्र **कुलं** युञ्जत् **मूलनक्षत्रं युनक्ति उपकुलं** युञ्जत् **ज्येष्ठा**नक्षत्रं **कुलोपकुलं** युञ्जत् **अनुराधा**नक्षत्रं युनक्ति, **यावत्करणादुप-**संहारसूत्रं **युक्तेति वक्तव्यं स्यात्**। **एवं माघ्याः फाल्गुन्याः**[१] **आषाढ्याश्च कुलं वा उपकुलं वा कुलोपकुलं वा, अवशेषिकाणां कुलं वा उपकुलं वा युनक्तीति** वाच्यम् ॥१५२-१५३॥

अथ सन्निपातद्वारम्-तत्र सन्निपातो नाम पूर्णिमानक्षत्रात् अमावास्यायाममावास्यानक्षत्राच्च पूर्णिमायां नक्षत्रस्य नियमेन सम्बन्धस्तस्य सूत्रम्-

जया[२] **णं भंते ! साविट्ठी पुण्णिमा भवइ, तया णं माही अमावासा भवइ ?, जया णं भंते ! माही पुण्णिमा भवइ तया णं साविट्ठी अमावासा भवइ ?, हंता ! गो० ! जया णं साविट्ठी तं चेव वत्तव्वं ॥ १५४ ॥**

"**जया णं भंते**" इत्यादि, **यदा भदन्त ! 'श्राविष्ठी'** श्रविष्ठानक्षत्रयुक्ता **पूर्णिमा भवति, तदा** तस्या अर्वाक्तनी **अमावास्या 'माघी'** मघानक्षत्रयुक्ता **भवति ? यदा तु 'माघी'** मघानक्षत्रयुक्ता **पूर्णिमा भवति, तदा** पाश्चात्या **अमावास्या 'श्राविष्ठी'** श्रविष्ठायुक्ता **भवति ?** इति काक्वा प्रश्नः। भगवानाह-**हन्ते**ति भवति, तत्र **गौतम ! यदा श्राविष्ठी**त्यादि **तदेव वक्तव्यं**, प्रश्नेन समानोत्तरत्वात्। अयमर्थः-इह व्यवहारनयमतेन यस्मिन्नक्षत्रे पौर्णमासी भवति, तत आरभ्य अर्वाक्तने पञ्चदशे चतुर्दशे वा नक्षत्रे नियमतोऽमावास्या, ततो यदा श्राविष्ठी-श्रविष्ठानक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी भवति, तदा अर्वाक्तनी अमावास्या माघी-मघानक्षत्रयुक्ता भवति, श्रविष्ठानक्षत्रादारभ्य मघानक्षत्रस्य पूर्वं चतुर्दशत्वात्। अत्र **सूर्यप्रज्ञप्ति-चन्द्रप्रज्ञप्तिवृत्त्योस्तु "मघानक्षत्रादारभ्य श्रविष्ठनक्षत्रस्य पञ्चदशत्वादि"** [ ]ति पाठस्तेनात्र विचार्यम्, एतच्च श्रावणमासमधिकृत्य भावनीयम्। यदा भदन्त ! माघी-मघानक्षत्रयुक्ता पूर्णिमा भवति, तदा श्राविष्ठी-श्रविष्ठानक्षत्रयुक्ता पाश्चात्या अमावास्या भवति, मघानक्षत्रादारभ्य पूर्वं श्रविष्ठानक्षत्रस्य पञ्चदशत्वात्, इदं च माघमासमधिकृत्य भावनीयम् ॥१५४॥

जया णं भंते ! पोट्ठवई पुण्णिमा भवइ तया णं फग्गुणी अमावासा भवइ ? जया णं फग्गुणी पुण्णिमा भवइ तया णं पोट्ठवई अमावासा

---

१. फल्गुन्या-के ॥ २. द्र. चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रं १०।७ ॥

भवइ ?, हंता ! गोअमा ! तं चेव । एवं एतेणं अभिलावेणं इमाओ पुण्णिमाओ अमावासाओ णेअव्वाओ-अस्सिणी पुण्णिमा चेत्ती अमावासा, कत्तिगी पुण्णिमा वइसाही अमावासा, मग्गसिरी पुण्णिमा जेट्ठामूली अमावासा, पोसी पुण्णिमा आसाढी अमावासा ॥ १५५ ॥

यदा भदन्त ! 'प्रौष्ठपदी' उत्तरभाद्रपदायुक्ता **पौर्णमासी भवति, तदा** पाश्चात्या **अमावास्या** उत्तर**फल्गुनी**नक्षत्रयुक्ता **भवति** ? उत्तरभाद्रपदात् आरभ्य पूर्वमुत्तरफल्गुनीनक्षत्रस्य पञ्चदशत्वात्, एतच्च भाद्रपदमासमधिकृत्यावसेयम् । **यदा** चोत्तर**फल्गुनी**[1]नक्षत्रयुक्ता **पौर्णमासी भवति, तदा अमावास्या 'प्रौष्ठपदी'** उत्तरभाद्रपदोपेता **भवति** ? उत्तरफल्गुनीमारभ्य पूर्वमुत्तरभाद्रपदानक्षत्रस्य चतुर्दशत्वात्, इदं च फाल्गुनमासमधिकृत्योक्तम् । **एवमेतेनाभिलापेन इमाः पूर्णिमा अमावास्याश्च नेतव्याः**, यदा **'आश्विनी'** अश्विनीनक्षत्रोपेता **[पौर्णमासी]** भवति, तदा पाश्चात्यानन्तरा **अमावास्या 'चैत्री'** चित्रानक्षत्रयुक्ता भवति, अश्विन्या आरभ्य पूर्वं चित्रानक्षत्रस्य पञ्चदशत्वात्, एतच्च व्यवहारनयमधिकृत्योक्तमवसेय, निश्चयत एकस्यामप्यश्वयुग्मासभाविन्याममावास्यायां चित्रानक्षत्रासम्भवात्, एतच्च प्रागेव दर्शितम् । यदा च चैत्री-चित्रानक्षत्रोपेता पौर्णमासी भवति, तदा पाश्चात्या अमावास्या आश्विनी-अश्विनीनक्षत्रयुक्ता भवति, एतदपि व्यवहारतः, निश्चयत एकस्यामपि चैत्रमासभाविन्याममावास्यायाम् अश्विनीनक्षत्रस्यासम्भवात्, एतदपि सूत्रमाश्विन-चैत्रमासावधिकृत्य प्रवृत्तम् । यदा च **'कार्त्तिकी'** कृत्तकिनक्षत्रयुक्ता **पौर्णमासी** भवति, तदा **'वैशाखी'** विशाखानक्षत्रयुक्ता **अमावास्या** भवति, कृत्तिकातोऽर्वाक् विशाखायाः पञ्चदशत्वात् । यदा वैशाखी-विशाखानक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी भवति, तदा ततोऽनन्तरा पाश्चात्याऽमावास्या कार्त्तिकी-कृत्तिकानक्षत्रोपेता भवति, विशाखातः पूर्वं कृत्तिकायाश्चतुर्दशत्वात् । एतच्च कार्त्तिक-वैशाखमासावधिकृत्योक्तम् । यदा च **'मार्गशीर्षी'** मृगशिरोयुक्ता **पौर्णमासी** भवति, तदा **'ज्येष्ठामूली'** ज्येष्ठामूलनक्षत्रोपेता **अमावास्या**, यदा ज्येष्ठामूली पौर्णमासी तदा मार्गशीर्षी अमावास्या, एतच्च मार्गशीर्ष-ज्येष्ठमासावधिकृत्य भावनीयम् । यदा **'पौषी'** पुष्यनक्षत्रयुक्ता **पौर्णमासी**, तदा **'आषाढी'** पूर्वाषाढानक्षत्रयुक्ता **अमावास्या** भवति, यदा पूर्वाषाढानक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी भवति, तदा पुष्यनक्षत्रयुक्ता अमावास्या भवति, एतच्च पौषाऽऽषाढमासावधिकृत्योक्तम्, उक्तानि मासार्द्धमासपरिसमापकानि नक्षत्राणि ॥१५५॥

---

१. पु. । फाल्गु० मु. ॥

सम्प्रति स्वयमस्तंगमनेनाहोरात्रपरिसमापकतया मासपरिसमापकं नक्षत्रवृन्दमाह, तत्र प्रथमतो वर्षाकालाहोरात्रपरिसमापकनक्षत्रसूत्रम्-

वासाणं पढमं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?, गो० ! चत्तारि णक्खत्ता णेंति, तं०-उत्तरासाढा अभिई सवणो धणिट्ठा । उत्तरासाढा चउद्दस अहोरत्ते णेइ । अभिई सत्त अहोरत्ते णेइ । सवणो अट्ठऽहोरत्ते णेइ धणिट्ठा एगं अहोरत्तं णेइ । तंसि च णं मासंसि चउरंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ । तस्स णं मासस्स चरिमदिवसे दो पदा चत्तारि अ अंगुला पोरिसी भवइ ॥ १५६ ॥

"**वासाण**" मित्यादि, '**वर्षाणां**' वर्षाकालस्य चतुर्मासप्रमाणस्य '**प्रथममासं**' श्रावण-लक्षणं **कति नक्षत्राणि** स्वय-मस्तंगमनेनाहोरात्रपरिसमापकतया क्रमेण **नयन्ति** ?, द्विकर्म-कत्वादस्य समाप्तिमिति गम्यते । कोऽर्थः ? वक्ष्यमाणसङ्ख्याङ्कस्वस्वदिनेषु इमानि नक्षत्राणि यदा अस्तमयन्ति, तदा श्रावणमासेऽहोरात्रसमाप्तिरित्यर्थः, तेनैतानि रात्रिपरिसमाप-कत्वाद्रात्रिनक्षत्राण्युच्यन्ते । भगवानाह-**गौतम ! चत्वारि नक्षत्राणि नयन्ति, तद्यथा-उत्तराषाढा अभिजिच्छ्रवणो धनिष्ठा च, तत्रोत्तराषाढा** प्रथमान् **चतुर्दश अहोरात्रान् नयति**, तदनन्तरम**भिजिन्न**क्षत्रं **सप्ताहोरात्रान्नयति**, ततः **श्रवण**नक्षत्र**मष्टौ अहोरात्रान्नयति**, एवं च सर्वसङ्कलनया श्रावणमासस्यैकोनत्रिंशदहोरात्रा गताः, ततः परं श्रावणमासस्य सम्बन्धिनं चरम**मेकमहोरात्रं धनिष्ठा**नक्षत्रं **नयति**, एवं श्रावणमासं चत्वारि नक्षत्राणि नयन्ति । अस्य च नेतृद्वारस्य प्रयोजनं रात्रिज्ञानादौ-

"जं नेइ जया रत्तिं, णक्खत्तं तंमि णहचउब्भागे ।
संपत्ते विरमेज्जा, सज्झायपओसकालम्मि ॥१॥" [ ] इत्यादौ,

तदनुरोधेन च दिनमानज्ञानायाह-**तस्मिंश्च** श्रावण**मासे** प्रथमादहोरात्रादारभ्य प्रतिदिन-मन्यान्यमण्डलसङ्क्रान्त्या, तथा कथञ्चनापि परावर्त्तते, यथा तस्य श्रावणमासस्य पर्यन्तेषु चतुरङ्गुलाधिका द्विपदा पौरुषी भवति । अत्र चायं विशेषः-यस्यां सङ्क्रान्तौ यावद्दिन-रात्रिमानं तच्चतुर्थोऽशः पौरुषी यामः प्रहर इतियावत्, आषाढपूर्णिमायां च द्विपदप्रमाणा पौरुषी तस्यां च श्रावणसत्कचतुरङ्गुलप्रक्षेपे चतुरङ्गुलाधिका पौरुषी भवति, माने मेयोपचारादभेदनिर्देशः, तेन **चतुरङ्गुलाधिकपौरुष्या छायये**ति विशेषण-विशेष्यभावः । एतदेवाह-**तस्य** श्रावण-**मासस्य चरमे दिवसे द्वे पदे चत्वारि चाङ्गुलानि पौरुषी भवति** ॥१५६॥

अथ द्वितीयं मासं पृच्छति-

वासाणं भंते ! दोच्चं मासं कइ णक्खत्ता णेंति ?, गो० ! चत्तारि[१]-धणिट्ठा सयभिसया पुव्वाभद्दवया उत्तराभद्दवया । धणिट्ठा णं चउद्दस अहोरत्ते णेइ । सयभिसया सत्त अहोरत्ते णेइ । पुव्वाभद्दवया अट्ठ अहोरत्ते णेइ, उत्तराभद्दवया एगं । तंसि च णं मासंसि अट्ठंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ । तस्स मासस्स चरिमे दिवसे दो पया अट्ठ य अंगुला पोरिसी भवइ ॥ १५७ ॥

"**वासाण**"मित्यादि, '**वर्षाणां**' वर्षाकालस्य **भदन्त** ! '**द्वितीयं**' भाद्रपदलक्षणं **मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति** ?, अस्य वाक्यस्य भावार्थः प्राग्वद् भावनीयः । **गौतम** ! **चत्वारि** नक्षत्राणि नयन्ति, तद्यथा-**धनिष्ठा शतभिषक् पूर्वभाद्रपदा उत्तरभाद्रपदा च**, तत्र **धनिष्ठा** आद्यान् **चतुर्द्दश अहोरात्रान् नयति**, तदनन्तरं **शतभिषक् सप्ताहोरात्रान् नयति**, ततः पर**मष्टावहोरात्रान् पूर्वभाद्रपदा नयति**, तदनन्तर**मेक**-महोरात्र**मुत्तरभाद्रपदा** नयति, एवमेनं भाद्रपदमासं चत्वारि नक्षत्राणि नयन्ति । **तस्मिंश्च मासे 'अष्टाङ्गुलपौरुष्या'** अष्टाङ्गुलाधिक-पौरुष्या **छायया सूर्योऽनुपरावर्त्तते**, अत्र भावार्थः प्राग्वद् भावनीयः । एतदेवाह-'**तस्य**' भाद्रपद**मासस्य चरमे दिवसे द्वे पदे अष्ट चाङ्गुलानि पौरुषी भवति** ॥१५७॥

अथ तृतीयं पृच्छति-

वासाणं भंते ! तइअं मासं कइ णक्खत्ता णेंति ?, गो० ! तिण्णि णक्खत्ता णेंति तं०-उत्तराभद्दवया रेवई अस्सिणी, उत्तराभद्दवया चउद्दस राइंदिए णेइ रेवई पण्णरस अस्सिणी एगं । तंसि च णं मासंसि दुवालसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ । तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे लेहट्ठाइं तिण्णि पयाइं पोरिसी भवइ ॥ १५८ ॥

"**वासाणं भंते !**"त्ति, इत्यादि, **वर्षाणां भदन्त ! तृतीयं मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति ?, गौतम ! त्रीणि नक्षत्राणि-उत्तरभाद्रपदा रेवती अश्विनी** च, तत्रोत्तरभाद्रपदा **चतुर्दश रात्रिन्दिवान् नयति, रेवती पञ्चदश** रात्रिन्दिवान् नयति, **अश्विनी एकं** रात्रिन्दिवं नयति, एवं तृतीयं मासं त्रीणि नक्षत्राणि नयन्ति । **तस्मिंश्च मासे 'द्वादशाङ्गुलपौरुष्या'**

---

१. चत्तारि तं जहा धणिट्ठा-V ॥

द्वादशाङ्गुलाधिकपौरुष्या **छायया सूर्योऽनुपरावर्त्तते**, भावार्थः पूर्ववत् । एतदेवाह-**तस्य मासस्य चरमे दिवसे 'रेखा'** पादपर्यन्तवर्त्तिनी सीमा तत्स्थानि **त्रीणि पदानि पौरुषी भवति** । किमुक्तं भवति ? परिपूर्णानि त्रीणि पदानि पौरुषी भवति ॥१५८॥

अथ चतुर्थं पृच्छति-

वासाणं भंते ! चउत्थं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?, गो० ! तिण्णि-अस्सिणी भरणी कत्तिआ, अस्सिणी[१] चउद्दस, भरणी पन्नरस, कत्तिआ एगं । तंसि च णं मासंसि सोलसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ । तस्स णं मासस्स चरमे दिवसे तिण्णि पयाइं चत्तारि य अंगुलाइं पोरिसी भवइ ॥ १५९ ॥

"**वासाण**"मित्यादि, '**वर्षाणां**' वर्षाकालस्य **भदन्त** ! '**चतुर्थं**' कार्त्तिकलक्षणं **मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति ?, गौतम ! त्रीणि-अश्विनी भरणी कृत्तिका** च, **तत्राश्विनी चतुर्दशाहोरात्रान् भरणी पञ्चदशाहोरात्रान् कृत्तिका एकम**होरात्रं नयति । **तस्मिंश्च मासे 'षोडशाङ्गुलपौरुष्या'** षोडशाङ्गुलाधिकपौरुष्या **छायया सूर्योऽनुपरा-वर्त्तते**, भावार्थः पूर्ववत् । एतदेवाह-**तस्य मासस्य चरमे दिवसे त्रीणि पदानि चत्वारि चाङ्गुलानि पौरुषी भवति** ॥१५९॥

गतो वर्षाकालः । अथ हेमन्तकालं पृच्छति-

हेमंताणं भंते ! पढमं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?, गो० ! तिण्णि-कत्तिआ रोहिणी मिगसिरं । कत्तिआ चउद्दस, रोहिणी पण्णरस, मिगसिरं एगं अहोरत्तं णेइ । तंसि च णं मासंसि वीसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ । तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि तिण्णि पयाइं अट्ठ य अंगुलाइं पोरिसी भवइ ॥ १६० ॥

"**हेमंताण**"मित्यादि, '**हेमन्तानां**' हेमन्त-कालस्य **भदन्त** ! '**प्रथमं**' मार्गशीर्षलक्षणं **मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति ?, गौतम ! त्रीणि** न०-**कृत्तिका रोहिणी मृगशिरश्च**, तत्र **कृत्तिका चतुर्दशा**होरात्रान् **रोहिणी पञ्चदशा**-होरात्रान् **मृगशिर एकमहोरात्रं नयति । तस्मिंश्च मासे 'विंशत्यङ्गुलपौरुष्या'** विंशत्यङ्गुलाधिकपौरुष्या **छायया सूर्योऽनुपरावर्त्तते**,

---

१. आसिणी-J2 । एवमग्रेऽपि ॥

भावार्थः पूर्ववत् । एतदेवाह-**तस्य मासस्य यश्चरमो दिवसस्तस्मिन् दिवसे त्रीणि पदानि अष्ट चाङ्गुलानि पौरुषी भवतीति** ॥१६०॥

अथ द्वितीयं पृच्छति-

हेमंताणं भंते ! दोच्चं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?, गोअमा ! चत्तारि णक्खत्ता णेंति, तंजहा-मिगसिरं अद्दा पुणव्वसू पुस्सो । मिगसिरं चउद्दस राइंदिआइं णेइ, अद्दा अट्ठ णेइ, पुणव्वसू सत्त राइंदिआइं, पुस्सो एगं राइंदिअं णेइ । तया णं चउव्वीसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ, तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि लेहट्ठाइं चत्तारि पयाइं पोरिसी भवइ ॥ १६१ ॥

"**हेमंताणं भंते !**" इत्यादि, **हेमन्तकालस्य भदन्त ! 'द्वितीयं'** पौषनामकं **मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति ?, गौतम ! चत्वारि नक्षत्राणि नयन्ति, तद्यथा-मृगशिर आर्द्रा पुनर्वसू पुष्यश्च,** तत्र **मृगशिरश्चतुर्दश रात्रिन्दिवान्नयति, आर्द्रा अष्टौ नयति, पुनर्वसू सप्त रात्रिन्दिवान्, पुष्य एकं रात्रिन्दिवं नयति । तदा 'चतुर्विंशत्यङ्गुलपौरुष्या'** चतुर्विंशत्यङ्गुलाधिकपौरुष्या **छायया सूर्योऽनुपरावर्त्तते,** भावार्थः पूर्ववत् । **तस्य मासस्य चरमे दिवसे 'रेखा'** पादपर्यन्तवर्त्तिनी सीमा तत्स्थानि **चत्वारि पदानि पौरुषी भवति** । किमुक्तं भवति ? परिपूर्णानि चत्वारि पदानि पौरुषी भवति ॥१६१॥

अथ तृतीयं पृच्छति-

हेमंताणं भंते ! तच्चं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?, गोअमा ! तिण्णि-णक्खत्ता णेंति तं०-पुस्सो असिलेसा महा । पुस्सो चोद्दस राइंदिआइं णेइ, असिलेसा पण्णरस, महा एक्कं । तया णं वीसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ । तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि तिण्णि पयाइं अट्ठंगुलाइं पोरिसी भवइ ॥ १६२ ॥

हेमंताणं भंते ! चउत्थं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?, गोअमा ! तिण्णि ण०, तं०-महा पुव्वाफग्गुणी उत्तरफग्गुणी । महा चउद्दस राइंदिआइं णेइ, पुव्वाफग्गुणी पण्णरस राइंदिआइं णेइ, उत्तराफग्गुणी एगं राइंदिअं णेइ । तया णं सोलसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ । तस्स णं मासस्स

जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि तिण्णि पयाइं चत्तारि अंगुलाइं पोरिसी भवइ ॥ १६३ ॥

"**हेमंताण**"मित्यादि, एतत् सुगमम् । अथ चतुर्थं पृच्छति-"**हेमन्ताणं भन्ते ! चउत्थं**" इत्यादि, सुगमम् । अतीतो हेमन्तः ॥१६२-१६३॥

गिम्हाणं भंते ! पढमं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?, गोअमा ! तिण्णि णक्खत्ता णेंति-उत्तराफग्गुणी हत्थो चित्ता । उत्तराफग्गुणी चउद्दस राइंदिआइं णेइ, हत्थो पण्णरस राइंदिआइं णेइ । चित्ता एगं राइंदिअं णेइ । तया णं दुवालसंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ, तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि लेहट्ठाइं तिण्णि पयाइं पोरिसी भवइ ॥ १६४ ॥

गिम्हाणं भंते ! दोच्चं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?, गोअमा ! तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं०-चित्ता साई विसाहा । चित्ता चउद्दस राइंदिआइं णेइ, साई पण्णरस राइंदिआइं णेइ, विसाहा एगं राइंदिअं णेइ । तया णं अट्ठंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ । तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि दो पयाइं अट्ठंगुलाइं पोरिसी भवइ ॥ १६५ ॥

अथ ग्रीष्मं पृच्छति-

गिम्हाणं भंते ! तच्चं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?, गो० ! चत्तारि णक्खत्ता णेंति, तंजहा-विसाहाऽणुराहा जेट्ठा मूलो । विसाहा चउद्दस राइंदिआइं णेइ, अणुराहा अट्ठ राइंदिआइं णेइ, जेट्ठा सत्त राइंदिआइं णेइ, मूलो एक्कं राइंदिअं । तया णं चउरंगुलपोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ । तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि दो पयाइं चत्तारि अ अंगुलाइं पोरिसी भवइ ॥ १६६ ॥

"**गिम्हाणं भंते ! पढमं**" इत्यादि, तथा "**गिम्हाणं भन्ते ! दोच्चं**" इत्यादि, तथा "**गिम्हाणं भंते ! तच्चं मासं**" इत्यादि ॥१६४-१६५-१६६॥

गिम्हाणं भंते ! चउत्थं मासं कति णक्खत्ता णेंति ?, गोअमा ! तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं०-मूलो पुव्वासाढा उत्तरासाढा । मूलो चउद्दस राइंदिआइं णेइ, पुव्वासाढा पण्णरस राइंदिआइं णेइ, उत्तरासाढा एगं राइंदिअं णेइ । तया णं वट्टाए समचउरंससंठाणसंठिआए णग्गोहपरिमण्डलाए सकायमणुरंगिआए छायाए सूरिए अणुपरिअट्टइ । तस्स णं मासस्स जे से चरिमे दिवसे तंसि च णं दिवसंसि लेहट्ठाइं दो पयाइं पोरिसी भवइ । एतेसि णं पुव्ववण्णिआणं पयाणं इमा संगहणी, तं०-

जोगो देवय-तारग्ग-गोत्त-संठाण चन्द-रविजोगो ।
कुल-पुण्णिम-अवमंसा, णेआ छाया य बोद्धव्वा ॥१॥ १६७ ॥

तथा "**गिम्हाणं भंते ! चउत्थं**" इत्यादि, चत्वार्यपि इमानि ग्रीष्मकालसूत्राणि सुबोधानि, प्रायः प्राक्तनसूत्रानुसारित्वात् । नवरं तस्मिश्चाषाढे मासे प्रकाश्यवस्तुनो वृत्तस्य **वृत्तया** समचतुरस्रसंस्थानसंस्थितस्य **समचतुरस्रसंस्थानसंस्थितया** न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानस्य **न्यग्रोधपरिमण्डलया**, उपलक्षणमेतत् शेषसंस्थानसंस्थितस्य प्रकाश्यस्य वस्तुनः शेषसंस्थानसंस्थितया । आषाढे हि मासे प्रायः सर्वस्यापि प्रकाश्यस्य वस्तुनो दिवसस्य चतुर्भागेऽतिक्रान्ते शेषे वा स्वप्रमाणा छाया भवति, निश्चयतः पुनराषाढमासस्य चरमदिवसे, तत्रापि सर्वाभ्यन्तरे मण्डले वर्त्तमाने सूर्ये, ततो यत् प्रकाश्यं वस्तु यत्संस्थानं भवति, तस्य छायाऽपि तथासंस्थानोपजायते, तत उक्तम्-वृत्तस्य वृत्तया इत्यादि । एतदेवाह-'**स्वकायमनुरङ्गिन्या**' 'स्वस्य'- स्वकीयस्य छायानिबन्धनस्य वस्तुनः 'कायः'- शरीरं स्वकायस्तमनुरज्यते-अनुकारं विदधातीत्येवंशीला अनुरङ्गिनी "**द्वि-षड्ग्रहे**"५।२।५० [**श्रीसिद्ध० ५-२-४० युजरञ्जद्विष०**] त्यादिना घिनञ्प्रत्ययस्तया स्वकायमनुरङ्गिन्या **छायया सूर्यः 'अनु'** प्रतिदिवसं **परावर्त्तते** । एतदुक्तं भवति-आषाढस्य प्रथमादहोरात्रादारभ्य प्रतिदिवसमन्यान्यमण्डलसङ्क्रान्त्या तथा कथञ्चनापि सूर्यः परावर्त्तते, यथा सर्वस्यापि प्रकाश्यस्य वस्तुनो दिवसस्य चतुर्भागेऽतिक्रान्ते शेषे वा स्वानुकारा स्वप्रमाणा च छाया भवतीति । शेषं सुगमम् । इदं च पौरुषीप्रमाणं व्यवहारत उक्तं, निश्चयतः सार्द्धैस्त्रिंशताऽहोरात्रैश्चतुरङ्गुला वृद्धिर्हानिर्वा वेदितव्या । तथा च निश्चयतः पौरुषीप्रमाणप्रतिपादनार्थमिमाः पूर्वाचार्यप्रसिद्धाः करणगाथाः-

"पव्वे पण्णरसगुणे, तिहिसहिए पोरिसीइ आणयणे ।
छलसीअसियविभत्ते, जं लद्धं तं विआणाहि ॥१॥

जइ होइ विसमलद्धं, दक्खिणमयणं ठविज्ज नायव्वं ।
अह हवइ समं लद्धं, नायव्वं उत्तरं अयणं ॥२॥
अयणगए तिहिरासी, चउग्गुणे पव्वपायभइयंमि ।
जं लद्धमंगुलाणि य, खयवुड्ढी पोरिसीए उ ॥३॥
दक्खिणवुड्ढी दुपया, अंगुलाणं तु होइ नायव्वा ।
उत्तरअयणे हाणी, कायव्वा चउहि पायाहिं ॥४॥
सावणबहुलपडिवया, दुपया पुण पोरिसी धुवा होइ ।
चत्तारि अंगुलाइं, मासेणं वड्ढए तत्तो ॥५॥
इक्कत्तीसइभागा तिहिए, पुण अंगुलस्स चत्तारि ।
दक्खिणअयणे वुड्ढी, जाव य चत्तारि उ पयाइं ॥६॥
उत्तरअयणे हाणी, चउहिं पायाहिं जाव दो पाया ।
एवं तु पोरिसीए, वुड्ढिखया हुंति नायव्वा ॥७॥
वुड्ढी वा हाणी वा, जावइआ पोरिसीइ दिट्ठा उ ।
तत्तो दिवसगएणं जं, लद्धं तं खु अयणगयं ॥८॥" [ज्यो. क. गा. ३६८-३७५]

अत्र व्याख्या-युगमध्ये यस्मिन् पर्वणि यस्यां तिथौ पौरुषीपरिमाणं ज्ञातुमिष्यते, ततः पूर्वं युगादित आरभ्य यानि 'पर्व्वाणि' अतिक्रान्तानि तानि ध्रियन्ते, धृत्वा च 'पञ्चदश-भिर्गुण्यन्ते', गुणयित्वा च विवक्षितायास्तिथेः याः प्रागतिक्रान्तास्तिथयस्ताभिः सहितानि क्रियन्ते, कृत्वा च 'षडशीत्यधिकेन शतेन' तेषां भागो ह्रियते । इहैकस्मिन् अयने त्र्यशीत्यधिकमण्डलशतपरिमाणे चन्द्रनिष्पादितानां तिथीनां षडशीत्यधिकं शतं १८६ भवति, ततस्तेन भागे हृते यल्लब्धं तद्विजानीहि सम्यगवधारयेत्यर्थः । तत्र यदि लब्धं विषमं भवति यथा-एककस्त्रिकः पञ्चकः सप्तको नवको वा तदा तत्पर्यन्तवर्त्ति दक्षिणमयनं ज्ञातव्यम् । अथ भवति लब्धं समं यथा-द्विकश्चतुष्कः षट्कः अष्टको दशको वा तदा तत्पर्यन्तवर्त्ति उत्तरायणमवसेयं, तदेवमुक्तो दक्षिणोत्तरायणपरिज्ञानोपायः । सम्प्रति षडशीत्यधिकेन भागे हृते यच्छेषमवतिष्ठते यदिवा भागासम्भवेन यच्छेषं तिष्ठति तद्गतविधिमाह-"अयणगए" इत्यादि, यः पूर्वं भागे हृते भागासम्भवे वा शेषीभूतोऽयनगतस्तिथिराशिर्वर्त्तते, स चतुर्भिर्गुण्यते गुणयित्वा च 'पर्वपादेन' युगमध्ये यानि सङ्ख्यया पर्वाणि चतुर्विंशत्यधिकशतसङ्ख्यानि तेषां पादेन-चतुर्थेनांशेनैकत्रिंशता इत्यर्थः, [भागो ह्रियते] तया भागे हृते यल्लब्धं तान्यङ्गुलानि चकारादङ्गुलांशाश्च पौरुष्याः क्षय-वृद्ध्योर्ज्ञातव्यानि, दक्षिणायने पदध्रुवराशेरुपरि वृद्धौ उत्तरायणे पदध्रुवराशेः क्षये ज्ञातव्यानीत्यर्थः ।

अथैवंभूतस्य गुणकारस्य भागहारस्य कथमुत्पत्तिः ? इति, उच्यते, यदि षडशीत्यधिकेन चतुर्विंशत्यङ्गुलानि क्षये वृद्धौ वा प्राप्यन्ते, ततः एकस्यां तिथौ का वृद्धिः क्षयो वा ?,

राशित्रयस्थापना १८६ ।२४ ।१ । अत्रान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यमो राशिश्चतुर्विंशति-रूपो गुण्यते, जातः स तावानेव, "**एकेन गुणितं तदेव भवती**" [ ]ति वचनात् । तत आद्येन राशिना षडशीत्यधिकशतरूपेण भागो ह्रियते, तत्रोपरितनराशेः स्तोकत्वाद् भागो न लभ्यते, ततः छेद्य-च्छेदकराश्योः षट्केनापवर्त्तना, जात उपरितनो राशिश्चतुष्करूपोऽधस्तन एकत्रिंशत्, लब्धमेकस्यां तिथौ चत्वार एकत्रिंशद्भागाः [$\frac{४}{३१}$] क्षये वृद्धौ वेति चतुष्को गुणकार उक्तः एकत्रिंशद् भागहार इति । इह यल्लब्धं तान्यङ्गुलानि क्षये वृद्धौ वा ज्ञातव्यानीत्युक्तं, तत्र कस्मिन्नयने कियत्प्रमाणध्रुवराशेरुपरि वृद्धौ कस्मिन् वा अयने किंप्रमाणध्रुवराशौ क्षये ? इत्येतन्निरूपणार्थमाह-'दक्खिणवुड्ढी' इत्यादि, दक्षिणायने द्विपदात्-पदद्वयस्योपरि अङ्गुलानां वृद्धिर्ज्ञातव्या, उत्तरायणे चतुर्भ्यः पादेभ्यः सकाशादङ्गुलानां हानिः ॥३॥

तत्र युगमध्ये प्रथमे संवत्सरे दक्षिणायने यतो दिवसादारभ्य वृद्धिस्तन्निरूपयति-'सावणे'त्यादि गाथाद्वयं, युगस्य प्रथमे संवत्सरे श्रावणमासबहुलपक्षे प्रतिपदि पौरुषी द्विपदा-पदद्वयप्रमाणा ध्रुवा भवति, ततस्तस्याः प्रतिपद आरभ्य प्रतितिथि क्रमेण तावद्वर्द्धते यावन्मासेन-सूर्यमासेन सार्द्धत्रिंशदहोरात्रप्रमाणेन चन्द्रमासापेक्षया एकत्रिंशत्तिथिभिरित्यर्थः, चत्वारि अङ्गुलानि वर्द्धन्ते । कथमेतदवसीयते ? यथा मासेन सार्द्धत्रिंशदहोरात्रप्रमाणेन एकत्रिंशत्तिथ्यात्मकेनेत्यत आह-'एक्कतीसे'त्यादि, यत एकस्यां तिथौ चत्वार एकत्रिंशद्भागा वर्द्धन्ते, एतच्च प्रागेव भावितं, परिपूर्णे तु दक्षिणायने वृद्धिः परिपूर्णानि चत्वारि पदानि, ततो मासेन सार्द्धत्रिंशदहोरात्रप्रमाणेन एकत्रिंशत्तिथ्यात्मकेनेत्युक्तं, तदेवमुक्ता वृद्धिः ॥४-५॥

सम्प्रति हानिमाह-'उत्तरे'त्यादि, युगस्य प्रथमे संवत्सरे माघमासे बहुलपक्षे सप्तम्या आरभ्य चतुर्भ्यः पादेभ्यः सकाशात् प्रतितिथि एकत्रिंशद्भागचतुष्टयहानिस्तावदवसेया यावदुत्तरायणपर्यन्ते द्वौ पादौ पौरुषीति । एष प्रथमसंवत्सरगतो विधिः । द्वितीये संवत्सरे श्रावणमासे बहुलपक्षे त्रयोदशीमादौ कृत्वा वृद्धिः, माघमासे शुक्लपक्षे चतुर्थीमादिं कृत्वा क्षयः । तृतीये संवत्सरे श्रावणमासे शुक्लपक्षे दशमी वृद्धेरादिः, माघमासे बहुलपक्षे प्रतिपत् क्षयस्यादिः । चतुर्थे संवत्सरे श्रावणमासे बहुलपक्षे सप्तमी वृद्धेरादिः, माघमासे बहुलपक्षे त्रयोदशी क्षयस्यादिः । पञ्चमे संवत्सरे श्रावणे मासे शुक्लपक्षे चतुर्थी वृद्धेरादिः, माघमासे शुक्लपक्षे दशमी क्षयस्यादिः । एतच्च करणगाथानुपात्तमपि पूर्वाचार्यप्रदर्शितव्याख्यानाद-वसितम् ॥६॥ सम्प्रत्युपसंहारमाह-'एवं तु' इत्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण 'पौरुष्यां' पौरुषीविषये 'वृद्धि-क्षयौ' यथाक्रमं दक्षिणायनेषूत्तरायणेषु 'वेदितव्यौ', तदेवमक्षरार्थमधिकृत्य व्याख्याताः करणगाथाः ।

सम्प्रत्यस्य करणस्य भावना क्रियते । कोऽपि पृच्छति-युगादितः आरभ्य पञ्चाशीतितमे पर्वणि पञ्चम्यां तिथौ कतिपदा पौरुषी भवति ?, तत्र चतुरशीतिर्ध्रियते, तस्याश्चाधस्तात् पञ्चम्यां तिथौ पृष्टमिति पञ्च, चतुरशीतिश्च पञ्चदशभिर्गुण्यते, जातानि द्वादश शतानि षष्ट्यधिकानि १२६० । एतेषु मध्येऽधस्तनाः पञ्च प्रक्षिप्यन्ते, जातानि १२६५, तेषां षडशीत्यधिकेन शतेन [१८६] भागो ह्रियते, लब्धाः षट्, आगतं षट् अयनान्यतिक्रान्तानि सप्तममयनं वर्त्तते । तद्गतं च शेषमेकोनपञ्चाशदधिकं शतं तिष्ठति १४९, ततश्चतुर्भिर्गुण्यते, जातानि पञ्च शतानि षण्णवत्यधिकानि ५९६, तेषामेकत्रिंशता ३१, भागहरणे लब्धा एकोनविंशतिः [१९], शेषास्तिष्ठन्ति सप्त [७], तत्र द्वादशाङ्गुलानि पाद इत्येकोनविंशतेः द्वादशभिः, पदं लब्धं, शेषाणि तिष्ठन्ति सप्ताङ्गुलानि । षष्ठं चायनमुत्तरायणं तद् गतं, सप्तमं तु दक्षिणायनं वर्त्तते, ततः पदमेकं सप्त चाङ्गुलानि पदद्वयप्रमाणे ध्रुवराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जातानि त्रीणि पदानि सप्ताङ्गुलानि । ये च सप्त एकत्रिंशद्भागाः शेषीभूता वर्त्तन्ते, तान् यवान् कुर्मः, तत्राष्टौ यवा अङ्गुल इति ते सप्ताष्टभिर्गुण्यन्ते, जातानि षट्पञ्चाशत् ५६, तस्या एकत्रिंशता भागे हृते लब्ध एको यवः, शेषास्तिष्ठन्ति यवस्य पञ्चविंशतिरेकत्रिंशद्भागाः [$\frac{२५}{३१}$], आगतं पञ्चाशीतितमे पर्वणि पञ्चम्यां त्रीणि पदानि सप्ताङ्गुलानि एको यव एकस्य च यवस्य पञ्चविंशतिरेकत्रिंशद्भागा इत्येतावती पौरुषीति ।

तथा अपरः कोऽपि पृच्छति-सप्तनवतितमे पर्वणि पञ्चम्यां तिथौ कतिपदा पौरुषी ?, तत्र षण्णवतिर्ध्रियते, तस्याश्चाधस्तात्पञ्च, षण्णवतिश्च पञ्चदशभिर्गुण्यते, जातानि चतुर्दश शतानि चत्वारिंशदधिकानि १४४० । तेषां मध्येऽधस्तनाः पञ्च प्रक्षिप्यन्ते, जातानि चतुर्दश शतानि पञ्चचत्वारिंशदधिकानि १४४५, तेषां षडशीत्यधिकेन शतेन भागो ह्रियते, लब्धानि सप्त अयनानि । शेषं तिष्ठति त्रिचत्वारिंशदधिकं शतं १४३, तच्चतुर्भिर्गुण्यते, जातानि पञ्च शतानि द्विसप्तत्यधिकानि ५७२, तेषामेकत्रिंशता भागो ह्रियते, लब्धान्यष्टादशाङ्गुलानि १८, तेषां मध्ये द्वादशभिरङ्गुलैः पदमिति लब्धमेकं पदं षट् अङ्गुलानि उपरि चांशा उद्धरिताश्चतुर्दश १४ । ते यवानयनार्थमष्टभिर्गुण्यन्ते, जातं द्वादशोत्तरं शतं ११२, तस्यैकत्रिंशता भागे हृते, लब्धास्त्रयो यवाः, शेषास्तिष्ठन्ति यवस्य एकोनविंशतिरेकत्रिंशद्भागाः [$\frac{१९}{३१}$], सप्त चायनान्यतिक्रान्तानि अष्टमं चायनमुत्तरायणं उत्तरायणे च पदचतुष्टयरूपाद् ध्रुवराशेर्हानिर्वक्तव्या, तत एकं पदं सप्ताङ्गुलानि त्रयो यवा एकस्य च यवस्य एकोनविंशतिरेकत्रिंशद्भागा इति पदचतुष्टयात् पात्यते, शेषं तिष्ठति द्वे पदे चत्वार्यङ्गुलानि चत्वारो यवा एकस्य च यवस्य द्वादश एकत्रिंशद्भागाः । एतावती युगे आदित आरभ्य सप्तनवतितमे पर्वणि पञ्चम्यां तिथौ पौरुषीति, एवं सर्वत्र भावनीयम् ।

सम्प्रति पौरुषीपरिमाणतोऽयनगतपरिमाणज्ञापनार्थमियं करणगाथा-'वुड्ढी वे'त्यादि, पौरुष्यां 'यावती वृद्धिर्हानिर्वा दृष्टा ततः' सकाशा'द्दिवसगतेन' प्रवर्त्तमानेन च त्रैराशिककरणानुसारेण यल्लब्धं तत् 'अयनगतं' अयनस्य तावत्प्रमाणं गतं वेदितव्यम्, एष करणगाथाक्षरार्थः । भावना त्वियम्-तत्र दक्षिणायने पदद्वयस्योपरि चत्वारि अङ्गुलानि वृद्धौ दृष्टानि, ततः कोऽपि पृच्छति-किं गतं दक्षिणायनस्य ?, अत्र त्रैराशिककर्मावतारः-यदि चतुर्भिरङ्गुलस्य एकत्रिंशद्भागैरेका तिथिर्लभ्यते, ततश्चतुर्भिरङ्गुलैः कति तिथीर्लभामहे ?, राशित्रयस्थापना-४/३१ । १ ।४ । अत्रान्त्यो राशिचतुरङ्गुलरूप एकत्रिंशद्भागकरणार्थमेकत्रिंशता गुण्यते, जातं चतुर्विंशत्यधिकं शतं, १२४ तेन मध्यो राशिर्गुण्यते, जातं तदेव चतुर्विंशत्यधिकं शतं १२४ । तस्य चतुष्करूपेणादिराशिना भागो ह्रियते, लब्धा एकत्रिंशत्तिथयः, आगतं दक्षिणायने एकत्रिंशत्तमायां तिथौ चतुरङ्गुला पौरुष्यां वृद्धिरिति । तथा उत्तरायणे पदचतुष्टयादङ्गुलाष्टकहीनं पौरुष्यामुपलभ्य कोऽपि पृच्छति-किं गतमुत्तरायणस्य ?, अत्रापि त्रैराशिकम्-यदि चतुर्भिरङ्गुलस्य एकत्रिंशद्भागैरेका तिथिर्लभ्यते, ततोऽष्टभिरङ्गुलैर्हीनैः कति तिथयो लभ्यन्ते ?, राशित्रयस्थापना-४/३१ । १ ।८ । अत्रान्त्यो राशिरेकत्रिंशद्भागकरणार्थमेकत्रिंशता गुण्यते, जाते द्वे शते अष्टचत्वारिंशदधिके २४८, ताभ्यां मध्यो राशिरेककरूपो गुण्यते, जाते ते एव द्वे शते अष्टचत्वारिंशदधिके २४८, तयोराद्येन राशिना चतुष्करूपेण भागहरणं, लब्धा द्वाषष्टिः ६२, आगतमुत्तरायणे द्वाषष्टितमायां तिथौ अष्टावङ्गुलानि पौरुष्या हीनानीति ।

अथोपसंहारवाक्यमाह-''**एतेसि ण**''मित्यादि, 'एतेषाम्' अनन्तरोक्तानां **पूर्ववर्णितानां पदानां** '**इयं**' वक्ष्यमाणा **सङ्ग्रहणी**गाथा, **तद्यथा-''जोगो देवय तारग्ग**'' इत्यादि, प्राग्व्याख्यातस्वरूपा, अस्या निगमनार्थं पुनरुपन्यासस्तेन न पुनरुक्तिर्भावनीयेति । यत्तु पूर्वमुद्देशसमये सन्निपातद्वारं सूत्रे साक्षादुपात्तं सम्प्रति च छायाद्वारं तद्विचित्रत्वात् सूत्रकाराणां प्रवृत्तेः, पूर्णिमाऽमावास्याद्वारे सन्निपातद्वारमन्तर्भावितं छायाद्वारं च नेतृद्वारानुयोग्यपि भिन्नस्वरूपतया पृथक्त्वेन विवक्षितमिति ध्येयम् ॥१६७॥

अथास्मिन्नेवाधिकारे षोडशभिर्द्वारैरर्थान्तरप्रतिपादनाय गाथाद्वयमाह-

हिट्ठिं ससिपरिवारो, मंदरऽबाधा तहेव लोगंते ।
धरणितलाओॅ अबाधा, अंतो बाहिं च उड्ढमुहे ॥१॥

संठाणं च पमाणं, वहंति सीहगइ इड्ढिमन्ता य ।
तारंतरऽग्गमहिसी, तुडिअ पहु ठिई अ अप्पबहू ॥२॥ ॥१६८-A॥

'**अधः**' चन्द्र-सूर्ययोस्तारामण्डलम्, उपलक्षणात् समपङ्क्तौ उपरि च अणुं समं वेत्यादि वक्तव्यं १, **शशिपरिवारो** वक्तव्यः २, ज्योतिश्चक्रस्य **मन्दरतोऽबाधा** वक्तव्या ३, **तथैव लोकान्त**ज्योतिश्चक्रयोरबाधा ४, **धरणितलात्** ज्योतिश्चक्रस्या**बाधा** ५, किञ्च-नक्षत्रमन्तः-चार-क्षेत्रस्या**भ्यन्तरे** किं **बहिः** किं **चोर्ध्वं** किञ्चाधश्चरतीति वक्तव्यम् ६ । ज्योतिष्कविमानानां **संस्थानं** वक्तव्यम् ७, एषामेव **प्रमाणं** वक्तव्यं ८, चन्द्रादीनां विमानानि कियन्तो **वहन्तीति** वक्तव्यम्, ९ एषां मध्ये के **शीघ्रगतयः** के मन्दगतय इति वक्तव्यम् १०, एषां मध्ये केऽल्पर्द्धयो **महर्द्धय**श्चेति वक्तव्यं ११, **ताराणां** परस्पर**मन्तरं** वक्तव्यम् १२, **अग्रमहिष्यो** वक्तव्याः १३, '**तुटिकेन**' अभ्यन्तरपर्षत्सत्कस्त्रीजनेन सह '**प्रभुः**' भोगं कर्तुं समर्थश्चन्द्रादिर्न वा इति वक्तव्यं १४ **स्थिति**रायुषो वक्तव्या १५ ज्योतिष्काणा**मल्पबहुत्वं** वक्तव्यम् १६ इति ॥१६८-A॥

अथ प्रथमं द्वारं पिपृच्छिषुराह-

अत्थि णं भंते ! चंदिम-सूरिआणं हिट्ठिं पि तारारूवा अणुं पि तुल्ला वि ? समे[1] वि तारारूवा अणुं पि तुल्ला वि ? उप्पिं पि तारारूवा अणुं पि तुल्ला वि ?, हंता ! गो० ! तं चेव उच्चारेअव्वं ॥ १६८-B ॥

"**अत्थि ण**"मित्यादि, **अस्त्येतद् भगवन् ! चन्द्र-सूर्याणां** देवानां "**हिट्ठिं पि**"त्ति, क्षेत्रापेक्षया अधस्तना अपि '**तारारूपाः**' तारारूपा विमानाधिष्ठातारो देवा द्युति-विभवादिकम-पेक्ष्य केचिद् '**अणवोऽपि**' हीना अपि भवन्ति, केचित् '**तुल्या अपि**' सदृशा अपि भवन्ति, अधिकत्वं तु स्वस्वेन्द्रेभ्यः परिवारदेवानां न सम्भवतीति न पृष्टम् । तथा **समेऽपीति** चन्द्रादिविमानैः क्षेत्रापेक्षया '**समाः**' समश्रेणिस्थिता अपि '**तारारूपाः**' ताराविमानाधिष्ठातारो देवास्तेऽपि चन्द्रसूर्याणां देवानां द्युति-विभवादिकमपेक्ष्य केचि**दणवो-ऽपि** केचि**त्तुल्या अपि** भवन्ति । तथा चन्द्रादिविमानानां क्षेत्रापेक्षया '**उपरि**' उपरिस्थिताः '**तारारूपाः**' ताराविमाना-धिष्ठातारो देवास्तेऽपि चन्द्रसूर्याणां देवानां द्युति-विभवादिकमपेक्ष्य केचि**दणवोऽपि** केचि**त्तुल्या अपि** भवन्ति ? अत्र काकुपाठात् प्रश्नावगमः । एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह-**गौतम ! हन्तेति** यदेतत् त्वया पृष्टं तत्सर्वं तथैवास्ति अतस्**तदेवोच्चारणीयम्** ॥१६८-B॥

अत्रार्थे हेतुप्रश्नायाह-

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-अत्थि णं० जहा[2] जहा णं तेसिं देवाणं तव-नियम-बंभचेरा ऊसिआइं भवंति, तहा[3] तहा णं तेसि णं देवाणं एवं

---

१. अकखत्रिपव । समंपि-V जीवाभिगमे ३।१०००, सूर्यप्रज्ञप्तौ (१८।२) अपि ॥ २. जह-अब J12 । एवमग्रेऽपि ॥ ३. तह-अब J12 । एवमग्रेऽपि ॥

पण्णायए, तंजहा-अणुत्ते वा तुल्लत्ते वा, जहा जहा णं तेसिं देवाणं तव-नियम-बंभचेराणि णो ऊसिआइं भवंति, तहा तहा णं तेसिं देवाणं णो एवं पण्णायए, तं० अणुत्ते वा तुल्लत्ते वा ॥ १६९ ॥

अथ केनार्थेन भगवन् ! एवमुच्यते-'**अत्थि ण**'मित्यादिना, तदेव सूत्रमनुस्मरणीयम् । अत्रोत्तरमाह-**यथा यथा** '**तेषां**' तारारूपविमानाधिष्ठातृणां **देवानां** प्राग्भवे तपो-नियम-ब्रह्मचर्याणि '**उच्छ्रितानि**' उत्कटानि **भवन्ति**, तत्र '**तपः**' अनशनादि द्वादशविधं '**नियमः**' शौचादिः '**ब्रह्मचर्यं**' मैथुनविरतिः, अत्र च शेषव्रतानां[१]मनुपदर्शनमुत्कट-व्रतधारिणां ज्योतिष्केषु उत्पादासम्भवात्, उच्छ्रितानीत्युपलक्षणं तेन यथा यथा अनुच्छ्रितानीत्यपि बोध्यम्, अन्यथोत्तरसूत्रे वक्ष्यमाणमणुत्वं नोपपद्येत । यच्छब्दगर्भितवाक्यस्य तच्छब्दगर्भितवाक्यसापेक्षत्वादुत्तर-वाक्यमाह-**तथा तथा तेषां देवानामेवं** '**प्रज्ञायते**' ज्ञायते इति, **तद्यथा-अणुत्वं वा तुल्यत्वं वा** । न चैतदनुचितं, दृश्यते हि मनुष्यलोकेऽपि केचिज्जन्मान्तरोपचिततथाविधपुण्यप्राग्भारा राजत्वमप्राप्ता अपि राज्ञा सह तुल्यविभवा इति । अत्र व्यतिरेकमाह-**यथा यथा तेषां** '**देवानां**' ताराविमानाधिष्ठातृणां प्राग्भवार्जिता**न्युच्छ्रितानि तपो-नियम-ब्रह्मचर्याणि न भवेयुः, तथा तथा तेषां देवानां नो एवं प्रज्ञायते-अणुत्वं वा तुल्यत्वं वा**, अभियोगिक-कर्मोदयेनातिनिकृष्टत्वात् । अयमर्थः-अकामनिर्जरादियोगाद्देवत्व-प्राप्तावपि देवर्द्धेरलाभेन चन्द्र-सूर्येभ्यो द्युति-विभवाद्यपेक्षयाऽणुत्वमपि न सम्भवेत्, कुतस्तमां तेषां तैस्सह तुल्यत्वमिति ॥१६९॥

अथ द्वितीयं द्वारं प्रश्नयति-

एगमेगस्स णं भंते ! चंदस्स केवइआ महग्गहा परिवारो, केवइआ णक्खत्ता परिवारो, केवइया तारागण[२]कोडाकोडीओ पण्णत्ताओ ?, गो० अट्ठासीइमहग्गहा परिवारो, अट्ठावीसं णक्खत्ता परिवारो, छावट्ठिसहस्साइं णवय सया पण्णत्तरा तारागणकोडाकोडीओ पण्णत्ता ॥ १७० ॥

"**एगमेगस्स णं भंते !**" इत्यादि, **एकैकस्य भदन्त ! चन्द्रस्य कियन्तो महाग्रहाः परिवारः** तथा **कियन्ति नक्षत्राणि परिवारः** तथा **कियत्य-स्तारागणकोटाकोट्यः** परिवारभूताः **प्रज्ञप्ताः** ?, भगवानाह-**गौतम ! अष्टाशीतिर्महाग्रहाः [८८] परिवारो-ऽष्टाविंशतिर्नक्षत्राणि [२८] परिवारः षट्षष्टिसहस्राणि नव शतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि**

---

१. ०नामुप० पुके ॥ २. कोडिकोडीओ-J12 । एवमग्रेऽपि ॥

[६६९७५] **तारागणकोटाकोटीनां** परिवारभूतानि **प्रज्ञप्तानि** । यद्यप्यत्र एते चन्द्रस्यैव परिवारतयोक्ताः, तथापि सूर्यस्यापीन्द्रत्वादेत एव परिवारतया-ऽवगन्तव्याः, **समवायाङ्गे जीवाभिगमसूत्र-वृत्त्यादौ** तथा दर्शनात् ॥१७०॥

अथ तृतीयं द्वारं पृच्छति-

मन्दरस्स णं भंते ! पव्वयस्स केवइआए अबाहाए जोइसं चारं चरइ ?, गो० एक्कारसहिं एक्कवीसेहिं जोअणसएहिं अबाहाए जोइसं चारं चरइ ॥ १७१ ॥

"**मन्दरस्स णं भंते !**" इत्यादि, **मन्दरस्य भदन्त ! पर्वतस्य कियत्या 'अबाधया'** अपान्तरालेन **ज्योतिषं**[१] ज्योतिश्चक्रं **चारं चरति** ?, भगवानाह-**गौतम !** जगत्स्वभावात् **एकादशभिरेकविंशत्यधिकैर्योजनशतै**रित्येवंरूपयाऽ**बाधया [११२१] ज्योतिषं चारं चरति** । किमुक्तं भवति ? मेरुतश्चक्रवालेनैकविंशत्यधिकान्येकादशयोजन-शतानि मुक्त्वा चलं ज्योतिश्चक्रं तारारूपं चारं चरति, प्रक्रमाज्जम्बूद्वीपगतमवसेयम्, अन्यथा लवणसमुद्रादि-ज्योतिश्चक्रस्य मेरुतो दूरवर्त्तित्वेन उक्तप्रमाणासम्भवः । पूर्वं तु सूर्य-चन्द्र-वक्तव्यताधिकारे अबाधाद्वारे सूर्य-चन्द्रयोरेव मेरुतोऽबाधा उक्ता, साम्प्रतं तारापटलस्येति न पूर्वा-ऽपरविरोध इति ॥१७१॥

अथ स्थिरं ज्योतिश्चक्रमलोकतः कियत्या अबाधया अर्वाक् अवतिष्ठत इति पिपृच्छिषुश्चतुर्थं द्वारमाह-

लोगंताओ णं भंते ! केवइआए अबाहाए जोइसे पण्णत्ते ?, गो० एक्कारस एक्कारसेहिं जोअणसएहिं अबाहाए जोइसे पण्णत्ते ॥ १७२ ॥

"**लोगंताओ ण**"मित्यादि, '**लोकान्ततः**' अलोकादितोऽर्वाक् **कियत्या अबाधया** प्रक्रमात् स्थिरं **ज्योतिश्चक्रं प्रज्ञप्तं** ?, भगवानाह-**गौतम !** जगत्स्वभावात् **एकादशभिरेकादशाधिकैर्योजनशतैरबाधया [११११] ज्योतिषं प्रज्ञप्तं**, प्रक्रमात् स्थिरं बोध्यं, चरज्योतिश्चक्रस्य तत्राभावादिति ॥१७२॥

अथ पञ्चमं द्वारं पृच्छति-

---

१. पुके । ज्योतिषं-मु. नास्ति ॥

धरणितलाओ णं भंते !, सत्तहिं णउएहिं जोअणसएहिं जोइसे चारं चरइ । एवं सूरविमाणे अट्ठहिं सएहिं, चंदविमाणे अट्ठहिं [सएहिं] असीएहिं, उवरिल्ले तारारूवे नवहिं जोअणसएहिं चारं चरइ ॥ १७३ ॥

"**धरणितलाओ णं भंते**" ! इत्यनेन तत्सूत्रैकदेशेन परिपूर्णं प्रश्नसूत्रं बोध्यम् । तच्च 'धरणितलाओ णं भंते ! उड्ढं उप्पइत्ता केवइआए अबाहाए हिट्ठिल्ले जोइसे चारं चरइ ?, गोअमा !' इत्यन्तं, वस्त्वेकदेशस्य वस्तुस्कन्धस्मारकत्वनियमात् । तत्रायमर्थः-'**धरणितलात्**' समयप्रसिद्धात् समभूतलभूभागादूर्ध्वमुत्पत्य कियत्याऽबाधया अधस्तनं ज्योतिषं तारापटलं चारं चरति ?, भगवानाह-गौतम ! **सप्तभिः**[१] **'नवतैः'** नवत्यधिकै**र्योजनशतै**रित्येवंरूपया ७९० अबाधया अधस्तनं **ज्योतिश्चक्रं चारं चरति** । अथ सूर्यादिविषयमबाधास्वरूपं सङ्क्षिप्य भगवान् स्वयमेवाह-"**एवं सूरविमाणे अट्ठहिं सएहिं चन्द**" इत्यादि, 'एवम्' उक्तन्यायेन यथा समभूमिभागादधस्तनं ज्योतिश्चक्रं नवत्यधिकसप्त-योजनशतैः, तथा समभूमिभागादेव **सूर्यविमानमष्टभिर्योजनः [८००], शतैश्चन्द्रविमान-मशीत्यधिकैरष्टभिर्**योजन**शतैः [८८०], उपरितनं तारारूपं नवभिर्योजनशतैश्चारं [९००] चरति** ॥१७३॥

अथ ज्योतिश्चक्रचारक्षेत्रापेक्षया अबाधाप्रश्नमाह-

जोइसस्स णं भंते ! हेट्ठिल्लाओ तलाओ केवइयं अबाहाए सूरविमाणे चारं चरइ ?, गो० दसहिं जोअणेहिं अबाहाए चारं चरइ । एवं चंदविमाणे णउईए जोअणेहिं चारं चरइ, उवरिल्ले तारारूवे दसुत्तरे जोअणसए चारं चरइ, सूरविमाणाओ चंदविमाणे असीईए जोअणेहिं चारं चरइ । सूरविमाणाओ जोअणसए उवरिल्ले तारारूवे चारं चरइ, चंदविमाणाओ वीसाए जोअणेहिं उवरिल्ले णं तारारूवे चारं चरइ ॥ १७४ ॥

"**जोइसस्स ण**"मित्यादि, **ज्योतिश्चक्रस्य** दशोत्तरयोजनशतबाहल्यस्या**धस्तनात् तलात् कियत्या अबाधया सूर्यविमानं चारं चरति ?, गौतम ! दशभिर्योजनै**रित्येवंरूपया **अबाधया** सूर्यविमानं **चारं चरति** । अत्र च सूत्रे समभूभागादूर्ध्वं नवत्यधिकसप्तयोजनाति-क्रमेण [७९०] ज्योतिश्चक्रबाहल्यमूलभूत आकाश-प्रदेशप्रतरः सोऽवधिर्मन्तव्यः, एवं चन्द्रादिसूत्रेऽपि । **एवं चन्द्रविमानं नवत्या योजनै**-रित्येवंरूपया **अबाधया चारं चरति**, तथोपरितनं **तारारूपं दशाधिके योजनशते** ज्योतिश्चक्रबाहल्यप्रान्ते इत्यर्थः, **चारं चरति** । अथ गतार्थमपि शिष्य-

१. सप्तभिर्नवत्यधि० पुके. ॥

व्युत्पादनाय सूर्यादीनां परस्परमन्तरं सूत्रकृदाह-"**सूरविमाणाओ**" इत्यादि, **सूर्यविमानात् चन्द्रविमानम् अशीत्या योजनैश्चारं चरति, सूर्यविमानात् योजनशते**ऽतिक्रान्ते **उपरितनं तारापटलं चारं चरति, चन्द्रविमानात् विंशत्या योजनैरुपरितनं तारापटलं चारं चरति** । अत्र सूचामात्रत्वात् सूत्रेऽनुक्ताऽपि ग्रहाणां नक्षत्राणां च क्षेत्रविभागव्यवस्था मतान्तराश्रिता सङ्ग्रहणिवृत्त्यादौ दर्शिता लिख्यते-

"शतानि सप्त गत्वोर्ध्वं, योजनानां भुवस्तलात् ।
नवतिं च स्थितास्तारा:, सर्वाधस्तान्नभस्तले ॥१॥

तारकापटलाद् गत्वा, योजनानि दशोपरि ।
सूराणां पटलं, तस्मादशीतिं शीतरोचिषाम् ॥२॥

चत्वारि तु ततो गत्वा, नक्षत्रपटलं स्थितम् ।
गत्वा ततोऽपि चत्वारि, बुधानां पटलं भवेत् ॥३॥

शुक्राणां च गुरूणां च, भौमानां मन्दसंज्ञिनाम् ।
त्रीणि त्रीणि च गत्वोर्ध्वं, क्रमेण पटलं स्थितम् ॥४॥" [ ] इति ॥१७४॥

अथ षष्ठं द्वारं पृच्छन्नाह-

जंबुद्दीवे णं [भंते !] दीवे अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं कयरे णक्खत्ते सव्वब्भंतरिल्लं[1] चारं चरइ ?, कयरे णक्खत्ते सव्वबाहिरं चारं चरइ ?, कयरे सव्वहिट्ठिल्लं चारं चरइ ?, कयरे सव्वउवरिल्लं चारं चरइ ?, गो० ! अभिई णक्खत्ते सव्वब्भंतरं चारं चरइ, मूलो सव्वबाहिरं[2] चारं चरइ, भरणी सव्वहिट्ठिल्लिगं, साई सव्वुवरिल्लगं[3] चारं चरइ ॥ १७५ ॥

"**जंबूद्दीवे ण**"मित्यादि, **जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपेऽष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां** मध्ये **कतरन्नक्षत्रं** 'सर्वाभ्यन्तरं' सर्वेभ्यो मण्डलेभ्योऽभ्यन्तर: **सर्वाभ्यन्तरस्तं**, अनेन द्वितीयादिमण्डलचार-व्युदास:, चारं चरति ?, तथा **कतरन्नक्षत्रं 'सर्वबाह्यं'** सर्वतो[4] नक्षत्रमण्डलिकाया बहिश्चारं **'चरति'** भ्रमति ? तथा **कतरन्नक्षत्रं सर्वेभ्योऽधस्तनं चारं चरति** ? तथा **कतरन्नक्षत्रं सर्वेषां** नक्षत्राणा**मुपरितनं चारं चरति** ? सर्वेभ्यो नक्षत्रेभ्य उपरिचारीत्यर्थ: । भगवानाह-**गौतम ! अभिजिन्नक्षत्रं सर्वाभ्यन्तरं चारं** चरति, यद्यपि सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारीण्य-भिजिदादिद्वादशनक्षत्राण्यभिहितानि, तथाऽपीदं शेषैकादशनक्षत्रपेक्षया मेरुदिशि स्थितं सत् चारं

१. ०ल्ले-अब J12 ॥ २. ०२ओ-अखपब पुके J12 ॥ ३. ०ल्लं-कखबस J2 ॥ ४. सर्वेभ्यो-के ॥

चरतीति सर्वाभ्यन्तरचारीत्युक्तम् । तथा '**मूल:**' मूलनक्षत्रं **सर्वबाह्यं चारं चरति**, यद्यपि पञ्चदशमण्डलाद् बहिश्चारीणि मृगशिर:प्रभृतीनि षड् नक्षत्राणि पूर्वाषाढो-त्तराषाढयोश्चतुर्णां तारकाणां मध्ये द्वे द्वे च तारे उक्तानि, तथाऽप्येतदपरबहिश्चारिनक्षत्रापेक्षया लवणदिशि स्थितं सच्चारं चरतीति सर्वबहिश्चारीत्युक्तम् । तथा **भरणी**नक्षत्रं **सर्वाधस्तनं चारं चरति**, तथा **स्वातिनक्षत्रं सर्वोपरितनं चारं चरति** । अयं भाव:-दशोत्तरशतयोजनरूपे ज्योतिश्चक्रबाहल्ये यो नक्षत्राणां क्षेत्रविभागश्चतुर्योजनप्रमाणस्तदपेक्षयोक्तनक्षत्रयो: क्रमेणाधस्तनोपरितनभागौ ज्ञेयौ । **हरिभद्रसूरयस्तु "अधस्तने ज्योतिष्कतले भरण्यादिकं नक्षत्रमुपरितने च ज्योतिष्कतले स्वात्यादिकमस्तीत्याहु"** [ ] रिति ॥१७५॥

अथ सप्तमं द्वारं पृच्छति-

चंदविमाणे णं भंते ! किंसंठिए पण्णत्ते ?, गो० ! अद्धकविट्ठसंठाण[1]-संठिए सव्वफालिआमए अब्भुग्गयमुसियपहसिए एवं सव्वाइं णेअव्वाइं[2] ॥ १७६ ॥

"**चन्दविमाणे ण**"मित्यादि, **चन्द्रविमानं भदन्त** ! '**किंसंस्थितं**' किंसंस्थानं **प्रज्ञप्तम्** ?, **गौतम** ! उत्तानीकृता**र्द्धकपित्थ**फल**संस्थानसंस्थितं सर्व-स्फटिकमयम्** "**अभ्युद्गतोत्सृत**" प्रभासितमित्यनेन विजयद्वारपुरस्थप्रकण्ठकगतप्रासाद-वर्णक: सर्वोऽपि विमानप्रकरणात् क्लीबैकवचनपूर्वको वाच्य: । '**एवं**' चन्द्रविमानन्यायेन '**सर्वाणि**' सूर्यादिज्योतिष्कविमानानि '**नेतव्यानि**' संस्थाननैयत्यबुद्धिं प्रापणीयानि । ननु यदि सर्वाण्यपि ज्योतिष्कविमानान्यर्द्धी-कृतकपित्थाकाराणि ततश्चन्द्र-सूर्यविमानान्यतिस्थूलत्वादु-दयकालेऽस्तमयकाले वा यदि वा तिर्यक् परिभ्रमन्ति कस्मात्तथाविधानानि नोपलभ्यन्ते ?, यस्तु शिरस उपरि वर्त्तमानानां तेषामधस्थायिजनेषु वर्त्तुलतया प्रतिभास:, अर्द्धकपित्थस्य शिरस उपरि दूरमवस्थापितस्य परभागादर्शनतो वर्त्तुलतया दृश्यमानत्वात्, सोऽपि न सम्यग्भावमञ्चति पूर्णवृत्तस्यापि तथा दर्शनात्, उच्यते, इहार्द्धकपित्थाकाराणि न सामस्त्येन विमानानि प्रतिपत्तव्यानि किन्तु विमानानां पीठानि, तेषां पीठानामुपरि चन्द्रादीनां प्रासादा:, ते च प्रासादास्तथा कथञ्चनापि व्यवस्थिता यथा पीठै: सह भूयान् वर्त्तुल आकारो भवति, स च दूरभावादेकान्तत: समवृत्ततया जनानां प्रतिभासते, ततो न कश्चिद्दोष: ॥१७६॥

---

१. **अद्धकविट्ठग० अकखबस** J12 ॥ २. द्र. जीवा. ३।१००८-९ ॥

अथाष्टमं द्वारं पृच्छति-

चंदविमाणे णं भंते ! केवइयं आयाम-विक्खंभेणं ? केवइयं[1] बाहल्लेणं ?, गो० !

छप्पण्णं खलु भाए, वित्थिण्णं चंदमंडलं होइ ।
अट्ठावीसं भाए, बाहल्लं तस्स बोद्धव्वं ॥१॥

अडयालीसं भाए, वित्थिण्णं सूरमण्डलं होइ ।
चउवीसं खलु भाए, बाहल्लं तस्स बोद्धव्वं ॥२॥

दो कोसे अ गहाणं, णक्खत्ताणं तु हवइ तस्सद्धं ।
तस्सद्धं ताराणं, तस्सद्धं चेव बाहल्लं ॥३॥ १७७ ॥

"**चंदविमाणे ण**"मित्यादि, **चन्द्रविमानं 'णमि'**ति प्राग्वत्, **भदन्त ! कियदायाम-विष्कम्भेन** कियद् **'बाहल्येन'** उच्चैस्त्वेन प्रज्ञप्तम् ?, उपलक्षणात् सूर्यादिविमानमपि प्रश्नितं द्रष्टव्यम् । अत्र पद्येनोत्तरसूत्रमाह-**गौतम ! 'खलु'** इतिपदं निश्चये-ऽलङ्कारे वा **षट्पञ्चाशदेकषष्टिभागान्** $\frac{५६}{६१}$ योजनस्य **विस्तीर्णं चन्द्रमण्डलं भवति** । अयमर्थः-एकस्य प्रमाणाङ्गुलयोजनस्यैकषष्टिभागीकृतस्य षट्पञ्चाशता भागैः समुदितैर्यावत्-प्रमाणं भवति तावत्प्रमाणोऽस्य विस्तार इत्यर्थः, वृत्तवस्तुनः सदृशायाम-विष्कम्भत्वात्, एवमेवोत्तरसूत्रं, तेनायामोऽपि तावानेव, परिक्षेपस्तु स्वयमभ्यूह्यः, वृत्तस्य सविशेषस्त्रिगुणः परिधिरिति प्रसिद्धेः । **बाहल्यं चाष्टाविंशतिभागान्** यावत्तस्य **बोद्धव्यं**, षट्पञ्चाशद्भागानामर्द्धे एतावत एव लाभात्, "**सर्वेषामपि ज्योतिष्क(ष्काणां)विमानानां(नि) स्वस्वव्यासप्रमाणात् अर्द्धप्रमाण-बाहल्यानी**"[ ]ति वचनात् । तथा **अष्टचत्वारिंशतं [४८] भागान् विस्तीर्णं सूर्यमण्डलं भवति**, चत्वारिंशद्(**चतुर्विंशति)भागान्** २४ यावद् **बाहल्यं तस्य बोद्धव्यम्** । तथा **द्वौ क्रोशौ च ग्रहाणां** तदेवार्द्धं योजनमित्यर्थः, तथा **नक्षत्राणां तु भवति 'तस्यार्द्धम्'** एकं क्रोशमित्यर्थः, **'तस्यार्द्धं'** क्रोशार्द्धमित्यर्थः, **ताराणां** विमानानि विस्तीर्णानि, ग्रहादि-विमानानां मध्ये यस्य यो व्यासः, तस्य **तदर्द्धं बाहल्यं** भवति, यथा-क्रोशद्वयस्यार्द्धं क्रोशो ग्रहविमानबाहल्यं, क्रोशार्द्धं नक्षत्रविमानबाहल्यं, क्रोशतुर्यांश-स्ताराविमानबाहल्यमिति । एतच्चोत्कृष्ट-स्थितिकतारादेवविमानमाश्रित्योक्तं, यत्पुनर्जघन्यस्थिति-कतारादेवविमानं तस्यायाम-विष्कम्भ-परिमाणं पञ्चधनुःशतानि उच्चत्वपरिमाणमर्द्धतृतीयानि धनुःशतानीति **तत्त्वार्थभाष्ये** ॥१७७॥

---

१. केवइयं बाहल्लेणं-अकखबसत्रि नास्ति ॥

अथ नवमं द्वारं प्रश्नविषयीकुर्वन्नाह–

[१] चंदविमाणेणं भंते ! कति देवसाहस्सीओ परिवहंति ?, गोअमा ! सोलस देवसाहस्सीओ परिवहंति । चंदविमाणस्स णं पुरत्थिमेणं सेआणं [२] सुभगाणं [३] सुप्पभाणं संखतल-विमलनिम्मलदधिघण-गोखीरफेण-[४] रययणि-गरप्पगासाणं थिर-लट्ठपउट्ठ-वट्ट-पीवर-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-तिक्खदाढाविडंबि-अमुहाणं रत्तुप्पलपत्त-मउयसूमालतालुजीहाणं महुगुलिअपिंगलक्खाणं पीवर-वरोरु-पडिपुण्ण-विउलखंधाणं मिउ-विसय-सुहुमलक्खणपसत्थ-वर-वण्णकेसरसडोवसोहिआणं ऊसिअ-सुनमिय-सुजाय-अप्फोडिअ[५]णंगूलाणं वइरामयणक्खाणं वइरामयदाढाणं [६] वइरामयदन्ताणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्जतालुआणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइआणं कामगमाणं पीइगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं अमिअगईणं अमिअबल-वीरिअ-पुरिसक्कार-परक्कमाणं महया अप्फोडिअसीहणायबोल[७]कलकलरवेणं महुरेणं मणहरेणं पूरेंता अंबरं दिसाओ अ सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ सीहरूवधारीणं [देवाणं] पुरत्थिमिल्लं बाहं वहंति ॥ १७८-A ॥

"**चंदविमाणेण**"मित्यादि, **चन्द्रविमानं भदन्त ! कति देवसहस्राणि परिवहन्ति ?, गौतम ! षोडश देवसहस्राणि परिवहन्ति**, एकैकस्यां दिशि चतुश्चतुःसहस्राणां सद्भावात् । इयमत्र भावना–इह चन्द्रादीनां विमानानि तथा जगत्स्वभावात् निरालम्बनानि वहमाना-न्यवतिष्ठन्ते, केवलं ये आभियोगिका देवास्ते तथाविधनामकर्मोदयवशात् समानजातीयानां हीनजातीयानां वा देवानां निजमहिमाऽतिशयदर्शनार्थमात्मानं बहुमन्यमानाः प्रमोदभृतः सततवहनशीलेषु विमानेष्वधः स्थित्वा २, केचित् सिंहरूपाणि केचिद् गजरूपाणि केचिद्वृष-भरूपाणि केचित्तुरङ्गमरूपाणि कृत्वा तानि विमानानि वहन्ति । न चैतदनुपपन्नं, तथाहि–यथेह

---

१. चंदविमाणं भंते-V ॥ "चंदविमाणे णं-इत्यादि चन्द्रविमानं लिङ्गविभक्त्योश्चात्र व्यत्ययः प्राकृतत्वात्-हीवृ." । इति V पृ. ५८२ टि. १ ॥ २. सुभाणं-अकखत्रिबस पुवृ. हीवृ. J2 ॥ ३. सप्पभाणं-खत्रि पुवृ. हीवृ. ॥ ४. ०रयणिगर० अब । एवमग्रेऽपि । "क्वचित् संखतलेत्यादि यावत् रजनिकर-प्रकाशानाम्-पुवृ." इति V पृ. ५८२ टि. ४ ॥ ५. लंगू० मु. । लांगू० प के ॥ ६. वइरामयदन्ताणं-अकखत्रिबग पुवृ. नास्ति ॥ ७. ०कलरवेणं-अत्रिब ॥

कोऽपि तथाविधाभियोग्यनामकर्मोपभोगभागी दासोऽन्येषां समानजातीयानां हीनजातीयानां वा पूर्वपरिचितानामेवमहं नायकस्यास्य सुप्रसिद्धस्य सम्मत इति निजमाहात्म्यातिशयदर्शनार्थं सर्वमपि स्वोचितं कर्म प्रमुदितः करोति, तथा आभियोगिका अपि देवास्तथाविधाभि-योग्यनामकर्मोपभोगभाजः समानजातीयानां हीनजातीयानां वा देवानामन्येषामेवं वयं समृद्धा यत्सकललोकप्रसिद्धानां चन्द्रादीनां विमानानि वहाम इत्येवं निजमाहात्म्यातिशयदर्शनार्थ-मात्मानं बहुमन्यमाना उक्तप्रकारेण चन्द्रादिविमानानि वहन्तीति ।

अथैषामेव षोडशसहस्राणां व्यक्तिमाह-"**चंदविमाण**" इत्यादि, **चन्द्रविमानस्य पूर्वस्यां** यद्यपि जङ्गमस्वभावेन ज्योतिष्काणां सूर्योदयाङ्कितैव पूर्वा न सम्भवति, चारानुसारेण परापरदिक्परावर्त्तसम्भवात् तथाऽपि जिगमिषितदिशं गच्छतोऽभिमुखा दिक् पूर्वेति व्यवह्रियते, यथा क्षुतदिक् । **सिंहरूपधारिणां देवानां चत्वारि सहस्राणि पौरस्त्यां** '**बाहां**' पूर्वपार्श्वं **वहन्तीति** सम्बन्धः । तेषामेव विशेषायाह-"**सेआण**"मित्यादि, '**श्वेतानां**' श्वेतवर्णानां तथा '**सुभगानां**' सौभाग्यवतां जनप्रियाणामित्यर्थः, तथा '**सुप्रभाणां**' सुष्ठु-शोभना प्रभा-दीप्तिर्येषां ते तथा तेषां, तथा '**शङ्खतलं**' शङ्खमध्यभागो '**विमलनिर्मलः**' अत्यन्तनिर्मलो यो '**दधिघनः**' स्त्यानीकृतं दधि '**गोक्षीरफेनः**' प्रसिद्धः, '**रजतनिकरः**' रूप्यराशिस्तेषामिव '**प्रकाशः**' तेजःप्रसारो येषां ते तथा तेषाम् । तथा '**स्थिरौ**' दृढौ '**लष्टौ**' कान्तौ '**प्रकोष्ठकौ**' कलाचिके येषां ते तथा । तथा '**वृत्ताः**' वर्त्तुलाः '**पीवराः**' पुष्टाः '**सुश्लिष्टाः**' अविवराः **विशिष्टाः** '**तीक्ष्णाः**' भेदिका यां **दंष्ट्रा**स्ताभिः '**विडम्बितं**' विवृतं **मुखं** येषां ते तथा, प्रायो हि सिंहजातीया दाढाभिर्व्याप्तमुखा एव भवन्तीति । अथवा '**विडम्बितं**' धातूनामनेकार्थत्वात् शोभितं मुखं येषां ते तथा, ततः कर्मधारयस्तेषाम् । तथा **रक्तोत्पलपत्र**वत् '**मृदुसुकुमाले**' अतिकोमले **तालुजिह्वे** येषां ते तथा तेषाम् । तथा '**मधुगुटिका**' घनीभूतक्षौद्रपिण्डस्तद्वत्**पिङ्गले अक्षिणी** येषां ते तथा तेषां, प्रायो हि हिंस्रजीवानां चक्षूंषि पीतवर्णानीति । तथा '**पीवरे**' उपचिते '**वरे**' प्रधाने '**ऊरू**' जङ्घे येषां ते तथा, **परिपूर्णः**, अत एव '**विपुलः**' विस्तीर्णः **स्कन्धो** येषां ते तथा, ततः पदद्वयकर्म-धारयस्तेषाम् । तथा **मृदवो** '**विशदाः**' स्पष्टाः '**सूक्ष्माः**' प्रतलाः **लक्षणैः प्रशस्ताः** '**वरवर्णाः**' प्रधानवर्णाः या '**केसरसटाः**'[१] स्कन्धकेसरच्छटास्ताभिरुपशोभितानाम् । तथा '**उच्छ्रितम्**' ऊर्ध्वीकृतं '**सुनमितं**' सुष्ठु अधोमुखीकृतं '**सुजातं**' शोभनतया जातम् '**आस्फोटितं च**' भूमावास्फालितं **लाङ्गूलं** यैस्तथा तेषाम् । तथा **वज्रमयनखानां** तैलादित्वाद् द्वित्त्वं

१. ०च्छटाः-पु. ॥

वज्रमयदंष्ट्राणां वज्रमयदन्तानां, त्रयाणामप्यवयवानामभङ्गुरत्वोपदर्शनार्थं वज्रोपमानम् । तथा **तपनीयमयजिह्वानां** तथा **तपनीयमयतालुकानां** तथा **तपनीयं योक्त्रकं** प्रतीतं **सुयोजितं** येषु ते तथा तेषाम् । '**कामेन**' स्वेच्छया '**गमः**' गमनं येषां ते तथा तेषां, यत्र जिगमिषन्ति तत्र गच्छन्तीत्यर्थः, अत्र "युवर्णवृद्दवशरणगमृद्ग्रह" [श्रीसिद्ध० ५-३-२८७] इत्यनेनाल्प्रत्ययः । तथा '**प्रीतिः**' चित्तोल्लासस्तेन '**गमः**' गमनं येषां ते तथा तेषाम्, तथा **मनोवद्** '**गमः**' गमनं वेगवत्त्वेन येषां ते तथा तेषां, तथा **मनोरमाणां** मनोहराणां तथा '**अमितगतीनां**' बहुतरगतीनामित्यर्थः, तथा '**अमितबले**'त्यादिपदानि प्राग्वत् । तथा **महता आस्फोटितसिंहनादबोलकलकलरवेण मधुरेण मनोहरेण** '**पूरयन्ति**' शब्दाद्वैतं विदधानानि '**अम्बरं**' नभोमण्डलं '**दिशश्च**' पूर्वाद्याः '**शोभयन्ति**' शोभयमानानीति विशेषणद्वयं सहस्राणीति विशेष्येण सह योज्यम् ॥१७८-A॥

अथ द्वितीयबाहावाहकानाह–

चंदविमाणस्स णं दाहिणेणं सेआणं सुभगाणं[१] सुप्पभाणं संखतल-विमलनिम्मलदधिघण-गोखीरफेण-रययणिगरप्पगासाणं वइरामयकुंभजुअल-सुट्ठिअ-पीवर-वरवइरसोंड-वट्टिअदित्त-सुरत्तपउमप्पगासाणं अब्भुण्णयमुहाणं तवणिज्ज-विसालकण्ण-चंचल-चलंत-विमलुज्जलाणं महुवण्णभिसंतणिद्ध-पत्तल-निम्मलतिवण्ण[२]-मणिरयणलोअणाणं अब्भुग्गय-मउलमल्लि-आधवल-सरिससंठिअ-णिव्वण-दढ-कसिणफालिआमय-सुजायदन्त-मुसलोवसोभिआणं कंचणकोसीपविट्ठदन्तग्ग-विमलमणिरयण[३]-रुइल-पेरंत-चित्तरूवगविराइआणं तवणिज्ज-विसालतिलगप्पमुहपरिमण्डिआणं नाना-मणिरयणमुद्ध-गेवेज्जबद्ध[४]गलयवरभूसणाणं वेरुलिअविचित्तदण्ड-निम्मल-वइरामय-तिक्ख-लट्ठअंकुस-कुंभजुअलयंतरोडिआणं तवणिज्ज-सुबद्ध-कच्छदप्पिअबलुद्धराणं विमल-घणमण्डल-वइरामयलालाललियतालणं[५]

---

१. सुभाणं-क । सुभाण-अख एवमग्रेऽपि । सुहाणं-त्रि । सुहाण बस J2 ॥ २. निम्मललसन्त-मणिरयणनिम्मलाणं-अ J1 । निम्मलभिसत्त० ख । निम्मलभिसत्तमणिरयण तिम्मलाणं-ब J2 । निम्मलमणि० पुवृ. ॥ ३. ०रयणभरियपेरंत-अब J12 ॥ ४. ०सुद्ध०-अब पुवृ. हीवृ. । पाठान्तरे वा मुग्धं-पुवृ. । क्वचित् 'मुद्ध'त्ति पाठः स चाशुद्धः सम्भाव्यते-हीवृ. ॥ ५. ०वइरामततललियतालेण-अब J12 । ०वइरायमय लालललियतालेण० कखत्रि । वइरामतलाल० स ॥

णाणामणिरयणघण्टपासग-रजतामय-बद्धरज्जुलंबिअघंटाजुअलमहुरसरमणहराणं अल्लीण-पमाणजुत्त-वट्टिअ-सुजाय-लक्खणपसत्थ-रमणिज्जवालगत्तपरिपुंछणाणं [१]उवचिअ-पडिपुण्णकुम्मचलणलहुविक्कमाणं [२]अंकमयणक्खाणं [३]तवणिज्जजीहाणं तवणिज्जतालुआणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइआणं कामगमाणं पीइगमाणं मणोगमाणं [४]मणोरमाणं अमिअगईणं अमिअबलवीरिअ-पुरिसक्कार-परक्कमाणं महयागंभीरगुलुगुलाइतरवेणं महुरेणं मणहरेणं पूरेंता अंबरं दिसाओ अ सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ गयरूवधारीणं देवाणं दक्खिणिल्लं बाहं परिवहंति ॥ १७८-B ॥

"**चंदविमाण**" इत्यादि, चन्द्रविमानस्य '**दक्षिणस्यां**' जिगमिषितदिशो दक्षिणे पार्श्वे **गजरूपधारिणां देवानां चत्वारि देवसहस्राणि दाक्षिणात्यां बाहां परिवहन्तीत्यन्वयः** । एषां विशेषणायाह-"**सेआण**"मित्यादि विशेषणचतुष्टयं प्राग्वत् । तथा **वज्रमयं कुम्भयुगलं** येषां ते तथा, '**सुस्थिता**' सुसंस्थाना '**पीवरा**' पुष्टा **वरा वज्रमयी शुण्डा**, '**वर्त्तिता**' वृत्ता पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, तस्यां **दीप्तानि सुरक्तानि** यानि '**पद्मानि**' बिन्दुजालरूपाणि तेषां '**प्रकाशः**' व्यक्तभावो येषां ते तथा, [५]पालकाप्यशास्त्रे हि तारुण्ये हस्तिदेहे जायमाना रक्तबिन्दवः पद्मानीति व्यवह्रियन्त इति, ततः पदद्वयकर्मधारयस्तेषाम् । तथा **अभ्युन्नतमुखानां** पुरत उन्नतत्वात्, तथा **तपनीय**मयावन्तररुणत्वेन '**विशालौ**' इतरजीवकर्णापेक्षया विस्तीर्णौ '**चञ्चलौ**' सहजचापल्ययुक्तौ, अत एव '**चलन्तौ**' इतस्ततो दोलायमानौ '**विमलौ**' आगन्तुकमलरहितौ '**उज्ज्वलौ**' भद्रजातीयहस्त्यवयवत्वेन बहिःश्वेतवर्णौ **कर्णौ** येषां ते तथा तेषां, अत्र पदव्यत्ययः प्राग्वत् । तथा '**मधुवर्णे**' क्षौद्रसदृशे '**भिसंति**'त्ति, भासमाने **स्निग्धे** '**पत्रले**' पक्ष्मवती '**निर्मले**' छायादिदोषरहिते '**त्रिवर्णे**' रक्त-पीत-श्वेतवर्णाश्रये **मणिरत्नमये लोचने** येषां ते तथा तेषाम् । तथा '**अभ्युद्गतानि**' अत्युन्नतानि '**मुकुलमल्लिकेव**' कोरकावस्थविचकिलकुसुमवद् **धवलानि**, तथा '**सदृशं**' समं **संस्थानं** येषां तानि तथा, '**निर्व्रणानि**' व्रणवर्जितानि **दृढानि** '**कृत्स्नस्फटिकमयानि**' सर्वात्मना स्फटिकमयानीत्यर्थः, '**सुजातानि**' जन्मदोषरहितानि **दन्तमुसलानि तैरुपशोभितानाम्** । तथा **विमलमणिरत्नमयानि रुचिराणि पर्यन्तचित्ररूपकाणि** अर्थात् कोशीमुख-

---

१. उप्पत्तिय० अत्रिब J12 हीवृ. । उपचिता-हीवृ. पा. ॥ २. अंकामय० अकखत्रिबस J12 ॥ ३. तवणीज्जतालुयाणं तवणीज्जजीहाणं-खत्रि सपुवृ. हीवृ. ॥ ४. मणोहराणं-J12 ॥ ५. इदं तु ध्येयम् - अत्र पालकाप्यरचित 'हस्त्यायुर्वेद' नामग्रन्थः इति ज्ञेयम् । शिवदत्तशर्मासम्पदितोऽयं ग्रन्थः आनन्दाश्रमसंस्कृतसीरीजमध्ये २६क्रमाङ्के पूना (महाराष्ट्र)तः प्रकाशितोऽस्ति ॥

वर्त्तीनीत्यर्थः, **तैर्विराजिता** या '**काञ्चनकोशी**' षोलिकेति प्रसिद्धा तस्यां **प्रविष्टा** '**दन्ताग्राः**' अग्रदन्ता येषां ते तथा तेषां, पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात् । तथा **तपनीयमयानि विशालानि तिलकप्रमुखाणि** यानि **मुखाभरणानि** आदिशब्दाद्रत्नशुण्डिकाचामरादिपरिग्रहस्तैः **परिमण्डितानाम्** । तथा **नानामणिरत्नमयो मूर्द्धा** येषां ते, तथा **ग्रैवेयेन** सह **बद्धानि** '**गलकवरभूषणानि**' कण्ठाभरणानि घण्टादीनि येषां ते तथा, ततः पदद्वयकर्मधारयस्तेषाम् । तथा '**कुम्भयुगलान्तरे**' कुम्भद्वयमध्ये '**उदितः**' उदयं प्राप्तः, तत्र स्थित इत्यर्थः, तथा **वैडूर्यमयो विचित्रदण्डो** यस्मिन् स तथा, **निर्मलवज्रमयस्तीक्ष्णो** '**लष्टः**' मनोहरोऽङ्कुशो **येषां** ते तथा तेषाम् । तथा **तपनीयमयी सुबद्धा** '**कक्षा**' हृदयरज्जुर्येषां ते तथा, '**दर्पिताः**' सञ्जातदर्पास्ते तथा, '**बलोद्धुराः**' बलोत्कटास्ते तथा, ततः पदत्रयस्य पदद्वयमीलने २ कर्मधारयस्तेषाम् । तथा **विमलं** तथा **घनं मण्डलं** यस्य तत् तथा, **वज्रमयलालाभिः** '**ललितं**' श्रुतिसुखं **ताडनं** यस्य तत् तथा । **नानामणिरत्नमय्यः** '**पार्श्वगाः**' पार्श्ववर्त्तिन्यो **घण्टा** अर्थाल्लघुघण्टा यस्य तत् तथा, एवंविधं **रजतमयी** तिर्यग्**बद्धा** या **रज्जुस्तस्यां लम्बितं** यद् **घण्टायुगलं**, तस्य यो **मधुरस्वरः**, तेन **मनोहराणाम्** । तथा '**आलीनं**' सुश्लिष्टं निर्भरभरकेशत्वात् '**प्रमाणयुक्तं**' चरणावधि लम्बमानत्वात् '**वर्त्तितं**' वर्त्तुलं '**सुजाता**' **लक्षणप्रशस्ता** '**रमणीया**' मनोहरा **वाला** यस्य तत् एवंविधं '**गात्रपरिपुञ्छनं**' पुच्छं येषां ते तथा तेषां, तिर्यञ्चो हि पुच्छेनैव गात्रं प्रमार्जयन्तीति । तथा '**उपचिताः**' मांसलाः '**परिपूर्णाः**' पूर्णावयवास्तथा **कूर्मवदुन्नताश्चरणास्तैः** '**लघुः**' लाघवोपेतः, शीघ्रतर इत्यर्थः, '**विक्रमः**' पादविक्षेपो येषां ते तथा तेषाम् । तथा **अङ्करत्नमयनखानां** '**तवणिज्जजीहाणमि**'त्यादि नव पदानि प्राग्वत् । '**महता**' बहुव्यापिना '**गम्भीरः**' अतिमन्द्रो '**गुलुगुलायितरवः**' बृंहितशब्दस्तेन, **मधुरेण मनोहरेण अम्बरं पूरयन्ति दिशश्च शोभयन्ती**त्यादि प्राग्वत् ॥१७८-B॥

अथ तृतीयबाहावाहकानाह-

चंदविमाणस्स णं पच्चत्थिमेणं सेआणं सुभगाणं सुप्पभाणं चलचवलककुहसालीणं घणनिचिअ-सुबद्धलक्खणुण्णय[१]-ईसिआणयवसभोट्ठाणं चंकमिअ-ललिअ-पुलिअ-चलचवलगव्विअगईणं सन्नतपासाणं संगतपासाणं सुजायपासाणं पीवर-वट्टिअ-सुसंठिअकडीणं ओलंबपलंब-लक्खण-पमाण-

१. ०ईसिं० अकखत्रिब ॥

जुत्त-रमणिज्जवालगण्डाणं [1]समखुर-वालिधाणाणं समलिहिअसिंग-तिक्खग्ग-संगयाणं तणुसुहुम-सुजायणिद्धलोमच्छविधराणं उवचिअ-मंसल-विसाल-पडिपुण्णखंधपएससुंदराणं वेरुलिअ-भिसंत[2]कडक्खसुनिरिक्खणाणं जुत्तपमाण-पहाणलक्खण-पसत्थ[3]रमणिज्जगग्गरगल्लसोभिआणं [4]घरघर-गसुसद्दबद्ध[5]कंठपरिमण्डिआणं णाणामणि-कणग-रयणघण्टिआवे[6]गच्छि-गसुकयमालिआणं वरघण्टागलयमालुज्जलसिरिधराणं पउमुप्पल-सगल-सुरभिमालाविभूसिआणं [7]वइरखुराणं विविहविक्खुराणं फालिआमयदन्ताणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्जतालुआणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइआणं काम-गमाणं पीइगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं अमिअगईणं अमिअबल-वीरिअ-पुरिसक्कार-परक्कमाणं महया गज्जिअगंभीररवेणं महुरेणं मणहरेणं पूरेंता अंबरं दिसाओ अ सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ वसहरूवधारीणं देवाणं पच्चत्थिमिल्लं बाहं परिवहंति ॥ १७८-C ॥

'**चंदविमाणस्स ण**'मित्यादि, **चन्द्रविमानस्य** '**पश्चिमायां**' जिगमिषितदिशः पृष्ठभागे **वृषभरूपधारिणां देवानां चत्वारि देवसहस्राणि पश्चिमां बाहां परिवहन्तीत्यर्थः** । '**श्वेतानां सुभगानामि**'त्यादि प्राग्वत् । '**चलचपलम्**' इतस्ततो दोलाय-मानत्वेनाऽस्थिरत्वा-दतिचपलं '**ककुदम्**' अंसकूटं तेन '**शालिनां**' शोभायमानानाम् । तथा '**घनवद्**' अयोघनवद् '**निचितानां**' निर्भरभृतशरीराणाम्, अत एव '**सुबद्धानाम्**' अश्लथानां '**लक्षणोन्नतानां**' प्रशस्तलक्षणानां, तथा '**ईषदानतं**' किञ्चिन्नम्रभावमुपागतं '**वृषभौष्ठं**' वृषभौ–प्रधानौ लक्षणोपेतत्वेनौष्ठौ यत्र तत्, समर्थविशेषणेन विशेष्यं लभ्यत इति मुखं येषां ते तथा, ततः पूर्ववत् पदचतुष्टयकर्मधारयस्तेषाम् । तथा '**चङ्क्रमितं**' कुटिलगमनं '**ललितं**'

१. समधुरवालियहाणसमलियसंगमाणं–अब । समखुरवालिहीणं० त्रि । समखुरवालिहाणसमलि-हितसिंगतिक्खग्गसंगयाणं–पुवृपा. । सुमधुरवालिहीणं–हीवृपा. ॥ २. ०कक्खदक्खसुतिक्खनिरिक्खणाणं–अत्रिब J12 पुवृ. । ०कक्खऽसुनिरिक्खणाणं–कहीवृ. । ०कक्खदक्ख० खस । ०कऽक्खसुनिरिक्ख-णाणं–पुवृपा. ॥ ३. ०रमणिज्जलंबभंगगंधाउऽगलसोभियाणं–अखत्रिबस J12 पुवृ. ॥ ४. घुग्घरगसुसद्द-बद्धकण्णपरिमंडियाणं–पुवृ. ॥ ५. कण्णपरिमंडियाणं–अखत्रिबस J12 । पाठान्तरे वा ईदृग् यः कण्ठः–पुवृ. ॥ ६. ०गच्छग० अकखत्रिबस पुवृ. हीवृ. J12 ॥ ७. वेरक्खुरविविहपिक्खुराणं–अकब J12 । ०वेरविविह० ख । वेरखुरविविहक्खुराणं–सपुवृ. ॥

विलासवद्गमनं '**पुलितं**' गतिविशेषः, स चाकाशक्रमणरूपः, एवंरूपा '**चलचपला**' अत्यन्त-चपला **गर्विता गतिर्येषां** ते । तथा तेषाम् '**सन्नतपार्श्वानाम्**' अधोऽधःपार्श्वयोरवनतत्वात्, तथा '**सङ्गतपार्श्वानां**' देहप्रमाणोचितपार्श्वानां, तथा '**सुजातपार्श्वानां**' सुनिष्पन्नपार्श्वानां, तथा '**पीवरा**' पुष्टा '**वर्त्तिता**' वृत्ता '**सुसंस्थिता**' सुसंस्थाना **कटिर्येषा** ते तथा तेषाम् । तथा '**अवलम्बानि**' अवलम्बनस्थानानि तेषु '**प्रलम्बानि**'[१] लम्बायमानानि **लक्षणैः प्रमाणेन** च यथोचितेन **युक्तानि रमणीयानि** '**वालगण्डानि**' चामराणि येषां ते तथा तेषाम् । तथा '**समाः**' परस्परं सदृशाः '**खुराः**' प्रतीताः '**वालिधानं**' पुच्छं च येषां ते तथा तेषाम् । तथा '**समलिखितानि**' समानि-परस्परं सदृशानि लिखितानीवोत्कीर्णानीवेत्यर्थः, **तीक्ष्णाग्राणि** '**सङ्गतानि**' यथोचितप्रमाणानि **शृङ्गाणि** येषां ते तथा तेषां, पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात् । तथा '**तनु-सूक्ष्माणि**' अत्यन्तसूक्ष्माणि '**सुजातानि**' सुनिष्पन्नानि **स्निग्धानि लोमानि**, तेषां या **छविस्तां** धरन्ति ते तथा तेषाम् । तथा '**उपचितः**' पुष्टोऽत एव **मांसलो** '**विशालः**' धूर्वहन-समर्थत्वात् '**परिपूर्णः**' अव्यङ्गत्वात् यः **स्कन्धप्रदेशस्तेन सुन्दराणाम्** । तथा **वैडूर्य**मयानि "**भिसंतकडक्ख**"त्ति, '**भासमानकटाक्षाणि**' शोभमानार्द्धप्रेक्षितानि '**सुनिरीक्षणानि**' सुलोचनानि येषां ते तथा तेषाम् । तथा '**युक्तप्रमाणः**' यथोचितमानोपेतः '**प्रधानलक्षणः**' प्रतीतः '**प्रशस्तरमणीयः**' अतिरमणीयो '**गग्गरकः**' परिधानविशेषो लोकप्रसिद्धस्तेन **शोभितगलानां**, पदव्यत्ययः प्राग्वत् । तथा '**घरघरकाः**' कण्ठाभरणविशेषः **सुशब्दा बद्धा** यत्र स चासौ **कण्ठश्च** तेन **परिमण्डितानाम्** । तथा **नानाप्रकारमणिकनकरत्न**मय्यो या '**घण्टिकाः**' क्षुद्रघण्टाः किङ्किण्य इत्यर्थः, तासां **वैकक्षिका**स्तिर्यग्वक्षसि स्थापितत्वेन '**सुकृताः**' सुष्ठु रचिता '**मालिकाः**' श्रेणयो येषां ते तथा तेषाम् । तथा 'वरघण्टिकाः' उक्तघण्टिकातो विशिष्टतरत्वेन प्रधानघण्टा गले येषां ते **वरघण्टागलकाः**, तथा **मालया उज्ज्वलास्ते** तथा, ततः पदद्वयकर्मधारयस्तेषाम् । तथा पुष्पालङ्कारमेव विशेषेणाह-'**पद्मानि**' सूर्यविकासीनि '**उत्पलानि**' चन्द्रविकासीनि '**सकलानि**' अखण्डितानि **सुरभीणि**, तेषां **मालास्ताभिर्विभूषितानां**, पदव्यत्ययः प्राग्वत् । तथा **वज्ररत्नमयाः** '**खुराः**' प्रतीता येषां ते तथा तेषां, '**विविधाः**' मणिकनकादिमयत्वेन नानाप्रकाराः '**विखुराः**' उक्तखुरेभ्य ऊर्ध्व-वर्तित्वेन विकृष्टाः खुरा येषां ते तथा तेषाम् । तथा **स्फटिकमयदन्तानां**, तथा **तपनीय-मयजिह्वानां**, तथा **तपनीयमयतालुकानां**, तथा **तपनीययोक्त्रके सुयोजितानां**, तथा

---

१. पु. । प्राल० मु. ॥

"**कामगमाण**"मित्यादि, षट् पदानि प्राग्वत् । '**महता**' गम्भीरेण '**गर्जितरवेण**' भाङ्कार-शब्दरूपेणेत्यादि प्राग्वदिति ॥१७८-C॥

अथ चतुर्थबाहावाहकानाह–

चंदविमाणस्स णं उत्तरेणं सेआणं सुभगाणं सुप्पभाणं तरमल्लिहाय[1]-णाणं हरिमेलमउल-मल्लिअच्छाणं चंचुच्चिअललिअ-पुलिअ-चल-चवल-चंचलगईणं लंघण-वग्गण-धावण-धोरण-तिवइ-जइण-सिक्खिअगईणं ललंत-लाम[2]-गललायवरभूसणाणं सन्नयपासाणं संगयपासाणं सुजायपासाणं पीवर-वट्टिअ-सुसंठिअकडीणं ओलम्बपलंब-लक्खण-पमाणजुत्त-रमणिज्जवाल-पुच्छाणं तणुसुहुम-सुजाय-णिद्धलोमच्छविहराणं मिउ-विसय-सुहुम-लक्खण-पसत्थ-विच्छिण्ण[3]केसरवालिहराणं ललंतथासग[4]ललाडवरभूसणाणं मुहमण्डग[5]-ओचूलग[6]-चामर-थासग-परिमण्डिअकडीणं तवणिज्जखुराणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्जतालुआणं तवणिज्जजोत्तगसुजोइआणं कामगमाणं जाव मणो-रमाणं अमिअगईणं अमिअबल-वीरिअ-पुरिसक्कार-परक्कमाणं महया हयहेसि-अकिलकिलाइअरवेणं मणहरेणं पूरेंता अंबरं दिसाओ अ सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ हयरूवधारीणं देवाणं उत्तरिल्लं बाहं परिवहंति । गाहा–
॥ १७८-D ॥

"**चंदविमाणस्स ण**"मित्यादि, चन्द्रविमानस्य: '**उत्तरस्यां**' जिगमिषितदिश उत्तरपार्श्वे वामपार्श्वे इत्यर्थः, **हयरूपधारिणां देवानां चत्वारि देवसहस्राणि उत्तरां बाहां परिवहन्तीति** सम्बन्धः । '**श्वेतानामि**'त्यादि प्राग्वत्, तथा '**तरः**' वेगो बलं वा तथा, "**मलि मल्लि धारणे**" [सि. हे. धातु ८१०-१] ततश्च तरोधारको वेगादिधारको '**हायनः**' संवत्सरो येषां ते '**तरोमल्लिहायना**' यौवनवन्त इत्यर्थः, अतस्तेषां वरतुरङ्गमाणामित्यादियोगः । तथा '**हरिमेलकः**' वनस्पतिविशेषस्तस्य '**मुकुलं**' कुड्मलं, तथा '**मल्लिका**' विचकिलस्तद्व-**दक्षिणी** येषां ते तथा तेषां, शुक्लाक्षाणामित्यर्थः । तथा "**चंचुच्चिय**"त्ति, प्राकृतत्वेन

---

१. **वर० अकखत्रिब पुवृ. हीवृ.** J12 ॥ २. **०लास० अकखत्रिब** J12 **पुवृ. हीवृ.** ॥ ३. **विकिण्ण०** V । **विच्छिन्न० मु.** । ४. **ललंतलामग०-अकखत्रिबस पुवृ. हीवृ.** J2 ॥ ५. **०भण्डग-पुवृ.** ॥ ६. **णेऊर-अत्रिब** । **उवचूला-ख** ॥

'**चञ्चुरितं**' कुटिलगमनम्, अथवा '**चञ्चुः**' शुकचञ्चुस्तद्वद्वक्रतयेत्यर्थः, '**उच्चितम्**' उच्चताकरणं पादस्य '**उच्चितं वा**' उत्पाटनं पादस्यैव चञ्चूच्चितं च तत् '**ललितं**' च विलासवद् गतिः, '**पुलितं च**' गतिविशेषः प्रसिद्धः एवंरूपा, तथा चलयतीति '**चलः**' वायुः कम्पनत्वात् तद्वद् '**चपलचञ्चलाः**'- अतीवचपला **गतिर्येषां** ते तथा तेषाम् । तथा '**लङ्घनं**' गर्त्तादेरतिक्रमणं '**वल्गनम्**' उत्कूर्दनं '**धावनं**' शीघ्रमृजुगमनं '**धोरणं**' गतिचातुर्यं '**त्रिपदी**' भूमौ पदत्रयन्यासः '**जयिनीव**' गमनान्तरजयवती '**जविनी**' वा वेगवती '**शिक्षिता**' अभ्यस्ता **गतिर्यैस्ते** तथा तेषाम् । तथा '**ललन्ति**' दोलायमानानि '**लाम**'त्ति, प्राकृतत्वाद्रम्याणि '**गललातानि**' कण्ठे न्यस्तानि **वरभूषणानि** येषां ते तथा तेषाम् । तथा '**सन्नतपार्श्वानामि**'त्यादि पञ्च पदानि प्राग्वत्, नवरं **वाल**प्रधानानि **पुच्छानि** वालपुच्छान्यर्थाच्चामराणीत्यर्थः । तथा "**तणुसुहुमे**"त्ति, पदं प्राग्वत्, तथा **मृद्वी** '**विशदा**' उज्ज्वला, अथवा परस्परमसम्मिलिता प्रतिरोमकूपमेकैकसम्भवात्, '**सूक्ष्मा**' तन्वी **लक्षणप्रशस्ता विस्तीर्णा** या '**केसरपालिः**' स्कन्धकेशश्रेणिस्तां धरन्ति ये ते तथा तेषाम् । तथा '**ललन्तः**' सुबद्धत्वेन सुशोभाका ये '**स्थासकाः**' दर्पणाकारा आभरणविशेषास्त एव **ललाटवरभूषणानि** येषां ते तथा तेषाम् । तथा '**मुखमण्डकं च**' मुखाभरणम् '**अवचूलाश्च**' प्रलम्बमानगुच्छाः **चामराणि** च '**स्थासकाश्च**' प्रतीताः, एषां द्वन्द्वस्तत एते यथास्थाने नियोजिता येषां सन्ति ते तथा, अभ्रादित्वादप्रत्यये रूपसिद्धिः, **परिमण्डिता कटिर्येषां** ते तथा, ततः पदद्वयकर्मधारयस्तेषाम् । तथा **तपनीयखुराणां**, तथा '**तपनीयजिह्वाना**'मित्यादि नव पदानि प्राग्वत् । तथा '**महता**' बहुव्यापिना **हयहेषितरूपो** यः '**किलकिलायितरवः**' सानन्दशब्दस्तेनेत्यादि प्राग्वत् ।

एषु च चतुर्ष्वपि विमानबाहावाहकसिंहादिवर्णकसूत्रेषु कियन्ति पदानि प्रस्तुतोपाङ्गसूत्रादर्शगतपाठा[न]नुसारीण्यपि **श्रीजीवाभिगमोपाङ्गसूत्रादर्शपाठानुसारेण** व्याख्यातानि । न च तत्र वाचनाभेदात् पाठभेदः सम्भवतीति वाच्यं, यतः **श्रीमलयगिरिपादैर्जीवाभिगमवृत्तावेव "क्वचित् सिंहादीनां वर्णनं दृश्यते, तद्बहुषु पुस्तकेषु न दृष्टमित्युपेक्षितं, अवश्यं चेत्तद्व्याख्यानेन प्रयोजनं तर्हि जम्बूद्वीपटीका परिभावनीया, तत्र सविस्तरं तद्व्याख्यानस्य कृतत्वादि"** [उ. २ सू. १९८] त्यतिदेशविषयीकृतत्वेन द्वयोः सूत्रयोः सदृशपाठकत्वमेव सम्भाव्यत इति । यत्तु **जीवाभिगमपाठ**दृष्टान्यपि "**मिअ-माइअ-पीणरइअपासाण**"मित्यादिपदानि न व्याख्यातानि, तत् प्रस्तुतसूत्रे सर्वथा अदृष्टत्वात्, यानि च पदानि प्रस्तुत**सूत्रादर्श**पाठे दृष्टानि तान्येव **जीवाभिगमपाठा**नुसारेण सङ्गतपाठीकृत्य व्याख्यातानीत्यर्थः ॥१७८-D॥

अथ चन्द्रवक्तव्यस्य सूर्यादिवक्तव्यविषयेऽतिदेशं चन्द्रादीनां सिंहादिसङ्ख्यासङ्ग्रहणिगाथे चाह गाहा-

सोलसदेवसहस्सा, वहंति[1] चंदेसु चेव सूरेसु ।
अट्ठेव सहस्साइं, एक्केक्कम्मी गहविमाणे ॥१॥
चत्तारि सहस्साइं, णक्खत्तम्मि अ वहंति[2] इक्किक्के ।
दो चेव सहस्साइं, तारारूवेक्कमेक्कम्मि ॥२॥ १७८ ॥

सोलस देवसहस्सा इत्यादि ॥१७८-E॥

एवं सूरविमाणाणं जाव तारारूवविमाणाणं, णवरं एस देवसंघाए ॥ १७९ ॥

अत्र सङ्गतिप्राधान्याद् व्याख्यानस्य दृश्यमानप्रस्तुत**सूत्रादर्शे**षु पुरःस्थितोऽपि प्रथमं "**एवं सूरविमाणाण**"मित्याद्यालापको व्याख्येयः । यथा एवम्-चन्द्रविमानवाहकानुसारेण **सूर्यविमानाना**मपि वाहका वर्णनीया **यावत्तारारूपाणाम**पि विमानवाहका वर्णनीयाः, यावत्पदाद् ग्रहविमानानां नक्षत्रविमानानां च विमानवाहका वर्णनीयाः, **नवरम् एष देवसंघातः** । अयमर्थः-सर्वेषां ज्योतिष्काणां विमानवाहकवर्णनसूत्रं सममेव तेषां सङ्ख्याभेदस्तु व्याख्यास्यमानगाथाभ्यामवगन्तव्यः, ते चेमे वक्ष्यमाणे गाहा इति-गाथे-"**सोलसे**"त्यादि, **षोडशदेवसहस्राणि भवन्ति चन्द्र**विमाने '**चैवे**'ति समुच्चये तथा **सूर्य**विमानेऽपि षोडश देवसहस्राणि, बहुवचनं चात्र प्राकृतत्वात्, तथा **अष्टौ** देव**सहस्राण्येकैकस्मिन् ग्रहविमाने** । तथा **चत्वारि सहस्राणि नक्षत्रे चैकैकस्मिन् भवन्ति**, तथा **द्वे चैव सहस्रे** तारारूपविमाने **एकैकस्मिन्नि**ति ॥१७९॥

अथ दशमद्वारप्रश्नमाह-

एतेसि णं भंते ! चंदिम-सूरिअ-गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं कयरे सव्वसिग्घगई ? कयरे सव्वसिग्घतराए चेव ?, गोअमा ! चन्देहिंतो सूरा सव्वसिग्घगई, सूरेहिंतो गहा सिग्घगई, गहेहिंतो णक्खत्ता सिग्घगई, णक्खत्तेहिंतो तारारूवा सिग्घगई, सव्वप्पगई चंदा, सव्वसिग्घगई तारारूवा ॥ १८० ॥

---

१. अखत्रिब हीवृ. J2 चन्द्रप्रज्ञप्तिवृत्तौ प्रा. १८ पृ. ५५८ । हवंति-V मु. ॥ २. चंद्रप्र.वि. । हवंति-V मु. ॥

"**एतेसि ण**"मित्यादि, **एतेषां भदन्त ! चन्द्र-सूर्य-ग्रहगण-नक्षत्र-तारारूपाणां** मध्ये **कतरः 'सर्वशीघ्रगतिः'** सर्वेभ्यश्चन्द्रादिभ्यश्चरज्योतिष्केभ्यः शीघ्रगतिः, इदं च सर्वाभ्यन्तर-मण्डलापेक्षया, **कतरश्च सर्वशीघ्रगतितरकः**, अत्र द्वयोः प्रकृष्टे तरप्, इदं च सर्वबाह्य-मण्डलापेक्षयोक्तम्, अभ्यन्तरमण्डलापेक्षया सर्वबाह्यमण्डलस्य गतिप्रकर्षस्य सुप्रसिद्धत्वात्, प्रज्ञप्त इति गम्यम् । भगवानाह-**गौतम ! चन्द्रेभ्यः सूर्याः सर्वशीघ्रगतयः, सूर्येभ्यः ग्रहाः शीघ्रगतयः, ग्रहेभ्यो नक्षत्राणि शीघ्रगतीनि, नक्षत्रेभ्यस्तारारूपाणि शीघ्रगतीनि,** मुहूर्त्तगतौ विचार्यमाणायां परेषां परेषां गतिप्रकर्षस्यागमसिद्धत्वात् । अत एव **सर्वेभ्यः 'अल्पा'** मन्दा **गतिर्येषां** ते तथा एवंविधा**श्चन्द्राः**, तथा **सर्वेभ्यः शीघ्रगतीनि तारारूपाणी**ति ॥१८०॥

अथैकादशद्वारं प्रश्नयति-

एतेसि णं भंते ! चंदिम-सूरिअ-गह-णक्खत्त-तारारूवाणं कयरे सव्व-महिड्ढिआ ? कयरे सव्वप्पड्ढिआ ?, गो० ! तारारूवेहिंतो णक्खत्ता महि-ड्ढिआ, णक्खत्तेहिंतो गहा महिड्ढिआ, गहेहिंतो सूरिआ महिड्ढिआ, सूरेहिंतो चन्दा महिड्ढिआ, सव्वप्पिड्ढिआ तारारूवा, सव्वमहिड्ढिआ चन्दा ॥ १८१ ॥

"**एतेसि ण**"मित्यादि, **एतेषां भदन्त ! चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्रतारारूपाणां** मध्ये **कतरे सर्वमहर्द्धिकाः कतरे** च चकारोऽत्र गम्यः, **सर्वाल्पर्द्धिकाः** ?, भगवानाह-**गौतम ! तारा-रूपेभ्यो नक्षत्राणि महर्द्धिकानि, नक्षत्रेभ्यो ग्रहा महर्द्धिकाः, ग्रहेभ्यः सूर्या महर्द्धिकाः, सूर्येभ्यश्चन्द्रा महर्द्धिकाः**, अत एव **सर्वाल्पर्द्धिकास्तारारूपाः, सर्वमहर्द्धिकाश्चन्द्राः** । इयमत्र भावना-गतिविचारणायां ये येभ्यः शीघ्रा उक्तास्ते तेभ्यः ऋद्धिविचारणायामुत्क्रमतो महर्द्धिका ज्ञेया इति ॥१८१॥

अथ द्वादशद्वारप्रश्नमाह-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे ताराए अ ताराए अ केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ?, गोअमा ! दुविहे-वाघाइए[१] अ निव्वाघाइए अ । निव्वाघाइए जहण्णेणं पंचधणुसयाइं उक्कोसेणं दो गाउआइं, वाघाइए जहण्णेणं दोण्णि छावट्ठे जोअणसए, उक्कोसेणं बारस जोअणसहस्साइं दोण्णि अ बायाले जोअणसए तारारूवस्स २ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ॥ १८२ ॥

---

१. वाघाइमे निव्वाघाइमे-पुवृ. । वाघाइए निव्वाघाइए-पुवृपा. ॥

'जंबुद्दीवे ण'मित्यादि, **जम्बुद्वीपे भदन्त ! द्वीपे तारा-यास्तारायाश्च कियदबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् ?**, भगवानाह-**गौतम ! द्विविधं-व्याघातिकं निर्व्याघातिकं च**, तत्र **'व्याघातः'** पर्वतादिस्खलनं तत्र भवं व्याघातिकं, **'निर्व्याघातिकं'** व्याघातिकान्निर्गतं स्वाभाविकमित्यर्थः । तत्र **यन्निर्व्याघातिकं** तज्**जघन्यतः पञ्चधनुःशतानि उत्कृष्टतो द्वे गव्यूते**, एतच्च [१]जगत्स्वाभाव्यादेवावगन्तव्यम् । यच्च **व्याघातिकं** तज्**जघन्यतो द्वे योजनशते षट्षष्ट्यधिके २६६**, एतच्च निषधकूटादिकमपेक्ष्य वेदितव्यम् । तथाहि-निषधपर्वतः स्वभावतोऽप्युच्चैश्चत्वारि योजनशतानि, तस्य चोपरि पञ्चयोजनशतोच्चानि कूटानि, तानि च मूले पञ्चयोजनशतान्यायाम-विष्कम्भाभ्यां, मध्ये त्रीणि योजनशतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि, उपरि अर्द्धतृतीये द्वे योजनशते, तेषां चोपरितनभागसमश्रेणिप्रदेशे तथाजगत्स्वाभाव्यादष्टावष्टौ योजनान्यबाधया कृत्वा ताराविमानानि परिभ्रमन्ति, ततो जघन्यतो व्याघातिकमन्तरं द्वे योजनशते षट्षष्ट्यधिके भवतः । **उत्कर्षतो द्वादश योजनसहस्राणि द्वे योजनशते द्विचत्वारिंश**दधिके [१२२४२], एतच्च मेरुमपेक्ष्य द्रष्टव्यम् । तथाहि-मेरौ दशयोजनसहस्राणि मेरोश्चोभयतोऽबाधया एकादशयोजनशतान्येकविंशत्यधिकानि [११२१], ततः सर्वसङ्ख्यामीलने भवन्ति द्वादशयोजनसहस्राणि द्वे च योजनशते द्विचत्वारिंशदधिके [१२२४२], एवं **तारारूपस्य तारारूपस्य [अबाधया] अन्तरं प्रज्ञप्तमिति** ॥१८२॥

अथ त्रयोदशं द्वारं प्रश्नयन्नाह-

चंदस्स णं भंते ! जोइसिंदस्स जोइसरण्णो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ?, गोअमा ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं०-चंदप्पभा दोसिणाभा अच्चिमाली पभंकरा । तओ णं एगमेगाए देवीए चत्तारि २ देवीसहस्साइं परिवारो पण्णत्तो, पभू णं ताओ एगमेगा देवी अन्नं देवीसहस्सं विउव्वित्तए, एवामेव सपुव्वा-ऽवरेणं सोलस देवीसहस्सा, सेत्तं तुडिए ॥ १८३ ॥

"चंदस्स ण"मित्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमम् । उत्तरसूत्रे **चतस्रोऽग्रमहिष्यः, तद्यथा-चन्द्रप्रभा "दोसिणाभ"**त्ति, **ज्योत्स्नाभा अर्चिर्माली प्रभङ्करा । 'ततश्च'** चतुःसङ्ख्या-कथनानन्तरं परिवारो वक्तव्य इत्यर्थः, **एकैकस्या देव्याश्चत्वारि २ देवीसहस्राणि परिवारः प्रज्ञप्तः** । किमुक्तं भवति ? एकैका अग्रमहिषी चतुर्णां २ देवीसहस्राणां पट्टराज्ञी । अथ विकुर्वणासामर्थ्यमाह-**'प्रभुः'** समर्था **'णमि'**ति वाक्यालङ्कारे **"ताओ"**त्ति, वचनव्यत्ययात्

१. जगत्स्वभावादे० पुके ॥

सा इत्थंभूता अग्रमहिषी परिचारणावसरे तथाविधां ज्योतिष्कराजचन्द्रदेवेच्छामुपलभ्यान्यमात्मसमानरूपं **देवीसहस्रं विकुर्वितुं**, स्वाभाविकानि पुनः **'एवम्'** उक्तप्रकारेणैव **सपूर्वाऽपरमीलनेन षोडशदेवीसहस्राणि** चन्द्रदेवस्य भवन्ति। चतस्रोऽग्रमहिष्य एकैका चात्मना सह चतुश्चतुर्देवीसहस्रपरिवारा[1], ततः सर्वसङ्कलने भवन्ति षोडश देवीसहस्राणि। इह यथा चमरेन्द्रादितुडिकवक्तव्यताधिकारे स्वस्वपरिवारसङ्ख्यानुसारेण विकुर्वणीयसङ्ख्या उक्ता, तथैव **जीवाभिगमादौ** चन्द्रदेवानामपि चतुःचतुःसहस्रस्वपरिवारानुसारेण चतुश्चतुर्देवीसहस्रविकुर्वणा दृश्यते, अत्र तु न तथेति मतान्तरमवसेयं प्रस्तुतसूत्रादर्शलेखकवैगुण्यं वा ज्ञेयमिति। **"सेत्तं तुडिए"** इति, तदेतत् चन्द्रदेवस्य **'तुटिकम्'** अन्तःपुरम्, उक्तं च **जीवाभिगम-चूर्णौ-"तुटिकमन्तःपुरमुपदिश्यते"** इति ॥१८३॥

अथ चतुर्दशं द्वारं प्रश्नयति-

पहू णं भंते ! चंदे जोइसिंदे जोइसराया चंदवडेंसए विमाणे चन्दाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए तुडिएणं सद्धिं महयाहय-णट्ट-गीअ-वाइअ जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए ?, गोअमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ॥१८४॥

"**पहू ण**"मित्यादि, **प्रभुर्भदन्त ! चन्द्रो ज्योतिषेन्द्रो ज्योतिषराजश्चन्द्रावतंसके विमाने चन्द्रायां राजधान्यां सुधर्मायां सभायां 'तुटिकेने'**ति अन्तःपुरेण **सार्द्धं "महया"** इत्यादि प्राग्वत् **विहर्त्तुमित्यन्वयः**, अत्र काकुपाठात् प्रश्नसूत्रमवगन्तव्यम्। भगवानाह-**गौतम ! नायमर्थः समर्थः** ॥१८४॥

से केणट्ठेणं जाव[2] विहरित्तए ?, गो० ! चंदस्स णं जोइसिंदस्स० चंदवडेंसए विमाणे चंदाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए माणवए चेइअखंभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूईओ जिणसकहाओ सन्निखित्ताओ चिट्ठंति, ताओ णं चंदस्स अण्णेसिं च बहूणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव[3] पज्जुवासणिज्जाओ[4], से तेणट्ठेणं गोयमा ! णो पभू। पभू णं चंदे सभाए सुहम्माए चउहिं सामाणिअसाहस्सीहिं एवं जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए केवलं परिआरिड्डीए, णो चेव णं मेहुणवत्तिअं[5] ॥ १८५ ॥

---

१. चतुः देवी० पुके ॥ २. द्र. ७।१८४ ॥ ३. द्र. जीवा. ३।४०२ ॥ ४. द्र. जीवा. ३।१०२५ ॥ ५. द्र. जीवा. ३।१०२६ ॥

अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते-**यावत्क**रणात् "णो पभू चंदे जोइसिंदे जोइसराया चंदवडेंसए विमाणे चन्दाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए तुडिएणं सद्धिं महयाहय-गीअ-वाइअ-णट्ट जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे" इति ग्राह्यं **विहर्त्तु**मिति । अत्रोत्तरसूत्रमाह-**गौतम ! चन्द्रस्य ज्योतिषेन्द्रस्य० चन्द्रावतंसके विमाने चन्द्रायां राजधान्यां सभायां सुधर्मायां माणवक**नाम्नि **'चैत्यस्तम्भे'** चैत्यवत् पूज्यः स्तम्भः चैत्यस्तम्भस्तस्मिन् **वज्रमयेषु गोलवद्वृत्तेषु 'समुद्गकेषु'** सम्पुटरूपभाण्डेषु **बह्व्यो 'जिनसकथाः'** जिनसक्थीनि **'सन्निक्षिप्ताः'** स्थापिता**स्तिष्ठन्ति, ताश्च 'णमि'**ति प्राग्वत् **चन्द्रस्य अन्येषां च बहूनां देवानां देवीनां चार्च्चनीया**श्चन्दनादिना **यावत्क**रणाद् वन्दनीयाः स्तुतिभिर्नमस्यनीयाः प्रणामतः पूजनीयाः पुष्पैः सत्कारणीया वस्त्रादिभिः सन्माननीयाः प्रतिपत्तिविशेषैरिति ग्राह्यं, **पर्युपासनीयाः** कल्याणमित्यादिबुद्ध्या, **अथ तेनार्थेन** एवमुच्यते-**गौतम ! न प्रभु**रिति, जिनेष्विव जिनसक्थिष्वपि तेषां बहुमानपरत्वेनाशातनाभीरुत्वादिति । अथैवं सति कल्पातीतदेवानामिवास्यापि अप्रविचारता उत नेत्याशङ्कामपाकर्त्तुमाह-"**पभू ण**"मिति, **प्रभुश्चन्द्रसभायां सुधर्मायां चतुर्भिः सामानिकसहस्रैः 'एवमि'**त्युक्तप्रकारेण **यावत्क**रणात् चतसृभिरग्रमहिषीभिः सपरिवाराभिरित्यादिकः सर्वोऽप्यालापको वाच्यः, **दिव्यान् भोगार्हा** ये **'भोगाः'** शब्दादयस्तान् **भुञ्जानो विहर्त्तुमिति** । अत्रैव विशेषमाह-**'केवलं'** नवरं **'परिवारः'** परिकरस्तस्य **'ऋद्धिः'** सम्पत्ततया, एते सर्वेऽपि मम परिचारकाः, अहं चैषां स्वामीत्येवं निजस्फातिविशेषदर्शनाभिप्रायेणेति भावः, **नैव च 'मैथुनप्रत्ययं'** सुरतनिमित्तं यथा भवत्येवं भोगभोगान् भुञ्जानो विहर्त्तुं प्रभुरिति । अथ प्रस्तुतोपाङ्गादर्शेष्वदृष्टमपि **जीवाभिगमाद्युपाङ्गा**दर्शदृष्टं सूर्याग्रमहिषीवक्तव्यमुपदर्श्यते, "**सूरस्स जोइसरण्णो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ?, गोअमा ! चत्तारि अग्गमहिसीओ पं०, तंजहा-सूरप्पभा आयवाभा अच्चिमालि पभंकरा, एवं अवसेसं जहा चंदस्स णवरं सूरवडेंसए विमाणे सूरंसि सीहासणंसी**" [उ. २ सू. २०४]ति व्यक्तम् ॥१८५॥

अथ ग्रहादीनामग्रमहिषीवक्तव्यमाह-

विजया १ वेजयंती २ जयंती ३ अपराजिआ ४ सव्वेसिं गहाईणं[१] **एआओ अग्गमहिसीओ, →**[२]**छावत्तरस्स वि गहसयस्स एआओ अग्गमहिसीओ ← वत्तव्वाओ**[३]**, इमाहि गाहाहिं ति-**

---

१. गहाणं-अकखबस J2 ॥ २. अकखपबस पुवृ. शावृ. । →← चिह्नद्वयमध्यवर्ति पाठः V नास्ति । "हीरविजयवृत्तौ अस्मिन् विषये एका टिप्पणी चापि विद्यते-यद्यप्यत्र बहुष्वादर्शेषु अन्यथाऽपि पाठो दृश्यते, परं व्याख्यातपाठस्यैवोपादेयत्वं द्रष्टव्यं, जीर्णादर्शेषु तथैव दृष्टत्वाज्जीवाभिगमसङ्गतत्वाच्च ।" इति V पृ. ५८५ टि. ९ ॥ ३. ०ओ गहणामाइं इमाहि-बाबु ॥

[१]इंगालए १ विआलए २, [२]लोहिअंके ३ सणिच्छरे चेव ४ ।
आहुणिए ५ पाहुणिए ६, कणगसणामा य पंचेव ११॥१॥
सोमे १२ सहिए १३, [३]आसासणे य १४ कज्जोवए १५ अ [४]कब्बुरए १६ ।
[५]अयकरए १७ दुंदुभए, संखसनामे वि तिण्णेव ॥२॥
एवं भाणियव्वं जाव भावकेउस्स अग्गमहिसीओ ।
[६]बम्हा विण्हू अ वसू, वरुणे अय वुड्डी पूस आस जमे ।
अग्गि पयावइ सोमे, रुद्दे अदिती वहस्सई सप्पे ॥१॥
पिउ भग-अज्जम-सविआ, तट्ठा वाऊ तहेव इंदग्गी ।
मित्ते इंदे निरुई, आऊ विस्सा य बोद्धव्वे ॥२॥ इति ॥ १८६ ॥

"**विजया**" इत्यादि, **ग्रहादीनामा**दिशब्दात् नक्षत्र-तारकापरिग्रहः, **सर्वेषामपि विजया वैजयन्ती**त्यादिचतुर्भिर्नामभिरे**वाग्रमहिष्यो** ज्ञेयाः । उक्तमेव विशिष्य आह-"**छावत्तर**" इत्यादि, षट्सप्तत्यधिकस्य १७६ **ग्रहशतस्यापि** जम्बूद्वीप-वर्तिचन्द्रद्वयपरिवारभूतानां ग्रहाणां द्विगुणिताया अष्टाशीतेरित्यर्थः ८८, '**एता**' अनन्तरोक्ता विजयाद्या **अग्रमहिष्यो वक्तव्याः**, '**इमाभिः**' वक्ष्यमाणाभि**र्गाथाभिरु**क्त[७]नामभिः इति गम्यं, इदं च ग्रहशतस्य विशेषणं बोध्यम् । अत्र सूत्रादर्शे प्रथमदृष्टमपि नक्षत्रदैवतसूत्रमुपेक्ष्य क्रम-प्राधान्याद् व्याख्यानस्येति प्रथममष्टाशीतिग्रहनामसूत्रं व्याख्यायते-"**इंगालए**" इत्यादि, **अङ्गारकः १ विकालकः २ लोहिताङ्कः ३ शनैश्चरः ४ आधुनिकः ५ प्राधुनिकः ६** कनकेन सह एकदेशेन समानं नाम येषां ते **कनकसमाननामान**स्ते पञ्चैव प्रागुक्तसङ्ख्यापरिपाट्या योजनीयाः, तद्यथा-कणः ७ कणकः ८ कणकणकः ९ कणवितानकः १० कणसन्तानकः ११ । "**सोमे**"त्यादि, **सोमः १२ सहितः १३ आश्वासनः १४ कार्योपगः १५ कर्बुरकः १६ अजकरकः १७ दुन्दुभकः १८ शङ्खसमाननामानो** नाम्नि शङ्खशब्दाङ्किता इत्यर्थः, **ते त्रयः**, तद्यथा-शङ्खः १९

---

१. अकखत्रिबस पुवृ हीवृमध्ये नक्षत्रसम्बन्धिगाथाद्वयं ग्रहसम्बन्धिगाथाभ्यां पूर्वं विद्यते ॥ २. अकख पब शावृ. । लोहितक्खे-V । स्थानाङ्गे २।३३५ लोहितक्खा इति पाठो विद्यते ॥ ३. अब J12 । आससणे-कख । अस्सासणे-त्रिमु ॥ ४. कव्वरती-अब J2 । कव्वरए-त्रि । कव्वुरए-पसपुवृ. शावृ. । स्थानाङ्गे २।३२५ कब्बडगा-इति स्थानाङ्गे २।३२५ । कब्बडए-V ॥ ५. आतरए-अखब J2 ॥ ६. बम्हे-अत्रिब J12 । पम्हे-कख । पुण्यसागरीयवृत्तौ एतद् गाथाद्वयं नास्ति व्याख्यातम् । 'स' प्रतावपि नैतद् उपलभ्यते ॥ ७. ०नाम्न इति - पुके ॥

शङ्खनाभः २० शङ्खवर्णाभः २१ **'एवम्'** उक्तेन प्रकारेण **भणितव्यं**, प्रत्येकमग्रमहिषी-सङ्ख्याकथनाय अष्टाशीतेर्ग्रहाणां नामसङ्ग्राहकगाथाकदम्बकमिति शेषः, **यावत् भावकेतोर्ग्रहस्याग्रमहिष्यः** । यावत्करणात् इदं द्रष्टव्यम्–

"तिण्णेव कंसनामा, णीले रुप्पि अ हवंति चत्तारि ।
भाव-तिलपुप्फवण्णे, दग दगवण्णे य काय-वंधे य ॥३॥

इंदग्गि-धूमकेऊ, हरि-पिंगलए बुहे अ सुक्के अ ।
वहस्सइ-राहु अगत्थी, माणवगे कामफासे अ ॥४॥

धुरए पमुहे वियडे, विसंधिकप्पे तहा पयल्ले य ।
जडियालए य अरुणे, अग्गिल-काले महाकाले ॥५॥

सोत्थिअ सोवत्थिअए अ, वद्धमाणग तहा पलंबे अ ।
णिच्चालोए णिच्चुज्जोए, सयंपभे चेव ओभासे ॥६॥

सेयंकर-खेमंकर आभंकर, पभंकरे अ बोद्धव्वे[१] ।
अरए विरए अ तहा, असोग तह वीतसोगे य ॥७॥

विमल वितत्थ विवत्थे, विसाल तह साल सुव्वए चेव ।
अनियट्टी एगजडी अ, होइ बिजडी य बोद्धव्वे ॥८॥

कर करिअ राय अग्गल, बोद्धव्वे पुप्फभावकेऊ अ ।
अट्ठासीई गहा खलु, णायव्वा आणुपुव्वीए ॥९॥" [ ]

अत्र व्याख्या–कंसशब्दोपलक्षितं नाम येषां ते 'कंसनामानः', ते 'त्रय एव', तद्यथा–कंसः २२ कंसनाभः २३ कंसवर्णाभः २४, 'नीले रूप्ये च' शब्दे विषयभूते द्वि-द्विनामसंभवात् सर्वसंख्यया 'भवन्ति चत्वारः', तद्यथा–नीलः २५ नीलावभासः २६ रुप्यी २७ रुप्यावभासः २८, 'भास' इति नामद्वयोपलक्षणं, तद्यथा–भस्म २९ भस्मराशिः ३० तिलः ३१ 'तिलपुष्पवर्णः' ३२ 'दकः' ३३ 'दकवर्णः' ३४ 'कायः' ३५ 'वन्ध्यः' ३६ 'चः' समुच्चये । 'इन्द्राग्निः' ३७ धूमकेतुः ३८ हरिः ३९ पिङ्गलकः ४० बुधः' ४१ [चः] तथैव, एवमग्रेऽपि, 'शुक्रः ४२ बृहस्पतिः ४३ राहुः ४४ अगस्तिः ४५ माणवकः ४६ कामस्पर्शः ४७ । धुरकः ४८ प्रमुखः ४९ विकटः ५० विसन्धिकल्पः ५१ तथा प्रकल्पः ५२ जटालः ५३ अरुणः ५४ अग्निः ५५ कालः ५६ महाकालः ५७ । स्वस्तिकः ५८ सौवस्तिकः ५९ वर्धमानकः ६० तथा प्रलम्बः ६१ नित्यालोकः ६२ नित्योद्योतः ६३ स्वयम्प्रभः ६४ अवभासः ६५ । श्रेयस्करः

---

१. पुके. । णायव्वो–मु. ॥

६६ क्षेमङ्करः ६७ आभङ्करः ६८ प्रभङ्करः ६९ बोद्धव्यः, अरजाः ७० विरजाः ७१ तथा अशोकः ७२ तथा वीतशोकः ७३ । विमलः ७४ वितत[१]ः ७५ विवस्त्रः ७६ विशालः ७७ शालः ७८ सुव्रतः ७९ अनिवृत्तिः ८० एकजटी ८१ भवति द्विजटी ८२ बोद्धव्यः । करः ८३ करिकः ८४ राजा ८५ अर्गलः ८६ बोद्धव्यः पुष्पकेतुः ८७ भावकेतुः ८८ इति अष्टाशीतिर्ग्रहाः खलु ज्ञातव्या आनुपूर्व्येति' ।

अथ "**सव्वेसिं गहाईण**"मित्यादिपदेन सूचितानां नक्षत्राणामधिदैवतद्वारा नामप्रतिपादनाय गाथाद्वयमाह-

बम्हेत्यादि, ब्रह्मा अभिजित् १ **विष्णुः** श्रवणः २ **वसुर्धनिष्ठा** ३ **वरुणः** शतभिषक् ४ **अजः** पूर्व-भाद्रपदा ५ **वृद्धिरित्यत्र** पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् अभिवृद्धिरुत्तरभाद्रपदा अन्यत्राहिर्बुध्न इति ६, **पूषा** रेवती ७ **अश्वो**ऽश्विनी ८ **यमो** भरणि ९ **अग्निः** कृत्तिका १० **प्रजापती** रोहिणी ११ **सोमो** मृगशिरः १२ **रुद्र** आर्द्रा १३ **अदितिः** पुनर्वसुः १४ **बृहस्पतिः** पुष्यः १५ **सर्पो**ऽश्लेषा १६ **पिता** मघा १७ **भगः** पूर्वफाल्गुनी १८ **अर्यमा** उ[२]त्तराफाल्गुनी १९ **सविता** हस्तः २० **त्वष्टा** चित्रा २१ **वायुः** स्वातिः २२ **इन्द्राग्नी** विशाखा २३ **मित्रो**ऽनुराधा २४ **इन्द्रो** ज्येष्ठा २५ **निर्ऋतिर्मूलं** २६ **आपः** पूर्वाषाढा २७ **विश्वे** उत्तराषाढा २८ चेति नक्षत्राणि **बोद्धव्यानि** । ननु स्वस्वामिभावसम्बन्धप्रतिपादकभावमन्तरेण कथं देवतानामभिर्नक्षत्रनामानि सम्पद्येरन् ?, उच्यते, अधिष्ठातरि अधिष्ठेयस्योपचारात् भवति, एतेषां चाष्टाविंशतेरपि नक्षत्राणां विजयादिनामभिरेव पूर्वोक्ताश्चतस्रोऽग्रमहिष्यो वक्तव्या इति । तारकाणां च सपञ्चसप्ततिर्न[३]व-सहस्राधिकषट्षष्टिकोटाकोटीप्रमाणत्वेन [६६,९७५] बहु-सङ्ख्याकतया नामव्यवहारस्यासंव्यवहार्यत्वेन चोपेक्षा, परमेषामप्येता एव चतस्रोऽग्रमहिष्यो बोध्या इति ॥१८६॥

अथ पञ्चदशं द्वारं प्रश्नविषयीकर्तुमाह-

चंदविमाणे णं भंते ! देवाणं केवइअं कालं ठिई पण्णत्ता ?, गो० ! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससयसहस्सम-ब्भहिअं ॥ १८७ ॥

चंदविमाणे णं देवीणं जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उ० अद्धपलि-योवमं पण्णासाए वाससहस्सेहिमब्भहिअं ॥ १८८ ॥

१. वितप्तः-पुके ॥ २. उत्तर फा० पु. ॥ ३. पु. । ०नव० मु. नास्ति ॥

"**चंदविमाणे णं भंते !**" इत्यादि, प्रायः सुगमम् । नवरं '**चतुर्भागपल्योपमस्थितिः**'[1] चतुर्भागमात्रं पल्योपमं चतुर्भागपल्योपममिति विशेषणसमासः पल्योपमचतुर्भाग इत्यर्थः, प्राकृतत्वात् पूरणप्रत्ययलोपः, एवमग्रे**ऽष्टभाग-पल्योपमा**दावपि बोध्यम् । चन्द्रविमाने हि चन्द्रदेवः सामानिकाश्च आत्मरक्षकादयश्च परिवसन्ति तेन चन्द्रसामानिकापेक्षया उत्कृष्टमायुर्बोध्यं, तेषामेवोत्कृष्टायुःसम्भवात् । जघन्यं चात्मरक्षकादिदेवापेक्षयेति, एवं सूर्यविमानादिसूत्रेष्वपि भाव्यम् ॥१८७-१८८॥

सूरविमाणे देवाणं चउब्भागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससहस्समब्भहियं ॥ १८९ ॥

सूरविमाणे देवीणं जहण्णेणं चउब्भागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिं अब्भहियं ॥ १९० ॥

गहविमाणे देवाणं जहण्णेणं चउब्भागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं ॥ १९१ ॥

गहविमाणे देवीणं जहण्णेणं चउब्भागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं ॥ १९२ ॥

णक्खत्तविमाणे देवाणं जहण्णेणं चउब्भागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं ॥ १९३ ॥

णक्खत्तविमाणे देवीणं जहण्णेणं [2]चउब्भागपलिओवमं, उक्कोसेणं [3]साहिअं चउब्भागपलिओवमं ॥ १९४ ॥

ताराविमाणे देवाणं जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेणं चउब्भागपलिओवमं ॥ १९५ ॥

ताराविमाणदेवीणं जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेणं साइरेगं अट्ठभागपलिओवमं ॥ १९६ ॥

---

१. ०पल्योपममिति-पुके ॥ २. अट्ठभाग० कखत्रि हीवृ. । "एतदशुद्धं प्रतिभाति । बहुष्वादर्शेषु प्रज्ञापनायां (४।१९८) जीवाजीवाभिगमे ३।१०३४ अपि च तथादर्शनात्" इति V पृ. ५८६ टि. ९ ॥ ३. साहिअं-कखत्रिहीवृ. नास्ति ॥

अथ सूर्यायुःसूत्रम्-"**सूरविमाणे**" इत्यादि, व्यक्तम् । अथ ग्रहादीनां स्थितिसूत्राणि "**गहविमाणे**" इत्यादि, एतानि त्रीण्यपि सूत्राणि निगदसिद्धानीति ॥१८९-१९६॥

षोडशं द्वारं पृच्छति-

एतेसि णं भंते ! चंदिम-सूरिअ-गहगणणक्खत्त-तारारूवाणं कयरे२हिंतो[1] अप्पा वा बहुआ वा तुल्ला वा विसेसाहिआ वा ?, गो० ! चंदिम-सूरिआ दुवे तुल्ला सव्वत्थोवा, णक्खत्ता संखेज्जगुणा, गहा संखेज्जगुणा, तारारूवा संखेज्जगुणा ॥ १९७ ॥

"**एतेसि ण**"मित्यादि, '**एतेषाम्**' अनन्तरोक्तानां प्रत्यक्षप्रमाणगोचराणां वा **भदन्त ! चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र-तारारूपाणां कतरे कतरेभ्यः** '**अल्पाः**' स्तोकाः '**वा**' विकल्प-समुच्चयार्थे कतरे कतरेभ्यो **बहुका वा** कतरे कतरेभ्य**स्तुल्या वा**, अत्र विभक्तिपरिणामेन तृतीया व्याख्येया, कतरे कतरेभ्यो **विशेषा वे**ति । **गौतम ! चन्द्र-सूर्या** एते **द्वये**ऽपि परस्परं **तुल्याः**, प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रं चन्द्र-सूर्याणां समसङ्ख्याकत्वात्, शेषेभ्यो ग्रहादिभ्यः **सर्वे**ऽपि **स्तोकाः** । तेभ्यो **नक्षत्राणि सङ्ख्येयगुणानि** अष्टाविंशतिगुणत्वात्, तेभ्योऽपि **ग्रहाः सङ्ख्येयगुणाः** सातिरेकत्रिगुणत्वात्, तेभ्योऽपि **तारारूपाणि सङ्ख्येयगुणानि** प्रभूत-कोटाकोटीगुणत्वादिति । व्याख्यातं षोडशमल्पबहुत्वद्वारं, तेन सम्पूर्णं सङ्ग्रहणीगाथाद्वय-व्याख्यानमिति ॥१९७॥

अथ जम्बूद्वीपे जघन्योत्कृष्टपदाभ्यां तीर्थकरान् पिपृच्छिषुराह-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे जहण्णपए वा उक्कोसपए वा केवइआ तित्थयरा सव्वग्गेणं पं० ?, गो० ! जहण्णपए चत्तारि उक्कोसपए चोत्तीसं तित्थयरा सव्वग्गेणं पण्णत्ता ॥ १९८ ॥

"**जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे जहण्णपए**" इत्यादि, **जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे** '**जघन्यपदे**' सर्वस्तोके स्थाने **वा** '**उत्कृष्टपदे**' सर्वोत्कृष्टस्थाने **वा** विचार्यमाणे इति शेषः, **कियन्तस्तीर्थकराः** '**सर्वाग्रेण**' सर्वसङ्ख्यया केवलिदृष्टमात्रया इत्यर्थः, **प्रज्ञप्ताः ?, गौतम ! जघन्यपदे चत्वारः** प्राप्यन्ते । तथाहि-जम्बूद्वीपस्य पूर्वविदेहे शीतामहानद्या द्विभागीकृते दक्षिणोत्तरदिग्भागयोरेकैकस्य सद्भावात् द्वौ, अपरविदेहेऽपि शीतोदया महानद्या द्विभागीकृते

---

१. दोवि-अकखत्रिबस J12 ॥

तथैव द्वौ जिनेन्द्रौ मिलिता-श्चत्वारः, भरतैरावतयोस्तु एकान्तसुषमादावभाव एव । **उत्कृष्टपदे चतुस्त्रिंशत्तीर्थकराः सर्वाग्रेण प्रज्ञप्ताः** । तथाहि–महाविदेहे प्रतिविजयं भरतैरावतयोश्चैकैकस्य सम्भव इति सर्वमीलने चतुस्त्रिंशत्, एषां हि भगवतां स्वस्वक्षेत्रवर्त्तिभिश्चक्रिभिरर्द्धचक्रिभिश्च सहानवस्थानलक्षणविरोधासम्भवात् । एतच्च विहरमानजिनापेक्षया बोध्यं, न तु जन्मापेक्षया, तच्चिन्तायां तूत्कृष्टपदे चतुस्त्रिंशतस्तीर्थकराणामसम्भवादिति ॥१९८॥

अथात्रैव जघन्योत्कृष्टपदाभ्यां चक्रिणः पृच्छति–

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ जहण्णपए वा उक्कोसपए वा चक्कवट्टी सव्वग्गेणं पं० ?, गो० ! जहण्णपदे चत्तारि, उक्कोसपदे तीसं चक्कवट्टी सव्वग्गेणं पण्णत्ता ॥ १९९ ॥

"**जंबुद्दीवे**" इत्यादि, **जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे कियन्तो जघन्यपदे वा उत्कृष्टपदे वा चक्रवर्त्तिनः [सर्वाग्रेण] प्रज्ञप्ताः ?**, भगवानाह–**गौतम ! जघन्यपदे चत्वारः**, उपपत्तिस्तु तीर्थङ्कराणामिव, **उत्कृष्टपदे त्रिंशच्चक्रवर्त्तिनः सर्वाग्रेण प्रज्ञप्ताः** । कथम् ? इति चेत्, उच्यते, द्वात्रिंशद्विजयेषु वासुदेवस्वामिकान्यतर-विजयचतुष्कवर्जितविजयसत्काऽष्टाविंशतिः भरतैरावतयोस्तु द्वाविति पूर्वा-ऽपरमीलितास्त्रिंशत्, यदा महाविदेहे उत्कृष्टपदेऽष्टाविंशतिश्चक्रिणः प्राप्यन्ते तदा नियमाच्चतुर्णामर्द्धचक्रिणां सम्भवेन तन्निरुद्धक्षेत्रेषु चक्रिणामसम्भवात्, चक्रिणामर्द्धचक्रिणां च सहानवस्थानलक्षणविरोधादिति ॥१९९॥

अथात्र तथैव बलदेवानर्द्धचक्रिणश्चाह–

बलदेवा तत्तिआ चेव जत्तिआ चक्कवट्टी, वासुदेवा वि तत्तिया चेव ॥ २०० ॥

"**बलदेवा तत्तिआ**" इत्यादि, **बलदेवा** अपि **तावन्त एवो**त्कृष्टपदे जघन्यपदे च **यावन्तश्चक्रवर्त्तिनः, वासुदेवा अपि तावन्त एव** बलदेवसहचारित्वात् । को**ऽर्थः** ? यदा चक्रवर्त्तिन उत्कृष्टपदे त्रिंशद्, तदा अवश्यं बलदेव-वासुदेवा जघन्यपदे चत्वारः, तेषां चतुर्णामवश्यं भावात्, यदा च बलदेवा वासुदेवा उत्कृष्टपदे त्रिंशत्, तदा चक्रिणो जघन्यपदे चत्वारः, तेषामपि चतुर्णामवश्यं भावात्, तेनैतेषां परस्परं सहानवस्थानलक्षणविरोधभावेनान्य-तराश्रितक्षेत्रे तदन्यतरस्याभाव इति ॥२००॥

अथैते निधिपतयो भवन्तीति जम्बूद्वीपे निधिसङ्ख्यां प्रष्टुमाह–

जंबुद्दीवे दीवे केवइआ निहिरयणा सव्वग्गेणं पं० ?, गो० ! तिण्णि छलुत्तरा णिहिरयणसया सव्वग्गेणं पं० ॥ २०१ ॥

"**जंबुद्दीवे दीवे**" इत्यादि, **जम्बूद्वीपे द्वीपे कियन्ति 'निधिरत्नानि'** उत्कृष्टनिधानानि यानि गङ्गादिनदीमुख-स्थानि चक्रवर्त्ती हस्तगतपरिपूर्णषट्खण्डदिग्विजयव्यावृत्तोऽष्टमतपःकरणानन्तरं स्वसात्करोति तानि '**सर्वाग्रेण**' सर्वसङ्ख्यया **प्रज्ञप्तानि** ?, भगवानाह-**गौतम ! त्रीणि षडुत्तराणि ३०६ निधिरत्नशतानि सर्वाग्रेण प्रज्ञप्तानि** । तद्यथा–नवसङ्ख्याकानि निधानानि चतुस्त्रिंशता गुण्यन्त इति यथोक्तसङ्ख्येति, इयं च सत्तामाश्रित्य प्ररूपणा कृता ॥२०१॥

अथ निधिपतीनां कति निधानानि विवक्षितकाले भोग्यानि भवन्तीति प्रश्नमाह–

जंबुद्दीवे २ केवइआ[१] णिहिरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ?, गो० ! जहण्णपए छत्तीसं, उक्कोसपए दोण्णि सत्तरा णिहिरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ॥ २०२ ॥

"**जंबुद्दीवे दीवे**" इत्यादि, **जम्बूद्वीपे द्वीपे कियन्ति निधिरत्नशतानि 'परिभोग्यतया'** उत्पन्ने प्रयोजने चक्रवर्त्तिभिर्व्यापार्यमाणत्वेन '**हव्वमि**'ति–शीघ्रं चक्रवर्त्त्यभिलाषोत्पत्त्यनन्तरं निर्विलम्बमित्यर्थः, **आगच्छन्ति** ?, भगवानाह-**गौतम ! जघन्यपदे षट्त्रिंशत्**, जघन्यपदभाविनां चक्रवर्त्तिनां नवनिधानानि चतुर्गुणितानि यथोक्तसङ्ख्याप्रदानीति, **उत्कृष्टपदे** तु **द्वे सप्तत्यधिके** २७० **निधिरत्नशते परिभोग्यतया शीघ्रमागच्छतः**, उत्कृष्टपदभाविनां चक्रिणां त्रिंशतो नव नव निधानानि भवन्तीति नव त्रिंशता गुण्यन्त इत्युपपद्यते यथोक्तसङ्ख्येति ॥२०२॥

अथ जम्बूद्वीपवर्त्तिचक्रवर्त्तिरत्नसङ्ख्यां पिपृच्छिषुराह–

जंबुद्दीवे २ केवइआ पंचिंदिअरयणसया सव्वग्गेणं पण्णत्ता ?, गो० ! दो दसुत्तरा पंचिंदिअरयणसया सव्वग्गेणं पण्णत्ता ॥ २०३ ॥

"**जंबुद्दीवे**"त्ति, **जम्बूद्वीपे २ भदन्त ! कियन्ति 'पञ्चेन्द्रियरत्नानि'** सेनापत्यादीनि सप्त तेषां **शतानि सर्वाग्रेण प्रज्ञप्तानि** ?, भगवानाह-**गौतम ! द्वे दशोत्तरे [२१०] पञ्चेन्द्रियरत्नशते सर्वाग्रेण प्रज्ञप्ते** । तद्यथा–उत्कृष्टपदभाविनां त्रिंशत[२]श्चक्रिणां प्रत्येकं सप्त-

---

१. ०आ जहन्नपदे उक्कोसपदे वा-J2 ॥ **२. त्रिंशतां चक्रिणां-पुके** ॥

पञ्चेन्द्रियरत्नसद्भावेन सप्तसङ्ख्या त्रिंशता गुण्यते भवति यथोक्तं मानम् । ननु निधिसर्वाग्रपृच्छायां चतुस्त्रिंशता गुणनं पञ्चेन्द्रियरत्न-सर्वाग्रपृच्छायां तु किमिति त्रिंशता गुणनम् ?, उच्यते, चतुर्षु वासुदेवविजयेषु तदा तेषामनुपलम्भात्, निधीनां तु नियतभावत्वेन सर्वदाऽप्युपलब्धेः, तेन रत्नसर्वाग्रसूत्रे रत्नपरिभोगसूत्रे च न कश्चित् सङ्ख्याकृतो विशेष इति ॥२०३॥

अथ रत्नपरिभोगप्रश्नसूत्रमाह-

जंबुद्दीवे २ जहण्णपदे वा उक्कोसपदे वा केवइआ पंचिंदिअरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ?, गो० ! जहण्णपए अट्ठावीसं, उक्कोसपए दोण्णि दसुत्तरा पंचिंदिअरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ॥ २०४ ॥

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ एगिंदिअरयणसया सव्वग्गेणं पं० ?, गो० ! दो दसुत्तरा एगिंदिअरयणसया सव्वग्गेणं पं० ॥ २०५ ॥

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ एगिंदिअरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छन्ति ?, गो० ! जहण्णपए अट्ठावीसं, उक्कोसेणं दोण्णि दसुत्तरा एगिंदिअरयणसया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ॥ २०६ ॥

"**जंबुद्दीवे**" इत्यादि, प्रायो व्याख्याततत्वाद् व्यक्तम् । अथैकेन्द्रियरत्नानि प्रश्नयितुमाह- "**जंबुद्दीवे**"त्ति व्यक्तम् । नवरम् '**एकेन्द्रियरत्नानि**' चक्रिणां चक्रादीनि तेषां **शतानीति** । अथैकेन्द्रियरत्नपरिभोगसूत्रं पृच्छन्नाह-'**जंबुद्दीवे**'त्ति व्यक्तम् ॥२०४-२०६॥

अथ जम्बूद्वीपस्य विष्कम्भादीनि पृच्छन्नाह-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइअं आयाम-विक्खंभेणं, केवइअं परिक्खेवेणं, केवइअं उव्वेहेणं, केवइअं उड्ढं उच्चत्तेणं, केवइअं सव्वग्गेणं पं० ?, गो० ! जंबुद्दीवे २ एगं जोअणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि जोअणसयसहस्साइं सोलस य सहस्साइं दोण्णि अ सत्तावीसे जोअणसए तिण्णि अ कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचिविसेसाहिअं परिक्खेवेणं, एगं जोअणसहस्सं उव्वेहेणं, णवणउतिं

जोअणसहस्साइं साइरेगाइं[१] उड्ढं उच्चत्तेणं साइरेगं जोअणसयसहस्सं सव्वग्गेणं पण्णत्ते ॥ २०७ ॥

"**जंबुद्दीवे**"त्ति, अत्र सूत्रे विष्कम्भा-ऽऽयाम-परिक्षेपाः प्राग्व्याख्याताः, पुनः प्रश्नविषयीकरणं तु उद्वेधादिक्षेत्रधर्मप्रश्नकरणप्रस्तावाद्विस्मरणशीलविनेयजनस्मरणरूपोपकारायेति । तेन उद्वेधादिसूत्रे **जम्बूद्वीपं द्वीपम्** अत्र द्वीपशब्दस्य क्लीबत्वनिर्देशः क्लीबेऽपि वर्त्तमानत्वात् **कियद् 'उद्वेधेन'** उण्डत्वेन भूमिप्रविष्टत्वेनेत्यर्थः, **कियद् 'उर्ध्वोच्चत्वेन'** भूनिर्गतोच्चत्वेनेत्यर्थः, **कियच्च 'सर्वाग्रेण'** उण्डत्वोच्चत्वमीलनेन **प्रज्ञप्तम्** ?, भगवानाह– **गौतम !** विष्कम्भा-ऽऽयाम-परिक्षेपविषयं निर्वचनसूत्रं प्राग्वत्, उद्वेधादिनिर्वचनसूत्रे तु **एकं योजनसहस्रमुद्वेधेन सातिरेकाणि नवनवतिं योजनसहस्राणि ऊर्ध्वोच्चत्वेन सातिरेकं योजनशतसहस्रं सर्वाग्रेण प्रज्ञप्तम्** । ननु ऊण्डत्वव्यवहारो जलाशयादौ, उच्चत्वव्यवहारस्तु पर्वतविमानादौ प्रसिद्धः द्वीपे तु स किं ?, व्यवहाराविषयत्वादिति, उच्यते, समभूतलादारभ्य रत्नप्रभायामधः सहस्रयोजनानि यावद् गमनेऽधोग्रामविजयादिषु जम्बूद्वीपव्यवहारस्योपलभ्यमानत्वेनोण्डत्वव्यवहारः सुप्रसिद्ध एव । तथा जम्बूद्वीपोत्पन्नानां तीर्थकृतां जम्बूद्वीपमेरोः पण्डगवनेऽभिषेकशिलायामभिषिच्यमानत्वात् जम्बूद्वीपव्यपदेशपूर्वकमभिषेकस्य जायमानत्वेनोच्चत्वव्यवहारोऽप्यागमे सुप्रसिद्ध एवेति ॥२०७॥

अथास्यैव शाश्वतभावादिकं प्रश्नयन्नाह–

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे किं सासए असासए ?, गोअमा ! सिअ सासए सिअ असासए ॥ २०८ ॥

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-सिअ सासए सिअ असासए ?, गो० ! दव्वट्ठयाए सासए, वण्णपज्जवेहिं गंध० रस० फासपज्जवेहिं असासए, से तेणट्ठेणं गो० ! एवं वुच्चइ सिअ सासए सिअ असासए ॥ २०९ ॥

"**जंबुद्दीवे ण**"मित्यादि, इदं च यथा प्राक् पद्मवरवेदिकाधिकारे व्याख्यातं, तथाऽत्र जम्बूद्वीपव्यपदेशेन बोध्यमिति । एवं च शाश्वता-ऽशाश्वतो घटो निरन्वय-विनश्वरो दृष्टः किमसावपि तद्वत् उत न ? ॥२०८-२०९॥

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे कालओ केवच्चिरं होइ ?, गोअमा ! ण कया वि णासि ण कया वि णत्थि ण कया वि ण भविस्सइ, भुविं च भवइ अ

१. साइरेगाइं-अकखत्रिबस नास्ति ॥

भविस्सइ अ धुवे णिइए सासए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे जंबुद्दीवे दीवे पण्णत्ते इति ॥ २१० ॥

इत्याह-"**जंबुद्दीवे ण**"मित्यादि, इदमपि प्राक् पद्मवरवेदिकाधिकारे व्याख्यातमिति ॥२१०॥

अथ किंपरिणामोऽसौ द्वीप इति पिपृच्छिषुराह-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे किं पुढविपरिणामे ? आउपरिणामे[१] ? जीवपरिणामे ? पोग्गलपरिणामे ?, गोअमा ! पुढविपरिणामे वि आउपरिणामे वि जीवपरिणामे वि पुग्गलपरिणामे वि ॥ २११ ॥

"**जंबुद्दीवे णं भंते !**" इत्यादि, **जम्बूद्वीपो भदन्त ! द्वीपः किं 'पृथिवीपरिणामः'** पृथिवीपिण्डमयः किम् '**अप्परिणामः**' जलपिण्डमयः, एतादृशौ च स्कन्धावचित्तरजः-स्कन्धादिवदजीवपरिणामावपि भवत इत्याशङ्क्याह-**किं 'जीवपरिणामः'** जीवमयः, घटादिरजीवपरिणामोऽपि भवतीत्याशङ्क्याह-**किं 'पुद्गलपरिणामः'** पुद्गलस्कन्धनिष्पन्नः केवलपुद्गलपिण्डमय इत्यर्थः, तेजसस्त्वेकान्त-सुषमादावनुत्पन्नत्वेन एकान्तदुष्षमादौ तु विध्वस्तत्वेन जम्बूद्वीपेऽस्य तत्परिणामेऽङ्गीक्रियमाणे कादाचित्कत्वप्रसङ्गः, वायोस्त्वतिचलत्वेन तत्परिणामे द्वीपस्यापि चलत्वापत्तिरिति तयोः स्वत एव सन्देहाविषयत्वेन न प्रश्नसूत्रे उपन्यासः । भगवानाह-**गौतम ! पृथिवीपरिणामोऽपि** पर्वतादिमत्त्वात्, **अप्परिणामोऽपि** नदीह्रदादिमत्त्वात्, **जीवपरिणामोऽपि** मुखवनादिषु वनस्पत्यादिमत्त्वात्, यद्यपि स्वसमये पृथिव्यप्कायपरिणामत्वग्रहणेनैव जीवपरिणामत्वं सिद्धं, तथापि लोके तयोर्जीवत्वस्याव्यवहारात् पृथग्ग्रहणं, वनस्पत्यादीनां तु जीवत्वव्यवहारः स्व-परसम्मत इति । **पुद्गलपरिणामोऽपि** मूर्त्तत्वस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात् । कोऽर्थः ? जम्बूद्वीपो हि स्कन्धरूपः पदार्थः, स चावयवैः समुदितैरेव भवति, समुदायरूपत्वात् समुदायिन इति ॥२११॥

अथ यदि चायं जीवपरिणामस्तर्हि[२] सर्वे जीवा अत्रोत्पन्नपूर्वा उत न ? इत्याशङ्क्याह-

जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सव्वपाणा सव्वजीवा सव्वभूआ सव्वसत्ता पुढविकाइअत्ताए आउकाइअत्ताए तेउकाइअत्ताए वाउकाइअत्ताए वणस्सइकाइअत्ताए उववण्णपुव्वा ?, हंता गो० ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो ॥ २१२ ॥

---

१. आउयप० अत्रिब । अग्रेऽपि ॥ २. ०णामरूपस्तर्हि-पुके ॥

"**जंबुद्दीवे णं भंते !**" इत्यादि, **जम्बूद्वीपे भदन्त ! द्वीपे सर्वे 'प्राणाः'** द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियाः **सर्वे 'जीवाः'** पञ्चेन्द्रियाः **सर्वे 'भूताः'** तरवः **सर्वे 'सत्त्वाः'** पृथिव्यप्तेजो-वायुकायिकाः, अनेन च सांव्यवहारिकराशिविषयक एवायं प्रश्नः, अनादिनिगोदनिर्गतानामेव प्राण-जीवादिरूपविशेषपर्यायप्रतिपत्तेः, **पृथिवीकायिकतया अप्कायिकतया तेजस्कायिकतया वायुकायिकतया वनस्पतिकायिकतया 'उपपन्नपूर्वाः'** उत्पन्नपूर्वाः ?, भगवानाह-**'हंता गोअमा !'** एवं गौतम ! यथैव प्रश्नसूत्रं तथैव प्रत्युच्चारणीयं पृथिवीकायिकतया यावद्वनस्पतिकायिकतया उपपन्नपूर्वाः कालक्रमेण संसारस्यानादित्वात्, न पुनः सर्वे प्राणादयो जीवविशेषा युगपदुत्पन्नाः, सकलजीवानामेककालं जम्बूद्वीपे पृथिव्यादिभावेनोत्पादे सकलदेव-नारकादिभेदाभावप्रसक्तेः, न चैतदस्ति, तथाजगत्स्वभावादिति । कियन्तो वारानुत्पन्नाः ? इत्याह-**'असकृद्'** अनेकशः, **अथवा 'अनन्तकृत्वः'** अनन्तवारान्, संसारस्यानादित्वादिति ॥२१२॥

अथ जम्बूद्वीपेतिनाम्नो व्युत्पत्तिनिमित्तं जिज्ञासिषुः पृच्छति-

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जंबुद्दीवे २ ?, गो० ! जंबुद्दीवे णं दीवे तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे जंबूरुक्खा जंबूवणा जंबूवणसंडा णिच्चं कुसुमिआ जाव[1] [2]पिंडिममंजरिवडेंसगधरा सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणा चिट्ठंति, जंबूए सुदंसणाए अणाढिए णामं देवे महिड्ढीए जाव[3] पलिओवमट्ठिइए परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोअमा ! एयं वुच्चइ-जंबुद्दीवे दीवे ॥ २१३ ॥

"**से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-जंबुद्दीवे दीवे**" इत्यादि, **अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते जम्बूद्वीपो द्वीपः ?**, भगवानाह-**गौतम ! जम्बूद्वीपे २ तत्र तत्र देशे तस्य २** देशस्य **तत्र तत्र** प्रदेशे **बहवो जम्बूवृक्षा** एकैकरूपा विरलस्थितत्वात्, तथा बहूनि **'जम्बूवनानि'** जम्बूवृक्षा एव समूहभावेन स्थिता अविरलस्थितत्वात्, '**एकजातीयतरुसमूहो वन**'मिति वचनात्, तथा बहवो **'जम्बूवनखण्डाः'** जम्बूवृक्षसमूहा एव विजातीयतरुमिश्रिताः, "**अनेकजातीयतरुसमूहो वनखण्ड**" [ ] इति वचनात्, तत्रापि जम्बूवृक्षाणामेव प्राधान्यमिति प्रस्तुते वर्णकसाफल्यम्, अन्यथा अपरवृक्षाणां वनखण्डैर्निमित्तभूतैर्जम्बूद्वीपपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वेऽसाङ्गत्यात् । ते च कथम्भूताः ? इत्याह-**'नित्यं'** सर्वकालं **कुसुमिताः, यावत्पदात्** "णिच्चं माइया णिच्चं लवइआ णिच्चं थवइआ जाव णिच्चं कुसुमिअ-माइअ-लवइअ-थवइअ-गुलइअ-गोच्छइअ-जमलिअ-जुवलिअ-विणमिअ-सुविभत्त' इति ग्राह्यम्, एतद्व्याख्यानं

१. द्र. औप. सू. ५ ॥ २. पिंडि० अ । पोंडि० ब । पुंडि० स ॥ ३. द्र. १।२४ ॥

प्राग्वनखण्डवर्णके कृतमिति ततो ज्ञेयम् । उक्तवर्णकोपेताश्च वृक्षाः **श्रिया अतीव उपशोभमानास्तिष्ठन्ति** । इदं च नित्यकुसुमितत्वादिकं जम्बूवृक्षाणामुत्तरकुरुक्षेत्रापेक्षया बोध्यम्, अन्यथैषां प्रावृट्कालभाविपुष्प-फलोदयवत्त्वेन प्रत्यक्षबाधात्, एतेन च जम्बूवृक्षबहुलो द्वीपो जम्बूद्वीप इत्यावेदितं भवति । अथवा **जम्ब्वां सुदर्शना**भिधानायाम् '**अनादृतनामा**' पूर्वं जम्बूवृक्षाधिकारे व्याख्यातनामा देवो **महर्द्धिको यावत्**करणात् "**महज्जुईए**"[1] इत्यादि ग्राह्यं, **पल्योपमस्थितिकः परिवसति, अथ तेनार्थेन गौतम ! एवमुच्यते**-स्वाधिपत्यनादृतनामदेवाश्रयभूतया जम्ब्वोपलक्षितो **द्वीपो जम्बूद्वीप इति**, सूत्रैकदेशो ह्यपरं सूत्रैकदेशं स्मारयतीति "अदुत्तरं च णं जंबुद्दीवस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते, जण्ण कयाइ ण आसी ण कयाइ णत्थि ण कयाइ ण भविस्सइ जाव णिच्चे" इति ज्ञेयं, **जीवाभिगमादर्शे** तथादर्शनात्, एतेन किमाकारभावप्रत्यवतारो जम्बूद्वीप इति चतुर्थः प्रश्नो निर्य्यूढ इति ॥२१३॥

अथ प्रस्तुततीर्थद्वादशाङ्गीसूत्रसंसूत्रणाविश्वकर्मा श्रीसुधर्मस्वामी स्वस्मिन् गुरुत्वाभिमानं परिजिहीर्षुः प्रस्तुतग्रन्थनामोपदर्शनपूर्वकं निगमनवाक्यमाह-

तए[2] णं समणे भगवं महावीरे मिहिलाए णयरीए माणिभद्दे[3] चेइए[4] बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं बहूणं देवाणं बहूणं देवीणं मज्झगए एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ जंबूदीवपण्णत्ती णाम, अज्जो ! अज्झयणे[5] अट्ठं च हेउं च पसिणं च कारणं च वागरणं च भुज्जो २ उवदंसेइ त्ति बेमि ॥ २१४ ॥

"**तए ण**"मित्यादि, शाश्वतत्वा-च्छाश्वतनामकत्वाच्च सद्रूपोऽयं जम्बूद्वीपरूपो भावः, सन्तं हि भावं नापलपन्ति वीतरागाः, ततः **श्रमणो भगवान् महावीरो मिथिलायां नगर्यां माणिभद्रे चैत्ये बहूनां श्रमणानां बहूनां श्रमणीनां बहूनां श्रावकाणां बहूनां श्राविकाणां बहूनां देवानां बहूनां देवीनां 'मध्यगतः'** न पुनरेकान्ते एकतरस्य कस्यचित् पुरतः '**एवं**' यथोक्तमुक्तानुसारेणेत्यर्थः, '**आख्याति**' प्रथमतो वाच्यमात्रकथनेन **एवं 'भाषते'** विशेषवचनकथनतः, **एवं 'प्रज्ञापयति'** व्यक्तपर्यायवचनतः, **एवं 'प्ररूपयति'** उपपत्तितः । आख्येयस्याभिधानमाह-**जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्तिरिति नाम** षष्ठोपाङ्गमिति शेषः, एतच्च ग्रन्थाग्रेण

---

१. महज्जुइए-पुके ॥ २. तेणं कालेणं तेणं समएणं-पुवृ. । तए णं-पुवृपा. ॥ ३. माघवदे-अब ॥ ४. चितिए-अब ॥ ५. अज्झयणं-पुवृ । अज्झयणे-पुवृपा ॥

साधिकैकचत्वारिंशच्छतश्लोकमानम् ४१०० । यत्तु **श्रीमलयगिरिपादैः सूर्यप्रज्ञप्तिटीकायां द्वितीय-प्राभृतप्राभृते**[१] **"एवामेव सपुव्वा-ऽवरेणं जम्बुद्दीवे दीवे चउद्दस सलिलासयसहस्साइं छप्पण्णं च सलिलासहस्साइं भवंती तिमक्खाय"** [ ] मित्यन्तं श्लोकसहस्रचतुष्टयमानमुक्तं, ज्योतिष्काधिकारसूत्रमीलनेन च सप्तचत्वारिंशच्छताधिकमपि, तत्तु यावत्पदसङ्ग्रहेण जन्माधिकारबृहद्वाचनाप्रक्षेपेण च तावत्परिमाणं सम्भाव्यत इति बोध्यम् । अत्र गुणान् विभावयन्नाह-"**अज्जो ! अज्झयणे अट्ठं च हेउं च पसिणं च**" इत्यादि, '**आरात्**' सर्वपापाद् दूरं यातः '**आर्यः**' श्रीवर्द्धमान-स्वामी, अत एव सर्वसावद्यवर्जकत्वेन "**सावद्यं निरर्थकं तुच्छार्थकं च न ब्रूयादि**" [ ]ति वक्तृप्रामाण्येन वचनप्रामाण्यमावेदितं भवति । अथवा श्रीसुधर्मस्वामिसम्बोधनं श्रीजम्बू-स्वामिनं प्रति हे आर्य ! इति, '**अध्ययने**' प्रस्तुतजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिनामके स्वतन्त्राध्ययने, न तु शस्त्रपरिज्ञादिवत् श्रुतस्कन्धाद्यन्तर्गते, अर्थं च '**चाः**' परस्परं समुच्चयार्थाः हेतुं च प्रश्नं च **कारणं च व्याकरणं च** '**भूयो भूयो**' विस्मरणशीलश्रोत्रनुग्रहार्थं वारंवारं प्रकाशनेन, अथवा प्रतिवस्तु नामार्थादिप्रकाशनेनो**पदर्शयतीति** सम्बन्धः, अनेन गुरुपारतन्त्र्यमभिहितम् । तत्र '**अर्थः**' जम्बूद्वीपादिपदानामन्वर्थः, स यथा "से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-जंबुद्दीवे दीवे ?, गोअमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे तहिं २ बहवे जंबूरुक्खा जंबूवणा जंबूवणसंडा णिच्चं कुसुमिआ जाव पिंडिमंजरिवडेंसगधरा सिरीए अईव २ उवसोभेमाणा चिट्ठंति, जंबूए अ सुदंसणाए अणाढिए णामं देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठिईए[२] परिवसइ, से तेणट्ठेणं गोअमा ! एवं वुच्चइ-जंबुद्दीवे २" इति ।

तथा '**हेतुः**' निमित्तं स यथा-"पभू णं भंते ! चंदे जोइसिंदे जोइसराया चन्दवडेंसए विमाणे चन्दाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए तुडिएणं सद्धिं महयाहय-णट्ट-गीअ-वाइअ जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए ?, गोअमा ! णो इणट्ठे समट्ठे"[७।१८४] इत्यत्राभिधातव्यार्थस्य "से केणट्ठेणं जाव विहरित्तए ?, गोअमा ! चंदस्स जोइसिंदस्स० चंदवडेंसए विमाणे चंदाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए माणवए चेइअखंभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूईओ जिणसकहाओ संनिक्खित्ताओ चिट्ठंति, ताओ णं चंदस्स अन्नेसिं च बहूणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव पज्जुवासणिज्जाओ, से तेणट्ठेणं गोअमा ! णो पभू"[७।१८५]त्ति, इदं सूत्रं हेतुप्रतिपादकम् । तथा '**प्रश्नः**' शिष्यपृष्टस्यार्थस्य

---

१. ०प्राभृतस्य चतुर्थप्राभृतप्राभृते-पुके । ०प्राभृतस्य प्रथमोद्देशे-बाबु पृ. ६१५ ॥ २. ०महड्ढिइए-पुके ॥

प्रतिपादनरूपः, यथा लोकेऽप्युच्यते-अनेन प्रश्नानि सम्यक् कथितानि, अन्यथा सर्वथा सर्वभावविदो भगवतः प्रष्टव्यार्थाभावेन कुतः प्रश्नसम्भव इति, यथा-

"कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे केमहालए णं भन्ते ! जंबुद्दीवे दीवे किंसंठिए णं भन्ते ! जंबुद्दीवे दीवे किमायारभावपडोआरे णं भन्ते ! जंबुद्दीवे दीवे पण्णत्ते ?, गोअमा ! अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतरए सव्वखुड्डाए वट्टे तेल्लापूअसंठाणसंठिए वट्टे पुक्खरकण्णिआसंठाणसंठिए वट्टे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए, एगं जोअणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं, तिण्णि जोअणसयहस्साइं सोलस य सहस्साइं दोण्णि अ सत्तावीसे जोअणसए तिण्णि अ कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचि-विसेसाहिअं परिक्खेवेणं पण्णत्ते"[व. १ सूत्र ७] इति ।

तथा '**करणम्**' अपवादो विशेषवचनमितियावत्, तच्च '**नवरं**'पदगर्भितसूत्रवाच्यं, यथा-"कहि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे एरवए णामं वासे पण्णत्ते ?, गोअमा ! सिहरिस्स उत्तरेणं उत्तरलवणसमुद्दस्स दक्खिणेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवण-समुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जंबुद्दीवे दीवे एरवए णामं वासे पण्णत्ते, खाणुबहुले कंटक-बहुले एवं जच्चेव वत्तव्वया भरहस्स सच्चेव सव्वा निरवसेसा णेअव्वा सओअवणा सणिक्खमणा सपरिणिव्वाणा" इत्यतिदेशसूत्रे "णवरं एरावओ चक्कवट्टी देवे एरावए से तेणट्ठेणं एरावए वासे" इति । तथा '**व्याकरणम्**' अपृष्टोत्तररूपं, तद्यथा-"जया णं भन्ते ! सूरिए सव्वब्भंतरं मण्डलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगमेगेणं मुहुत्तेणं केवइअं खेत्तं गच्छइ ?, गोअमा ! पंच पंच जोअणसहस्साइं दोण्णि अ एगावण्णे जोअणसए एगूणतीसं (सीयालीसं) च सट्ठिभाए जोअणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ" इत्यत्र[1] सूत्रे "तया णं इहगयस्स मणूसस्स सीआलीसाए जोअणसहस्सेहिं दोहि अ तेवट्ठेहिं जोयणसएहिं एगवीसाए अ जोअणस्स सट्ठिभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ"[तुला-७।२१] इत्येवंरूपेण सूत्रेण सूर्यस्य चक्षुःपथप्राप्तता शिष्येणापृष्टापि परोपकारैकप्रवृत्तेन भगवता स्वयं व्याकृतेति । '**इति ब्रवीमी**'ति सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं प्रति ब्रूते अहमिति ब्रवीमि । कोऽर्थः ? गुरुसम्प्रदायागतमिदं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति-नामकमध्ययनं, न तु मया स्वबुद्ध्योत्प्रेक्षितमिति,

---

१. पुके । इत्यन्तसूत्रे-मु. ॥

उपदर्शयतीत्यत्र वर्त्तमाननिर्देशस्त्रिकाल-भाविष्वर्हत्सु **जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यु**पाङ्गविषयकार्थप्रणेतृत्व-रूपविधिदर्शनार्थम्, अत्र च ग्रन्थपर्यवसाने श्रीमन्महावीरनामकथनं चरममङ्गलमिति ॥२१४॥

इति[१] श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रं समाप्तम् ॥ ग्रन्थाग्रं० ४१४६॥

इति सातिशयधर्मदेशनारससमुल्लासविस्मयमानऐदंयुगीननराधिपति-चक्रवर्तिसमानश्रीअकब्बरसुरत्राणप्रदत्तषाण्मासिकसर्वजन्तुजाताभयदान-शत्रुञ्जयादिकरमोचन-स्फुरन्मानप्रदानप्रभृतिबहुमान-युगप्रधानोपमान-साम्प्रतविजयमानश्रीमत्तपागच्छाधिराजश्रीहीरविजयसूरीश्वर-पदपद्मोपासनाप्रवणमहोपाध्यायश्रीसकलचन्द्रगणिशिष्योपाध्यायश्रीशान्तिचन्द्रगणि-विरचितायां जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्तौ रत्नमञ्जूषानाम्न्यां ज्योतिष्काधिकारवर्णनो नाम सप्तमो वक्षस्कारः समाप्तः, तत्समाप्तौ च समाप्तेयं श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्युपाङ्गवृत्तिः ॥

●●●

१. जंबुद्दीवपण्णत्ती सम्मत्ता ।छ। ग्रन्थसंख्या ४१४६ ॥ सं. १३७८ पोसवदि ५ दिने समर्थिता ॥ शुभं भवतु संघस्य ।छ। - J2 ॥

प्रशस्तिः ।

श्रेयःश्रीप्रतिभूप्रभूततपसा यो मोहराजं रिपुं,
दध्वंसे सहसा श्रितो गतमलं ज्ञानं च यः केवलम् ।
यो जुष्टश्च सदा त्रिविष्टपसदां वृन्दैस्तथा तथ्यवाग्,
यस्तीर्थाधिपतिः श्रियं स ददतां श्री**वीरदेवः** सताम् ॥१॥

अर्हत्स्विवात्र निखिलेषु गणाधिपेषु, **वामेयदेव** इव यो विदितो जगत्याम् ।
आदेयतां[1]मदधदद्भुतलब्धिधाम, श्री**गौतमो**ऽस्तु सम (मम) पूरितसिद्धिकामः ॥२॥

यं पञ्चमं प्रथमतोऽपि रतोपयेमे, श्रीवीरपट्टपटुलक्ष्मिसरोरुहाक्षी ।
रुद्राङ्कितेषु गणभृत्सु **सुधर्म्म**नामा, भूयादयं सुभगतानिधिरिष्टसिद्धयै ॥३॥

तस्य प्रभोः स्थविरवृन्दपरम्परायां, तत्तल्लसत्कुल-गणावलिसम्भवायाम् ।
जातः क्रमाद् **वटगणे**न्द्रतपस्विसूरेः, श्रीमांस्**तपागण** इति प्रथितः पृथिव्याम् ॥४॥

पद्मावतीवचनतोऽभ्युदयं विभाव्य, यत्सूरये स्तवनसप्तशतीं स्वकीयाम् ।
सूरि**र्जिनप्रभ** उ[2]पप्रददे प्रथायै, सोऽयं सतां तपगणो न कथं प्रशस्यः ? ॥५॥

तत्रानेके बभूवुः सुविहितगुरवः **श्रीजगच्चन्द्र**मुख्याः,
दोषायां वा दिवा वा सदसि रहसि वा स्वक्रियास्वेकभावाः ।
आदिक्रोडैरिवोर्व्वी चिकिलभरगता दुष्प्रमादावमग्ना,
यैरुद्दध्रे वितन्द्रैः स्व-परहितकृते सत्क्रिया सत्क्रियार्हा ॥६॥

अदुष्यं वैदुष्यं चरणगुणवैदुष्यसहितं, प्रमादाद्वैमुख्यं प्रवचनविधेः सत्कथकता ।
गुणौघो यस्येत्थं न खलदुर्वाक्यविषयः, क्रमादासीदस्मिन् परमगुरु**रानन्दविमलः** ॥७॥

अन्त-र्बाह्यमिति द्विधापि कुमतं श्रद्धावतां स्वागतं,
निःश्रद्धैस्तु यथाशयं प्रकटितं वि[3]च्छिन्दतोऽस्य प्रभोः ।

---

१. ०नामं-पु. ॥ २. उपप्रपदे-पुके ॥ ३. न्यकुर्वतोस्य-पु । विध्वस्यतेस्य-के ॥

बाह्यध्वान्तविभेदिनो दिनमणेः साम्यं न रम्यं न वा,
ध्वान्तद्वैतभिदोऽपि मन्दिरमणेः संरक्षतोऽधस्तमः ॥८॥

स्वगच्छे स्वस्मिंश्च प्रथयतितरां स्म प्रथमत-स्तथा साधोश्चर्यां ध्रुवसमय एव प्रभुरसौ ।
यथा सैतत्पट्टाधिपतिपुरुषे संयतगणे, क्रमाद्दुर्वी गुर्वी प्रजनितयशस्काऽनुववृते ॥९॥

तत्पट्टभूषणमणिः सुगुरूप्तधर्म-बीजप्रवर्द्धनपटुर्भरतक्षमायाम् ।
सूरीश्वरो विजयदानगुरुर्बभूव, के वादिनो विजयदा न बभूवुरस्य ? ॥१०॥

नालीकनीरनिधिनिर्जरसिन्धुसेवां, चक्रुश्चतुर्मुखचतुर्भुजचन्द्रचूडाः ।
यस्य प्रतापपरितापभृतो न भीता, एते जडाश्रयिण इत्यपवादतोऽपि ॥११॥

तत्पट्टं गुरुहीर**हीरविजयो** बिभ्राजयामासिवान्,
जाग्रद्भाग्यनिधिः प्रियागमविधिश्चारित्रिणां चावधिः ।
यं सम्प्राप्य जगत्त्रयैकसुभगं मुक्तो मिथो मत्सरः,
श्रीवाग्भ्यामिव दीर्घकालजनितो ज्ञान-क्रियाभ्यामपि ॥१२॥

सौभाग्यं यस्य नाम्नो नृपसदसि गुणिष्वादितायां प्रसिद्धेः,
सौभाग्यं देशनाया **अकबरनृपतिः** पादयोः पादुकार्च्चा ।
सौभाग्यं यस्य पाणेरुपपदविजयः **सेनसूरीश्वरोऽसौ**,
सौभाग्यं दर्शनस्य त्वहमहमिकया स्वान्यलोकोपपातः ॥१३॥

इदानीं तत्पट्टे **गुरुविजयसेनो** विजयते,
कलौ काले मूर्त्तः सुविहितजनाचारनिचयः ।
विरेजे राजन्वान् शशधरगणो येन विभुना,
गुणग्रामो यस्माद् भवति विनयेनैव सुभगः ॥१४॥

खलास्तेजोराशिं चरणगुणराशिं सुविहिता,
विनेयाश्चिद्राशिं प्रतिवचनराशिं कुमतिनः ।
कविः [1]कीर्त्ते राशिं वरविनयराशिं च गुरवो,
विदुः स्थाने जाने शुचिसुकृतराशिं पुनरमुम् ॥१५॥

गुरोरस्य श्रुत्वा श्रवणमधुरं चारु चरितं, स्वगन्धर्वोद्गीतं शुचिगुणगणोपार्जनभवम् ।
चमत्कारोत्कर्षात् ससलिलसहस्रानिमिषदृक्, [2]पटक्लेदक्लेशं सुबहु सहते गिर्यसहनः ॥१६॥

---

१. **कीर्ति-पुके** ॥ २. **पटक्लेदात् क्लेशं**-DCGCM Vol XVII Part-I **प्र.भांडारकर ओरिएंटल इन्स्टीट्यूट पूणे** ॥

तेषां गणे गुणवतां धुरि गण्यमानः, श्रीवाचकः **सकलचन्द्रगुरुर्बभूव** ।
मेधाविषु प्रथमतः प्रथमानकीर्त्तिः, स्फूर्तिर्यदीयकविकर्मणि सुप्रसिद्धा ॥१७॥

पुनः पुनः संस्मृतिमीयुषीणां, प्रतिक्रियेयं यदुपक्रियाणाम् ।
पुनः पुनर्लोचनसान्द्रभावः, पुनः पुनर्निःश्वसनस्वभावः ॥१८॥

तेषां शिष्याणुनेयं गुरुजनविहितानुग्रहादेव**जम्बू-**
द्वीपप्रज्ञप्तिवृत्तिः स्व-परहितकृते **शान्तिचन्द्रेण** चक्रे ।
वर्षे श्रीविक्रमार्काद्विधुशरशरभूवक्त्र[1]धात्री (१६५१) प्रमाणे,
राज्ये प्राज्ये श्रिया **श्रीअकबरनृपतेः** पुण्यकारुण्यसिन्धोः ॥१९॥

अस्योपाङ्गस्य गाम्भीर्यान्मदीयमतिमान्द्यतः ।
सम्प्रदायव्यपायाच्च, पूर्ववृत्तिनिवृत्तितः ॥२०॥

विरुद्धमागमादिभ्यो, यदत्र लिखितं मया ।
धीलोचनैस्तदालोच्य, शोध्यं सानुग्रहैर्मयि ॥२१॥युग्मम् ॥

तुष्यन्तु साधवः सर्वे, मा रुष्यन्तु खला मयि ।
नमस्करोमि निःशेषान्, प्रीत्या भीत्या क्रमादिमान् ॥२२॥

गम्भीरमिदमुपाङ्गं यथामति, विवृण्वता विशदमतिना ।
यदवाऽपि मया कुशलं, कुशलमतिस्तेन भवतु जनः ॥२३॥

अये यावल्लीलौकसि[2] नभसि नक्षत्रकुसुमव्रजं राज्ञः श्यामाभिगमसमये पूरिततरम् ।
मृजाकारः सूर्यः करबहुकरेणापनयति, ध्रुवा तावद्भूयादियमखिललोकैः परिचिता ॥२४॥

→ अथ[3] शोधनसमयगता, पुरोऽनुसन्धीयते प्रशस्तिरियम् ।
तपगणसाम्राज्यरमां, श्रयति **श्रीविजयसेनगुरौ** ॥२५॥

---

१. ०भुव० पुके. °भूवक्र° मु. । शरभूः = कार्तिकेयः, स 'षण्मुख' इति प्रसिद्धिः । द्र. अभि. चि. २०९ ॥ २. यावद्वल्ली० पुके ॥ ३. इदं तु ध्येयं - श्लोक १-२४ पर्यन्ता प्रशस्ति प्रमेयरत्नमञ्जूषावृत्तिकारेण उपा. शान्तिचन्द्रविजयेन वि.सं. १६५१ तमे वर्षे विहिता अस्ति । २५ तः प्रशस्ति वि.सं. १६६० वर्षे वृत्ति संशोधनानन्तरं रचिता दृश्यते । तदा तु वृत्तिकारा उपा. शान्तिचन्द्रविजया दिवंगता आसन् इति श्लो. ४२ तः ज्ञायते ॥

यत्सौभाग्यमनुत्तरं गुणगणो येषां वचोगोचरा-
तीतःकोऽप्यभवत् पुरापि विनयाधारः सतां पूजितः ।
हित्वा येन पतिंवरावदपरान् यानेव सच्चातुरी-
युक्ताचार्यपदव्युदाररचिता सौवश्रियेऽशिश्रियत् ॥२६॥

यद्रूपं मदनं सदा विमदनं निर्म्माति रम्यश्रिया,
यत्कीर्त्तिश्च पदातिकं वितनुते कान्त्या निशानायकम् ।
चित्रं सञ्चिनुते च चेतसि सतां यद्देशनावाक् सुधा-
देश्या शासनदीप्तिकृच्च सतपो यद् ध्यानमत्यद्भुतम् ॥२७॥

ते **श्रीअकब्बर**महीधरदत्तमान-विख्यातिम**द्विजयसेनगणा**धिपानाम् ।
नन्दन्ति पट्टयुवराजपदं दधानाः, श्रीसूरयो **विजयदेव**यतिप्रधानाः ॥२८॥ त्रिभिर्विशेषकं

श्री**विजयसेनसूरीश्वर**गणनायकनिदेशकरणचंणाः[१] ।
चत्वारोऽस्या वृत्तेः, शुद्धिकृते सङ्गता निपुणाः ॥२९॥

तथाहि-

श्रीसूरेर्विजयादि**दान**सुगुरोः श्री**हीर**सूरेरपि,
प्राप्ता वाङ्मयतत्त्वमद्भुततरं ये सम्प्रदायागतम् ।
ये जैनागमसिन्धुतारणविधौ सत्कर्णधारायिता,
ये ख्याताः क्षितिमण्डले च गणितग्रन्थज्ञरेखाभृतः ॥३०॥

लुम्पाकमुख्यकुमतैकतमःप्रपञ्चे, रोचिष्णुचण्डरुचयः प्रतिभासमानाः ।
श्रीवाचका **विमलहर्ष**वराभिधानास्तेऽत्रादिमा[२] गुणगणेषु कृतावधानाः ॥३१॥ युग्मम्

तथा-

ये संविग्नधुरन्धराः समभवन्नाबालकालादपि,
प्रज्ञावत्स्वपि ये च बन्धुरतराः प्रापुः प्रसिद्धिं पराम् ।
श्री**वीरे** गणधारि**गौतम** इव श्री**हीर**सूरौ गुरौ,
ये राजद्विनयास्तदाननसुधाभानोः[३] पटुर्वाक्सुधाम् ॥३२॥

सत्तर्क-लक्षण-विशालजिनागमादि-शास्त्रावगाहनकलाकुशलाद्वितीयाः ।
श्री**सोम**युग्विजयवाचकनामधेया-स्ते सद्गुणैरपि परैर्ध्रुवमप्रमेयाः ॥३३॥ युग्मं

१. चरणा-मु. ॥ २. वराभिधाना-के ॥ ३. ०दातन० मु. ॥

किञ्च-

ये वैरङ्गिकतादिकैर्वरगुणैः सम्प्राप्तसद्गौरवाः,
सर्वादेयगिरः कलावपि युगे साम्नायजैनागमाः ।
जज्ञुः श्रीवर**वानरर्षि**विबुधास्तच्छिष्यमुख्याश्च ये,
किं तन्मूर्त्तिरिवापरेत्यभिमतास्तैस्तैर्गुणैर्धीमताम् ॥३४॥

प्रज्ञागुणगुरुगेहं[१], परिभावितसूरिशास्त्रवरतत्त्वाः ।
श्रीआनन्दविजयविबुधपुङ्गवास्ते तृतीयास्तु ॥३५॥ युग्मम्

अपि च-

येऽद्वैतस्मृतयः कुशाग्रधिषणाः सल्लक्षणाम्भोधरा-
श्छन्दोऽलङ्कृतिकाव्यवाङ्मयमहाभ्यासैर्भृशं विश्रुताः ।
सिद्धान्तोपनिषत्प्रकाशनपरा विज्ञावतंसायितास्-
तत्तन्नूतनशास्त्रशुद्धिकरणे पारीणतां संश्रिताः ॥३६॥

श्रीकल्याणविजयवरवाचकशिष्येषु मुख्यतां प्राप्ताः ।
श्रीलाभविजयविबुधास्ते तुर्या इह बहूद्युक्ताः ॥३७॥

एतेषां प्रतिभाविशेषविलसत्तीर्थे प्रथामागते,
नानाशास्त्रविचारचारुसलिलापूर्णे चतुर्णामपि ।
स्नाता वाचक-वाच्यदूषणमलान्मुक्ता सुवर्णाञ्चिता,
सत्यश्रीरजनिष्ट शिष्टजनताकाम्यैव वृत्तिः कनी ॥३८॥

श्रीमद्विक्रमभूपतोऽम्बरगुणक्ष्माखण्डदाक्षायणी-
प्राणेशाङ्कितवत्सरे(१६६०)ऽतिरुचिरे पुष्येन्दुभूवासरे ।
राधे शुद्धतिथौ तथा रसमिते **श्रीराजधन्ये** पुरे,
पार्श्वे श्रीविजयादि**सेन**सुगुरोः शुद्धा समग्राऽभवत् ॥३९॥

श्रीशान्तिचन्द्राभिधवाचकेन्द्र-शिष्येष्वनेकेषु मणीयमानाः ।
ध्वस्तान्तरध्वान्तजिनेन्द्रचन्द्र-राद्धान्तरम्यस्मृतिलब्धमानाः ॥४०॥

---

१. प्रज्ञागुरुगुणगेहं-क ॥

अस्यामनेकशो लिखन-शुद्धि-गणनादिविधिषु साहाय्यम् ।
गुरुभक्ताः कृतवन्तः श्रीमन्त**स्तेजचन्द्र**बुधाः ॥४१॥

दैवादिन्द्रातिथितां गतेष्विदंवृत्तिसूत्रधारेषु ।
तन्मन्त्रिनिजमनीषाविशेषमिव वीक्षितुं व्यक्तम् ॥४२॥

तेषामन्तिषदामखिलशिष्यसमुदायमुख्यतां दधताम् ।
गुरुकार्ये धुर्याणां पण्डितवर**रत्नचन्द्रा**णाम् ॥४३॥

श्री**तपगण**पूर्वागिरिसूरैः, श्रीविजय**सेनसूरि**वरैः ।
निजहस्तेन वितीर्णा, प्रवर्त्तनायै प्रसादपरैः ॥४४॥

बहुभिश्च[१] सम्मतेयं कृता तदा विदितसमयतत्त्वार्थैः ।
श्रीविजय**देवसूरि**श्रीवाचकमुख्यगीतार्थैः ॥४५॥

रत्नानीव प्रमेयानि, नानाशास्त्रखनीनि चेत् ।
भूयांसि लिप्सवो यूयं, विज्ञरत्नवणिग्वराः ॥४६॥

श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तेरुपाङ्गस्य सविस्तरा ।
प्रमेयरत्नमञ्जूषा, वृत्तिरेषा तदेक्ष्यताम् ॥४७॥युग्मम् ॥

श्रीशान्तिचन्द्रवाचकशिष्यवरो विबुधरत्नचन्द्रगणिः ।
अस्या बह्वादर्शानलीलिखद् भक्तियुक्तमनाः ॥४८॥

वाच्यमाना श्रूयमाणा, गीतार्थैः श्रावकोत्तमैः ।
शोध्यमाना लेख्यमाना, जीयासुस्ते चिरं भुवि ॥४९॥

तच्छिष्यो **धनचन्द्रः**, स्फुरदुरुधीर्[२]लिपिकलाविधि[३]वितन्द्रः ।
अकरोत्प्रथमादर्शं, सूत्रार्थविवेचने चतुरः ॥५०॥

इति श्रीशान्तिचन्द्रगणिवाचकविरचितायाः प्रमेयरत्नमञ्जूषानाम्न्याः
श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्तेः प्रशस्तिः सम्पूर्णा ॥

●●●

---

१. बहुभिः स्व स० पु. ॥ २. कुशाग्रधी० पु. ॥ ३. बहुव्द्धूक्तः-पु. ॥

परिशिष्ट - १
वृत्तिगत विशेषनाम्नाम् अकारादिसूचिः

	पेज नं.
अकब्बर	२६२
अकब्बरसुरत्राण	१२३
अनादृतदेवा	६
अनुयोगद्वार	१०
अनुयोगद्वारवृत्ति	३४१
अनुयोगद्वारवृत्तिकृता	१८५
अनुयोगद्वारसूत्र	३४१
अनुयोगद्वारसूत्रं	९
अनुयोगद्वारसूत्रोक्तम्-	३७०
अनुयोगद्वार	१३५
अनुयोगद्वारादि	१२८
अभयदेवसूरि	२
अभयदेवसूरि	२
अभयदेवसूरिभिः चतुर्थाङ्गवृत्तौ	२६
अभिचन्द्र-प्रसेनजितोः	१९३
अरिष्ट	२६१
अर्जुन	१७
अवचूर्णौ	५२१
आचाराङ्गभावनाध्ययने	२२४
आदिचरित्रादौ	२९८
आदित्ययशः	२२३
आदिदेवचरित्र-प्रवचनसारोद्धारवृत्त्योः	३४८
आदिनाथचरित्रे	२९४
आवश्यक	२३०
आवश्यकचूर्णि	२०९
आवश्यकचूर्णौ वर्द्धमानसूरिकृतादिचरित्रे	३३८
आवश्यकचूर्णौ	२६९
आवश्यकचूर्णौ	३१५
आवश्यकचूर्णौ	३२०
आवश्यकचूर्णौ	३२४
आवश्यकटिप्पनके	३३७
आवश्यकबृहद्वृत्तिटिप्पनक	३४५

	पेज नं.
आवश्यकवृत्त्याद्यु	२३०
आवश्यकादिषु विमलवाहन	१९१
आवश्यकादौ	१९३
आवश्यका	२३०
उत्तराध्ययन	११
उत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति	१७
उमास्वातिवाचककृतजम्बूद्वीपसमासप्रकरणे	९८
ऋषभ	१९२
ऋषभ	२६१
ऋषभ	२६१
ऋषभकूटं	२४४
ऋषभचरित्र	४२६
ऋषभचरित्राद्	३८७
ऋषभचरित्रादौ	१००
ऋषभचरित्रादौ	४२१
ऋषभचरित्रे	३२०
एकेषां मत	३९१
एतद्वृत्तिर्यथा	७८७
औपपातिक	१९
औपपातिक	१९
औपपातिक	२०५
औपपातिकग्रन्थो	२२२
औपपातिकता	१९
औपपातिकवृत्तौ	१५३
औपपातिक	१८
औपपातिकादौ	३४
औपपातिकोपाङ्गे	१११
कच्छमहाकच्छ	३८२
कल्पपुस्तके	८४
कल्पसूत्रटीकादौ	६२९
केषुचिदादर्शेषु	२५०
कोशलापट्टपतीन्	२२३

	पेज नं.
क्वचित्	२४७
क्वचिद्	२५७
क्षेत्रविचार	११३
क्षेत्रविचार	९६
क्षेत्रविचारवृत्ति	११९
क्षेत्रविचारवृत्त्यादौ	३४५
क्षेत्रविचारस्य वृत्तौ-	१०७
क्षेत्रविचारादि	४६६
क्षेत्रसमासवृत्तौ श्रीमलयगिरिपादाः,	५०२
क्षेमन्धरः	१९३
गन्धहस्ति	१
चक्षुष्मदा	१९१
चतुर्थाङ्गे	२३०
चन्द्रप्रज्ञप्तिवृत्त्यो	८१५
चन्द्रसूरि	२
चमरप्रकरण	५०२
चूर्णिकारो	२६
चूर्णिकृता	३८२
चूर्णौ	४२८
चूर्णौ	७१
जम्बूद्वीपपट्टा	४६८
जम्बूद्वीपपट्टादौ	३२०
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति-प्रश्नव्याकरणाद्यादर्शेष्व	१६१
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र	२९७
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रादर्शेषु	१५१
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्या	४६६
जम्बूद्वीपसमासप्रकरणे	५२१
जम्बूद्वीपादिप्रज्ञप्त	१
जयन्ता	२५९
जिनभवनपञ्चाशकसूत्रवृत्त्यो	२०१
जीवाभिगम	११०
जीवाभिगम	४२०
जीवाभिगम	५०५
जीवाभिगम	५०८
जीवाभिगम	८१

	पेज नं.
जीवाभिगम-चूर्णौ	८४६
जीवाभिगमत	८५
जीवाभिगमतो	५००
जीवाभिगमपाठ	८४२
जीवाभिगमपाठा	८४२
जीवाभिगमवृत्तौ	१४५
जीवाभिगमवृत्तौ	१६१
जीवाभिगमवृत्तौ	१८३
जीवाभिगमवृत्तौ	४२०
जीवाभिगमवृत्त्य	१४९
जीवाभिगमसूत्र	८२
जीवाभिगमसूत्र	८४
जीवाभिगमसूत्रवृत्तौ	५२१
जीवाभिगमसूत्रादर्शे	१५१
जीवाभिगम	५०५
जीवाभिगम	५०८
जीवाभिगमादि	१५२
जीवाभिगमादि	१६६
जीवाभिगमादि	४३
जीवाभिगमादि	६४८
जीवाभिगमादिवृत्ति	३
जीवाभिगमादिषु	१६६
जीवाभिगमादौ	१२२
जीवाभिगमादौ	५०६
जीवाभिगमादौ	५०६
जीवाभिगमादौ	८४६
जीवाभिगमे बृहत्क्षेत्रविचारादौ	५२२
जीवाभिगमे विजयदेवप्रकरणे	५०२
जीवाभिगमे विजयाराजधानीवर्णके	५००
जीवाभिगमे	१५१
जीवाभिगमे	१७०
जीवाभिगमे	१८०
जीवाभिगमे	६४८
जीवाभिगमो	४३९
जीवाभिगमो	५०६

	पेज नं.		पेज नं.
जीवाभिगमो	५१०	नामकोशे	२४०
जीवाभिगमो	८४	निर्युक्त्या	२३०
जीवाभिगमोक्ता	५०३	निशीथचूर्णौ	२७०
जीवाभिगमोक्ता	६२	निशीथभाष्यकारा	७७४
जीवाभिगमोपाङ्गगतानि	५००	निशीथभाष्ये षोडशोद्देशके-	१४०
जीवाभिगमोपाङ्गा	१४१	पञ्चमाङ्गे जमालिचरित्रे	२०४
जीवाभिगमोपाङ्गे	४२०	पञ्चमाङ्गे	२५०
जीवाभिगमोपाङ्गे	५०२	पञ्चवस्तुकसूत्र	५
जीवाभिगमोपाङ्गोक्ता	६४	पद्मचरित्रे	१९१
ज्ञाताधर्मकथाङ्गो	२३७	पद्मनाभा	१७
ज्योतिःशास्त्र	४१९	पद्मनाभा	२५८
ज्योतिष्करण्ड	१२८	पद्मनाभो	२६१
ज्योतिष्करण्डसूत्रकर्ता	७६८	परासरः-	३५३
ज्योतिष्करण्डे	७६८	परिशिष्टपर्वणि-	४४५
ज्योतिष्करण्डोक्त	१२८	पर्युषणाकल्प	२२४
ज्योतिष्करण्डोक्तम्	७९९	पाठान्तरेण	१६५
ज्वलनप्रभ	३३७	पाठान्तरेण	२४७
तण्डुलवैचारिके	१८७	पालकादीनाम्	१४
तत्त्वार्थभाष्य	८३३	पुण्डरीक	२२३
तत्त्वार्थमूलटीकाकृद् गन्धहस्ती	४७७	पूज्यश्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणोपज्ञक्षेत्र-विचारगाथार्द्धस्य वृत्तौ	५२१
तिलका	२५९	प्रज्ञप्ति	१२
तुर्याङ्गे	८०	प्रज्ञप्त्याम्-	२४१
त्रिषष्टीयचरित्रोक्तेः	३९५	प्रज्ञापनास्थानाख्य	१०२
त्रिषष्टीयाजितचरित्रे	३४८	प्रथमोपाङ्गगत	१००
त्रैलोक्यविभ्रमं	२६५	प्रथमोपाङ्गगतो	१००
दशाश्रुतस्कन्धाष्ट	२२४	प्रथमोपाङ्गतः	२६७
दीर्घदन्ता	२५९	प्रमेयरत्नमञ्जूषा	१
द्रोणाचार्य	१७	प्रवचनसारोद्धारबृहद्वृत्त्या	३४५
वर्णकवृत्तौ षष्ठाङ्गे श्रीअभयदेवसूरिभि	२९७	प्रवचनसारोद्धारवृत्ति	३४१
नन्द्या	२५९	प्रवचनसारोद्धारवृत्ते	३४८
नन्दीसूत्रवृत्ति-चूर्णि-सिद्धदण्डिका	२२३	प्रवचनसारोद्धारादिषु	६४२
नाभे	१९१	प्रश्नव्याकरणे	१९९
नाभेः	१९१	प्राकृतलक्षणे	१८
नामकोश	३४	बृहत्क्षेत्रविचारा	४६८
नामकोशादौ	१३२		

	पेज नं.		पेज नं.
बृहत्क्षेत्रविचारा	४७२	राजप्रश्नीया	१०९
ब्रह्मदत्त	३८४	राजप्रश्नीया	१९६
ब्रह्माण्डपुराणं	३७४	राजप्रश्नीयादि	५०५
भगवतीवृत्ति	२५२	राजप्रश्नीये	६३६
भगवतीवृत्तौ	७२३	राजप्रश्नीयोपाङ्गसूत्र	३३३
भगवतीवृत्त्यादौ	६७९	राजप्रश्नीयोपाङ्गे	६६०
भगवत्यादि	७६८	विजयदान	१
भद्रकृत	२६१	वृक्षायुर्वेदो	८
भद्रकृन्ना	२५८	लौकिकपारासरग्रन्थे	३५४
भद्रबाहुस्वामि	११	वराहः-	३१२
भद्रबाहुस्वामिपादाः	२२४	वराहः-	३६०
भरत्त	५२	वराहमिहिरो	३११
भरत्तचक्रि	२६९	वसन्तराजा	१९९
भरत-विशाखिल	५३	वाचनान्तरसूत्र	२६०
भरता	६६०	वाचनान्तरा	२६०
भाष्यकारः	८	वाचनान्तरे	१३५
मञ्चाः क्रोशन्ती	८	वालभ्यः,	७६८
मण्डन	३०९	वालभ्यवाचना	१२८
मरुदेवा	२२३	वास्तुसारो	३०९
मरुदेव्या	१९१	विमलवाहन	१९१
मलयगिरि	२	विमलवाहन-चक्षुष्मतोः	१९३
मलयगिरि	२	विमलवाहना	१९३
मलयगिरि	३	विमलवाहना	२६१
मलयगिरि	३४५	विवेकविलासे	१५६
मलयगिरिः	१	विशेषणवत्यां	५७१
मलयगिरीयक्षेत्रसमासवृत्तौ	७०४	विशेषावश्यका	१६
मलयगिरीयावश्यकवृत्तौ	१६५	वीर	२००
माथुरवाचना	७६८	वीर	२११
मुपासकदशासु आनन्द	२४	वीरचरित्रे	२४८
यारिष्ठ	२५९	वीरचरित्रे	२५९
योगविधानसामाचार्या	५	वीरदेवे	३३७
रत्नशेखरसूरिभिः स्वोपज्ञक्षेत्रविचारे	५७९	वृत्तिकारेण	३४
रपरमता	३९१	वृत्तिकारेण	९१
राजप्रश्नीयसूत्र-वृत्त्या	९९	वृत्तौ	१५१
राजप्रश्नीयसूर्याभविमानवर्णके	५००	वृत्तौ	२०१

	पेज नं.
वृत्तौ	८४
शत्रुञ्जयगिरि	२४४
शत्रुञ्जयमाहात्म्यादौ	४२६
शत्रुञ्जयादिकरमोचन	१२३
शान्तिचरित्रे श्रीमुनिदेवसूरिकृते	६५२
शाम्बस्य	१४
शालिहोत्र	३५४
श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रचूर्णिकारा	५२२
श्राद्धविधिवृत्तौ	१४४
श्रीअभयदेवसूरिपादा	७२३
श्रीअभयदेवसूरिपादैः-	
पञ्चमाङ्गषष्ठशतकसप्तमोद्देशके	१८३
श्रीआचाराङ्गद्वितीयश्रुतस्कन्धगतभावनाख्याध्ययन	२१८
श्रीउत्तराध्ययनबृहद्वृत्ति	१०
श्रीउमास्वातिकृते जम्बूद्वीपसमासे	११३
श्रीउमास्वातिवाचकपादाः	५२१
श्रीऋषभ	१९१
श्रीऋषभचरित्रे	४०१
श्रीऋषभदेवचरित्र	१००
श्रीगुणरत्नसूरिपादाः	५२१
श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमण	४४८
श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणपूज्यैरपि	५७१
श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणप्रणीतक्षेत्रविचारसूत्रवृत्त्यादौ	६७९
श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणप्रणीतक्षेत्रसमाससूत्रे	१२१
श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणादि	६८८
श्रीजीवाभिगमोपाङ्गसूत्रा	८४२
श्रीज्ञाताधर्मकथाङ्गवृत्त्यादौ	१२२
श्रीतपागच्छनायकश्रीदेवेन्द्रसूरिशिष्यश्रीधर्मघोषसूरिपादैर्भाष्यवृत्तौ	१११
श्रीभगवत्यङ्गवृत्तौ	५०२
श्रीमलयगिरिकृतबृहत्क्षेत्रविचारवृत्त्यादि	६८८
श्रीमलयगिरिकृतबृहत्क्षेत्रसमासवृत्त्या	९९
श्रीमलयगिरिपादा	४४८
श्रीमलयगिरिपादास्तु क्षेत्रविचारबृहद्वृत्तौ	१०४
श्रीमलयगिरिपादैः	६४८
श्रीमलयगिरिपादैः सूर्यप्रज्ञप्तिटीकायां द्वितीय-प्राभृतप्राभृते	८६०

	पेज नं.
श्रीमलयगिरिपादैः सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तौ	७२६
श्रीमलयगिरिपादैरपि श्रीबृहत्सङ्ग्रहणिवृत्तौ	१८३
श्रीमलयगिरिपादैर्जीवाभिगम-वृत्ता	८४२
श्रीमलयगिरिसूरि	११६
श्रीमलयगिरिसूरिभिः क्षेत्रसमासवृत्तौ	१२२
श्रीमलयगिर्य्यादिभि	६८८
श्रीरत्नशेखरसूरयस्तु स्वक्षेत्रसमासे	६८८
श्रीरत्नशेखरसूरिभिः स्वोपज्ञक्षेत्रसमासवृत्तौ	६८८
श्रीराजप्रश्नीयादि	१९५
श्रीशान्तिनाथचरित्रे	२९३
श्रीशीलाङ्काचार्ये	२
श्रीसकलचन्द्रगणि	१२३
श्रीसमवायाङ्गे	१११
श्रीसोमतिलकसूरिकृत-"सिरिनिलयह्ल	११३
श्रीसोमतिलकसूरिकृतनव्यबृहत्क्षेत्रविचारस	५२१
श्रीस्थानाङ्गे चतुर्थाध्ययने	६३५
श्रीहरिभद्रसूरिभि	६८८
श्रीहेमचन्द्रसूरयः	४४५
श्रीहेमसूरयस्तु ऋषभचरित्रे	१९३
श्रीहेमसूरयो देश्याम्	१७७
श्रीहेमसूरिकृतादिदेवचरित्रे	१९५
श्रीहेमसूरिपादाः	१८
श्रीहेमाचार्य	१००
श्रीहेमाचार्यकृतऋषभचरित्रा	२०८
श्रीहेमाचार्यकृतऋषभचरित्रे (१।२।९५३)	२००
श्रीहेमाचार्यकृतऋषभचरित्रे-	१८२
श्रीहेमाचार्यकृते ऋषभचरित्रे-	३६९
संग्रहणी	६०
सकलचन्द्रगणि	२६२
सकलचन्द्रा	१
सगरसुता	३३७
सङ्ग्रहणीगाथा	६८८
सङ्ग्रहण्यां	६८८
सन्निहिता	२९१
समवायाङ्ग-तीर्थोद्धारप्रकीर्णका	२६९

	पेज नं.
समवायाङ्गसूत्रे	९१
समवायाङ्गसूर्यप्रज्ञप्तिचन्द्रप्रज्ञप्ति	७०३
समवायाङ्गा	१९६
समवायाङ्गे अष्टत्रिंशत्तमे समवाये	५९४
समवायाङ्गे	२६१
समवायाङ्गे	५९६
समवायाङ्गे	७१३
समवायाङ्गे	७८७
समवायाङ्गे	७८९
सर्वानुभूती	३३७
सिंहलद्वीपादि:	११
सीमङ्करा	२६१
सुदर्शना	६
सुनक्षत्र	३३७
सुमङ्गला	१६४
सुमति	२६१
सुमति	२६१
सुमति	२६१
सुमति	२६१
सुमतिं	१९२
सुमत्या	१९१
सुमत्या	२६१
सूत्रकृताङ्गचूर्णिकृत्	५६२
सूत्रे चूर्णौ	३८७
सूर्यप्रज्ञप्ति	८१५
सूर्यप्रज्ञप्तिवृत्तौ	७१६
स्थानाङ्ग	२०१
स्थानाङ्ग	२६१
स्थानाङ्ग	२६१
स्थानाङ्गचन्द्रप्रज्ञप्त्यादावत्र	७७४
स्थानाङ्ग-प्रवचनसारोद्धारादिवृत्ति	३९६
स्थानाङ्गवृत्ति	३४१
स्थानाङ्गा	६४२
स्थानाङ्गादि	२२९
स्थानाङ्गे	१९४
स्थानाङ्गे	२३९
स्थानाङ्गे	६०९
स्वरप्राभृते	५३
स्वावश्यकवृत्तौ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति	६४८
स्वोपज्ञक्षेत्रविचारसूत्रे-	४४८
स्वोपज्ञक्षेत्रविचारे रत्नशेखरसूरिवचो	५३१
हयशास्त्र	३५८
हारिभद्र्यामावश्यकवृत्तौ-	१९१
हीरविजयसूरी	२
हीरविजयसूरी	२६२
हीरविजया	१
हेमचन्द्रसूरि	२९३
हेमचन्द्रसूरि	२९४
हेमचन्द्रसूरिभिरादिनाथचरित्रे	३८२
हेमव्याकरणा	१४९

●●●

परिशिष्ट – २
वृत्तिगत साक्षीपाठानाम् अकारादिसूचिः

	पेज नं.
अ: स्वल्पार्थेऽप्यभावेऽपी (अनेकार्थसं.७।१)	३४०
अङ्गुलशतार्द्धमुत्तम,	१९८
अङ्गुलशतार्द्धमुत्तम,	२६०
अञ्जनादीनां गिरौ (श्रीसिद्ध० अ० ३ पा० २ सू०)	५७६
अट्टदुहट्ठियचित्ता, (औप० सू० ४)	१९
अट्ठसय इगूणवीसा, (ज्यो. क. गा. ३२३)	८०५
अडसयरि महणईओ, (क्षेत्र. स. गा. ६४)	६८८
अणुजोजणमणुओगो,	६
अणेगखम्भसयसण्णिविट्ठाओ (जीवा. ३।३७२)	५०३
अत: समृद्ध्यादौ वा (श्रीसि० ८-१-४४)	५६
अत: समृद्ध्यादौ वे (श्रीसि० ८-१-४४)	१६७
अतिकार्श्यमतिस्थौल्यं,	१९६
अतोऽनेकस्वरा (श्रीसि० ७-२-६)	५८
अतोऽनेकस्वराद् (श्रीसिद्ध० अ० ७ पा० २ सू० ६)	४५१
अतोऽनेकस्वराद्	६८
अत्थि लोए, अत्थि अलोए, (औप०सू० ७१)	१९
अत्थे	५९६
अदुत्तरं च णं गोअमा ! (जीवा. ३।३५०)	८४
अधस्तने ज्योतिष्कतले	८३२
अधिकं तत्संख्यमस्मिन् (श्रीसिद्ध० ७-१-१५४)	२६
अनजिरादिबहुस्वरशरादीनां मतौ (श्रीसिद्ध० अ० ३ पा० २ सू० ७८)	५४५
अनजिरे (श्रीसि० अ० ३ पा० २ सू० ७८)	५४८
अनुनदि शुश्रुविरे चिरं रुतानि	२७५
अनुपयोगो द्रव्यम्	७
अनेक-जातीयतरुसमूहो वनखण्ड	८५८
अन्त:क्लिन्नस्य (त्रिषष्टि. १।६।७३४)	४३०
अन्नन्नसरविसेसे,	५१
अन्वयोध्यमिह क्षेत्र	२६६
अपरान्तगतोऽलिन्द:, (बृहत्संहिता ५३।३२-३५-३४)	३१३
अपाच्यां च प्रतीच्यां च,	२६६

	पेज नं.
अप्पेगइआ चेलुक्खेवं	६६७
अप्पेगइआ पंडगवणं (जीवा. ३।४४७)	६५९
अप्पेगइया दोमासपरिआया	२२२
अप्रतिषिद्धालिन्दं, (बृहत्संहिता ५३।३२-३५-३१)	३१३
अब्भंतरे अभिई	७८९
अभिइस्स नव मुहुत्ता, (ज्यो. क. गा. ३२०)	८०५
अभिजिआइआ णं णव (समवायांगे सू. ९-२-२)	७८९
अभिषिक्तो महीपाल:, (आरम्भसिद्धि ४०२)	४१९
अमृतं भोजनस्यार्द्धे,	१९७
अयणगए तिहिरासी, (ज्यो. क. गा. ३७०)	८२३
अर्द्धमतोऽष्टांशोनं,	१९७
अर्धाभ्यधिके रूपं देय	९६
अभ्यर्च्य पुष्प-गन्धाद्यैर्बलिं (वास्तु. श्लो. ७६)	३१०
अर्यमाऽऽद्यास्तु वस्वंशा:, (वास्तु. श्लो. ७५)	३१०
अवट्ठिअकेस-मंसु-रोम-णहे (समवायांगे सू.३४)	११०
अवट्ठि-असुविभत्तचित्तमंसू (औप. सू.१९)	१११
अवार्यवीर्यो ३१ गाम्भीर्यौ	२७१
अविलम्बितदानगुणात्,	२७५
अविवक्खिऊण जगइं,	५५४
अव्यङ्गो १ लक्षणापूर्णो	२७१
अष्टभिर्यवैरङ्गुल	२७
अष्टोत्तरसहस्रं तु,	२६५
अष्टोत्तरसहस्रेण,	२६५
अष्टोत्तरसहस्रेण,	२६५
असि-लट्ठि-कुंत-चावे,	४०२
असुर: २२ शोष २३ यक्ष्माणौ (वास्तु. श्लो. ६७)	३०९
अहवा जमत्थओ थोव- (विशे०आ०भा०-८४२)	६
अहं ममेति संसारो,	२१२
अहयं च दसाराण	२३९
अहे पुक्खरकण्णिआसंठाणसंठिया (प्रज्ञा. २ सू. ४६)	१०२
अहो ! विशोभा (त्रिषष्टि. १।६।७२२)	४२९
अहोरात्रेण निर्माय,	२६६
आगस्यल्पे नीतिमाद्यां, (त्रिश.१।२।१७९)	१९३
आग्नेय्यां भरतस्येव,	२६४
आचार्योपदेशजं शिल्पम्,	१९५

	पेज नं.
आदर्शवृत्तौ पर्यन्तावनतप्रदेशौ	७१
आदौ तावन्मधुरं,	२६९
आपो ३३ ऽपवत्सा ३४ वीशे (वास्तु. श्लो. ६८)	३१०
आयामो विक्खंभो सट्ठिं, (बृ. क्षेत्रस. १।२१८)	४४८
आर्षे तृतीयाऽपि दृश्यते (सि० ८-३-१३७)	१८
आसिद्धि कर्मोद्योगी	२७१
इंदग्गि-धूमकेऊ,	८४९
इक्कत्तीसइभागा तिहिए, (ज्यो. क. गा. ३७३)	८२३
इगुणट्ठं पोट्ठवया तिसु, (ज्यो. क. गा. ३२१)	८०५
इच्छापुण्णिमगुणिओ, (ज्यो. क. गा. ३२५)	८०६
इत्थं व्यवस्थया चेत: (श्राद्धविधि रत्नसारकथा श्लो. ७२२)	५१२
इत्यूचुस्ते वयं गङ्गा (त्रिषष्टि २।४।२८०)	३९५
इदं शरीरं कर्पूर-(त्रिषष्टि. १।६।७३५)	४३०
इह स्कन्दिला-चार्यप्रवृ(तिप)त्तौ (ज्यो. क. गा. ७१)	१२१
इहाङ्गुलं-प्रमाणाङ्गुल	३४१
ईश ऐश्वर्ये (धा.पा.१११६)	८३
ईश: १ पर्जन्यो २ जये ३ न्दौ ४,	३०९
ईशकोणादितो बाह्ये, (वास्तु. श्लो. ७१)	३१०
ईसिमण्णोण्णमसंपत्ता (राजप्र. ४०)	६८
ईहामिग-उसभ-तुरग- (जीवा. ३।३००)	६४
उग्गा भोगा रायन्न (तित्थोगालि. २८९)	१८९
उच्चत्तेणं णराण थोवोणमूसिआओ	१८०
उणादयोऽव्युत्पन्नानि नामानी	१४५
उतोऽन्मुकुलादिषु (श्रीसिद्ध० अ० ८ पा० १ सू० १०७)	२७५
उत्तर:	५९६
उत्तरअयणे हाणी, (ज्यो. क. गा. ३७४)	८२३
उद्घाटितं गुहाद्वारं, (त्रिषष्टि. २।४।१८९)	३४८
उद्देसे निद्देसे अ (अनु.द्वा.-१३३ वि.आ.भा. ९७३-१४८४)	१२
उपयोगो भावनिक्षेप: (अनु.द्वा.सू.वृ.पृ.१४)	८
उपायार्जितराज्यश्री	२७१
ऋधूच् वृद्धौ	१८
एअं पुणव्वसुस्स य, (ज्यो. क. गा. ३१९)	८०५
एअमवहाररासिं, (ज्यो. क. गा. ३१६)	८०३
एआइं सोहइत्ता, (ज्यो. क. गा. ३२४)	८०६
एकजातीयतरुसमूहो वन	८५८

	पेज नं.
एकाशीतिविभागे दश (बृहत्संहिता ५३।४२)	३११
एकेन गुणितं तदेव भवती	७१७
एकेन गुणितं तदेव भवती	८०४
एकेन गुणितं तदेव भवती	८०६
एकेन गुणितं तदेव भवती	८२४
एकेन च गुणितं तदेव भवति	८०७
एकेन च गुणितं तदेव भवती	७१३
एकेभैकरथास्त्र्यश्वा:, (अभिधानचि. ३।४१२)	१९८
एकैका च श्रेणिरुभयपार्श्ववर्त्तिभ्यां	९९
एगजाइएहिं रुक्खेहिं वणं, (जीवा.हा.टी. ?)	३७
एगमेगस्स णं रण्णो (अनु. सू. ३५८)	३४१
एगूणवीसगस्स उ, (पञ्चवस्तुके ८२-८८)	५
एगे जिए जिआ पंच	८५
एतानि च मधुरतृण (अनु.टी.सू. ३५८)	३४१
एतानि चाभिजिद्वर्जानि	७९७
एतानि सप्तैकेन्द्रियरत्नानि (प्रवचनसारो.टी. १२१७)	३४१
एतेषां ऋषभकूटाना-मुपरि (क्षेत्रस. वृत्तौ)	१२२
एवं च सइ नराणं,	७१६
एवं शेषकूटान्यपि (बृ. क्षेत्र. वृ.)	११६
एवामेव सपुव्वा-ऽवरेणं	८६०
ऐशान्यां देवगृहं, (लोकप्रकाश ३१/४०८बृ. ५३।११६)	३१२
ओसण्णं धम्मसन्नपब्भट्ठा	२४१
कत्थइ देसग्गहणं, (तुला विशे.भा. ३८८)	१४१
कत्थइ देसग्गहणं, (विशेषा० भा० ३८८)	४३
कम्मो निरंसयाए, (ज्योतिष्क क. गा. ९५)	७७४
कयरे आगच्छइ दित्तरूवे (उत्त० १२-६)	१९
कर करिअ राय अग्गल,	८४९
करिकूड-कुण्ड-नइ-दह-(लघुक्षेत्रसमास. गा. ७८)	५७९
कर्माङ्गुलं यवाष्टक	१९७
कलाकलापकुशला:,	२६६
कलासु कृतकर्मा ८	२७१
कल्पद्रुमैर्वृता: सर्वे	२६५
कहि णं भंते ! जंबुद्दीवस्स (जीवा. ३।५६६-५६९)	८५
कहि णं भंते ! विजयस्स (जीवा. ३।३५१-५६५)	८४
कारणमेव तदन्त्यं,	१३०

	पेज नं.
कालाध्वनोर्व्याप्तौ (श्रीसिद्ध० अ० २ पा० २ सू० ४२)	५५३
किण्हे किण्होभासे (औप० सू० ४-७ जीवाभिगम सू. ३/२७३-२७६)	३७
किमन्यान्यपि (त्रिषष्टि. १।६।७२३)	४२९
कियत्कालव्यतिक्रान्तौ, (श्राद्धविधि रत्नसारकथा श्लो. ७१६)	५११
कुंभार १ पट्टइल्ला	२८६
कुक्कुटज(स्तुऋजु)	१९७
कृद् बहुल (सि.हे. ५।१।२)	३४६
कृद्बहुल (श्रीसिद्ध० ६-१-११५ ।१-२)	५९६
कृद्बहुल (श्रीसिद्ध० अ० ५ पा० १ सू० २)	४९२
कोह-मय-माय-लोभा, (तंडुलवे० ५१)	१८६
क्रोशमेकमूर्ध्वमुच्चैस्त्वेन	५२१
क्वचित् सिंहादीनां वर्णनं दृश्यते, (उ. र. सू. १९८)	८४२
खण्डा जोअणे	६८८
खुरैः खनेद् पृथिवीमश्वो लोकोत्तरः स्मृतः	३५७
गणधरकयमंगसुअं,	१०
गन्धर्वो १४ भृङ्गराजश्च १५,	३०९
गर्भिणीवल्लिर्वास्तुप्ररूढा	३१२
गाउअमेगं पण्णरस, (१ गा० १५१५ ध. ६० अं०)	६७९
गुरुचित्तायत्ताइं (विशे.आ.भा.-९३१)	८
गृहमध्ये हस्तमितं, (बृहत्संहिता ५३।९०)	३११
घञ्युपसर्गस्य वे (श्रीसिद्ध० अ० ३ पा० २ सू० ८६)	४९२
घटोऽयमिति नामैतत्, (उ.बृ.वृ.)	१७
घणपडिहत्थं गयणं,	५६
घम्माइ लोगमज्झा् जोअणअस्सं	५९६
चंदस्स जो विसेसो, (ज्योतिष्क. क. गा. ९२)	७७१
चउदसवासस्स तहा, (पञ्चव. ८६)	५
चउदससहस्सगुणिआ (क्षेत्रसमास गा. २४)	६८८
चउरंगुलो मणी पुण, (प्रवचनसारो.गा. १२१७)	३४१
चक्क-मुसलजोही	३१५
चतुःपञ्च चतुर्वह्नि	१५६
चतुःषष्ट्या पदैर्वास्तु,	३०९
चतुःषष्टिपदैर्वास्तु, (वास्तु. श्लो. ७२)	३१०
चतुरंगुलो दुअंगुलपिहुलो अ	३३९
चतुरस्रश्चा त्र्यस्रश्चा,	२६४
चतुर्दिक्षु व्यराजन्त,	२६५

	पेज नं.
चतुष्पथप्रतिबद्धा,	२६५
चत्तारि लोगे समा पण्णत्ता, (स्थानांग ४।३।३२८)	६३५
चत्वारि तु ततो गत्वा,	८३१
चत्वारि मधुरतृणफलान्येकः (अनु.टी.सू. ३५८)	३४१
चन्द्रमण्डले केवइअं (सू. ७।७३)	७४६
चम्मयर १ जंतपीलग	२८६
चरणपडिवत्तिहेऊ (ओघनिर्युक्ति भाष्य-७)	३
चर्मरत्ने च सुक्षेत्र, (त्रि.श.पु-१।४।४३४)	३६९
चित्ता रयणकरंडय,	११३
चित्रं श्रेणिक ! ते बाणा,	१७८
छसयरि कूडेसु तहा	५३१
छायायां हो ऽकान्तौ वा (श्रीसिद्धहै० अ० ८ पा० १ सू० २४९)	३७७
छावट्ठी य मुहुत्ता, (ज्यो. क. गा. ३१५)	८०२
जं जह सुत्ते भणिअं	४४५
जं नेइ जया रत्तिं,	८१७
जं नेच्छिअकामगामिणो	१७०
जं रिक्खं जावइए, (ज्यो. क. गा. १६२)	७९८
जंबुद्दीवे णं भंते !	१२
जइ होइ विसमलद्धं, (ज्यो. क. गा. ३६९)	८२३
जघन्य-मध्य-श्रेष्ठा	३५४
जम्बुद्दीवे दीवे (समवायाङ्गे सू. २७, १-२)	७८७
जम्बूद्वीपाधिकारे एताश्च	५४६
जम्बूद्वीपे न धातकीखण्डादौ	७८७
जया णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे	७६४
जया णं भन्ते ! जम्बुद्दीवे	७६८
जया णं सूरिए	७१३
जलाल्लब्धात्मलाभा	४१२
जस्स जावइआ गणहरा	२१९
जह जह समए समए,	७१६
जह जीवा बज्झंती, (औप० सू० ४)	१९
जह रागेण कडाणं, (औप० सू० ४)	१९
जहा से चंदप्पभा (जीवा. ३।५८६)	१४१
जातिकालसुखादेर्नवा (सिद्ध० अ० ३ पा० १-सू० १५२)	३६७
जावइया सलिलाओ (बृ.क्षेत्र. २३०-१)	५४६
जीवे सिंहस्थे धन्विमीन	७७४

	पेज नं.
जेट्ठो वच्चइ मूलेण,	७७५
जो जं पसत्थमत्थं,	५
ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य,	२२५
ज्योतिर्वह्नि-दिनेशयोः (अनेकार्थसं० २।५६६)	१४५
ज्योतिष्कनायकौ पुष्पदन्तौ	६५२
टुडुभृञ् धारण-पोषणयो	८३
टुमस्जोंत् शुद्धौ (सि.हे.धा.५-३८)	२७८
णक्खत्तसूरजोगो, (ज्यो. क. गा. १७२)	७९९
णट्ठंमि उ छाउमत्थिए णाणे	२१६
णहं णहेण हीणाओ	१५३
णिज् बहुलं नाम्नः कृगादिषु (श्रीसिद्ध० अ० ३ पा० ४ सू० ४२)	५१५
णिवेत्त्यासश्रथघट्टवन्देरनः (श्रीसिद्ध० अ० ५ पा० ३ सू० १११)	५१५
तंबोलिआ ९ य एए,	२८६
तए णं सा महइमहल्लिया	२०
तच्चं पि वेउव्विअसमुग्घाएणं	६१८
ततस्तयोर्मिथस्त्यक्त (श्राद्धविधि रत्नसारकथा श्लो. ७१७)	५११
ततो द्वादशयोजन्यां, (त्रिषष्टि. ५।५।१३३-४)	२९३
ततो मागधतीर्थाभि (त्रिषष्टि. ५।५।१३३-४)	२९३
तत्थ णं जे ते किण्हा (जीवा.३।२७८) इति ।	४३
तत्थ णं जे ते नीलगा (जीवाभिगमे ३।२७९ राजप्र. सू.२६)	४४
तत्थ णं जे ते लोहिअगा (जीवाभि० ३।२८० राजप्र. सू.२७)	४५
तत्थ णं जे ते सुक्किल्ला (जीवाभि० ३।२८२ राजप्र. सू.२९)	४६
तत्थ णं जे ते हालिद्दा (जीवाभि० ३।२८१ राजप्र. सू.२८)	४६
तत्थ य संखिज्जकाल-वासाउए (आव. चू. पत्र १८२)	२६९
तत्थ रवी दसजोअण	७६४
तत्थ वेणुदेवे वेणुदाली अ वसइ	५६२
तत्पुर्यामृषभः स्वामी,	२६६
तत्र च प्रेक्षमाणस्य, (त्रिषष्टि. १।६।७१९)	४२९
तत्रापि नाम नाकार (उ.बृ.वृ.)	१७
तत्रैवमभवन् शैलाः,	२६६
तथा षष्टिश्चतुःषष्टि	३५४
तदङ्गुल्या गलितम (त्रिषष्टि. १।६।७२०)	४२९
तदा च देवपूजार्थ (परिशिष्ट पर्व १२।३७०)	४४५
तद्वप्रान्तश्चतुर्दिक्षु,	२६५
तद्वर्गं संशोध्य,	२७

	पेज नं.
तनूयी विस्तारे	१४७
तनेस्तड-तड्ड-तड्डव-विरल्लाः (सि.हे. ८।४।१३७)	१४७
तन्मध्ये पद्मवरवेदिको (क्षेत्रविचार बृ.वृ.)	१०४
तयोरिवोर्वीश्वरयो (श्राद्धविधि रत्नसारकथा श्लो. ७१२)	५११
तस्यान्तराऽऽदिदेवस्य,	२६५
तस्स णं एगमेगा कोडी (अनुयोगद्वा.सू. ३५८)	३४२
तस्स णं दिव्वस्स जाणविमाणस्स	६३८
तस्स णं देवसयणिज्जस्स (जीवा.३।१३८)	४३९
तस्स णं माणवगचेइअस्स (जीवा. ३।४०२)	५१०
तस्स णं वणसंडस्स (जीवा. ३।२९६)	६१
तस्स णं वणसंडस्स (जीवाभि० ३।२८६)	५५
तस्स णं वणसंडस्स (जीवाभि० ३।२९४)	६०
तस्स णं सिद्धायतणस्स (राजप्र० सूत्र २५२)	१०९
तस्स णं सिद्धाययणस्स (जीवा. ३।४१३)	१०९
तस्स णं सीहासणस्स (जीवा. ३।३३९-४५)	८०
तस्स फल-जोग-मंगल (विशेषावश्यक-गा० २)	३
ताओ णं पउमलयाओ (जीवा. ३।३९०)	५०७
ताणुवरि चेइहरा,	१०७
तात्स्थ्यात् तद्व्यपदेश	६५६
तात्स्थ्यात् तद्व्यपदेश	६८४
तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेशः	२९१
तामेव दिसं पडिगया	२०
तारकापटलाद् गत्वा,	८३१
तावतीभिर्जनपदाग्रणी	४०१
तासि णं (खुड्डाणं) खुड्डियाणं (जीवाभि० ३।२९२)	५९
तासि णं खुड्डाणं खुड्डियाणं (जीवाभि० ३।२८७)	५७
तासि णं जिणपडिमाणं (जीवा. ३।४१५-७)	११०
तासि णं णन्दापुक्खरिणीणं (जीवा. ३।३९६)	५०८
तासि णं मणिपेढिआणं (जीवा. २।१३७)	५०६
तासु णं मणोगुलिआसु (जीवा. ३।३९७)	५०९
तिण्णेव कंसनामा,	८४९
तिक्खरिसपरियायस्स उ, (पञ्चव. ८२)	४
तीसे णं समाए तत्थ (जीवा. ३।५८७)	१४२
तीसे णं समाए तत्थ (जीवा. ३।५८८)	१४३
तीसे णं समाए तत्थ (जीवा. ३।५८९)	१४४

	पेज नं.
तीसे णं समाए तत्थ (जीवा. ३।५९०)	१४५
तीसे णं समाए तत्थ (जीवा. ३।५९१)	१४६
तीसे णं समाए तत्थ (जीवा. ३।५९२)	१४७
तीसे णं समाए तत्थ (जीवा. ३।५९३)	१४८
तीसे णं समाए तत्थ २ (जीवा. ३।५९४)	१५०
तीसे णं समाए तत्थ तत्थ (जीवा. ३।५९५)	१५१
तुटिकमन्त:पुरमुपदिश्यते	८४६
तृणहार-काष्ठहार- (त्रि. १।२।९५९)	१९५
तृतीये कूटे खण्डप्रपात (बृ. क्षे.)	११६
ते णं चेइअरुक्खा (जीवा. ३।३८८)	५०७
ते णं तिलया जाव (जीवा. ३।३८९)	५०७
ते णं तिलया जाव (जीवा. ३।३९०)	५०७
ते णं सिद्धाययणा (तुला. जीवा. ३।४१२)	५१३
ते दसयोजणपिहुलेहिं	१००
ते पासाया कोसं समूसिआ	५२१
ते लुग्वा (श्रीसिद्ध० अ० ३ पा० २ सू० १०८)	५६७
ते लुग्वा (सिद्ध० अ० ३ पा० २ सू० १०८)	२७०
ते लुग्वे (सिद्ध० अ० ३ पा० २ सू० १०८)	२०८
तेजसां हि न वय: समीक्ष्यते	२६९
तेणं कालेणं तेणं समएणं (कल्पसूत्रे)	२२४
तेणं भंते ! किं आणंदेणं (उपासकदसा)	२४
तेल्ले कोट्ठ समुग्गे,	७९
तेषां वैताढ्यकूटानामुपरि	१०८
तेसि णं चेइअरुक्खाणं (जीवा. ३।३८७)	५०६
तेसि णं चेइअरुक्खाणं (जीवा. ३।३९१)	५०७
तेसि णं णागदंतगाण (जीवा. ३।३०२)	६८
तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं (जीवाभि० ३।२८८)	५७
तेसि णं तोरणाणं (जीवा. ३।३२८)	७८
तेसि णं तोरणाणं (जीवा. ३।३२९)	७८
तेसि णं तोरणाणं (जीवा. ३।३३०)	७८
तेसि णं तोरणाणं (जीवा. ३।३३१)	७८
तेसि णं तोरणाणं (जीवा. ३।३३२)	७८
तेसि णं तोरणाणं (जीवा. ३।३३३)	७९
तेसि णं तोरणाणं (जीवाभि० ३।२९०)	५८
तेसि णं तोरणाणं उप्पिं (जीवाभि० ३।२९१)	५९

	पेज नं.
तेसि णं तोरणाणं उप्पिं (जीवा. ३।२८९)	५८
तेसि णं तोरणाणं पुरओ (जीवा. ३।३१८-९)	७४
तेसि णं तोरणाणं पुरओ (जीवा. ३।३२०)	७५
तेसि णं तोरणाणं पुरओ (जीवा. ३।३२१)	७५
तेसि णं तोरणाणं पुरओ (जीवा. ३।३२२)	७५
तेसि णं तोरणाणं पुरओ (जीवा. ३।३२३)	७६
तेसि णं तोरणाणं पुरओ (जीवा. ३।३२४)	७६
तेसि णं तोरणाणं पुरओ (जीवा. ३।३२५)	७६
तेसि णं तोरणाणं पुरओ (जीवा. ३।३२६)	७७
तेसि णं तोरणाणं पुरओ (जीवा. ३।३२७)	७७
तेसि णं तोरणाणं पुरओ (जीवा. ३।३३४)	७९
तेसि णं पकंठगाणं उवरिं (जीवा. ३।३०७)	७१
तेसि णं पासायवर्डिसगाणं (जीवा. ३।३०९)	७२
तेसि णं पासायवर्डिसगाणं (जीवा. ३।३०८)	७२
तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं (जीवा. ३।३११)	७३
तेसि णं भंते ! मणीणं (जीवाभि० ३।२८३ राजप्र. सू.३०)	४७
तेसि णं भंते ! मणीणं (जीवाभि० ३।२८५)	४९
तेसि णं भंते ! मणीणं तणाण (जीवाभि० ३।२८४ राजप्र. २८४)	४८
तेसि णं महिंदज्झयाणं (जीवा. ३।३९५)	५०८
तेसि णं मुहमण्डवाणं (जीवा. ३।३७४-७)	५०५
तेसि णं विजयदूसाणं (जीवा. ३।३१३)	७४
तेसि णं सीहासणाणं (जीवा. ३।३१२)	७४
तेसु णं उप्पायपव्वएसुं (जीवाभि० ३।२९३)	६०
तेसु णं जाइमंडवगेसु (जीवा. ३।२९७)	६१
तेसु णं णागदंतएसु बहवे (जीवा. ३।३०२)	६७
तेसु णं रययामएसु (जीवा. ३।३२६)	७७
त्रिभूमाद्या: सप्तभूमं,	२६४
दक्खिणवुड्ढी दुपया, (ज्यो. क. गा. ३७१)	८२३
दक्षिणस्यां क्षत्रियाणां,	२६५
दक्षिणस्यां वरदामतीर्थं (त्रिषष्टि. १।४।१५५)	३०५
दक्षिणस्यां विमाना ये, (श्राद्धविधि रत्नसारकथा श्लो. ७१८)	५११
दक्षिणावर्त्त: स्वस्तिक:	१५५
दण्ड: प्रकाशे प्रासादे, (वि.वि. १/१७९)	३१३
दवदवस्स न गच्छिज्जा (दसवै. ५।१।१४)	४३१
द्रव्यं पर्यायवियुतं, (हरिवंशपुराण ३।१०८)	३६

	पेज नं.
दस वाससहस्साइं (बृ.सं. प्रव.सा. ११८७)	१८३
दस-कप्प-व्ववहारा, (पञ्चव. ८३)	४
दसवासस्स विवाहो, (पञ्चव. ८४)	४
दारक्कमोऽयमेव उ, (वि०आ०भा०-९१०)	७
दाहिणड्डभरहस्स णं (समवायांगे सू. १२२)	९१
दिश्यैन्द्र्यां सर्वतोभद्रं,	२६४
दिश्यैशान्यां सप्तभूमं,	२६४
दुन्नि उ दिवड्डखित्ते,	७९७
दुश्चिकित्से हि	१९३
देवं-नाग-सुवण्ण-किंनर (श्रुतस्तव गा.४)	३९१
देवकुरु-उत्तरकुरुअकम्म (जीवा. २।३३)	१८०
देशदर्शनाद्देशस्मरण	४५५
दो असईओ पसई, दो पसईओ (अनु.सू. ३१८)	३७०
द्वद्वान्ते श्रूयमाणं पदं	१६९
द्वादशयोजनायामा,	२६४
द्वारालिन्दोऽन्तगतः, (बृहत्संहिता ५३।३२-३५-३३)	३१३
द्वितीय-काण्डविभागोऽष्ट (समवायांग सूत्र ३८ वृत्तौ)	५९४
द्विपदा मध्यकोणेऽष्टौ, (वास्तु. श्लो. ७४)	३१०
द्विर्बद्धं सुबद्ध	८७
द्वि-षड्ग्रहे५।२।५०त्यादिना (श्रीसिद्ध० ५-२-४० युजरञ्जद्विष०)	८२२
द्वौ तुल्यार्थौ प्रकर्षपरा	९८
द्वौ यामौ घटिकाहीनौ,	४२०
धनुषां द्वादशशता	२६४
धम्मं णं चरमाणस्स पंच (स्था. ३/४४७)	२०१
धम्ममइएहिं अइसुंदरेहिं (उपदेशमाला १०४)	१२९
धुरए पमुहे वियडे,	८४९
न हि नामानाभोग	२४
नंदी य खुड्डिमा पूरिमा य, (अनु० ४।४२)	५१
नग-पुढवि-विमाणाई	६३५
नद्यावर्त्तमलिन्दैः, (बृहत्संहिता ५३।३२-३५-३२)	३१३
नवतिः सैव षडूना,	१९७
नवा खित्कृदन्ते रात्रेः (श्रीसि० अ० ६ पा० ४ सू० ११०)	३९१
नव्योत्पन्नतयाऽन्यर्हि, (श्राद्धविधि रत्नसारकथा श्लो. ७१०)	५११
नाउमिह अमावासं जइ, (ज्यो. क. गा. ३१४)	८०२
नात्यन्तासत उत्पादो नापि	३६

	पेज नं.
नानाभूमिगवाक्षाढ्यं,	२६५
नामजिणा जिणनामा,	१३
नासतो विद्यते भावो, (भगवद्गीता २/१६)	३६
निच्चं मउलियाओ (जीवा. ३।२६८)	७५
निद्दा-विगहापरिवज्जिएहिँ (पञ्चवस्तुक १००६)	२३
निमित्त-कारण-हेतुषु	३३
निमित्त-कारण-हेतुषु	३९
निरुवसग्गपच्चयत्थं विणीअं	४०५
निर्दु:सुवे: समसूते (श्रीसि० १२-३-५६)	१२४
निर्विशेषं विशेषाणामग्रहो दर्शन	२१६
निर्विशेषं विशेषाणामग्रहो दर्शन	२१६
निवार्यते हि कलह (श्राद्धविधि रत्नसारकथा श्लो. ७१३)	५११
नेवाइयं पयं दव्व-	१३
नैके द्वेषस्य पर्याया: (प्रशमरति प्र.१९)	१७०
पंचेव इगुणवन्नं सयाइं, (ज्यो. क. गा. ३२२)	८०५
पंचेव य सिप्पाइं, (आवश्यकनि. २०७)	२००
पंडगवणं मंचाइमंचकलिअं (जीवा. ३।४४७)	६५९
पञ्चोन्नति: सप्त मृगस्य	१९७
पडिहत्थमुद्धुमायं,	५६
पढमे चंदजोगे	३८१
पढमे चंदयोगे	३०५
पढमो अकालमच्चू	१८१
पढमो अकालमच्चू, (आवश्यकनि. १९४)	१६४
पद्मसमगन्धय: मृगमदगन्धय: (भगवती. ६।७)	१८३
परिणाहोऽङ्गुलानि	३५४
परिभासणा उ पढमा, (आवश्यक नि.भा.३)	१९३
पलिओवमदसमंसो, (आव.नि.गा. १६१)	१९१
पव्वे पण्णरसगुणे, (ज्यो. क. गा. ३६८)	८२२
पागयमणुआणं बत्तीसं (निशीथ चूर्णि)	२७०
पादाध:स्थितयस्तस्य, (त्रिषष्टि. १।४।७१६)	४२६
पादौ सविस्तरौ कार्यौ,	२९८
पासाया सेसदिसासालासु	५२१
पिता पुत्रेण सहागत:	३००
पुट्ठं गच्छंति ? गोअमा ! (प्रज्ञापना ११। सू. ७७७ (१६-२३))	७३१
पुण्णं रत्तं अलंकियं च, (अनु०-४८)	५३

	पेज नं.
पुर-भवन-ग्रामाणां, (बृहत्संहिता ५३।८२)	३०९
पुरा हि मृतमिथुन (त्रिशष्टि. १।२।७३९)	१८२
पुर्वेषु जाता दातारः,	८०१
पुव्वस्स उ परिमाणं, (जीवस.११३, तित्थोगा.८२, प्र.सा.१३८७)	१२७
पुस उत्सर्गे (धातुकोष पृ. १७३)	१६५
पुस उत्सर्गे	२७१
पूअंति अ पइदिअहं,	२३५
पूर्वस्यां शिरः कुर्या	१९७
पूर्वस्यामपरस्यां च, (श्राद्धविधि रत्नसारकथा श्लो. ७१९)	५११
पूर्वा-ऽपरदिशोस्त्र्यस्रा (श्राद्धविधि रत्नसारकथा श्लो. ७२०)	५१२
प्रज्ञादिभ्यः (श्रीसिद्ध० अ० ७ पा० २ सू० १६५)	४६७
प्रत्यये ङीर्वा (श्रीसिद्ध० ८।३।३१)	२२०
प्रत्यये ङीर्न वा (श्रीसि०८-३-३१)	३५
प्रत्यये ङीर्नवा (सिद्ध० अ० ८ पा० ३ सू० ३१)	२१०
प्रत्यये ङीर्वा (सिद्ध० अ० ८ पा० ३ सू० ३१)	२८७
प्रत्येकं हेमचैत्यानि,	२६६
प्रथममेकया मुष्ट्या	२०८
प्रवृत्तदीपामपवृत्तभास्करां,	२२
प्राक्पश्चिमावलिन्दा (बृहत्संहिता ५३।३५)	३१३
प्राच्यामष्टापदोऽपाच्यां	२६६
प्राच्ये शाले भवनं	५२१
प्रायः सूत्राणि सोपस्काराणि भवन्ती	२०४
बद्धमुष्टिर्हस्तो रत्नि (द्र.अ.चि. ५९९)	१३२
बहि ! मूलो	७८९
बहि मूलोऽब्भंतरे अभिई	७८९
बहि मूलोऽभंतरे अभिई	७८७
बहिः कोणेष्वर्द्धभागाः, (वास्तु. श्लो. ७३)	३१०
बहुविग्घाइं सेयाइँ, (विशेषा. भा. १२)	५
बारसवासस्स तहा, (पञ्चव. ८५)	४
बावत्तरं सयं फग्गुणीण, (ज्यो. क. गा. ३१८)	८०४
बावीसं च मुहुत्ता, (ज्यो. क. गा. ३१७)	८०३
भंभा १ मकुन्द २ मद्दल ३,	४९
भगवतो-ऽपगतकेशशीर्ष (चै. व. म. भा. गा. २२१)	१११
भदुङ् सुखकल्याणयोः (धा. पा. १/७२२)	२५
भरहे अ दीहदंते,	२६९

	पेज नं.
भरहेरवएसु णं वासेसु एगमेगाए (समवायाङ्गे सू. २९१)	२३०
भवनमायामापेक्षया	१२२
भस भर्त्सन-दीप्त्यो (हे.धा. १।५२१)	६६५
भावादिम: (श्रीसिद्ध० ६-४-२१)	८०१
भाविनि भूतवदुपचार ( )	११
भाविनि भूतवदुपचार	३७५
भाविनि भूतवदुपचार:	१९४
भासेर्भिस (श्रीसिद्ध० अ० ८ पा० ४ सू० २०३)	४५१
भीअं १ दुअ २ मुप्पिच्छं ३, (अनु०-४७)	५३
भूङ् प्राप्तौ (सौत्र धा.९)	२९५
भूतपूर्वकस्तद्वदुपचार (अनु.द्वा.वृ.पृ.१४)	११
भूतस्य भाविनो वा	११
भृशा-ऽभीक्ष्ण्याविच्छेदे (श्रीसि० ७-४-७३)	३३
मक्कुणए ढिंकुण ढंकुणा तहा (देसीनाममाला)	१७७
मघानक्षत्रादारभ्य	८१५
मज्झिमरुअगवत्थव्वा (ज्ञाताधर्मकथावृति: ८।७२)	६२३
मत्रि १ भू २ धन ३ कुल ४	१९८
मध्ये ब्रह्मा ४१ ऽस्य चत्वारो, (वास्तु. श्लो. ७०)	३१०
मयूराण्डरसे यद्वद्, (उ.बृ.वृ.)	१७
मल्ल-मल्लि धारणे (सिद्ध.धातु ८११)	४०३
मल्लि धारणे (सिं. हे. धातु ८१०-१)	८४१
महया धणुपट्ठाओ, (बृहत्क्षेत्रसमास १।४६)	४८५
माणवकाख्यस्तम्भ (श्राद्धविधि रत्नसारकथा श्लो. ७१५)	५११
मानधनानां प्रभूणां	३७२
मानवा मौलितो वर्ण्या,	१५२
मुइंगपुक्खरे इ वा (जीवा. ३।२७७)	४२
मुखादापेचकं दैर्घ्यं,	३५३
मूढनइयं सुयं कालियं च (तु) (जोनि.७६२ वि.आ.भा.२२७९)	१०
मूले पण्णासं जोअणवित्थारो	४४८
मेघङ्करा १ मेघवती २,	६१७
यथा जम्बूद्वीपे रोहितांशा	५४६
यदियं जन्ययात्रा	१४५
यद्वास्तव्यजना देवे,	२६६
यप्रात: संस्कृतं धान्यं,	४३०
यश्चात्र द्वादशयोजनानि (आव.टि.पत्र २०)	३३७

	पेज नं.
यष्ट्यातपत्रा-ऽङ् कुश-वेत्र	१९८
यात्राप्रसिद्धिः १ द्विषतां विनाशो	१९८
यावत्सम्भवं विधिप्राप्ति	५३१
युक्तं चैतत् सम्भावनया (सूर्यप्र. प्रा. ४ । सू. २५)	७२६
युवर्णवृदृवशरणगमृद्ग्रह (श्रीसिद्ध० ५-३-२८७)	८३६
ये गत्यर्थास्ते प्राप्त्यर्थाः	३५५
ये प्रपाणगल-कर्णसंस्थिताः,	३५७
रत्तुप्पलपत्तमउअ (जीवा. ३।५९६)	१५२
रथाङ्गनाभिद्वयसं, (त्रिषष्टि. १।४।१६४)	२९५
रविणो उदयत्थंतर,	७२४
रागगीत्यादिकं गीतं	५२
राजा सर्वार्थनिष्णात (त्रिषष्टि. १।४।८८)	२९४
राजा-नरपतिस्तस्य (स्था. टी. पृ. ५८०)	२०१
राजेरग्घ-छज्ज-सह-रीह-रेहा (सिद्ध० ८-४-१००)	२९८
राज्यं हि नरकान्तं स्याद्,	२०१
रिआ-ऽऽरिअ	६६५
रुप लुप च विमोहने (हे.धा.११९४-५)	२९९
रेभृङ्ग शब्दे (हेमधा. १।१७५)	६६४
लेहं १ गणिअं २ रूवं (रा.प्र.सू. ८०६)	१९६
ल्यब्लोपात् पञ्चमी	२१२
वइरामय-वट्टलट्ठ-(जीवा. ३।३९३)	५०८
वइरामया णेमा, रिट्ठामया (जीवाभिगम ३।२६४-२७२)	३०
वक्ता हर्ष-भयादिभिर	२३
वक्ता हर्षे	२७३
वक्ति स्म विस्मयस्मेरः, (श्राद्धविधि रत्नसारकथा श्लो. ७०९)	५११
वज्जरिसहनारायसंघयणे (औप. सू. ८२-८३)	२०
वपुः पश्यन् क्रमे (त्रिषष्टि. १।६।७२१)	४२९
वास्त्वारम्भे प्रवेशे वा, (वास्तु. श्लो. ७७)	३१०
विकसेः कोआस-विसट्टौ	१५७
विक्खंभपायगुणिओ (लघुक्षेत्र १८८ लघुसं. ७)	६७९
विक्खंभवग्गदहगुण (बृहक्षेत्रस. ७)	२६
विक्खम्भवग्गदहगुणे (लघुक्षेत्र. १८८)	६९८
विचित्रा कृतिराचार्यस्ये	१३५
विचित्रा सूत्राणां कृतिराचार्यस्य	२१९
विजए णं दारे अट्ठसयं (जीवा. ३।३३५)	७९

	पेज नं.
विजयद्वारप्रमाणद्वारा	९८
विजयस्स णं दारस्स (जीवा. ३।३०४)	७०
विजयस्स णं दारस्स (जीवा. ३।३३६-८)	८०
विजयस्स णं दारस्स (जीवा. ३।३४६)	८२
विजयस्स णं दारस्स (जीवा. ३।३४७)	८२
विजयस्स णं दारस्स (जीवा. ३।३४८-९)	८२
विजयस्स णं दारस्स (तुला-जीवा. ३।३१५-३१७)	७४
विजयस्स णं दारस्स (समवायांगे)	८०
विजयस्स णं दारस्स उभओ (जीवा. ३।३०५)	७०
विजयस्स णं दारस्स उभओ (जीवा. ३।३०७)	७१
विजयस्स णं दारस्स उभओ (जीवा. ३।३०६)	७०
विजयस्स णं दारस्स उभओ (जीवा. ३।३९३)	६८
विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं (जीवा. ३।३०२)	६७
विपिनानि चतुर्दिक्षु,	२६६
विमल वितत्थ विवत्थे,	८४९
विमानलक्षा द्वात्रिं (श्राद्धविधि रत्नसारकथा श्लो. ७११)	५११
विवक्षात: कारकाणी	२०९
विवक्षाप्रधानानि हि सूत्राणी	९२
विषमात् पदतस्त्यक्त्वा,	२७
विसमा अज्ज तुलाओ, (तण्डुलवे० ५२)	१८६
विसमेसु अ वासेसुं, (तण्डुलवे० ५३)	१८६
विसमेसु दुन्नि टगणा,	१९७
वीरंजयसेहरे	१०७
वुड्ढी वा हाणी वा, (ज्यो. क. गा. ३७५)	८२३
वृजैण् वर्जने (गण ९/धा.३८८)	२६०
वैशाखे श्रावणे मार्गे, (आरम्भसिद्धिवि. ४ । श्लो. ७५)	७७४
वैशाखे श्रावणे मार्गे, (वि.वि. ८-५६/आ.सि. ३१४)	३१२
व्यञ्जनात् पञ्चमान्तस्थाया: (श्रीसिद्धहै० १।३।४७)	१७२
व्याख्या विशेषप्रतिपादिनी	६५२
व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति	७००
व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति (न्यायसङ्ग्रह वक्ष.२ न्याय ६४)	२९४
व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति	१००
व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति	११५
व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति	२७
व्याख्यातो विशेष-प्रतिपत्ति	४२

	पेज नं.
व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति	४२९
व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति	५०६
व्याख्यातो विशेषप्रतिपत्ति	६८६
व्याख्यातो विशेषार्थप्रतिपत्ति	२१९
व्याख्यातो विशेषार्थप्रतिपत्तिः	२३५
व्याख्यातोऽधिकं प्रतिपद्यत	६५०
व्रज गतौ(सि.धा. १।१३७)	३५५
शक्राज्ञया रत्नमयी	२६६
शतानि सप्त गत्वोर्ध्वं,	८३१
शब्द-रूपे कामौ, स्पर्श-रस-गन्धा भोगाः	३३४
शस्तौषधि-दुम-लता मधुरा सुगन्धा, (बृ.संहि. ५३।८६)	३१२
शस्त्रान्तं स्त्रीभोगिन	३८५
शास्तुः प्रामाण्ये शास्त्रप्रामाण्यम्	४
शुक्राणां च गुरूणां च,	८३१
शूर वीर विक्रान्तौ	२०
शेषासु तिसृषु शाखासु (नव्य बृ. क्षेत्रस. अवचूर्णि)	५२१
श्रीविभो राज्यसमये,	२६४
षोडश स्त्रीणां वर्षाणि (त्रि. १०)	२४८
संखाईए वि भवे, (आ०नि० ५९०)	२४
संघयणं संठाणं, (आवश्यक नि. १६० तंडुलवे० ५०)	१८६
संसय विवज्जओ (वि.आ.भा.-६२)	१४
संविन्निष्ठैव सर्वाऽपि, (उ.बृ.वृ.)	१७
सइ चेव य निद्दिट्ठो,	७१६
सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो	७९१
सज्जे रिसह गंधारे, (स्था०-४५, अनु०-२५)	५३
सट्ठीए अइआए हवइ, (ज्योतिष्क. क. गा. ९३)	७७१
सत्यं मित्रैः प्रियं स्त्री	२६९
सत्सामीप्ये (सिद्ध० ५-४-१)	२९४
सदैव निदावशगा,	३५८
सनत्कुमार-माहेन्द्रे (श्राद्धविधि रत्नसारकथा श्लो. ७२१)	५१२
सप्तोत्तानशया लिहन्ति	१८२
समणे भगवं महावीरे	२३८
समर्थनः पुमर्थानां,	२७१
समापेः समानः (सिद्ध० ८।४।१४२)	२१८
सम्यग्भावपरिज्ञानाद्,	४

	पेज नं.
सरंसि वापी-कूपादीन्,	२६६
सर्वं भाजनस्थं जलं पीत	३४०
सर्वज्ञोक्तोपदेशेन, यः	४
सर्वमनेन भाजनस्थं घृतं पीतम्	२८४
सर्वसङ्ख्यया आत्मना	६८८
सर्वेषामपि ज्योतिष्क(ष्काणां)	८३३
सवप्र-खातिकं रम्यं,	२६५
सव्यपाणिगतमप्यपसव्य	२७५
सव्वाओ लद्धीओ सागारोवउत्तस्स	२१७
सव्वे कालविसेसा (ज्यो. क. गा. ६०)	७६८
सव्वे वि उसहकूडा, (क्षेत्रसमास गा. १७३)	१२२
सव्वेसिं गहाईण	८५०
ससि-रविणो लवणंमि	६९३
सामन्त-मण्डलीकानां,	२६५
सामान्यकारुकाणां च,	२६५
सालि १ जव २ वीहि ३ कुद्दव ४,	३२९
सावज्जजोगपरिवज्जणाओ (पञ्चसंयत प्र. ८)	२१९
सावणबहुलपडिवए, (ज्यो. क. गा. ५५)	७६८
सावणबहुलपडिवया, (ज्यो. क. गा. ३७२)	८२३
सावद्यं निरर्थकं तुच्छार्थकं	८६०
सास्नाबिलरूक्षाक्ष्यो, मूषिक	१९७
सुअ-सूरि-संघ-धम्मो, (कालसप्ततिका ५४)	२०१
सुड्डुत्तरमायामा, (अनु० ४।४२)	५१
सुत्तं थेराण अत्तागमोत्ति (उत्त. बृ. वृ.)	१०
सुत्ते चउदसलक्खा,	६८८
सुद्धंमि अ सोहणगे, (ज्यो. क. गा. ३२६)	८०६
सुधर्मसदृशी चारु,	२६५
सुराणां च सुराधीशैः, (श्राद्धविधि रत्नसारकथा श्लो. ७१४)	५११
सूरस्स जोइसरण्णो (जीवा उ. २ सू. २०४)	८४७
सूर्यः पश्चिमसमुद्रं प्रविश्य	७६४
से केणट्ठेणं भंते ! (जीवा. ३।३५०)	८२
से केणट्ठेणं भंते ! एवं (तुला-जीवा. ३।७३७)	१२२
से जहाणामए कम्मयरदारए (राजप्र. १२)	६१५
से जहाणामए कम्मारदारए	६१७
से जहाणामए किन्नराण (जीवाभि० ३।२८५)	५२

	पेज नं.
से जहाणामए वेआलियाए (जीवाभि० ३।२८५)	५०
से णं वणसंडे देसूणाइं (जीवा. ३।३६२-४)	५००
सेयंकर-खेमंकर आभंकर,	८४९
सेसेसु अ पासाया,	११३
सोत्थिअ सोवत्थिअएअ,	८४९
सोलस देवसहस्सा	८४३
सोलसवासाईसु य, (पन्नव. ८७)	५
सौधानि हिरण्य	२६५
सौवर्णस्य च तस्योर्ध्वं,	२६४
स्त्रीणां शतानि शतशो (भक्तामर० गा. २२)	१३३
स्थलजाता मणयः, जलजातानि	३२
स्थाना-ऽऽसन-गमनानां,	१६४
स्वराणां स्वरा (श्रीसिद्ध० अ० ८ पा० ४ सू० २३८)	२६०
स्वामिदृष्टे भक्तजनः	४१६
हंसे कोञ्चे गरुले,	६०
हरयो विदेहाश्च पञ्चालादितुल्या (तत्त्वार्थ मूलटीका सूत्र ३।१०)	४७७
हरिसेनानीर्हरिणै (श्राद्धविधि रत्नसारकथा श्लो. ७०८)	५११
हार १ ऽद्धहार २ इग ३ कणय	३२५
हिययमालासहस्सेहिं अभिणंदिज्जमाणे (औप. सू.६९)	२०६

● ● ●

परिशिष्ट-३

सूत्रगतविशिष्टनाम्नाम् अकारादिसूचिः

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
रयणपंचलइअं	3	88-B	336
आइच्च	3	3	268
आगर	3	31-B	307
आसमगयं	2	131	242
अग्गि	3	3	268
अट्ठि	3	109-G	359
अणुराहा	7	166	821
अद्धचंदचिंधं	3	24	296
अद्धचंदचित्तं	3	79	328
अद्धहार	3	9	277
अलंकारविभूसाए	3	12	283
असिलेस	7	129	788
असोग	5	58	667
अंक	2	15-G	162
अंकमुहसंठिआ	7	31-A	721
अंकावई	4	202-B	557
अंकावई	4	212-A	564
अंकुस	2	15-G	162
अंकुसे	5	38	637
अंके	4	212-A	565
अंके	4	256	594
अंकेल्लण	3	109-C	354
अंगणे	2	69	212
अंगमंगाइं	2	113	234
अंगलोअं	3	81-A	330

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
अंगुलाइं	1	7	25
अंगुलाइं	2	6-D	132
अंगुलिज्जग	3	9	277
अंगुलिमालासहस्सेहिं	3	186-A	409
अंगुले	2	6-C	131
अंचिअं	5	57	658
अंचेइ	3	12	283
अंचेइ	3	6	274
अंजणगपव्वए	2	117	236
अंजणगिरिकडग	3	17	290
अंजणगिरिकूडसण्णिभं	3	175-177	398
अंजणगिरिकूडसण्णिभं	3	91	338
अंजणगे	2	119	236
अंजणा	4	223	576
अंजणागिरी	4	225	576
अंजणे	4	202-B	556
अंजलिं	3	19	292
अंजलिमउलिअग्गहत्थे	3	6	274
अंजलिमालासहस्साइं	3	186-A	409
अंतकरभूमी	2	84	222
अंतगडे	3	225	431
अंतमकासी	2	84	222
अंतरणई	4	212-A	565
अंतरणईसु	5	55	654
अंतरे	1	17	86

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
अंतरोदगाणं	3	221-A	427
अंतलिक्ख	3	26-B	301
अंतलिक्ख	3	43	319
अंतलिक्खपडिवण्णे	3	14	288
अंतवाले	3	26-B	301
अंतवाले	3	36-42	318
अंतवाले	3	44-50	320
अंतिअण्णं	3	113	362
अंतिआओ	3	13	288
अंतेउरं	2	64-C	202
अंतेवासी	1	5-6	20
अंतेवासी	2	83	221
अंतेवासीसहस्सा	2	82	221
अंतो	1	31	102
अंतोमुहुत्तपरिआए	2	84	222
अंतोवाहिणी	4	212-A	564
अंधकारसंठिई	7	33	726
अंधयारे	7	34	728
अंब	3	119-B	369
अंबरतलं	3	14	288
अंबरतलं	3	43	319
अंबरतलं	3	51	320
अंबिल	2	145	255
अंबिलिअसव्वणिप्फायए	3	119-B	369
अंसुपुण्णणयणे	2	103	232
अंसुपुण्णणयणे	2	90	226
अइकंत	2	15-A	158
अइरुग्गय	3	24	296
अईइ	3	186-B	410
अईतेआ	7	120	780
अउए	2	4-C	127
अउणासीइं	1	17	86
अओज्झं	3	117-A	365
अओज्झं	3	35-C	317
अओज्झा	4	212-A	565
अकंतस्सरा	2	133	245
अकंता	2	133	245
अकंपे	2	68	210
अकज्जणिच्चुज्जया	2	133	245
अकरंडुअ	2	15-C	159
अकविल	2	15-F	161
अकालतालुं	3	109-F	358
अकाले	3	104	350
अकित्तिमेहिं	1	21	93
अकित्तिमेहिं	1	26	99
अकित्तिमेहिं	1	49-50	119
अकित्तिमेहिं	2	147	257
अकित्तिमेहिं	2	57	189
अकुडिलअब्भुग्गय	2	15-E	161
अकोप्पजंघ	2	15-A	158
अकोहे	2	68	210
अक्किज्जा	3	167-G	395
अक्किद्धा	2	49	181
अक्खए	1	47	117
अक्खए	3	226	432
अक्खसोअप्पमाणमेत्तं	2	134	248
अक्खेड	2	6-D	132
अक्खोभे	3	3	268
अखुरं	3	109-B	353
अगंथे	2	70	213
अगड	2	31	173
अगणिकायं	2	105	232
अगत्थिगुम्मा	2	10	138
अगारवासमज्झे	2	87	224
अगारवासमज्झे	3	225	431
अगाराओ	2	65-D	208
अगाराओ	2	67	209
अगाराओ	2	85	223
अगुरुतुरुक्कं	2	109	233
अगुरुलहुपज्जवेहिं	2	51	184
अग्गभाव	7	132	793
अग्गमहिसीओ	7	183	845

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
अग्गमहिसीओ	7	186	847
अग्गमहिसीणं	1	45	114
अग्गमहिसीहिं	5	41	639
अग्गसिहरे	1	37	107
अग्गाइं	3	125	373
अग्गाइं	3	151	388
अग्गाइं	3	18	290
अग्गाणीअं	3	107	351
अग्गि	7	186	848
अग्गिं	5	16	625
अग्गिकुमारे	2	105	232
अग्गिप्पओगेण	3	125	373
अग्गिमेहा	2	131	242
अग्गिवेसे	7	117	779
अग्गिवेसे	7	122	782
अग्गिवेसे	7	132	793
अग्गिहोमं	5	16	626
अग्गी	2	6-F	135
अग्गी	7	130	790
अग्गीणं	5	52	651
अग्गेहिं	2	120	237
अग्गेहिं	3	12	283
अग्गेहिं	3	88-A	335
अचंडपाडियं	3	109-F	358
अचित्ते	2	69	212
अचेलए	2	66	209
अच्चणिज्जाओ	7	185	846
अच्चसणे	7	117	779
अच्चिणाइ	3	12	283
अच्चिणेइ	3	88-A	335
अच्चिमाली	7	183	845
अच्चुअगाण	5	49-B	647
अच्चुइंदे	5	58	667
अच्चुए	5	54	653
अच्चेंति	2	120	237
अच्छ	2	36	175
अच्छ	4	25	448
अच्छरघणसंघ	1	31	102
अच्छरसातंडुलेहिं	3	12	283
अच्छरसातंडुलेहिं	3	88-A	335
अच्छरसातण्डुलेहिं	5	58	667
अच्छराओ	2	15-I	163
अच्छा	1	8	27
अच्छा	2	136	250
अच्छि	2	43	178
अच्छिद्द	2	15-E	161
अच्छे	1	23-C	96
अच्छे	4	260	595
अच्छेरगपेच्छणिज्जाओ	2	15-I	163
अच्छेहिं	3	12	283
अजवणिज्जोदगा	2	131	242
अजहण्ण	2	15-A	158
अजिणाणं	2	78	220
अजिम्ह	2	15-E	161
अजीरगाइ	2	43	179
अजीवाण	2	71	215
अज्जगमंजरिआ	5	72	674
अज्जप्पभिइ	2	146	256
अज्जम	7	130	790
अज्जम	7	186	848
अज्जवेणं	2	71	215
अज्जिअरज्जो	3	175-177	397
अज्जिआ	2	75	220
अज्जिआसंपया	2	75	220
अज्जुणसुवण्ण	3	117-A	365
अज्झत्थिए	3	26-A	299
अज्झत्थिए	3	56-57A	321
अज्झयणे	7	214	859
अज्झवसाणेहिं	3	223	429
अज्झोववणाए	2	17	167
अज्झुसिर	3	3	268
अट्टज्झाणोवगया	3	105	350

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
अट्ठालग	2	20	168
अट्ठाहिं	2	65-C	207
अट्ठं	7	214	859
अट्ठकण्णिअं	3	135	380
अट्ठकण्णिअं	3	94	340
अट्ठट्ठमंगलए	3	12	283
अट्ठट्ठमंगलए	3	88-A	336
अट्ठट्ठमंगलगा	4	158	527
अट्ठट्ठमंगलगा	5	43	639
अट्ठट्ठमंगलगे	5	58	667
अट्ठतीसे	1	20	90
अट्ठमंगलए	3	12	283
अट्ठमभत्तं	3	20	292
अट्ठमभत्तं	3	28	303
अट्ठमभत्तंसि	3	21	293
अट्ठमभत्तस्स	2	16-D	166
अट्ठमभत्तिआ	3	111	361
अट्ठमेणं	2	71	215
अट्ठसयं	1	40	109
अट्ठसोवण्णिअं	3	94	340
अट्ठारस	3	12	283
अट्ठारसमुहुत्ते	7	27-A	716
अट्ठावए	3	224	430
अट्ठावय	2	15-G	162
अट्ठावयपव्वए	2	90	226
अट्ठावयवीइ	2	15-B	159
अट्ठावयसेल	2	88	225
अट्ठावीसं	1	7	25
अट्ठाहिअं	2	117	236
अट्ठाहिअं	3	12	284
अट्ठाहिअं	3	28	303
अट्ठाहिआए	3	30	304
अट्ठाहिआओ	2	120	237
अट्ठाहियमहामहिमं	3	13	288
अट्ठाहियाओ	5	74	675
अडडे	2	4-C	127

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
अडयाले	1	20	90
अडवीबहुले	1	18	87
अड्ढा	3	103	349
अणंतखुत्तो	7	212	857
अणंतगुणपरिहाणीए	2	51	184
अणंतगुणपरिहाणीए	2	54	188
अणंतनाणीहिं	2	4-B	126
अणंते	3	223	429
अणंतेहिं	2	51	183
अणंसुपातिं	3	109-F	358
अणगारचिइगाए	2	105	232
अणगारवण्णओ	2	83	221
अणगारसरीरगाइं	2	100	231
अणगारा	2	83	221
अणगाराणं	2	95	230
अणगारियं	2	65-D	208
अणगारियं	2	67	209
अणगारियं	2	85	223
अणगारे	1	5-6	20
अणग्घितं	3	92	339
अणंतिवरं	3	119-A	368
अणब्भवाहं	3	109-D	356
अणवं	7	122	782
अणवकंखमाणे	3	224	430
अणवगल्लस्स	2	4-B	126
अणवट्ठिआओ	7	31-B	722
अणवरयं	2	64-F	205
अणहसासणबले	3	81-D	332
अणागयं	7	39	731
अणाढिअस्स	4	150	523
अणाढिआ	4	160	529
अणाढिए	4	159	528
अणाढिए	7	213	858
अणादेज्जवयणपच्चायाता	2	133	245
अणापुट्ठा	7	53	733
अणावुट्ठिबहुले	1	18	87

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
अर्णिदिआ	5	1	608
अणिआहिवईणं	4	19	441
अणिआहिवईणो	5	43	640
अणिआहिवाण	4	151	523
अणिगणा	2	13	141
अणिड्डस्सरा	2	133	245
अणिड्डा	2	133	245
अणिमिसाए	5	67	673
अणियाहिवईणं	1	45	114
अणिले	2	68	210
अणुअतणुअ	3	109-F	357
अणुत्तरे	3	223	429
अणुत्तरेणं	2	71	215
अणुत्तरोववाईआणं	2	81	221
अणुत्ते	7	169	828
अणुदूसु	7	112	775
अणुद्धुअमुइंगं	3	12	284
अणुपविसइ	3	9	277
अणुपुव्व	2	15-D	160
अणुप्पदाहिणीकरेमाणे	3	204	416
अणुप्पयाहिणीकरेमाणा	3	205	417
अणुब्भड	2	15-C	159
अणुराहा	7	128	786
अणुराहा	7	140	808
अणुराहा	7	149	812
अणुलिंपंति	2	100	231
अणुलिंपइ	2	99	231
अणुलिंपइ	3	12	283
अणुलोमवाउवेगा	2	16-B	164
अणुलोमा	2	67	209
अणुसज्जितथा	2	50	183
अणुसज्जितथा	2	53	187
अणेगखंभ	1	37	107
अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं	3	193	414
अणेगचिंधसय	3	31-B	307
अणेगतालायराणुचरिअं	3	12	284
अणेगवाहिपीलिअंगमंगा	2	133	246
अणेगसंकुकीलकसहस्सवितते	5	32	635
अणोवमजुइं	3	92	339
अणोवमाइ	2	17	167
अणोवमाणं	3	109-G	359
अतीइ	3	93	340
अत्ताणं	3	222	428
अत्थजुत्तेहिं	5	58	668
अत्थणिउरे	2	4-C	127
अत्थत्थिआ	3	185-A	407
अत्थमणमुहुत्तंसि	7	36	729
अत्थसत्थकुसले	3	77	326
अत्थसिद्धे	7	117	779
अत्थामा	3	111	361
अदंड	3	12	283
अदंडकोदंडिमं	3	212	423
अदिज्जं	3	12	283
अदिज्जं	3	212	423
अदिती	7	130	790
अदिती	7	186	848
अदुट्ठे	2	70	213
अदुत्तरं	1	47	117
अदुत्तरं	2	131	242
अदुत्तरं	3	226	432
अद्द	7	129	788
अद्दा	7	128	786
अद्दा	7	134	795
अद्दा	7	135	797
अद्दा	7	140	808
अद्दा	7	149	812
अद्दा	7	161	820
अद्धंगुलं	1	7	25
अद्धंगुलसोणीको	3	109-H	360
अद्धकविट्ठसंठाण	7	176	832
अद्धचंदसंठाणसंठिए	1	20	90
अद्धट्ठमा	2	78	220

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
अद्धभागं	1	23-B	95
अद्धभागं	1	48-B	118
अधरिमं	3	12	284
अन्नयरे	2	69	212
अपडिबद्धगामी	2	68	210
अपडिबद्धे	2	70	213
अपत्थिअपत्थए	3	107	351
अपत्थिअपत्थए	3	26-A	299
अपराइआ	4	212-A	565
अपराजिआ	5	8	620
अपराजिआ	7	120	780
अपराजिआ	7	186	847
अपराजिए	1	15	63
अपरिआविआ	2	49	181
अपाणएणं	2	65-C	207
अपाणएणं	2	71	215
अपाणएणं	2	88	225
अपिअस्सरा	2	133	245
अपुणरुत्तेहिं	5	58	668
अपुव्व-करणं	3	223	429
अप्पडिहयगइ	2	68	210
अप्पडिहयवरनाण	5	21	629
अप्पाणं	2	83	221
अप्पिआ	2	133	245
अप्पिच्छा	2	16-C	165
अप्पुस्सुए	3	26-A	299
अप्पेगइया	1	22	94
अप्फोडिअ	3	31-B	307
अप्फोडेन्ति	5	57	658
अबला	3	111	361
अबाहाए	1	17	86
अबाहाए	7	13	697
अब्भंगेंति	5	14	624
अब्भंतरतच्चं	7	22	705
अब्भंतरतच्चे	7	16	699
अब्भंतरतच्चे	7	69	742
अब्भंतराणंतरं	7	21	703
अब्भंतराणंतरे	7	15	698
अब्भडप्पवेसं	3	212	423
अब्भवद्दलए	5	7-A	617
अब्भितरपत्ता	4	7	438
अब्भितरिआए	4	19	441
अब्भुक्खेंति	3	210-211-B	422
अब्भुक्खेइ	3	12	283
अब्भुग्गयमुसियपहसिए	7	176	832
अब्भुग्गयमूसिअपहसिए	4	49	460
अब्भुट्ठिए	2	70	213
अब्भुण्णय	2	15-A	158
अब्भुण्णय	2	15-C	160
अभडप्पवेसं	3	12	283
अभयदयाणं	5	21	629
अभिइस्स	7	134	795
अभिई	7	113	776
अभिई	7	128	786
अभिई	7	129	788
अभिई	7	130	790
अभिई	7	135	797
अभिई	7	138	802
अभिई	7	141	809
अभिई	7	149	812
अभिई	7	156	817
अभिईणक्खत्ते	7	131	791
अभिईणक्खत्ते	7	133	794
अभिईणक्खत्ते	7	134	795
अभिईणक्खत्ते	7	135	797
अभिओगसेढीओ	4	200	552
अभिओगे	5	72	674
अभिक्खणं	1	18	87
अभिक्खणं	2	131	242
अभिक्खणं	2	131	242
अभिचंदाणं	2	61	192
अभिचंदे	2	59	190

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
अभिचंदे	7	122	782
अभिजाए	3	3	267
अभिजाए	7	117	779
अभिजिए	3	188	411
अभिजिए	3	26-B	301
अभिजिणमाणे	3	18	290
अभिजिदाइआ	7	126	784
अभिजेत्तुं	3	95-B	342
अभिणंदंता	2	64-F	205
अभिणंदंता	3	185-A	407
अभिणंदंति	2	64-F	205
अभिणंदिए	7	114	777
अभिणयं	5	57	658
अभिथुणंता	2	64-F	205
अभिथुणंता	3	185-A	407
अभिथुणंति	2	64-F	205
अभिथुव्वमाणे	3	186-A	409
अभिरममाणा	2	146	256
अभिरममाणे	5	67	673
अभिरूवा	1	8	27
अभिरूवे	1	23-C	96
अभिवड्ढिअं	7	112	775
अभिवड्ढिए	7	105	770
अभिवड्ढिए	7	111	772
अभिवड्ढी	7	130	790
अभिवड्ढेत्ता	7	27-B	718
अभिवड्ढेमाणे	7	30	719
अभिसिंचंति	5	56	657
अभिसिंचइ	2	64-B	201
अभिसिंचित्ता	2	64-B	201
अभिसेअपेढं	3	194	414
अभिसेअपेढाओ	3	214	423
अभिसेअमण्डवं	3	191	413
अभिसेअसभाए	4	140	513
अभिसेअसिला	5	47	645
अभिसेअसिलाओ	4	244	589
अभिसेअसीहासणे	5	47	645
अभिसेया	4	248	590
अभिहणमाणं	3	109-E	356
अभीइछट्ठे	2	85	223
अभीइणक्खत्ते	2	138	251
अभीइणा	2	85	223
अभीइणा	2	88	225
अभीए	2	64-F	205
अभेज्जकवयं	3	79	328
अभेलणयणं	3	109-D	356
अमणामस्सरा	2	133	245
अमणामा	2	133	245
अमणुण्णपाणिअगा	2	131	242
अमणुण्णस्सरा	2	133	245
अमणुन्ना	2	133	245
अममा	2	50	183
अममे	7	122	782
अमयमेह	2	144	254
अमयमेहंसि	2	145	255
अमर	3	35-B	316
अमरपति	3	31-B	307
अमरवइ	3	18	290
अमरवइसण्णिभाए	3	180-182	405
अमरवहूणं	3	138-C	385
अमावासं	7	147	811
अमावासा	7	154	815
अमावासा	7	155	815
अमावासाओ	7	137	801
अमिअगईणं	7	178-B	837
अमिज्जं	3	12	283
अमिज्जं	3	212	423
अमिलायमल्लदामं	3	12	284
अमोहा	4	157	527
अम्हे	3	113	362
अम्हेत्थ	3	81-C	331
अय	2	35	175

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
अय	7	130	790
अय	7	186	848
अयकरए	7	186	848
अयगराइ	2	41	177
अयणा	7	126	784
अयणा	7	126	784
अयणे	2	4-C	126
अयणे	2	69	212
अयण्णं	1	7	24
अयमीणे	7	28	718
अयरंबरवत्थधरे	2	91	228
अयलमकंपं	3	79	328
अयसि	2	37	176
अयाइ	2	34	175
अरइ	2	70	213
अरजा	4	212-A	564
अरणिं	5	16	625
अरण्णे	2	69	212
अरत्ते	2	70	213
अरयंबरवत्थधरे	5	18	627
अरया	4	212-A	565
अरविंद	3	117-A	365
अरसमेहा	2	131	242
अरहंतवंसे	2	124	239
अरहंताणं	5	21	628
अरहओ	2	73	219
अरहा	2	64-A	194
अरहा	2	65-A	205
अरहा	2	66	209
अरिसाइ	2	43	179
अरिहंताणं	1	1	13
अरीइ	2	28	172
अलंकारिअभंडे	4	140	513
अलंकारिअसभाए	4	140	513
अलंकिअविभूसिए	3	9	277
अलंबुसा	5	11	622
अलकापुरीसंकासा	3	1	263
अलसंडविसयवासी	3	81-A	330
अलोहे	2	68	210
अल्लग	3	119-B	369
अल्लीणपमाण	2	15-F	161
अल्लीणा	2	16-C	165
अवज्झा	4	212-A	565
अवड्डिए	1	47	117
अवड्डिए	3	226	432
अवमंसा	7	128	786
अवमंसा	7	167	822
अवरविदेहकूडे	4	96	483
अवरविदेहे	4	263	599
अवरविदेहे	4	99	486
अवराइअ	4	202-B	557
अवराइआ	4	212-A	564
अवराइआ	4	212-A	565
अववे	2	4-C	127
अवसणा	3	111	361
अवहाय	2	6-F	135
अविग्घं	2	64-F	205
अवितहं	2	78	220
अविरल	2	15-B	159
अविसेसियं	1	51	121
अवीरिआ	3	111	361
अव्वए	1	47	117
अव्वए	3	226	432
अव्वहिआ	2	49	181
असण्णिहिसंचया	2	16-C	165
असत्थवज्झो	3	92	339
असासए	7	208	856
असि	3	31-B	307
असिग्गाहा	3	178-179-E	400
असिरयणं	3	109-H	360
असिरयणे	3	178-179-C	399
असिलेसा	7	162	820

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
असीइ	2	23	170
असुइणो	2	133	246
असुइमचोक्खं	5	5-D	616
असुभं	2	146	256
असुभदुक्खभागी	2	133	246
असुभस्सरा	2	133	245
असुभा	2	133	245
असुरराया	2	113	234
असुरराया	5	50	649
असुराणं	5	52	651
असुरिंदे	2	113	234
असुरिन्दे	5	50	649
असुरिन्दे	5	51	650
असोग	3	12	283
असोग	4	212-A	565
असोगवणे	4	116	498
असोगवरपायवस्स	2	65-B	207
असोगवरपायवे	2	65-B	207
असोगा	4	212-A	564
अस्सपुरा	4	212-A	564
अस्सायणे	7	132	793
अस्सिणि	7	113	776
अस्सिणी	7	128	786
अस्सिणी	7	129	788
अस्सिणी	7	140	807
अस्सिणी	7	149	812
अस्सिणी	7	155	816
अस्सिणी	7	158	818
अस्सिणी	7	159	819
अस्सेस	7	134	795
अस्सेस	7	135	797
अस्सेसा	7	128	786
अस्सेसा	7	140	808
अस्सेसा	7	147	811
अस्सोइण्णं	7	140	807
अस्सोइण्णं	7	143	810
अस्सोइण्णं	7	149	812
अहण्णं	3	26-B	301
अहताइं	2	100	231
अहय	3	9	277
अहामालिअं	3	6	274
अहासुहुमे	3	192	413
अहिआसेइ	2	67	209
अहिगरणिसंठिअं	3	135	380
अहिगरणिसंठिअं	3	94	340
अहीइ	2	41	177
अहे	2	65-B	207
अहे	2	71	215
अहेलोगवत्थव्वाओ	5	1	608
अहोरत्तंसि	7	28	718
अहोरत्तस्स	7	122	781
अहोरत्ता	7	126	784
अहोरत्ते	2	69	212
अहोरत्ते	7	135	797
अहोरत्तो	2	4-C	126
अहोसिरा	2	83	221
आइं	2	6-B	130
आइक्खग	2	64-D	203
आइगराणं	5	21	628
आइच्चे	7	111	772
आइच्चो	7	112	775
आइज्ज	2	15-C	159
आइज्ज	2	15-D	160
आउं	1	22	94
आउअं	2	58	190
आउक्काइअत्ताए	7	212	857
आउट्टेज्जा	2	67	209
आउडिआ	3	89	337
आउडेइ	3	135	380
आउडेइ	3	135	381
आउडेइ	3	88-B	336
आउडेत्ता	3	135	381

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
आउपज्जवेहिं	2	51	183
आउपरिणामे	7	211	857
आउलबोलबहुलं	2	65-A	205
आउहघरसाला	3	12	283
आउहघरसाला	3	9	278
आउहघरसालाए	3	4	272
आउहघरसालाओ	3	12	283
आउहघरसालाओ	3	14	288
आउहघरसालाओ	3	43	319
आउहघरिअस्स	3	6	274
आउहघरिए	3	5	272
आऊ	2	52	184
आऊ	7	130	790
आऊ	7	186	848
आओगपओगसंपउत्ता	3	103	349
आकासिआइ	2	17	167
आकोसायंत	2	15-C	159
आगइं	2	71	215
आगमिस्साए	2	138	251
आगमेसिभद्दाणं	2	81	221
आगरपती	3	81-C	331
आगरसहस्साणं	3	221-A	427
आगायमाणीओ	5	5-D	616
आगासफलोवमाइ	2	17	167
आचिड्डामो	3	113	362
आणंदकूडे	4	105	489
आणंदे	7	122	782
आणत्तिकिंकरी	3	56-57B	322
आणत्तीकिंकरे	3	26-B	301
आणन्दा	5	8	620
आणाईसरसेणावच्चं	3	221-B	427
आणाए	3	8	276
आतंबलोअणाओ	2	15-E	161
आदंस	3	11	281
आदंसघरे	3	222	428
आदंसिआइ	2	17	167
आदरिसपडिभागे	2	68	210
आपूरेंते	3	14	288
आबाहं	2	36	175
आबाहं	2	41	177
आभरण	3	11	281
आभरणविही	3	167-C	392
आभरणाणि	3	26-B	301
आभरणाणि	3	44-50	320
आभरणाणि	3	64-67	324
आभरणारुहणं	3	12	283
आभिओगसेढीओ	1	28	101
आभिओगसेढीओ	6	15	683
आभिओगिए	5	3	610
आभिओगे	2	97	231
आभिओगे	3	191	412
आभिओग्गाणं	1	31	102
आभिओग्गाणं	3	199-200	415
आभिसेक्कं	3	15	289
आभिसेक्कं	3	64-67	324
आभिसेक्कं	3	77	327
आभिसेक्काओ	3	20	292
आभिसेक्के	3	17	289
आभिसेक्के	4	140	513
आभोएंति	3	113	362
आभोएंति	5	3	610
आभोएइ	2	90	226
आभोएइ	3	56-57A	321
आयंसघराओ	3	224	430
आयंसहत्थगयाओ	5	8	620
आयंसाणं	5	55	653
आयतकण्णायतं	3	24	296
आयरक्ख	1	45	114
आयरक्खदेव	2	90	226
आयरक्खदेव	4	20	441
आयवं	7	122	782
आयामविक्खंभेणं	1	7	24

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
आयामविक्खंभेणं	7	7	694
आयामेणं	1	20	90
आयामेणं	1	23-B	95
आयामेणं	1	25	98
आयामेणं	2	141	252
आयारभाव	1	26	99
आयारभावपडोआरे	4	56	464
आयारभावपडोयारे	1	21	92
आयाहिणं	1	5-6	20
आयाहिणपयाहिणं	2	90	226
आयाहिणपयाहिणं	5	5-A	611
आरबके	3	81-A	330
आरबी	3	11	281
आरभडं	5	57	658
आरूढे	3	35-B	316
आलंबणबाहाओ	4	26	449
आलंबणा	4	26	449
आलइयमालमउडे	5	18	627
आलएणं	2	71	215
आलिंगपुक्खरे	1	13	41
आलिंगपुक्खरेइ	1	21	93
आलिंगपुक्खरेइ	1	26	99
आलिंगपुक्खरेइ	1	33	105
आलिंगपुक्खरेइ	1	49-50	119
आलिंगपुक्खरेइ	4	2	436
आलिंगपुक्खरेइ	5	32	635
आलिसंदग	2	37	176
आलिहइ	3	12	283
आलिहइ	5	58	667
आलिहित्ता	3	12	283
आलोअंता	3	178-179-F	402
आलोए	3	12	283
आलोए	5	46	643
आलोगभूआ	3	96	345
आवड	5	32	636
आवत्तकूडे	4	192	549
आवत्ता	4	35	453
आवत्ते	4	190	549
आवरणाणं	3	167-F	394
आवलिअ	2	4-A	125
आवलिआओ	2	4-A	125
आवसहं	3	19	292
आवसहं	3	31-B	307
आवाडचिलाया	3	109-H	360
आवाडचिल्लाहिं	3	109-H	360
आवाडा	3	103	349
आवाहाइ	2	30	173
आविद्धमणिसुवण्णे	3	9	277
आविद्धमाणिक्क	3	109-C	355
आविद्धविमलवरचिंधपट्टे	3	77	327
आविद्धवीरवलए	3	9	277
आवीकम्मं	2	71	215
आस	7	186	848
आसक्खंधग	7	133	794
आसखन्धसंठाणसंठिए	4	178	542
आसणं	3	56-57A	321
आसणे	2	89	226
आसत्तोसत्त	3	88-A	335
आसधरा	3	178-179-F	402
आसपुरा	4	212-A	565
आसयंति	1	13	41
आसयंति	1	30	101
आसयंति	2	7	137
आसरयणं	3	109-A	353
आसरयणं	3	109-G	359
आसरहं	3	21	294
आससयसहस्सा	3	178-179-E	400
आसाइ	2	35	175
आसाए	2	17	166
आसाए	2	18	167
आसाढाओ	7	113	777
आसाढाओ	7	129	788

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
आसाढाहिं	2	65-D	208
आसाढिं	7	146	811
आसाढिण्णं	7	140	808
आसाढिण्णं	7	149	812
आसाढी	7	137	801
आसाढी	7	155	816
आसाढीए	7	153	815
आसाढे	7	104	770
आसाढे	7	114	777
आसायणिज्जे	2	18	167
आसासणे	7	186	848
आसि	1	47	117
आसिअ	2	65-B	207
आसिअ	3	184	406
आसिअ	3	7	276
आसीविसे	4	212-A	564
आसीविसे	4	212-A	565
आसुरुत्ता	3	107	351
आसुरुत्ते	3	26-A	299
आसे	3	98	346
आसे	7	130	790
आसोई	7	137	801
आसोए	7	104	770
आहारं	2	146	256
आहारट्ठे	2	16-D	166
आहारत्थे	2	56	188
आहारपयाइं	7	50	733
आहारिस्सइ	2	146	256
आहावेंति	5	57	658
आहिए	7	33	727
आहुणिअ	3	98	346
आहुणिअ	5	5-D	616
आहुणिए	7	186	848
आहेवच्चं	3	221-B	427
इंगालए	7	186	848
इंगालभूअं	2	141	253
इंगालभूआ	2	132	244
इंगिअ	3	87	335
इंदग्गहाइ	2	43	179
इंदग्गी	7	130	790
इंदग्गी	7	186	848
इंदज्झय	3	3	268
इंदझ्झणे	7	57	737
इंदणील	3	35-A	314
इंदधणु	3	24	296
इंदनील	3	109-C	355
इंदभूई	1	5-6	20
इंदमहाति	2	31	173
इंदमुद्धाभिसित्ते	7	117	779
इंदे	7	130	790
इंदे	7	186	848
इंदो	3	185-B	408
इंदो	3	24	296
इक्कं	1	20	90
इक्कारसीए	2	71	215
इच्छा	7	120	780
इड्डतराए	2	18	167
इड्डतरिआ	2	17	167
इड्ढीहिं	2	64-D	203
इड्ढीहिं	3	185-A	407
इड्ढिसिआ	3	185-A	407
इड्ढीए	3	18	290
इड्ढीए	3	31-B	307
इणड्डे	7	184	846
इणमट्ठे	2	17	167
इत्थिरयणे	3	178-179-E	400
इत्थीरयणं	3	138-C	385
इत्थीरयणस्स	3	72-75	325
इब्भ	2	25	171
इरिआसमिए	2	68	210
इलादेवी	5	10	621
इलादेवीकूडे	4	275	606

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
इलादेवीकूडे	4	44	457
इसिमिव	3	109-F	357
इहपरलोए	2	70	213
ईतिबहुले	1	18	87
ईसर	2	25	171
ईसर	3	10	280
ईसर	3	126-A	375
ईसाण	7	122	782
ईसाणगाणं	5	49-B	647
ईसाणस्स	2	92	229
ईसाणस्स	4	221	575
ईसाणस्स	4	224	576
ईसाणस्स	5	59	670
ईसाणे	2	113	234
ईसाणे	2	119	236
ईसाणे	2	91	228
ईसाणे	5	60	670
ईसिणिया	3	11	281
ईहापोह	3	223	429
ईहामिग	1	37	107
ईहामिग	2	101	231
उऊ	2	4-C	126
उऊ	7	111	772
उऊ	7	126	784
उऊए	2	69	212
उक्कडवरमउड	3	31-A	305
उक्करं	3	12	283
उक्करं	3	13	288
उक्करं	3	212	423
उक्करं	3	28	303
उक्कि	3	93	340
उक्किडं	3	12	283
उक्किडं	3	212	423
उक्किड्डाए	3	26-B	301
उक्किड्डि	3	78	328
उक्कुडुअड्डिअ	2	133	246
उक्कोसपए	7	198	852
उक्कोसिआ	2	74	220
उक्खित्तं	5	57	658
उग्गमणमुहुत्तंसि	7	36	729
उग्गवई	7	121	781
उग्गाइ	2	17	167
उग्गाणं	2	65-D	208
उग्घोसेमाणे	5	22	629
उच्चत्तपज्जवेहिं	2	51	183
उच्चत्तेणं	1	23-A	94
उच्चत्तेणं	1	8	27
उच्चत्तेणं	2	45	180
उच्छण्णपडिच्छण्णा	2	8	137
उच्छोलन्ति	5	57	658
उज्जल	1	37	107
उज्जाणंसि	2	71	214
उज्जालंति	5	16	625
उज्जालेंति	2	108	233
उज्जालेह	2	107	233
उज्जु	2	15-A	158
उज्जु	2	15-E	161
उज्जुअ	2	15-C	159
उज्जोअभूआ	3	96	345
उज्जोवेंति	7	51	733
उज्झरबहुले	1	18	87
उट्ट	2	35	175
उट्ठाणकम्म	2	121	238
उट्ठाणकम्मबलवीरिअ	2	51	184
उड्डेतसूरसरिसं	3	35-C	317
उडुकल्लाणिआसहस्सा	3	178-179-E	400
उड्ढं	1	8	27
उड्ढजाणू	2	83	221
उड्ढलोगवत्थव्वाओ	5	6	616
उड्ढीमुहकलंबुआपुप्फ	7	31-A	720
उड्ढीमुहकलंबुआपुप्फ	7	33	726
उड्ढोववण्णगा	7	55	735

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
उण्णंदिज्जमाणे	3	186-A	409
उत्तमकट्ठपत्ताए	2	131	241
उत्तमकट्ठपत्ताए	2	52	184
उत्तमकट्ठपत्ताए	2	7	137
उत्तमा	7	120	780
उत्तमे	4	260	595
उत्तरओ	1	18	87
उत्तरकुरा	4	108	492
उत्तरकुरा	4	161	529
उत्तरकुरा	4	99	486
उत्तरकुरु	4	162	529
उत्तरकुरुकूडे	4	105	489
उत्तरकुरुसु	5	55	654
उत्तरकुरू	4	142	516
उत्तरकुरू	4	161	529
उत्तरड्ढभरहं	1	19	90
उत्तरड्ढभरहं	1	47	117
उत्तरड्ढभरहकूडे	1	34	105
उत्तरड्ढभरहे	1	48-A	117
उत्तरड्ढलोगाहिवई	5	48	645
उत्तरणं	3	79	328
उत्तरद्धकच्छस्स	4	172	537
उत्तरद्धकच्छे	4	173	539
उत्तरद्धलोगाहिवई	2	91	228
उत्तरपच्चत्थिमं	3	43	319
उत्तरपच्चत्थिमं	3	44-50	319
उत्तरपुरत्थिमे	1	3	18
उत्तरपोट्ठवयाविजयंसि	3	209	419
उत्तरफग्गुणि	7	128	786
उत्तरफग्गुणी	7	129	788
उत्तरफग्गुणी	7	163	820
उत्तरभद्दवया	7	128	786
उत्तरभद्दवया	7	129	788
उत्तरभद्दवया	7	139	807
उत्तरभद्दवया	7	142	809
उत्तरवाईणमभिजिअं	3	126-A	375
उत्तरवेउव्विअं	5	41	639
उत्तरवेउव्विएहि	3	209	419
उत्तराइं	7	134	795
उत्तराइं	7	135	798
उत्तराओ	7	113	777
उत्तराफग्गुणी	7	140	808
उत्तराफग्गुणी	7	148	812
उत्तराफग्गुणी	7	164	821
उत्तराभद्दवया	7	149	812
उत्तराभद्दवया	7	157	818
उत्तराभद्दवया	7	158	818
उत्तरासंगं	3	6	274
उत्तरासंगं	5	21	628
उत्तरासाढा	7	128	786
उत्तरासाढा	7	130	790
उत्तरासाढा	7	140	808
उत्तरासाढा	7	149	812
उत्तरासाढा	7	156	817
उत्तरासाढा	7	167	822
उत्तरासाढाणक्खत्तेणं	2	71	215
उत्तरासाढाहिं	2	85	223
उत्तरिल्लरुअगवत्थव्वाओ	5	11	622
उत्तरिल्लाए	1	26	99
उत्ताणगा	3	111	361
उत्तिमंगाओ	2	15-F	161
उदग	3	109-F	357
उदगं	5	55	653
उदगधाराए	3	12	283
उदहि	2	15-G	162
उदहीणं	5	52	651
उदीणदाहिणवित्थिण्णा	3	1	263
उदीणदाहिणवित्थिण्णे	1	18	87
उदीणपाईण	7	101	763
उदीणपाईणमुग्गच्छ	7	101	763
उद्दंडिअ	3	32-34 C	312
उद्दाइत्ता	6	4	678

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
उद्दाला	2	8	137
उद्धं	1	23-A	94
उद्धं	2	151	258
उद्धतरेणुयं	2	65-B	207
उद्धरेणू	2	6-C	131
उद्धरेणूइ	2	6-C	131
उद्धिअमलिएसु	3	221-B	427
उद्धुआए	3	26-B	301
उद्धुव्वमाणीहिं	3	18	290
उप्पण्णसमत्तरयणे	3	175-177	397
उप्पयंति	5	57	658
उप्पलगुम्मा	4	222	575
उप्पलहत्थगया	3	10	281
उप्पला	4	222	575
उप्पलाइं	5	55	653
उप्पलुज्जला	4	222	575
उप्पले	2	4-C	127
उप्पाइयसयाइं	3	104	350
उप्पिं	1	10	29
उप्पीलिअसरासणपट्टिए	3	77	327
उब्भडघडमुहा	2	133	245
उम्मग्गणिमग्गजलाओ	3	161	389
उम्मग्गणिमग्गजलाओ	3	97	345
उम्मत्तजला	4	202-B	556
उम्मत्तजला	4	202-C	557
उम्मिमालिणी	4	212-A	565
उम्मुक्कमणिसुवण्णे	3	20	292
उम्मुग्गजलाए	3	98	346
उरगवर	3	24	296
उरत्थं	3	36-42	318
उरालाहिं	2	64-E	204
उल्लपडसाडगा	3	125	373
उल्ला	3	22	295
उल्ला	3	36-42	318
उल्लालेमाणे	5	22	629
उल्लोअंसि	5	67	673
उल्लोए	5	34	636
उवकुलं	7	141	809
उवकुला	7	136	800
उवगरणं	2	69	212
उवगिज्जमाणे	3	187	410
उवगिज्जमाणे	3	82	333
उवचिअतय	2	146	256
उवचिअवंदणकलसं	3	7	276
उवट्ठाणसाला	3	12	283
उवट्ठाणसाला	3	135	381
उवट्ठाणसाला	3	17	289
उवट्ठाणसाला	3	5	272
उवणच्चिज्जमाणे	3	187	410
उवणच्चिज्जमाणे	3	82	333
उवत्थाणिअं	3	138-A	383
उवत्थाणिअं	3	56-57B	322
उवत्थाणीअं	3	26-B	301
उवदंसणे	4	263	599
उवदंसेइ	7	214	859
उवदिसइ	2	64-A	194
उवदिसित्ता	2	64-B	201
उवद्दवविरहिआ	2	40	177
उवयारं	3	12	283
उवयारियालयणा	4	118	499
उवरिल्लं	2	113	234
उवरिल्ले	4	253	593
उवलालि (लभि)ज्जमाणे	3	82	333
उवलालिज्जमाणे	3	187	410
उवले	4	254	593
उववण्णपुव्वा	7	212	857
उववाइअगमेणं	3	178-179-F	402
उववाइए	2	65-A	205
उववाइए	2	83	221
उववायं	2	71	215
उववायसभाए	4	140	513
उवसंतरयं	5	7-B	616

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
उवसंते	2	68	210
उवसग्गा	2	67	209
उवसमे	7	117	779
उवसमे	7	122	782
उवसोभिए	1	13	41
उवसोभिए	1	21	93
उवसोभिए	1	26	99
उवसोभिए	1	29	101
उवसोभिए	2	57	189
उवसोभेमाणा	2	8	137
उव्वट्टेंति	5	14	624
उव्विग्गा	3	111	361
उव्वेहेणं	1	23-A	94
उसभ	1	37	107
उसभ	2	101	231
उसभ	2	15-G	162
उसभकूडा	6	16	683
उसभकूडे	1	51	120
उसभकूडे	4	175	540
उसभसंठाणसंठिआ	4	97	483
उसभसामिवज्जा	2	156-157	259
उसभसेणपामोक्खाओ	2	74	220
उसभस्स	2	73	219
उसभाणं	2	62	193
उसभे	1	51	121
उसभे	2	156-157	259
उसभे	2	59	190
उसभे	2	64-A	194
उसहकूडे	3	135	380
उसहसंघयणदेहधारी	3	3	268
उसहे	2	63	194
उसुं	3	24	296
उसुमुदारं	3	131	378
उसुमुदारं	3	24	296
उस्सण्हसण्हिआइ	2	6-C	131
उस्सण्हसण्हिआओ	2	6-C	131
उस्सप्पिणिकाले	2	1	124
उस्सप्पिणिकाले	2	3	124
उस्सप्पिणी	2	6-G	136
उस्सासद्धा	2	4-A	125
उस्सीसगमूले	5	67	672
उस्सुक्कं	3	12	283
उस्सुक्कं	3	13	288
उस्सुक्कं	3	212	423
उस्सुक्कं	3	28	303
उस्सेहंगुलेइ	2	6-C	131
ऊसासो	2	4-A	125
ऊसिअझय	3	7	276
ऊसिअसेअज्झयं	3	35-C	317
ऊसिआइं	7	169	827
ए	1	13	41
एअण्णं	3	90	338
एअमाणत्तिअं	3	28	303
एअमाणत्तिअं	3	7	276
एका	2	53	187
एगणासा	5	10	621
एगराइए	2	70	213
एगसाडिअं	3	6	274
एगसाडिअं	5	21	628
एगसेलकूडे	4	198	550
एगसेले	4	197	550
एगावली	7	133	794
एगाहिआइ	2	43	179
एगिंदिअरयणसया	7	205	855
एगिंदियरयणा	3	220	425
एगूणपण्णं	2	49	181
एगूणवीसइभाए	1	18	87
एगूणवीसइभागे	1	20	90
एगूणवीसइभागे	1	23-B	95
एगूणासीइं	2	56	188
एडेंति	5	5-D	616
एडेइ	3	98	346

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
एणीजाणुण्णय	3	109-C	354
एतेणं	2	71	214
एत्थ	1	20	90
एत्थ	1	3	18
एरवए	6	13	682
एरवए	6	9	680
एरवयकूडे	4	275	606
एरावए	4	277	606
एरावओ	4	277	607
एरावणवाहणे	5	18	627
एरावय	4	142	516
एलग	2	35	175
एलगाइ	2	34	175
एलावच्चा	7	120	780
एवंकरणयाए	3	126-B	376
एवमाइक्खइ	7	214	859
ओअंसी	3	77	326
ओअवेऊण	3	81-B	331
ओअवेत्ता	3	76	326
ओअवेहि	3	128	377
ओअवेहि	3	76	326
ओगाहइ	3	36-42	318
ओगाहित्ता	7	3	692
ओघमेघं	2	141	252
ओघमेघं	3	115	364
ओघस्सरा	5	50	649
ओघस्सरा	5	52	651
ओचूलगणिअत्था	3	125	373
ओचूलगणिअत्था	3	126-A	374
ओभासेंति	7	49	732
ओमज्जायण	7	132	793
ओमुअइ	2	65-C	207
ओमुअइ	3	224	430
ओमोअं	3	6	274
ओयवणं	3	129	377
ओयवेइ	3	175-177	398
ओयवेत्ता	3	175-177	398
ओरालाहिं	3	185-A	407
ओवमिए	2	4-C	127
ओवमिए	2	5	129
ओवयंति	5	57	658
ओवलित्तं	3	184	406
ओवाय	2	38	176
ओसण्णं	2	133	246
ओसण्णं	2	135	249
ओसप्पिणिकाले	2	1	124
ओसप्पिणिकाले	2	2	124
ओसप्पिणी	2	6-G	136
ओसप्पिणीउस्सप्पिणी	2	6-G	136
ओसप्पिणीए	2	156-157	259
ओसही	4	200	552
ओसहीओ	2	131	242
ओसोवणिं	5	46	644
ओसोवणिं	5	67	672
ओहयणिहएसु	3	221-B	427
ओहयमणसंकप्पा	3	105	350
ओहस्सरा	2	16-A	164
ओहिं	2	90	226
ओहिं	2	93	229
ओहिणा	2	90	226
ओहिनिकरं	5	58	668
ओहिनिगरं	3	12	283
कंकग्गहणी	2	16-B	164
कंकडगणि	3	35-A	314
कंका	2	137	250
कंगु	2	37	176
कंगु	3	119-B	369
कंचण	1	37	107
कंचण	3	12	283
कंचण	4	204	559
कंचणकलस	2	15-C	160
कंचणकोसी	7	178-B	836

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
कंचणगपव्वया	4	142	516
कंचणगपव्वया	6	10	680
कंचणमणि	3	24	296
कंचणम्मि	2	70	213
कंटएसु	3	221-B	427
कंटकबहुले	1	18	87
कंटग	2	39	177
कंडूइअविकयतणू	2	133	246
कंत	2	15-C	159
कंता	2	15-H	162
कंतार्हि	2	64-E	204
कंतार्हि	3	185-A	407
कंतिरूवसोहग्गगुणेर्हि	3	186-A	409
कंदप्पिआ	3	178-179-F	402
कंदमंतो	2	8	137
कंदल	3	35-B	316
कंदे	4	7	438
कंबुवरसरिसगीवाओ	2	15-D	160
कंसताल	3	31-B	307
कंसेइ	2	24	171
कइ	1	15	63
कइ	1	34	105
कइविहा	2	50	183
ककुहसालीणं	7	178-C	839
कक्केयण	3	109-C	355
कक्केयण	3	35-A	314
कक्ख	2	15-D	160
कच्चायणे	7	132	793
कच्छकूडे	4	180	543
कच्छगावती	4	187	548
कच्छभ	4	25	448
कच्छभाइण्णे	2	134	248
आउबहुले	2	134	248
कच्छभि	3	31-B	307
कच्छसागरे	4	162	529
कच्छस्स	3	81-B	331
कच्छावइकूडे	4	186	547
कच्छूखसराभिभूआ	2	133	245
कच्छे	4	167	534
कच्छे	4	172	538
कच्छे	4	172	538
कच्छे	4	177	541
कज्जलप्पभा	4	223	576
कज्जोवए	7	186	848
कड्डं	3	98	346
कड्डं	5	5-D	616
कडं	2	71	215
कडएसुं	3	95-C	343
कडग	3	109-F	358
कडग	3	9	277
कडगाणि	3	133-134	380
कडगाणि	3	26-B	301
कडगाणि	3	26-B	301
कडगाणि	3	36-42	318
कडगाणि	3	44-50	320
कडगाणि	3	64-67	324
कडाणं	1	13	42
कडिसुत्तसुकयसोहे	3	9	277
कडुअ	2	145	255
कडुओ	7	112	775
कडुच्छुअं	3	12	283
कडुच्छुगाणं	5	55	653
कणइरगुम्मा	2	10	138
कणकणारावं	5	24	631
कणग	2	64-C	202
कणग	3	35-B	316
कणग	3	35-B	316
कणग	4	210	563
कणगकूडे	4	210	562
कणगतविअ	3	35-C	317
कणगरयण	3	24	296
कणगरयणचित्तं	3	35-B	316

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
कणगरुअग	2	15-C	159
कणगसणामा	7	186	848
कणय	3	31-B	307
कणयखिंखिणी	3	35-C	317
कणयमयाष्ट	1	46-B	115
कणवीर	3	12	283
कणवीर	5	58	667
कणवीरमउल	2	15-E	161
कण्डा	4	253	593
कण्ण	2	64-E	204
कण्ण	3	32-34 B	311
कण्णिगा	4	7	438
कण्णिल्ले	7	132	793
कण्णोट्ठ	2	43	178
कत्तिअ	7	113	776
कत्तिआ	7	128	786
कत्तिआ	7	140	807
कत्तिआ	7	149	812
कत्तिआ	7	159	819
कत्तिआ	7	160	818
कत्तिइण्णं	7	140	807
कत्तिइण्णं	7	144	810
कत्तिइण्णं	7	149	812
कत्तिगी	7	137	801
कत्थइ	2	69	212
कत्थुलगुम्मा	2	10	138
कद्दम	3	109-F	357
कद्दव	2	37	176
कप्पणि	3	31-B	307
कप्परुक्खए	3	9	277
कप्पिअहार	3	9	277
कप्पेन्ति	5	13	623
कप्पेमाणा	2	134	249
कप्पोववण्णगा	7	55	735
कब्बड	3	18	290
कब्बड	3	31-B	307

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
कब्बड	3	81-A	330
कब्बडसहस्साणं	3	221-A	426
कब्बुरए	7	186	848
कमंडलु	2	15-G	162
कमइ	2	6-A	129
कमलामेलं	3	109-A	353
कमलामेलं	3	109-G	359
कम्मं	7	112	775
कम्मगरदारए	5	5-C	614
कम्मयरएइ	2	26	172
कम्मरयविकिरणकरं	3	223	429
कम्मसंगणिग्घायणट्ठाए	2	70	213
कम्माणं	1	13	42
कम्माणं	2	64-A	194
कम्माणि	3	167-E	393
कयकोउअ	3	82	333
कयग्गहगहिअ	3	12	283
कयबलिकम्मे	3	59-58	323
कयमालए	1	24	97
कयमालए	1	46-B	115
कयमालकवत्तव्वया	3	150	387
कयमालया	6	16	683
कयमालस्स	3	69-71	325
कयमालस्स	3	84-85	334
कयमाला	2	8	137
कयलीखंभाइरेक	2	15-B	159
कयलीहरगाणं	5	13	623
कयवरं	5	5-D	616
कयाइ	1	47	117
कर	2	15-I	163
करणा	7	123	782
करणा	7	126	784
करधाणुत्थिदेण	3	31-B	307
करयलपब्भट्ठ	3	12	283
करयलपरिग्गहिअं	3	26-B	301
करयलपल्हत्थमुहा	3	105	350

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
करयलसंपुडेणं	5	14	624
करवाणीतूवड्ढई	3	32-34 D	313
करेंते	2	65-A	205
करेइ	1	5-6	20
कल	2	37	176
कल	3	31-B	307
कलस	2	15-G	162
कलस	3	12	283
कलसे	5	55	653
कलह	2	133	245
कलह	2	42	178
कलहंस	2	12-B	140
कलाओ	2	64-A	194
कल्लाणं	1	13	42
कल्लाणगपवर	3	9	277
कल्लाणाणं	1	13	42
कल्लाणाहिं	2	64-E	204
कवए	3	99	347
कवड	2	133	245
कवय	3	31-A	305
कवाडघण	1	24	97
कवाडे	3	83	334
कवाडोहाडिआओ	1	24	97
कविट्ठ	3	119-B	369
कविल	2	12-B	140
कविलपलिअकेसा	2	133	245
कविसीसगा	4	114	497
कवोयपरिणामा	2	16-B	164
कव्वस्स	3	167-F	394
कसणिवाय	3	109-C	354
कसाय	2	145	255
कसिण	2	15-C	159
कसिणफालिआमय	7	178-B	836
कसिणे	2	71	215
कसिणे	3	223	429
कसेण	2	67	209
कहग	2	32	174
कहि	1	7	24
कहिओ	1	4	19
काए	2	67	209
कागणिरय	3	94	340
कागणिरयणं	3	135	380
कागणिरयणे	3	178-179-C	399
कामकामिणो	2	16-C	165
कामगमाण	7	178-B	837
कामगमे	5	49-A	646
कामत्थिआ	3	185-A	407
कायसमिए	2	68	210
कारंडव	2	12-B	140
कारणं	7	214	859
कारवाहिआ	3	185-A	407
कारवेंति	3	13	288
कारोडिआ	3	185-A	407
काल	3	24	296
काल	3	31-B	307
कालओ	2	69	212
कालओ	7	210	856
कालगए	2	89	226
कालण्णाणं	3	167-E	393
कालन्नाणे	3	32-34 B	311
कालमासे	2	136	250
कालमासे	2	49	181
कालमुहे	3	81-A	330
कालहेर्सि	3	109-F	358
कालागुरु	3	12	283
कालायस	3	109-G	359
कालिंग	3	119-B	369
काले	2	1	124
काले	3	167-B	392
काले	3	167-E	393
कालेणं	1	2	18
कासप्पगासधवलेहिं	3	35-B	316

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
कासव	7	132	793
कासाइ	2	43	179
कासित्ता	2	49	181
काहार	7	133	794
किंगोत्ते	7	132	793
किंचिविसेसूणे	1	48-C	118
किंत्थुग्घं	7	123	782
किंदेवयाए	7	130	790
किंपुरिसेण	3	115	364
किंसंघयणी	2	46	180
किंसंठिआ	2	47	180
किंसंठिआ	7	31-A	720
किंसंठिए	1	7	24
किंसंठिए	7	133	794
किंसंठिए	7	176	832
किच्छप्पाणोवगयं	3	108	352
किणित	3	31-B	307
किण्णं	3	124	372
किण्णरेण	3	115	364
किण्हचामरज्झया	4	29	451
किण्हब्भराइसंगय	2	15-F	161
किण्हा	1	23-C	96
किण्हेहिं	1	13	41
किण्हेहिं	2	7	137
किण्होभासा	1	23-C	96
कित्ति	4	263	599
कित्तिधारक	3	126-A	374
कित्तिमेहिं	1	21	93
कित्तिमेहिं	1	26	99
कित्तिमेहिं	1	49-50	119
कित्तिमेहिं	2	147	257
कित्तिमेहिं	2	57	189
किन्नर	1	37	107
किब्बिसिआ	3	185-A	407
किमायारभावपडोयारे	1	7	24
किमाहारिस्संति	2	134	248

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
किवणबहुले	1	18	87
किसीइ	2	23	170
कीलंता	3	178-179-F	402
कीलंति	1	13	42
कुंचिअ	2	15-D	160
कुंजर	1	37	107
कुंजर	3	3	268
कुंडप्पवहाओ	6	18	684
कुंडल	3	3	268
कुंडल	3	6	274
कुंडलउज्जोइआणणे	3	9	277
कुंडलजुअल	5	67	672
कुंडलाणि	3	26-B	301
कुंडलाणि	3	26-B	301
कुंडे	4	25	447
कुंतग्गाहा	3	178-179-E	400
कुंद	2	15-E	161
कुंद	3	12	283
कुंद	3	35-B	316
कुंद	5	58	667
कुंदगुम्मा	2	10	138
कुंभग्गसो	2	109	233
कुंभट्ठसहस्सं	3	141-148	387
कुंभट्ठसहस्सं	3	56-57B	322
कुंभसहस्साइं	3	120	370
कुंभीए	3	92	339
कुकुइआ	3	178-179-F	402
कुच्छि	2	43	179
कुच्छिसि	2	63	194
कुच्छी	2	6-D	132
कुज्जयगुम्मा	2	10	138
कुट्टिमतले	3	9	277
कुड्डणासण	2	133	246
कुडय	3	35-B	316
कुणिमं	2	146	256
कुणिमाहारा	2	135	249

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
कुणिमाहारा	2	136	250
कुण्डला	4	202-B	557
कुत्थेज्जा	2	6-F	135
कुद्दाला	2	8	137
कुप्पमाणकुसंठिआ	2	133	246
कुप्परा	3	22	295
कुप्परा	3	36-42	318
कुबेरावसाणो	3	217	424
कुबेरो	3	186-B	410
कुभोइणो	2	133	246
कुमारग्गहाइ	2	43	179
कुमारवासमज्झे	2	64-A	194
कुमारवासमज्झे	2	87	224
कुमारवासमज्झे	3	225	431
कुमुअ	2	15-E	161
कुमुअ	4	25	448
कुमुए	4	212-A	565
कुमुदप्पभा	4	221	574
कुमुदसंडधवलं	3	117-B	366
कुमुदा	4	221	574
कुमुदे	4	212-A	564
कुमुदे	4	225	576
कुम्भ	3	3	268
कुम्भिक्के	5	38	637
कुम्म	2	15-G	162
कुम्मचारुचलणा	2	14	152
कुम्मसंठिअ	2	15-A	158
कुम्मो	2	68	210
कुरंग	2	35	175
कुरज्जाणं	3	221-B	427
कुरा	4	108	492
कुरूवा	2	133	246
कुल	7	128	786
कुल	7	167	822
कुलं	7	142	809
कुलक्खया	2	43	179
कुलगरवज्जा	2	156-157	259
कुलगरस्स	2	63	194
कुलगरा	2	156-157	259
कुलगरा	2	59	190
कुलगराणं	2	60	192
कुलत्थ	2	37	176
कुलत्थ	3	119-B	369
कुलदेवया	3	111	361
कुलरोगाइ	2	43	178
कुला	7	136	800
कुलोवकुलं	7	141	809
कुलोवकुला	7	136	800
कुवल	2	15-E	161
कुविआ	3	107	351
कुविए	3	26-A	299
कुवुड्ढिबहुले	1	18	87
कुस	3	3	268
कुसला	2	15-I	163
कुसविकुस	2	8	137
कुसुंभ	2	37	176
कुसुमणिगरस्स	3	12	283
कुसुमसंभवे	7	114	777
कुसुमा	2	53	187
कुसुमेंति	2	10	138
कुसेज्ज	2	133	246
कूड	2	133	245
कूडसामलिपेढे	4	208	561
कूडा	1	34	105
कूडा	1	46-C	115
कूडा	4	105	489
कूडा	4	180	543
कूडा	4	44	457
कूडा	4	79	473
कूडा	4	96	483
कूडा	6	6	678
कूडाइं	4	172	538

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
कूडाई	4	269	602
कूडागारसंठिआ	2	20	168
कूडाविव	7	58	737
कूडे	4	156	525
कूले	3	15	289
कूवग्गाहा	3	178-179-E	401
केऊर	3	6	274
केमहालए	1	7	24
केमहालए	7	26	715
केमहालया	7	26	715
केरिसए	1	21	92
केरिसए	1	26	99
केरिसए	2	14	152
केलाससिहरिसिंगभूअं	3	186-B	410
केवइअं	2	45	180
केवइए	1	17	86
केवइकालस्स	2	16-D	166
केवलवरनाणदंसणे	3	223	429
केवलिपरिआगं	3	225	431
केवलिपरिआयं	2	88	224
केवली	2	71	215
केस	2	133	245
केसर	3	24	296
केसरा	4	7	438
केसरिद्दहो	4	262	597
केसुअ	3	35-C	317
कैलासं	3	217	424
कोंचस्सरा	2	16-A	164
कोंचस्सरा	5	52	651
कोंचारवं	3	89	337
कोंडलग	2	12-B	140
कोंत	3	3	268
कोंत	3	35-B	316
कोइलमहुरगिरं	2	15-H	162
कोउअसएहिं	3	9	277
कोऊहलवत्तियं	5	27	633
कोकंतिय	2	36	175
कोकासिअ	3	109-D	356
कोज्जंग	5	58	667
कोज्जय	3	12	283
कोट्टणीसु	3	32-34 B	311
कोट्ठ	3	32-34 C	312
कोट्ठसमुग्गे	3	11	282
कोट्ठागारं	2	64-C	202
कोडिमं	3	24	296
कोडीए	1	20	90
कोडीए	1	20	90
कोडीए	1	23-A	94
कोडुंबिअ	2	25	171
कोडुंबिअपुरिसा	3	16	289
कोडुंबिअपुरिसे	3	15	289
कोडुंबिअपुरिसे	3	21	293
कोडुंबिअपुरिसे	3	7	276
कोत्थुंभरि	3	119-B	369
कोदंडिमं	3	12	284
कोद्दव	3	119-B	369
कोमल	2	15-D	160
कोमुईरयणिअर	2	15-F	161
कोरंटपत्त	5	58	667
कोरंटय	3	12	283
कोरंटयगुम्मा	2	10	138
कोरग	2	12-B	140
कोलवं	7	123	782
कोलवं	7	125	783
कोलवे	7	125	783
कोलसुणगा	2	136	250
कोलसुणगाइ	2	36	175
कोलाहलभूए	2	131	242
कोसं	2	64-C	202
कोसलिअस्स	2	73	219
कोसलिए	2	63	194
कोसलिए	2	64-A	194

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
कोसलिए	2	65-A	205
कोसलिए	2	66	209
कोसलिए	2	67	209
कोसिय	7	132	793
कोसे	1	7	25
कोहे	2	69	212
खंडग	4	172	538
खंडगणिएणं	6	7	678
खंडगप्पवायगुहाए	3	154-160	389
खंडगप्पवायगुहाए	3	162	390
खंडप्पवायकूडस्स	1	41	113
खंडप्पवायगुहा	1	24	97
खंडप्पवायगुहा	3	150	387
खंडप्पवायगुहाओ	6	16	683
खंडप्पवायगुहाकूडे	1	34	105
खंडप्पवायगुहाभिमुहे	3	149	387
खंडा	6	6	678
खंडेइ	2	17	166
खंतिखमाए	3	109-F	357
खंतिखमे	2	64-F	205
खंतीए	2	71	215
खंतुमरुहंतु	3	126-B	376
खंद	2	31	173
खंदग्गमहाइ	2	43	179
खंधावारं	3	32-34 D	313
खंधावारणिवेसं	3	180-182	405
खंधावारे	3	95-B	342
खंभा	4	26	449
खंभुग्गय	1	37	107
खग्ग	3	31-B	307
खग्गपुरा	4	212-A	565
खग्गरयणं	3	109-G	359
खग्गी	4	200	552
खचिअ	1	37	107
खज्जूरीवणाइं	2	9	138
खड्डाबहुले	1	18	87
खणलवदिवसा	7	112	775
खण्डप्पवायगुहाए	4	35	453
खत्तमेहा	2	131	242
खत्तिआणं	2	65-D	208
खरतिक्खणक्ख	2	133	245
खरफरुसधूलिमइला	2	131	242
खरफरुससामवण्णा	2	133	245
खरमुहि	3	12	283
खरमुहि	3	31-B	307
खलंतविब्भलगई	2	133	246
खले	2	69	212
खहयरे	2	131	242
खाणुबहुले	1	18	87
खाणू	2	39	177
खाय	3	32-34 C	312
खार	2	42	178
खारमेहा	2	131	242
खित्तओ	2	69	212
खीणे	2	6-F	135
खीरमेहे	2	142	253
खीरोदए	5	55	653
खीरोदगं	5	55	653
खीरोदगसमुद्दाओ	2	97	231
खीरोदगेणं	2	111	233
खीरोदा	4	212-A	564
खीलग	7	133	794
खु	3	24	296
खुज्जा	3	11	281
खुज्जाओ	3	87	335
खुड्डगमहिंदज्झया	4	136	512
खुड्डाहारा	2	135	249
खुरचलणचच्चपुडेहिं	3	109-E	356
खुरप्पथालपरिगए	3	30	304
खेड	3	18	290
खेड	3	31-B	307
खेड	3	81-A	330

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
खेडकब्बडमडंब	2	131	242
खेडग	3	35-B	316
खेडयवरवम्म	3	31-A	305
खेडसहस्साणं	3	221-A	427
खेड्डकारगा	3	178-179-F	402
खेत्तं	7	20	701
खेत्ते	2	69	212
खेमंकराणं	2	60	192
खेमंकरे	2	59	190
खेमंधर	2	61	192
खेमंधरे	2	59	190
खेमपुरा	4	181	544
खेमपुरा	4	200	552
खेमा	4	200	552
खेमाए	4	177	541
खेमाणामं	4	177	541
खेवणि	3	31-B	307
खोद्दाहारा	2	136	250
खोमजुअलं	5	67	672
गंगप्पवाए	4	25	447
गंगप्पवायकुंडस्स	4	35	453
गंगा	4	23	446
गंगा	6	19	684
गंगाईणं	5	55	653
गंगाए	3	1	263
गंगाए	3	14	288
गंगाए	3	15	289
गंगाए	4	33	452
गंगाकुंडस्स	1	51	120
गंगाकुण्डे	4	176	540
गंगादीवे	4	31	452
गंगादेवीकूडे	4	44	457
गंगादेवीभवणाभिमुहे	3	140	387
गंगामहाणई	4	35	453
गंगावत्त	2	15-C	159
गंगावत्तणकूडे	4	23	446

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
गंगासिंधुवज्जाइं	2	131	242
गंगासिंधूओ	2	133	246
गंगासिंधूओ	2	134	248
गंगासिंधूहिं	1	18	87
गंथिम	3	210-211-B	422
गंध	3	11	281
गंध	3	12	282
गंध	3	12	283
गंध	3	9	278
गंधकासाइअ	3	9	277
गंधपज्जवेहिं	2	51	183
गंधमायणे	4	107	491
गंधवट्टिभूअं	3	7	276
गंधव्व	7	122	782
गंधव्वेण	3	115	364
गंधिलावइकूडे	4	105	489
गंधिलावई	4	212-A	565
गंधुत्तमाणुविद्धं	3	12	283
गंधुद्धुआभिरामं	3	7	276
गंधेहि	2	120	237
गंधेहि	3	88-A	335
गंधेहिं	3	12	283
गंधो	1	13	41
गंधो	2	7	137
गंधोदएहिं	3	9	277
गंभीरतुल्लघोसं	3	35-B	316
गंभीरमहुरयरसद्दं	5	22	629
गंभीरमालिणी	4	212-A	565
गंभीरविअडणाभा	2	15-C	159
गंभीरे	2	68	210
गइं	2	71	215
गइकल्लाणाणं	2	81	221
गइरइआ	7	55	735
गइसमावण्णगा	7	55	735
गई	5	21	629
गगणमिव	2	68	210

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
गगणवल्लभ	1	26	99
गज्जंति	5	57	658
गज्जिअं	3	104	350
गड्ड	3	88-B	336
गड्डाइ	2	38	176
गणणायग	3	9	278
गणधम्मे	2	129	241
गणधराणं	2	95	230
गणनायग	3	77	327
गणहरचिइगाए	2	114	235
गणहरसरीरगाइं	2	100	231
गणहरा	2	73	219
गणहराणं	2	96	230
गणिअप्पहाणाओ	2	64-A	194
गणिअस्स	3	167-C	392
गणिआवरणाडइज्ज	3	12	284
गणिए	2	4-C	127
गन्धकासाईए	5	58	667
गन्धमायणकूडे	4	105	489
गन्धमायणे	4	103	488
गन्धवट्टएणं	5	14	624
गन्धव्वाणीएण	5	41	639
गन्धावई	4	266	600
गन्धिले	4	212-A	565
गन्धोदएणं	5	14	624
गब्भं	2	85	223
गब्भिणि	3	32-34 B	311
गमणाए	3	9	278
गमो	3	3	267
गय	2	65-B	207
गय	3	15	289
गयतालु	3	35-C	317
गयदंत	3	35-B	316
गयदंत	7	133	794
गयदन्तसंठाणसंठिए	4	103	488
गयरूवधारीणं	7	178-B	837
गयवति	3	126-A	375
गयविक्कमे	7	133	794
गयाओ	3	11	281
गराइ	7	123	782
गराइ	7	125	783
गरुलदेवे	4	208	561
गलकपोला	2	15-D	160
गवक्ख	2	20	168
गवक्खकडए	1	9	29
गवक्खकडए	4	6	437
गवक्खकडएणं	1	9	29
गवय	2	35	175
गवेलए	2	131	242
गवेसणं	3	223	429
गह	1	24	97
गहविमाणे	7	191	851
गाउअं	2	6-D	132
गागर	3	3	268
गाममारीइ	2	43	179
गामरोगाइ	2	43	178
गामा	3	31-B	307
गामाऽऽगर	3	18	290
गामाऽऽगरणगर	2	131	242
गामाइ	2	22	169
गामे	2	69	212
गायंता	3	178-179-F	402
गायपल्हायणिज्जे	2	18	167
गायसरीरे	3	82	333
गावीइ	2	34	175
गाहावइकुंड	4	182	544
गाहावइरयणं	3	186-A	409
गाहावइरयणे	3	119-B	369
गाहावइरयणे	3	178-179-E	400
गाहावई	4	183	545
गाहेहिंति	2	134	249
गिम्हाणं	2	64-C	202

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
गिरि	2	131	242
गिरि	2	15-G	162
गिरि	3	32-34 C	312
गिरिकुमारस्स	4	52	461
गिरिदरीसुलंघण	3	109-F	358
गिरिराया	4	260	595
गिरिवर	3	3	268
गिरिवर	3	88-B	336
गिल्लि	2	33	174
गुंजद्ध	3	35-C	317
गुच्छ	2	12-B	140
गुच्छ	2	131	242
गुच्छबहुले	1	18	87
गुणड्ढे	3	32-34 C	312
गुणहर	3	126-A	374
गुत्तबंभयारी	2	68	210
गुत्तिंदिए	2	68	210
गुत्तीए	2	71	215
गुम्म	2	131	242
गुम्मबहुले	1	18	87
गुरुणिओगविणयरहिआ	2	133	245
गुरुलहुपज्जवेहिं	2	51	183
गुलुगुलाइअ	3	31-B	307
गुलेइ	2	17	166
गुहाओ	1	24	97
गेअं	5	57	658
गेविज्जगं	3	36-42	318
गेहाइ	2	21	169
गेहाव (य) णाइ	2	21	169
गेहे	2	69	212
गोअम	7	132	793
गोअमा	2	131	242
गोअमे	1	5-6	20
गोउर	2	20	168
गोकण्णमाइआ	2	35	175
गोण	2	35	175
गोत्त	7	128	786
गोत्तसंठाण	7	167	822
गोत्तेणं	1	5-6	20
गोपुच्छ	4	45	458
गोपुच्छवट्ट	2	15-D	160
गोपुच्छसंठाणसंठिए	1	35	106
गोपुच्छसंठाणसंठिए	1	51	120
गोपुच्छसंठाणसंठिए	4	213-B	569
गोपुच्छसंठाणसंठिया	1	8	27
गोमाणसिआओ	4	130	509
गोलवट्टसमुग्गएसु	7	185	846
गोलव्वायण	7	132	793
गोलसमुग्गएसु	2	120	237
गोवल्ले	7	132	793
गोसीस	3	7	276
गोसीस	3	82	333
गोसीस	3	9	277
गोसीसचंदणं	3	133-134	380
गोसीसचंदणकड्डइं	5	14	624
गोसीसचंदणेणं	3	12	283
गोसीसचन्दणं	5	55	654
गोसीसवरचंदणकड्डइं	2	95	230
गोसीसवरचंदणकड्डइं	2	96	230
गोसीसवरचंदणेणं	2	99	231
गोसीसावलि	7	133	794
गोसीसावलिसंठिए	7	133	794
गोहूम	2	37	176
गोहूम	3	119-B	369
घंटं	5	22	629
घंटिअगणेहिं	2	64-D	203
घट्ठ	1	8	27
घडे	1	23-C	96
घडमुहपवत्तएणं	4	23	446
घडेंति	5	16	625
घणं	5	57	657
घणघणघणेंत	3	31-B	307

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
घणसिंगग्ग	3	24	296
घण्टा,	5	52	651
घत्तामो	3	107	351
घत्तेह	3	114	363
घयमधुं	2	109	233
घयमेहे	2	143	254
घरग्गा	1	13	41
घायएइ	2	28	172
घोलंतभूसणधरे	3	6	274
घोसेह	3	212	423
चंगेरी	3	11	281
चंचलायमाणं	3	24	296
चंडानिलपहत	2	131	242
चंडिक्किआ	3	107	351
चंडिक्किए	3	109-A	353
चंडिक्किए	3	26-A	299
चंद	1	24	97
चंद	2	15-E	161
चंद	3	35-B	316
चंदजोग्गो	7	134	795
चंदण	3	7	276
चंदणाणुलित्तगत्ते	3	9	277
चंदणाणुलेवणे	2	70	213
चंदणुक्खित्त	3	82	333
चंदद्दहोत्थ	4	142	516
चंदप्पभ	3	12	283
चंदप्पभ	3	88-A	336
चंदप्पभा	2	13	141
चंदप्पभा	7	183	845
चंदमंडलं	7	177	833
चंदमंडलाओ	7	64	739
चंदमंडलेहिं	7	97	758
चंदमण्डला	7	61	739
चंदरविजोगा	7	128	786
चंदवडेंसए	7	184	846
चंदविमाणे	7	173	830
चंदविमाणे	7	187	850
चंदसंवच्छरस्स	7	105	772
चंदा	2	131	242
चंदा	3	3	268
चंदा	7	1	690
चंदाइआ	7	126	784
चंदाभ	2	62	193
चंदाभे	2	59	190
चंदिमसूरिआणं	7	168-B	827
चंदे	7	105	770
चंदे	7	111	772
चंदो	2	68	210
चंदो	3	185-B	408
चंपकगुम्मा	2	10	138
चंपग	3	12	283
चंपग	5	58	667
चंपगवणे	4	116	498
चइत्ता	2	64-C	202
चइत्ता	2	64-C	202
चउक्क	3	212	423
चउच्चामर	3	9	277
चउत्थभत्तस्स	2	56	188
चउत्थाहिआइ	2	43	179
चउदसण्हं	3	221-A	426
चउदसपुव्वीसंपया	2	78	220
चउप्पडोआरे	4	99	486
चउप्पय	2	131	242
चउप्पयं	7	123	782
चउरंगुलपोरिसीए	7	156	817
चउरंसपसत्थ	2	15-F	161
चउरंससंठाणसंठिअं	3	95-A	341
चउरंसा	1	31	102
चउरक्की (गमणा)	2	73	219
चउरासीइं	2	4-C	127
चउव्विहे	2	69	212
चउसट्ठिपिट्ठकरंडुगा	2	56	188

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
चउसट्ठिविकप्प	3	32-34 C	312
चक्क	2	15-D	160
चक्क	3	3	268
चक्कट्ठपइट्ठाणा	3	167-G	395
चक्कणेमीसंठिआइं	3	95-C	343
चक्कपुरा	4	212-A	565
चक्करयणं	3	5	272
चक्करयणदेसिअमग्गे	3	22	295
चक्करयणप्पहाणे	3	175-177	397
चक्करयणस्स	3	12	283
चक्करयणे	3	14	288
चक्करयणे	3	178-179-C	399
चक्करयणे	3	4	272
चक्करयणे	3	9	278
चक्कवट्टिवंसे	2	124	239
चक्कवट्टिविजए	4	199	551
चक्कवट्टिविजए	5	1	608
चक्कवट्टिविजए	6	14	682
चक्कवट्टिविजया	6	16	683
चक्कवट्टी	2	125	239
चक्कवट्टी	7	199	853
चक्कवाय	2	12-B	140
चक्कवाल	1	26	99
चक्किअ	2	64-D	203
चक्किआ	3	185-A	407
चक्खुदयाणं	5	21	629
चक्खुप्फासं	7	20	702
चक्खुप्फासं	7	79	748
चक्खुमं	2	59	190
चक्खुमं	2	61	192
चच्चए	3	88-A	335
चच्चर	3	212	423
चडगर	3	17	289
चडगर	3	78	328
चणग	3	119-B	369
चन्दरविजोगा	7	167	822
चन्दाए	7	184	846
चन्दे	4	212-A	565
चमर	1	37	107
चमर	2	35	175
चमरंसि	5	50	649
चमरचञ्चाए	4	165	532
चमरचञ्चाए	5	50	649
चमरे	2	113	234
चमरे	5	50	649
चमरो	2	119	236
चमरो	3	185-B	408
चम्मरयणं	3	117-A	365
चम्मरयणं	3	78	328
चम्मरयणं	3	79	328
चम्मरयणसमारूढे	3	121	371
चम्मरयणे	3	178-179-C	399
चरंति	7	1	690
चरग	3	109-D	356
चरा	7	124	783
चरिंसु	7	1	690
चरित्तेणं	2	71	215
चरिस्संति	7	1	690
चलंत	3	31-A	305
चलजीवं	3	24	296
चलण	2	15-I	163
चलणिबहुला	2	132	244
चलिअं पासइ	3	56-57A	321
चलिए	2	89	226
चवलं	3	6	274
चवलसिग्घगामीहिं	3	35-B	316
चवलाए	3	26-B	301
चाउग्घंटं	3	21	294
चाउरंगिणिं	3	15	289
चाउरंगिणिं	3	21	293
चाउरंगिणिं	3	31-A	305
चाउरंगिणीए	3	78	328

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
चाउरंतचक्कवट्टिस्स	2	18	167
चाउरंतचक्कवट्टी	3	2	267
चाउरंतचक्कवट्टी	3	26-B	301
चाउस्सालए	5	13	623
चाटुकारगा	3	178-179-F	402
चामर	2	15-G	162
चामर	3	31-A	305
चामरग्गाहा	3	178-179-E	400
चामरच्छाय	7	132	793
चामरवाल	3	24	296
चामरहत्थ	3	11	281
चामरा	3	35-B	316
चामरुक्खेवं	5	46	644
चामीयरपागारा	3	1	263
चारं	7	171	829
चारं	7	175	831
चारड्डिईआ	7	55	735
चारुवेसा	2	15-I	163
चारोववण्णगा	7	55	735
चाव	3	31-B	307
चावग्गाहा	3	178-179-E	400
चावरुइल	2	15-F	161
चिंतासोगसागरं	3	105	350
चिंतिअ	3	87	335
चिंतिए	3	26-A	299
चिंतिए	3	56-57A	321
चिंतेमाणस्स	3	188	411
चिंधेहिं	3	178-179-E	401
चिअत्तदेहे	2	67	209
चिइगाओ	2	95	230
चिट्ठंति	1	13	41
चिट्ठंति	2	60	192
चिट्ठंति	2	7	137
चिट्ठई	1	19	90
चिट्ठिअ	2	15-I	163
चित्तकणगा	5	12	622
चित्तकूडा	6	10	680
चित्तकूडे	4	178	542
चित्तकूडे	4	180	543
चित्तगा	2	136	250
चित्तगुत्ता	5	9	620
चित्तचारुभासी	3	77	326
चित्तबहुले	2	64-C	202
चित्तलंगमंगा	2	133	245
चित्तविचित्तकूडाणामं	4	206	560
चित्ता	5	12	622
चित्ता	7	128	786
चित्ता	7	140	808
चित्ता	7	149	812
चित्ता	7	164	821
चित्ता	7	165	821
चित्ताणं	5	55	653
चित्तेण	3	24	296
चिलाइ	3	11	281
चिलाइआओ	3	87	335
चिलाया	3	103	349
चिल्ललगा	2	136	250
चीवरधारी	2	66	209
चुए	7	56	736
चुण्ण	3	11	281
चुण्ण	3	12	283
चुण्णवासं	5	57	657
चुण्णविधिं	5	57	657
चुण्णिआभाए	7	65	740
चुल्लहिमवंत	3	130	378
चुल्लहिमवंतगिरिकुमारस्स	3	131	378
चुल्लहिमवंतगिरिसागरमेरागस्स	3	185-B	408
चुल्लहिमवंतवासहरपव्वयं	3	131	378
चुल्लहिमवंतस्स	1	18	87
चुल्लहिमवंतस्स	1	48-A	117
चुल्लहिमवंतस्स	1	51	120
चुल्लहिमवंते	4	1-A	434

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
चुल्लहिमवन्तकूडे	4	44	457
चुल्लहिमवन्तकूडे	4	48	459
चुल्लहिमवन्तगिरि	4	52	461
चुल्लहिमवन्तस्स	4	2	436
चुल्लहिमवन्ता	4	52	461
चुल्लहिमवन्ताओ	5	14	624
चुल्लहिमवन्ते	4	44	457
चुल्लहिमवन्ते	4	51	461
चुल्लहिमवन्ते	4	54	462
चूअ	5	58	667
चूअमंजरि	3	12	283
चूअवणे	4	116	498
चूडामणि	3	36-42	318
चूलिआ	4	242	587
चूलिए	2	4-C	127
चेइअखंभा	2	120	237
चेइअखंभे	7	185	846
चेइअखम्भे	4	133	510
चेइअथूभे	2	114	235
चेइअरुक्खाणं	4	127	508
चेइए	1	3	18
चेइए	7	214	859
चेइयसहाइ	2	31	173
चेत्तिण्णं	7	140	808
चेत्तिण्णं	7	149	812
चेत्ती	7	137	801
चेत्ती	7	155	816
चोइअमई	3	138-A	383
चोए	3	11	282
चोक्ख	3	109-D	356
चोद्दसपढमसमये	2	138	251
चोद्दसुत्तरं	3	1	263
चोप्पाला	4	137	512
चोप्फालग	2	20	168
चोसट्ठि	2	64-A	194
च्छत्त	2	20	168

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
छउमत्थपरिआयं	2	88	224
छच्च	2	72	218
छज्जइ	3	24	296
छट्ठभत्तस्स	2	52	184
छण्णपडिच्छण्णा	2	13	141
छत्त	2	15-G	162
छत्त	3	11	281
छत्त	3	3	268
छत्तंधयारकलिए	3	31-A	305
छत्तपडागा	3	178-179-A	398
छत्तपडागा	5	43	640
छत्तभिंगारं	5	43	640
छत्तरयणं	3	117-C	367
छत्तरयणे	3	118	368
छत्तरयणे	3	178-179-C	399
छत्तलं	3	135	380
छत्तलं	3	94	340
छत्ताइच्छत्ता	4	30	451
छत्तुण्णय	2	15-F	161
छत्तेणं	3	18	290
छत्तेणं	3	77	327
छद्दिसिं	7	40-48	731
छद्धणुसहस्समूसिआ	2	16-B	164
छप्पण्णा	2	16-C	165
छब्भागपविभत्ते	1	18	87
छम्मासावसेसाउआ	2	49	181
छम्मासे	7	28	718
छलुत्तरा	7	201	854
छविच्छेअं	2	36	175
छविणिरातंका	2	16-B	164
छव्विहे	2	123	238
छव्विहे	2	58	189
छाया	7	167	822
छायाउज्जोविअंगमंगा	2	16-B	164
छारिअभूअं	2	141	253
छारिअभूआ	2	132	244

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
छिंदन्ति	5	57	658
छिण्णजाइजरामरणबंधणे	2	89	226
छिण्णसोए	2	68	210
छीइत्ता	2	49	181
छुरघरए	7	133	794
छेज्जे	3	32-34 B	311
छेत्तुं	2	6-B	130
छेलिअं	3	31-B	307
जंगमाणं	3	109-G	359
जंघागं	3	109-B	353
जंतं	3	79	328
जंतुणो	2	4-B	126
जंबुद्दीवपण्णत्ती	7	101	763
जंबुद्दीवस्स	1	15	63
जंबुद्दीवे	1	23-A	94
जंबुद्दीवे	1	7	24
जंबुद्दीवे	3	26-B	301
जंबुद्दीवे	7	213	858
जंबूए	7	213	858
जंबूणयणेमीए	3	30	304
जंबूदीवपण्णत्ती	7	214	859
जंबूरुक्खा	7	213	858
जंबूवणसंडा	7	213	858
जंबूवणा	7	213	858
जंभए	5	69	674
जंभगा	5	70	674
जंभाइत्ता	2	49	181
जइणाए	3	26-B	301
जए	7	118	779
जक्ख	2	31	173
जक्खग्गहाइ	2	43	179
जक्खसहस्स	3	14	288
जक्खसहस्स	3	18	290
जगई	1	8	27
जगईए	1	7	25
जगईए	4	6	437

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
जगईसमए	1	12	37
जगप्पईवदाईए	5	5-B	612
जच्च	2	15-C	159
जच्चकणगं	2	68	210
जच्चजातीअं	3	109-G	359
जडिणो	3	178-179-F	402
जणक्खया	2	43	179
जणजाणबया	1	26	99
जणवयकल्लाणिआसहस्सा	3	178-179-E	400
जणवयाण	3	81-C	331
जण्णाइ	2	30	173
जण्णामया	1	46-C	115
जण्हवीइ	3	167-G	395
जप्पभिइं	2	67	209
जम	1	31	102
जमगवहाणं	4	140	514
जमगपव्वया	6	10	680
जमगपव्वयाणं	4	111	495
जमगसमग	3	31-B	307
जमगसमगं	5	24	631
जमगा	4	110	494
जमल	1	24	97
जमल	2	15-C	160
जमिगाओ	4	114	496
जमे	7	130	790
जमे	7	186	848
जम्बुद्दीवजगइ	4	6	437
जम्बुद्दीवाहिवई	4	159	528
जम्बुद्दीवे	4	1-A	434
जम्बूए	4	157	527
जम्बूओ	4	151	523
जम्बूणयामया	4	7	438
जम्बूपेढे	4	143	517
जम्बूसाहस्सीओ	4	150	523
जम्बूसुदंसणा	4	146	519
जम्मणणयरे	5	67	672

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
जम्मणनगरे	5	44	641
जम्मणभवणे	5	44	641
जम्मणमहिमं	5	3	610
जम्मणमहिमं	5	74	675
जय	2	64-F	205
जयंति	7	120	780
जयंती	7	186	847
जयंते	1	15	63
जयजयसद्दं	3	185-B	408
जयन्ती	4	212-A	565
जयन्ती	5	8	620
जयसद्दकयालोए	3	18	290
जयसद्दकयालोए	3	9	278
जयहर	3	126-A	374
जरा	2	103	232
जरापरिणयव्व	2	133	245
जलणजलिअ	3	35-C	317
जलथलगुहासु	3	32-34 B	311
जलन्ति	5	57	658
जलयाणं	3	32-34 B	311
जल्ल	2	32	174
जव	2	15-G	162
जव	2	37	176
जव	3	119-B	369
जवजवाइ	2	37	176
जवणदीवं	3	81-A	330
जवमज्झे	2	6-C	131
जवमज्झेइ	2	6-C	131
जसंसी	3	126-A	375
जसंसी	3	3	267
जसधरे	7	117	779
जसभद्दे	7	117	779
जसमं	2	59	190
जसमं	2	61	192
जसवई	7	121	781
जसोहरा	4	157	527
जसोहरा	5	9	620
जसोहरा	7	120	780
जहण	2	15-I	163
जहणवर	2	15-B	159
जहण्णपए	7	198	852
जहा	1	11	30
जहाणामए	1	21	92
जहाणामए	1	26	99
जाउकण्णे	7	132	793
जाए	2	71	215
जाणइ	2	71	215
जाणमाणे	2	71	215
जाणविमाणं	5	28	634
जाणाइ	2	33	174
जाणुं	3	12	283
जाणुं	3	6	274
जाणुस्सेह	3	12	283
जाणूकं	3	109-B	353
जातीगुम्मा	2	10	138
जायं	2	146	256
जायतेए	2	129	241
जायरूवे	2	68	210
जायरूवे	4	256	594
जारमार	5	32	636
जालंतररयण	4	49	460
जालकडगं	3	35-A	314
जालपरिक्खित्तं	3	24	296
जाव रज्जं	3	2	267
जावइएणं	2	6-F	135
जावयाणं	5	21	629
जावेंता	3	178-179-F	402
जासुअण	3	35-C	317
जिअनिद्दं	3	109-F	358
जिअभयाणं	5	21	629
जिब्भा	7	128	786
जिणघराण	4	139	513

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
जिणपडिमाणं	1	40	109
जिणपडिमावण्णओ	4	139	513
जिणपडिमावण्णओ	4	147	520
जिणपडिमावण्णओ	4	219	574
जिणपडिमावण्णओ	4	47	459
जिणभत्तिरागेणं	5	27	633
जिणभत्तीए	2	113	234
जिणसंकासाणं	2	78	220
जिणसकहाओ	2	120	237
जिणसकहाओ	4	134	510
जिणसकहाओ	7	185	846
जिणसहस्सा	2	80	221
जिणस्स	5	5-B	612
जिणाणं	5	21	629
जिणिंदाभिगमणजुग्गं	5	41	639
जिणुस्सेह	1	40	109
जिणे	2	71	215
जिब्भिआ	4	39	456
जिब्भिया	4	24	447
जियसत्तू	1	3	18
जीअमेअं	2	113	234
जीअमेअं	2	90	226
जीअमेअं	3	26-B	301
जीअमेअं	3	56-57B	322
जीअमेअं	5	27	633
जीवंजीवग	2	12-B	140
जीवणिकाए	2	72	218
जीवदयाणं	5	21	629
जीवपरिणामे	7	211	857
जीवलोगं	3	31-B	307
जीवा	1	23-B	95
जीवा	4	1-B	434
जीवा	4	86	477
जीवाण	2	71	215
जीवाभिगमे	5	51	650
जीवाभिगमे	1	11	30
जीवाभिगमे	5	49-B	647
जीविअंतकरणं	3	24	296
जीविआरिहं	3	6	274
जीवियमरणे	2	70	213
जीवो	2	68	210
जीहाओ	2	15-E	161
जुअल	1	24	97
जुअल	2	15-C	160
जुअलगं	2	49	181
जुअलाओ	2	15-A	158
जुए	7	110	772
जुग	3	115	364
जुग	3	3	268
जुगंतकरभूमी	2	84	222
जुगमुसल	2	141	252
जुगसंवच्छरे	7	103	769
जुगसंवच्छरे	7	105	770
जुगे	2	4-C	127
जुगेइ	2	6-D	132
जुग्ग	2	33	174
जुत्त	7	141	809
जुत्तकप्पणं	3	35-A	314
जुत्ततुंबं	3	35-A	314
जुत्तसवणा	2	15-F	161
जुद्धणीती	3	167-F	394
जुवरायाइ	2	25	171
जूअ	2	15-G	162
जूआ	2	6-C	131
जूआइ	2	40	177
जूआइ	2	6-C	131
जूय	3	3	268
जूहिआगुम्मा	2	10	138
जेट्ठपमाणो	3	109-H	360
जेट्ठा	7	129	788
जेट्ठा	7	134	795
जेट्ठा	7	135	797

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
जेट्ठा	7	140	808
जेट्ठा	7	149	812
जेट्ठा	7	166	821
जेट्ठामूलिं	7	146	811
जेट्ठामूलिण्णं	7	140	808
जेट्ठामूलिण्णं	7	149	812
जेट्ठामूली	7	137	801
जेट्ठामूली	7	155	816
जेट्ठे	1	5-6	20
जोअण	6	6	678
जोअणं	2	6-D	132
जोअणंतरिआहिं	3	18	290
जोअणंतरिआहिं	3	180-182	405
जोअणगणिएणं	6	8	679
जोइसं	7	171	829
जोइसपहाओ	1	24	97
जोइसरण्णो	7	183	845
जोइसवेमाणिए	2	95	230
जोइसस्स	7	174	830
जोइसिंदस्स	7	183	845
जोइसिआ	5	53	651
जोइसिआणं	2	94	229
जोइसे	7	172	829
जोईगुम्मा	2	10	138
जोएंति	7	1	690
जोएंसु	7	1	690
जोएस्संति	7	1	690
जोगमुवागएणं	2	65-D	208
जोगमुवागएणं	2	71	215
जोगो	7	128	786
जोगो	7	167	822
जोणए	3	81-A	330
जोणिअपल्हविआओ	3	11	281
जोणिसूलाइ	2	43	179
जोयणसए	1	7	25
जोयणसहस्साइं	1	16	63
जोव्वण	2	15-I	163
जोहकलिअं	3	15	289
जोहकलियं	3	31-A	305
जोहाण	3	167-F	394
जोहे	3	98	346
ज्झय	2	15-G	162
झय	2	20	168
झय	3	31-A	305
झया	1	37	107
झल्लरि	3	12	283
झस	3	3	268
झाणंतरिआए	2	71	215
झाणकोट्ठोवगया	2	83	221
झामेंति	2	108	233
झामेह	2	107	233
झिआयंति	3	105	350
झुसिरं	5	57	657
टिट्टिआविन्ति	5	16	626
टोलागती	2	133	246
ठाईऊण	3	24	296
ठावेइ	2	65-B	207
ठिइं	2	71	215
ठिइकल्लाणाणं	2	81	221
ठिई	2	56	188
डंसाइ	2	40	177
डमरबहुले	1	18	87
डमराइ	2	42	178
डहेज्जा	2	6-F	135
डिंबाइ	2	42	178
डिम्बबहुले	1	18	87
डोंगरुत्थल	2	131	242
ढंका	2	137	250
ढिंकुणाइ	2	40	177
णऽच्चासण्णे	2	90	226
णं	1	2	18
णंगल	3	3	268

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
णंगलिअ	2	64-D	203
णंगलिआ	3	185-A	407
णंदणवणकूडे	4	237	582
णंदणवणविवर	2	15-I	163
णंदणवणाओ	2	95	230
णंदणवणाओ	2	96	230
णंदणवणे	4	234	580
णंदा	3	185-B	408
णंदा	4	140	513
णंदाइं	5	68	673
णंदावत्त	3	3	268
णंदावत्ते	3	32-34 C	312
णंदिआवत्त	3	12	283
णंदिआवत्ते	5	49-A	646
णंदिघोसा	2	16-A	164
णंदिघोसा	5	52	651
णंदिवद्धणा	5	8	620
णंदिस्सरा	2	16-A	164
णंदिस्सरा	5	52	651
णंदीसरदीवे	5	74	675
णंदुत्तरा	5	8	620
णईबहुले	1	18	87
णक्खत्त	1	24	97
णक्खत्तमंडला	7	85	753
णक्खत्तमंडले	7	88	754
णक्खत्तविमाणे	7	193	851
णक्खत्तसंवच्छरे	7	103	769
णक्खत्तसंवच्छरे	7	104	770
णक्खत्ता	7	1	690
णक्खत्ता	7	126	784
णक्खत्ता	7	170	828
णक्खत्ताणं	7	132	793
णक्खत्ते	7	111	772
णक्खत्तेणं	2	65-D	208
णक्खत्तेणं	2	88	225
णगर	3	18	290
णगर	3	31-B	307
णगराण	3	81-C	331
णगरावाससयं	1	26	99
णगरावासा	1	26	99
णगरे	2	69	212
णच्चुण्ह	7	112	775
णज्जइ	3	105	350
णट्ट	2	32	174
णट्टमालए	1	24	97
णट्टमालए	1	46-B	115
णट्टमालया	6	16	683
णट्टमाला	2	8	137
णट्टविहिं	5	57	658
णट्टविही	3	167-F	394
णट्टाणीएणं	5	41	639
णड्डरयं	5	7-B	616
णडपेच्छाइ	2	32	174
णदन्ति	5	57	658
णदि	2	31	173
णन्दणवणकूडे	4	236	582
णन्दणवणाओ	5	55	654
णन्दणवणे	4	214	571
णन्दणवणे	4	237	582
णन्दा	5	8	620
णन्दापुक्खरिणीओ	4	221	574
णन्दावत्ता	5	58	667
णन्दीसरवरे	5	44	641
णभं	2	65-A	205
णमंसइ	1	5-6	20
णमंसित्ता	1	5-6	20
णमिअ	2	15-D	160
णमिविणमीणं	3	137	382
णमी	3	138-C	385
णमी	3	138-C	386
णमो	1	1	13
णमोत्थु	5	21	628

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
णमोत्थु	5	5-B	612
णयण	2	15-I	163
णयणकोइल	3	35-C	317
णयणमणणिव्वुइकरे	3	3	268
णयणमालासहस्सेहिं	2	65-A	205
णयणमालासहस्सेहिं	3	186-A	409
णयरी	1	2	18
णयरीए	1	3	18
णयरीए	7	214	859
णर	1	37	107
णरकन्ता	4	269	602
णरगतिरिक्खजोणिएसुं	2	135	250
णरवति	3	126-A	375
णरिंदचंदस्स	3	32-34 D	313
णरिंदवयणेणं	3	32-34 D	313
णरिंदे	3	9	277
णलिण	4	25	448
णलिणकूडे	4	191	549
णलिणकूडे	4	192	549
णलिणा	4	222	575
णलिणावई	4	212-A	565
णलिणावई	4	212-A	565
णलिणे	2	4-C	127
णलिणे	4	212-A	564
णलिणे	4	212-A	565
णव	1	20	90
णव	1	34	105
णव	3	12	283
णवणिहिवई	3	175-177	397
णवणिहिवति	3	126-A	375
णवणीइआगुम्मा	2	10	138
णवमालिअ	5	58	667
णवमिआ	5	10	621
णवमीपक्खेणं	2	64-C	202
णवलोहवद्धकम्मं	3	35-A	314
णह	2	43	178
णाइदूरे	2	90	226
णाइसीओ	7	112	775
णाग	2	31	173
णागकुमारा	3	111	361
णागकुमारे	4	141	515
णागधरा	3	178-179-F	402
णागा	3	178-179-F	402
णागाऽसुरा	3	24	296
णागाणं	5	52	651
णागे	4	212-A	565
णाडएहिं	3	82	333
णाडगविही	3	167-F	394
णाडगसहस्सा	3	178-179-E	400
णाणत्तं	2	56	188
णाणामणि	3	1	263
णाणामणि	3	9	277
णाणाविह	1	13	41
णाणाविह	1	21	93
णाणिस्स	5	5-B	612
णाभि	2	62	193
णाभिणालं	5	13	623
णाभिस्स	2	63	194
णाभी	2	59	190
णाभी	4	260	595
णाम	1	13	41
णामं	1	2	18
णामं	1	23-A	94
णामं	1	3	18
णामंकं	3	26-A	299
णामधेज्जा	4	260	595
णामधेज्जे	1	47	117
णामधेज्जे	4	22	445
णामाहयंकं	3	26-A	299
णामाहयंकं	3	44-50	320
णामाहयके	3	26-A	299
णायएइ	2	29	173

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
णाराय	3	31-B	307
णारिकंता	6	21	685
णारी	4	263	599
णालिआइ	2	6-D	132
णालिएरीवणाइं	2	9	138
णाले	4	7	438
णावा	7	133	794
णावाभूए	3	80	329
णावाभूयं	3	81-A	330
णिअंसेइ	2	99	231
णिअए	1	47	117
णिअगपरिवारेणं	2	94	229
णिअया	4	157	527
णिउणजुत्तोवयार	2	15-I	163
णिउणोअविअ	3	9	277
णिउणोविअ	3	24	296
णिक्कंकडच्छाए	1	23-C	96
णिक्कंकडच्छाया	1	8	27
णिक्खित्तसत्थमुसले	3	20	292
णिक्खुडं	3	76	326
णिक्खुडाणि	3	76	326
णिग्गंथीण	2	72	218
णिग्गच्छइ	2	65-A	205
णिग्गच्छइ	3	14	288
णिग्गया	1	4	19
णिग्गुणा	2	135	249
णिग्गोहवरपायवस्स	2	71	215
णिच्चं	2	67	209
णिच्चंधयार	1	24	97
णिच्चमंडिआ	4	157	527
णिच्चा	1	11	30
णिच्चे	1	47	117
णिच्चे	3	226	432
णिज्जिअसत्तू	3	175-177	397
णिज्झरबहुले	1	18	87
णिड्डिए	2	6-F	135
णिडाले	3	26-A	299
णिण्णथले	7	112	775
णितंबे	3	61-63	324
णित्थारणासमत्थं	3	109-F	358
णिद्ध	2	15-C	159
णिद्धणक्खा	2	15-A	158
णिद्धपाणिरेहा	2	15-D	160
णिद्धाइत्ता	2	134	249
णिद्धाइस्संति	2	134	249
णिद्धाइस्संति	2	146	256
णिप्पंका	1	8	27
णिप्पंके	1	23-C	96
णिप्पच्चक्खाण	2	135	249
णिप्फज्जइ	2	6-A	129
णिप्फाव	2	37	176
णिमज्जावेइ	3	98	346
णिम्ममे	2	70	213
णिम्मल	2	15-C	159
णिम्मला	1	8	27
णिम्मले	1	23-C	96
णिम्मेरा	2	135	249
णियया	1	11	30
णिरंतरोरू	2	15-B	159
णिरई	7	120	780
णिरयगामी	1	22	94
णिरयगामी	2	123	238
णिरयगामी	2	128	240
णिरयगामी	2	58	190
णिरहंकारे	2	70	213
णिराणंदे	2	90	226
णिरालए	2	68	210
णिरावरणे	2	71	215
णिरुच्छाहा	2	133	246
णिरुवकिट्ठस्स	2	4-B	126
णिरुवहयगायलट्ठीओ	2	15-C	160
णिल्लज्जा	2	133	245

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
णिल्लेवे	2	6-F	135
णिवत्तितंसि	2	142	253
णिव्वेदेमो	3	5	273
णिव्वण	2	15-B	159
णिव्वया	2	135	249
णिव्वाघाए	2	71	215
णिव्वावेह	2	111	233
णिसढकूडे	4	96	483
णिसढद्दहे	4	207	561
णिसह	4	207	561
णिसहकूडे	4	236	582
णिसहसंठाणसंठिआ	4	97	483
णिसहे	4	238	583
णिसहे	4	86	477
णिसहे	4	97	483
णिसीअंति	1	13	42
णिसीअंति	2	7	137
णिस्सीला	2	135	249
णिस्सेसकरे	2	71	215
णिहट्ठ	3	6	274
णिहणंति	5	13	623
णिहिरयणसया	7	202	854
णिहिरयणाणं	3	168-169	396
णिहिसरिणामा	3	167-G	395
णीति	3	106	351
णीरए	1	23-C	96
णीरए	2	6-F	135
णीरया	1	8	27
णील	3	31-B	307
णीलवन्तदिसाहत्थिकूडे	4	227	577
णीलवन्तद्दहे	4	141	515
णीलवन्ते	4	141	515
णीलवन्ते	4	262	597
णीलवन्ते	4	264	599
णीलवन्तेन	4	225	576
णीलिणिद्धघंतधोअपट्टं	3	24	296
णीले	4	263	599
णीसाए	2	133	246
णीसाससुरभिवयणा	2	16-C	165
णीहम्ममाण	3	31-B	307
णे	3	126-A	374
णेआ	7	167	822
णेगगुणजाणए	3	32-34 A	308
णेता	7	128	786
णेमा	1	11	30
णेमिपासेसु	3	32-34 B	311
णेम्मा	4	26	449
णेयव्वा	1	13	41
णेसप्पंमि	3	167-B	392
णेसप्पे	3	178-179-C	399
णोमालिआगुम्मा	2	10	138
णोमालिआगुम्मा	4	166	533
ण्हाणपीढंसि	3	9	277
ण्हाणमंडवंसि	3	9	277
ण्हाणेति	2	99	231
ण्हावेंति	2	100	231
तंडवेंति	5	57	658
तंब	2	15-A	158
तंबं	3	138-B	384
तंबणहाओ	2	15-D	160
तंसच्छलंसं	3	92	339
तउस	3	119-B	369
तओ	2	152	258
तक्करबहुले	1	18	87
तगरमेला	3	11	282
तड्डा	7	130	790
तड्डा	7	186	848
तड्डे	7	122	782
तड	3	109-F	358
तडाग	2	31	173
तडितरुणकिरण	3	24	296
तणं	3	98	346

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
तणं	5	5-D	616
तणकयवराइ	2	39	177
तणवणप्फइकाइए	2	131	242
तणविहूणो	1	14	62
तणसोल्लिअ	3	35-B	316
तणु	2	15-C	159
तणुअं	3	138-B	384
तणुया	1	8	27
तणेहिं	1	13	41
तणेहिं	1	21	93
तणेहिं	1	26	99
तणेहिं	1	29	101
तणेहिं	1	33	105
ततं	5	57	657
तत्तकवेल्लुअभूआ	2	132	244
तत्तकवेल्लुगभूअं	2	141	253
तत्तजला	4	202-B	556
तत्तजला	4	202-C	557
तत्तसमजोइभूअं	2	141	253
तत्तसमजोइभूआ	2	132	244
तत्थ	1	13	41
तत्था	3	111	361
तप्पभिइं	2	67	209
तमपडलणिरालोआ	2	131	242
तमाणत्तिअं	3	8	276
तमिसगुहा	1	24	97
तयावरिज्जाणं	3	223	429
तरंग	2	15-C	159
तरच्छ	2	36	175
तरमल्लिहायणाणं	7	178-D	841
तरस्सा	2	136	250
तरुणरविमंडलणिभे	3	30	304
तलवरं	2	25	171
तलवर	3	178-179-E	400
तलिण	2	15-A	158
तवंति	5	57	658

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
तवइंसु	7	1	690
तवणिज्ज	3	117-B	366
तवणिज्जपट्ट	3	35-A	314
तवणिज्जबद्धचिंधं	3	24	296
तवणिज्जमया	4	7	438
तवणिज्जलंबूसगं	5	67	672
तवनियमबंभचेरा	7	169	827
तवयंति	7	54	734
तवसंजमनिव्विट्ठे	3	32-34 D	313
तवसा	2	83	221
तविस्संति	7	1	690
तवेंति	7	1	690
तवेणं	2	71	215
तसरेणू	2	6-C	131
तसरेणूइ	2	6-C	131
तहेव	7	186	848
ताणं	5	21	629
तारग्ग	7	128	786
तारयाणं	5	21	629
तारा	7	1	690
तारागणकोडाकोडीओ	7	170	828
ताराख्वा	7	168-B	827
तारारूवे	7	173	830
तारारूवोवचिआ	4	27	450
ताराविमाणदेवीणं	7	196	851
ताराविमाणे	7	195	851
ताल	3	31-B	307
तालिअंटहत्थगयाओ	3	11	282
तालिअंटहत्थगयाओ	5	10	621
तालिअंटा	5	55	653
तावइयं	1	16	63
तावक्खित्तसंठिई	7	35	728
तावखित्तसंठिई	7	31-A	720
तिआयतं	3	138-B	384
तिउडस्स	4	202-A	556
तिउडे	4	202-B	556

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
तिउण्णयं	3	138-B	384
तिक्खधाराणिवातपउरं	2	131	242
तिक्खुत्तो	1	5-6	20
तिक्खुत्तो	2	90	226
तिक्खुत्तो	5	5-A	611
तिग	3	212	423
तिगंभीरं	3	138-B	384
तिगिंछिद्दहे	4	88	478
तिगिच्छिकूडे	4	275	606
तिणिसदलिअं	3	35-A	314
तिण्णाणं	5	21	629
तितारे	7	131	791
तित्त	2	145	255
तित्थ	6	6	678
तित्थगरचिइगाए	2	105	232
तित्थगरस्स	2	95	230
तित्थगरस्स	2	96	230
तित्थगरस्स	5	3	610
तित्थयरं	2	90	226
तित्थयरपडिरूवगं	5	67	672
तित्थयरमाया	5	5-D	616
तित्थयरमाया	5	67	672
तित्थयरा	2	125	239
तित्थयरा	5	1	608
तित्थयरा	7	198	852
तित्थयराणं	5	21	628
तित्थयराभिसेअं	5	54	653
तित्थयराभिसेअं	5	55	654
तित्थसुबद्धे	4	25	448
तित्था	6	12	682
तिदिसिं	1	38	108
तिभाए	2	55	188
तिभाए	2	57	189
तिभागपविभत्ते	1	20	90
तिमिसगुहा	4	172	538
तिमिसगुहाए	3	154-160	389
तिमिसगुहाए	3	83	334
तिमिसगुहाए	4	37	454
तिमिसगुहाओ	6	16	683
तिमिसगुहाकूडे	1	34	105
तिमिसगुहाभिमुहे	3	68	325
तिमिस्साओ	1	24	97
तिरिअ	2	71	215
तिरिअगामी	2	58	190
तिरियगामी	1	22	94
तिरीड	3	31-A	305
तिल	2	37	176
तिल	3	119-B	369
तिलग	3	12	283
तिलगचोद्दसं	3	72-75	325
तिलय	5	58	667
तिल्लसमुग्गयहत्थगयाओ	3	11	281
तिल्लेहिं	5	14	624
तिवलिअ	2	15-B	159
तिवलिअं	3	26-A	299
तिवलीग	3	138-B	384
तिव्वे	2	27	172
तिव्वे	2	29	173
तिसरिअ	3	9	277
तिसोवाणपडिरूवए	3	195	414
तिसोवाणपडिरूवगा	4	4	437
तिसोवाणेणं	5	41	639
तिही	7	117	779
तिही	7	121	781
तीअ	2	90	226
तीअं	7	39	731
तीअपच्चुप्पण्णमणागयाणं	3	26-B	301
तीते	7	52	733
तीसे	1	3	18
तुंगणासाओ	2	15-E	161
तुंब	3	119-B	369
तुअट्टंति	1	13	42

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
तुअट्टंति	2	7	137
तुच्छे	7	118	779
तुड्डीए	2	71	215
तुडिअ	3	6	274
तुडिअंगाणं	3	167-F	394
तुडिअथंभिअभुए	3	9	277
तुडिआणि	3	26-B	301
तुडिआणि	3	36-42	318
तुडिआणि	3	44-50	320
तुडिआणि	3	64-67	324
तुडिए	2	4-C	127
तुडिएणं	7	184	846
तुब्भाहिं	5	5-B	612
तुरग	1	37	107
तुरगवर	3	3	268
तुरगे	3	23	295
तुरगेहिं	3	35-B	316
तुरय	2	101	231
तुरिअं	3	6	274
तुरिआए	3	26-B	301
तुरुक्क	3	12	283
तुल	7	133	794
तुल्लत्ते	7	169	828
तुसिणीआ	2	60	192
ते	1	2	18
तेअंसी	2	68	210
तेअआउबलवीरिअजुत्ते	3	3	268
तेअतली	2	50	183
तेअलक्खणजुत्ते	3	77	326
तेआ	7	120	780
तेआले	1	23-C	96
तेआहिआइ	2	43	179
तेउक्काइअत्ताए	7	212	857
तेगिच्छायणे	7	132	793
तेणबहुले	1	18	87
तेयंसी	3	138-A	383

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
तेरस	1	7	25
तेल्लसमुग्गा	5	55	653
तेल्लापूयसंठाणसंठिए	1	7	24
तेल्ले	3	11	282
तेवड्डि	2	64-A	194
तेवत्तरिं	2	4-B	126
तेसीइं	2	64-B	201
तोअधाराओ	5	63	671
तोण	3	31-B	307
तोतं	3	92	339
तोमर	3	35-B	316
तोयधारा	5	1	608
तोरण	2	15-G	162
तोरण	2	20	168
तोरणा	3	196	415
तोरणे	4	27	450
तोरणेणं	4	23	446
त्तिकट्टु	2	146	256
त्थिमियसमिद्धा	1	2	18
थक्कारेन्ति	5	57	658
थणिआणिं	5	52	651
थद्धपट्टं	3	109-C	354
थलंसि	3	98	346
थलाइं	2	134	249
थवईरयणे	3	32-34 D	313
थारुकिणिआओ	3	11	281
थाल	2	15-G	162
थाल	3	11	281
थालाणं	5	55	653
थालीपागाइ	2	30	173
थासगाहिलाणं	3	109-C	354
थिमिअमेइणीअं	3	18	290
थिमिए	3	3	268
थिरा	7	124	783
थिल्लि	2	33	174
थीविलोअणं	7	123	782

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
थीविलोअणं	7	125	783
थीविलोअणं	7	125	783
थूभ	2	15-G	162
थूभ	2	20	168
थूभ	2	31	173
थूभा	4	125	505
थूभिआए	4	49	460
थेरमणरा	2	133	245
थोवूणमुस्सिआओ	2	15-H	162
थोवे	2	4-B	126
थोवे	2	69	212
दंड	3	3	268
दंडक	3	109-G	359
दंडणायग	3	9	278
दंडणीई	2	61	192
दंडणीई	3	167-F	394
दंडणीईओ	2	156-157	259
दंडनायग	3	77	327
दंडपार्ति	3	109-F	358
दंडरयणं	3	88-A	336
दंडरयणे	3	178-179-C	399
दंडिणो	3	178-179-F	402
दंडियारं	3	35-A	314
दंडेइ	2	6-D	132
दंत	3	109-G	359
दंतमाला	2	8	137
दंतवेअणाइ	2	43	179
दंसणधराणं	5	21	629
दंसणवत्तिअं	5	27	633
दंसणहं	3	26-B	301
दओदराइ	2	43	179
दक्खिणाइया	7	126	784
दक्खिणिल्लाए	1	26	99
दक्खो	5	52	651
दगरय	2	15-E	161
दण्डणीई	2	60	192

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
दद्दरदिण्ण	3	7	276
दद्दरमलयगिरिसिहर	3	24	296
दद्दरमलयसुगंधिएहिं	3	210-211-B	422
दद्दरमलयसुगन्धे	5	55	654
दद्दुकिटिभसिब्भ	2	133	245
दप्पण	3	12	283
दप्पण	5	58	667
दप्पणिज्जे	2	18	167
दब्भसंथारगं	3	20	292
दब्भसंथारगं	3	84-85	334
दब्भसंथारोवगए	3	52-54	321
दब्भा	7	132	793
दमणग	5	58	667
दमणय	3	12	283
दमिली	3	11	281
दरि	3	88-B	336
दरिअदप्पिअदढ	3	24	296
दरिबहुले	1	18	87
दरिसमिज्जा	1	8	27
दरिसणिज्जे	1	23-C	96
दरी	2	38	176
दलइ	3	88-A	335
दलयइ	5	46	644
दवकारगा	3	178-179-F	402
दव्वओ	2	69	212
दव्वजाए	2	69	212
दसणाओ	2	15-E	161
दसणावरण	3	35-C	317
दसद्धवण्णं	2	10	138
दसद्धवण्णस्स	3	12	283
दसारवंसे	2	124	239
दह	2	31	173
दहइ	3	12	283
दहबहुले	1	18	87
दहाणं	4	140	514
दहावई	4	188	548

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
दहावई	4	189	548
दहि	2	15-E	161
दहिमुहगपव्वएसु	2	118	236
दहिमुहगेसु	2	119	236
दहोअगं	5	55	654
दहोदगं	3	133-134	380
दा	3	186-A	409
दाइआणं	2	64-C	202
दाइज्जमाणे	3	186-A	409
दाडिम	2	15-D	160
दाणकम्मे	3	32-34 B	311
दाणवेण	3	115	364
दामणि	2	15-G	162
दामणि	7	133	794
दामवण्णगं	3	197	415
दामालंकिए	4	49	460
दायं	2	64-C	202
दारवण्णओ	1	38	108
दारा	1	15	63
दारा	1	38	108
दारा	4	10	438
दारा	4	121	504
दारु	3	32-34 C	312
दारे	1	16	63
दालइत्ता	4	35	453
दासेइ	2	26	172
दाहाइ	2	43	179
दाहिणं	2	113	234
दाहिणं	3	6	274
दाहिणद्धकच्छे	4	169	536
दाहिणद्धभरहं	1	19	90
दाहिणद्धभरहं	1	47	116
दाहिणद्धभरहकूडे	1	34	105
दाहिणद्धभरहकूडे	1	41	113
दाहिणद्धलोगाहिवई	5	18	627
दाहिणद्धा	1	46-A	114
दाहिणद्धे	1	20	90
दाहिणपच्चत्थिमं	3	30	304
दाहिणपडीण	7	101	763
दाहिणरुअगवत्थव्वाओ	5	9	620
दाहिणलवणसमुद्दस्स	1	18	87
दाहिणाभिमुहे	3	36-42	318
दाहिणिल्ले	3	15	289
दाहिणेणं	1	18	87
दिट्ठंतिअं	5	57	658
दित्ता	3	103	349
दिप्पणिज्जे	2	18	167
दिप्पमाणे	3	18	290
दिवसखेत्तस्स	7	27-B	718
दिवसखेत्तस्स	7	30	719
दिवसभूआ	3	96	345
दिवसा	7	116	778
दिवसाइआ	7	126	784
दिवसे	7	26	715
दिवा	7	125	783
दिव्वं	3	36-42	318
दिव्वतुडिअ	3	14	288
दिव्वा	2	67	209
दिव्वाइं	2	100	231
दिव्वाए	3	12	283
दिव्वाए	3	26-B	301
दिसाकुमारीओ	5	1	608
दिसाणं	5	52	651
दिसादी	4	260	595
दिसाहत्थिकूडा	4	225	576
दिसीभाए	1	3	18
दीणस्सरा	2	133	245
दीवसमुद्दाणं	2	90	226
दीवस्स	1	15	63
दीवाणं	5	52	651
दीविअग्गाहा	3	178-179-E	401
दीविअचम्मेइ	5	32	635

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
दीविआ	2	136	250
दीविआहत्थगयाओ	5	12	622
दीविग	2	36	175
दीवे	3	26-B	301
दीवो	5	21	629
दीहकालपडिबंधे	2	69	212
दीहवेअड्डा	6	10	680
दीहसिरयाओ	2	15-F	161
दीहिआसु	2	12-B	140
दुंदुभए	7	186	848
दुंदुहिनिग्घोस	3	12	283
दुअं	5	57	658
दुक्कालबहुले	1	18	87
दुगंधा	2	133	245
दुग्गबहुले	1	18	87
दुग्गमाण	3	77	326
दुन्निक्कमा	2	132	244
दुप्पवेसाओ	1	24	97
दुप्पवेसाण	3	77	326
दुफासा	2	133	245
दुब्बलकुसंघयण	2	133	246
दुब्भिक्खबहुले	1	18	87
दुब्भिगन्धं	5	5-D	616
दुब्भूआणि	2	43	178
दुमगणा	2	13	141
दुमगणा	2	20	168
दुमगणा	2	8	137
दुमो	5	50	649
दुरंतपंतलक्खणे	3	107	351
दुरंतपंतलक्खणे	3	26-A	299
दुरसा	2	133	245
दुरूढे	3	21	294
दुरूढे	3	35-B	316
दुरूवा	2	133	245
दुरूहइ	3	20	292
दुरूहइ	5	41	639
दुवण्णा	2	133	245
दुवालसंसिअं	3	135	380
दुवालसंसिअं	3	94	340
दुवालसमुहुत्ता	7	27-A	717
दुवालससंवच्छरिअं	3	212	423
दुव्विसहा	2	131	242
दुस्समदुस्समा	2	6-G	136
दुस्समदुस्समा	2	6-G	136
दुस्समदुस्समाकाले	2	2	124
दुस्समसुसमाकाले	2	2	124
दुस्समा	2	6-G	136
दुस्समाकाले	2	2	124
दुहा	1	19	90
दुहुदुहुगं	5	57	658
दूअसंधिवाल	3	9	278
दूसमदूसमा	2	130	241
दूसमदूसमा	2	138	251
दूसमदूसमावेढओ	2	139	252
दूसमसुसमा	2	121	238
दूसमसूसमा	2	149	258
दूसमा	2	126	239
दूसमा	2	140	252
दूसरयणसुसंवुए	3	9	277
दूसेइ	2	24	171
देव	3	32-34 C	312
देवकम्मविहिणा	3	32-34 D	313
देवकहकहगं	5	57	658
देवकुरा	4	205	560
देवकुरा	4	99	486
देवकुरु	4	204	559
देवकुरु	4	207	561
देवकुरुकूडे	4	210	562
देवकुरू	4	210	563
देवकुरूत्तरकुराणं	2	6-C	131
देवगईए	3	26-B	301
देवगामी	1	22	94

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
देवगामी	2	123	238
देवगामी	2	58	190
देवच्छंदए	1	40	109
देवच्छन्दए	4	219	574
देवदूसजुअलाइं	2	100	231
देवदूसमादाय	2	65-D	208
देवय	7	128	786
देवयतारग्ग	7	167	822
देवयाओ	4	53	462
देवरण्णो	1	31	102
देवराया	5	18	627
देवलोअपरिग्गहा	2	49	181
देवलोगपरिग्गहिआ	2	56	188
देवसंघाए	7	179	843
देवसण्णिवायं	3	224	430
देवसयसाहसीसर	3	126-A	375
देवसाहस्सीओ	7	178-A	834
देवा	1	13	41
देवाणं	7	214	859
देवाणंदा	7	120	780
देवाणुप्पिआ	2	146	256
देवाणुप्पिआ	3	12	283
देवाणुप्पिआ	3	7	276
देवाणुप्पिआणं	3	5	273
देवाणुप्पिए	5	5-B	612
देविंदस्स	1	31	102
देविंदे	5	18	627
देवी	1	3	18
देवीए	3	52-54	321
देवीओ	1	13	41
देवीणं	7	214	859
देवुक्कलिअं	5	57	658
देवे	4	212-A	565
देवेण	3	115	364
देसमाणे	2	72	218
देसूणाइं	1	12	37
देहमाणे	3	222	428
दो	1	24	97
दोणमुह	3	18	290
दोणमुहपट्टणा	2	131	242
दोण्णि	1	20	90
दोसिणाभा	7	183	845
दोहग्ग	2	15-H	162
द्दह	6	6	678
धणंजए	7	117	779
धणंजए	7	132	793
धणवइमतिणिम्माया	3	1	263
धणवई	3	18	290
धणवई	3	31-B	307
धणवईव्व	3	3	268
धणिट्ठा	7	113	776
धणिट्ठा	7	128	786
धणिट्ठा	7	129	788
धणिट्ठा	7	130	790
धणिट्ठा	7	138	802
धणिट्ठा	7	141	809
धणिट्ठा	7	149	812
धणिट्ठा	7	156	817
धणिट्ठा	7	157	818
धणु	3	3	268
धणु	3	35-B	316
धणुं	3	23	295
धणुं	4	86	477
धणुग्गहाइ	2	43	179
धणुपट्ठं	1	23-C	96
धणुपट्ठसंठिए	1	18	87
धणुपट्ठे	1	20	90
धणुपट्ठे	1	48-C	118
धणुपट्ठे	4	1-C	435
धणुवरेण	3	24	296
धणुसयं	1	7	25
धणुसयाणि	2	58	189

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
धणुह	3	31-B	307
धणूइ	2	6-D	132
धणूइं	2	151	258
धण्णार्हिं	3	185-A	407
धन्नार्हिं	2	64-E	204
धम्मं	2	72	218
धम्मचरणे	2	129	241
धम्मचरणे	2	158	261
धम्मदयाणं	5	21	629
धम्मदेसयाणं	5	21	629
धम्मनायगाणं	5	21	629
धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी	5	58	668
धम्मवरचाउरन्तचक्कवट्टीणं	5	21	629
धम्मसण्ण	2	133	246
धम्मसारहीणं	5	21	629
धम्मे	2	64-F	205
धम्मेणं	2	64-F	205
धम्मो	1	4	19
धरणिगोअराणं	2	132	244
धरणितलंसि	3	6	274
धरणितलगमणलहुं	3	35-A	314
धरणितलाओ	7	173	830
धरणे	5	52	650
धरिज्जमाणेणं	3	18	290
धरिज्जमाणेणं	3	77	327
धवल	2	15-E	161
धवलमहामेहणिग्गए	3	17	289
धवलमहामेहणिग्गए	3	9	278
धवलवसभे	5	62	671
धवलाऽऽयत	2	15-E	161
धारार्हिं	3	115	364
धारिणी	1	3	18
धारिणीओ	2	15-B	159
धारे	3	126-A	374
धिई	4	89	479
धिईकूडे	4	96	483
धिक्कारे	2	62	193
धिक्कारेणं	2	62	193
धी	3	126-A	374
धुवा	1	11	30
धुवे	1	47	117
धूआ	2	27	172
धूमवट्टि	3	12	283
धूमवट्टि	5	58	668
धूमार्हिति	2	131	242
धूलिबहुला	2	132	244
धूव	3	12	283
धूव	3	9	278
धूवं	3	12	283
धूवकडुच्छुअहत्थगयाओ	3	11	282
धूवकडुच्छुगा	1	40	109
धूवघडिआओ	4	130	509
धोइडुसुकयपुंखं	3	24	296
धोव्वाण	3	167-D	393
नंदा	2	64-F	205
नंदिए	3	5	272
नंदीमुह	2	12-B	140
नंदीसरवरे	2	116	236
नंदे	7	118	779
नउए	2	4-C	127
नमरस्स	2	71	214
नच्चंता	3	178-179-F	402
नट्ठतेआ	2	133	246
नरकंता	6	21	685
नराऽमरस्स	2	71	215
नवपट्टपुट्ठपरिणिट्ठिअं	3	35-A	314
नागं	7	123	782
नागमाला	2	8	137
नाडइज्ज	3	221-B	427
नाणेणं	2	71	215
नायगस्स	5	5-B	612
निअगपरिवारेणं	2	93	229

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
निओएहिं	3	178-179-E	401
निगिण्हइ	3	23	295
निग्गंथाण	2	72	218
निण्णाण	3	77	326
निदाहे	7	114	777
निप्फाव	3	119-B	369
निम्ममस्स	5	5-B	612
निरंजणे	2	68	210
निरई	7	130	790
निरवकंखे	2	70	213
निरालंबणे	2	68	210
निरावरणे	3	223	429
निरुई	7	186	848
निरुवलेवे	2	68	210
निरुवलेवे	2	68	210
निरोदर	2	15-B	159
निवड्डेमाणे	7	30	719
निवयउप्पयं	5	57	658
निव्वत्ताए	3	14	288
निव्वाघाइए	7	182	844
निव्वाघाए	3	223	429
निहयरयं	5	7-B	616
निहिरयणा	7	201	854
निहिरयणाणं	3	164-166	391
नीलवन्तो	4	142	516
नीलवन्तो	4	227	577
नीसासो	2	4-A	125
नेसप्पे	3	167-B	392
पंकबहुला	2	132	244
पंकय	3	35-C	317
पंकावई	4	194-95	550
पंचंगुलितलं	3	7	276
पंचंगुलितले	3	88-A	335
पंचउत्तरासाढे	2	85	223
पंचछव्वीसे	1	18	87
पंचण्हं	2	60	192
पंचमिचंदोवमं	3	24	296
पंचमुट्ठिअं	3	224	430
पंचराइए	2	70	213
पंचवण्णाइं	3	26-B	301
पंचवण्णेहिं	1	13	41
पंचवण्णेहिं	1	33	105
पंचसंवच्छरिए	2	4-C	127
पंचसंवच्छरिए	7	110	772
पंचिंदिअरयणसया	7	203	854
पंजरविराइअं	3	117-A	365
पंजरुम्मीलिए	4	49	460
पंडगवणं	4	243	587
पंडगवणे	3	208	418
पंडगवणे	4	214	571
पंडगवणे	4	241	586
पंडगवणे	5	47	645
पंडिए	3	32-34 A	308
पंडुअए	3	167-B	392
पंडुयए	3	178-179-C	399
पंडुरोगाइ	2	43	179
पंडुसिला	4	244	589
पंसु	3	109-F	357
पंसुरओगुंडिअंगमंगा	2	133	246
पइड्डा	5	21	629
पइड्ढाणा	4	26	449
पइट्ठे	7	114	777
पउंजइ	2	90	226
पउंजइ	2	93	229
पउए	2	4-C	127
पउम	3	3	268
पउमकोडी	4	21	442
पउमद्दहाओ	5	55	654
पउमद्दहे	4	22	445
पउमद्दहे	4	3	436
पउमपत्त	5	32	636
पउमपरिक्खेवे	4	21	442

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
पउमप्पभा	4	221	574
पउमलय	1	37	107
पउमलय	5	32	636
पउमलयाओ	2	11	139
पउमवरवेइआए	1	14	62
पउमवरवेइआर्हि	4	1-C	435
पउमवरवेइया	1	10	29
पउमवरवेइयाए	1	11	30
पउमवरवेइयार्हि	1	23-C	96
पउमवरवेइयार्हि	1	28	101
पउमहत्थगया	3	10	281
पउमा	4	221	574
पउमाइं	5	55	653
पउमावई	5	10	621
पउमुत्तराइ	2	17	167
पउमुत्तरे	4	225	576
पउमुत्तरे	4	226	577
पउमुप्पलगंध	2	16-C	165
पउमे	2	4-C	127
पउरजंघा	2	53	187
पकड्डइ	5	46	644
पकड्डिज्जमाणेणं	5	44	641
पकरेन्ति	7	59-60	738
पक्कणि	3	11	281
पक्किकड्गसंठाणसंठिएर्हि	7	58	737
पक्खा	7	115	778
पक्खा	7	126	784
पक्खिवंति	2	120	237
पक्खिसंघे	2	131	242
पक्खुभिअ	3	22	295
पक्खे	2	64-C	202
पक्खे	2	69	212
पक्खो	2	4-C	126
पगइभद्दया	2	36	175
पगईउवसंता	2	16-C	165
पगहेत्तु	3	12	283
पघसिअ	3	35-A	314
पच्चणुभवमाणा	1	13	42
पच्चणुभवमाणा	1	30	101
पच्चत्थि	1	23-A	94
पच्चत्थिम	1	18	87
पच्चत्थिमदिसाभिमुहे	3	44-50	319
पच्चत्थिमरुअगवत्थव्वाओ	5	10	621
पच्चत्थिमिल्लं	7	178-C	839
पच्चत्थिमिल्लाए	1	20	90
पच्चत्थिमिल्ले	2	119	237
पच्चत्थिमेणं	1	16	63
पच्चत्थिमेणं	1	18	87
पच्चत्थिमेणं	1	23-A	94
पच्चप्पिणंति	3	8	276
पच्चप्पिणह	2	105	232
पच्चप्पिणह	3	7	276
पच्चामित्तेइ	2	28	172
पच्चायंति	6	4	678
पच्चावड	5	32	636
पच्चुत्तरइ	3	28	303
पच्चुप्पण्ण	2	90	226
पच्चुवसमन्ति	5	7-B	616
पच्चोरुहइ	2	65-B	207
पच्चोसक्कइ	3	12	283
पच्चोसक्कइ	3	88-B	336
पच्चोसक्कित्था	3	89	337
पच्छिमे	2	55	188
पच्छोलन्ति	5	57	658
पज्जवे	2	71	215
पज्जुवासणिज्जाओ	7	185	846
पज्जुवासेज्ज	2	67	209
पट्टणपती	3	81-C	331
पट्टणाऽऽसम	3	18	290
पट्टणाण	3	81-C	331
पट्टणाणि	3	81-A	330
पट्टधम्मंतपरिगयं	3	117-B	366

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
पड्डसंठिअ	2	15-B	159
पडमंडवमइगए	3	81-D	332
पडसाडयं	2	99	231
पडह	3	12	283
पडाग	2	15-G	162
पडाग	3	3	268
पडाग	3	31-A	305
पडागा	7	133	794
पडागाऽइपडाग	3	7	276
पडागाइपडागा	4	30	451
पडागामंडितां	3	184	406
पडिकप्पेह	3	15	289
पडिकप्पेह	3	21	294
पडिकप्पेह	3	31-A	305
पडिगया	1	4	19
पडिच्छेमाणे	3	186-A	409
पडिणिकासाइं	3	95-C	343
पडिणीएइ	2	28	172
पडिपुण्ण	2	15-D	160
पडिपुण्ण	2	15-F	161
पडिपुण्णचंदं	1	7	24
पडिपुण्णे	2	71	215
पडिपुण्णे	3	223	429
पडिबंधे	2	69	212
पडिरूवा	1	8	27
पडिरूवे	1	23-C	96
पडिलेहेइ	3	224	430
पडिलोमा	2	67	209
पडिवर्ज्जिसु	2	51	184
पडिवाए	7	125	783
पडिवादिवसे	7	116	778
पडिवाराई	7	119	780
पडिविसज्जेइ	3	6	274
पडिसुणेंति	3	13	288
पडिसेविअं	2	71	215
पडिस्सुइ	2	60	192
पडिस्सुई	2	59	190
पडीणउदीण	7	101	763
पडुप्पण्णं	7	39	731
पढमकेवली	2	63	194
पढमजिणे	2	63	194
पढमणरीसर	3	126-A	375
पढमतित्थकरे	2	63	194
पढमधम्मवरचक्कवट्टी	2	63	194
पढममज्झिमेसु	2	159-164	261
पढममज्झिमेसु	2	56	188
पढमराया	2	63	194
पणट्ठसत्तू	3	3	268
पणयबहुला	2	132	244
पणयालीसं	1	16	63
पणव	3	12	283
पणामं	3	12	283
पणिए	2	23	170
पणिवइअवच्छला	3	125	373
पण्डुकंबलसिला	4	244	589
पण्डुकंबलासिला	4	249	591
पण्डुसिला	4	245	589
पण्णत्ते	1	7	24
पण्णरस	2	4-C	126
पण्णरस	2	59	190
पण्णरसीदिवसे	7	116	778
पण्णरसीराई	7	119	780
पण्णवगा	3	95-B	342
पण्णवेइ	7	214	859
पण्णायए	7	169	828
पतणतणाइस्सइ	2	141	252
पतरत्ताणायंतिण	3	115	364
पत्त	2	146	256
पत्त	3	12	283
पत्तं	3	98	346
पत्तं	5	5-D	616
पत्तकयवराइ	2	39	177

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
पत्तल	2	15-E	161
पत्ते	3	11	282
पत्तेहि	2	8	137
पत्थ	4	25	448
पत्थिअ	3	87	335
पत्थिए	3	26-A	299
पत्थिए	3	56-57A	321
पदेसा	6	1	677
पप्पडमोअएइ	2	17	166
पब्भार	3	109-F	358
पब्भार	3	88-B	336
पभंकरा	7	183	845
पभवालवणाइं	2	9	138
पभासंति	7	1	690
पभासतित्थाभिमुहे	3	43	319
पभासतित्थेणं	3	44-50	319
पभासतित्थोदगं	3	44-50	320
पभासिंसु	7	1	690
पभासिस्संति	7	1	690
पभासे	6	12	682
पभासेंति	7	51	733
पभितओ	3	10	281
पभूआ	3	81-C	331
पमज्जइ	3	12	283
पमज्जइ	3	20	292
पमज्जइ	3	88-A	335
पमाणराईण	3	117-C	367
पमाणसंवच्छरे	7	103	769
पमाणसंवच्छरे	7	111	772
पमाणाणं	2	6-B	130
पमुइअपक्कीलिअ	3	12	284
पमुइय	1	26	99
पमोअं	3	212	423
पम्ह	4	210	563
पम्हकूडे	4	185	547
पम्हकूडे	4	186	547
पम्हकूडे	4	210	562
पम्हगंधा	2	50	183
पम्हगावई	4	212-A	564
पम्हगावई	4	212-A	565
पम्हलसुकुमाल	3	9	277
पम्हलसुकुमालाए	3	210-211-A	421
पम्हलसुकुमालाए	5	58	667
पम्हावई	4	202-B	557
पम्हावई	4	212-A	564
पम्हे	4	212-A	564
पम्हे	4	212-A	565
पम्हे	4	212-A	565
पयणुकोह	2	16-C	165
पयते	3	12	283
पयवंति	5	57	658
पयातं	3	15	289
पयावइ	7	186	848
पयावई	7	130	790
पयाहिआए	2	64-A	194
पयाहिणं	1	5-6	20
पयाहिणावत्त	2	15-C	159
परक्कमपज्जवेहिं	2	51	184
परमरम्मं	3	81-A	330
परमसुहसमाणणे	2	71	215
परमसोमणस्सिए	3	5	272
परमाणुं	2	6-B	130
परमाणू	2	6-A	129
परसुग्गाहा	3	178-179-E	401
परस्सरा	2	136	250
परामुसइ	3	12	283
परामुसइ	3	23	295
परामुसइ	3	78	328
परामुसइ	3	88-A	335
परावत्तेइ	3	28	303
परिआदिअंति	3	192	413
परिआयंतकरभूमी	2	84	222

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
परिआरिड्डीए	7	185	846
परिक्खेवेणं	1	10	29
परिक्खेवेणं	1	23-C	96
परिक्खेवेणं	1	48-C	118
परिक्खेवेणं	1	7	25
परिक्खेवेणं	7	7	694
परिगरणिगरिअमज्झो	3	24	296
परिगायमाणीओ	5	5-D	616
परिणममाणंसि	3	55	321
परिणाहं	3	109-A	353
परिणिव्वाणमहिमं	2	116	236
परिणिव्वायंति	1	22	94
परिणिव्वुए	2	85	223
परिणिव्वुए	2	90	226
परिणिव्वुडे	2	68	210
परिधावेंति	5	57	658
परिनिव्वाणमहिमं	2	90	226
परिभोगत्ताए	2	34	175
परिभोगत्ताए	2	35	175
परिमंडिअं	3	35-B	316
परिलि	3	31-B	307
परिवयंति	5	57	658
परिवायणि	3	31-B	307
परिवारो	7	170	828
परिविद्धंसेज्जा	2	6-F	135
परिवेढिअंगमंगा	2	133	245
परिव्वायगो	3	109-D	356
परिसा	1	4	19
परिसाए	4	19	441
परिसाए	4	19	441
परिहायमाणे	2	51	184
परिहायमाणे	2	54	188
परीसहोवसग्गाणं	2	64-F	205
परूढणह	2	133	245
परूढरुक्खग	2	145	255
परूढाणं	2	6-E	133
परूवेइ	7	214	859
पलंबमाण	3	9	277
पलासे	4	225	576
पलिअंकसंठाण	1	18	87
पलिअंकसंठिए	1	48-A	117
पलिअंके	7	133	794
पलिअवंगदु	2	15-H	162
पलिओवमट्ठिईया	1	24	97
पलिओवमाइं	2	44	179
पलिओवमे	2	5	129
पलिओवमे	2	6-F	135
पल्लगसंठाणसंठिए	4	57	465
पल्लवंकुर	2	146	256
पल्ले	2	6-D	132
पल्ले	2	6-D	132
पवग	2	32	174
पवडइ	4	24	447
पवणजइण	3	35-B	316
पवर	3	15	289
पवरकुंदुरुक्क	3	12	283
पवरगवल	3	24	296
पवरपरहुअ	3	24	296
पवरपरिगर	3	31-A	305
पवरपोसहघरं	3	32-34 D	314
पवररयणपरिमंडिअं	3	35-C	317
पवरवाहण	3	17	289
पवाएणं	4	23	446
पवाय	2	38	176
पवायबहुले	1	18	87
पवायाणं	3	88-B	336
पवाल	2	146	256
पवाल	3	35-A	314
पवालंकुरमादीए	2	131	242
पवालिणो	7	112	775
पविज्जुआइस्सइ	2	141	252
पवित्थरइ	3	116	365

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
पवित्थरइ	3	118	368
पविरलपरिसडिअदंतसेढी	2	133	245
पवूढा	4	23	446
पवूढाओ	3	161	389
पवूढाओ	3	97	345
पवेसेणं	1	16	63
पव्वए	1	23-A	94
पव्वए	1	47	116
पव्वएण	1	18	87
पव्वते	3	224	430
पव्वय	2	131	242
पव्वय	2	31	173
पव्वय	6	6	678
पव्वयकूडा	1	46-B	115
पव्वयगा	1	13	41
पव्वयबहुले	1	18	87
पव्वयसमगे	1	32	104
पव्वयसमियाओ	1	23-C	96
पव्वयसमियाओ	1	25	98
पव्वयसमियाओ	1	28	101
पव्वयस्स	1	16	63
पव्वयाउए	5	16	626
पव्वा	7	105	772
पसंतरयं	5	7-B	616
पसंते	2	68	210
पसत्थ	2	15-C	159
पसत्थपट्टं	3	109-B	353
पसत्थमंगलसएहिं	3	18	290
पसत्थलक्खण	2	15-A	158
पसत्थलक्खण	2	15-B	159
पसत्थहणुगाओ	2	15-D	160
पसय	2	35	175
पसासेमाणे	3	2	267
पसिअ	3	35-A	314
पसिणं	7	214	859
पसेढि	5	32	636

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
पसेणइ	2	62	193
पसेणई	2	59	190
पहंकरा	4	202-B	557
पहकर	3	17	289
पहगर	3	78	328
पहरणकोसा	4	137	512
पहरणाणं	3	167-F	394
पहरणाणुजायं	3	35-A	314
पहाणबुद्धी	3	32-34 B	311
पहाणमहिलागुणेहिं	2	15-A	158
पहारेत्थ	3	84-85	334
पहारेत्थ	3	9	278
पहिअकित्ती	3	18	290
पहिअकित्ती	3	21	294
पहिअकित्ती	3	31-B	307
पाइक्कचडकरेण	2	65-B	207
पाईणं	5	55	653
पाईणदाहिणमागच्छंति	7	101	763
पाईणपडीणायए	1	18	87
पाईणपडीणायया	3	1	263
पाउआओ	3	6	274
पाउणित्ता	2	88	224
पाउब्भवित्तए	3	113	362
पाउब्भविस्सइ	2	141	252
पाउसाइआ	7	126	784
पाओ	2	6-D	132
पाओवगए	3	224	430
पागडउभयजोणी	3	3	268
पागडभावे	2	68	210
पागसासणे	5	18	627
पागारा	4	114	497
पागारे	7	133	794
पाठान्तरं	1	51	120
पाडल	3	12	283
पाडल	5	58	667
पाडिस्सुइअं	5	57	658

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
पाडेंति	5	16	625
पाणयगाणं	5	49-B	647
पाणिक्खया	2	43	179
पाणिलेहाओ	2	15-D	160
पाणुत्ति	2	4-B	126
पाणूइं	2	4-B	126
पाति	3	11	281
पायचारविहारा	2	33	174
पायच्छित्ते	3	82	333
पायत्तं	5	57	658
पायत्ताणीयाहिवइं	5	22	629
पायद्दद्दरयं	5	57	658
पायपीढाओ	3	6	274
पायावच्चे	7	122	782
पारसीओ	3	11	281
पारिप्लवणिआसमिए	2	68	210
पारेवयचलण	3	35-C	317
पालंब	3	9	277
पालय	5	49-A	646
पालयं	5	28	634
पालयाहि	3	185-B	408
पालित्ता	1	22	94
पालित्ता	2	58	190
पालेंति	1	22	94
पालेंति	2	58	190
पासंडधम्मे	2	129	241
पासंडबहुले	1	18	87
पासइ	2	71	215
पासइ	3	15	289
पासग्गाहा	3	178-179-E	400
पासमाणे	2	71	215
पासाईए	1	23-C	96
पासाण	3	109-F	357
पासादीया	1	8	27
पासाय	2	20	168
पासायवर्डिसए	1	42	113
पासायवर्डिसए	4	221	575
पासायवर्डिसओ	4	224	576
पासायवडेंसए	4	119-A	501
पासायवडेंसए	4	49	459
पासायवडेंसया	4	147	520
पासिहिंति	2	146	256
पाहाणवट्टगे	5	16	626
पाहुडाइं	3	81-C	331
पाहुणिए	7	186	848
पिंगलए	3	167-B	392
पिंगलक्खग	2	12-B	140
पिंगायणे	7	132	793
पिंडए	6	6	678
पिआहिं	3	185-A	407
पिउ	7	186	848
पिऊ	7	130	790
पिक्खुरे	3	81-A	330
पिच्छघरमण्डवे	5	33	636
पिच्छिज्जमाणे	2	65-A	205
पिच्छिज्जमाणे	3	186-A	409
पिच्छिज्जमाणे	3	186-A	409
पिच्छिणो	3	178-179-F	402
पिट्ठंतरोरुपरिणया	2	16-B	164
पिट्ठकरंडयसया	2	48	180
पिट्ठकरंडुकसए	2	52	184
पिट्ठकरंडुकसया	2	16-C	165
पिणद्धगेविज्जग	3	9	277
पिणद्धेंति	3	210-211-A	421
पियदंसणे	3	17	289
पियदंसणे	3	9	278
पिया	2	69	212
पियाइ	2	27	172
पियाहिं	2	64-E	204
पिलगा	2	137	250
पिल्लण	3	109-F	358
पिसुआइ	2	40	177

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
पिहुलसोणी	2	15-B	159
पीअ	3	24	296
पीअ	3	31-B	307
पीइगमाणं	7	178-B	837
पीइगमे	5	49-A	646
पीइदाण	3	27	302
पीइदाणं	3	26-B	301
पीइदाणं	3	36-42	318
पीइदाणं	3	6	274
पीइमणे	3	5	272
पीइवद्धणे	7	114	777
पीढग्गाहा	3	178-179-E	401
पीण	2	15-C	159
पीणकुच्छीओ	2	15-C	159
पीणमट्ठगंडलेहाओ	2	15-F	161
पीणरइअ	2	15-C	160
पीणुण्णय	2	15-D	160
पीणेन्ति	5	57	658
पीवर	2	15-A	158
पीवर	2	15-B	159
पीवर	2	15-D	160
पीवरपओहराओ	2	15-C	160
पीवरपलंब	2	15-D	160
पुंडरीगिणी	4	200	552
पुक्कारेन्ति	5	57	658
पुक्खरकण्णिया	1	7	24
पुक्खरणी	2	12-B	140
पुक्खरपत्तमिव	2	68	210
पुक्खरिणीआ	1	33	105
पुक्खरिणीओ	1	13	41
पुक्खरोदाओ	5	55	653
पुक्खलसंवट्टए	2	141	252
पुक्खलावई	4	198	550
पुक्खलावई	4	199	551
पुक्खलावत्तकूडे	4	198	550
पुक्खलावत्ते	4	196	550
पुच्छा	2	56	188
पुढविकाइअत्ताए	7	212	857
पुढविपरिणामे	7	211	857
पुढविसिलापट्टगं	3	224	430
पुढविसिलावट्टगा	1	13	41
पुढवी	2	16-D	166
पुढवी	2	17	166
पुढवी	2	68	210
पुढवी	4	254	593
पुढवीकाइए	2	72	218
पुणव्वसू	7	128	786
पुणव्वसू	7	134	795
पुणव्वसू	7	135	798
पुणव्वसू	7	140	808
पुणव्वसू	7	149	812
पुणव्वसू	7	161	820
पुण्डरीआ	5	11	622
पुण्ण	4	172	538
पुण्णकलसभिंगारं	3	178-179	398
पुण्णकलसभिंगारं	5	43	639
पुण्णचंदे	3	3	268
पुण्णभद्दकूडे	1	34	105
पुण्णभद्दकूडे	1	46-B	115
पुण्णभद्दे	4	162	529
पुण्णाग	3	12	283
पुण्णिम	7	128	786
पुण्णिम	7	167	822
पुण्णिमा	7	154	815
पुण्णिमा	7	155	815
पुण्णिमाओ	7	137	801
पुण्णे	7	118	779
पुत्त	2	27	172
पुत्तसयं	2	64-B	201
पुत्थयरयणा	4	140	513
पुन्नाग	5	58	667
पुप्फ	2	146	256

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
पुप्फ	2	16-D	166
पुप्फ	2	18	167
पुप्फ	3	12	282
पुप्फ	3	9	278
पुप्फंति	3	104	350
पुप्फओ	5	48	645
पुप्फचंगेरी	3	11	281
पुप्फचंगेरीणं	5	55	653
पुप्फपडलहत्थगयाओ	3	11	281
पुप्फप्पगास	2	15-D	160
पुप्फमाला	5	1	608
पुप्फय	5	49-A	646
पुप्फवासं	5	7-B	616
पुप्फारुहणं	3	12	283
पुप्फारुहणं	3	88-A	335
पुप्फुत्तराइ	2	17	167
पुप्फेहि	2	8	137
पुप्फोदएणं	5	14	624
पुप्फोदएहिं	3	9	277
पुप्फोवयार	7	133	794
पुप्फोवयारकलिअं	2	65-B	207
पुरंदरे	5	18	627
पुरत्थाभिमुहे	3	12	283
पुरत्थाभिमुहे	3	6	274
पुरत्थिम	1	18	87
पुरत्थिमपेरंते	1	16	63
पुरत्थिमरुअगवत्थव्वाओ	5	8	620
पुरत्थिमिल्लाए	1	20	90
पुरत्थिमिल्लाए	1	23-A	94
पुरत्थिमिल्ले	2	117	236
पुरत्थिमेणं	1	16	63
पुरत्थिमेणं	1	18	87
पुरत्थिमेणं	1	23-A	94
पुरापोराणाणं	1	13	42
पुरिमतालस्स	2	71	214
पुरिसजुगाइं	2	84	222
पुरिसवरगन्धहत्थीणं	5	21	628
पुरिसवरपुण्डरीआणं	5	21	628
पुरिससीहाणं	5	21	628
पुरिसुत्तमाणं	5	21	628
पुरोहिअरयणे	3	178-179-E	400
पुरोहियरयणं	3	186-A	409
पुलय	3	35-A	314
पुलिंदी	3	11	281
पुव्वंगसयसहस्साइं	2	4-C	127
पुव्वंगे	2	4-C	127
पुव्वंगे	7	117	779
पुव्वण्हकालसमयंसि	2	71	215
पुव्वण्हकालसमयंसि	2	88	225
पुव्वफग्गुणि	7	128	786
पुव्वभद्दवया	7	128	786
पुव्वभद्दवया	7	129	788
पुव्वभद्दवया	7	139	807
पुव्वभद्दवया	7	142	809
पुव्ववण्णिअं	2	52	184
पुव्वविदेहअवरविदेहाणं	2	6-C	131
पुव्वविदेहकूडेन			
पुव्वविदेहे	4	263	599
पुव्वविदेहे	4	99	486
पुव्वसयसहस्साइं	2	64-A	194
पुव्वाफग्गुणी	7	129	788
पुव्वाफग्गुणी	7	140	808
पुव्वाफग्गुणी	7	148	812
पुव्वाफग्गुणी	7	163	820
पुव्वाभद्दवया	7	149	812
पुव्वाभद्दवया	7	157	818
पुव्वासाढा	7	128	786
पुव्वासाढा	7	140	808
पुव्वासाढा	7	149	812
पुव्वासाढा	7	167	822
पुव्विल्लेणं	5	41	639
पुव्वे	2	4-C	127

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
पुस्सायणे	7	132	793
पुस्सो	7	129	788
पुस्सो	7	140	808
पुस्सो	7	149	812
पुस्सो	7	162	820
पुहवि	3	3	268
पुहविविजयलंभं	3	35-C	317
पुहवी	5	10	621
पूअणवत्तिअं	5	27	633
पूअफलिवणाइं	2	9	138
पूइअं	5	5-D	616
पूइत्ताए	2	6-F	135
पूस	7	186	848
पूसमाणया	3	185-A	407
पूसमाणव	2	64-D	203
पूसमाणव	5	32	636
पूसे	7	130	790
पूसो	7	128	786
पेच्छा	2	20	168
पेच्छाघरमंडववण्णगो	3	193	414
पेच्छाघरमंडवाणं	4	123	504
पेढं	5	13	623
पेढे	4	143	517
पेम्मबंधणे	2	27	172
पेसेइ	2	26	172
पोंडरीअ	4	25	448
पोक्खरत्थिभाया	4	7	438
पोग्गलपरिणामे	7	211	857
पोट्ट	2	43	179
पोट्टसीसवेअणाइ	2	43	178
पोट्ठवइण्णं	7	142	810
पोट्ठवइण्णं	7	148	812
पोट्ठवइण्णं	7	151	814
पोट्ठवई	7	137	801
पोट्ठवई	7	155	815
पोट्ठवईण्णं	7	139	807

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
पोट्ठवदिण्णं	7	142	809
पोत्थयग्गाहा	3	178-179-E	401
पोरेवच्चं	3	221-B	427
पोसहसालं	3	18	290
पोसहसालं	3	19	292
पोसहसालं	3	31-B	307
पोसहसाला	3	20	292
पोसहसालाओ	3	139	386
पोसहिए	3	20	292
पोसिं	7	146	811
पोसिण्णं	7	140	808
पोसिण्णं	7	149	812
पोसी	7	137	801
पोसी	7	155	816
प्पवाल	2	24	171
प्पवाल	2	64-C	202
फग्गुणबहुलस्स	2	71	215
फग्गुणिण्णं	7	140	808
फग्गुणिण्णं	7	149	812
फग्गुणी	7	137	801
फग्गुणी	7	155	815
फग्गुणीए	7	153	815
फलगग्गाहा	3	178-179-E	401
फलनिव्वाणमग्गेणं	2	71	215
फलया	4	26	449
फलवित्तिविसेसं	1	13	42
फलवित्तिविसेसं	1	30	101
फलसमुइअं	2	146	256
फलाणं	2	18	167
फलाहारा	2	16-D	166
फलिह	4	137	512
फलिहकूडे	4	105	489
फलिहवररयण	3	35-A	314
फलिहे	4	256	594
फलेगदेसभागं	3	117-C	367
फलेहि	2	8	137

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
फासपज्जवेहिं	2	130	241
फासपज्जवेहिं	2	51	183
फासो	1	13	41
फासो	2	7	137
फुट्टमाणेहिं	3	218	425
फुट्टमाणेहिं	3	82	333
फुट्टमैणेहिं	3	187	410
फुट्टसिरा	2	133	245
फुट्टिहीति	5	73	675
फुडिअफरुसच्छवी	2	133	245
फुल्लावली	5	32	636
फेणमालिणी	4	212-A	565
बंध	2	133	245
बंधुजीवग	3	35-C	317
बंधुजीवगगुम्मा	2	10	138
बंभयारी	3	20	292
बंभलोअगाणं	5	49-B	647
बंभीसुंदरीपामोक्खाओ	2	75	220
बंभे	7	122	782
बउल	5	58	667
बउसिआओ	3	11	281
बकुल	3	12	283
बतीसइबद्धा	3	178-179-E	400
बत्तीसइबद्धेहिं	3	82	333
बत्तीसइविहं	5	57	658
बत्तीसलक्खणधरीओ	2	15-G	162
बब्बरए	3	81-A	330
बब्बरी	3	11	281
बम्हदेवयाए	7	130	790
बम्हा	7	130	790
बम्हा	7	186	848
बरग	3	119-B	369
बल	3	31-B	307
बलं	2	64-C	202
बलकूडे	4	236	582
बलकूडे	4	239	584

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
बलदेवा	2	125	239
बलदेवा	7	200	853
बलव	7	122	782
बलाग	3	35-B	316
बलावलोअं	3	81-A	330
बलाहगा	5	6	616
बलाहया	4	238	583
बलिपेढा	4	140	513
बली	2	113	234
बली	2	119	237
बली	5	51	650
बलेणं	2	71	215
बवं	7	123	782
बवं	7	125	783
बवे	7	125	783
बहलि	3	11	281
बहवे	1	13	41
बहवे	2	10	138
बहिआ	2	71	214
बहिया	1	3	18
बहुआउपज्जवा	1	22	94
बहुआउपज्जवा	1	27	101
बहुईओ	3	11	281
बहुउच्चत्तपज्जवा	1	22	93
बहुउच्चत्तपज्जवा	1	27	101
बहुउप्पल	4	25	448
बहुकोहमाण	2	133	246
बहुगुणड्ढे	3	32-34 D	313
बहुण्हारुणि	2	133	245
बहुण्हारुणि	3	24	296
बहुपुत्तणत्तुपरियाल	2	133	246
बहुमच्छ	2	134	248
बहुमज्झदेसभाए	1	10	29
बहुलपक्खे	7	115	778
बहुलाइआ	7	126	784
बहुसंघयणा	1	22	93

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
बहुसंघयणा	1	27	101
बहुसंघयणा	1	49-50	119
बहुसंठाणा	1	22	93
बहुसंठाणा	1	27	101
बहुसच्चे	7	122	782
बहुसमरमणिज्जे	1	13	41
बहुसमरमणिज्जे	1	21	92
बहूईओ	7	185	846
बहूणं	7	214	859
बहूदओ	7	112	775
बहूदओ	7	112	775
बाणगुम्मा	2	10	138
बालचंद	3	24	296
बालवं	7	123	782
बालवं	7	125	783
बालवकरणंसि	2	138	251
बालवाइआ	7	126	784
बालवे	7	125	783
बावण्णं	1	17	86
बावत्तरिं	2	64-A	194
बाहं	7	178-C	839
बाहा	1	48-B	118
बाहा	4	1-B	434
बाहा	4	86	477
बाहाओ	7	31-B	722
बाहाकं	3	109-B	353
बाहाहिं	5	14	624
बाहिं	1	31	102
बाहिरतच्च	7	19	701
बाहिरतच्चं	7	25	711
बाहिरतच्चे	7	13	697
बाहिरपसा	4	7	438
बाहिराणंतरं	7	24	710
बाहिराणंतरे	7	18	700
बाहिरिआए	4	19	441
बाहुच्छयापरिग्गहिया	3	127	376
बिंबफल	3	35-C	317
बिंहणिज्जे	2	18	167
बिइओ	3	3	267
बिगुणं	2	4-C	127
बिडाल	2	36	175
बितिआदिवसे	7	116	778
बिराल	2	136	250
बिलवासिणो	2	133	246
बिलेहिंतो	2	134	249
बिलेहिंतो	2	146	256
बीअ (ग)गुम्मा	2	10	138
बीअमंतो	2	8	137
बीअमेत्ता	2	133	246
बुक्कारेन्ति	5	57	658
बुज्झंति	1	22	94
बुद्धस्स	5	5-B	612
बुद्धाणं	5	21	629
बुद्धि	4	269	602
बुद्धे	2	89	226
बेआहिआइ	2	43	179
बेछप्पण्णा	2	48	180
बेमि	7	214	859
बोल	2	42	178
बोहगस्स	5	5-B	612
बोहयाणं	5	21	629
बोहिदयाणं	5	21	629
भंडालंकारं	3	72-75	325
भंडे	4	140	513
भंभा	3	31-B	307
भंभाभूए	2	131	242
भंभाभूए	2	139	252
भए	2	69	212
भग	7	133	794
भग	7	186	848
भगंदराइ	2	43	179
भगवं	7	214	859

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
भगवओ	1	5-6	20
भगवन्ताणं	5	21	628
भगिणि	2	27	172
भगिणी	2	69	212
भगे	7	130	790
भग्गवेसे	7	132	793
भज्जा	2	27	172
भद्दिट्टत्तं	3	221-B	427
भड्डरयं	5	7-B	616
भड्डिमादीए	2	131	242
भड	3	17	289
भड	3	78	328
भत्तपाणपडिआइक्खिए	3	224	430
भत्तसालासु	3	32-34 B	311
भत्तिचित्ते	1	37	107
भत्तिचित्तेहिं	5	32	636
भत्तेणं	2	71	215
भद्दंमि	3	138-C	385
भद्दगा	2	16-C	165
भद्दवए	7	104	770
भद्दवए	7	114	777
भद्दवया	7	113	776
भद्दसालवणं	4	94	481
भद्दसालवणे	4	214	571
भद्दसालवणे	4	215	572
भद्दसेणो	5	52	650
भद्दसेणो	5	52	651
भद्दा	2	64-F	205
भद्दा	3	185-B	408
भद्दा	5	10	621
भद्दाइं	5	68	673
भद्दासण	3	12	283
भद्दासण	3	3	268
भद्दासणं	5	58	667
भद्दे	7	118	779
भन्तसंभन्तंणामं	5	57	658
भमरकुल	3	24	296
भयंकरा	2	131	242
भयगेइ	2	26	172
भयपरित्तासे	2	70	213
भयभेरवाणं	2	64-F	205
भरणी	7	113	776
भरणी	7	128	786
भरणी	7	129	788
भरणी	7	140	807
भरणी	7	149	812
भरणी	7	159	819
भरणीओ	7	134	795
भरणीओ	7	135	797
भरहं	1	47	116
भरहकूडे	4	44	457
भरहवासपढमवति	3	126-A	375
भरहस्स	3	8	276
भरहस्स	4	1-A	434
भरहाहिव	3	167-G	395
भरहाहिवस्स	3	121	371
भरहाहिवे	3	18	290
भरहाहिवो	3	135	381
भरहे वासे	3	226	432
भरहे	1	18	87
भरहे	1	20	90
भरहे	1	23-A	94
भरहे	2	8	137
भरहे	3	13	288
भरहे	3	163	390
भरहे	3	226	432
भरहे	3	26-B	301
भरहे	3	5	272
भरहे	3	9	277
भरहे	6	12	682
भरहे	6	9	680
भरिए	2	6-E	133

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
भवइ	1	47	117
भवउत्ति	2	64-F	205
भवणं	1	51	120
भवणंसि	3	25	299
भवणपंतीसहस्साइं	3	186-A	409
भवणवइ	2	95	230
भवणवरवडिंसगं	3	186-B	410
भवणवासीणं	2	94	229
भवणविमाण	3	3	268
भवणा	1	31	102
भवणे	4	70	471
भविस्सइ	1	47	117
भसोलं	5	57	658
भाइयव्वं	5	5-B	612
भाइल्लएइ	2	26	172
भागसयाइं	7	98	759
भाणिअव्वाइं	2	72	218
भाणिअव्वो	1	26	99
भाणीअ	3	24	296
भाय	2	27	172
भाया	2	69	212
भारग्गसो	2	109	233
भारद्दाए	7	132	793
भावओ	2	69	212
भावकेउस्स	7	186	848
भावणाए	2	71	215
भाविअप्पा	7	122	782
भावेमाणस्स	2	71	215
भावेमाणा	2	83	221
भिंगनिभा	4	223	576
भिंगा	4	223	576
भिंगार	3	11	281
भिंगार	3	3	268
भिंगारग	2	12-B	140
भिंगारहत्थगयाओ	5	9	621
भिंगाराणं	5	55	653
भिंडिमाल	3	31-B	307
भिउडिं	3	26-A	299
भित्तुं	2	6-B	130
भिसमुणाले	4	25	448
भिसेइ	2	17	167
भीआ	2	60	192
भीआ	3	111	361
भुअंग	2	15-D	160
भुज्जो	7	214	859
भुत्तं	2	71	215
भुत्तुत्तरागए	3	82	333
भुविं	1	47	117
भूअ	2	31	173
भूअग्गहाइ	2	43	179
भूतिकम्मं	5	16	626
भूमिगयदिट्ठिआ	3	105	350
भूमिचवेडे	5	57	658
भूमिभागाओ	1	25	98
भूमिभागे	1	13	41
भूमिभागे	1	21	92
भूमिभागे	2	56	188
भूमियाण	3	32-34 B	311
भूमीणं	1	26	99
भूसणाणि	3	81-C	331
भे	3	90	338
भेरि	3	12	283
भेरुतालवणाइं	2	9	138
भोअणजाए	2	18	167
भोअणमंडवंसि	3	28	303
भोअणमंडवे	3	28	303
भोगंकरा	5	1	608
भोगवई	5	1	608
भोगत्थिआ	3	185-A	407
भोगमालिणी	4	164	531
भोगमालिनी	5	1	608
भोगवई	7	121	781

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
भोगाणं	2	65-D	208
भोमिज्जाणं	5	55	653
भोमे	7	122	782
मंख	2	64-D	203
मंगल	3	82	333
मंगल	3	9	277
मंगलगा	4	28	451
मंगलजयसद्दकयालोए	3	77	327
मंगलावई	4	202-B	557
मंगलावईकूडे	4	204	559
मंगलावत्तकूडे	4	192	549
मंगलावत्ते	4	193	549
मंगल्लाहिं	2	64-E	204
मंगल्लाहिं	3	185-A	407
मंचाऽइमंचकलिअं	3	7	276
मंचाइमंचकलिअं	3	184	406
मंजरि	5	58	667
मंजुघोसा	5	52	651
मंजुघोसा	5	53	652
मंजुस्सरा	5	52	651
मंजुस्सरा	5	53	651
मंजूससंठिआ	3	167-G	395
मंजूसा	4	200	552
मंडल	2	15-A	158
मंडलग्ग	3	35-B	316
मंडलपती	3	81-C	331
मंडलरोगाइ	2	43	178
मंडलिअरायमज्झे	3	225	431
मंडवगा	1	13	41
मंडव्वायणे	7	132	793
मंतप्पओगेण	3	115	364
मंदं	2	65-B	207
मंदर	1	26	99
मंदर	3	2	267
मंदरकूडा	6	11	681
मंदरचूलिआ	4	242	587
मंदरस्स	1	16	63
मंदरस्स	1	46-A	114
मंदरस्स	1	46-D	116
मंदरस्स	6	23	686
मंदरा	6	10	680
मंदरो	2	68	210
मंदातवलेसा	7	58	737
मंसल	2	15-B	159
मंसल	2	15-B	159
मंसल	2	15-D	160
मंसलग्गहत्थाओ	2	15-D	160
मंसाहारा	2	135	249
मंसाहारा	2	136	250
मंसु	2	133	245
मउअ	2	15-A	158
मउअसुकुमारतालु	2	15-E	161
मउड	3	3	268
मउड	3	6	274
मउडं	3	210-211-A	421
मउडं	3	26-B	301
मउडदित्तसिरए	3	9	277
मउडवज्जं	3	6	274
मउडिं	3	44-50	320
मउयसुकुमाल	2	15-A	158
मक्कारे	2	61	192
मक्कारेणं	2	61	192
मगदंतिआगुम्मा	2	10	138
मगदन्तिआगुम्मा	4	166	533
मगर	1	37	107
मगरंडग	5	32	636
मगरज्झय	2	15-G	162
मगरमुहविउट्ट	4	24	447
मग्गण	3	223	429
मग्गदयाणं	5	21	629
मग्गसिरं	7	140	808
मग्गसिरं	7	149	812

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
मग्गसिरिण्णं	7	140	808
मग्गसिरिण्णं	7	145	811
मग्गसिरिण्णं	7	149	812
मग्गसिरिण्णं	7	152	814
मग्गसिरी	7	137	801
मग्गसिरी	7	155	816
मग्गुगा	2	137	250
मघवं	5	18	627
मघा	7	128	786
मघा	7	140	808
मच्छ कच्छभे	2	134	249
मच्छ	2	15-G	162
मच्छ	3	12	283
मच्छ	4	25	448
मच्छ	5	58	667
मच्छंडग	5	32	636
मच्छंडिआइ	2	17	166
मच्छकच्छभेहिं	2	134	249
मच्छाहारा	2	135	249
मच्छाहारा	2	136	250
मज्जणघरं	3	21	294
मज्जणघरे	3	17	289
मज्जणघरे	3	9	277
मज्जणविहीए	3	9	277
मज्जायातिक्कम	2	133	245
मज्जावेंति	5	14	624
मज्जिए	3	9	277
मज्झंतिअमुहुत्तंसि	7	36	729
मज्झंमज्झेणं	2	65-A	205
मज्झंमज्झेणं	2	90	226
मज्झंमज्झेणं	3	14	288
मज्झदेसे	3	224	430
मज्झमिल्लि०	4	256	594
मज्झिमपच्छिमेसु	2	159-164	261
मज्झिमपरिसाए	4	19	441
मज्झिमरुअगवत्थव्वाओ	5	13	622

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
मज्झिमे	2	55	188
मज्झिल्ले	4	253	593
मज्झे	1	8	27
मज्झे	4	260	595
मट्टिअं	5	55	653
मट्ठा	1	8	27
मट्ठे	1	23-C	96
मडंब	3	18	290
मडंबसहस्साणं	3	221-A	427
मडंबाणि	3	81-A	330
मण	3	35-B	316
मणगुत्ते	2	68	210
मणणिव्वुइकराहिं	2	64-E	204
मणवयकाये	2	71	215
मणसमिए	2	68	210
मणागयाणं	2	90	226
मणामतरिआ	2	17	167
मणामाहिं	2	64-E	204
मणामाहिं	3	185-A	407
मणि	1	37	107
मणि	2	24	171
मणि	2	64-C	202
मणि	3	12	283
मणि	3	35-A	314
मणिकंचण	4	269	602
मणिपेढिआ	1	43	113
मणिपेढिआ	4	12	439
मणिपेढिआ	5	35	636
मणिपेढिआओ	4	124	505
मणिपेढिआओ	4	126	506
मणिपेढिआओ	4	139	513
मणिपेढिया	4	218	574
मणिरयणं	3	92	339
मणिरयणपतिसमं	3	92	339
मणिरयणलोअणाणं	7	178-B	836
मणिरयणे	3	178-179-C	399

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
मणिवरं	3	92	339
मणीर्हि	1	13	41
मणीर्हि	1	21	93
मणीर्हि	1	26	99
मणीर्हि	1	33	105
मणीर्हि	2	57	189
मणुआऽसुराए	2	64-D	203
मणुआणं	2	128	240
मणुईओ	2	15-A	158
मणुईणं	2	15-A	158
मणुण्णार्हि	2	64-E	204
मणुन्नार्हि	3	185-A	407
मणुयगामी	1	22	94
मणुयाणं	1	22	93
मणुस्सकोडीओ	3	178-179-E	400
मणुस्सगामी	2	58	190
मणुस्से	3	98	346
मणोगए	3	26-A	299
मणोगए	3	56-57A	321
मणोगमाणं	7	178-B	837
मणोगुलिआ	4	129	509
मणोज्जगुम्मा	2	10	138
मणोरम	4	260	595
मणोरमाणं	7	178-B	837
मणोरमे	5	49-A	646
मणोरहमालासहस्सेर्हि	3	186-A	409
मणोरहे	7	117	779
मणोसिला	3	11	282
मण्डवस्स	5	35	636
मत्तंगा	2	13	141
मत्तजला	4	202-B	556
मत्थयम्मि	3	81-C	331
मत्थसूलाइ	2	43	179
मद्दवेणं	2	71	215
मन्दर	4	260	595
मन्दरकूडे	4	236	582
मन्दरे	4	213-A	568
मन्दरे	4	238	583
मन्दरे	4	261	597
मन्दायईयं	5	57	658
ममेअमाणत्तिअं	3	12	284
मयणिज्जे	2	18	167
मयूर	2	15-G	162
मरगय	3	109-C	355
मरणस्स	2	103	232
मरीइकवयं	1	37	107
मरुदेव	2	62	193
मरुदेवाए	2	63	194
मरुदेवे	2	59	190
मरुयराय	3	18	290
मलय	1	26	99
मलय	3	2	267
मल्ल	2	32	174
मल्ल	3	11	281
मल्ल	3	12	283
मल्लदामेणं	3	77	327
मल्लहत्थगए	3	9	278
मल्ला	3	12	282
मल्लिअ	3	12	283
मल्लिअ	5	58	667
मल्लिअच्छणं	7	178-D	841
मल्लिआगुम्मा	2	10	138
मल्लिहार्णि	3	109-G	359
मल्लेहि	2	120	237
मल्लेहि	3	12	283
मल्लेहि	3	88-A	335
मसगाइ	2	40	177
मसारगल्ल	3	109-C	355
मसीइ	2	23	170
मसूर	2	37	176
महंत	1	26	99
महंत	1	9	27

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
महंत	3	2	267
महआसा	3	178-179-F	402
महइमहालए	2	114	235
महई	1	10	29
महग्गहा	7	1	690
महग्गहा	7	170	828
महग्गहे	7	113	777
महग्घं	3	207	417
महज्जुईआ	1	24	97
महज्जुईआ	1	31	102
महति	3	31-B	307
महत्तरगतं	3	221-B	427
महत्तरिआओ	5	1	608
महत्तरिआणं	4	18	441
महद्दहा	6	17	684
महपउमे	3	167-B	392
महयाहिमवंत	1	26	99
महयाहिमवंत	3	2	267
महरिह	3	9	277
महरिहं	3	207	417
महरिहाणि	3	81-C	331
महव्वयाइं	2	72	218
महा	7	147	811
महा	7	162	820
महा	7	163	820
महाओहस्सरा	5	51	650
महाकच्छकूडे	4	186	547
महाकच्छे	4	184	546
महाकाले	3	167-B	392
महाघोसा	5	48	645
महाघोसा	5	49-B	647
महाचावं	3	24	296
महाजाइगुम्मा	2	10	138
महाजुद्धाइ	2	42	178
महाणई	4	23	446
महाणईए	1	16	63
महाणईए	3	1	263
महाणईए	3	15	289
महाणईओ	2	133	246
महाणईओ	6	18	684
महाणईओ	6	19	684
महाणईहिं	1	48-A	117
महाणिहिओ	3	183	406
महाणिहीणं	3	221-A	426
महाणुभागा	1	24	97
महादुमो	5	51	650
महानिही	3	167-B	392
महापउमद्दहे	4	64	469
महापम्हे	4	212-A	564
महापम्हे	4	212-A	565
महापुरा	4	212-A	564
महापुरा	4	212-A	565
महापुरिसपडणाइ	2	42	178
महापोंडरीअ	4	25	448
महाबला	1	24	97
महामहिमं	3	12	284
महामहिमं	3	28	303
महामहिमाए	3	30	304
महामहिमाओ	2	120	237
महामहिमाओ	5	74	675
महामेहणिकुरंब	2	10	138
महामेहे	2	141	252
महामेहे	2	143	254
महायसा	1	24	97
महारज्जवासमज्झे	2	87	224
महारायमज्झे	3	225	431
महारायवासमज्झे	2	64-A	194
महारायवासमज्झे	2	64-B	201
महारुहिरपडणाइ	2	42	178
महावच्छे	4	202-B	557
महावप्पे	4	212-A	565
महाविजयाइ	2	17	167

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
महावित्तेहिं	5	58	668
महाविदेहे	4	102	487
महाविदेहे	4	98-A	484
महाविदेहे	6	22	686
महाविदेहे	6	9	680
महावीरस्स	1	5-6	20
महावीरे	7	214	859
महासंगामाइ	2	42	178
महासत्थपडणाइ	2	42	178
महासमुद्दरवभूअं	3	22	295
महासुक्कयाणं	5	49-B	647
महासुक्खा	1	24	97
महासुक्खा	1	31	102
महाहिमवंते	4	80	474
महाहिमवन्तकूडे	4	79	473
महाहिमवन्ते	4	62	467
महिंति	5	16	625
महिंदज्झए	5	43	640
महिंदसारा	1	26	99
महिंदसारे	3	2	267
महिड्ढीआ	1	31	102
महिड्ढीए	1	47	117
महिड्ढीया	1	24	97
महिलागुणे	2	64-A	194
महिसीइ	2	34	175
महुरस्सरा	5	52	651
महुरे	2	145	255
महोरगेण	3	115	364
माइअ	2	15-C	159
माइअ	3	31-A	305
मागहतित्थकुमारस्स	3	20	292
मागहतित्थमेराए	3	26-B	301
मागहतित्थाधिपतिस्स	3	25	299
मागहतित्थाभिमुहं	3	15	289
मागहतित्थाभिमुहे	3	14	288
मागहतित्थाहिवई	3	26-A	299
मागहतित्थे	3	18	290
मागहतित्थोदगं	3	26-B	301
मागहतित्थोदगं	3	26-B	301
मागहाइतित्थाणं	5	55	653
मागहे	6	12	682
माघिण्णं	7	140	808
माडंबिअ	2	25	171
माढीसहस्सकलिए	3	31-A	305
माण	2	16-C	165
माणवए	4	133	510
माणवए	7	185	846
माणवगस्स	4	135	512
माणवगा	2	120	237
माणवगे	3	167-B	392
माणिभद्दकूडे	1	34	105
माणिभद्दकूडे	1	46-B	115
माणिभद्दे	1	3	18
माणिभद्दे	7	214	859
माणी	4	172	538
माणुम्माणप्पमाणजुत्तं	3	138-A	383
माणुसच्छराओ	2	15-I	163
माणुसुत्तरस्स	7	58	737
मायंजणे	4	202-B	556
माया	2	16-C	165
माया	2	69	212
मायाइ	2	27	172
मारिबहुले	1	18	87
मालं	3	133-134	380
मालवंते	4	162	529
मालवन्तपरिआए	4	272	603
मालवन्ते	4	162	529
मालवन्ते	4	166	533
मालवन्तो	4	142	516
मालिअ	3	12	283
मास	2	37	176
मास	3	119-B	369

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
मासपरिआया	2	83	221
मासा	7	114	777
मासा	7	126	784
मासे	2	64-C	202
मासे	2	69	212
मासो	2	4-C	126
माहबहुले	2	88	225
माहिंद	5	49-B	647
माहिंद	7	122	782
माहिण्णं	7	149	812
माही	7	137	801
माही	7	154	815
माहीए	7	153	815
मिअ	2	15-C	159
मिअ	2	35	175
मिअगंधा	2	50	183
मिअसिर	7	128	786
मिउमद्दवसंपन्ना	2	16-C	165
मिगसिरं	7	160	818
मिगसिरं	7	161	820
मिगसीसावलि	7	133	794
मितपिंडनिवेदणाइ	2	30	173
मित्ताइ	2	29	173
मित्ते	7	122	782
मित्ते	7	186	848
मित्तो	7	130	790
मिलक्खुभासाविसारए	3	77	326
मिलाएंति	5	55	654
मिल्लं	1	23-A	94
मिसिमिसिंतमणि	3	24	296
मिसिमिसेंत	3	9	277
मिसिमिसेमाणे	3	26-A	299
मिस्सकेसी	5	11	622
मिहिला	1	2	18
मिहिलाए	1	3	18
मिहिलाए	7	214	859

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
मीसए	2	69	212
मुंडिणो	3	178-179-F	402
मुंडे	2	65-D	208
मुंडे	2	85	223
मुइंग	3	12	283
मुइंगपुक्खरेइ	2	127	240
मुइंगमत्थएहिं	3	187	410
मुइंगमत्थएहिं	3	218	425
मुइंगमत्थएहिं	3	82	333
मुगुंद	3	31-B	307
मुग्ग	2	37	176
मुग्ग	3	119-B	369
मुच्चंति	1	22	94
मुट्ठिअ	2	32	174
मुट्ठिप्पमाणमेत्ताहिं	3	115	364
मुणालतंतु	3	109-E	356
मुत्तंतरोवइआ	4	27	450
मुत्ताजालं	3	44-50	320
मुत्ताणं	5	21	629
मुत्तातार	3	79	328
मुत्तादामे	5	38	637
मुत्तावलिहारसंठिएणं	4	23	446
मुत्तीए	2	71	215
मुत्तोलीसंवत्त	3	109-B	353
मुद्दाला	2	8	137
मुद्दिआपिंगलंगुलीए	3	9	277
मुद्धाणंसि	5	64	671
मुम्मुरभूअं	2	141	253
मुम्मुरभूआ	2	132	244
मुरव	3	12	283
मुरुंडी	3	11	281
मुसल	3	115	364
मुसल	3	3	268
मुसलेइ	2	6-D	132
मुहफुल्लए	7	133	794
मुहमंगलिअ	2	64-D	203

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
मुहमंगलिआ	3	185-A	407
मुहमंडवा	4	122	504
मुहुत्तस्स	2	4-A	125
मुहुत्ता	7	122	781
मुहुत्ता	7	126	784
मुहुत्ते	2	69	212
मुहुत्ते	7	134	795
मुहुत्तेणं	7	20	701
मुहुत्तेणं	7	79	748
मुहुत्तेत्ति	2	4-B	126
मूलं	7	128	786
मूलग	3	119-B	369
मूलगबीआइ	2	37	176
मूलपासायवर्डिसयाणं	4	120	503
मूलमंतो	2	8	137
मूला	4	7	438
मूले	1	8	27
मूले	7	132	793
मूलो	7	129	788
मूलो	7	140	808
मूलो	7	149	812
मूलो	7	166	821
मूलो	7	167	822
मे	2	69	212
मेइणि	2	15-G	162
मेघघणसण्णिकासं	3	224	430
मेघस्सरा	5	52	650
मेघस्सरा	5	52	651
मेघोघरसिअं	5	22	629
मेच्छजाई	3	81-B	331
मेरु	4	260	595
मेरुतालवणाइं	2	9	138
मेरुस्स	7	32	725
मेहंकरा	5	6	616
मेहकुमारे	2	111	233
मेहमालिनी	4	238	583
मेहमालिनी	5	6	616
मेहमुहा	3	111	361
मेहवई	4	238	583
मेहवई	5	6	616
मेहाणीअं	3	115	364
मेहानीकं	3	125	373
मेहुणवत्तिअं	7	185	846
मो	3	81-C	331
मोअगाणं	5	21	629
मोक्खमग्गस्स	2	71	215
मोक्खमग्गे	2	71	215
मोग्गरगुम्मा	2	10	138
मोग्गलायण	7	132	793
मोग्गलायणसगोत्ते,	7	132	793
मोच्छिहिंति	2	131	242
मोत्तिअ	2	24	171
मोत्तिअ	2	64-C	202
मोत्तिअ	3	35-B	316
मोहंति	1	13	42
मोहरिआ	3	178-179-F	402
यदल	2	15-E	161
याणह	3	124	372
रंगाण	3	167-D	393
रइ	2	70	213
रइअ	2	15-A	158
रइअपासाओ	2	15-C	159
रइकरगपव्वए	5	44	641
रइतातिरेग	3	35-C	317
रएंति	2	96	230
रएह	2	95	230
रओसला	2	131	242
रक्खसे	7	122	782
रक्खापोट्टलिअं	5	16	626
रज्जधुरं	3	188	411
रज्जसए	2	64-B	201
रण्णो	2	18	167

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
रत्त	3	24	296
रत्त	3	7	276
रत्तकंबलसिला	4	252	592
रत्तकम्बलसिला	4	244	589
रत्तरयण	2	24	171
रत्तरयण	2	64-C	202
रत्तवई	6	19	684
रत्तवईकूडे	4	275	606
रत्तसिला	4	244	589
रत्तसिला	4	251	592
रत्तहिंगुलुगणिगर	3	35-C	317
रत्ता	6	19	684
रत्ताकूडे	4	275	606
रत्तासोगकणग	3	35-C	317
रत्तुप्पलरत्त	2	15-E	161
रमंता	3	178-179-F	402
रमंति	1	13	42
रमंति	2	7	137
रमणिज्जरोमराई	2	15-C	159
रमणिज्जाओ	1	25	98
रमणिज्जे	4	202-B	557
रम्मए	4	202-B	557
रम्मए	4	265	599
रम्मए	4	267	601
रम्मग	4	269	602
रम्मगकूडे	4	263	599
रम्मगवासे	6	9	680
रम्मगवासेसु	6	21	685
रम्मा	2	10	138
रम्मे	4	202-B	557
रयए	4	162	529
रयए	4	238	583
रयए	4	256	594
रयण	2	64-C	202
रयणकरंडग	3	11	281
रयणकरंडगाणं	5	55	653
रयणकुच्छिधारए	5	46	643
रयणकुच्छिधारिए	5	5-B	612
रयणघंटिआ	3	24	296
रयणथूभियाए	1	37	107
रयणभत्तिचित्तंसि	3	9	277
रयणसंचया	4	202-B	557
रयणाइं	3	125	373
रयणाइं	3	151	388
रयणाइं	3	18	290
रयणामया	1	46-B	115
रयणालंकारं	3	64-67	324
रयणिखेत्तस्स	7	27-B	718
रयणिखेत्तस्स	7	30	719
रयणिप्पमाणमेत्ता	2	133	246
रयणी	2	6-D	132
रयणीओ	2	128	240
रयणोच्चए	4	260	595
रयमत्तछप्पय	2	12-B	140
रययकूडे	4	236	582
रययामएहिं	3	12	283
रययामयकूले	4	3	436
रवि	2	15-D	160
रविकिरणतरुणबोहिअ	2	15-C	159
रवेणं	5	44	641
रसपज्जवेहिं	2	51	183
रसमेहे	2	145	255
रसो	1	13	41
रह	3	15	289
रह	3	3	268
रहघणघणाइअं	5	57	658
रहचक्कवालसंठाणसंठिए	1	7	24
रहनेउर	1	26	99
रहपहकरेण	2	65-B	207
रहपहमित्तवित्थराओ	2	134	248
रहरेणूइ	2	6-C	131
रहवर	2	15-G	162

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
रहसंगेल्ली	3	178-179-F	402
रहसयसहस्सा	3	178-179-E	400
रहसिरेणं	3	131	378
रहा	3	178-179-F	402
रहाइ	2	33	174
रहे	3	98	346
रहोकम्मं	2	71	215
राइंदिआइं	2	49	181
राइंदिआइं	2	56	188
राइन्नाणं	2	65-D	208
राई	7	26	715
राईओ	7	119	780
राईणमुवत्थाणीअं	3	26-B	301
राईसर	3	178-179-E	400
रागबंधणे	2	29	173
रायत	3	117-A	365
रायतेअलच्छीए	3	18	290
रायधम्मे	2	129	241
रायधम्मे	2	158	261
रायप्पसेणइज्जे	5	32	636
रायबहुले	1	18	87
रायमग्गं	2	65-B	207
रायलच्छिर्चिंधं	3	117-A	365
रायवण्णओ	1	26	99
रायवण्णगस्स	3	3	267
रायवरसहस्सा	3	178-179-D	400
रायसहस्सा	3	205	417
रायहाणिं	3	172	397
रायहाणिं	3	7	276
रायहाणिं	3	8	276
रायहाणी	1	51	121
रायहाणी	3	180-182	405
रायहाणीए	1	45	114
रायहाणीए	2	65-A	205
रायहाणीए	3	14	288
रायहाणीए	3	2	267
रायहाणीओ	1	46-D	116
रायहाणीओ	6	16	683
राया	1	3	18
राया	3	13	288
राया	3	5	272
राया	3	9	277
रायाइ	2	25	171
रायाणो	1	26	99
रायाभिसेअं	2	85	223
रायाभिसेएणं	3	188	411
रायारिहं	3	81-C	331
रालग	2	37	176
रालग	3	119-B	369
रावेंता	3	178-179-F	402
रिगिसिगिअ	3	31-B	307
रिट्ठपुरा	4	200	552
रिट्ठा	4	200	552
रिट्ठामए	4	7	438
रिद्ध	1	2	18
रिद्धत्थिमिअ	3	1	263
रिद्धत्थिमिय	1	26	99
रिसहे०	7	122	782
रुंदछब्भागो	7	32	725
रुअग	3	32-34 C	312
रुअगकूडे	4	236	582
रुअगकूडे	4	96	483
रुअगमज्झवत्थव्वाओ	5	14	623
रुअगसंठाण	1	23-C	96
रुअगसंठाणसंठिए	4	1-C	435
रुअगे	4	238	583
रुइल	2	15-C	159
रुइलकुंकुम	3	35-C	317
रुक्ख	2	131	242
रुक्ख	2	31	173
रुक्ख	3	109-G	359
रुक्ख	3	32-34 B	311
रुक्खगेहालया	2	19	168
रुक्खबहुले	1	18	87

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
रुड्ढा	3	107	351
रुद्दे	7	122	782
रुद्दे	7	130	790
रुद्दे	7	186	848
रुप्पकूला	4	269	602
रुप्पकूला	6	20	685
रुप्पिंमि	4	269	602
रुप्पी	4	268	601
रुप्पी	4	269	602
रुप्पी	4	270	603
रुरु	1	37	107
रुरु	2	35	175
रुहिर	3	31-B	307
रुहिरबिंदु	7	133	794
रूअगावई	5	13	622
रूआ	5	13	622
रूआसिआ	5	13	622
रूव	2	15-I	163
रेणुकलुस	2	131	242
रेणुबहुला	2	132	244
रेवइ	7	113	776
रेवई	7	128	786
रेवई	7	129	788
रेवई	7	140	807
रेवई	7	149	812
रेवई	7	158	818
रोअणागिरी	4	225	576
रोइआवसाणं	5	57	658
रोगबहुले	1	18	87
रोद्दाइआ	7	126	784
रोमके	3	81-A	330
रोमरहिअ	2	15-A	158
रोमाकाला	2	133	245
रोहिअंसकूडे	4	44	457
रोहिअंसप्पवायकुण्डे	4	40	456
रोहिअंसा	4	38	455
रोहिअंसा	4	41	456
रोहिअंसा	6	20	685
रोहिअकूडे	4	79	473
रोहिअदीवे	4	68	470
रोहिअप्पवायकुंडे	4	67	470
रोहिआ	4	65	469
रोहिणी	7	113	776
रोहिणी	7	128	786
रोहिणी	7	134	795
रोहिणी	7	135	798
रोहिणी	7	140	808
रोहिणी	7	149	812
रोहिणी	7	160	818
रोहिता	6	20	685
ई	3	30	304
लंख	2	64-D	203
लंखमंखमाइआ	3	185-A	407
लंतग	5	49-B	647
लउड	3	31-B	307
लउसिअ	3	11	281
लक्खण	2	14	152
लक्खणपसत्थ	2	15-E	161
लक्खणसंवच्छरे	7	103	769
लच्छिमई	5	9	620
लच्छीकूडे	4	275	606
लज्जिआ	2	60	192
लट्ठ	3	117-A	365
लट्ठचुच्चुआमेलग	2	15-C	160
लट्ठसंठिअ	2	15-A	158
लट्ठसंठिअ	3	9	277
लट्ठिग्गाहा	3	178-179-E	400
लट्ठे	1	23-C	96
लडह	2	15-C	159
लण्हा	1	8	27
लद्धलक्खा	3	103	349
लय	2	131	242
लय	3	109-C	354
लयाबहुले	1	18	87

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
लयावण्णओ	2	11	139
ललंति	1	13	42
ललंति	2	7	137
ललिअंकयाभरणे	3	9	277
ललिअंगय	3	9	277
ललिअवाहा	2	15-D	160
लवणसमुद्द	1	16	63
लवणसमुद्दं	1	48-A	117
लवणसमुद्दं	3	22	295
लवणसमुद्दं	4	1-A	434
लवणसमुद्दं	4	35	453
लवणसमुद्दं	6	1	677
लवणसमुद्दस्स	1	23-A	94
लवणे	7	4	692
लवे	2	69	212
लहुपरक्कमो	5	48	645
लहुपरक्कमो	5	49-B	647
लहुभूए	2	70	213
लाउअ	3	119-B	369
लाउल्लोइअमहिअं	3	184	406
लाउल्लोइअमहिअं	3	7	276
लाउल्लोइअमहिए	1	37	107
लाघवेणं	2	71	215
लाभत्थिआ	3	185-A	407
लावण्ण	2	15-I	163
लासगपेच्छाइ	2	32	174
लासिअ	3	11	281
लासेन्ति	5	57	658
लिक्खा	2	6-C	131
लिक्खाइ	2	40	177
लिक्खाइ	2	6-C	131
लिहिआ	5	58	667
लूहेइ	5	58	667
लेट्ठु	3	35-A	314
लेट्ठुम्मि	2	70	213
लेसाओ	3	95-B	342
लेसापडिघाएणं	7	38	730
लेसाहितावेणं	7	38	730
लेहाइआओ	2	64-A	194
लोअं	2	65-C	207
लोअं	3	224	430
लोइआ	7	114	777
लोउत्तरिआ	7	114	777
लोकोपचयंकरा	3	167-A	391
लोगंताओ	7	172	829
लोगणाहाणं	5	21	629
लोगपईवाणं	5	21	629
लोगपज्जोअगराणं	5	21	629
लोगपाला	2	118	236
लोगमज्झावसाणिअं	5	57	658
लोगविस्सुतजसो	3	35-C	317
लोगहियाणं	5	21	629
लोगुत्तमाणं	5	21	628
लोभा	2	16-C	165
लोमहत्थगं	3	88-A	335
लोमहत्थगयाओ	3	11	281
लोमहत्थय	3	11	281
लोमहत्थयं	3	12	283
लोहस्स	3	167-F	394
लोहिअंके	7	186	848
लोहिअक्खामयाराए	3	30	304
लोहिच्चे	7	132	793
लोहियक्खकूडे	4	105	489
लोहे	2	69	212
वंकवलीविगयभेसणमुहा	2	133	245
वंजण	2	14	152
वंदइ	1	5-6	20
वंदणकलस	3	11	281
वंदणघडसुकय	3	7	276
वंदित्ता	1	5-6	20
वंदेज्ज	2	67	209
वंस	3	109-G	359
वंस	3	31-B	307
वंसा	2	124	239

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
वंसा	2	152	258
वइर	2	42	178
वइर	3	12	283
वइर	3	88-A	336
वइर	4	238	583
वइरकूडे	4	236	582
वइरतले	4	25	447
वइरवेइआतोरण	1	37	107
वइरसारतोंडं	3	24	296
वइरसारमइअं	3	88-B	336
वइरसेणा	4	238	583
वइरामईए	1	7	25
वइरामएसु	2	120	237
वइरामएसु	7	185	846
वइरामयकुंभजु	7	178-B	836
वइरामयतुंबे	3	30	304
वइरामयपासाणे	4	25	447
वइरामया	1	11	30
वइरामया	4	7	438
वइरे	4	254	593
वइरोअणराया	2	113	234
वइरोअणिंदे	2	113	234
वइरोसभणाराय	2	46	180
वइसाहं	3	24	296
वइसाहिण्णं	7	149	812
वइसाही	7	137	801
वइसाही	7	155	816
वक्ख	2	15-D	160
वक्खारकूडा	6	11	681
वक्खारपव्वए	4	185	547
वक्खारपव्वएसु	5	55	654
वक्खारा	6	10	680
वग्गन्ति	5	57	658
वग्गू	4	212-A	565
वग्गूहिं	2	64-E	204
वग्गूहिं	3	185-A	407
वग्घा	2	136	250

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
वग्घाइ	2	36	175
वग्घारिअमल्लदामकलावं	3	117-C	367
वग्घावच्चे	7	132	793
वच्छगावई	4	202-B	557
वच्छमित्ता	4	238	583
वच्छमित्ता	5	6	616
वच्छे	4	202-A	555
वच्छे	4	202-B	557
वज्जं	5	57	657
वज्जपाणी	5	18	627
वज्जपाणी	5	46	644
वज्जरिसह	2	86	224
वज्जरिसहनाराय	2	16-B	164
वज्जविराइअ	2	15-B	159
वज्जसूलपाणी	5	57	657
वज्झिआयण	7	132	793
वट्ट	2	15-A	158
वट्ट	2	15-B	159
वट्ट	3	117-A	365
वट्टमाणस्स	2	71	215
वट्टवेअड्ढपव्वए	4	57	465
वट्टवेअड्ढपव्वए	4	84	476
वट्टवेअड्ढा	6	10	680
वट्टवेअड्ढेसु	5	55	654
वट्टा	1	31	102
वट्टिअ	2	15-C	160
वट्टिअदित्त	7	178-B	836
वट्टे	1	7	24
वडभीओ	3	11	281
वडिंसे	4	225	576
वडेंसेति	4	260	595
वड्ढइरयणं	3	18	290
वड्ढइरयणं	3	31-B	307
वड्ढइरयणे	3	19	292
वणमाला	1	38	108
वणमालाओ	4	10	438
वणराईओ	2	12	139

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
वणलय	1	37	107
वणलयभत्तिचित्ताओ	2	101	231
वणविरोहे	7	114	777
वणसंडवण्णओ	1	12	37
वणसंडस्स	1	13	41
वणसंडा	1	23-C	96
वणसंडा	1	25	98
वणसंडे	1	12	37
वणसंडेहिं	1	23-C	96
वणसंडेहिं	1	28	101
वणसंडेहिं	4	1-C	435
वणस्सइकाइअत्ताए	7	212	857
वणिए	2	23	170
वणिजं	7	123	782
वणिजं	7	125	783
वणिजं	7	125	783
वणीमगबहुले	1	18	87
वण्ण	3	11	281
वण्ण	3	12	283
वण्णओ	1	16	63
वण्णओ	1	2	18
वण्णओ	1	23-C	96
वण्णग	3	20	292
वण्णगविलेवणे	3	9	277
वण्णपज्जवेहिं	2	121	238
वण्णपज्जवेहिं	2	130	241
वण्णपज्जवेहिं	2	51	183
वण्णपज्जवेहिं	2	54	188
वण्णावासे गाहा	1	46-A	114
वण्णावासे	1	11	30
वण्णेणुववेए	2	18	167
वण्णो	1	13	41
वण्णो	2	7	137
वत्तव्वया	2	156-157	259
वत्थ	3	11	281
वत्थाइं	3	26-B	301
वत्थाणि	3	26-B	301
वत्थाणि	3	64-67	324
वत्थारुहणं	3	12	283
वत्थारुहणं	3	88-A	335
वत्थिपएसे	3	117-A	365
वत्थिप्पएसा	2	15-D	160
वत्थिभागंसि	3	119-A	368
वत्थुपरिच्छाए	3	32-34 B	311
वत्थुप्पएसे	3	32-34 B	311
वत्थुलगुम्मा	2	10	138
वत्थुसमासेणं	7	101	763
वत्थेहिं	3	178-179-E	401
वद्धइरयणं	3	186-A	409
वद्धइरयणं	3	99	347
वद्धइरयणे	3	178-179-E	400
वद्धमाण	5	32	636
वद्धमाण	5	58	667
वद्धमाणग	2	64-D	203
वद्धमाणग	3	12	283
वद्धमाणग	3	3	268
वद्धमाणग	7	133	794
वद्धमाणया	3	185-A	407
वद्धमाणे	3	32-34 C	312
वन्दणकलसाणं	5	55	653
वन्दणवत्तिअं	5	27	633
वप्पावई	4	212-A	565
वप्पे	4	212-A	565
वयंसाइ	2	29	173
वयण	2	15-I	163
वयणमालासहस्सेहिं	3	186-A	409
वयणायाम	2	15-B	159
वयसमिए	2	68	210
वयासी	1	5-6	20
वरंगुलीआओ	2	15-D	160
वरआयंस	2	15-G	162
वरइत्थिगुम्म	3	221-B	427
वरकंचणभूसिअं	3	35-B	316
वरकडग	3	6	274

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
वरकणगथूभिआगा	1	38	108
वरकणगथूभियाए	1	16	63
वरकमलपइट्ठाणेहिं	3	209	419
वरकलस	5	58	667
वरकुप्परं	3	35-B	316
वरग	2	37	176
वरचंदणचच्चिअंगे	3	221-B	427
वरण	3	119-B	369
वरणगरसरिच्छं	3	18	290
वरणगरसरिच्छं	3	61-63	324
वरणाडग	3	221-B	427
वरणेमीमंडलं	3	35-B	316
वरतुडिअजमग	3	12	283
वरतुरगसंपउत्तं	3	35-B	316
वरदामतित्थकुमारस्स	3	43	319
वरदामतित्थाभिमुहे	3	30	304
वरदामतित्थेणं	3	36-42	318
वरदामे	6	12	682
वरधुरातोंडं	3	35-B	316
वरपुरिसे	3	35-B	316
वरफलय	3	31-A	305
वरफेणणिगर	3	35-B	316
वरभवण	2	15-G	162
वरभवणविसिट्ठ	2	20	168
वरमउडविसिट्ठए	3	221-B	427
वरमहारहं	3	35-B	316
वरमहिस	3	24	296
वरवइर	3	24	296
वरवइरबद्धतुंबं	3	35-B	316
वरवइरभेदकं	3	109-G	359
वरवइरसोंड	7	178-B	836
वरवत्थभूसणधरे	3	221-B	427
वरसत्ति	3	35-B	316
वरसारहिसुसंपग्गहिअं	3	35-B	316
वरसिंदुवार	3	35-B	316
वरसुरभि	3	12	283
वरहाररइअवच्छे	3	221-B	427
वराइं	3	125	373
वराइं	3	151	388
वराइं	3	18	290
वराधराओ	2	15-D	160
वरायरिअणिम्मिअं	3	35-B	316
वराह	2	35	175
वरिंदणील	3	35-A	314
वरिट्ठं	3	81-C	331
वरुण	1	31	102
वरुणे	7	130	790
वरुणे	7	186	848
वरेहिं	2	120	237
वरेहिं	3	12	283
वरेहिं	3	88-A	335
वलभीघर	2	20	168
वलिअतणुणअ	2	15-B	159
वल्लि	2	131	242
वल्लिवेढिअ	3	32-34 B	311
वल्लीबहुले	1	18	87
ववगयअसि	2	23	170
ववगयआवाह	2	30	173
ववगयइड्ढिसक्कारा	2	25	171
ववगयखाणु	2	39	177
ववगयडंस	2	40	177
ववगयमाला	3	20	292
ववगयरोगायंका	2	43	179
ववगयवलि	2	15-H	162
ववगयवेराणुबंधा	2	42	178
ववगयवेराणुसया	2	28	172
ववगयहास	2	70	213
ववसायसभासु	4	140	513
वसंतमासे	7	114	777
वसंतलय	5	32	636
वसइ	2	64-A	194
वसइ	2	64-A	194
वसइत्ता	2	64-A	194
वसणब्भूअमणारिआ	2	43	179

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
वसभवाहणे	2	91	228
वसभवाहणे	5	48	645
वसहरूवधारीणं	7	178-C	839
वसहिं	2	19	168
वसहीहिं	3	18	290
वसाहि	3	185-B	408
वसिट्ठकूडे	4	204	559
वसुंधरा	5	9	620
वसुदेवयाए	7	130	790
वसुहं	3	18	290
वसुहर	3	126-A	374
वसू	7	130	790
वसू	7	186	848
वह	2	133	245
वहएइ	2	28	172
वहस्सई	7	130	790
वहस्सई	7	186	848
वहिआ	3	111	361
वाइसहस्सा	2	80	221
वाउ	7	122	782
वाउकाइअत्ताए	7	212	857
वाउकुमारे	2	107	233
वाउक्कायं	2	107	233
वाउद्धुअ	3	24	296
वाउला	2	131	242
वाऊ	7	130	790
वाऊ	7	186	848
वाऊणं	5	52	651
वागरणं	7	214	859
वागरमाणाणं	2	78	220
वाघाइए	7	182	844
वाणमंतर	2	95	230
वाणमंतरा	1	13	41
वाणमंतरा	1	30	101
वाणमंतराणं	2	94	229
वाणमन्तर	5	53	651
वाणिज्जेइ	2	23	170
वाबाहं	2	36	175
वामं	2	113	234
वामं	3	12	283
वामं	3	6	274
वामणि	3	11	281
वायंता	3	178-179-F	402
वायकरग	3	11	281
वायकरगाणं	5	55	653
वायविधुअग्गसाला	2	10	138
वाया	2	131	242
वारिसेणबलाहयाओ	4	210	563
वारिसेणा	5	6	616
वारुणी	5	11	622
वारुणे	7	122	782
वालग	1	37	107
वालगगणा	2	41	177
वालग्गपोइआ	2	20	168
वालग्गा	2	6-F	135
वालग्गे	2	6-C	131
वालग्गेइ	2	6-C	131
वालवीइअंगे	3	9	277
वालुआसंथारए	3	111	361
वावहारिअपरमाणूणं	2	6-C	131
वावहारिए	2	6-A	129
वावि	2	15-G	162
वाविआइं	3	79	328
वावी	2	12-B	140
वावी	7	133	794
वावीओ	1	33	105
वास	1	18	87
वासं	1	47	116
वासंतिआगुम्मा	2	10	138
वासंतिमउल	2	15-E	161
वासघरेसु	3	32-34 B	311
वाससए	2	4-C	127
वाससए	2	6-F	135
वाससयसहस्से	2	4-C	127

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
वाससहस्से	2	4-C	127
वासहरकूडा	6	11	681
वासहरपवहाओ	6	18	684
वासहरपव्वए	4	1-A	434
वासहरपव्वयस्स	1	18	87
वासहरपव्वयस्स	1	48-A	117
वासहरा	6	10	680
वासा	6	6	678
वासा	6	9	680
वासावासवज्जं	2	70	213
वार्सिति	5	57	658
वासिढे	7	132	793
वासीतच्छणे	2	70	213
वासुदेवा	2	125	239
वासुदेवा	7	200	853
वासे	1	23-A	94
वासे	2	8	137
वासे	3	226	432
वाहण	3	31-B	307
वाहण	3	32-34 C	312
वाहणं	2	64-C	202
वाहि	2	15-H	162
वाहि-रोगवेदणोदीरण	2	131	242
विअट्टछउमाणं	5	21	629
विअडावई	4	84	476
विअरह	3	188	411
विआणए	3	77	326
विआणियाओ	3	87	335
विआलए	7	186	848
विइक्कंते	2	71	214
विउलधण	2	64-C	202
विउलमइसहस्सा	2	80	221
विउलवच्छे	3	3	268
विउव्वेंति	2	106	232
विउव्वेह	2	105	232
विकलरूवा	2	133	245
विकिअभूयाइं	5	57	658
विक्खंभबाहल्लेणं	2	141	252
विक्खंभेणं	1	18	87
विक्खंभेणं	1	23-A	94
विक्खंभेणं	1	8	27
विग	2	36	175
विगयचेट्ठ	2	133	246
विगा	2	136	250
विग्घणिज्जे	2	18	167
विचित्तकूडा	6	10	680
विचित्ता	5	1	608
विच्छड्डयित्ता	2	64-C	202
विच्छिप्पमाणे	3	186-A	409
विच्छुअअले	7	133	794
विजए	1	15	63
विजए	1	16	63
विजए	7	114	777
विजए	7	122	782
विजय	6	6	678
विजयक्खंधावारणिवेसे	3	115	364
विजयखंधावार	3	28	303
विजयखंधावारणिवेसं	3	166	390
विजयखंधावारणिवेसं	3	31-B	307
विजयखंधावारणिवेसं	3	52-54	321
विजयखंधावारनिवेसं	3	18	290
विजयखंधावारनिवेसं	3	61-63	324
विजयदूसे	5	37	637
विजयपुरा	4	212-A	564
विजयपुरा	4	212-A	565
विजयम्मि	3	24	296
विजयरायहाणी	1	46-D	116
विजयवेजइअं	3	12	284
विजयस्स	1	46-A	114
विजयस्स	1	51	121
विजयस्स	5	57	658
विजया	4	212-A	565
विजया	5	8	620
विजया	7	120	780

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
विजया	7	186	847
विजयाइ	2	17	167
विज्जलाइ	2	38	176
विज्जाहर	1	26	99
विज्जाहरराईणं	3	137	382
विज्जाहरसेढीए	3	220	426
विज्जाहरसेढीओ	1	25	98
विज्जाहरसेढीओ	6	15	683
विज्जुआ	3	104	350
विज्जुआयंति	5	57	658
विज्जुणामे	4	210	563
विज्जुप्पभं	4	94	481
विज्जुप्पभकूडे	4	210	562
विज्जुप्पभाणं	4	207	561
विज्जुप्पभे	4	209	562
विज्जुप्पभे	4	211	564
विज्जुमेहा	2	131	242
विज्जुयायन्ति	3	115	364
विज्जूणं	5	52	651
विड्डी	7	123	782
विड्डी	7	125	783
विड्डी	7	125	783
विडिमंतरपरिवसणा	2	16-C	165
विणएणं	3	13	288
विणएणं	3	8	276
विणओणया	2	60	192
विणट्ठजम्म	2	103	232
विणमी	3	138-C	386
विणिम्मुअंतं	3	12	283
विणिम्मुअंते	1	37	107
विणीअं	3	172	397
विणीअं	3	7	276
विणीअं	3	8	276
विणीआ	2	16-C	165
विणीआ	3	180-182	405
विणीआए	2	65-A	205
विणीआए	3	14	288
विणीआए	3	2	267
विण्हुदेवयाए	7	130	790
विण्हू	7	130	790
विण्हू	7	186	848
विततं	5	57	657
वित्ता	3	103	349
वित्तिं	2	134	249
वित्थिण्ण	2	15-B	159
वित्थिन्ना	1	8	27
विदिसिरुअगवत्थव्वाओ	5	12	622
विदेहजम्बू	4	157	527
विद्दुम	3	35-A	314
विद्धंसेहिंति	2	131	242
विपुललोह	3	109-G	359
विपुलवट्ट	3	88-A	335
विभयमाणे	1	19	90
विभागकुसले	3	32-34 B	311
विभूसिअं	3	35-A	314
विमणे	2	90	226
विमल	2	15-E	161
विमल	2	15-F	161
विमल	3	9	277
विमल	4	204	559
विमल	4	25	448
विमल	5	49-A	646
विमलखंभे	1	37	107
विमलजलतुंगवीचिं	3	81-A	330
विमलदंडं	3	12	283
विमलदंडं	3	88-A	336
विमलवाहण	2	61	192
विमलवाहणे	2	59	190
विमाणोववण्णगा	7	55	735
विमोक्खणे	2	71	215
विरसमेहा	2	131	242
विराइहिंति	2	131	242
विरिएणं	3	107	351
विरिएणं	3	114	363

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
विलास	2	15-I	163
विलासकलिआ	2	15-I	163
विलिअं	3	121	371
विलिआ	2	60	192
विलेवणे	3	20	292
विव	2	68	210
विवऽहिलीयमाणं	3	109-D	356
विवंचि	3	31-B	307
विसप्पमाण	2	15-A	158
विसम	2	38	176
विसम	3	109-F	358
विसम	3	88-B	336
विसमगड्डुणिण्णुण्णयाणि	2	131	242
विसमचारि	7	112	775
विसमणयण-वंकणासा	2	133	245
विसमबहुले	1	18	87
विसमसंधिबंधणा	2	133	246
विसमेहा	2	131	242
विसयवासिणी	3	56-57B	322
विसयवासी	3	24	296
विसयवासी	3	26-B	301
विसरिसणामया	1	46-B	115
विसहरणं	3	95-A	341
विसायणिज्जे	2	18	167
विसाल	2	15-B	159
विसालकण्ण	7	178-B	836
विसाला	4	157	527
विसाहा	7	128	786
विसाहा	7	134	795
विसाहा	7	135	798
विसाहा	7	140	808
विसाहा	7	149	812
विसाहा	7	165	821
विसाहा	7	166	821
विसाहिण्णं	7	140	808
विसिट्ठ	3	9	277
विसिट्ठचलणा	2	15-A	158
विसिट्ठपट्टं	3	109-B	353
विसिट्ठलट्ठ	3	35-A	314
विसुज्झमाणीहिं	3	223	429
विसुद्धगन्थजुत्तेहिं	5	58	668
विसुद्धतराए	2	71	215
विसेसाहिअं	1	20	90
विसेसाहियं	1	7	25
विस्सदेवया	7	130	790
विस्सा	7	130	790
विस्सा	7	186	848
विस्सुयजसे	3	129	377
विस्सुयजसे	3	77	326
विहग	1	37	107
विहग	2	68	210
विहत्थी	2	6-D	132
विहरंति	1	13	42
विहरंति	1	30	101
विहरइ	2	70	213
विहरमाणस्स	2	71	214
विहराहि	3	185-B	408
विहाडिआ	3	90	338
विहाडेहि	3	83	334
विहारेणं	2	71	214
विहारेणं	2	71	215
विहिण्णू	3	32-34 A	308
वीअणि	3	3	268
वीअसोगा	4	212-A	565
वीइक्कंते	2	51	183
वीइक्कंते	2	54	188
वीइक्कंते	2	89	226
वीइवइत्ता	1	16	63
वीईवइत्ता	1	46-A	114
वीईवइत्ता	1	46-D	116
वीईवयमाणे	3	26-B	301
वीईवयमाणे	5	44	641
वीईवयमाणे	5	47	645
वीणग्गाहा	3	178-179-E	401

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
वीणा	3	31-B	307
वीयसोगा	4	212-A	565
वीरिएणं	2	71	215
वीवाहाइ	2	30	173
वीसं	2	64-A	194
वीससेणे	7	122	782
वीसुतं	3	35-C	317
वीहि	2	37	176
वुच्वई	2	4-B	126
वुड्डी	7	186	848
वेअड्ड	4	172	538
वेअड्डं	2	133	246
वेअड्डकूडा	6	11	681
वेअड्डकूडे	1	34	105
वेअड्डकूडे	1	46-B	115
वेअड्डगिरिकुमारस्स	3	61-63	324
वेअड्डगिरिकुमारे	1	47	117
वेअड्डगिरिपायमूले	3	220	426
वेअड्डगिरिवज्जे	2	131	242
वेअड्डपव्वयं	4	35	453
वेअड्डपव्वयाभिमुहे	3	136	381
वेअड्डस्स	1	28	101
वेअड्डस्स	3	61-63	324
वेअड्डे	1	19	90
वेअड्डे	1	23-A	94
वेअड्डे	1	47	116
वेअड्डे	4	168	536
वेअड्डे	4	172	537
वेअड्डे	4	172	538
वेअड्डेण	1	18	87
वेअद्धपव्वयाभिमुहे	3	60	323
वेइआ	2	20	168
वेइआ	4	3	436
वेउव्विअसमुग्घाएणं	3	115	364
वेउव्विअसमुग्घाएणं	3	192	413
वेउव्विअसमुग्घाएणं	5	28	635
वेउव्विअसहस्सा	2	80	221
वेजयंति	3	31-A	305
वेजयंति	7	120	780
वेजयंती	7	186	847
वेजयंते	1	15	63
वेजयन्ती	4	212-A	565
वेजयन्ती	5	8	620
वेज्झे	3	32-34 B	311
वेड्डा	2	60	192
वेढिम	3	210-211-B	422
वेढो	3	119-A	368
वेणु	3	31-B	307
वेत्त	3	109-C	354
वेत्तेण	2	67	209
वेदियासमए	1	14	62
वेयड्डपव्वयाभिमुहं	3	61-63	324
वेयड्डस्स	3	1	263
वेयद्धस्स	1	24	97
वेरनिरया	2	133	245
वेरिएइ	2	28	172
वेरुलिअ	3	12	283
वेरुलिअ	3	88-A	336
वेरुलिअकूडे	4	79	473
वेरुलिअभिसंतविमलदंडं	3	178-179-B	399
वेरुलिअमयं	3	12	283
वेरुलिआमए	4	7	438
वेलंबग	2	32	174
वेसमणं	5	68	673
वेसमणकाइआणं	1	31	102
वेसमणकूडे	1	34	105
वेसमणकूडे	1	46-A	114
वेसमणकूडे	4	202-B	556
वेसमणकूडे	4	44	457
वेसमणे	3	18	290
वेसमणे	3	31-B	307
वेसमणे	4	172	538
वेसमणे	7	122	782
वेसेहिं	3	178-179-E	401

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
वेहासं	5	64	671
वोच्छिज्जिस्सइ	2	129	241
वोच्छिज्जिस्सइ	2	158	261
वोज्झिहिंति	2	134	248
वोसट्टकाए	2	67	209
व्व	3	9	278
संकप्पे	3	56-57A	321
संकमवत्तव्वया	3	161	389
संकमे	3	99	347
संकिलेसबहुले	1	18	87
संकुचिअपसारिअं	5	57	658
संकुडिअवलीतरंग	2	133	245
संक्खित्ता	1	8	27
संख	2	15-D	160
संख	2	24	171
संख	2	64-C	202
संख	3	12	283
संख	3	3	268
संखतल	7	178-B	836
संखमाला	2	8	137
संखमिव	2	68	210
संखसनामे	7	186	848
संखायणे	7	132	793
संखिअ	2	64-D	203
संखिअ	3	31-B	307
संखिज्जाणि	2	58	189
संखिया	3	185-A	407
संखे	3	167-B	392
संखे	3	178-179-C	399
संखे	4	212-A	564
संखे	4	212-A	565
संखोहबहुले	1	18	87
संगंथसंथुआ	2	69	212
संगएइति	2	29	173
संगतपासाणं	7	178-C	839
संगयंगा	2	14	152
संगयगय	2	15-I	163
संगयपट्ठं	3	109-B	353
संगयपासाओ	2	15-C	159
संगहणी	6	6	678
संगोवेंति	2	49	181
संगोवेंति	2	56	188
संघयणपज्जवेहिं	2	51	183
संघयणे	2	123	238
संघयणे	2	58	189
संघाडिएइ	2	29	173
संजमेणं	2	83	221
संजायभया	3	111	361
संठाण	7	128	786
संठाण	7	129	788
संठाणपज्जवेहिं	2	51	183
संठाणसंठिए	4	45	458
संठाणा	7	133	794
संठाणे	2	123	238
संठाणे	2	58	189
संठिअ	2	15-D	160
संठिआ	2	20	168
संठिए	7	176	832
संतसार	2	64-C	202
संतिकरं	3	88-B	336
संते	2	68	210
संथरइ	3	20	292
संथरइ	3	84-85	334
संथुव्वमाणे	3	18	290
संदमाणिआइ	2	33	174
संधी	4	26	449
संधुक्खंति	5	16	625
संपरिक्खित्ता	1	9	29
संपरिवुडे	3	14	288
संपलिअंकणिसण्णे	2	88	225
संपिणद्धजीवं	3	24	296
संपिणद्धदुद्दंसणिज्जरूवा	2	133	245
संपेहेइ	3	26-B	301
संबाहसहस्समंडिअं	3	18	290

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
संमट्टे	2	6-E	133
संलाव	2	15-I	163
संलेहणाझूसणाझूसिए	3	224	430
संवच्छरं	2	66	209
संवच्छरा	7	126	784
संवच्छरे	2	4-C	126
संवच्छरे	2	69	212
संवट्टगवाए	5	5-C	613
संवट्टगा	2	131	242
संवाहसहस्साणं	3	221-A	427
संसारपारगामी	2	70	213
संसिआओ	3	81-B	331
सउज्जोया	1	8	27
सउणगण	2	12-B	140
सउणरुअपज्जवसाणाओ	2	64-A	194
सउणि	7	133	794
सउणिपोस	2	16-B	164
सउणी	7	123	782
सएहिं	3	178-179-E	401
सकहं	2	113	234
सकोरंट	3	77	327
सकोरंट	3	9	277
सकोरंटमल्लदामेणं	3	18	290
सकोरंटमल्लदामेणं	3	78	328
सक्कंसि	5	18	627
सक्करा	3	98	346
सक्करा	4	254	593
सक्कराइ	2	17	166
सक्कस्स	1	31	102
सक्कस्स	2	89	226
सक्कारजढो	3	217	424
सक्कारवत्तिअं	5	27	633
सक्कीसाणाणं	4	240	585
सक्के	2	113	234
सक्के	5	18	627
सक्खंधावारबले	3	151	388
सखंधावारबलवाहणे	3	81-A	330

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
सखंधावारबले	3	117-A	365
सखिंखिणिआइं	3	113	362
सखिंखिणीआइं	3	26-B	301
सखिंखिणीए	3	30	304
सगंगासागरगिरिमेरागं	3	151	388
सगंगासागरगिरिमेरागं	3	170	396
सगडमुहंसि	2	71	214
सगडाइ	2	33	174
सगडुद्धी	7	133	794
सगडुद्धीमुहसंठिआ	7	31-A	721
सगडुद्धीसंठिओ	7	32	725
सगा	2	120	237
सघंटं	3	35-B	316
सचामरा	5	43	640
सच्चित्ते	2	69	212
सच्छत्तं	3	35-B	316
सज्झयं	3	35-B	316
सड्ढि	3	119-B	369
सण	2	37	176
सणंकुमारगाणं	5	49-B	647
सणंदिघोसे	3	30	304
सणसत्तरसाइं	3	79	328
सणिंचारी	2	159-164	261
सणिअं	3	224	430
सणिचारी	2	50	183
सणिच्चरसंवच्छरे	7	113	777
सणिच्चरे	7	113	777
सणिच्छरसंवच्छरे	7	103	769
सणिच्छरे	7	186	848
सणेरइअ	2	71	215
सण्णयपट्टं	3	109-B	353
सण्णयपासाओ	2	15-C	159
सण्णाहेह	3	15	289
सण्णाहेह	3	21	293
सण्णाहेह	3	31-A	305
सण्णिणाएणं	3	12	283
सण्णिवाए	7	128	786

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
सण्णिवेसमारीइ	2	43	179
सण्णिवेसाइ	2	22	169
सण्णिसीअइ	3	12	283
सण्हसण्हिआइ	2	6-C	131
सण्हसण्हिया	2	6-C	131
सण्हा	1	8	27
सण्हे	1	23-C	96
सण्हेहिं	3	12	283
सतेरा	5	12	622
सत्तछवट्ठे	1	20	90
सत्तट्ठपयाइं	3	12	283
सत्तपरिवज्जिता	2	133	246
सत्तवीरिअपरक्कमगुणे	3	3	267
सत्तावीसे	1	7	25
सत्तिवण्णवणाइं	2	9	138
सत्तिवण्णवणे	4	116	498
सत्तुस्सेहे	1	5-6	20
सत्तुहिअयकंपणं	3	35-C	317
सत्थं	2	6-A	129
सत्थप्पओगेण	3	115	364
सत्थवाहप्पभिईओ	3	178-179-E	400
सत्थवाहप्पभितयो	3	206	417
सत्थवाहाइ	2	25	171
सत्थेण	2	6-B	130
सदेव	2	64-D	203
सद्दसण्णिणादेण	3	31-B	307
सद्दावई	4	57	464
सद्दावेइ	2	105	232
सद्दण्णाइय	2	12-B	140
सद्दो	1	13	41
सद्दो	1	29	101
सद्दो	2	7	137
सद्धाइ	2	30	173
सधुन्नइअ	4	25	448
सन्नतपासाणं	7	178-C	839
सन्नद्धबद्धवम्मिअकवए	3	77	327
सन्निखित्ताओ	7	185	846
सपडागं	3	35-B	316
सपरिवारं	1	44	113
सपुरजणवयं	3	212	423
सपुव्वावरेणं	1	26	99
सप्पभा	1	8	27
सप्पभे	1	23-C	96
सप्पे	7	130	790
सप्पे	7	186	848
सबर	2	35	175
सबरीओ	3	11	281
सभाओ	2	120	237
सभावणगाइं	2	72	218
सभावणगाइं	2	72	218
सभावसिंगार	2	15-I	163
सम	2	15-C	159
समंता	1	9	29
समइच्छमाणे	3	186-A	409
समए	1	2	18
समगप्पवाइएणं	3	12	283
समगा	1	23-C	96
समचउरंस	2	86	224
समचउरंससंठाण	2	16-B	164
समचउरंससंठाण	2	47	180
समचउरंसे	1	5-6	20
समट्ठे	2	17	167
समट्ठे	7	184	846
समणसंपया	2	74	220
समणस्स	1	5-6	20
समणाणं	2	72	218
समणाणं	7	214	859
समणिडालाओ	2	15-F	161
समणीणं	7	214	859
समणे	2	68	210
समणे	7	214	859
समणोवासगसंपया	2	76	220
समणोवासिआसंपया	2	77	220
समतीरे	4	25	447

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
समप्पेइ	4	35	453
समयलुक्खयाए	2	131	242
समरकणग	3	35-B	316
समसंहिअ	2	15-B	159
समसहिअ	2	15-C	160
समा	2	121	238
समा	2	138	251
समा	2	51	184
समाए	2	52	184
समाए	2	8	137
समाणा	2	60	192
समाणा	2	62	193
समाणी	4	35	453
समाणुभावेण	2	131	242
समाणे	2	71	214
समासओ	2	69	212
समाहारा	5	9	620
समाहारा	7	120	780
समिद्धकोसे	3	175-177	397
समिया	1	10	29
समिरीए	1	23-C	96
समिरीया	1	8	27
समिहाकट्ठाइं	5	16	625
समीकरणं	3	88-B	336
समीकरेहिंति	2	131	242
समुत्तजाला	3	17	289
समुत्तजाला	3	9	277
समुत्तजालाकुलाभिरामे	3	21	294
समुत्तिण्णे	3	81-A	330
समुदएणं	3	31-B	307
समुदयसमिइसमागमेणं	2	4-A	125
समुद्दरवभूअं	3	180-182	405
समुप्पज्जित्था	2	63	194
समुप्पज्जित्था	3	56-57A	321
समुप्पण्णे	3	223	429
समे	2	70	213
समोअरंति	7	97	758
समोसढो	1	4	19
समोहणंति	3	115	364
समोहणित्ता	5	55	653
समोहण्णंति	3	192	413
सम्मं	2	67	209
सम्मज्जि	3	184	406
सम्मज्जिअ	2	65-B	207
सम्मज्जिअ	3	7	276
सम्मट्ठरत्थंतरवीहिअं	3	7	276
सम्मत्तपरिभट्ठा	2	133	246
सम्माणपत्तिअं	5	27	633
सयंजए	7	117	779
सयंति	1	13	41
सयंति	1	30	101
सयंति	2	7	137
सयंपभे	4	260	595
सयंसंबुद्धाणं	5	21	628
सयक्ककऊ	5	18	627
सयज्जल	4	210	563
सयज्जलकूडे	4	210	562
सयणिज्जवण्णओ	4	13	439
सयणिज्जे	4	13	439
सयपत्त	4	25	448
सयपागसहस्सपागेहिं	5	14	624
सयभिसया	7	113	776
सयभिसया	7	128	786
सयभिसया	7	129	788
सयभिसया	7	134	795
सयभिसया	7	135	797
सयभिसया	7	139	807
सयभिसया	7	142	809
सयभिसया	7	149	812
सयभिसया	7	157	818
सयमेवाभरणालंकारं	2	65-C	207
सयमेवाभरणालंकारं	3	224	430
सयवसहे	7	122	782
सयसहस्सपत्त	3	10	281

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
सयसहस्साइं	1	7	25
सरं	3	26-B	301
सरं	3	44-50	320
सरणं	5	21	629
सरणदयाणं	5	21	629
सरणागया	3	81-C	331
सरपहरणेहि	3	31-B	307
सरभ	1	37	107
सरभ	2	136	250
सरभ	2	35	175
सरलवणाइं	2	9	138
सरस	3	7	276
सरस	3	82	333
सरस	3	9	277
सरसयबत्तीसतोण	3	35-B	316
सरसरस्स	3	89	337
सरसरस्सग्गाइं	3	102	348
सरसाइं	2	95	230
सरसाइं	2	96	230
सरसेणं	3	12	283
सरस्स	3	24	296
सरायहाणीआ	1	16	63
सरिआगुम्मा	4	166	533
सरिसचक्कं	3	35-A	314
सरिसव	2	37	176
सरिसवसमुग्गा	5	55	653
सरे	3	25	299
सलिलबिल	2	131	242
सलिलाओ	6	6	678
सलिलासु	3	79	328
सलीलगय	2	15-G	162
सवणा	7	128	786
सवणे	7	113	776
सवणे	7	130	790
सवणे	7	141	809
सवणेणं	3	225	431
सवणो	7	129	788
सवणो	7	138	802
सवणो	7	149	812
सवणो	7	156	817
सवालुइल्ल	3	109-F	358
सविआ	7	130	790
सविआ	7	186	848
सव्वंगसुंदरीओ	2	15-A	158
सव्वउवरिल्लं	7	175	831
सव्वओ	1	9	29
सव्वओभद्दसण्णिवेसे	3	32-34 C	312
सव्वओभद्दे	5	49-A	646
सव्वकणगामए	4	1-C	435
सव्वकामसमिद्धे	7	117	779
सव्वकुलपव्वएसु	5	55	654
सव्वकूडा	1	46-A	114
सव्वक्खरसन्निवाईणं	2	78	220
सव्वखुड्डाए	1	7	24
सव्वगन्धे	5	55	654
सव्वग्गेणं	7	198	852
सव्वचंगेरीओ	5	55	653
सव्वचक्कवट्टिविजएसु	5	55	654
सव्वजंबूणयामए	1	51	120
सव्वजगमंगलस्स	5	5-B	612
सव्वजीवा	7	212	857
सव्वजुईए	3	12	282
सव्वट्ठे	7	122	782
सव्वतुअरे	5	55	654
सव्वतुडिअसद्द	3	12	283
सव्वदरिसी	2	71	215
सव्वदरिसीणं	5	21	629
सव्वदीवसमुद्दाणं	1	7	24
सव्वदुक्ख	2	71	215
सव्वदुक्खपहीणे	2	88	225
सव्वदुक्खप्पहीण	2	89	226
सव्वदुक्खाणमंतं	1	22	94
सव्वदुक्खाणमंतं	1	27	101
सव्वदुक्खाणमंतं	1	49-50	119

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
सव्वदुक्खाणमंतं	2	58	190
सव्वधण्णाइं	3	79	328
सव्वन्नू	2	71	215
सव्वन्नूणं	5	21	629
सव्वपडलगाइं	5	55	653
सव्वपवरकच्छं	3	81-B	331
सव्वपाणा	7	212	857
सव्वपुप्फे	5	55	654
सव्वप्पभा	5	11	622
सव्वप्पिच्छिआ	7	181	844
सव्वफालिआमए	7	176	832
सव्वफासविसहे	2	68	210
सव्वबलेणं	3	12	282
सव्वबाहिरं	7	175	831
सव्वबाहिरए	7	17	700
सव्वबाहिरमंडलं	7	23	709
सव्वबाहिरिआ	7	31-B	722
सव्वब्भंतरं	7	175	831
सव्वब्भंतराओ	7	64	739
सव्वब्भंतरिआ	7	31-B	722
सव्वब्भंतरिल्लं	7	175	831
सव्वब्भंतरे	7	14	697
सव्वब्भिंतराए	1	7	24
सव्वभावे	2	71	215
सव्वभूअकंतं	3	92	339
सव्वभूआ	7	212	857
सव्वमणिमई	1	43	113
सव्वमल्ले	5	55	654
सव्वमहद्दहेसु	5	55	654
सव्वमहिड्ढिआ	7	181	844
सव्वरयणामए	1	35	106
सव्वरयणामए	1	9	29
सव्वरयणे	3	167-B	392
सव्वरययामए	1	23-C	96
सव्वलोगनाहस्स	5	5-B	612
सव्ववइरामई	1	8	27
सव्ववत्थ	3	12	282
सव्ववासेसु	5	55	654
सव्वविभूईए	3	12	282
सव्वविभूसाए	3	12	282
सव्वसत्ता	7	212	857
सव्वसत्तुसु	3	221-B	427
सव्वसमुदयेणं	3	12	282
सव्वसिग्घगई	7	180	843
सव्वसिद्धा	7	121	781
सव्वहिड्डिल्लिगं	7	175	831
सव्वहिड्डिल्लं	7	175	831
सव्वाउअं	3	225	431
सव्वायरेणं	3	12	282
सव्वालंकारविभूसिअं	2	99	231
सव्विदिअ	2	18	167
सव्विड्ढीए	3	12	282
सव्वोउअसुरभि	3	30	304
सव्वोउअसुरभि	3	35-C	317
सव्वोसहिं	3	133-134	380
सव्वोसहीओ	5	55	654
ससंभमं	3	6	274
ससक्कर	3	109-F	357
ससगा	2	136	250
ससि	2	15-D	160
ससि	3	9	278
ससि	7	112	775
ससिंधुसागरगिरिमेरागं	3	76	326
ससिपरिवारो	7	168-A	826
सस्सिरिआहिं	2	64-E	204
सस्सिरीअं	3	35-C	317
सस्सिरीआहिं	3	185-A	407
सहरिसे	3	81-D	332
सहस्सक्खे	5	18	627
सहस्सपत्तसयसहस्सपत्त	4	25	448
सहस्सपत्ताइं	5	55	653
सहस्सार	5	49-B	647
सहा	2	50	183
सहाइ	2	29	173

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
सहिअ	2	15-C	159
सहिए	7	186	848
सहेमवं	7	114	777
साइ	7	134	795
साइ	7	135	797
साई	7	128	786
साई	7	129	788
साई	7	140	808
साई	7	149	812
साई	7	165	821
सागर	3	3	268
सागरकूडे	4	164	531
सागरगिरिमेरागं	3	126-A	375
सागरचित्तकूडे	4	236	582
सागरचित्ते	4	238	583
सागरतरंग	5	32	636
सागरेसु	3	79	328
सागरो	2	68	210
सागरोव	3	3	268
सागरोवमकोडाकोडीओ	2	6-G	136
सागरोवमकोडाकोडीहिं	2	51	183
सागरोवमस्स	2	6-G	136
सागरोवमे	2	5	129
साभाविएहि	3	209	419
सामण्णोवणिवाइअं	5	57	658
सामन्नपरिआयं	3	225	431
सामलयाओ	2	11	139
सामलीए	4	208	561
सामाणिअ	1	45	114
सामाणिअ	4	17	441
सामिआ	3	81-C	331
सामित्तं	3	221-B	427
सामी	1	4	19
सारक्खंति	2	49	181
सारक्खंति	2	56	188
सारयणवकमल	2	15-E	161
सारस	2	12-B	140
सालंबणबाहाए	3	99	347
सालभंजिअ	1	37	107
सालवणाइं	2	9	138
साला	4	147	520
सालि	3	119-B	369
सालीति	2	37	176
सावइज्जेइ	2	24	171
सावएज्जं	2	64-C	202
सावणबहुलपडिवए	2	138	251
सावणाइआ	7	126	784
सावणे	7	104	770
सावणे	7	114	777
सावयगणा	2	36	175
सावयबहुले	1	18	87
सावयाणं	7	214	859
साविट्ठिण्णं	7	138	802
साविट्ठिण्णं	7	141	809
साविट्ठिण्णं	7	147	811
साविट्ठिण्णं	7	150	814
साविट्ठी	7	137	801
साविट्ठी	7	154	815
सावियाणं	7	214	859
सावेंता	3	178-179-F	402
सासं	7	112	775
सासए	1	47	117
सासए	1	47	117
सासए	3	226	432
सासए	4	22	445
सासए	7	208	856
सासग	3	35-A	314
सासग	3	35-A	314
सासया	1	11	30
सासवसमुग्गे	3	11	282
सासाइ	2	43	179
सासेंता	3	178-179-F	402
साहरइ	3	26-A	299
साहरह	2	95	230

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
साहरह	5	14	624
सिंग	3	109-G	359
सिंगमाला	2	8	137
सिंगेहिंतो	5	63	671
सिंघाडग	3	212	423
सिंघाडग	5	72	674
सिंदुवारगुम्मा	2	10	138
सिंदूर	3	35-C	317
सिंधुआवत्तणकूडे	4	37	454
सिंधुकुंडस्स	1	51	120
सिंधुकुंडे	4	174	539
सिंधुगमो	3	151	388
सिंधुगमो	3	64-67	324
सिंधुदेवीभवणाभिमुहे	3	51	320
सिंधुद्दीवो	4	37	454
सिंधुप्पवायकुंडं	4	37	454
सिंधुमहाणई	4	174	540
सिंधू	6	19	684
सिंधूए	3	1	263
सिंधूए	3	51	320
सिंधूए	3	52-54	321
सिंधूए	3	76	326
सिंधूए	4	37	454
सिंधूणं	3	56-57B	322
सिंधूहिं	1	48-A	117
सिंहलए	3	81-A	330
सिंहलि	3	11	281
सिंहासणं	1	44	113
सिआल	2	36	175
सिग्घाए	3	26-B	301
सिज्झंति	1	22	94
सिज्झंति	1	49-50	119
सिज्झंति	2	58	190
सिणेहभावं	2	143	254
सित्त	3	7	276
सित्तसुइक	2	65-B	207
सिद्धत्थए	5	55	654
सिद्धत्थवण	2	65-B	207
सिद्धत्थवणे	2	65-B	207
सिद्धमणोरमे	7	117	779
सिद्धा	2	82	221
सिद्धायतणकूडे	1	35	106
सिद्धायतणकूडे	4	79	473
सिद्धाययणकूडे	1	34	105
सिद्धाययणकूडे	4	105	489
सिद्धाययणकूडे	4	106	490
सिद्धाययणकूडे	4	163	530
सिद्धाययणकूडे	4	180	543
सिद्धाययणकूडे	4	186	547
सिद्धाययणकूडे	4	192	549
सिद्धाययणकूडे	4	198	550
सिद्धाययणकूडे	4	210	562
सिद्धाययणकूडे	4	263	599
सिद्धाययणकूडे	4	275	606
सिद्धाययणकूडे	4	44	457
सिद्धाययणकूडे	4	45	458
सिद्धाययणकूडे	4	96	483
सिद्धाययणस्स	4	217	574
सिद्धाययणा	4	139	513
सिद्धाययणे	1	37	107
सिद्धाययणे	4	216	573
सिद्धाययणे	4	235	581
सिद्धे	2	89	226
सिद्धे	4	162	529
सिद्धे	4	172	538
सिद्धे	4	204	559
सिद्धे	4	210	563
सिद्धे	4	263	599
सिद्धे	4	269	602
सिन्धुदेवीकूडे	4	44	457
सिप्पसयं	2	64-A	194
सिप्पसयं	3	167-E	393
सिबियाआ	2	101	231
सियाल	2	136	250

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
सिरि	3	126-A	374
सिरि	5	11	622
सिरिअभिसेअ	2	15-G	162
सिरिकंता	4	224	576
सिरिकूडे	4	44	457
सिरिघरंसि	3	220	426
सिरिचन्दा	4	224	576
सिरिणिलया	4	224	576
सिरिदामगंडं	5	67	672
सिरिमहिआ	4	224	576
सिरिवच्छ	3	12	283
सिरिवच्छ	3	88-A	336
सिरिवच्छसरिसरूवं	3	116	365
सिरिवच्छा	5	58	667
सिरिवच्छे	4	28	451
सिरिवच्छे	5	49-A	646
सिरिसंभूआ	7	120	780
सिरी	4	22	445
सिरीए	2	8	137
सिरीए	4	17	441
सिल	2	24	171
सिल	2	64-C	202
सिलणिहिअत्थमंतसित्त	3	119-B	369
सिलप्पवाल	3	35-C	317
सिलोच्चए०	4	260	595
सिवाहिं	2	64-E	204
सिवाहिं	3	185-A	407
सिवे	7	114	777
सिसिरे	7	114	777
सिस्सेइ	2	26	172
सिहंडिणो	3	178-179-F	402
सिहरतले	1	32	104
सिहरिकूडे	4	275	606
सिहरिवासहरपव्वए	4	276	606
सिहरिसिंगभूअं	3	217	424
सिहरी	4	274	605
सिहरी	4	276	606

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
सिही	2	137	250
सीअ	2	33	174
सीअं	2	103	232
सीअं	2	65-B	207
सीअलच्छया	2	20	168
सीअसोआ	4	212-A	564
सीआ	4	263	599
सीआ	5	10	621
सीआ	6	22	686
सीआए	1	16	63
सीआए	2	64-C	202
सीआए	4	200	551
सीआओ	2	65-B	207
सीआतवतत्तेहिं	2	134	249
सीआमुहवणे	4	200	551
सीउण्हखरफरुस	2	133	246
सीओअप्पवायकुण्डे	4	92	480
सीओआ	4	210	563
सीओआ	6	22	686
सीओआकूडे	4	210	562
सीओआमुहवणं	4	212-B	566
सीओआमुहवणसंडे	4	212-A	565
सीओददीवे	4	93	481
सीओदा	4	91	480
सीओदा	4	94	481
सीओदाकूडे	4	96	483
सीमंकर	2	60	192
सीमंकरे	2	59	190
सीमंधर	2	60	192
सीमंधरे	2	59	190
सीया	4	162	529
सीयामुहवणे	4	201	555
सीसपहेलिअंग	2	4-C	127
सीसपहेलिया	2	4-C	127
सीह	2	15-G	162
सीहघोसा	2	16-A	164
सीहणाय	3	31-B	307

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
सीहणाय	3	78	328
सीहणायं	5	57	658
सीहनिसाई	7	133	794
सीहपुरा	4	212-A	564
सीहपुरा	4	212-A	565
सीहस्सरा	2	16-A	164
सीहा	2	136	250
सीहाइ	2	36	175
सीहाए	3	26-B	301
सीहासण	3	197	415
सीहासण	3	3	268
सीहासणं	4	50	461
सीहासणवरगए	3	12	283
सीहासणवरगए	3	6	274
सीहासणहत्थगयाओ	3	11	281
सीहासणा	4	135	512
सीहासणे	3	12	283
सुंगा	7	132	793
सुंदरथण	2	15-I	163
सुंदरपासाओ	2	15-C	159
सुंदरुत्तरोट्ठओ	2	15-E	161
सुअतोंडरागं	3	35-C	317
सुइ	2	15-A	158
सुइग	3	7	276
सुइमाला	3	9	277
सुकच्छकूडे	4	180	543
सुकच्छे	4	181	544
सुकयकूबरं	3	35-A	314
सुकयपडउत्तरिज्जे	3	9	277
सुकयसंधिकम्मं	3	35-B	316
सुकुमालमउअ	2	15-B	159
सुक्कपक्खस्स	7	125	783
सुक्कपक्खे	7	115	778
सुक्किल	3	24	296
सुक्किलेहिं	1	13	41
सुक्किल्ल	3	31-B	307
सुक्किल्ल	4	29	451
सुक्किल्लेहिं	2	7	137
सुगंध	2	15-F	161
सुगंधगंधिअस्स	3	12	283
सुगंधवरगंधिअं	3	7	276
सुगपत्त	3	109-G	359
सुगूढ	2	15-A	158
सुघोसं	5	22	629
सुघोसा	5	49-B	647
सुचक्कं	3	35-B	316
सुचरिअ	2	71	215
सुचिण्णाणं	1	13	42
सुजण्णु	2	15-A	158
सुजाय	2	14	152
सुजाय	2	15-B	159
सुजाय	2	15-C	159
सुजाय	2	15-C	159
सुजाय	2	15-C	160
सुजायपट्टं	3	109-B	353
सुजायपासाओ	2	15-C	159
सुजायपासाणं	7	178-C	839
सुजायभुमगाओ	2	15-F	161
सुजाया	4	157	527
सुणंतु	3	24	296
सुणक्खत्ता	7	120	780
सुणग	2	36	175
सुणगा	2	136	250
सुणहाइ	2	27	172
सुतिक्खेण	2	6-B	130
सुत्तग	3	109-C	355
सुत्थिअ	5	32	636
सुदंसण	4	260	595
सुदंसणभद्दसालवणे	5	55	654
सुदंसणा	4	157	527
सुदंसणाए	2	64-C	202
सुदंसणाए	4	147	520
सुदंसणाए	4	157	527
सुदंसणाए	7	213	858

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
सुदुल्लहं	3	117-C	367
सुद्धोदएणं	5	14	624
सुद्धोदएहिं	3	9	277
सुपइट्ठग	2	15-G	162
सुपइट्ठग	3	11	281
सुपइट्ठिअ	2	14	152
सुपईट्ठणं	5	55	653
सुपम्हे	4	212-A	564
सुपम्हे	4	212-A	565
सुपरक्कंताणं	1	13	42
सुपीए	7	122	782
सुप्पइण्णा	5	9	620
सुप्पबुद्धा	4	157	527
सुप्पबुद्धा	5	9	620
सुप्पभाणं	7	178-B	836
सुप्पभाणं	7	178-C	839
सुबद्ध	2	15-B	159
सुबद्धसंधीओ	2	15-A	158
सुभकरं	3	88-B	336
सुभग	4	25	448
सुभगाणं	7	178-B	836
सुभगाणं	7	178-C	839
सुभद्दं	3	138-C	385
सुभद्दा	3	220	426
सुभद्दा	4	157	527
सुभद्दापामोक्खाओ	2	77	220
सुभा	4	202-B	557
सुभाणं	1	13	42
सुभोगा	4	164	531
सुभोगा	5	1	608
सुमइ	2	60	192
सुमई	2	156-157	259
सुमई	2	59	190
सुमणदामं	3	210-211-B	422
सुमणदामं	5	55	654
सुमणा	4	157	527
सुमहग्घ	3	9	277
सुमेहा	4	238	583
सुमेहा	5	6	616
सुरत्तपउमप्पगासाणं	7	178-B	836
सुरभि	3	9	277
सुरभिवरवारिपडिपुण्णेहिं	3	209	419
सुरादेवी	5	10	621
सुरादेवीकूड	4	275	606
सुरादेवीकूडे	4	44	457
सुरिंदगोवगसमप्प	3	35-C	317
सुरूआ	5	13	622
सुलस	4	207	561
सुवग्गू	4	212-A	565
सुवच्छा	4	238	583
सुवच्छा	5	6	616
सुवच्छे	4	202-B	557
सुवण्णं	2	64-C	202
सुवण्णं	2	69	212
सुवण्णकूला	6	20	685
सुवण्णकूलाकूड	4	275	606
सुवण्णपयरगमंडिअं	5	67	672
सुवण्णा	3	24	296
सुवण्णाणं	5	52	651
सुवण्णेइ	2	24	171
सुवप्पे	4	212-A	565
सुविभत्त	2	14	152
सुविभत्त	2	15-C	159
सुविभत्त	2	15-D	160
सुविभत्तदेहधारी	3	3	268
सुविरइअ	2	15-D	160
सुविरचियनामचिंधं	3	24	296
सुसमणा	2	53	187
सुसमदुस्समा	2	54	188
सुसमदुस्समा	2	6-G	136
सुसमदुस्समाए	2	56	188
सुसमदुस्समाकाले	2	2	124
सुसमदूसमा	2	154	259
सुसमदूसमाए	2	88	225

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
सुसमसुसमा	2	159-164	261
सुसमसुसमा	2	6-G	136
सुसमसुसमाए	2	52	184
सुसमसुसमाकाले	2	2	124
सुसमा	2	51	184
सुसमा	2	6-G	136
सुसमाए	2	52	184
सुसमाकाले	2	2	124
सुसमाहिअ	3	35-B	316
सुसवणाओ	2	15-F	161
सुसाहयंगुलीओ	2	15-A	158
सुसिणिद्ध	2	15-F	161
सुसिलिट्ठ	3	9	277
सुसीमा	4	202-B	557
सुसेणं	3	76	326
सुसेणे	3	77	326
सुस्सरा	5	52	651
सुस्सराओ	2	15-H	162
सुस्सूसमाणा	3	205	417
सुस्सूसमाणे	2	90	226
सुह	2	71	215
सुहंसुहेणं	2	146	256
सुहंसुहेणं	3	121	371
सुहकयच्छयं	3	117-C	367
सुहणामा	7	121	781
सुहणिसण्णे	3	9	277
सुहत्थी	4	225	576
सुहम्माए	5	18	627
सुहम्माए	7	184	846
सुहम्माओ	2	120	237
सुहम्माओ	4	120	503
सुहसंकमे	3	99	347
सुहावहे	4	212-A	564
सुहावहे	4	212-A	565
सुहीइ	2	29	173
सुहुमे	2	6-A	129
सुहोआरे	4	25	447
सुहोदएहिं	3	9	277
सुहोवभोगं	2	146	256
सुहोवभोगे	2	145	255
सूअसए	3	186-A	409
सूअसया	3	178-179-E	400
सूईओ	4	26	449
सूर	1	24	97
सूर	4	207	561
सूरत्थमणमुहुत्तंसि	2	134	248
सूरपण्णत्ती	7	101	763
सूरमंडलस्स	7	6	693
सूरमंडला	7	2	691
सूरमंडला	7	3	692
सूरमण्डलं	7	177	833
सूरवत्तव्वया	7	102	769
सूरविमाणे	7	173	830
सूरविमाणे	7	189	851
सूरसहगया	7	135	798
सूरातववायवुड्ढिदोसाण	3	117-B	366
सूरिआ	2	131	242
सूरिआ	7	1	690
सूरिआभस्स	5	44	641
सूरिआभस्स	5	55	653
सूरिआवत्ते	4	260	595
सूरिआवरणे	4	260	595
सूरुग्गमणमुहुत्तंसि	2	134	248
सूरे	4	212-A	565
सूरेण	7	135	797
सूरो	2	68	210
सूल	3	31-B	307
सूलपाणी	2	91	228
सूलपाणी	5	48	645
सूलपाणी	5	60	670
सूसरं	5	22	629
सूसरणिग्घोसा	2	16-A	164
सूसरा	2	16-A	164
सेअंसे	7	114	777

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
सेअमाला	2	8	137
सेअवरचामराहिं	3	18	290
सेआणं	7	178-B	836
सेआणं	7	178-C	839
सेए	1	16	63
सेए	7	122	782
सेज्जंसपामोक्खाओ	2	76	220
सेट्ठि	2	25	171
सेढि	5	32	636
सेढीओ	6	6	678
सेणं	3	15	289
सेणाए	3	78	328
सेणाओ	3	183	406
सेणावइ	2	25	171
सेणिपसेणीओ	3	12	283
सेणिप्पसेणीओ	3	13	288
सेणिप्पसेणीओ	3	178-179-E	400
सेणिप्पसेणीओ	3	186-A	409
सेणिप्पसेणीओ	3	28	303
सेणिप्पसेणीओ	3	29	304
सेतहिं	3	12	283
सेरिआगुम्मा	2	10	138
सेवालगुम्मा	2	10	138
सेसवई	5	9	620
सोग	2	70	213
सोगंधिअ	4	25	448
सोगमुक्का	2	15-H	162
सोणिअसुत्तगं	3	36-42	318
सोत्थिअ	2	15-G	162
सोत्थिअ	3	32-34 C	312
सोत्थिअ	5	58	667
सोत्थिअं	3	3	268
सोत्थिए	4	28	451
सोत्थिय	2	15-D	160
सोत्थिय	3	12	283
सोत्थिय	3	88-A	336
सोदामिणि	3	35-C	317
सोदामिणी	5	12	622
सोभं	7	1	690
सोभंत	2	15-C	159
सोभंति	7	1	690
सोभते	3	24	296
सोभमाणकोसेज्जो	3	24	296
सोभावेंता	3	178-179-F	402
सोभिंसु	7	1	690
सोभिस्संति	7	1	690
सोभेंता	3	178-179-F	402
सोम	1	31	102
सोमणस	7	117	779
सोमणसपंडगवणाओ	5	55	654
सोमणसवणे	4	214	571
सोमणसवणे	4	240	584
सोमणसा	4	157	527
सोमणसा	7	120	780
सोमणसे	4	203	558
सोमणसे	4	204	559
सोमणसे	5	49-A	646
सोमदंसणे	2	68	210
सोमयाए	3	3	268
सोमे	7	130	790
सोमे	7	186	848
सोमे	7	186	848
सोम्मवयणा	2	15-F	161
सोलस	4	260	595
सोलसपासाय	3	32-34 C	312
सोवचिअ	2	71	215
सोवण्णिअकलसाणं	5	55	653
सोवत्थिअ	5	32	636
सोवत्थिअकूडे	4	210	562
सोवत्थी	4	210	563
सोसाइ	2	43	179
सोहम्मकप्प	2	90	226
सोहम्मकप्पवासी	5	43	640
सोहम्मगाणं	5	49-B	647

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
हंदि	3	24	296
हंदि	5	72	674
हंभो	3	124	372
हंसलक्खणं	2	99	231
हंससरिसगईओ	2	15-H	162
हंसस्सरा	2	16-A	164
हंसस्सरा	5	52	651
हक्कारे	2	60	192
हक्कारेणं	2	60	192
हक्कारेन्ति	5	57	658
हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए	3	5	272
हट्ठस्स	2	4-B	126
हड्डिहिअए	5	41	639
हडप्फग्गाहा	3	178-179-E	401
हत्थगया	3	10	281
हत्थि	2	35	175
हत्थिखंधवरगए	3	18	290
हत्थिखंधवरगए	3	78	328
हत्थिगुलगुलाइअं	5	57	658
हत्थिरयणं	3	15	289
हत्थिरयणाओ	3	20	292
हत्थिरयणे	3	17	290
हत्थिसयसहस्सा	3	178-179-E	400
हत्थी	3	98	346
हत्थे	7	133	794
हत्थे	7	149	812
हत्थो	7	128	786
हत्थो	7	129	788
हत्थो	7	140	808
हत्थो	7	164	821
हम्मिअ	2	20	168
हय	2	65-B	207
हय	3	15	289
हयपोसण	3	3	268
हयमहिआ	3	111	361
हयरूवधारीणं	7	178-D	841
हयवति	3	126-A	375
हयहेसिअं	5	57	658
हयहेसिअहत्थि	3	31-B	307
हया	2	60	192
हया	2	61	192
हयामित्तमाणमहणे	3	221-B	427
हरओ	4	140	513
हरिअ	3	24	296
हरिआलिआए	5	13	623
हरिआले	3	11	282
हरिकंतकूडे	4	79	473
हरिकंतदीव	4	76	472
हरिकंतप्पवायकुंडे	4	75	472
हरिकंता	4	73	471
हरिकंता	6	21	685
हरिकूडे	4	210	562
हरिकूडे	4	210	563
हरिकूडे	4	96	483
हरिणेगमेसिं	5	22	629
हरिणेगमेसी	5	23	631
हरिणेगमेसी	5	49-B	647
हरिपहरणरयण	3	35-A	314
हरिमहाणई	4	90	479
हरिवास	6	21	685
हरिवासकूडे	4	79	473
हरिवासकूडे	4	96	483
हरिवासरम्मयवासाण	2	6-C	131
हरिवासे	4	81	474
हरिवासे	4	85	476
हरिवासे	6	9	680
हरिस्सहकूडे	4	165	532
हरिस्सहे	4	162	529
हरीए	4	90	479
हरेज्जा	2	6-F	135
हलिधि	3	119-B	369
हलीमुह	3	35-B	316
हव्वमागच्छइ	7	79	748
हसंता	3	178-179-F	402

शब्द	वक्ष.	सूत्र	पृष्ठ
हसंति	2	7	137
हसियभणिअ	2	15-I	163
हार	3	35-B	316
हारं	3	26-B	301
हारविरायंतरइअवच्छे	3	6	274
हारितग	3	119-B	369
हारोत्थयसुकयरइअवच्छे	3	9	277
हासकारगा	3	178-179-F	402
हासा	5	11	622
हासे	2	69	212
हाहाभूए	2	131	241
हाहाभूए	2	139	252
हिंगुलए	3	11	282
हिअईसर	3	126-A	375
हिअयगमणिज्जाहिं	3	185-A	407
हिअयपल्हायणिज्जाहिं	3	185-A	407
हिअयमालासहस्सेहिं	3	186-A	409
हिअयसूलाइ	2	43	179
हिड्डिल्लं	2	113	234
हिड्डिल्ले	4	253	593
हिड्डिल्ले	4	254	593
हितकरं	3	88-B	336
हिमवंतकंदरंतर	3	35-A	314
हिमवयकूडे	4	236	582
हिय	2	71	215
हिययगमणिज्जाहिं	2	64-E	204
हिययपल्हायणिज्जाइं	2	64-E	204
हिरण्णं	2	64-C	202
हिरण्णं	2	69	212
हिरण्णकोडीओ	5	68	673
हिरण्णवए	6	9	680
हिरण्णवासं	3	184	406
हिरण्णवासं	5	57	657
हिरण्णविहिं	5	57	657
हिरण्णेइ	2	24	171
हिरि	3	126-A	374
हिरि	5	11	622
हिरिकूडे	4	79	473
हिरिसिरिपरिवज्जिए	3	107	351
हिरिसिरिपरिवज्जिए	3	114	363
हिरिसिरिपरिवज्जिए	3	26-A	299
हीणपुण्णचाउद्दसे	3	107	351
हीणपुण्णचाउद्दसे	3	26-A	299
हीणस्सरा	2	133	245
हीरमाणे	7	33	727
हुतवह	3	109-F	357
हूहुए	2	4-C	127
हेउं	7	214	859
हेमंतगिम्हासु	2	70	213
हेमंताणं	2	88	225
हेमजालं	3	44-50	320
हेमवए	4	238	583
हेमवए	4	55	463
हेमवए	4	61	467
हेमवए	6	9	680
हेमवय	6	20	685
हेमवयं	4	42	456
हेमवयं	4	71	471
हेमवयकूडे	4	44	457
हेमवयकूडे	4	79	473
हेमवयस्स	4	1-A	434
हेमवयहेरण्णवयाण	2	6-C	131
हेरण्णवए	4	271	603
हेरण्णवए	4	273	604
हेरण्णवएसु	6	20	685
हेरण्णवय	4	269	602
हेरण्णवयकूडे	4	275	606
हेरुतालवणाइं	2	9	138
होत्था	1	2	18
होत्था	1	3	18
होत्था	2	66	209
होरंभ	3	31-B	307

●●●

सङ्केतसूचिः सम्पादनोपयुक्तग्रन्थसूचिश्च

सङ्केतः	ग्रन्थनाम	पृष्ठाङ्के
अ.चि.	अभिधानचिन्तामणिः	१३२,१९८
अनु. टी.	अनुयोगद्वारसूत्रटीका	११,५३,३४१
अनु. द्वा.	अनुयोगद्वारसूत्रम्	८,१२,५१,५३,२६५,३४१, ३४२,३७०
अनेकार्थ.	अनेकार्थसङ्ग्रहः	१४५, ३४०
आ.चू.	आवश्यक चूर्णिः	२६९
आ.नि.	आवश्यक निर्युक्तिः	१६४,१८६,१९१,२००
	आवश्यक निर्युक्ति भाष्यम्	१९३
आ.सि.	आरम्भसिद्धिः	३१२,४१९,७७४
आव.टि.	आवश्यक टिप्पणम्	३३७
उ.बृ.	उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति	१७,१०
उ.र.		८४२
	उपासकदसांग सूत्रम्	२४
	उपदेशमालाप्रकरणम्	१२९
	ओघनिर्युक्ति भाष्यम्	३
उत्त.	उत्तराध्ययनसूत्रम्	१९
औप.	औपपातिक सूत्रम् (सटीक) (प्रकाशन – महावीर विद्यालय)	१९,२०,३७,१११,२०६
	कल्पसूत्रम्	२२४
	कालसप्ततिका	२०१
क्षेत्र.स.	क्षेत्रसमासः	१२२,६८८
	श्राद्धविधि प्रकरणम्	५११,५१२
	श्रुतस्तवसूत्रम् (पुक्खरवरदी)	३९१
क्षेत्रविचार बृ.वृ.	क्षेत्रविचार बृहद्वृत्तिः	१०४
	ज्ञाताधर्म कथावृत्ति	६२३
क्षेत्रस.	क्षेत्रसमासवृत्तिः	१२२,६८८

सङ्केतः	ग्रन्थनाम	पृष्ठाङ्के
चै.व.म.भा.	चैत्यवंदन महाभाष्यम्	१११
जीवा.	जीवाजीवाभिगमसूत्तं	१,२९,३०,४०,४२-४७,४९,५०,५२,५५,५७-६१,६७,६८,७०-८०,८२,८४-८५,९८,१०९,११०,१२२,१२७,१४१-१४८,१५२,१८०,४३९,५००,५०३,५०५-५१०,५१३,६५९,८४७
जोनि.		१०
ज्यो.क.	ज्योतिष्करण्डकः (प्रकाशन ॐकारसूरि आ.भवन सूरत)	१२१,७६८,७७१,७७४,८०२,८०६,८२२,८२३
तण्डुलवे.	तण्डुलवेयालियं	१८६
	तत्त्वार्थसूत्र मूलटीका	४७७
तित्थोगालि	तित्थोगालिपइन्नयसुत्तं	१२७,१८९
त्रि.श.पु./त्रिशष्टि.	त्रिशष्टि शलाका पुरुषचरित्राणि	१८२,१९३,१९५,२४८,२९३,२९५,३०५,३४८,३९५,४२६,४२९,४३०
दसवै.	दशवैकालिकसूत्रम्	४३१
	देसीनाममाला	१७७
धा.पा.	धातुपाठः	२५,८३,२९९,६६४,२६०
	धातुकोषः	१६५
	निशीथचूर्णिः	२७०
	न्यायसङ्ग्रहः	२९४
नव्य.बृ.क्षेत्र.स.अ.	नव्यबृहत्क्षेत्र समास अवचूर्णिः	५२१
पञ्चव.	पञ्चवस्तुकप्रकरणम्	४,५,२३
प्रज्ञा.	प्रज्ञापनासूत्रम्	१०२,७३१
प्रवचनसारो.टी.	प्रवचनसारोद्धार टीका	१२७,१८३,३४१
	परिशिष्टपर्व	४४५
	प्रशमरतिप्रकरणम्	१७०
	बृहत्संहिता	३०९,३११-३१३
बृ.क्षेत्र.स.	बृहत्क्षेत्रसमासः	२६,११६,४४८,४८५,५४६

सङ्केतः	ग्रन्थनाम	पृष्ठाङ्के
बृ.सं.	बृहत्सङ्ग्रहणी	१८३
	भक्तामरस्तोत्रम्	१३३
	भगवद्गीता	३६
	भगवतीसूत्रवृत्तिः	१८३,६७९
राजप्र.	राजप्रश्नीयसूत्रम् (वृत्ति सह) (प्रकाशन महावीर विद्यालय)	१२,४३,४४,४६-४८,१०९,१९६
	लोकप्रकाशः	३१२
	लघुक्षेत्र समासः	५७९, ६७९, ६९८
	लघुसङ्ग्रहणी	६७९
वास्तु.	वास्तुसारः	३०९,३१०
विशे.भा./वि.आ.भा.	विशेषावश्यक भाष्यम्	३,५-७,१०,१२,१४,४३
श्रीसिद्ध.	श्रीसिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशाशनम्	१८,२६,३२,३५,५६,५८,१२४, १४७,१७२,२०८,२१०,२१८, २२०,२६०,२७०,२७५,२८७, २९८,३४६,३६७,३७७,३९१, ४५१,४६७,४९२,५१५,५४५, ५४८,५५३,५६७,५७६,८०१, ८२२, ८२६
सि.धा.	सिद्धहैमधातुपाठः	२७८,३५५,४०३,८४१
	समवायांग सूत्रम्	८०,९१,११०,२३०,७८९
	समवायांगसूत्र वृत्तिः	५९४
	स्थानांगसूत्रम्	५३,२०१,६३५
सूर्यप्र.	सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रम्	७२६
सौत्रधा.	सौत्रधातुपाठः	
है.धा.	हैमधातुपाठः	६६५

●●●

: नोंध :